श्री रत्न प्रभ

जैन जाति महोदय

(प्रथम खण्ड)

नमः सूरी

लेखक :-

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी

भ्यो सद्गुरु श्वर

मूल नायक जी श्री चंदाप्रभुजी भगवान
सूले मंदिर मद्रास

अध्यात्म योगी पूज्य पाद आचार्यदेव
श्रीमद् विजय कलापूर्ण सूरीश्वरजी
महाराज साहिब

प्रकाशक

श्री चन्द्रप्रभ जैन श्वेताम्बर मन्दिर,

सूलै, मद्रास - 600 112.

का शताब्दी महोत्सव

एवं अध्यात्मयोगी पूज्यपाद आचार्य देव

श्रीमद् विजय कलापूर्णसूरीश्वरजी म.सा. का

सूलै मद्रास में वि.स.2051 में

ऐतिहासिक चार्तुमास की पावन स्मृति में

श्री सूलै जैन संघ, मद्रास

38, वेंकटाचल मुदली स्ट्रीट, सूलै, मद्रास - 112.

वि.सं.2051

श्री रत्न प्रभाकर ज्ञान पुष्प माला,

फलोदी (राजस्थान)

JAIN JATIMAHODAY

PRATHAM KHANI

Lekhak—

Muni Sri Gyanasunderji.

श्री सिद्धचक्रजी महाराज (नौंपदजी).

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला पुष्प नं. १०३ से १०८

श्री रत्नप्रभसूरि पादपद्मेभ्यो नमः

श्री जैन जातिमहोदय।

प्रथम खण्ड।

(प्रकरण १-२-३-४-५-६ ठा.)

लेखक,

श्रीमद् उपकेशगच्छीय

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज।

History is the first thing that should be given to children in order to form their hearts and understandings. ROLIS.

प्रकाशक,

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला,

पो० फलोधी (मारवाड़)।

वीर सं. २४५५ ओसवाल सं. २३८६ वि. सं. १९८६

सर्वाधिकार] [संरक्षित.

मूल्य रु. ४-०-०

जैन जातिमहोदय प्रथम खण्ड.

पृष्ठ संख्या.

(१)	शुभ नामावली.	१४
(२)	विषयानुक्रमणिका आदि	४०
(३)	प्रस्तावना	२६
(४)	लेखक का परिचय	७२
(५)	प्रकरण पहला.	८२
(६)	प्रकरण दूसरा.	८६
(७)	प्रकरण तीसरा.	९६
(८)	प्रकरण चौथा.	१०४
(९)	प्रकरण पांचवाँ.	२४०
(१०)	प्रकरण छठा.	१८४
(११	चित्र ४१ के पृष्ठ.	८२
		१०२६

" प्रकाशक. "

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद ओसवंश स्थापक परोपकारी
स्वनामधन्य महात्मा परमयोगी निस्पृही

आचार्य श्री रत्नप्रभ सूरि महाराज ।

आपने आज से २४८६ वर्ष पहले मरुस्थल में विहार कर अपने अपूर्व बुद्धिबल से महाजन संघ की स्थापना की। पारस्परिक उच्च नीच के भेदभाव को छुड़ा कर उपकेशपुर के राजा और प्रजा को प्रतिबोध देकर जैनी बनाया। मिथ्यात्वकी राह से बचा कर शुद्ध समकित का पथ दर्शा कर वास्तव में आपने हमारे पर असीम उपकार किया है जिसका ऋण हम कदापि नहीं चुका सकते।

यह आपश्री ही का प्रताप है कि आज हम पवित्र और पुनीत जैन धर्म की अहिंसा—पताका के नीचे सुख और शांति पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसा कृतघ्नी कौन होगा जो ऐसे परोपकारी महात्मा के उपकार को भूल जाय।

आप के स्मरण मात्र से हमारा हृदय प्रफुल्लित होता है। वास्तव में हम पूर्ण सौभाग्यशाली हैं कि आपने हमारे प्रान्त में विचरण कर दया की सरिता प्रवाहित की थी। आपकी अचल धवल कीर्ति जगत में जैन जातियों के अस्तित्व तक अमिट रहेगी। धन्य है भारतभूमिको जिस पर ऐसे ऐसे महात्माओंने जन्म लेकर अपने अपूर्व आत्मबल से सारे संसार को चकित कर दिया है।

आपके पदपद्मपञ्जर में साश्रित,
मञ्जुल—मानस—मराल
मुनि ज्ञानसुन्दर।

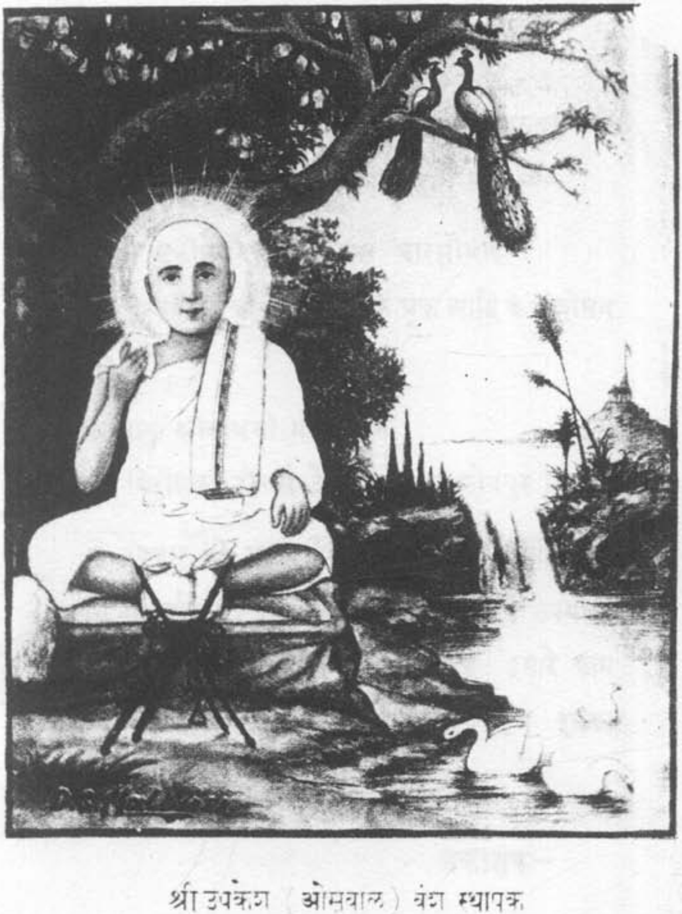

श्री उपकेश (ओसवाल) वंश स्थापक
जैनाचार्य श्री रत्नप्रभसूरिजी महाराज।

Lakshmi Art Bombay, 8.

सहायतार्थ धन्यवाद।

हम बड़े कृतघ्नी होंगे यदि इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ द्रव्य आदि की सुविधा कराने वाले---

श्रीमान् मुनीमजी भगवानदास पारसीभाई

तथा इस पुस्तक के कतिपय फर्मों के प्रूफ आदि के संशोधन करनेवाले-

श्रीमान श्रीनाथजी मोदी जैन,

निरीक्षक, टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल. जोधपुर।

के उपकार को भूल जाँय। उपरोक्त दोनों महाशयों ने अपने परामर्श द्वारा इस ग्रंथ को आकर्षक एवं उपयोगी बनाने में अपने अमूल्य समय का व्यय कर हमारे काम में जरूरत के समय हाथ बटाया है अतएव हम इनका आभार मानते हैं।

प्रकाशक-

समर्पण—

वाम्में,

०० पूज्यपाद् प्रातःस्मरणीय परम योगीराज
मुनिवर्य श्री रत्नविजयजी महाराज ।

पूज्य गुरुवर,

जिस उज्ज्वल उद्देश को सिद्ध करने के लिये आपने दस वर्ष की वयस में ही आदर्श वीर पुरुष की तरह निर्भीकता पूर्वक सांसारिक कुवृत्तियों से मुँह मोड़ा था उस उद्देश को सिद्ध करने का मार्ग आपने पूरे अट्ठारह वर्ष के घोर प्रयत्न के पश्चात् प्राप्त किया। फिर शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीमान् विजयधर्म सूरीश्वरजी के चरण सरोज में रहकर जिस उत्कण्ठा से आपने चञ्चरीकवत् सत्यता का मार्ग अनुसरण किया। बड़ी कृपाकर आपने मुझ जैसे पामर प्राणी को उस पथका अवलम्बी बनाया।

पूज्यवर! आपने मिथ्यात्व के राह पर भटकते हुए जिस पथिक को शुद्ध समकित–मार्ग का पथिक बनाया है तथा आपने जिस अनुचर को ज्ञानामृत का पान करा उसके हृदयके संदेहों को दूर किया है उसीकी एक कृति का यह प्रथम प्रयास भक्ति और श्रद्धा सहित आप ही की सेवा में समर्पित है।

विनीत—

ज्ञानसुन्दर।

प्रातःस्मरणीय परमयोगी निस्पृही,

मुनि श्री रत्नविजयजी महाराज ।

आनंद प्रिं. प्रेस–भावनगर.

(प्रथम आवृत्ति)

आभार प्रदर्शन ।

जिन जिन महानुभावोंने ज्ञान प्रचार के उद्देश से इस ग्रंथ को प्रकाशित करने में द्रव्य प्रदान कर अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करते हुए हमें आर्थिक सहायता दी है उनको हम हृदय से शतशः धन्यवाद देते हैं। उन्हीं की कृपासे हम यह पुस्तक इस प्रकार से विस्तृत रूपमें प्रकाशित कर सके हैं—उनके शुभ नाम आभार सहित नीचे प्रकाशित किये जाते हैं—

सुनहरी नामावली !

द्रव्य	शुभनाम	स्थान
५००)	शाह तेजमालजी आलमजी	मादड़ी
२५०)	शाह छजमलजी कपूरचन्दजी	,,
२५०)	शाह तीलोकचन्दजी कूनणमलजी	,,
२५०)	शाह शोभाचन्दजी कनीरामजी पण्डिया	,,
१२५)	शाह दलीचन्दजी तेजमालजी भण्डारी	,,
१२५)	शाह भूरमलजी पूनमचन्दजी	,,

१२५)	शाह नवलाजी दीपाजी	सादड़ी
०१)	शाह नथमलजी गंगारामजी	,,
१०१)	शाह चुनिलालजी सहसमलजी टीपरीवाले	,,
१०१)	शाह खेमाजी रजाजी	,,
१००)	शाह मगनीरामजी चतराजी	,,
१००)	शाह दीपचन्दजी तलाजी	,,
१००)	शाह प्रेमचन्दजी पुखराजजी भण्डारी	,,
८१)	शाह माणकचन्दजी केसुरामजी	,,
७१)	शाह किसनाजी डूंगाजी भानपुरावाला	,,
६१)	शाह सागरमलजी दलीचन्दजी	,,
५१)	शाह उदयरामजी वनाजी	,,
५१)	शाह सागरमलजी टेकाजी	,,
५१)	शाह खीमराजजी पुनमचन्दजी	,,
५०)	शाह हीमतमलजी जवानमलजी	,,
४१)	शाह हीमतमलजी तीलोकचन्दजी	,,
३१)	शाह चुनिलालजी पुनमचन्दजी	,,
३१)	शाह सरदारमलजी हरषचन्दजी	,,
३१)	शाह गुलाबचन्दजी चतरिंगजी	,,
२५)	शाह अनराजजी गणेशमलजी	,,
२५)	शाह गुलाबचन्दजी उमाजी	,,
२५)	शाह अनोपचन्दजी संतोषचन्दजी	,,
२५)	शाह लालचन्दजी गोमाजी	,,
२५)	शाह छुजमलजी चनणमलजी भण्डारी	,,

२५) शाह हीराचन्दजी रूपचन्दजी हाथियोंकीपाटी सादड़ी
२५) शाह हंसराजजी दीपचन्दजी ,,
२५) शाह लालचन्दजी हजारीमलजी ,,
२५) शाह नथमलजी मगनीरामजी बीदामीया ,,
२५) शाह गंगारामजी हंसराजजी ,,
२५) शाह भीखमचन्दजी खुडालावाला (कसीबाई) ,,
२५) शाह सीरीचन्दजी दीपचन्दजी ,,
२५) शाह नाथाजी उदाजी ,,
२५) शाह नथमलजी हाथीजी ,,
२५) शाह गुमानचन्दजी देवाजी ,,
२५) शाह गुमानमलजी उमेदमलजी ,,
२५) शाह गुलाबचन्दजी की बहु आतियाबाई ,,
२५) शाह गेनमलजी पुनमचंदजी ,,
२५) शाह कुनणमलजी हीराचन्दजी राणीगांववाले
२५) मुत्ता गणेशमलजी बीसलपुरवाले
२१) शाह वीरचन्दजी राजंगजी सादड़ी
२१) शाह पुनमचन्दजी वेलाजी ,,
२० शाह चैनमलजी खूमाजी ,,
१९) शाह रूपचन्दजी पृथ्वीराजजी ,,
११) शाह अनराजजी छुजमलजी ,,
११) शाह केसुरामजी हजारीमलजी ,,
११) शाह बक्षराजजी केसरीमलजी ,,
११) शाह अखेचन्दजी डाहाजी ,,

११)	शाह धनराजजी खेमराजजी	सावकी
११)	शाह हेमराजजी पनेचन्दजी लोढा	,,
११)	शाह तीलोकचन्दजी गोमाजी	,,
११)	शाह किसनाजी वछराजजी	,,
११)	शाह सरदारमलजी मनाजी	,,
११)	शाह गुमानचन्दजी नीहालचन्दजी धोखा	,,
१०)	मुत्ता मेघराजजी अनराजजी	,,
१०)	शाह हीराचन्दजी रूपचन्दजी	,,
१०)	शाह गुलाबचन्दजी खेमराजजी	,,
१०)	शाह सूरजमलजी गिरनारजी	,,
१०)	शाह अनोपचन्दजी जैकरणजी	,,
१०)	शाह लालचन्दजी नथमलजी नागोरियाँकीपाटी	,,
७)	शाह देवीचन्दजी धूलाजी	,,
७)	शाह गुलाबचन्दजी जवानमलजी	,,
५)	शाह शोभाचन्दजी पीथाजी	,,
५)	शाह चूनीलालजी हजारीमलजी	,,
५)	शाह चतुर्भुजजी गोड़ीदासजी	,,
९)	शाह पृथ्वीराजजी मादाजी	,,
९)	पण्डित सिद्धकरणजी	,,
९)	शाह तीलोकचन्दजी भगाजी	,,
९)	शाह प्रेमचन्दजी सहसमलजी	,,
९)	शाह गुलाबचन्दजी अगरचन्दजी धोखा	,,
५)	शाह खीमराजजी टेकचन्दजी	सादड़ी

५) शाह देवीचन्दजी नवलाजी	,,
५) शाह हीराचन्दजी हीमतमलजी	,,
५) राकूबाई	,,
५) शाह मूलचन्दजी पुनमचन्दजी	,,
५) शाह कर्मचन्दजी मूलचन्दजी	,,
५) शाह भीखमचन्दजी सूरजमलजी	,,
५) शाह ओटरमलजी छजमलजी	,,
५) शाह लुंबचन्दजी रायचन्दजी	,,
५) शाह जसराजजी पुनमचन्दजी	,,
५) शाह रूपचन्दजी नेमीचंदजी	,,
५) शाह चूनीलालजी भक्तिदासजी	,,
५) शाह उमेदमलजी फौजाजी	,,
५) शाह भभूतमलजी हस्तीमलजी	,,
५) शाह इन्द्रचन्दजी पुनमचन्दजी	,,
५) बाई प्यारी बाली बाली	,,
५) शाह धीरजमलजी पुनमचंदजी	,,
५) शाह चूनीलालजी हीराचन्दजी	,,
५) शाह मुलतानमलजी भूरमलजी	,,
५) शाह लुंबाजी केशींगजी बीजापुरवाला	,,

३६६४)

सहर्ष धन्यवाद ।

श्री लुणावा श्री संघ की ओरसे पुस्तक प्रचार फण्ड में जो द्रव्य सहायता मिली है उसे सहर्ष स्वीकार कर के धन्यवाद के साथ उन ज्ञानप्रेमियों की शुभ नामावली यहाँ प्रकाशित की जाती है। आशा है कि अन्यश्रीमान लोग भी इन का अनुकरण कर अपनी चञ्चल लक्ष्मी ऐसे पवित्र कार्यों में सद्उपयोग कर अनन्त पुन्योपार्जन करेंगे।

२७५)	शाह ऊमाजी नवलाजी	लुणावा
१२५)	शाह रिषबदासजी चुनिलाल दोलाजी	,,
१११)	शाह चैनमलजी हीराजी	,,
१०१)	शाह केसाजी जसाजी—भीमाजी	,,
१०१)	शाह चतराजी उदेचन्दजी जुहारमलजी कस्तुरचंदजी	
१०१)	शाह गोमराजजी गुमनाजी	,,
१०१)	शाह वागमलजी पवीचन्दजी वीसाजी	,,
१०१)	शाह वीरचन्दजी पोकरचंदजी ऊमाजी	,,
८१)	शाह रूपचन्दजी खीमराजजी पेमचन्दजी	,,
८१)	शाह रतनचन्दजी हिम्मतमलजी चुन्निलालजी भूताजी	
८१)	शाह धूलाजी भीखमचंद फोजमल, भगाजी	,,

६१)	शाह कस्तूरचन्दजी अचलदासजी उदैचन्दजी	लुणा
११)	शाह मनाजी कस्तूरचन्दजी चेलाजी	,,
२५)	शाह नेनमलजी रूपाजी	,,
२५)	शाह गुलाबचन्दजी प्रेमचन्दजी	,,
२५)	शाह नेनमलजी केरींगजी	,,
२५)	शाह दलीचन्दजी भैराजी	,,
२५)	शाह मगनाजी नाथुजी	,,
२५)	शाह कस्तूरचन्दजी हेमाजी	,,
२५)	शाह डाहामलजी लखमीचंदजी मोटरमलजी	,,
२१)	शाह जसाजी नवलाजी [खुशालजी	,,
२१)	शाह प्रेमचन्दजी सरदारमल सहसमल [हंसाजी	,,
२१)	शाह हजारीमलजी कुपाजी	,,
२१)	शाह भागचन्दजी धूलाजी	,,
२१)	शाह लुम्बाजी धूलाजी	,,
२१)	शाह हीराचन्दजी नाथुजी	,,
२१)	शाह भीखमचन्दजी जसाजी	,,
२१)	शाह मनरूपजी जेठमलजी धूलाजी	,,
२१)	शाह जोगाजी मोतीजी	,,
२१)	शाह पूनमचन्दजी प्रेमचन्दजी	,,
२०)	शाह हंसाजी डुंगाजी	,,
११)	शाह सबाजी भगाजी	,,
११)	शाह सरदारमल कपूरचन्द दुरगाजी	,,

११)	शाह उदैचन्दजी पाताजी	लुणावा
११)	शाह रिखबाजी पूनमचन्दजी	,,
७)	शाह वेलचन्दजी फोजाजी	,,
७)	शाह उम्मेदमलजी मगनीरामजी	,,
७)	शाह झवेरचन्दजी नरसिंहजी	,,
५)	शाह गणेशमलजी देवीचन्दजी	,,
५)	शाह भागचंदजी नाथुजी	,,

१८३१) कुल— इस द्रव्य की सहायतासे

१००० नयचक्रसार हिन्दी भाषान्तर

२००० दो विद्यार्थियों का संवाद

५०० प्राचीन छन्द गुणावली भाग तीसरा

१००० प्राचीन छन्द गुणावली भाग चोथा

४५०० प्रतिऐं छप चुकी हैं ।

शेष छप रही हैं शीघ्र ही प्रकाशित होंगी ।

अन्य पुस्तकें प्रकाशित करने के लिये दानवीर विद्या-
प्रेमियों की तरफ से हमें विशेष द्रव्य सहायता
मिली है। हम सहर्ष उन का उपकार
मानते हैं और धन्यवाद के
साथ उन की नामा-
वली यहाँ प्रकाशित
करते हैं।

२००) एक गुप्त दानवीर की ओर से।

२५०) शाह दीपचन्दजी लाभचन्दजी वैद (फलोधी)
धमतरी (जिला रायपुर सी. पी.) वाले।

१३०) शाह प्रेमचन्दजी गोमाजी बाली वाले।

५०) शाह गंगारामजी तारूजी बाली वाले।

१५०) शाह जीवराजजी मोहनलालजी बाली वाले।

८००) (समवसरण प्रकरणकी छपाई)

'प्रकाशक'

वीर संवत् ४०० वर्ष तक।

"जैन जाति महोदय" नामक प्रस्तुत पुस्तक लिखने का खास उद्देश तो जैन जातियों की उत्पति से लेकर जैन जातियों के महोदय समयका इतिहास लिखने का था पर जैसे जैसे इतिहास की सामग्री अधिकरूप में प्राप्त होती गई वैसे वैसे मेरे विचारों में भी वृद्धि होती गई। यहाँ तक कि जिस इतिहासको १००० पृष्टों में समाप्त करने का विचार था आज उसके लिये ५००० पृष्टोंकी अवश्यक्ता प्रतीत होने लगी है इस कारण से इस वृहन् ग्रन्थ के चार खण्ड करने की अनिवार्य आवश्यक्ता हुई है इस प्रथम खण्डमें जैन जातियों की उत्पति व अठारह गौत्रोंके अतिरिक्त जैनधर्मकी प्राचीनता, चौवीस तीर्थंकरों का जीवन, पार्श्व पट्टावली, वीर वंशावली, जैनधर्म का प्राचीन इतिहास और कलिङ्ग देश का इतिहास अर्थात् वीर संवत् ४०० वर्षो तक के इतिहास में ही १००० पृष्ट लिखे जा चुके हैं इसलिये शेष जैन जातियोंकी उत्पति व उनके शूरवीर दानवीर नर रत्नोंका प्रमाणिक इतिहास क्रमशः दूसरे खण्डो में लिखा जा रहा है उम्मेद है कि इसको पठन श्रवण मनन करने से अपने पूर्वजों के गुण गौरव और वीरता का सञ्चार जैन जातिके आधुनिक युवकों के हृदय में अवश्य होगा पर इन सब खण्डो के लिये हमारे पाठकों को स्वल्प समय के लिये धैर्य रखना होगा जहाँतक बन सकेगा यह कार्य शीघ्रता पूर्वक तथा इससे भी बढ़िया ढंगसे किया जायगा.

'लेखक'–

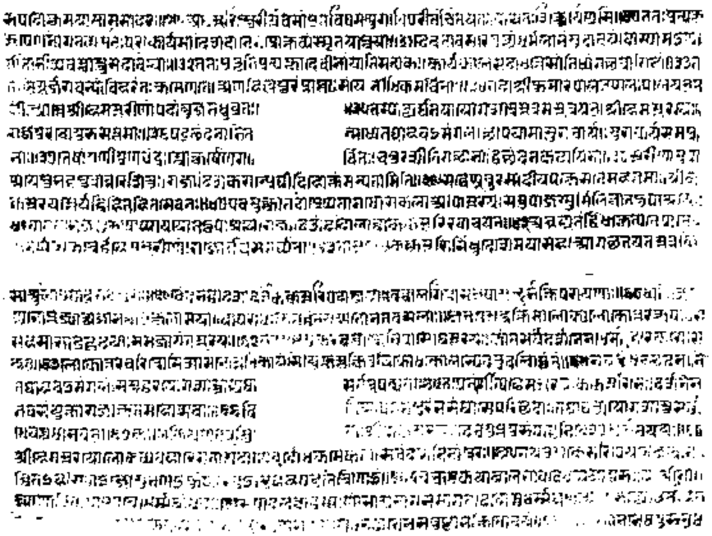

वि. सं. १३९३ का लिखा हुआ यह उपकेशगच्छ चरित्र है।

जैन जाति महोदय लिखनेमें इसकी विशेष सहायता ली गई है।

Lakshmi Art, Bombay, 8

प्रस्तावना

इतिहास के बिना कोई जाति, समाज या राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। यह बात अक्षरशः सत्य एवं तथ्य है। यदि किसी सभ्य समाज की उन्नति का कारण मालूम करना हो तो बिना उस के इतिहास को देखे कोई नहीं जान सकता। जिस जाति का इतिहास अप्रकट होगा वह जाति अधिक दिन तक संसार में नहीं टिक सकेगी। अतएव इतिहास का प्रकाशित होना नितान्त आवश्यक है।

इतिहास के अध्ययन ही से हम जाति, समाज और राष्ट्र के उत्थान और पतन के कारणों को जान कर उस की रक्षा में तत्पर रह सकते हैं। इस से सिद्ध होता है कि साहित्य में इतिहास का स्थान बहुत उच्च है। यही साहित्य का मुख्य अङ्ग है, इस के बिना तो साहित्य अधूरा और अपूर्ण है। बिना इतिहास के अध्ययन के हम यह कदापि नहीं जान सकते कि किन किन कारणों से जातियाँ एवं देशों का अभ्युदय और अधःपतन होता है।

इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मैकाले का कथन ध्यान पूर्वक मनन करने योग्य है। ये लिखते हैं:—

" A people which takes no pride in the noble hievements of remote ancesters will never achieve anything worthy to be remembered with pride by remote descendents. " अर्थात् जो जाति अपने पूर्वजों के श्रेष्ठ कार्यों का अभिमान और स्मरण नहीं करती वह ऐसी कोई बात ग्रहण न करेगी जो कि बहुत पीढी पीछे उन की संतान से सगर्व स्मरण करने योग्य हो ।

उपर्युक्त बात को सिद्ध करने के हेतु मैं बहुत लम्बे चौड़े विवेचन करने की कोई आवश्यक्ता नहीं समझता हूँ कारण कि प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति से यह बात छिपी हुई नहीं है कि इतिहास ही साहित्य का उच्च और आवश्यक अङ्ग है । यदि अवनति के राह में जाती हुई जातियें या राष्ट्र पुनः उत्थान की ओर अग्रसर होना चाहें तो सिवाय इतिहास के आदर्श को समझने के और कोई साधन है ही नहीं । अतएव उन्नति या अभ्युदय के हेतु अपने इतिहास को जानना प्रत्येक देश या समाज के लिये अनिवार्य है । केवल इतिहास ही ऐसा उपकरण या साधन है जिससे हमें विदित होता है कि किन किन कामों के करने से एक जाति या राष्ट्र का अभ्युदय वा पतन होता है । जब तक अभ्युदय और पतन होने के कारणों का ज्ञान न हो तब तक यह असम्भव है कि कोई अभ्युदय के मार्ग का पथिक बने या पतन के पथ से बच जाय ।

इतिहास ही एक सच्चा शिक्षक है जो उचित पथ प्रदर्शन

का स्तुत्य एवं प्रशंशनीय कार्य करता है अन्यथा इस के अभाव में भविष्य की राह में ऐसी ऐसी उलझनें उपस्थित होती हैं कि जिनसे पिण्ड छुडाना दुष्कर हो जाता है। इतिहास के भूत द्वारा वर्तमान में ही हमें भविष्य का भान हो जाता है, इस से अधिक हम और क्या चाह सकते हैं। हमारे लिये केवल एक इतिहास ही उत्तम साधन है जिस के मनन के फळ स्वरूप यदि हम चाहें तो अपने भविष्य को उज्ज्वल बना सकते हैं।

इतिहास से ही हमें मालूम हो सकता है कि हमारा अतीत कैसा था ? तब जातियाँ की नैतिक, सामाजिक और धार्मिक प्रवृति कैसी थी तथा किन किन परिस्थितियाँ में किस प्रकार जातियाँ का निर्माण हुआ था। किस किस जातिने चरम सीमा तक उन्नति की तथा किन किन वीर पुरुषों ने कब देश, समाज, धर्म और जाति के लिये अपना सर्वस्व तक बलिदान कर दिया जिस के कारण कि उनकी कमनीय कीर्ति विश्वभरमें फैल गई थी। प्राचीन काल का आचार, विचार, आहार, कला कौशल व्यापार, सभ्यता एवं विविध भांति से किस प्रकार जीवन निर्वाह तथा आत्मकल्याण होता था आदि आदि बातों का ज्ञान इतिहासद्वारा ही होता है। हम अपने पूर्वजों की शूरता, वीरता, गंभीरता, धीरता, महत्ता, परोपकारिता और सहनशीलता का ज्ञान इतिहास के द्वारा ही जान सकते हैं।

किसी देश या जाति के निर्माण का समय या उसके पतन का बीजारोपण किस प्रकार हुआ वा धर्म तथा समाज की शृङ्खला

कब और किस कारण से शिथिल हुई, जातियों का पारस्परिक भेद भाव का विषैला अंकुर कब वपन हुआ, फूट आदि दुर्गुण कब और कैसे फैल कर किस जाति या समाज को किस प्रकार अवनति के गहरे गड्ढे में डाल गये इत्यादि भिन्न भिन्न बातों का ज्ञान केवल इतिहास के द्वारा ही हो सकता है जिनके जाने बिना समाज और धर्म में फैली हुई विषमता किसी भी प्रकार दूर नहीं की जा सकती। इससे और ऐसी ही अनेक बातों के कारण यह सिद्ध होता है कि इतिहास का होना तथा उसका जानना सब के लिये बहुत जरूरी है।

यह कथन सर्वथा तथ्य है कि यदि किसी देश को नष्ट करना हो तो उसका इतिहास नष्ट कर देना ही पर्याप्त है। यही कारण है कि भारत की यह अधोगति हो रही है। इसका इतिहास अंधेरे गर्त में अप्रकटरूप में पड़ा है अतएव भारत की जैसी कद्र होना चाहिये आज विश्व में नहीं होसकी। भारत का सच्चा इतिहास आज अप्रकट तथा काल के गर्भ में है। जिस दिन भारत का सच्चा इतिहास प्रकट होगा भारत के पराधीनता बंन्धन पलभर में ढीले पड़ जावेंगे और यह स्वतंत्रता का सुख सहज ही में प्राप्त कर सकेगा।

किन्तु जब हम जैनियों के इतिहास की ओर दृष्टिपात करते हैं तो कुछ कहते ही नहीं बनता। जैन धर्म के विषय में तथा जैन जाति के बारे में ऐसी ऐसी भ्रमपूर्ण कल्पनाएं और विभिन्न मत विश्व भर में फैले हुए हैं कि जिनके कारण जैन जाति और जैन धर्म का महत्व बिलकुल अंधेरे में है। संसार के सामने जैनियों

का सत्य और सम्पूर्ण इतिहास नहीं रखा गया इसी कारण से आज तरह तरह के आक्षेप चारों ओर से सुनाई देते हैं। जैन धर्म का वास्तविक सिद्धान्त क्या है यह लोगों को मालूम नहीं। अतएव नितान्त आवश्यक है कि जैनियों का इतिहास संसार के समक्ष उपस्थित किया जाय और शीघ्र उपस्थित किया जाय। जब तक जैनियों का इतिहास संसार के सामने न आयगा, जैन धर्म के प्रति फैले हुए भ्रमपूर्ण विचार दूर नहीं होंगे तथा जैन धर्म का महत्व कोई न मानेगा। अगर हम चाहते हैं कि इस पवित्र और पुनीत जैन धर्म के झंडे के नीचे आकर प्रत्येक प्राणी सुख और शांति प्राप्त करे तो हमारे लिये यह आवश्यक होगा कि हम जी जान से इस कार्य में तल्लीन हो जांय कि संसार के सामने हमारे इतिहास को शीघ्रातिशीघ्र उपस्थित कर जैन धर्म के महत्व को प्रकट करें।

यदि जैन धर्म या जैन जाति के इतिहास का संग्रह करने में हमने उपेक्षा की तो हमारे सदृश और कोई कृतघ्नी नहीं होगा जो इस सोध और अनुसंधान के वैज्ञानिक युग में भी खुर्राटे लेकर कुम्भकर्ण बनें। आज जैनियों की सब से पहली आवश्यक्ता यह है कि वे अपना इतिहास असली रूप में संसार के सामने उपस्थित करें। यदि वे चाहते हैं कि हमारा भी अस्तित्व संसार में कायम रहे तो उनके लिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है कि अपने इतिहास की सामग्री के जुटाने के लिये वे कार्य क्षेत्र में कमर कस कर काम करने को तैयार हो कर लग्गा लगा दें।

अब वह दिन नहीं रहे कि कोई दैवी घटनाओं पर अंध-विश्वास करले। " बाबा वाक्यं प्रमाणं " का सिद्धान्त अब नहीं चलनेका। इस विज्ञान के युग में प्रत्येक बात कसौटी पर कस कर दिखानी होगी। प्रकृति के नियमों से प्रतिकूल या मानवी शक्ति से अकरणीय बातों का जब तक दार्शनिक प्रमाण उपस्थित नहीं किया जायगा हमारी बातों को कोई स्वीकार करने को तैयार नहीं होगा। अतएव यह आवश्यक है कि जैन जाति और जैन धर्म की जो बातें हमारे कथानकों आदि में प्रचलित हैं उन्हें निम्न लिखित सात प्रकार से प्रमाणित कर के दिखाया जाय। ऐसी दशा में जब कि सब हमारी बातें सत्य और सही हैं हमें किसी मार्ग से सिद्ध करने में बाधा उपस्थित नहीं करेगी। सची और खरी बात जितनी कसौटी पर परखी जायगी उतनी ही अच्छी। केवल हमारे शास्त्र में लिखी बातों को हमारे सिवाय कोई मानने को तैयार नहीं हैं अतएव जरूरी है कि हम निम्न लिखित आधारों द्वारा हमारी प्रत्येक बात को सिद्ध करदें फिर संदेह करने का स्थान ही न रह सकेगा—

(१) उस समय के प्रामाणिक शिलालेख।
(२) ,, ,, ,, ,, ताम्रपत्र।
(३) ,, ,, ,, ,, सोने और चांदी के सिक्के।
(४) ,, ,, ,, ,, ग्रन्थ।
(५) ,, ,, ,, पुरातत्व सम्बन्धी ध्वंस खंडहर आदि।
(६) ,, ,, ,, मूर्त्तियाँ तथा अन्य पदार्थ।
(७) ,, ,, ,, आसपास के बने ग्रंथ।

ऐतिहासिक खोज से आधुनिक ये ७ साधन थोड़े बहुत प्रमाण में विद्यमान हैं जिन के आधार पर जो इतिहास लिखा जाता है वही संसार में सर्व मान्य होता है। उपरोक्त साधनों का हवाला जिस ऐतिहासिक ग्रंथ में होता है उस में संदेह को स्थान नहीं मिलता है तथा वह ग्रंथ सत्य माना जाता है।

भारत वर्ष के इतिहास के लिखने में विक्रम संवत् से आठ सौ नौ सौ वर्ष पूर्व से आज तक का वर्णन तो उपरोक्त सातों साधनों के आधार पर लिखा गया है तथा इस से पहले का इतिहास अतीत के शीर्षक से केवल ग्रंथों के आधार पर ही लिखा गया है। उपर्युक्त सातों साधनों के अभाव में विवश होकर पुराने ग्रंथों का ही सहारा लेना पड़ता है।

जैन धर्म का सर्वमान्य इतिहास भारत की तरह विक्रम पूर्व की आठवीं नौवीं सदी से प्रारम्भ होता है जिस समय कि एक महापुरुष भगवान पार्श्वनाथ स्वामी जगत् के कल्याण करनेवाले उत्पन्न हुए थे। कितनेक विद्वानों की खोज और अनुसंधान से कुछ समय इस से पहले भगवान् नेमीनाथ स्वामीके समय का इतिहास भी उपलब्ध हुआ है जो श्री कृष्णचन्द्र और अर्जुन आदि के समकालीन हुए हैं। इन की गणना भी आधुनिक ऐतिहासिक पुरुषों में हो चुकी है। इन से पहले की ऐतिहासिक सामग्री जो उपलब्ध है वह पुराने जैन ग्रंथों के आधार पर ही लिखी हुई है। उन प्राचीन शास्त्रों के लिखने के समय तथा उन में वर्णन की हुई घटनाओं के समय में बहुत

वर्षों का अन्तर है अतएव उन की ऐतिहासिक प्रामाणिकता केवल एक इसी बात पर निर्भर एवं अवलम्बित हैं कि वे घटनाएँ प्रकृति के नियमानुकूल सम्भवित हों। उपर्युक्त सिद्धान्त को लक्ष में रख के लिखा हुआ इतिहास में इस बात का संशय उत्पन्न नहीं होता कि ये ऐतिहासिक सत्य घटनाएँ नहीं हैं अपितु केवल ऐसे शास्त्रों के साधन द्वारा ही हम अपने अतीत के इतिहास को जान सकते हैं। बड़ी मूर्खता होगी यदि हम इस प्रकार के उपलब्ध हुए प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों में कथित प्राकृतिक सम्भवित बातों के द्वारा अपने प्राचीन इतिहास का निर्माण न करें। केवल यही एक साधन उपस्थित है जिसके द्वारा हम अपने प्राचीन गौरव को ग्रहण करने में समर्थ होते हैं अतएव इस प्रकार का सहारा हमारे लिये परमोपयोगी है।

सब से पहले यह जानना आवश्यक है कि जैन धर्म का इतिहास कब से आरम्भ होता है ? इस सम्बन्ध में इस ग्रंथ के प्रथम खण्ड के द्वितीय प्रकरण के प्रारम्भ में समय का निश्चय किया गया है उस के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी के प्रारम्भ से भगवान ऋषभदेव के समय से हमारा वर्तमान इतिहास प्रारम्भ होता है। तब मे आज तक को सर्व मान्य प्रामाणिक इतिहास का प्रगट करने की मेरी इच्छा कई दिनों से थी। किन्तु यह एक कोई साधारण कार्य नहीं था कि सहसा प्रारम्भ कर दिया जाता। मैंने जैन धर्म और जैन जाति के इतिहास को लिखने का कार्य शुरु किया और " जैन जाति महोदय " नामक

ग्रंथ विस्तृतरूप में तैयार करने के लिये तद् विषयक अध्ययन प्रारम्भ किया जिस के फलस्वरूप इस ग्रंथ का प्रथम खण्ड पाठकों के सन्मुख रखता हूँ। इस खण्ड में छ प्रकरण हैं। शेष उन्नीस प्रकरण दूसरे, तीसरे, और चौथे खण्ड में क्रम से प्रकाशित होंगे।

"जैन जाति महोदय" नाम इस ग्रंथ का इस कारण से रखना उचित समझा गया कि जैनियों की जातियों ने समय समय अपना अभ्युदय इतना किया कि वे विश्वव्यापी तक बन गई। प्रारम्भ में जैनियों का इतिहास भगवान ऋषभदेव स्वामी से शुरु होता है। ऋषभदेव जिनका एक नाम आदिनाथ भी है क्या हिन्दू और क्या मुसलमान इन्हें जगत् पूज्य परमेश्वर मानते हैं। हिन्दू धर्म के सर्व मान्य ग्रंथ श्रीमद्भागवत पुराण के दसवें स्कंध में भगवान ऋषभदेव का विस्तृत वर्णन उल्लेख किया हुआ है। मुसलमान लोग इन्हें 'आदिम बाबा' के नाम से पुकारते हैं। 'आदिम' से उनका मतलब इन्हीं आदिनाथ या ऋषभ देव से है। पुराण और कुरान से भी जैन शास्त्र बहुत पुराने है जिन में ऋषभदेव को प्रथम तीर्थंकर माना है। अतएव ऋषभदेवस्वामी को हिन्दू और मुसलमानों ने भी अपनाया है।

भगवान ऋषभदेव से लेकर नव में तीर्थंकर सुविधिनाथ के शासन तक तो सारे विश्व का एक ही जैन धर्म था। उस के बाद ही काल की कुटल गति के प्रताप से अनेक मत मतान्तर उत्पन्न हुए और लुप्त भी होते गये या उनके स्थान में फिर दूसरे नये मतों का प्रादुर्भाव होता गया। समाज शृंखलना शिथिल पड़ी। उस समय

में वर्ण व्यवस्था की भी आवश्यक्ता प्रतीत हुई और क्रमसे चार वर्ण स्थापित हुए—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। किन्तु समयान्तर में इन की व्यवस्था में जमीन आसमान का फरक पड़ गया। एक वर्ण अधिकारी तो दूसरा सेवक समझा जाने लगा। जिस समता के उद्देश से सामाजिक कार्य को सहयोग द्वारा सम्यक् रीति से चलाने के लिये वर्ण व्यवस्था की गई थी वह विषमता के कारण सामाजिक दशा को शिथिल कर उस के हेतु घुनरूप हो गई। अतएव एक समय एक ऐसे वीर पुरुष के अवतारित होने की आवश्यक्ता उत्पन्न हुई जो जाति पांति के भेद भाव को मिटा कर समाज को पुनः साम्यता का स्वाद चखादे। तदनुकूल भगवान महावीरस्वामी का जन्म हुआ और उन्हों ने धर्माधिकार के लिये ऊँच नीच के भेद भाव को मिटाकर एक वार फिर से साम्यता द्वारा सुख और शान्ति प्रचार करने का प्रयत्न किया। उन्हों ने अपने देशनामृत का पान करा कर सहज ही में सब को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। जातियों की जंजीरों से जकड़ी हुई समाज पारस्परिक भेद भाव को भूल गई फिर तो इस प्रकार से एक्यता के सूत्र में सम्मिलित होने के लिये केवल साधारण जनता ही नहीं किन्तु कई राजा महाराजा भी प्रवृत्त हुए। अंग, बंग, कोशल, कुनाल और कलिङ्ग प्रान्त में आपका संदेश बात ही बात में सर्वत्र फैल गया और जनता जैन धर्म के झंडे के नीचे विपुल संख्या में एकात्रित होने लगी। 'अहिंसा परमो धर्म' की ध्वनि चहुँ ओर सुनाई देने लगी। हृतंत्री पर इसी का नाद होने लगा।

फिर भगवान महावीरस्वामी के निर्वाण के ३०-४० वर्ष पश्चात् आचार्य स्वयंप्रभ सूरि और आचार्य श्री रत्नप्रभ सूरि हुए जिन्होंने मरुस्थल में पदार्पण कर वाममार्गियों के व्यभिचार रूपी किले का विध्वंस कर 'महाजन संघ' की स्थापना की। इस संघ के व्यक्तियों के हृदय की विशालता इतनी थी कि वे निसंकोच भाव से किसी भी जैनी के साथ भोजन ही नहीं कर लेते थे अपितु परस्पर विवाह शादी भी कर लेते थे। वे अपने स्वधर्मी भाई को प्रत्येक तरह से सहायता देते थे। ज्यों ज्यों महाजन संघ का विस्तार होता गया त्यों त्यों पूर्व जातिय बंधनो की श्रृङ्खला टूटती गई और पारस्पारिक सहानुभूति तथा सहयोग निरन्तर बढ़ता गया। जो शक्ति जातीय विभागों के कारण पृथक २ थी वह एक्यता के सूत्र में संयोजित हो गई।

महाजन संघ की बढ़ती दिन प्रतिदिन उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती रही। समयान्तर में यही महाजन वंश उपकेशनगर के नाम से उपकेश वंश, श्रीमालनगर से श्रीमालवंश तथा पद्मावती नगरी के नाम से प्राग्वट वंश, इस प्रकार के तीन वंशों के नाम द्वारा प्रसिद्ध हुआ यद्यपि नगर के नाम पीछे इन के वंश भिन्न समझे जाने लगे किन्तु परस्पर भोजन व्यवहार व विवाह सम्बन्ध आदि उसी प्रकार प्रचलित था। इस प्रकार ये तीनों वंश व्यवहारिक रीति से एक ही थे। जैनाचार्य भी इस वंश की वृद्धि करने में हर प्रकारसे तत्पर थे वे समय समय पर मिथ्यात्वियों को प्रतिबोध दे दे कर उन्हें जाति के बंधनों से उन्मुक्त कर वासक्षेप डाल जैन धर्म

स्वीकार करा महाजन संघ में सम्मिलित करा देते थे। उसी प्रकार निरन्तर उद्योग के फलस्वरूप जो जाति लाखों की संख्या में थी वह क्रोडों की संख्या तक पहुँच गई। महाजन संघ की जन संख्या इतनी बढ़ी कि प्रत्येक वंश में कई शाखा प्रशाखाएँ हो गईं। कालान्तर इस प्रकार महाजन वंश भिन्न भिन्न शाखाओं में बँट गया। प्रत्येक शाखा बाद में एक पृथक जाति समझी जाने लगी। सब अपनी अपनी जाति को ऊँचा सिद्ध करने लगे और इस प्रकार जाति भेद भाव का विषैला भाव महाजन संघ में फैल गया। वास्तविक प्रत्येक जाति अभिमान में अंधी हो गई।

इस प्रकार की फूट फजीती का फल वही हुआ जो प्रायः ऐसे अवसरों पर होता है। प्रत्येक वंश वाले ही आपस में विवाह शादी आदि करने की आंतरिक अभिलाषा रखते थे। उपकेश वंशी लोग अपनी विवाह शादी यथा सम्भव उपकेश वंश ही में करना चाहते थे तथा इसी प्रकार श्रीमाल वंशी और प्राग्वट वंशी अपनी अपनी धुन में मस्त रहना चाहने लगे। पर यह नियम अनिवार्य नहीं था। उपकेश वंशी अपना विवाह शादी का सम्बन्ध श्रीमाल वंश आदि से भी रखते थे ऐसा ऐतिहासिक खोज से मालूम हुआ है विक्रम की दसवीं शताब्दी तक तो इनका पारस्परिक सम्बन्ध जारी था यह बात शिलालेख बताते हैं। वंशावलियों के देखने से मालूम हुआ है कि विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी तक महाजन संघ में कहीं कहीं इस प्रकार के पारस्परिक सम्बन्ध होते थे। इस समय के बाद में भाव

संकीर्ण होते गये और यहाँ तक नौबत आ पहुँची कि इन के पारस्परिक विवाह का सम्बन्ध टूट गया और आज भी वही सिलसिला जारी है " वही रफतार बेढंगी जो पहले थी सो अब भी है। "

रही बात पारस्परिक भोजन व्यवहार की सो तो अब इस में भी संकीर्णता फैल गई है। कई प्रान्तों में एक वंश वाले दूसरे वंश वाले के साथ भोजन नहीं करते। जिन प्रान्तों में पारस्परिक भोजन व्यवहार प्रचलित है वे विवाह आदि सम्बन्ध नहीं करते हैं। यही कारण है कि उच्च शिखर पर चढ़ी हुई जैन जाति आज निरन्तर अवनति की ओर अग्रसर हो रही है और आज इस जाति की दशा कितनी सोचनीय हो गई है इस का दिग्दर्शन इस पुस्तक में विस्ताररूप से कराया गया है।

जैन जाति-यह शब्द विशाल अर्थ रखता है इस के अन्तर्गत उपकेश वंश (ओसवाल) श्रीमाल वंश तथा प्राग्वट वंश (पोरवाल) के अतिरिक्त खंडेलवाल, बघेरवाल, अग्रवाल, डीसावाल, नाणावाल, कोरंटवाल, पलीवाल, बाघट, वायट, माढ, गुर्जर, खंडायत, गोरा, भावसार, पाटीदार आदि अनेक जातियाँ सम्मिलित हैं। जैन धर्म केवल इन उपर्युक्त जातियों में ही प्रसारित था सो बात नहीं है अपितु इस पवित्र धर्म के उपासक बड़े बड़े राजा महाराजा भी थे। यथाः—मौर्य वंश मुकुट मणि सम्राट् चन्द्रगुप्त—कलिंगाधिपति महामेघवाहन चक्रवर्ती खारवेल, परमार्हन् महाराजा सम्प्रति, महाराजा ध्रुवसेन,

शल्यादित्त आमराज, बनराज चावडा, राष्ट्रकूट अमोघवर्ष और परमार्हन महाराजा कुमारपाल आदि नृप तथा शिशुनागवंशी, चैत्र-वंशी, मौर्यवंशी, गुप्तवंशी, सेनवंशी, सुगवंशी, कदम्बवंशी कलचुरी वंशी, परमार, चौहान, राष्ट्रकूट (राठोड़) परिहार वंशी, चौलिक्य वंशी अनेक वीर पुरुष तथा भद्र महिलाओंने इस जैन धर्म को अपना कर इस के प्रचार करने का उद्योग भी उन्होंने किया था।

यह कथन भी अत्युक्ति पूर्ण न होगा कि विक्रमकी बाहरवीं शताब्दी तक अनेक प्रान्तों में जैन धर्म राष्ट्र धर्म था। जिस प्रकार से राजा और महाराजाओंने जैन धर्म के प्रचार करने में प्रयत्न किये थे उसी प्रकार महाजन संघ के अनेक वी-रोंने भी जी जानसे जैन धर्म के फैलाने में कोशिश की थी। उनके नाम हमारे इतिहास में सुवर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य है. ऐसे वीर पुरुष एक नहीं सैकडों समय समय पर हुए हैं जिन्होंने समय समय पर जैन धर्म के उत्थान करने में हाथ बँटाया था। देशल-शाहा, गोशलशाहा, सारंगशाहा, भैंसाशाहा, झगडूशाहा, सोमा-शाहा, समराशाहा, लूणाशाहा, कर्माशाहा, पाताशाहा, विमलशाहा, भैरुँशाहा, रामाशाहा, वीरवर वस्तुपाल तेजपाल मेहता, ठाकुरशी, तेजशी, रत्नशी, धर्मशी, भारमल्ल, भुजमल्ल, रणमल्ल और वीर भा-माशाह का नाम गौर्व के साथ लिया जा सकता है जिन्होंने जैन धर्म के प्रचार करने में असाधारण प्रयत्न कर दिखाए थे। ये नर-पुङ्गव देश, समाज, धर्म और जातिसेवा के ऐसे ऐसे अद्भुत और प्रभावशाली कार्य कर गये कि जिनके कारण इनका नाम

आज दुनियाँ के इतिहास में अमर हो गया है। इनका जो असीम उपकार विशेष कर जीतना जैन ज्ञातिपर हुआ है भुलाया नहीं जा सकता। और आगे के प्रकरणोंमें इनका इतिहास विस्तृत रूपमें लिखा जा रहाहै

आधुनिक समय में प्रत्येक समाज, देश, जाति और राष्ट्र के लोग इस चिन्ता में लगे हैं कि विश्व के सम्मुख अपना अपना ऐतिहासिक वर्णन खोज कर प्रकाशित किया जाय। इस कार्य में सब लोग तत्पर हैं और आए दिन नई नई खोजें कर अपने ऐतिहासिक संग्रह में निरंतर वृद्धि कर रहे हैं; वे ऐसा कोई प्रयत्न नहीं उठा रखते कि जिससे उनके इतिहास में कुछ वृद्धि होती हो। कहने का अर्थ यह है कि वे प्रत्येक रीति से इसी बात की चेष्टा में लगे हुए हैं। परन्तु खेद है और परम खेद है कि सभ्यता का दावा भरनेवाले जैन बन्धु इस ओर विचार तक नहीं करते। जैनियों की इस उपेक्षाने अपनी बहुत हानि की है। आज वे अपने ऐतिहासिक वर्णन को विश्व के सामने उपस्थित रखने की चिन्ता नहीं करते पर समय बीतने पर फिर उन्हें पछताना पड़ेगा। जैनियों का गौरव, महत्व और बड़प्पन बिना इतिहास के अधिक समय तक स्थिर रहने का नहीं यह बात बिल्कुल सत्य है। जिस जाति, देश या राष्ट्र के लोगों ने इस आवश्यक विषय की ओर उपेक्षा की वे आज संसार से लुप्त हो गये हैं। यदि जैनियों की निद्रा न खुलेगी तो यह सम्भव है उनका अस्तित्व निकट भविष्य में खतरे में रहे।

जैनियों के पास एतिहासिक सामग्री ही नहीं है—सो यह बात नहीं

है। जैनियों का ऐतिहासिक भंडार इतना बड़ा है कि यदि उसकी शोध और खोज की जाय तो इतना मसाला उपलब्ध हो सकता है कि जिसके साधन से विश्व के सामने जैनियोंकी अतीत दशा विस्तार पूर्वक दिखलाई जा सके। पर सब यह अप्रकट रूप में है। कई भंडारो के ताले लगे पड़े हैं। दीमक आदिके द्वारा निरंतर अतुल सामग्री बरबाद हो रही है जिसकी सार और संभाल करनेवाला कोई न रहा। इस इतिहास के अभाव में आज जैन जाति पर झूठे झूठे आक्षेप आरोपित हो रहे हैं। इस कलंक का निवारण करनेका साधन आज हस्तामलक नहीं हैं अतएव जैसा कुछ भी कोई कहे सब सहन करना पड़ता है। प्रमाद की हद हो चुकी है। ऐसा दूसरा कौन अभागी समाज होगा जो ऐतिहासिक सामग्री के मौजूद होते हुए भी उसे प्रकट रूप में न लावे।

बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। जैनियोंने जो इतिहास नहीं लिखा है इस के भी दो मुख्य कारण हैं। प्रथम तो यह कि इस जाति के लोगोंके अधिकाँश व्यापारी पेशा हैं अतएव ये लोग अपने बालकों को केवल उन्हीं बातों से परिचित कराते हैं जो उन्हें व्यापार में सहायता पहुँचावे। बच्चे के सम्मुख व्यापार ही का वातावरण रहता है और वह बड़ा होकर उसी जीविका की धून में अपना जीवन बिता देता है उन्हें इतिहास प्रेम होना असंभव हैं। दूसरा कारण यह है कि इस जाति के लोगों में स्वावलम्बन का अस्तित्व नहीं है। इन के कई कार्य दूसरों पर आश्रित रहते हैं। इतिहास लिखने का ठेका इन्होंने अपने कुल गुरुओं को दे रखा है, जिसे कुल गुरु अपनी जीविका का साधन

बना चुके हैं । कुल गुरु इतिहास सम्बन्धी एक भी बात प्रकट करना नहीं चाहते। कारण वे समझते हैं कि यदि हमने कुछ भी इस सम्बन्ध का भेद बतादिया तो हमारी जीविका का सिलसिला टूट जायगा । तथा कुछ कुल गुरुओं के पास जो थोड़े समय के पहले का लिखित इतिहास है उस में कल्पना का अंश अधिक है अतएव उन्हें यह भय है कि यदि यह सब विवरण प्रकाशित हो जायगा तो हमारी पोल खुल जायगी । इन्हीं कारणों से हमारे इतिहास की यह दशा हुई है। दर असल जैन जातियाँ की उत्पत्ति प्रायः मारवाड़ में हुई हैं और इन जातियाँ के प्रतिबोधक व पोषक उपकेश गच्छाचार्यों का विहार भी विशेष कर मारवाड़ प्रान्त में ही हुआ है अतएव जैन जातियाँ की ऐतिहासिक सामग्री अन्य स्थानों की अपेक्षा उपकेश (कमला) गच्छोपासकों के पास मिलना ही अधिक सम्भव है ।

जब विक्रम सं १९७३ का मेरा चातुर्मास फलोधी हुआ तब मैंने स्थानीय उपकेश गच्छ के उपाश्रय के प्राचीन ज्ञान भंडार को देखा था उसमें कई पट्टावलियाँ, वंशावलियाँ और फुटकल पन्ने मेरे दृष्टिगोचर हुए । इन में मुझे ऐसी ऐसी बातें मालूम हुई जिन से मेरी अभिलाषा यह हुई कि मैं जैन जातियाँ का इतिहास तैयार करूँ । किन्तु यह सामग्री मुझे पर्याप्त नहीं जँची फिर मेरी भावना हुई कि कुछ अधिक बातें खोजद्वारा मालूम कर ली जांय तदनुसार मैंने खोज का कार्य शुरू किया जिसमें मुझे सफलता मिलती गई । इस कारण मेरा उत्साह दिन प्रति दिन बढ़ता गया और फिर

भी मैंने इस कार्य में विशेष प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। मुझे विशेष सामग्री उपकेश गच्छीय यतिवर्य लाभसुन्दरजी, माणकसुन्दरजी और प्रेमसुन्दरजी से प्राप्त हुई। क्योंकि बीकानेर के उपाश्रय इन्हीं के अधिकार में हैं जहाँ बहुत प्राचीन शास्त्रों का विपुल संग्रह है। इस के अतिरिक्त नागोर और खजवाने आदि से मुझे इतनी सामग्री उपलब्ध हुई कि जिस ग्रंथ को मुझे १००० पृष्ठ बनाने की आशा थी वह अब ५००० पांच हजार पृष्ठों में पूरा होगा ऐसा संभव है और न मालूम इस से भी यह ग्रंथ कितना और बढ़ जाय कारण जैन जाति का विस्तार और क्षेत्र बहुत विस्तृत है मानों कोई महान् रत्नाकर हो।

इस पुस्तक को शीघ्र तैयार करने की इच्छा और भावना रखता हुआ भी मैं इस कार्य को शीघ्र न कर सका। इसी कारण मुझे दो विज्ञपत्तियों निकालनी पड़ी। देरी होने के कई कारण हैं प्रथम तो मारवाड़ प्रान्त में ही मेरा अधिकतर विहार होता है जहाँ यंत्रालय की सुलभ व्यवस्था नहीं है तथा इस प्रदेश में साधुओं की भी कमी रहती है अतएव व्याख्यान आदि से इच्छानुसार समय नहीं मिलता है तथा शिक्षा में यह प्रान्त पिछाड़ी है अतएव ऐसे विषय की ओर प्रायः कर के उपेक्षा ही है। यहाँ के अधिकतर लोग तो केवल बाह्य आडम्बरों की ओर ही आकर्षित होते हैं तथा मेरा स्वास्थ्य भी कई अरसे तक कार्य करने के अनुकूल नहीं रहता था। उपरोक्त कारणों से कार्य में स्वाभाविक ही विलम्ब हो गया है तथापि यह बात क्षन्तव्य है।

उपर्युक्त कारणों से समस्त पुस्तक को एक ही बार में प्रकाशित कराने की सामग्री तैयार होने पर भी प्रकाशित करवा देना मेरी सामर्थ्य से बाहिर की बात थी अतएव प्रस्तुत पुस्तक के ४ खंड करदिये गये जिस से लिखने, प्रकाशित होने तथा आर्थिक व्यवस्था आदि में सहूलीयत रहे इसी कारण से पाठकों के सम्मुख आज यह प्रथम खण्ड उपस्थित किया जाता है।

इस ग्रंथ में जैन जातियाँ की उत्पत्ति से लेकर मध्याह्न काल के तेजस्वी सूर्य की भाँति जो जैन जातियाँ का महोदय हुआ था तथा तब से आज तक का विस्तृत इतिहास रहेगा। इसी कारण से ग्रंथ का शीर्षक 'जैन जाति महोदय' नाम रखना मैंने उचित समझा। जो बात उठाई गई है वह विस्तृत बताई गई है। पर इस उद्देश में भी कई सज्जनों की आग्रह से कुछ परिवर्तन करना पड़ा है यह कारण विस्तृत रूप में प्रथम द्वितीय प्रकरण में आप पढ़ सकेंगे। प्रथम खण्ड के छे प्रकरणों में इस प्रकार वर्णन है—

प्रथम खण्ड के प्रथम प्रकरण में विविध प्रमाणों द्वारा सब से प्रथम यह सिद्ध किया गया है कि जैन धर्म अति प्राचीन है। इस बात को सिद्ध करने के लिये ऐतिहासिक प्रमाणों का संग्रह किया गया है तथा इस के अतिरिक्त वेद पुराण आदि से भी यह सिद्ध किया गया है कि वेद पुराणों में जैनियों के राजा, तीर्थंकर आदि का वर्णन है। तद् विषयक जो जैनेतर इतिहासज्ञों की सम्मतियाँ का भी संग्रह किया गया है। जैनेतर

विद्वानों की राऐं भी जैन धर्म की प्राचीनता और महत्ता को सिद्ध करती हैं ।

इसी खण्ड के दूसरे प्रकरण में वर्तमान अवसर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव स्वामी से चरम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का संक्षिप्त जीवन चरित वर्णन किया गया है । इन के जीवन की चर्या को मनन पूर्वक पढ़ने से पाठकों के हृदय में जैन धर्म के प्रति विशेष श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना न रहेगी। अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का जीवन चरित कुछ अधिक विस्तार से इस कारण दिया गया है कि इन्हीं के शासन में इन के जीवन की झलक आज तक प्रकट हो रही है ।

इसी खण्ड के तीसरे प्रकरण में इतिहास प्रसिद्ध तेवीस वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी के पटधर आचार्यों का विस्तृत विवरण है । आचार्य स्वयंप्रभसूरि और आचार्य रत्नप्रभसूरिने बडी बडी कठनाईयों का सामना कर अथाग परिश्रम तथा आत्मबल और बडी चतुराई से जैनधर्म को पसरित करने को खुब प्रयत्न किया, फलस्वरूप में ' महाजनवंश ' की स्थापना की जिसका विस्तृत वर्णन प्राचीन पटावलियों व वंशावलीयों से लिखा गया हैं । उपदेश में कइ स्थानों के अवतरण जैसे वंशावलियों में थे उनको उसी रूप में रक्खा गया है कारण वह साहित्य की दृष्टि से जनोपकारी है ।

इसी खण्ड के चतुर्थ प्रकरण में एक विवादास्पद बात का

निर्णय किया गया है। उपकेश वंश की स्थापना को तो सब स्वीकार करते हैं पर इस के स्थापित होने के समय पर इतिहासज्ञों में बहुत मतभेद है अतएव इस प्रकरण में ओसवाल जातिका समय निर्णय किया गया है। इसी प्रकरण के परिशिष्ट नं. १ में ओसवाल जाति का विस्तृत परिचय कराया गया है। ओसवालों का आचार विचार, रहन सहन, सभ्यता आदि किस प्रकार की है इत्यादि बातों को विस्तारपूर्वक बताने का प्रयत्न किया गया है। परिशिष्ट नं. २ और ३ में इसी प्रकार पोरवाल और श्रीमाल जाति का संक्षिप्त में परिचय कराया गया है।

इसी खण्ड के पञ्चम प्रकरण में पार्श्व प्रभु के ७ वें पट्ट के आचार्य से वर्णन शुरु किया गया है तथा पार्श्व प्रभु के १३ वें पट्ट तक के आचार्यों का वर्णन सविस्तृत रूप से बताया गया है। बाद में भगवान महावीर स्वामी के पट्ट पर के १२ आचार्यों का वर्णन है। इसी प्रकरण में दो अध्याय बड़ी खोज के साथ लिखे गये हैं। एक में जैन इतिहास और दूसरे में कलिंगदेश का इतिहास जिस के कारण जैन जातियाँ के महोदय का भली भाँति सबूत मिलता है। इस प्रकरण के अंतिम अध्याय में जैन जातियाँ का महोदय प्रान्तवार बताया गया है।

इसी खण्ड के छट्ठे प्रकरण में जैन जातियाँ का महोदय किन कारणों से रुक गया है उस का विवेचन किया गया है। प्रारम्भ में जैनियाँ पर आक्षेप किये जाते हैं उन का समाधान तथा

जैनियों की वर्तमान दशा कैसी है इस बात को हूबहू दिखाने का प्रयत्न किया गया है। जिन जिन कारणों से जैन जाति की संख्या निरन्तर घट रही है, उल्लेख किया गया है तथा जैन जातियों की वर्तमान दशा जातीय और धार्मिक दृष्टि से कैसी है इस बात का सुक्ष्म दृष्टि से विचार किया गया है। तथा प्रथम खण्ड के योग्य मैटर बढ़ जाने से यहाँ प्रथम खण्ड समाप्त किया गया है। जो आज पाठकों के कर कमलों में उपस्थित है।

इस पुस्तक के कार्य को हाथ में लेने के बाद मुझे कई पुस्तकों से इस विषय का अध्ययन करना पड़ा तथा मेरे विचार निर्माण में उन पुस्तकों से बहुत कुछ सहायता मिली है। उन का उपकार और आभार मैं स्वीकार करता हूँ और उन के नाम भी धन्यवाद सहित यहाँ प्रगट करना चाहता हूँ।

(१) त्रिषष्ठ शलाका पुरुष चरित्र—मूल लेखक कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि।

(२) फलोधी के उपकेश गच्छीय उपाश्रय के प्राचीन ज्ञान भण्डार के रक्षक वैद्य मुहत्ता।

(३) बीकानेर, नागोर और खजवाने के उपाश्रयों के श्री पूज्यों की प्राचीन बहियाँ, प्राचीन पट्टावलियाँ, वंशावलियें, पट्टे, परवाने और सनद आदि।

(४) पट्टावली नंबर १—२ और ३ यतिवर्य लाभसुन्दरजी द्वारा।

(५) पट्टावली नंबर ४–५ और ६ तथा प्राचीन रासाओं व पुरांणे कवित के पाने. यतिवर्य माणकसुन्दरजी द्वारा ।

(६) कोरंट गच्छीय श्री पूज्यजी की बही जिस में २१ गोत्रों की वंशावलियाँ है–यतिवर्य माणकसुन्दरजी द्वारा ।

(७) उपकेश गच्छ चरित्र–यतिवर्य प्रेमसुन्दरजी द्वारा ।

(८) कोरंट गच्छीय पट्टावली–यतिवर्य माणकसुन्दरजी द्वारा ।

(९) तपागच्छ वृहत् पट्टावली–त्रैमासिक पत्र द्वारा ।

(१०) खरतर गच्छ पट्टावली–गणि क्षमाकल्याणजी–रचित ।

(११) गच्छ मत्त प्रबन्ध–आचार्य श्री बुद्धिसागरसूरि ।

(१२) राज तरंगिणी । यतिवर्य लाभसुन्दरजी द्वारा

(१३) जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर–आचार्य विजयानंदसूरि ।

(१४) प्रभाविक चरित्र–आचार्य प्रभाचंद्रसूरि ।

(१५) प्रबन्ध चिन्तामणी–आचार्य मेरूतुङ्गसूरि ।

(१६) कुवलय कथा त्रैमासिक । पत्रद्वारा

(१७) शतपदी–आंचल गच्छ आचार्य मेरूतुङ्गसूरि !

(१८) जैन प्राचीन इतिहास भाग १ तथा २ पं. हीरालाल हंसराज । जामनगरवाला का छपाया

(१९) जैन इतिहास–जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर से मुद्रित ।

(२०) शत्रुञ्जय उद्धार प्रबन्ध–मुनि जयविजयजी ।

(२१) विमल चरित्र–" जैन " भावनगर ।

(२२) वस्तुपाल तेजपाल चरित्र—" जैन " भावनगर ।

(२३) बप्पभट्टिसूरि और आमराजा—जैन सस्ती वांचनमाला ।

(२४) महाराजा सम्प्रति—जैन सस्ती वांचनमाला ।

(२५) जैन गौत्र संग्रह—पं. हीरालाल हंसराज ।

(२६) महाजन वंश मुक्तावली—यति रामलालजी ।

(२७) जैन सम्प्रदाय शिक्षा यति श्रीपालजी ।

(२८) प्राचिन लेख संग्रह भाग १ तथा २—मुनि जिनविजयजी ।

(२९) जैन लेख संग्रह खण्ड १-२ तथा ३—सम्पादक बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर ।

(३०) धातु प्रतिमा लेख संग्रह भाग १ तथा २—आचार्य श्री बुद्धिसागरसूरि ।

(३१) मुणोत नेणसी की ख्यात—काशी नागरी प्रचारिणी सभा ।

(३२) कुमारपाल चरित्र ।

(३३) प्राचीन जैन स्मारक भाग १, २, ३, ४ तथा ५—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी जैन ।

(३४) श्रीमाल बाणियाँ का जाति भेद—प्रोफेसर मणीलाल बकोरभाई ।

उपरोक्त साधनों के अतिरिक्त यह भी आवश्यक था कि जैन जातियाँ जो प्रायः क्षत्रिय वंश—पँवार, चौहान, प्रतिहार, राठौड, शिशोदिया, सोलंकी आदि से उत्पन्न हुई है और क्षत्रियों के महान पुरुष, व नगर और उन के समय से परिचित होने के लिये निम्न

लिखित वर्तमान ऐतिहासिक ग्रंथों का भी अध्ययन करना पड़ा जिन से मेरे विचारों की पुष्टि हुई है और इन के अवतरण भी विस्तृत रूप मे स्थान स्थान पर दिये गये हैं अतएव मैं इन के लेखकों, सम्पादकों एवं प्रकाशकों का आभार मानता हूँ।

(३५) भारत का प्राचीन राजवंश भाग १, २ तथा ३ विश्वेश्वरनाथ रेउ।

(३६) राजपूताने का इतिहास खण्ड १ तथा २—रा० पं० गौरीशंकरजी ओझा।

(३७) सीरोही राज्य का इतिहास—रा० पं० गौरीशंकरजी ओझा।

(३८) सिन्ध का इतिहास—मुन्सिफ देवीप्रसादजी।

(३९) जेसलमेर का इतिहास—टॉड राजस्थान दूसरा खण्ड।

(४०) पाटण का इतिहास—" गुजरात का इतिहास " मे।

(४१) यवन राज्य का इतिहास—मुन्सिफ देवीप्रसादजी।

(४२) राजपूताने के शोधखोज- ,, ,, ।

इन के अतिरिक्त और भी कई साधनों की सहायता से इस कार्य को पूरा करने का बीडा उठाया है। प्रथम प्रयास का फल आज आप के समक्ष उपस्थित है। इस के लिये मैं उन लोगों का विशेष उपकार मानता हूँ जिन के कार्य से मुझे पुस्तक लिखने में सहायता मिल रही है। स्थानाभाव से सब के नाम मैं इस स्थान पर प्रकट नहीं कर सकता हूँ।

मुझ जैसे साधारण व्यक्ति के लिये ऐसे बड़े कार्य में हाथ डालना अनाधिकार चेष्टा का काम था कारण कि न तो मैं ऐसा विद्वान हूँ न इतिहासज्ञ की साहित्य की दृष्टि से पाठकों की इच्छा पूरी कर सकूँ तथापि दूसरे किसी को इस ओर कलम उठाते न देख कर मैंने यह साहस किया है। इतने बड़े कार्य के लिये यह मेरा प्रथम ही प्रयास है अतएव सम्भव है अनेक त्रुटियाँ रह गई हों आशा है उदार पाठक लेखक की असमर्थता को ध्यान में रखते हुए नीरक्षीर विवेक की भाँति सार वस्तु को ग्रहण कर लेंगे। तथा जो महाशय इतिहास के मैटर सम्बन्धी भूलों की सूचना देंगे मैं उन का विशेष कृतज्ञ हूँगा। दूसरे संस्करण में इस खण्ड को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने का प्रयत्न करूँगा तथा साहित्य संसार को संतुष्ट करने की चेष्टा करूँगा।

इस ग्रंथ के पठन से यदि पाठकों की रुचि ऐतिहासिक खोज की ओर आकर्षित होगी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा। दूसरा, तीसरा तथा चौथा खण्ड पृथक २ पुस्तकाकार शीघ्र ही उपस्थित करने का प्रयत्न करूँगा।

लुनावा (मारवाड़)
वीरात् २४५५
ता. १—१०—१९२९

लेखक—
मुनि ज्ञानसुन्दर।

लेखक का परिचय।

विषय सूची।

१	प्रस्तावना	....	
२	विषय सूची	....	
३	विषयारम्भ	....	१
४	वंश परिचय	....	३
५	जन्म	....	४
६	बाल्यावस्था	....	५
७	गृहस्थावस्था	....	६
८	वैराग्य और दीक्षा	....	७
९	विशेषता	....	९
१०	विक्रम संवत् १९६४ का चातुर्मास सोजत	...	११
११	,, ,, १९६५ ,, ,, बीकानेर	....	१२
१२	,, ,, १९६६ ,, ,, जोधपुर	....	१४
१३	,, ,, १९६७ ,, ,, कालू	....	१५
१४	,, ,, १९६८ ,, ,, बीकानेर	....	१७
१५	,, ,, १९६९ ,, ,, अजमेर	....	१८
१६	,, ,, १९७० ,, ,, गंगापुर	....	२०
१७	,, ,, १९७१ ,, ,, छोटी सादड़ी	....	२२

१८	,,	,,	१९७२ ,,	,,	तिंवरी	....	२४
१९	,,	,,	१९७३ ,,	,,	फलोधी	....	२७
२०	,,	,,	१९७४ ,,	,,	जोधपुर	....	२९
२१	,,	,,	१९७५ ,,	,,	सूरत	...	३०
२२	,,	,,	१९७६ ,,	,,	झगड़िया तीर्थ	....	३३
२३	,,	,,	१९७७ ,,	,,	फलोधी	...	३५
२४	,,	,,	१९७८ ,,	,,	,,	....	३७
२५	,,	,,	१९७९ ,,	,,	,,	....	३९
२६	,,	,,	१९८० ,,	,,	लोहावट	....	४९
२७	,,	,,	१९८१ ,,	,,	नागोर	....	५१
२८	,,	,,	१९८२ ,,	,,	फलोधी तीर्थ	....	५५
२९	,,	,,	१९८३ ,,	,,	पीपाड़	....	५७
३०	,,	,,	१९८४ ,,	,,	बीलाड़ा	....	५८
३१	,,	,,	१९८५ ,,	,,	सादड़ी	....	६०
३२	,,	,,	१९८६ ,,	,,	लुणावा	....	६२

३३ हमारी आशाऐं ....

३४ आपका प्रकाशित साहित्य ६६

३५ आप की स्थापित की हुई संस्थाऐं ७१

जैन जाति महोदय के लेखक

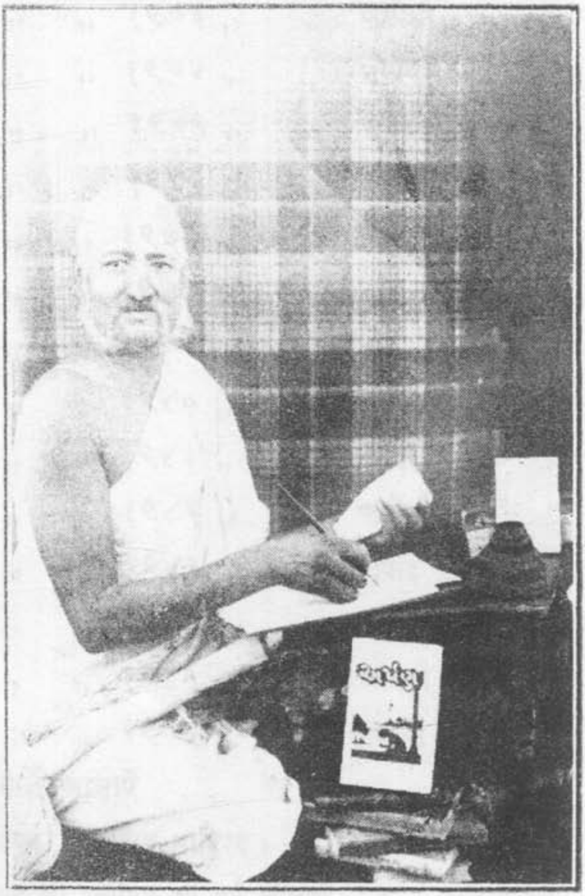

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज।

Lakshmi Art. Bombay 8

लेखक का संक्षिप्त परिचय।

असंगत नहीं होगा यदि पाठकों की सेवामें "जैन जाति महोदय" ऐतिहासिक महान् ग्रंथके प्रणेता पूज्यपाद इतिहासवेत्ता मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी का पवित्र चरित्र रखते अति हर्ष है। हमारी अभिलाषा बहुत दिनोंसे थी कि ऐसे महात्मा का जीवन जो आदर्श एवं अनुकरणीय है पाठकों के सामने इस उद्देशसे उपस्थित किया जाय कि अपने जीवनोद्देश को निर्माण करते समय वे इसे लक्ष्यमें रक्खे।

Full many a gem of purest ray serene,
    The dark unfathomed caves of ocean bear;
Full many a flower is born to blush unseen,
    And waste its sweetness on the desert air.

अहा! उपरोक्त पंक्तियों में सचमुच किसी मनस्वी कविने क्या ही उत्तम कहा है। ऐसे रत्न भी है जो अत्यन्त उज्जवल एवं प्रभावान हैं परन्तु समुद्र की खोखलों में पड़े हुए हैं और ऐसे भी कुसुम हैं जिनके सौन्दर्य व सुगन्ध का अनुभव कोई नहीं जान पाता परन्तु क्या वे रत्न उन रत्नों से किसी प्रकार भी कम हैं जो हाट हाट में बिकते और मनुष्यों की दृष्टि में पड़ कर प्रशंसा पाते हैं? क्या वे पुष्प जो अपनी मनोहारिणी सुगंध को

केवल वन की वायु में ही विलीन कर देते हैं, उन बगीचों के फूलोंसे जो अपनी सुगन्धसे मनुष्यों के प्रशंसापात्र हैं किसी भी प्रकार कम हैं ?

इसी प्रकार वे महापुरुष जो चुपचाप दूरदर्शितासे अत्याव-श्यक ठोस (Solid) कार्य करने से मनुष्यों में विख्यात नहीं हो सके क्या उन सांसारिक प्रशंसापात्र व्यक्तियों से कम हैं ? नहीं नहीं कदापि नहीं । जब ऐसे मनुष्यों की संख्या कम नहीं है जो प्रशंसा के अयोग्य हो कर भी उसके पात्र कहे जाते हैं तो क्या ऐसे सत्पुरुषों का मिलना दुर्लभ है जो संसारी प्रशंसा से सदा दूर भागते हैं ।

किसी विद्वान ने यथार्थ ही कहा है कि—

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः ।
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
नादंति सत्वं खलु वारवाहाः ।
परोपकाराय सतां विभूतयः ।

अर्थात् नदी अपने जल को आप नहीं पीती, वृक्ष अपने फलों को आप भक्षण नहीं करते और मेघजल वर्षा अन्न उपजा आप नहीं खाते । तात्पर्य यह है कि नदी का जल वृक्षों के फल और मेघों की वर्षा सदा दूसरों के ही काम आती है । इससे सिद्ध होता है कि सच्चे महापुरुषों की विभूति स्वधर्म, स्वदेश की सेवा और परोपकार के लिये ही होती है । ऐसे ही श्रेष्ठ परोप-

कारी महापुरुषों की श्रेणी में उच्च स्थान पाने योग्य जैन श्वेताम्बर समाज के उज्ज्वल रत्न श्रीमद् उपकेश गच्छीय मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज का पवित्र चारित्र इस प्रकार है—

वीरात् ७० सम्वत् में आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीजीने उपकेश पुर के महाराजा उपलदेव आदि को प्रतिबोध दे उन्हें जैनधर्म का अनुयायी बनाया था। महाराजा उपलदेव जैनधर्म को पालन कर अपने आत्मकल्याण में निरत था। वह अपने जीवन में प्रयत्न कर के जैनधर्म का विशेष अभ्युदय करना सदैव चाहता था और उन्होंने ऐसाही किया कि वाममार्गियों के अधर्म कीलों को तोड़ जैनधर्म का प्रचुरतासे प्रचार किया इस लिये आप का यश आज भी विश्व में जीवित है। वह नरश्रेष्ठ अपने गुणों के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गया था। उसी के इतने उत्तम कृत्यों के स्मरणमें उस की संतान श्रेष्टि गौत्र कहलाने लगी।

श्रेष्टि गौत्र वालों की प्रचुर अभिवृद्धि हुई। वे सारे भारत में फैल गये। इन की आबादी दिन प्रति दिन तेज रफतार से बढ़ने लगी। मारवाड़ राज्यान्तर्गत गढ सिवाणा में विक्रम की बारहवी शताब्दी में जैनियों की घनी आबादी थी। केवल श्रेष्टि गौत्र वालों के भी लगभग ३५०० घर थे। उस समय गढ़ सिवाना में श्रेष्टि गौत्रीय त्रिभुवनसिंहजी मंत्री पद पर नियुक्त थे। आप बड़े विचारशील एवं राज्य शासन को चलाने में सिद्धहस्त थे।

इनके सुपुत्र मुहताजी लालसिंहजी का विवाह चित्तोड़ हुआ

था। एक बार ये किसी कार्यवशात् चित्तोड़ गये हुए थे। इनको सच्चायिका देवी का पूर्ण इष्ट था। जिस दिन लालसिंहजी चित्तोड़ पहुँचे उसी दिनसे पूर्वही चित्तोड़ के महारावलजी की रानी चक्षु-पीड़ासे पीड़ित थीं। कई प्रयत्न महारावलजीने किये पर सब उपाय निष्फल हुए। योग्य चिकित्सक की तलाश करते करते राज्य कर्म-चारियों को सिवानासे आए हुए मुहताजी लालसिंहजी से भेंट हुई। और उन्होंने अपना हाल सुनाया इस पर लालसिंहजीने कहा यदि आप चाहो तो मैं चक्षु पीड़ा मिटा सकता हुँ। कर्मचारियोंने कहा हम तो स्वयं इसी हित आए हैं। लालसिंहजीने सच्चायिका देवी के अनुरोधसे ऐसा उपाय बताया कि रानी की पीड़ा तत्काल जाती रही। सारा राज समाज लालसिंहजी की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगा। महारानीने इस उपलक्षमें लालसिंहजी को बाहर-ग्राम इनायत किए तथा उनको वैद्यराज की उपाधि सदा के लिये प्रदान की तबसे श्रेष्टिगोत्र की एक शाखा वैद्य मुहत्ता कहलाई।

हमारे चरित नायक मुनि ज्ञानसुन्दरजी का जन्म इसी घराने में हुआ जो उपलदेव की संतान श्रेष्टिगोत्र की शाखा वैद्य मुहत्ता कहलाता था। मारवाड़ भूमि के अन्तर्गत बीसलपुर ग्राम में वैद्यमुहत्ता नवलमलजी की भार्या रूपादेवी की कूख से आप-श्रीका जन्म विक्रम सम्वत् १९३७ के आश्विन शुक्ला १० यानि विजया दशमी को हुआ। जब आप गर्भ में थे तो आपकी मातु-श्रीको हाथी का स्वप्न आया था तदनुसार ही आपका जन्म नाम " गयवर चंद्र " रखा गया। जबसे आपने अपने घर में जन्म

लिया सारा कुटुम्ब सुख शांतिसे रहने लगा। प्रत्येक के चित्त में प्रसन्नता का सागर उमड़ रहा था। आप अपनी बालक्रिडाओंसे अपने कुटुम्ब के लोगों का मनोरञ्जन करने लगे। आपकी तुतली वानी सबको अति कर्ण प्रिय थी।

बाल्यावस्था से ही आप सर्व प्रिय थे। आपका सरल व्यवहार सबको रुचता था। जब आप शिशु अवस्था से कुछ बड़े हुए तो शिक्षा प्राप्ति के हित पाठशाला में प्रविष्ट हुए। वहाँ पर सहपाठियों से आप सदा आगे ही रहते थे। आपने अल्प समयमें आवश्यक एवं अशातीत शिक्षा ग्रहण करली। जब आप पढ़ना छोड़ कर व्यापार करने लगे थे तो आप इस कार्य में बड़े कुशल निकले। व्यापार के व्यवहार में आपकी हठोती अनुकरणीय थी। जिस कार्य में आप हाथ डालते उसे अन्ततक उसी उत्साह से करते थे। यही आपकी स्वाभाविक टेव हो गई।

बाल्यावस्थासे ही आपको सत्संगतका बड़ा प्रेम था। जब ग्राम में कोई साधु या समाज सुधारक आता तो उससे आप अवश्य मिलते थे। इसी प्रवृति के कारण आप प्रायः स्थानकवासी साधुओं की सेवाउपासना किया करते थे। वहाँ आपने प्रतिक्रमण स्तवन स्वाध्याय तथा कुछ बोल (थोकड़े) याद करलिये। अबतक आप अविवाहित ही थे।

किन्तु सत्रह वर्ष की आयु में आपका विवाह सेलावास निवासी श्रीमान् भांनीरामजी बाघरेचा की पुत्री राजकुमारी से

हुआ विवाह से चार वर्ष पश्चात् आपको सांसारिक उलझनें खटकने लगीं। त्याग और वैराग्य की ओर आपकी भावनाएँ प्रस्तुत हुई। पर लालसा मन ही मन रही। कुटुम्ब को कब भाने लगा कि ऐसा सुयोग्य परिश्रमी और सदाचारी नवयुवक इस अवस्थामें हमें त्याग दे। आपने दीक्षालेने की बात प्रकट की पर तुरन्त अस्वीकृति ही मिली।

इसी बीच में आपके पिताश्री का देहान्त हुआ। यकायक सारा गृहस्थी का भार आपपर आ पड़ा तथापि आप अधीर नहीं हुए। आप अपने पिता के जेष्ठ पुत्र थे अतएव सारा उत्तरदायित्व आप पर आ पड़ा। आपके पाँच लघु भ्राता थे जिनके नाम क्रम से इस प्रकार हैं—गणेशमलजी, हस्तीमलजी बस्तीमलजी मिश्रीमलजी और गजराजजी। आपके एक बहिन भी थी, जिनका नाम रत्न बाई था।

कई सांसारिक बंधनों से जकड़े हुए होते भी आपकी अभिलाषा यही रहती थी कि ऐसा कोई अवसर मिले कि मैं शीघ्र ही दीक्षा ग्रहण करलूँ। संवत् १९६३ में आप अपनी धर्म पत्नी सहित परदेश जाने के लिये यात्रा कर रहेथे। रास्ते में रतलाम नगर आया जहाँ पूज्य श्रीलालजी महाराज का चातुर्मास था। आप वहाँ सपत्नी उतर गये। जाकर व्याख्यान में सम्मिलित हुए। पू० श्रीलालजी के उपदेश का असर आपके कोमल हृदय पर इस प्रकार हुआ कि आपने यह मन ही मन दृढ़ निश्चय करलिया कि अब मैं घर नहीं जाऊँगा। किसी भी प्रकार हो मैं अब

शीघ्र दीक्षा ग्रहण करलूँगा। अब संसारके बन्धनों से उन्मुक्त होके रहूँगा। आप सपत्नि वैराग्य भावना के कारण करीबन् २ मास रतलाम में ठहर गये और धार्मिक अभ्यास में तल्लीन हो गये। यह बात आप के मातुश्री आदि कुटुम्ब के कानों तक पहुँचते ही उन्हें को महान् दुःख पैदा हुआ इस पर तारद्वारा सूचित कर गणेशमलजी को रतलाम भेजा और उन्होंने अनेक प्रकार से समझा के आप को घर पर लाना चाहा पर आप का वैराग्य ऐसा नहीं था कि वह धोने से उतरजाता या फीका पड़जाता आखिर गणेशमलजी के विवाह तक दीक्षा न लेने की शर्तपर गयवरचन्द्रजी तो पूज्यजी के पास में रहे और गणेशमलजी अपनी भावज को ले कर बीसलपुर आगये।

संसार की असारता आयुष्य की अस्थिरता और परिणामों की चञ्चलता आप से छीपी हुई नहीं थी जैसे जैसे आप ज्ञानाभ्यास बढ़ाते गये वैसेवैसे वैराग्य की धारा भी बढ़ती गई फिर तो देरी ही क्या थी ? आपने अपना मनोर्थ सिद्ध करने के लिये आखिर संवत् १९६३ के चैत्र कृष्णा ६ को नीमच के पास झामूणिया ग्राम में स्वयं दीक्षान्वित हो गये। आपने अपने अनवरत एवं अविरल उद्योग के कारण शीघ्र ही दसवैंकालिक सूत्र, सुखविपाक सूत्र और उत्तराध्ययनजी सूत्र का अध्ययन कर लिया। साथ में परिश्रम कर के आपने लगभग १०० थोकड़े भी कण्ठस्थ कर लिये।

इस के अतिरिक्त बोल चाल थोकड़े, ढाल, चौपाई, स्तवन,

छन्द और कवित्त तो आप को पहले ही से खूब याद थे। आप नित्य व्याख्यान भी दिया करते थे जो श्रोताओं को अति मनोहर प्रतीत होता था। वाक्पटुता का गुण आप में स्वभाव से ही विद्यमान है। झामूणिया से विहार कर के आप रामपुरा तथा भानपुरा होते हुए बूंदी और कोटे की ओर पधारे कारण पूज्यजी का विहार पहले से ही उस तरफ हो चुका था।

पश्चात् वहाँ से आप फूलीया केकडी होते हुए ब्यावर पधारे। ब्यावर से निम्बाज, पीपाड, बीसलपुर आये और अपने कुटम्बियों से आज्ञा की याचना की पर उन्होंने आज्ञा न दी तो वहाँ से जोधपुर आए यहाँ आप के सुसरालवाले तथा आप की पूर्व धर्मपत्नी राजबाई वगेरह आई और अनेक प्रकार से अनुकूल प्रतिकूल परिसह दिये पर आप को उस की परवाह ही नहीं थी वहाँ से आप तिवरी तक पर्यटन कर पीछे ब्यावर पधार गये। ब्यावर से आप सोजत पधारे। इस भ्रमण में भी आप एकान्तर की तपस्या निरन्तर करते रहे। आप को अपने कुटुम्बियों की ओर से अनेक परिसह दिये गये पर आप अपने पथ से विचलित नहीं हुए। ज्यों ज्यों आप कष्टों की परीक्षा में तपाए गये आप सच्चे स्वर्ण प्रतीत हुए। इस समय की अनेक घटनाऐं जो आपश्री की अतुल धैर्यता प्रकट करती है स्थानाभाव से यहाँ नहीं लिखी जा सकती यदि अवसर मिला तो फिर कभी आपश्री का चरित्र विस्तृत रूप से पाठकों के समक्ष रखने का प्रयत्न किया जायगा। इस परिचय में केवल चतुर्मासों का संक्षिप्त वर्णन मात्र

ही किया जायगा आशा है पाठकगण अभी इतने से ही संतोष मान लेंगे।

चातुर्मासों का विवरण लिखने के पहले यह आवश्यक है कि मुनिश्री के उन विशेष गुणों का वर्णन किया जाय जिन के कारण कि सर्व साधारण के हृदय में आपने घर कर रक्खा है। छोटे से बालक से लेकर वृद्धतक प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि मुनिश्री की मुखमुद्रा का दर्शन करता रहूं तथा आप की सुमधुर वाणीद्वारा सदुपदेश का अमृतपान करूं। जो लोग आप से परिचय है उस का चित्त नहीं चाहता है कि मुनिराज मुझ से दूर हो तथापि आप एक स्थानपर अधिक नहीं ठहरते निरन्तर विचरण कर आप प्रत्येक ग्राम में पहुंच कर धर्मोपदेश सुनाने का प्रगाढ प्रयत्न करते रहते हैं। इस बात का प्रमाण पाठकों को आगे के चरित्र के पठन से भली भांति विदित होगा।

आप का जीवन अनुकरणीय एवं आदर्श है। आप के अनुपम त्याग, सत्यान्वेषण, तप, धर्म और जिज्ञासा का यदि सविस्तार वर्णन किया जाय तो एक बड़े ग्रंथ का रूप हो जाय। इस महात्मा के उपदेश, वार्तालाप, व्यवहार, कार्य, भाव और विचारों पर मनन करने से परम शांति प्राप्त होती है और साथ में सदा यही इच्छा उत्पन्न होती है कि इसी प्रकार से जीवन बिताना प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिये। आप के जीवन की घटनाओं से हमें यह पता मिलता है कि एक व्यक्ति का

नैतिक, आत्मिक, शारीरिक तथा सामाजिक जीवन किस प्रकार बलवान और चारित्रवान हो सकता है ।

आप का व्याख्यान हृदयग्राही तथा ओजस्वी भाषा में होता है जिस में सारगर्भित धार्मिक भाव लबालब भरे होते हैं । आप की वाक्पटुता से आकर्षित हो कई व्यक्तियोंने सांसारिक प्रलोभनों तथा कुवृत्तियों का निरोध किया है । आप के वचनामृतों के पान से कितना जैन समाज का उपकार हुआ है वह बताना अकथनीय हैं । आपने मारवाड़ जैसी विकट भूमि में अनेक वादियों के बीच विहार कर एकेले सिंह की माफिक जैनधर्म और जैन ज्ञान का बहुत प्रचार किया है । आप के व्याख्यान के मुख्य विषय ज्ञान प्रचार, मिथ्यात्व त्याग, समाज सुधार, विद्याप्रेम, जैनधर्म का गौरव. आत्मसुधार, अध्यात्मज्ञान, सदाचार, दुर्व्यसन त्याग तथा अहिंसा प्रचार है । आप का भाषण मधुर, हृदयग्राही, ओजस्वी चित्ताकर्षक, प्रभावोत्पादक एवं सर्व साधारण के समझने योग्य भाषा में होता है । त्याग की तो आप साक्षात् मूर्त्ति हैं । ज्ञान प्रचार द्वारा आत्महित साधन करना आप के जीवन का परम पवित्र उद्देश है । अर्वाचिन समय में जैन साहित्य के अन्वेषण प्रकाशन आदि अल्प समय में जितनी प्रवृत्ति आपने की है शायद ही किसी औरने की हो ।

किस किस प्रान्त में आपने कितना कितना उपकार किया है इसका वर्णन पाठक निम्न लिखित चातुर्मास के वर्णन से मालूम करेंगे । पूर्ण वर्णन तो इस संक्षिप्त परिचय में समाना असम्भव है ।

विक्रम सं. १९६४ का चातुर्मास [सोजत ।]

सब से प्रथम का चातुर्मास आपने सोजत में किया । आप स्वामी फूलचंदजी के साथ में थे । सब से प्रथम आपने यही आवश्यक समझा कि जब तक जैन साहित्य का ज्ञान नहीं होगा तब मुझ से उपदेश देने का कार्य कैसे हो सकेगा । इसी हेतु से आप साहित्य के अध्ययन में प्रारम्भ से ही तत्पर हुए ।

वैसे आप पर सरस्वती की बचपन से ही विशेष कृपा थी, जिस बात को आप पढ़ते थे वह आप को शीघ्र याद हो जाती थी परिभाषा तथा नित्य के व्यवहार के लिये आपने सब से प्रथम थोकड़े याद करने शुरु किये । बातकी बात में आपको ४० थोकड़े+ स्मरण हो गये । तत्पश्चात आपने सूत्र याद करने प्रारम्भ किये । प्रखर स्मरण शक्ति के कारण आपने बृहत्कल्प सूत्र सहज ही में मुखाग्र कर लिया ।

केवल पढ़ने की ओर ही आपकी रुचि हो यह बात नहीं थी, आप इस मर्म को भी अच्छी तरह जानते थे कि कठोर कर्मों का क्षय बिना तपस्या किये होना असम्भव है अतएव आपने अपने सुकुमार शरीर की परवाह न कर तपस्या करनी प्रारम्भ की जो इस प्रकार थी । अठाई १, पञ्चोपवास १, तेले ८,

---

+ जैन शास्त्रों में जो तत्त्वज्ञान का विषय है उसको सरल भाषामें प्रथित कर एक प्रकरण (निबन्ध) बनाके उसे कण्ठस्थ कर लेना फिर उसपर खूब मनन करना उसका नाम स्थानकवासियोंने थोकड़ा रक्खा गया था ।

बेले १०, तथा दो मास तक तो आपने एकान्तर तप आराधन किया था।

सदुपदेश सुनाना ही साधुओं का कर्त्तव्य है, यह जान कर आपने १९ दिवस तक श्री दशवैकालिक सूत्र को व्याख्यान में पढ़ा। आपकी व्याख्यान शैली की मनोहरता के कारण श्रोताओं की तो भीड़ लगी रहती थी।

चातुर्मास बीतने पर आपने सोजत से ब्यावर, खरवा तक विहार किया। फिर वहाँ से पीपाड़ बीसलपुर हो आपके कुटुम्बियों से आज्ञा प्राप्त कर आप पुनः ब्यावर पधारे। पश्चात् आपने अजमेर, किशनगढ़, जयपुर, छाडलुं, टोंक, माधोपुर, कोटा, बूँदी, रामपुरा, भानपुरा, जावद, नीमच, निम्बाडा चित्तोड़, भीलाडा, हमीरगढ़, ब्यावर, पीपाड, नागोर और बीकानेर तक भ्रमण किया। आपके सदुपदेश के फलस्वरुप कई लोगोंने जीवनभर माँस मदिरा त्यागने का प्रण किया था। इस वर्ष के प्रथम पर्यटन में आपको अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़े। एक बार तो ऐसी घटना हुई कि आप बाल बाल बचे। अटूट साहस एवं धैर्यताने ही आपके जीवन की रक्षा की। अपने पुरुषार्थ के बल से आपने, सारी कठिनाइयों को तृणवत् समझ कर धर्म प्रचार के कार्य में रुचि पूर्वक भाग लिया।

विक्रम सं. १९६५ का चातुर्मास (बीकानेर)।

सोजत में गत चातुर्मास में आपने फूलचन्द्रजी के पास आ-

नाभ्यास किया था किन्तु इस वर्ष आपने बीकानेर में पूज्यजी के साथ में रहते हुए विशेष ज्ञानाभ्यास किया। स्मरण शक्ति के विकसित होनेके कारण जो कार्य दूसरों के लिये क्लिष्ट प्रतीत होता है वह आपके लिये बिल्कुल सरल था। इस चातुर्मास में आपने २१ थोकड़े कण्ठस्थ किये तथा आचारंग सूत्र और उत्तराध्ययन सूत्र का मननपूर्वक अध्ययन (वाचना) किया। शेष रहे उत्तराध्ययन के अध्ययनों को भी बाद में आपने कंठाग्र कर लिया।

तपस्या का सिलसिला उसी प्रकार जारी रहा। तपस्या करना स्वास्थ्य और आत्मकल्याण दोनों के लिये उपयोगी है इसी हेतु से आपने एक शूरवीर की तरह इस वर्ष के चातुर्मास में अन्य तपस्वी साधुओं की वैयावच्च करते हुए भी इस प्रकार तपस्या की, अठाई १, पचोला १, तेले ६, बेले ७ तथा साथ में आपने कई फुटकल उपवास भी किये।

बीकानेर जैसे बड़े नगरकी बृहत् परिषद में व्याख्यान देने का अवसर आप श्री को १५ दिन तक मिला, कारण पूज्य श्री रुग्णावस्था में थे। यद्यपि यह दूसरा ही वर्ष दीक्षित हुए हुआ था तथापि आपने निर्भीकता पूर्वक ऐसे ढंग से व्याख्यान दिया कि सब को यह जान कर आश्चर्य हुआ कि एक नवदीक्षित साधु अपने थोड़े समय के अनुभव से किस प्रकार प्रभावोत्पादक अभिभाषण देते हैं। सब को आपके व्याख्यान से पूरा संतोष हुआ।

चातुर्मास व्यतीत होनेपर आप बीकानेर से नागौर, डेह,

कुचेरा, रूण, बडलू, बनाड़, जोधपुर तथा सलावास आदि के लोगों को उपदेशामृत का पान कराते हुए पाली पहुँचे। इस पर्यटन में भी आप एकान्तर तपस्या के साथ साथ ज्ञानाभ्यास भी निरन्तर करते रहे।

वि. सम्वत् १९६६ का चातुर्मास (जोधपुर)।

आपश्रीने अपना तीसरा चातुर्मास मारवाड़ राज्य की राजधानी जोधपुर में बिताया। फूलचंदजी के पास ही आप रहे। उधर ज्ञानाभ्यास तो चल ही रहा था। जिस जिस क्रम से आपने श्रुतामृत का आस्वादन किया, आप की अभिलाषा अध्ययन की ओर बढ़ती गई। आपने इस वर्ष के चातुर्मास में निम्न प्रकार से स्वाध्याय किया। ४० थोकड़े कंठाग्र तो आपने सदा की तरह किये ही परन्तु इस वर्ष आपने श्रुतज्ञान के अध्ययन में विशेष प्रवृत्ति रक्खी। नन्दीजी सूत्र आपने सहज ही में कण्ठस्थ कर लिया। क्यों नहीं! जिस व्यक्ति पर इस प्रकार सरस्वती की महान् कृपा होती है वह अव्वल दर्जे का सौभाग्यशाली ज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न में क्यों नहीं तल्लीन रहे। इतना ही नहीं इस के अतिरिक्त सूयघडांग सूत्र, ठाणायांग सूत्र, समवायंग सूत्र, प्रश्नव्याकरण सूत्र, निशिथ सूत्र, व्यवहारसूत्र, बृहत्कल्पसूत्र, दशाश्रुत स्कंध सूत्र और आवश्यक सूत्र का अध्ययन (वाचना) किया सो अलग। धन्य! आपकी मानसिक शक्ति को।

जिस प्रकार आपने इस वर्ष ज्ञानाराधन में कमाल कर

दिया उसी प्रकार तपस्या में भी अपूर्व वृद्धि की। आपने यकायक मासखमण तप का आराधन निर्विघ्नपूर्वक किया। इस के साथ तेले ३ तथा एक मास तक एकान्तर तप किया। सचमुच कर्म काटने को कटिबद्ध होकर आपने अलौकिक वीरता का परिचय दिया।

व्याख्यान के अन्दर आप भावनाधिकार पर सुमधुर वाणी से श्रोताओं के शंकाओं की खूब निवृति करते थे। इस वर्ष अपने आधे चातुर्मास अर्थात् दो मास तक धारा प्रावादिक उपदेश दिया।

जोधपुर नगर से विहार करके आप सालावास, रोहट, पाली, बूसी, नाडोल, नारलाई, देसूरी होकर पुनः पाली पधारे। वर्ष के शेष महीनों में आपने सोजत, सेवाज बगड़ी चण्डावल जेतारण तथा बलूँदा और कालू में पधार कर ज्ञानोपार्जन तथा तपश्चर्या करते हुए भी उपदेशामृत का पान कराया।

विक्रम सं. १६६७ का चातुर्मास (कालू)।

इस बार आपने चतुर्थ चातुर्मास कालू (आनन्दपुर) में अकेले ही किया। इस प्रकार अकेले रहने का कारण विशेष था। आत्मकल्याण के हित ही आपने इस प्रकार की योजना की थी। इस चातुर्मास में भी आप का ज्ञानाभ्यास पहले की तरह जारी था। आपने २५ थोकड़े निशीथसूत्र व्यवहारसूत्र वगैरह इस वर्ष भी कण्ठस्थ किये तथा निम्नलिखित आगमों का अध्ययन तो मनन पूर्वक किया— उपवाईजी, रायपसेणीजी, जम्बू-

द्वीप पन्नति, ज्ञातासूत्र, उपासक दशांग, अणुत्तरोववाई, अन्तगद दशांग, पांच निरियावलका सूत्र और विपाक सूत्र। ज्यों ज्यों आप आगमों का अध्ययन करते रहे त्यों त्यों आप को ज्ञान की जिज्ञासा बढ़ी। आप का सारा समय इसी प्रकार व्यतीत होता रहा। एक के बाद दूसरा इस प्रकार व्यवस्थापूर्वक आपने अनेक आगमों का अवलोकन किया।

जो क्रम आप के ज्ञानाभ्यास का था वही क्रम तपस्या का भी रहा। इस वर्ष कालू में भी आप तपस्या करते रहे जो इस प्रकार थी। अठाई १, पचोले २, तेले ८ तथा आपने एकान्तर उपवास दो मास तक किये। इस प्रकार निर्जरा करते हुए आपने अतुल धैर्य का परिचय दिया। आप की लगन का वर्णन करना अकथनीय है। जिस कार्य में आप हाथ डालते हैं उस में अन्त-तक स्थिर रहते हैं।

इस ग्राम में आप कई बार मिलाकर लगभग आठ मास रहे जिस में १२ सूत्र व्याख्यान में बांचे। इस के अतिरिक्त समय समय पर आपने कई चरित्र सुना कर भी कालू निवासियों की ज्ञान पिपासा को अच्छी तरह से शांत किया। इस पिपासा को शांत करने में आपने ऐसी खूबी से काम लिया कि वे लोग अधिक श्रुतज्ञान का आस्वादन करना चाहने लगे। ज्यों ज्यों आपने ज्ञानपिपासा शान्त करने का प्रयत्न किया त्यों त्यों उनकी जिज्ञासा अधिक बढ़ती ही गई।

कालू से विहार कर आप लाम्बिया, केकीन हो अजमेर होते हुए ब्यावर पधारे। वहाँ से विहार करते करते आपने निम्न लिखित ग्राम और नगरों में पधार कर धर्मोपदेश दिया:-रायपुर, झूटा, पीपालिया, चंडावल, सोजत, पाली, पीपाड़, नागोर और बीकानेर।

विक्रम सं. १९६८ का चातुर्मास (बीकानेर)।

इस वर्ष आपश्री का चातुर्मास दूसरी बार बीकानेर में हुआ। यहाँ आपका यह पाँचवा चातुर्मास था। स्वामी शोभालालजी के आप साथ थे। आपका ज्ञानाध्ययन निरन्तर चालू था। यह एक स्वाभाविक नियम है कि जिस व्यक्ति की धुन एक बार किसी काम में सोलह आना लगजाती है फिर वह यदि पुरुषार्थी है तो उस कार्यको पूरा करके छोड़ता है इस बार भी आपका ज्ञानाभ्यास का क्रम पहले की भांति असाधारण ही था। स्वामीजी की सेवा भक्ति करते हुए आपने १०० थोकड़े तत्वज्ञान के याद करने के साथ ही साथ श्री भगवतीजी सूत्र, पन्नवणा सूत्र, जीवाभिगम सूत्र, अनुयोग द्वार सूत्र और नंदीसूत्र की आपने वाचना की। आप सदा ज्ञान प्राप्ति में ही आनंद मानते रहे हैं तथा आपने अपने जीवन का एक उद्देश ज्ञान ग्रहण तथा ज्ञान प्रचार करना रक्खा है। इस में आप श्री को वांछनीय सफलता भी मिली है।

इस वर्ष आपने चातुर्मास में इस प्रकार तपस्या की—पंचोला

१, बेले ३, तथा बेले ८। इसके अतिरिक्त छुटकर उपवास भी इस बार आपने अनेक किये।

आपश्रीने कई अर्सों तक व्याख्यान में भी सूत्रजी फरमाते रहे। आपका भाषण प्रकृति से ही रोचक तथा तत्परता उत्पन्न करनेवाला था। उपदेश श्रवण कर अपने अज्ञानांधकार को दूर करने के हेतु से अनेक श्रोता निरंतर व्याख्यान श्रवण करने का लाभ उठाते थे। आपकी व्याख्यान देने की शक्ति ऐसी उच्च कोटि की है कि श्रोता का मन प्रफुल्लित होकर आनंदसागर में गोते लगाने लगता है। अनेक श्रावकों को थोकड़े सिखाने का कार्य भी आपने ज़ारी किया।

आप बीकानेर से विहार कर नागोर मेड़ता कैकीन कालू होते हुए ब्यावर और अजमेर के निकटवर्ती स्थलों में उपदेशामृत की वर्षा करते आप खास अजमेर भी पधारे थे। इस भ्रमण में आपने कई भव्य आत्माओं का उद्धार कर उन्हें सत्पथ पर लगाया। जिस ग्राम में आप पधारते थे जनता एकत्रित हो जाती थी तथा आपके मुख मुद्रा की अलौकिक कान्ति से आकर्षित हो अपने को धर्म पालन करने में समर्थ बनाती थी।

वि. संवत् १९६९ का चातुर्मास (अजमेर)।

इस वर्ष में आपश्री का छठा चातुर्मास राजस्थान के केन्द्र नगर अजमेर में हुआ। वहाँ आप और लालचंदजी आदि ५ साधु ठहरे हुए थे। वैसे तो आप बाल वय से ही ज्ञानोपार्जन में तल्लीन

थे तथापि पिछले ५ वर्षों में आपने साधु होकर तो ज्ञानाभ्यास में कमाल कर दिखलाया। आपको इस पंथ पर कई भर्म भी प्रकट होने लगे। आपने इस वर्ष में ज्ञान जिज्ञासुओं को पढ़ाने का कार्य भी शुरु कर दिया। भारत वर्ष के लोगों की यह साधारण टेव है कि थोड़ा ज्ञान पाते ही वे गुमानी हो जाते हैं तथा अपने को अपने दूसरे साथियों में चार इंच ऊँचा समझते हैं पर आपश्री को तो घमंडने छूआ तक भी नहीं। आपका उद्देश केवल ज्ञान सञ्चय करना ही नहीं अपितु ज्ञान प्रचार करना भी था। इसी कारण से इस चातुर्मास में आपने कई लोगों को श्री भगवती सूत्र की वाचना दी। सेठजी चन्दनमलजी व लोढाजी ढढ्ढाजी और सिंधिजी वगैरह आपकी वाचना पर बड़े ही मुग्ध थे। इसके अतिरिक्त आपने थोकड़े लिखने का कार्य भी इस चातुर्मास में प्रारम्भ कर दिया। साथ ही कई श्रावकों को भी ज्ञान सिखाना प्रारम्भ किया।

इस चातुर्मास में आपने तपस्या इस प्रकार की:—अठाई १, पचोला १, तेला ५। छुटकर उपवास तो आपने कई किये थे।

व्याख्यान में आपश्री कइ समय तक प्रातःकाल श्री ज्ञाताजी सूत्र तथा मध्याह्न में श्री भगवती सूत्र की वाचना किया करते थे। व्याख्यान में तो उपदेश की झड़ी लगजाती थी मानो ज्ञान की पीयूष वर्षा हो रही हो।

अजमेर से आप सीधे ब्यावर पधारे। इस नगर में भी आप व्या-

ख्यान दिया करते थे आप इस नगर में पधारते थे तब लोग कहते थे कि सूत्रों की जहाज आई है। ब्यावर से विहार कर आप श्रीबर, रायपुर, सोजत, बगड़ी, सेवाज, कंटालिया, पाली, बूसी, नाडोल, नारलाई, देसूरी, घाणेराव, सादड़ी, बाली तथा शिवगञ्ज होकर पुनः पाली पधारे। इस बीच में आपकी श्रद्धा शुद्ध होने लगी। यद्यपि आप स्थानकवासी थे पर अंधश्रद्धा के त्यागने की अभिलाषा उत्पन्न हो चुकी थी फिर क्या देर थी? आपकी, सोध–खोज इस विषयपर थी कि मूर्त्ति पूजा से क्या लाभ दिन ब दिन यह है, जिज्ञासा बढ़ रही थी और आप विशेषतया इसी की खोज में अन्वेषण किया करते थे कि सत्य बात क्या है? शास्त्र क्या फरमाते है? इस कारण समुदाय में कुछ थोड़ी बहुत चर्चा भी फैली हुई थी कर्मचन्दजी कनकमलजी शोभालालजी और हमारे चारित्रनायक गयवरचन्द्रजी एवं इन चारों विद्वान मुनियों की श्रद्धा मूर्त्तिपूजाकी ओर झुकी हुई थी। पूज्यजीने इन को समझाने का बहुत प्रयत्न किया पर सत्य के सामने आखिर वे निष्फल ही हुए। आपश्री पूज्यजी के साथ जोधपुर पधारे। वहाँसे गंगापुर चातुर्मास का आदेश होने से पाली, सारण, सिरीयारी और देवगढ़ होते हुए आप गंगापुर पधारे।

वि. सं. १९७० का चातुर्मास (गंगापुर)।

आपश्री का सातवाँ चातुर्मास गंगापुर में हुआ। आपने ज्ञानाभ्यास में इस वर्ष पंच संधि को प्रारम्भ किया तथा तपस्या इस प्रकार की:—अठाई १, पचोला १, तेला ३, छुटकर कई उपवास।

व्याख्यान के अन्दर आपश्री भगवतीजी सूत्र सुनाते थे तथा ऊपर से पृथ्वीचन्द्र गुणसागर का रास रोचकतापूर्वक सुनाते थे। श्रोताओं की खासी भीड़ लगजाती थी।

आपश्री के जीवन में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन करानेवाला एक कार्य भी इसी वर्ष हुआ। देवयोग से आपश्रीने यहाँ के प्राचीन भण्डार के साहित्य की खोजना की। आप को एक रहस्य ज्ञात हुआ। श्री आचारांग सूत्र की चतुर्दश पूर्वधर आचार्य भद्रबाहु-सूरिकृत निर्युक्ति में तीर्थ की यात्रा तथा मूर्त्ति पूजा का विवरण पढ़कर आप के विचार दृढ़ हुए। शुद्ध श्रद्धा के अङ्कुर हृदय में वपन हुए फिर तो स्फुटित होने की ही देर थी।

वहाँपर तेरहपन्थियों को भी आपने ठीक तरहसे पराजित किया था और कई श्रावकों की श्रद्धा भी मूर्त्ति पूजा की ओर झुका दी थी। यहाँ से विहारकर आप उदयपुर पधारे परन्तु आंखों की पीड़ा के कारण आप आगे शीघ्र न पधार सके। इसी कारण से आप ३½ साढे तीन मास पर्यंत इसी नगर में ठहरे। व्याख्यान में श्री संघ की अत्याग्रह से श्री जीवाभिगम सूत्र बांचा जा रहा था। विजयदेव के अधिकार में मूर्त्ति पूजा का फल यावत् मोक्ष होने का मूल पाठ था। साधु होकर आप जाली न बने। लकीर के फकीर न होकर सरल स्वभाव से आपने जैसा मूल पाठ व अर्थ में था सब स्पष्ट कह सुनाया। उपस्थित जनसमुदाय में कोलाहल मच गया। अंधभक्तों के पेट में चूहे कूदने लगे। लगे वे सब जोरसे हल्ला मचाने। आपने सूत्र के पाने शेठजी नन्दलालजी के सामने रख दिये और उन्होंने सभा

मे सुना दिया जिससे आम जनता को यह ख्याल हो गया कि जैन सूत्रों मे मूर्त्ति पूजा का विधिविधान जरूर है पर कितनेक लोगोंने यह शिकायत भीलाड़े पूज्यजी के पास की। वहाँ आज्ञा मिली कि शीघ्र रतलाम पहुँचो। तदनुसार उठाड़ा, भींडर, कानोड़, सादड़ी (मेवाड़) छोटी सादड़ी, मन्दसौर जावरा होते हुए आप रतलाम पहुँच गये।

वहाँ अमरचंद्रजी पीतलिया से भी मूर्त्ति पूजा के विषयपर सूक्ष्म चर्चा चलती रही। आपने सिद्धांतोंके ऐसे पाठ बतलाये कि सेठजीको चुपचाप होना पड़ा। आप वापस जावरे पधारकर पूज्यजी से मिले। आप को पूछनेपर मूर्त्ति के विषय में केवल गोलमाल उत्तर मिला। इसी सम्बन्ध में आप नगरी में शोभालालजी से मिले उन की श्रद्धा तो मूर्त्ति पूजा की ओर ही थी। इस के पश्चात् आप छोटी सादड़ी पधारे। इसी बीच में तेरहपंथियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ उन्हें पराजित कर आपश्रीने अपनी बुद्धिबलसे अपूर्व विजय प्राप्त की थी।

विक्रम संवत् १९७१ का चातुर्मास (छोटी सादड़ी)।

आपश्री का आठवाँ चातुर्मास मेवाड़ प्रान्त के अन्तर्गत छोटी सादड़ी में हुआ। जिस सोध की धुन आप को लगी हुई थी उस में आप को पूर्ण सफलता इसी वर्ष में प्राप्त हुई। स्थानीय सेठ चन्दनमलजी नागोरी के यहाँ से ज्ञाता, उपासकदृश, ऊपाई, भगवती और जीवाभिगम आदि सूत्रों की प्रतियाँ लाकर आपने उनकी टीका पर मननपूर्वक निष्पक्षभाव से विचार किया तो आप को ज्ञात हुआ कि जैन सिद्धान्त में—मूर्त्ति पूजा मोक्ष का कारण है। आपने इसी

सम्बन्ध में त्रिषटूशलाका पुरुष चरित्र, जैनकथा रत्नकोष भाग आठ उपदेश प्रासाद भाग पाँच तथा वर्धमान देशना नामक ग्रंथों का भी अध्ययन कर डाला अर्थात् उस चातुर्मासमें लगभग एक लक्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया था तिस पर भी तपस्या इस प्रकार जारी रही थी। पञ्च उपवास १, तेले ३ तथा फुटकल तप। इस प्रकार ज्ञानाभ्यास के साथ तपश्चर्या का कार्य भी जारी था, यद्यपि आप इस वर्ष रुग्ण रहे थे।

व्याख्यान में आपश्री रायपसेणीजी सूत्र बांच रहे थे। कई श्रावकोंने रतलाम पूज्यजी के पास प्रश्न भेजे किन्तु पूज्यजी की ओर से अमरचंदजी पीतलियाने ऐसा गोलमोल उत्तर लिखा कि जिससे लोगों की अभिरूचि मूर्त्ति पूजा की ओर झुक गई।

मादड़ी छोटी के गाँवों में होते हुए आप गंगापुर पधारे जहाँ कर्मचंदजीस्वामी विराजते थे। आगे ६ साधुओं सहित आप देवगढ़ बला कुकड़ा होते हुए ब्यावर पधारे। यहाँ पर भी मूर्त्ति पूजा का ही प्रसंग छिड़ा। इस के बाद आप बर, बरांटिया निंबाज, पीपाड़, विसलपुर होते हुए जोधपुर पधारे। आप के व्याख्यान में मूर्त्ति पूजा सम्बन्धी प्रश्नोत्तर ही अधिक होने लगे। इस चर्चा में आपने साफ़ तौरपर फरमा दिया कि जैन शास्त्रों में स्थान स्थान मूर्त्ति पूजा का विधान और फल बतलाया है। अगर किसी को देखना हो तो मैं बतलाने को तैय्यार हूँ। अगर उस सूत्रों के मूल पाठ कों न माने या उत्सूत्र की परूपना करने वालों को मैं मिथ्यात्वी समझता हूँ उनके साथ मैं किसी प्रकार का व्यवहार रखना भी नहीं चाहता हुँ यह विषय यहाँ तक चर्ची गई कि आप

एकले रहना भी स्वीकार कर लिया । इसपर साथ के साधुओं ने कहा कि हम भी जानते हैं कि जैन शास्त्रोंमें मूर्त्ति पूजा का उल्लेख हैं पर हम इस ग्रहण किया हुए वेष को छोड़ नहीं सक्ते है । बस इसी कारण से आप उन का साथ त्याग वहाँसे महामन्दिर पधारगये । वहाँसे तिंवरी गये वहाँपर श्रीयुत् लूणकरणजी लोढ़ा व आशकरणजीमुहत्ता ने आपको सहयोगदिया । तिंवरी के स्थानकवासियों की आग्रह से चातु-र्मास तिंवरी मे ही होना निश्चय हुआ. तथापि आप कई श्रावकों के साथ ओशियों तीर्थकी यात्रा के लिये पधारे । यहाँपर परम योगिराज मुनिश्री रत्नविजयजी महाराजसे भेंट हुई । आप श्रीमान् भी १८ वर्ष स्थानकवासी समुदाय में रहेहुए थे । वार्तालाप होनेसे परस्पर अनु-भव ज्ञान की वृद्धि हुई । हमारे चरित्रनायकजीने दीक्षाकी याचना की इसपर परमयोगिराज निस्पृही गुरुमहाराजने फरमाया कि तुम यह चातुर्मास तो तिंवरी करो और सब समाचारियों को पढ़लो ता कि फिर अफसोस करना नहीं पड़े । आपश्री करीबन् एक मास उस निवृति दायक स्थान पर रहे । उस प्राचीन तीर्थका उद्धार तथा इस स्थान पर एक छात्रालय—इन दोनों कार्यों का भार गुरुमहाराजने हमारे चरित्रनायकजी के सिर पर डालदिया गया और आपश्री इनकार्यों को प्रवृत्ति रूप में लाने के लिये बहुत परिश्रम भी प्रारंभ कर दिया । मुनिजीने वहाँपर स्तवन संग्रह पहला भाग और प्रतिमा छत्तीसी की रचना भी करी थी ।

विक्रम संवत् १९७२ का चातुर्मास (तिंवरी) ।

मुनि श्री रत्नविजयजी महाराज के आदेशानुसार आपने अपना नववाँ चातुर्मास तिंवरी में किया । व्याख्यान में आप श्री

भगवती जी सूत्र पर इस प्रकार सतर्क व्याख्या करते थे कि श्रोताओं के मनसे संदेह कोसों दूर भागता था। आवश्यक्ता को अनुभव कर आपने संवेगी आम्नाय का प्रतिक्रमण सूत्र शीघ्र ही कंठाग्र करलिया आपने उपदेश सुनाकर कई भव्य जनों को सत् पथ बताया।

पाठकों को ज्ञात होगा, आपश्री जिस प्रकार अध्ययन करने में परिकर से सदा प्रस्तुत रहते थे उसी प्रकार आप साहित्य संदर्भ कर ज्ञानका प्रचार भी सरल उपाय से करना चाहते थे। इस चातुर्मास में तीन पुस्तकें सामयिक आवश्यक्तानुसार आपने रची, जिनके नाम सिद्धप्रतिमामुक्तावली, दान छत्तीसी और अनुकम्पा छत्तीसी थे।

जब सादड़ी मारवाड़ के श्रावकोंने प्रतिमा छत्तीसी प्रकाशित कराई तो स्थानकवासी समाज की ओर से आक्षेप तथा अश्लील गालियों की वृष्टि शुरु की गई थी। आप की इस रचना पर वे अकारण ही चिढ़ गये क्योंकि उनकी पोल खुल गई थी।

निंवरी से विहार कर आप ओशियों पधारे। वहाँ पर शांत मूर्त्ति परमयोगीराज निरापेक्षी मुनि श्री रत्नविजयजी महाराज के पास मौन एकादशी के दिन पुनः (जैन) दीक्षा ली और जैन श्वेताम्बर मूर्त्ति पूजक श्री संघ की उसी दिन से गत दिवस सेवा करने में निरत रहते हैं। गुरुमहाराज की आज्ञा से आपने उपकेश गच्छ की क्रिया करना आरम्भ की कारण इसी तीर्थपर आचार्य रत्नप्रभसूरिने आप के पूर्वजों को जैन बनाया था। धन्य है ऐसे निर्लोभी महात्मा को कि जो शिष्य की लालसा त्याग पूर्वाचार्यों के प्रति कृतज्ञता बतला-

ने को पथप्रदर्शक बने। आपने दीक्षित होते ही शिक्षा सुधार की ओर खूब लक्ष्य दिया और तत्काल गुरुमहाराज की कृपा से ओशियों में जैन विद्यालय बोर्डिंग सहित स्थापित करवाया और उस के प्रचार में लग गये। बिना छात्रों की पर्याप्त संख्या के विद्यालय का कार्य शिथिल रहेने लगा। अतएव आपने आसपास के अनेक गाँवों में भ्रमण कर अनेक विद्यार्थियों को इस छात्रावास में प्रविष्ट कराए। इस कार्य में आपश्रीने तथा मुनीम चुन्नीलालभाईने अकथनीय परिश्रम किया। लोगों में यह मिथ्याभ्रम फैला हुआ था कि ओशियों में जैनी रात्रि-भर ठहर ही नहीं सकता। आपने उपदेश दे माताओं को इस बातके लिये तत्पर किया कि वे अपने बालक इस विद्यालय में भेजें। फिर फलोधी श्री संघ के अति आग्रह करने पर आप को लोहावट होते हुए वहाँ पधारना पड़ा।

आपश्रीने सब से पहले ज्ञान प्रचार के लिये जोर सोर से उपदेश दिया। फलस्वरूप में सेठ माणकलालजी कोचरने अपनी ओर से जैन पाठशाला खोलने का वचन दिया। आपश्री के समाचार स्थानकवासी साधु रूपचंदजी को मिलते ही वे ओशियों आ कर वेष परिवर्तन कर मुनिश्री की सेवामें फलोधी आए उन को पुनः दीक्षा दे अपना शिष्य बना आपश्रीने रूपसुन्दरजी नाम रक्खा। पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य और वरघोड़ा वगैरह से जैन शासन की प्रभावना अच्छी हुई। उसी समय स्थानकवासी साधु धूलचन्दजी को संवेगी दीक्षा दे रूपसुन्दरजी के शिष्य बना के उन का नाम धर्मसुन्दर रखा गया था इस वर्ष में तिवरीवालों की तरफ से पुस्तकों के लिये सहायता भी मिली।

१००० श्री गयवरविलास ।

७००० प्रतिमा छत्तीसी ।

१००० सिद्धप्रतिमा मुक्तावलि ।

विक्रम संवत् १९७३ का चातुर्मास (फलोधी)।

श्रावकों के आग्रह को स्वीकारकर आपश्रीने फलोधी कसबे में अपना दसवाँ चातुर्मास किया। लोगों के हृदय में उत्साह भरा था। चातुर्मासभर अपूर्व आनन्द रहा। प्रत्येक श्रावक प्रफुल्ल वदन था। व्याख्यान में आप 'पूजा प्रभावना वरघोड़ा दिवके ही समारोह के साथ' भगवतीजी सूत्र मनोहर वाणी से सुनाते थे। साथ ही आप शिक्षा प्रचार का उपदेश भी देते थे जिस के फलस्वरूप आषाढ़ कृष्णा ६ को वहाँ जैन पाठशाला की स्थापना हुई। साथ ही में दो और महत्वशाली संस्थाएँ स्थापित हुई जो उस समय मारवाड़ प्रान्त के लिये अनोखी बात थी। साहित्य की ओर रुचि आकर्षित करने के उद्देश से फलोधी श्री संघ की ओर से रु. २०००) को फण्ड से " श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला " की स्थापना बड़े समारोह से हुई। एक ही वर्ष में इस माला द्वारा २८००० पुस्तकें प्रकाशित हुई तथा जैन लाइब्रेरी की स्थापना करवा के नवयुवकों के उत्साह में वृद्धि की।

१००० गयवर विलास दूसरी बार। २००० दादा साहब की पूजा।
१०००० प्रतिमा छत्तीसी तीसरी बार। १००० चर्चा का पब्लिक नोटिस।
२००० दान छत्तीसी। १००० पैंतीस बोल संग्रह।

२००० अनुकम्पा छत्तीसी । १००० देवगुरु वंदन माला ।
१००० प्रश्नमाला । १००० स्तवन संग्रह दूसरा भाग।
१००० स्तवन संग्रह प्रथम भाग । १००० लिङ्ग निर्णय बहत्तरी ।

२८००० सब प्रतिऐं ।

फलोधीसे विहार कर । अखेचन्दजी वंदादि के साथ पोकरन लाटी हो जैसलमेर यात्रार्थ पधारे । वहाँ की यात्राकर अमृतसर लोद्रवाजी ब्रह्मसर की यात्राकर पुनः जैसलमेर पधारे । आपने अपनी प्रकृत्यानुसार वहाँ के प्राचीन ज्ञान भण्डार का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया जिसमें ताड़पत्रों पर लिखे हुए जैन शास्त्रों के अन्दर मूर्ति विषयक विस्तृत संख्या में प्रमाण मिल आये ; वहाँ से लौटकर आप फलोधी आये वहाँ से खीचन्द पधारे । वहाँपर एक बाई को आप के करकमलों से जैन दीक्षा दी तथा पूज्य श्रीलालजी से मुलाकात हुई पुनः फलोधी में भी मिलाप हुआ वहाँ से लोहावट पधारे स्तवन संग्रह प्रथम भाग दूसरीवार १००० कॉपी मुद्रित करवाई वहाँ से ओशियों तीर्थ आये वहाँ के बोर्डींग की व्यवस्था शिथिलसी देख आप को इस बात का बड़ा रंज हुआ । फिर आपने वहाँपर तीन मास टहरकर बड़े परिश्रम से वहाँ का सब इन्तजाम ठीक सिलसिलेवार बना के उस की नींव को मजबूत कर दी । आपश्री के प्रयत्न से श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्प-माला नामक संस्था स्थापित की जो आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपकार की स्मृति करा रही है वहाँ से आप तिंवरी और जोधपुर पधारे ।

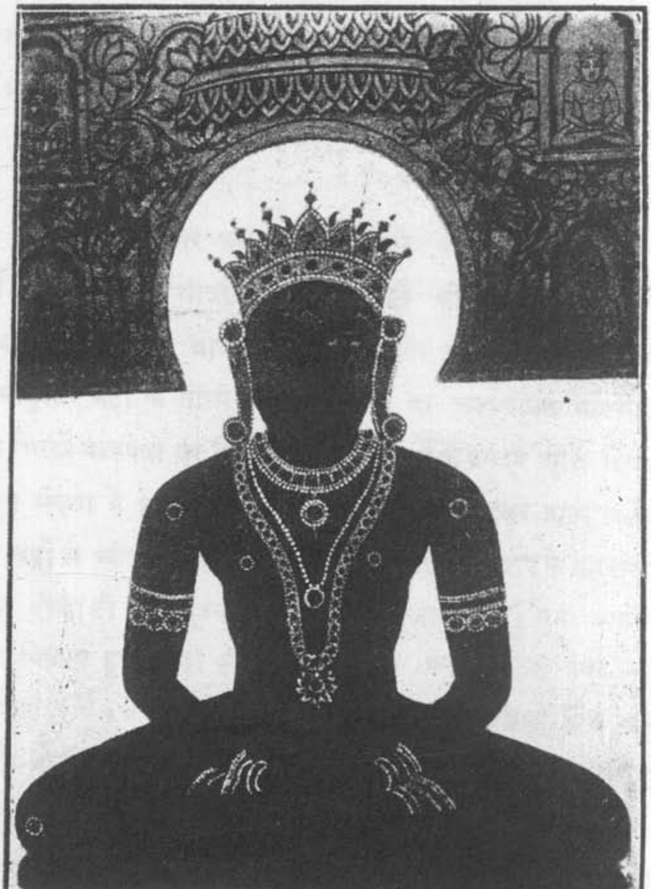

श्री केसरीयानाथजी महाराज (धूलेवा) ।

आनंद प्रिं. प्रेस–भावनगर.

विक्रम संवत् १९७४ का चातुर्मास (जोधपुर)

आपश्री का ग्यारहवाँ चातुर्मास जोधपुर में हुआ था। इस वर्ष आपने व्याख्यान में श्री भगवतीजी सूत्र फरमाया था। आप के व्याख्यान में खासी भीड़ रहती थी। आप की व्याख्यान पद्धति बड़ी प्रभावोत्पादक थी। श्रोता सदा सुनने को आतुर रहते थे। समझाने की प्रणाली इस कद्र उत्तम थी कि लोग आप के पास आकर अपने भ्रम को दूर कर सुपथ के पथिक बनते थे। इतना ही नहीं पर एक बाईको संसार से विमुक्त कर आपने उसे जैन दीक्षा भी दी थी।

इस चातुर्मास में आपने तपस्या इस भांति की थी। पचोला १, तेला १, इस के अतिरिक्त फुटकल तपस्या भी आप किया करते थे। तपस्या के साथ ज्ञान प्रचार के हित साहित्य में भी आप की अभिरुचि दिन प्रतिदिन बढ़ती रही। इस चातुर्मास में कई पुस्तकें तैयार करने के सिवाय निम्नलिखित पुस्तकें मुद्रित भी हुई।

१००० स्तवन संग्रह तृतीय भाग। ५०० डंके पर चोट।

चातुर्मास समारोहपूर्वक बिताकर आप सेलावास रोहट हो पाली पधारे। वहाँ बीमारी फैली हुई थी। वहाँ आपश्रीने यतिवर्य श्रीमाणिक्यसुन्दरजी प्रेमसुन्दरजी के द्वारा शान्तिस्नात्र पूजा बनवाई। फिर वहाँ से विहारकर आप बूसी, नाडोल, वरकाणा, खीमेल, धणी, मुंडारा होते हुए सादड़ी पधारे। यहाँ से स्तवन संग्रह प्रथम भाग तीसरी बार प्रकाशित हुआ। सादड़ी कसबे में आपने सार्वजनिक व्याख्यान भी दिये। यहाँ एक मास पर्यन्त

ठहरकर आपश्रीने मेवाड़ की ओर पदार्पण किया। जोधपुरनिवासी भद्रिक सुश्रावक भंडारीजी चन्दनचन्दजी भी साथ थे। चतुर्विध संघ सह आपश्री भानपुरा और सायरे होते हुए उदयपुर पधारकर केशरीयानाथजी की यात्रार्थ पधारे। वहाँ से लौटकर आप पाल, ईडर, आमनगर और प्रान्तीज होते हुए अहमदाबाद पधारे। जब अहमदाबाद के श्रावकों को आप के पधारने की सूचना मिली तो वे विस्तृत संख्या में सम्मिलित हुए तथा उन्होंने मुनिश्री का नगर प्रवेश बड़े समारोह से स्वागत करते हुए करवाया। इस कार्य में यहाँ के मारवाड़ी संघने विशेष भाग लिया था। पुनः खेड़ा, मातर, संजीतरा, सुन्दरा, गम्भीरा और बडौदे होते हुए आप झग-डियाजी तीर्थपर पधारे। वहाँ गुरुवर्य श्री रत्नविजयजी के आपने दर्शन किये। वहाँ से पंन्यासजी हर्षमुनिजी तथा गुरुमहाराज के साथ सूरत पधारे जहाँ आप का बड़ा धूमधाम से अपूर्व स्वागत हुआ।

विक्रम संवत् १९७५ का चातुर्मास (सूरत)।

आपश्री का बारहवाँ चातुर्मास गुरुसेवा में सूरत नगर के बड़े चौहट्टे में हुआ। व्याख्यान में आपश्री गुरु आज्ञा से भगवतीजी की वाचना सुनाते थे। यद्यपि आप इस समय मारवाड़ प्रान्त से दूर थे तथापि मारवाड़ के जैनियों के उत्थान की तथा ओशियाँ छत्रालय की चिन्ता आप को सदा लगी रहती थी। इसी हेतु आपने उपदेश देकर ओशियाँ स्थित जैन वर्धमान विद्या-

लय को बहुतसी सहायता पहुंचवाई। धन्य है ऐसे विद्याप्रेमी मुनिराज को! जो ऐसी आवश्यक संस्थाओं की सुधि समय समय पर लेते रहते हैं।

सूरत में रहे हुए कई लोगोंने ईर्षा के वशीभूत हो यह आक्षेप किया कि मुनिश्रीजी भगवती वाचते है पर उन्होंने बड़ी दीक्षा किस के पास ली? इस पर गुरुमहाराजश्री रत्नविजयजी महाराजने आम व्याख्यान में फरमाया कि मुनि ज्ञानसुन्दरजी को मैंने बड़ी दीक्षा दी और उपकेश गच्छ की क्रिया करने का आदेश भी मैंने दिया अगर किसी को पूछना हो तो मेरे रूबरू आकर पूछ ले। पर ऐसी ताकत किस की थी कि उन शास्त्रवेत्ता महा विद्वान और परम योगिराज के सामने आके चूं भी करे।

हमारे चरित्रनायकजी की व्याख्यान और स्याद्वाद शैली से वस्तुधर्म प्रतिपादन करने की तरकीब जितनी गंभीर थी उतनी ही सरल थी कि अन्य दो उपाश्रय में श्रीभगवती सूत्र वांचा रहा था पर गोपीपुरा, सगरामपुरा, छापरियासेरी, हरीपुरा, नवापुरा और रांदेर तक के श्रावक बड़े चौहट्टे-आ-आ कर श्रीभगवती सूत्र का तत्वामृत पान कर अपनी आत्मा को पावन बनाते थे।

इस चातुर्मास में हमारे चरितनायकजी की रचित १२००० पुस्तकें इस प्रकार प्रकाशित हुई।

५०० बत्तीस सूत्र दर्पण। १००० जैन दीक्षा।
१००० जैन नियमावली। १००० प्रभु पूजा।

१००० चौराशी आशातना। १००० व्याख्याविलास प्रथम भाग।
१००० आगमनिर्णय प्रथमांक। १००० शीघ्रबोध प्रथम भाग।
१००० चैत्य वंदनादि । १००० ,, द्वितीय भाग।
१००० जिन स्तुति। १००० ,, तृतीय भाग।
५०० सुखविपाक मूल सूत्र।

१२००० कुल प्रतिएं।

इस चतुर्मास में आपश्रीने इस प्रकार तपस्या की। अठाई १, पचोला १, तेले ११। धन्य! आप कितनी निर्जरा करते हैं। जहाँ आप साहित्य सुधार के कार्य में संलग्न रहते हैं वहाँ काया की भी परवाह नहीं करते। मारवाड़ी जैन समाज कों सरल ज्ञान द्वारा ऐसें महात्माओंने ही जगृत किया है। इन के जीवन के प्रत्येक कार्य में दिव्यता का आविर्भाव दिख पड़ता है।

सूरत से विहार कर गुरुमहाराज की सेवा में आप कतारग्राम, कठोर, झगड़ियाजी तीर्थ आये, वहाँ से श्रीसिद्धगिरि की यात्रार्थ गुरुश्री से आज्ञा लेके अंकलेसर, जम्बुसर, कावी, गंधार, भरूँच, खम्भात, धोलका, वला, सीहोर, भावनगर और देव होते हुए श्रीपालीताणाजी पधार कर सिद्धगिरि की यात्रा कर आपने मानवजीवन को सफल किया। जो सुरत में आपने मेझरनामा लिखना प्रारंभ किया था वह अनुभव के साथ इसी पवित्र तीर्थ पर समाप्त किया था। फिर हमारे चरित नायकजी अहमदाबाद होते हुए खेड़ा मात्र में सदुपदेश सुनाते हुए पुनः झगड़ियाजी पधार गुरु महाराज की सेवा करने लगे।

विक्रम संवत् १९७६ का चातुर्मास (झगडिया तीर्थ)।

आपश्रीने इस वर्ष अपना तेरहवाँ चातुर्मास एकान्त निस्तब्ध स्थान श्री झगडिया तीर्थ पर करना इस कारण उचित समझा कि यहाँ का पवित्र वातावरण अध्ययन एवं साहित्यावलोकन के लिये बहुत सुविधा जनक था। इसके अतिरिक्त यहाँ का जल वायु स्वास्थ्यप्रद भी था। पूर्वोक्त लाभ जान के गुरु महाराजने भी आज्ञा दे दी और आपने सीनोर में चातुर्मास किया इस ग्राम में श्रावकों के केवल तीन ही घर थे। इस चतुर्मास में आप संस्कृत मार्गोपदेशिका प्रथम भाग का अध्ययन कर गये। साथमें तपस्या भी उसी क्रम से जारी थी। अष्टोपवास १, पंचोले २, अठम ११, छठ ६ तथा कई उपवास भी हमारे चरितनायकजीने किये थे।

यद्यपि यहाँ के स्थानीय श्रावक अल्प संख्या में थे तथापि निकटवर्ती ४० गाँवों से प्रायः कई श्रावक पर्यूषण पर्व में आप श्री के व्याख्यान में सम्मिलित हुए। वरघोडे और स्वामीवात्सल्य का सम्पादन भी पूर्ण आनन्द से हुआ था तथा ज्ञान खाते के द्रव्य में आशातीत वृद्धि भी हुई। बंबई से सेठ जीवनलाल बाबू सपत्नी आकर यहाँ दो मास तक ठहरे तथा आप की सेवाभक्ति का निरन्तर लाभ लेते रहे।

इस वर्ष यह साहित्य आपश्री का बनाया हुआ प्रकाशित हुआ। १००० शीघ्रबोध चतुर्थ भाग। यही पञ्चम भाग १०००

छठा भाग १००० तथा सातवाँ भाग १२००, दशवेकालिक मूल सूत्र १०००, मेफरनामा ३५०० गुजराती भाषा में। इस प्रकार कुल ८५०० प्रतिएँ प्रकाशित हुई।

गुरु महाराज का चातुर्मास सीनोर में था। गुरु महाराज जब संघ के साथ यहाँ पधारे तो आपश्री सामने पधारे थे। संघ का स्वागत खूब धामधूम से हुआ। गुरु महाराजने इच्छा प्रकट की कि मुनीम चुनीलाल भाई के पत्र से ज्ञात हुआ है कि ओशियां स्थित जैन छात्रावास का कार्य शिथिल हो रहा है अतएव तुम शीघ्र ओशियाँ जाओ, वहाँ ठहर कर संस्था का निरीक्षण करो। यद्यपि आप की इच्छा गुरुश्री के चरणों की सेवा करने की थी पर गुरु आज्ञा को शिरोधार्य करना आपने अपना मुख्य कर्त्तव्य समझ पादरा, मातर, खेड़ा, अहमदाबाद, कडी, कलोल, शोरीसार, पानसर, भोंयणी, मेसाणा, तारंगा,* दांता, कुम्भारिया

---

* गुजरात विहारके बीच आचार्य श्री विजयनेमीसूरि आ० विजयकमलसूरि आ० विजयधर्मसूरि आ० विजयसिद्धिसूरि आ० विजयवीरसूरि आ० विजयमेघसूरि आ० विजयकमलसूरि आ० विजयनीतिसूरि आ० सागरानंदसूरि आ० बुद्धिसागरसूरि उपाध्यायजी वीरविजयजी उ० इन्द्रविजयजी उ० उदयविजयजी पन्यास गुलाबविजय-जी पं० दानविजयजी पं० देवविजयजी पं० लाभविजयजी पं० ललितविजयजी पं० हर्षमुनिजी शान्तमूर्त्ति मुनिश्री हंसविजयजी मु० कर्पूरविजयजी आदि करीबन् दो सौ महात्माओं से मिलाप हुआ। परस्पर स्वागत सम्मान और ज्ञानगोष्टि हुई कई महात्मा तो उपकेशगच्छ का नाम तक भी नहीं जानते थे अतः आपश्रीने नम्रता भाव से आचार्यश्री स्वयंप्रभसूरि और पूज्यपाद रत्नप्रभसूरि का जैन समाज पर का परमोपकार ठीक तौर से समझाया जिस से सब के हृदय में उन महापुरुषों के प्रति हार्दिक भक्तिभाव पैदा हुआ।

आबू, सिरोही, शिवगंज, सांडेराव, गुन्दोज, पाली, जोधपुर, तिंवरी होते हुए ओशियाँ पधारे वहाँ का वातावरण देख आपको बहुत खेद हुआ। फिर—आपके परिश्रम व उपदेश से सब व्यवस्था ठीक हो गई। छात्रालय के मकान का दुःख भी दूर हो गया।

आपके पास वाली हस्तलिखित पुस्तकें तथा यतिवर्य लाभसुन्दरजी के देहान्त होनेपर उनकी पुस्तकें तथा अन्य छापे की पुस्तकों को सुरक्षित रखने के पवित्र उद्देश से ओशियाँ तीर्थपर आपने श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान भण्डार की स्थापना की तथा स्थानीय उपद्रव को प्राचीन समय में दूर करानेवाले आचार्य श्री ककसूरिजी महाराज के स्मरणार्थ वहाँ श्रीककक्रांति लाइब्रेरी स्थापित की। दो मास तक आपने बोर्डिंग की ठीक सेवा बजाई पर आपश्री की अधिकता यह हैं कि इतने कार्य करते हुए भी किसी स्थानपर ममत्व के तंते में न फस कर बिलकुल निर्लेप ही रहते हैं बाद फलोधी संघ के आग्रह से आप लोहावट होते हुए फलोधी पधारे।

विक्रम संवत् १९७७ का चातुर्मास (फलोधी)।

आपश्री का चौदहवाँ चातुर्मास फलोधी नगर में हुआ। व्याख्यान में आपश्री भगवतीजी सूत्र बड़ी मनोहर वाणी से सुनाते थे। श्रोताओं का मन उल्लास से तरंगित हो उठता था। उनका जी व्याख्यानशाला छोड़ने को नहीं चाहता था। पुस्तकजी का जुलूस बड़े विराट् आयोजन से निकला था जिसकी शोभा देखते ही बनती थी। जिन्होंने इस वरघोड़े के दर्शन कर अपने नैत्र तृप्त किये वे वास्तव में बड़े भाग्यशाली थे।

इस चातुर्मास में आपने इस भाँति तपश्चर्या की थी जो सदा की तरह ही थी। पचोला १, अठ्ठम ३ तथा इसके अतिरिक्त कई उपवास भी आपश्रीने किये थे।

जितना परिश्रम और प्रेम मुनिश्री का साहित्य प्रचारकी ओर है उतना शायद ही और किसी मुनिराज का इस समय होगा। आप के द्वारा जितना साहित्य प्रथित होता है वह सब का सब साधारण योग्यतावाले श्रावक के भी काम का होता है। यह आपके साहित्य की विशेषता है। अपने पांडित्य के प्रदर्शनार्थ आप कभी ग्रंथ को क्लिष्ट नहीं बनाते। इस वर्ष इतना साहित्य मुद्रित हुआ।

१००० शीघ्रबोध भाग ८ वाँ।	१००० स्तवन संग्रह भाग २ रा दूसरी बार।
१००० नंदीसूत्र मूलपाठ।	१००० लिङ्गनिर्णय बहत्तरी,,
१००० मेझरनामा हिन्दीसंस्करण।	१००० स्तवनसंग्रह भा.३रा,,
२००० तीननिर्मायक उत्तरोंकाउत्तर।	१००० अनुकंपा छत्तीसी ,,
१००० ओशियाँ ज्ञान भण्डार की सूची।	१००० प्रश्नमाला ,,
	१००० स्तवन संग्रह भाग १ चतुर्थ बार।
१००० तीर्थ यात्रा स्तवन।	
१००० प्रतिमा छत्तीसी चतुर्थ वार।	५००० सुबोध नियमावली।
१००० दान छत्तीसी दूसरी बार।	१००० शीघ्रबोध भाग १ दूसरी बार।

२१८०० सब प्रतिएँ।

इस से स्पष्ट प्रकट होता है कि इस क्षेत्र में आपश्री एकेले होने पर भी कितनी तेज़ी से कार्य कर रहे हैं। आपने संगठन की आवश्यक्ता समझ कर यहाँ "जैन नवयुवक प्रेम मण्डल" की स्थापना की।

विक्रम संवत १९७८ का चातुर्मास (फलोधी)।

आपश्री का पंद्रहवाँ चातुर्मास भी कारण विशेष से पुनः इसी नगर में हुआ। व्याख्यान में आप नित्य प्रातःकाल उत्तराध्ययनजी सूत्र और आगमसार की गवेषणा पूर्वक वांचना करते थे। आपकी समझाने की शक्ति इस ढंग की थी जो संदेह को भेद डालती थी। आगमामृतका पान करा कर आपने परम शांति का साम्राज्य स्थापित कर दिया था। आप एक आगम पढ़ते समय अन्य विविध आगमों का इस प्रकार समयोचित वर्णन करते थे कि हृदय को ऐसा प्रतीत होता था मानो सारे आगमों की सरिता प्रवाहित हो रही है।

ज्ञानाभ्यास के साथ इस चातुर्मास में आपने इस प्रकार तपस्या भी की थी। तेले ५, छठ्ठ ३ तथा फुटकुल उपवास आदि।

पुस्तकों का प्रकाशन इस बार इस प्रकार हुआ। आपश्री की बनाई हुई पुस्तकें जैन समाज के सम्मुख उपस्थित हो रही थीं। आपके समय का अधिकाँश भाग लिखने में बीतता था। यह प्रयत्न अब तक भी अविरल रूप से जारी है। ऐसा कोई वर्ष नहीं बीतता कि कमसे कम ४—५ पुस्तकें आप की बनाई हुई प्रकट न हों—इस वर्ष की पुस्तकें—

१००० शीघ्रबोध भाग नवमाँ।
१००० ,, ,, दसवाँ।
१००० प्रतिमा छत्तीसी पाँचवी बार (ज्ञान विलास में)।
१००० दान छत्तीसी। तीसरी बार।
१००० अनुकम्पा छत्तीसी ,, ।
१००० प्रश्नमाला ,, ।
१००० स्तवन संग्रह प्रथम भाग तीसरी बार।
१००० ,, दूसरा भाग ,,
१००० उपकेशगच्छ लघु शब्दावली।
१००० जैन दीक्षा तीसरी बार।
१००० व्याख्या विलास III
१००० अमे साधु शा माटे थया ?
१००० राई देवसी प्रतिक्रमण
१००० कक्का बत्तीसी।

१००० स्तवन संग्रह तीसरा भाग तीसरी बार।
१००० देवगुरु वन्दन माला ,,।
१००० लिङ्ग निर्णय बहत्तरी,,।
१००० जैन नियमावली ,,।
१००० सुबोध नियमावली ,,।
१००० प्रभु पूजा ,,।
१००० चौरासी आशातना ,,।
१००० चैत्यवंदनादि ,,।
१०६० सज्झाय संग्रह। ,,।
१००० सुबोध नियम ,,।
१००० व्याख्या विलास II
१००० ,, IV
१००० ,, III
१००० बिनती शतक।

२८००० कुल प्रतिएँ।

अट्ठाई महोत्सव, वरघोडा, स्वामीवात्सल्य, पूजा, प्रभावना इत्यादि धर्मकृत्य बड़े समारोह से हुए। आपके उपदेश से जेसलमेर का संघ १००० यात्रियों सहित निकला था। इस संघ का कार्य आपकी व्यवस्था से निर्विघ्नतया सम्पादन हुआ था। आपकी यह बढ़ती धर्मद्रोहियों से नहीं देखी गई। उन्होंने कुछ अनुचित

काम आप को बदनाम करने के लिये किये पर अन्त में वही नतीजा हुआ जो होना चाहिये था। धर्म ही की विजय हुई। विघ्नसंतोषी नत मस्तक हुए। आपने इस वर्ष यहाँ श्रीरत्नप्रभाकर प्रेमपुस्तकालय नामक संस्था को जन्म दिया।

विक्रम संवत १९७९ का चातुर्मास (फलोधी)।

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज को अपना सोलहवां चतुर्मास फलोधी करना पड़ा। आप श्री व्याख्यानमें श्री भगवतीजी सूत्र सुनाकर आगमों को सुगम रीतिसे समझाते थे। आपकी स्मरण शक्ति की प्रखरता पाठकों को अच्छी तरहसे पिछले अध्यायों के पठनसे ज्ञात हो गई होगी। आपकी इस प्रकार एक विषयपर चिरकाल की स्थिरता वास्तव में सराहनीय है। मिथ्यात्वके घोर तिमिरको दूर करने में आपकी वाक्सुधा सूर्य समान है। उस समय सारे मिथ्यात्वी आगमरूपी दिवाकर की उपस्थिति में उडुगण की तरह विलीन हो गये थे।

इस चतुर्मास में आपने पक्षोपवास १, तेले ३ तथा बेले २ किये थे। फुटकर उपवास तो आपने कई किये थे।

इस वर्ष निम्न लिखित पुस्तकें मुद्रित हुई जिनकी जैन समाज को नितान्त आवश्यक्ता थी। विशेष कर मारवाड़ के लोगों के लिये इस प्रकार पुस्तकों की प्रचुरता होते देखकर किसे हर्ष नहीं होगा ? साधुओं का समागम कभी कभी ही होता है पर जिस घरमें एक बार किसी पुस्तकने प्रवेश किया कि वह ज्ञान

करानेके लिये सदैव तैयार रहती है । न कभी इन्कार करती है न थकती ही है । इस वर्ष—

१०००	शीघ्रबोध भाग ११ वाँ	१०००	शीघ्रबोध भाग १८ वाँ
१०००	,, ,, १२ वाँ	१०००	,, ,, १९ वाँ
१०००	,, ,, १३ वाँ	१०००	,, ,, २० वाँ
१०००	,, ,, १४ वाँ	१०००	,, ,, २१ वाँ
१०००	,, ,, १५ वाँ	१०००	,, ,, २२ वाँ
१०००	,, ,, १६ वाँ	१०००	,, ,, २३ वाँ
१०००	,, ,, १७ वाँ	१०००	,, ,, २४ वाँ
५०००	द्रव्यानुयोग प्र. प्र. प्रथमवार	१०००	,, ,, २५ वाँ
१०००	द्रव्यानुयोग प्र. प्र. दूसरीवार	१०००	आनंदघन चौवीसी
१०००	वर्णमाला ।	१०००	हितशिक्षा प्रश्नोत्तर ।
१०००	तीन चतुर्मास–दिग्दर्शन ।	२५०००	कुल प्रतियें ।

यहाँ के श्री संघने उत्साहित करीबन् होकर ५०००) पांच हजार रुपये खर्च कर दिव्य समवसरण की रचना की थी । यह एक फलोधी की जनता के लिये अपूर्वावसर था । जैनधर्म की उन्नति में अलौकिक वृद्धि अवर्णनीय थी । श्रावकों का उत्साह सराहनीय था । आपश्रीने इन तीन वर्षों में ३७ आगमों की वाचना तथा १४ प्रकरण व्याख्यानद्वारा फरमाए थे । आपने इस वर्ष कई श्रावकों को धार्मिक ज्ञानाभ्यास भी कराया था । प्रतिक्रमण–प्रकरण और तत्वज्ञान ही आपके पढ़ाये हुए मुख्य विषय थे । फल स्वरूपमें

आज फलोधी के श्रावक कर्मग्रन्थ और नयचक्र सार जैसे द्रव्यानुयोग के महान् ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद कर जनताकी सेवामें रख चुके हैं फलोधी नगरमें लगातार आपको तीन चौमासो होनेसे धार्मिक सामाजिक कार्यों में बहुत सुधार हुआ। जनतामें नव चेतन्यताका प्रादुर्भाव हुआ जैसलमेरका संघ, समवसरण की रचना, अठाई महोत्सव, स्वामिवात्सल्य, पूजा प्रभावना और पुस्तक प्रचार में श्री संघने करीबन् रु ५००००) का खर्चाकर अनंत पुन्योपार्जन किया था इन तीनों चतुर्मासों का वर्णन संक्षिप्त में एक कविने इस प्रकार किया है।

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी के तीन चातुर्मास फलोधी नगर में हुए।

॥ दोहा ॥

अरिहन्त सिद्ध सूरि नमुं, पाठक मुनिके पाय।
गुणियों के गुणगान से, पातिक दूर पलाय ॥ १ ॥

चाल लावनीकी।

श्री ज्ञानसुन्दर महाराज बड़े उपकारी—बड़े उपकारी।
मैं वन्दु दो कर जोड़ जाउँ बलिहारी। श्री ज्ञान०। टेर।

पँवार वंश से श्रेष्टि गोत्र कहाया।
वैद्य मुतों की पदवि राज से पाया॥
नवलमलजी पिता रुपाँदे माता।
बीसलपुरमें जन्म पाये सबसाता॥
विजय दशमि सेंतीस साल सुखकारी॥ श्री ज्ञान० ॥ १ ॥

गज सुपनासे जो नाम गयवर दीनो ।
साल चौपनमे विवाह आपको कीनो ॥
आठ वर्ष लग भोग संसार के भोगी ।
फिर स्थानकवासी में आप भये हैं योगी ।
त्रेसठ सालमें भए मुनिपद धारी ॥ श्री ज्ञान० ॥ २ ॥

आगमपर पूरा प्रेम कण्ठस्थ कर राचे ।
तीस सूत्रोंपर टेबा[1] सबको वांचे ॥
जाणी मिथ्या पन्थ सुमति घर आये ।
तीर्थओशियों रत्नविजय गुरु पाये ।
साल बहत्तर सुन्दर ज्ञान के धारी ॥ श्री ज्ञान० ॥ ३ ॥

फलोधी[2] चोमासों जोधपुरमें बीजो ।
सूरत गुरु के पास चौमासो तीजो ॥
सिद्धगिरी की यात्राको फल लीनो ।
चौथो चौमासो जाय झघडिया कीनो ॥
करे ज्ञान ध्यान अभ्यास सदा हितकारी ॥ श्री ज्ञान० ॥४॥

ग्राम नगर पुर पाटण विचरंत आये ।
गाजा बाजा से नगरें प्रवेश कराये ॥
धन भाग्य हमारे ऐसे मुनिवर पाये ।
साल सीतंतर चौमासो यहाँ ठाये ॥
नर नारी मिलके आनन्द मनाया भारी ॥श्री ज्ञान० ॥५॥

---

१ मूल सूत्रों की संक्षिप्त भाषा. २ फलोधी.

सूत्र भगवती व्याख्यान द्वारा फरमावे ।
विस्तारपूर्वक अर्थ खूब समझावे ।
तपस्याकी लगी है झड़ी अच्छा रंग वर्षे ।
पौषध पंचरंगी कर कर श्रावक हर्षे ।
शासन पर पूरा प्रेम उन्नति भारी ॥ श्री ज्ञान० ॥ ६ ॥
दोनों पर्युषण हिल मिल के सहु कीना ।
हुवा धर्म तणा उद्योत लाभ बहु लीना ॥
रुपैये दो हजार ज्ञानमें आये ।
चौतीस हजार मिल पुस्तकें खूब छपाये ॥
सार्थ कीना नाम जाउँ बलिहारी ॥ श्री ज्ञान० ॥ ७ ॥
कर्म उदित अन्तराय हमारे आई ।
नेत्रोंकी पीडा आप बहु थी पाइ ।
वैद्योंसे था ईलाज बहुत करवाया ॥
श्रावक लोगोंने भक्ति फर्ज बजाया ।
दुष्ट कर्म गये दूर दशा शुभ कारी ॥ श्री ज्ञान० ॥ ८ ॥
पूरण भगवती वांची मुनिवर भारी ।
सोना रूपा से पूजे नर अरु नारी ॥
वरघोड़ा से आगम शिखर चढायो ।
स्व–परमत जन जै जैकार मनायो ॥
मधुर देशना वर्षे अमृत धारी ॥ श्री ज्ञान० ॥ ९ ॥
कारण आपके संघ आग्रह बहु कीनो ।
साल इठन्तर चौमासे यश लीनो ॥

उत्तराध्ययनजी सूत्र व्याख्यान में वांचे ।
वर्षे वैराग को रंग श्रोता मन राचे ॥
अर्क तेजको देख उलुक धुंधकारी ॥ श्री ज्ञान० ॥ १० ॥

जो धर्म द्वेषि अरु मद छकिया थे पूरा ।
जिन वाणीका खड्ग किया चकचूरा ॥
धर्म चक्र तप करके कर्म शिर छेदे ।
पंचरंगी है तप पूर क्रूरको भेदे ।
स्वामिवात्सल्य पांच हुए सुखकारी ॥ श्री ज्ञान० ॥११॥

पौषध का झंडा ध्वजा सहित फहराये ।
वादी मानी यह देख बहुत शरमाये ॥
पर्यूषणका था ठाठ मचा अति भारी ।
आए ज्ञान खाते में रुपये दोय हज़ारी ।
तीस हजार मिल पुस्तकें छपाई भारी ॥ श्री ज्ञान० ॥१२॥

स्वामिवात्सल्य दो खीचंद में कीना ।
यात्रा पूजाका लाभ भव्य जन लीना ।
ज्ञान ध्यान कर सूत्र खूब सुनाये ।
सेंतीस (३७) आगम सुनके आनंद पाये ।
किया सुन्दर उपकार आप तपधारी ॥ श्री ज्ञान० ॥ १३ ॥

कई मत्तांध मिल के विघ्न धर्ममें करते ।
पत्थर फेंक आकाश नीचे शिर धरते ।
आग्रहसे विनती करते हैं नरनारी ।

तब लाभालाभका कारण आप विचारी ।
द्रव्य क्षेत्रके ज्ञाता आप विचक्षण भारी ॥ श्री ज्ञान० ॥१४॥
वांचे है आगमसार आनन्द अति आवे ।
संघ चतुर्विध का सुन कर मन ललचावे ।
अट्ठाई महोत्सव पूजा खूब भणीजे ।
श्री चिंतामणि प्रभु पास शान्ति सुख दीजे ।
अंग्रेजी बाजे साथ प्रभु असवारी ॥ श्री ज्ञान० ॥ १५ ॥
जैसलमेरके संघमें विघ्न करता ।
जब लग उनके घरमें कहना चलता ।
करी विनती भये मुनि अनुरागी ।
लगा खूब उपदेश विघ्न गये भागी ।
संघका बनिया ठाठ अतिशय धारी ॥ श्री ज्ञान० ॥१६॥
श्री चिंतामणि पास लोद्रवे पाया ।
संघ यात्रा कर आनन्द खूब मनाया ।
पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य कीना ।
धन्य धन्य संघ पति लाभ बहुतसा लीना ।
नगर प्रवेशके महोत्सवकी बलिहारी ॥ श्री ज्ञान० ॥१७॥
नरनारी मिल है अर्जी आन गुजारी ।
शरीर कारणसे विनती आन स्वीकारी ।
साल गुणियासी चौमासो दियो ठाई ।
व्याख्यानमें बांचे सूत्र भगवती माई ।
यों बढ़ता रहा उत्साह धर्म हितकारी ॥ श्री ज्ञान० ॥१८॥

मिलके श्रावक सलाह खूब विचारी ।
करलें महोत्सव समवसरणकी तैयारी ।
जसवन्त सरायमें सुर मंडप रचवाये ।
थे हंडा झूमर और झाड़ लटकाये ।
शोभा सुन्दर अमरपुरी अनुहारी ॥ श्री ज्ञान० ॥१९॥
तीन गढकी रचना खूब बनाई ।
जिसके ऊपर था समवसरण दीया ठाइ ।
चौमुखजी थे महाराज जाऊँ बलिहारी ।
मूलनायकजी श्री शांतिनाथ सुखकारी ।
दर्शन कर कर हरषे सहु नर नारी ॥ श्री ज्ञान० ॥२०॥
है बड़ा मास भादवका महीना भारी ।
वद तीजसे हुवा महोत्सव जारी ।
पेटी तबला अरु ढोलक झंझा बाजे ।
गवैयोंकी ध्वनि गगनमें गाजे ।
संघ चतुर्विध है द्रव्य भाव पूजारी ॥ श्री ज्ञान० ॥ २१ ॥
पूजाका बनिया ठाठ अजब रंग बर्षे ।
स्व पर मत जन देखी मनमें हर्षे ।
प्रभु भक्तिसे वे जन्म सफल कर लेवे ।
उदार चित्तसे प्रभावना नित्य देवे ।
गाजा बाजा गहगहाट नौबत घुरे न्यारी ॥ श्री ज्ञान०॥२२॥
अष्ट द्रव्यसे थाल भरी भरी लावे ।
पूजा सामग्री देख मन हुलसावे ।

समकितकी निर्मल ज्योति जगमग लागी।
नहीं चले कर्मोंका जोर जाय सब भागी।
नव दिन नव रंगा ठाठ पूजा सुखकारी।। श्री ज्ञान०।।२३।।

नव दशम को स्वामिवात्सल्य भारी।
अच्छी बनी है नुकतीपाककी तैयारी।
स्वधर्मी मिलके भोजन कर यश लीनो।
पर्यूषणों को उत्तर पारणो कीनो।
बने पर्यूषणोंका उत्सवके अधिकारी ।। श्री ज्ञान० ।।२४।।

पौषध प्रतिक्रमणसे तप अट्ठाई होवे।
पूर्व ले भवके कर्म मैल सब धोवे।
जन्म महोत्सव करके आनन्द पाया।
साढे आठसौ रुपया ज्ञानमें आया।
अब बरघोडेंका हाल सुनो चित्तधारी ।। श्री ज्ञान० ।।२५।।

घुरे नगारा घोर कुमति गई भागी।
निशान ध्वजाकी लहर गगन जा लागी।
प्रभुकी असवारी सिरे बजारों आवे।
मिल नरनारीका वृन्द भक्ति गुन गावे।
पी–पी–ठंडाई मंडली न्यारी न्यारी ।। श्री ज्ञान० ।।२६।।

मिलके प्रतिक्रमण संवत्सारिक ठाया।
लक्ष चौरासी जीवोंको खमत्राया।
स्वामिवात्सल्य शुदि सातमकी तैयारी।

नुकतिपाकादि भोजन विविध प्रकारी ।
पुन्य पवित्र जीमे नर अरु नारी ॥ श्री ज्ञान० ॥ २७ ॥
संघ चतुर्विध मिलके खीचंद जावे ।
पूजाका वर्षे रंग गवैया गावे ।
प्रभु यात्रा करतो आनन्द अधिको आवे ।
शासन उन्नति प्रभावना दे पावे ।
स्वामिवात्सल्य जीमे सदा सुखकारी ॥ श्री ज्ञान०॥ २८ ॥
धर्मे उत्साही वीर पुरुष कहवावे ।
जो उठावे काम विजय वह पावे ।
जैनधर्मका डंका जोर सवाया ।
विघ्नसंतोषी देख देख शरमाया ।
जयवन्त सदा जिन शासन है जयकारी ॥ श्री ज्ञान०॥२९॥
कृपा करके तीन चौमासा कीना ।
ज्ञान ध्यानका लाभ बहुत जन लीना ।
गुणी जनोंका गुण भव्य जन गावे ।
शुभ भावोंसे गोत्र तीर्थंकर पावे ।
बनि रहे शुभ दृष्टि सुनो उपकारी । श्री ज्ञान० ॥ ३० ॥
संवत् उगणीसे गुणियासी सुखकारी ।
कातिक शुद पंचमी बुधवार है भारी ।
कवि कुशल इम जोड़ लावणी गावे ।
फलोधीमें सुन श्रोता सब हरषावे ।
चरणोंमें वन्दना होजो वारम्वारी ॥ श्री ज्ञान० ॥ ३१ ॥

दोहा—जयवन्ता जिन शासने, विचरो गुरु उजमाल ।
देश पधारो हमतणे, कर जोडी कहे कुशाल ॥
" तीन चतुर्मास के दिग्दर्शनसे "

विक्रम संवत् १९८० का चतुर्मास (लोहावट)

आपश्री का सत्रहवाँ चतुर्मास इस वर्ष लोहावट ग्राम में हुआ। व्याख्यान में आप उसी रोचकता से भगवतीजी सूत्र फरमाते थे। श्रोताओं को आप का व्याख्यान बहुत कर्णप्रिय लगता था। सूत्रजी की पूजा अर्थात् ज्ञानखाते में १८॥ मुहर तथा ५५०) रुपये रोकड़े सब मिलाकर १०००) रुपये से पूजा हुई थी। वरघोड़ा बडे ही समारोह से चढाया गया था। इसमें फलोधी के लोगोंने भी अच्छा भाग लिया था.

आपने इस चतुर्मास में दो संस्थाएँ स्थापित कीं। एक तो जैन नवयुवक मित्र मण्डल तथा दूसरी श्री सुखसागर ज्ञान प्रचारक सभा। वर्तमान युग सभा का युग है। जिस जाति या समाज के व्यक्तियों का संगठन नहीं है वे संसार की उन्नति की सरपट दौड़ में सदा से पीछी रही हैं। अतएव जैन समाज में ऐसी अनेक संस्थाओं की नितान्त आवश्यकता है जिनमें युवक और बालक ग्रथित होकर समाज सुधार के पुनीत कार्य में कमर कस कर लग्गा लगा दें।

आप साथ ही साथ श्रावकों को धार्मिक ज्ञान भी सिखाया करते थे। आप के सदुपदेश से, भद्दे ढंग से होनेवाले हास्यास्पद

जीमनवारों में भी आवश्यक परिवर्तन हुए । जब से हमारे मुनिराजों का ध्यान समाज की पुरानी हानिप्रद रुढियों को तुड-वाने की ओर गया है हमारे समाज में जागृति के चिह्न प्रकट हो रहे हैं । प्रत्येक स्थानपर कुछ न कुछ आन्दोलन इसी प्रकार के प्रारम्भ हुए हैं । लोहावट नगरमें इस कार्य की नींव सर्व प्रथम आपहीने डाली । जिसे समाज के हजारों रूपये प्रतिवर्ष व्यर्थ खर्च हो रहा थे वह रुक गये ।

इस वर्ष ये पुस्तकें प्रकाशित हुई ।

५०००	द्रव्यानुयोग द्वितीय प्रवेशिका ।			
१०००	शीघ्रबोध भाग		१	दूसरीवार ।
१०००	,,	,,	२	,,
१०००	,,	,,	३	,,
१०००	,,	,,	४	,,
१०००	,,	,,	५	,,
१०००	गुणानुराग कुलक हिन्दी भाषान्तर			
५०००	पंच प्रतिक्रमण विधिसहित ।			
१०००	महासती सुर सुन्दरी । (कथा)			
१०००	मुनि नाममाला । (कविता)			
१०००	स्तवन संग्रह भाग ४ था ।			
१०००	विवाह चूलिका की समालोचना ।			
१०००	छ कर्म ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद ।			
२१०००	सब प्रतिएँ ।			

इस चौमासे में श्री संघ की ओर से करीबन् रु. ९०००) सुकृत कार्य में व्यय हुए ।

गुरु गुण वर्णन ।

गुरु ' ज्ञान ' नगीना । आछो दीपायो मार्ग जैन को ।
शहर फलोधी मे आप पधारे । लोहाग्गा नगर मझार ॥
श्री संघ मिल महोत्सव कीनो । वरत्या जै जै कार हो ॥ गु० ॥१॥
चिरकाल से थी अभिलाषा । पूरण की गुरु आज ॥
सूत्र भगवती वचे व्याख्यानमें । सुण हर्षे सकल समाज हो ॥गु०॥२॥
जैन नवयुवक मित्र मण्डल अरु । सुखसागर ज्ञान प्रचार ॥
संस्था स्थापि किया सुधारा । हुआ बहुत उपकार हो ॥ गु० ॥ ३ ॥
बीसहजार पुस्तकें छपाई । किया ज्ञान परचार ॥
न्याति जाति कई सुधारा । कहते न आवे पार हो ॥ गु० ॥ ४ ॥
ज्ञानप्रचार समाज सुधारण । कमर कसी गुरुराज ॥
यथा नाम तथा गुण आप के । गुणगावे 'युवक' समाज हो ॥गु०॥५॥

लोहावट से विहार कर आपश्री पली पधारे । लोहावट श्री संघ तथा मण्डलके सभासद यहाँ तक साथ थे । पली में श्रीमान् छोगमलजी कोचरने स्वामीवात्सल्य भी किया था । भंडारी चन्दनचन्द्रजी तथा वैद्य मुहता वदनमलजी के साथ आप खींवसर होकर नागोर पधारे ।

विक्रम संवत् १९८१ का चातुर्मास (नागोर) ।

आपश्री का अठारहवाँ चातुर्मास नागोर में हुआ । आप व्या-

ख्यान में श्री भगवतीजी सूत्र सुनाते थे। जिसका महोत्सव वर-घोड़ा पूजा बड़े ही समारोह से हुआ। आपके व्याख्यान में श्रोताओं की सदा भीड़ लगी रहती थी। आपके उपदेशके फलस्वरूप यहाँ तीन महत्त्वपूर्ण कार्यारम्भ हुए। एक तो श्री वीर मण्डल की स्थापना हुई तथा श्रावकोंने उत्साहित होकर बड़े परिश्रम से समवसरणकी दिव्य रचना करवाई। इस अवसर पर अठाई महोत्सव तथा शान्तिस्नात्र पूजा का कार्य देखते ही बनता था। तीसरा कार्य भी कम महत्त्व का नहीं था। आपके उपदेश से मन्दिरजी के ऊपर शिखर बनवाने का कार्य श्रावकों से प्रारम्भ करवाया गया था। इस चातुर्मासमें श्री संघकी ओर से करीबन रु. १७०००) शुभ कार्यों में व्यय किये गये थे।

निम्न लिखित पुस्तकें भी प्रकाशित हुई—

१०००	शीघ्रबोध	भाग	६	दूसरी	वार।
१०००	,,	,,	७	,,	,,।
१०००	,,	,,	८	,,	,,।
१०००	,,	,,	९	,,	,,।
१०००	,,	,,	१०	,,	,,।
५०००	कुल पाँच सहस्र प्रतिएँ। एक ही जिल्दमें				

आपने एक निबन्ध लिख कर लोढा उमरावमलजी द्वारा फलोधी पार्श्वनाथ स्वामी के मेले पर एकत्रित हुए श्री संघके पास भेजा। जिसका तत्काल प्रभाव पड़ा। उसी लेख के फलस्वरूप

" श्री मारवाड़ तीर्थ प्रबंधकारिणी कमेटी " स्थापित हुई। जिसकी देखरेख में मारवाड के ७८ मन्दिरों का निरीक्षण हुआ तथा तत्सम्बन्धी रिपोर्ट आदि भी तैयार हुई। किन्तु कार्य कर्त्ताओं के अभाव से कार्य रुक गया अन्यथा आज मारवाड़ के तीर्थोंकी सोचनीय दशा कदापि दृष्टिगोचर नहीं होती।

इस वर्ष आपने अठ्ठम ३ छठ्ठ ७ तथा फुटकल तपस्या भी की थी।

इस चातुर्मासका वर्णन करता हुआ महात्मा लालचन्दने एक कविता बनाइ थी वह—

वन्दो ज्ञानसुन्दर महाराज। समौसरण रचाने वाले। टेर।
नगर नगीना भारी। हैं शहर बड़ा गुलजारी।
जैन मन्दिरोंकी छबी न्यारी। भवोदधि पार लगानेवाले। वं. ।१।
गुरु ज्ञानसुन्दर उपकारी। कई तार दिये नर नारी।
शुभ भाग्य दशा हमारी। धर्मकी नाव तिरानेवाले ।वं.।२।
साल इक्यासी हैं खासा। हुआ नगीने शहर चौमासा।
सफल हुई संघ की आशा। धर्मका झंडा फहरानेवाले। वं.।३।
सूत्र भगवतीजी फरमावे। श्रोता सुण के आनन्द पावे।
ये तो जन्म सफल बनावे। अमृत रस वरसानेवाले ।वं.।४।
पूजा प्रभावना हुई भारी। तप तपस्या की बलिहारी।
स्वामिवात्सल्य है सुखकारी। धर्मोन्नति करानेवाले ।वं.।५।
मन्दिर चौसटजी का भारी। बनी है समवसरण की तय्यारी।
हांडी कांच झूमर है न्यारी। स्वर्ग से वाद वदाने वाले। वं.।६।

मण्डप फुलवाडीसे छाया । छवि कों देख मन ललचाया ।
प्रदिक्षणा दे दे आनन्द पाया । भवकी फेरी मिटानेवाले । वं. ।७।
मूल नायक भगवान् । विराजे शांति सुधारस पान ।
पूजा गावे मिलावे तान । भवजल पार लगानेवाले । वं. । ८ ।
नित्य नई अंगी रचावे । दर्शन कर पाप हटावे ।
नरनारी मिल गुण गावे । समकित गुण प्रगटानेवाले । वं. । ९ ।
स्व परमत जन बहु आवे । दुनियाँ मन्दिर में न समावे ।
नौबत वाजा धूम मचावे । कर्मों को मार लगानेवाले । वं. । १० ।
संघमें हो रहा जय जयकार । गुणोंसे गगन करे गुंजार ।
यात्रि आवे लोग अपार । महात्मा " लाल " कहानेवाले । वं. ।११।

चातुर्मास के पश्चात् विहार कर आप मूँडवा हो कर कुचेरे पधारे । वहाँपर न्याति सम्बन्धी जीमनवारों में एक दिन पहले भोजन तैयार कर लिया जाता था तथा दूसरे दिन बासी भोजन काम में लाया जाता था । यह रिवाज आपने दूर करवाया । पाठशाला के विषय में भी खासी चर्चा चली थी । खजवाने जब आप पधारे तो उपदेश के फलस्वरूप जैन ज्ञानोदय पाठशाला तथा जैन मित्र मण्डल की स्थापना हुई । वहाँ से आप रूण पधारे । यहाँ श्री ज्ञान प्रकाशक मण्डल की स्थापना हुई । वहाँ से जब आप फलोधी तीर्थपर यात्रार्थ पधारे तो मारवाड़ तीर्थ प्रबन्धकारिणी कमेटी की बैठक हुई थी और उस कार्य में ठीक सफलता भी मिली थी ।

जब आप कुचेरे के श्रावकों के आग्रह करने पर वहाँ

पधारे थे तो श्री ज्ञानवृद्धि जैन पाठशाला तथा श्रीमहावीर मण्डल की स्थापना हुई थी। पुनः खजवाने, रूण और फलोधी होते हुए मेड़ते में श्रीमान स्व. बहादुरमलजी गधैया के अनुरोध से आपने वहाँ सार्वजनिक लेकचर दिया था, जो सारगर्भित तथा सामयिक था। पुनः आप फलोधी पधारे।

विक्रम संवत् १९८२ का चातुर्मास (फलोधी)।

आपश्री का उन्नीसवाँ चातुर्मास मेड़ता रोड फलोधी तीर्थपर हुआ। इस वर्ष से चरित नायक का ध्यान इतिहास की ओर विशेष आकर्षित हुआ। आप का विचार " जैन जाति महोदय " नामक बड़े ग्रंथ को ग्रथित करने का हुआ। अतएव आपने इसी वर्ष से सामग्री जुटाने के लिये विशेष प्रयत्न प्रारम्भ करदिया। इसी दिनसे प्रतिदिन आपश्री ऐतिहासिक अनुसन्धान में व्यस्त रहते हैं। आपने खजवाना, नागोर, बीकानेर और फलोधी के प्राचीन ज्ञान भंडारों कि सामग्री को देखा। जो जो सामग्री आप को दृष्टिगोचर हुई आपने नोट करली। वही सामग्री सिलसिलेवार जैन जाति महोदय प्रथम खण्ड के रूप में पाठकों के सामने रखी गई है। महाराजश्रीने ऐतिहासिक खोज प्रारम्भ कर के हमारी समाजपर असीम उपकार किया है।

इस वर्ष निम्नलिखित साहित्य प्रकाशित हुआ—

१००० दानवीर झगडूशाहा (कवित्त)।
१००० शुभ मुहूर्त शकुनावली।
१००० नौपद अनुपूर्वी।

१००० नित्य स्मरण पाठमाला ।
१००० भाषण संग्रह प्रथम भाग ।
१००० भाषण संग्रह दूसरा भाग ।
१००० स्तवन संग्रह चौथा भाग । दूसरीवार ।

७००० कुल सात हजार प्रतिऐं ।

स्थानकवासी साधु मोतीलालजी को जैन दीक्षा देकर उनका नाम मोतीसुन्दर रक्खा गया था। पर्यूषण पर्व में यहाँ नागोर, खजवाना, रूण और कुचेरे आदि के कई श्रावक आए थे। आठ दिन पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य आदि धार्मिक कृत्यों का सिलसिला जारी रहा। उस समय की आमदनी से आपश्री के चातुर्मास के स्मरणार्थ चांदी का कलश श्री भण्डार में अर्पण किया गया था।

फलोधी से विहारकर आप रूण, खजवाना, मेड़ता फलोधी, पीसागन पधारे वहाँ बहुत से भव्योंको वासक्षेपपूर्वक समकितादि की प्राप्ति कराई तथा श्री रत्नोदय ज्ञान पुस्तकालय की स्थापना करवाई वहाँ से आप श्री अजमेर पधारे। रास्ते में अनेक श्रावकों की श्रद्धा सुधारकर उन्हें मूर्त्तिपूजक बनाया। ऐतिहासिक खोज के सम्बन्ध में आपश्री राय बहादुर पं. गौरीशंकरजी ओझा से मिले। आवश्यक वार्तालाप बहुत समय तक हुई। फिर जेठाणा की ओर विहारकर कई श्रावकों को आपने मूर्त्तिपूजक बनाया। पुनः पीसांगन, गोविन्दगढ, कुडकी होकर कैकीन पधारे। वहाँ उपदेश दे आपश्रीने देवद्रव्य की ठीक व्यवस्था करवाई। फिर आपश्री कालू, बलून्दा, जैतारण, खारीया, हो बीलाडे

पधारे। यहाँ अठाई महोत्सव तथा स्वारीया में वरघोड़ा आदि का अपूर्व ठाठ हुआ। कई श्रावक संवेगी हुए। बीलाड़ा में स्थानकवासियों को प्रश्नोत्तर में पराजित करते हुए सिंघवीजी नथमलजी को मूर्त्तिपूजक श्रावक बनाया। बाद कापरडा की यात्रा का लाभ लेकर आप श्री पीपाड़ पधारे।

विक्रम संवत् १९८३ का चातुर्मास (पीपाड़)।

चरित्रनायकजी का बीसवाँ चातुर्मास पीपाड़ में बड़े समारोह सहित हुआ। व्याख्यान में आप पूजा प्रभावना वरघोड़ादि महा-महोत्सवपूर्वक श्री भगवतीजी सूत्र इस ढंग से सुनाते थे कि सर्व परिषद् आनन्दमग्न हो जाती थी। श्रोताओं के मनपर व्याख्यान का पूरा प्रभाव पड़ता था क्योंकि आप की विवेचन शक्ति बढ़ी चढ़ी है। उन की सदा यही अभिलाषा बनी रहती थी कि आपश्री अविछन्न रूप से धारा प्रवाह प्रभु देशना का अमृत आस्वादित कराते रहें। वक्तृत्व कला में आप परम प्रवीण एवं दक्ष हैं। आप की चमत्कारपूर्ण वाग्धाराएँ श्रोता को आश्चर्यचकित कर देती है।

इस वर्ष में आपने तेला १ तथा छठ ३ के अतिरिक्त कई उपवास किये थे। आप के उपदेश के फलस्वरूप पीपाड़ में तीन संस्थाऐं स्थापित हुईं (१) जैन मित्र मण्डल। (२) ज्ञानोदय लाइब्रेरी तथा (३) जैन श्वेताम्बर सभा। इन तीनों को स्थापित कराकर आपने स्थानीय जैन समाज के शरीर में संजीवनी शक्ति फूंक दी। इन तीनों सभाओं द्वारा जनता में अच्छी जागृति दृष्टिगोचर होती थी।

ऐसा कोई वर्ष नहीं बीतता कि आपश्री की बनाई हुई कुछ पुस्तकें प्रकाशित नहीं होती हों। ऐसा क्यों न हो ! जब कि आपश्री की उत्कट अभिरुचि साहित्य प्रचार की ओर है। इस वर्ष ये पुस्तकें प्रकाशित हुई :—

१००० जैन जाति निर्णय प्रथमाङ्क द्वितीयाङ्क।
१००० पञ्च प्रतिक्रमण सूत्र।
१००० स्तवन संग्रह चतुर्थ भाग–तृतीय बार।
३००० तीन सहस्र प्रतिऐं।

पीपाड से विहारकर आप कापरडाजी की यात्रा कर बीसलपुर पधारे। यहाँ पर आप के उपदेश से जैन श्वेताम्बर पुस्तकालय की स्थापना हुई। शान्तिस्नात्र पूजापूर्वक मन्दिरजी की आशातना मीटाइ गइ थी। फिर आप पालासनी, कापरडा और बीलाडा पधारे यहाँपर चैत्र कृष्ण ३ को स्थानक० साधु गम्भीरमलजी को जैन दीक्षा दे उनका नाम गुणसुन्दरजी रक्खा। वहाँ से पिपाड़ पधारे। यहाँ ओलियों का अट्ठाइ महोत्सव बड़ी धामधूम से हुआ। तत्पश्चात् आप प्रतिष्ठा के सुअवसर पर बगड़ी पधारे बाद सीयाट सोजत खारिया होते हुए बीलाड़े पधारे।

विक्रम संवत् १९८४ का चातुर्मास (बीलाड़ा)।

आपश्री का इकीसवाँ चातुर्मास बीलाड़े हुआ। बीलाड़े के श्रावकों की अभिलाषा कई मुद्दतों बाद अब पूर्ण हुई। उन्हें आप जेसे तत्ववेत्ता, प्रगाढ पण्डित एवं ऐतिहासिक अनुसन्धान, व उपदेशक उपलब्ध हुआ यह उन के लिये परम अहोभाग्य की

मुनि श्री गुणसुन्दरजी महाराज ।

जन्म वि० सं० १९४६

स्थानकवासी दीक्षा वि० सं० १९६१

जैन दीक्षा वि० सं० १९८३ चैत्र कृष्णा ३

स्थान बीलाड़ा (मारवाड़) ।

आनंद प्रिं. प्रेस-भावनगर.

बात थी। व्याख्यान में आप पूजा प्रभावना वरघोड़ादि महा-महोत्सवपूर्वक सूत्रश्री भगवतीजी सुनाते थे। प्रत्येक श्रोता संतोषित था आप की मधुर वाणीने सब के हृदय में सहज ही स्थान पालिया था। व्याख्यान परिषद् में पूरा जमघट होता था। आप दृष्टांत तथा Reference प्रमाण आदि की प्रणाली से उपदेश दे कर जन मन को मोह लेते थे। व्याख्यान का प्रभाव भी कुछ कम नहीं पड़ता था। जैनेत्तर लोगोंपर भी काफी प्रभाव पड़ता था।

ज्ञानाभ्यास, ऐतिहासिक खोज, पुस्तकों के सम्पादन तथा लेखन के अतिरिक्त आपने अट्ठम १, छट्ठ २ तथा कई उपवास भी इस चातुर्मास में किये। साथ साथ ग्रंथ प्रकाशन का कार्य भी जारी था। इस वर्ष निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई।

१००० धर्मवीर जिनदत्त सेठ।
१००० मुखवस्त्रिका निर्णय निरीक्षण।
१००० प्राचीन छन्दावली भाग प्रथम।

३००० कुल तीन सहस्र पुस्तकें।

बीलाड़ा से विहार कर आप खारीया, कालोना, बीलावस पाली, गुंदोज, वरकाणा पधार कर विद्याप्रेमी आचार्य श्रीविजय-वल्लभसूरिजी के दर्शन और तीर्थयात्रा की बाद रानी स्टेशन, नाडोल, नारलाई, देसूरी, घाणेराव, सादड़ी, राणकपुर और भानपुरा होते हुए आप श्री उदयपुर पधारे। वहाँ आप का स्वागत बड़े समारोह के साथ हुआ। वहाँ की जनता में आप के तीन सार्वजनिक

व्याख्यान हुए। उदयपुर से आपश्री केशरियानाथजी की यात्रार्थ पधारे। पुनः उदयपुर पधारने पर आपश्री के चार व्याख्यान हुए। उदयपुर श्रीसंघ की इच्छा थी कि आप चातुर्मास वहाँ करें पर मुनि गुणसुन्दरजी की अस्वस्थता के कारण आप वहाँ अधिक नहीं ठहर सके। अतः वापस सायरा पधारे आप के वहाँ जाहिर व्याख्यान हुए और वहाँ जैन लायब्रेरी की स्थापना भी हुई। वहाँ से भानपुरा हो सादड़ी, मुंडारे, लाठाडे, लुनावा, सेवाडी, और हो बीजापुर बीसलपुर पधारे। वहाँ अठाई महोत्सव शांतिस्नात्र तथा दो मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा हुई। स्थानकवासि जीवनलाल को जैन दीक्षा दे उन का नाम आपने जिनसुन्दर रक्खा। फिर शिवगंज, सुमेरपुर, पेरवा, और बाली हो आप सादड़ी पधारे।

विक्रम संवत् १९८५ का चातुर्मास (सादड़ी मारवाड़)।

आपश्री का बाईसवाँ चातुर्मास बड़े समारोह से सादड़ी मारवाड़ में हुआ। व्याख्यान में आप पूजा प्रभावना वरघोडा आदि बड़े ही महोत्सव के साथ प्रारंभ किया हुवा श्री भगवतीजी सूत्र ऐसी मनोहर भाषा में फरमाते थे कि व्याख्यान भवन में श्रोताओं का समाना कठिन होता था। ऐसे भीड़ भरे भवन में भगवतीजी के उपदेश से जिन कई भव्य जीवोंने लाभ लिया था वे वास्तव में बड़े भाग्यशाली थे। आपकी देशना सुनने से मिथ्यात्वियों के मन के संदेह सदा के लिये दूर हो जाते हैं। आप के प्रखर प्रताप तथा विद्वता के आगे मिथ्यात्वी हार मानते हैं। इस वर्ष आपने तपस्या में छठ्ठ १ तथा कुछ फुटकल उपवास किये थे।

मुनिश्री का प्रयत्न सदा पुस्तकें लिखने का रहता है और इस प्रकार साहित्य को सुलभ और सुगम करने का श्रेय जो आपश्रीको प्राप्त हुआ है वह ध्यान देने योग्य है। इस के लिये हमारा जैन समाज विशेष कर मारवाड़ी समाज मुनिश्री का चिरऋणी रहेगा। इस वर्ष निम्न लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई।

१००० एक प्रसिद्धवक्ता की तस्करवृत्ति का नमूना।
१००० गोडवाड़ के मूर्त्तिपूजक और सादड़ी के लुंकों का ३५० वर्षका इतिहास।
१००० ओसवाल जाति समय निर्णय।
१००० जैन जातियाँ का सचित्र इतिहास।
२००० शुभ मुहूर्त तथा पञ्चों की पूजा। दूसरीवार
१००० निराकार निरीक्षण।
१००० प्राचीन छन्द गुणावली भाग द्वितीय।

श्री संघ में एक साधारण बात पर तनाजा हो गया था जो रु ५०१) देवद्रव्य के विषय में था पर आपने ऐसा इन्साफ दिया कि दोनों पक्ष में शान्ति स्थापन हो गई तथा "जैन जाति महोदय" नामक ग्रंथ के प्रकाशन के लिये श्रावकों की ओर से लगभग ३६००) के चन्दा हुआ।

सादड़ी से विहार कर धाणेराव, देसुरी, नाडलाई, नाडोल वरकाणा, रानी स्टेशन, धणी और खुडाला हो आपश्री वाली पधारे यहाँ से—

१००० ओसवालों का पद्यमय इतिहास।

१००० समवसरण प्रकरण। कुल २००० प्रतिए प्रकाशित हुई तथा श्रावकोंने उत्साह से समवसरण की रचना में करीबन् पाँच सहस्र रुपये खर्च किये। पुनः आपश्री रानी स्टेशन वरकाणा और बाली होकर लुनावे पधारे।

विक्रम संवत् १९८९ का चातुर्मास (लुनावा)।

आप श्री का तेईसवाँ चातुर्मास लुनावा में है। आपश्री की वाणी द्वारा पीयूष वर्षा बड़े आनन्द से बरस रही है। वाक् सुधा का निर्मल श्रोत प्रवाहित होता हुआ श्रोताओं के संदिग्ध को दूर भगा रहा है। आपश्री व्याख्यान में श्री भगवतीजी सूत्र इस ढंग से सुनाते हैं कि व्याख्यान श्रवण के हित जनता ठठ्ठ लगजाता है। यह अनुपम दृश्य देखे ही बन आता है। श्री भगवतीजी की पूजा में ज्ञान खाते में रु. ८५०) आठ सौ पचास रुपये एकत्रित हुए हैं। श्रावकों के मन में खूब धार्मिक प्रेम है। वे धार्मिक कृत्यों में ही अपना अधिकांश समय बिताते हैं।

जिस ऐतिहासिक खोज के आधार पर आप पिछले कई वर्षों से 'जैन जाति महोदय' ग्रंथकी रचना कर रहे थे उसका प्रथम खण्ड इसी वर्ष पूरा हुआ है। सब मिलाकर इस बार ये पुस्तकें प्रकाशित हुई।

१००० प्राचीन गुण छन्दावली भाग तीसरा।

१००० ,, ,, ,, भाग चौथा।

२०००	दो विद्यार्थियों का संवाद।
१०००	स्त्रियों की स्वतंत्रता या अर्द्ध भारत (Half India)।
१०००	नयचक्रसार हिन्दी अनुवाद।
१०००	बाली के फैसले।
१०००	जैनजाति महोदय प्रकरण १ ला।
१०००	,, ,, २ रा।
१०००	,, ,, ३ रा।
१०००	,, ,, ४ था।
१०००	,, ,, ५ वाँ।
१०००	,, ,, ६ ठा।
१०००	स्तवन संग्रह भाग ९ वाँ।
१३०००	तेरह सहस्र प्रतिएँ।

आपश्रीके उपदेश से यहाँ एक कन्यापाठशाला स्थापित हुई है जिस में कई कन्याएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। श्री शान्तिप्रचार मण्डल का भी पुनरुद्धार हुआ इस प्रकार की संस्था की इस गाँव में नितान्त आवश्यकता थी सो आपश्री ही के प्रयत्न से पूरी हुई है। पुस्तक प्रचार फण्ड में रू. २०००) की श्री संघकी ओर से सहायता मिली—

हमारी आशाएँ।

पाठकोंने उपरोक्त अध्यायों को पढ़कर जान लिया होगा कि मुनि महाराज श्री ज्ञानसुन्दरजी कितने परिश्रमी तथा ज्ञानी हैं। यद्यपि आपश्री के गुणों का विस्तृत दिग्दर्शन कराना इस प्रकार के संक्षिप्त

परिचय में असम्भव है तथापि आशा है पाठक अभी इतने में ही संतोष करलेंगे। यदि अवसर हुआ तो विस्तृत रूप में आपके जीवन की घटनाएँ आपके सम्मुख रखने का दूसरा प्रयत्न किया जायगा।

उपरोक्त ग्रंथों को अनवरत परिश्रम से तैयार कर हमारे सामने रखने का जो कार्य आपश्रीने किया है वह वास्तव में असाधारण है। इस के लिये हम ही क्या सारा जैन समाज आपका चिरऋणी रहेगा।

हम को आपश्री से बड़ी बड़ी आशाएँ हैं। अन्त में हम यह चाहते हैं कि आपकी असीम शक्ति से हमें जैन समाज की उन्नति करने में बहुत सहायता मिले। हमारे दुर्बल हृदय आप से निस्वार्थ और निरपेक्ष हो जावें। आपश्री इसी प्रकार हमारे सामने ज्ञान प्राप्त करने के साधन जुटाते रहें ताकि हम अपने आपको यथार्थ पहिचान ले तथा तदनुसार कार्य करें।

हमें आप से सदा ऐसा उपदेश मिलता रहे कि हम अपना पराया भूल कर निरंतर विश्व सेवा में निमग्न रहें। आप दीर्घायु हों ताकि अनेक भव्य प्राणी अपनी वासना की अजेय दुर्गमाला का आपके उपदेश से क्षणभर में ध्वस्त कर डालें।

हमें गौरव है कि ऐसे महा पुरुष का जन्म हमारे मरुधर प्रान्त में हुआ है—हमारी हार्दिक अभ्यर्थना है कि सदा इसी प्रकार आप द्वारा हमारे समाज की निरन्तर भलाई होती रहे।

इस पुस्तक के लेखक श्रीमदुपकेश गच्छीय
मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज यह पुस्तक लिख रहे हैं।

Lakshmi Art, Bombay, 8.

हम भूले भटके अशिक्षित अज्ञान में पिछड़े हुए मरुधरवासियों के लिये आप ही पथ प्रदर्शक एवं हमारे सर्वस्व प्रदीपगृह हैं।

हमारे क्षणभङ्गुर जीवन के प्रत्येकांश में आपश्री का सुख मुख परमानन्द दायक दिव्य सन्देश सुनाता रहे।

राजस्थान सुंदर साहित्य सदन — जोधपुर।

भवदीय चरणकिङ्कर—
श्रीनाथ मोदी जैन, निरीक्षक टीचर्स ट्रेनिङ्ग स्कूल—जोधपुर।

" Lives of great men all remind us
We can make our lives sublime;
And, departing, leave behind us
Footprints on the sands of time. "

LONG FELLOW—

" जीवन चरित महा–पुरुषों के, हमें शिक्षण देते हैं।
हम भी अपना अपना जीवन, स्वच्छ रम्य कर सकते हैं॥ "
" हमें चाहिये हम भी अपने, बना जायँ पद–चिह्न ललाम।
इस भूमी की रेती पर जो, व्यक्त पड़े आवें कुछ काम॥ "
" देख देख जिन को उत्साहित, हों पुनि वे मानव मतिधर।
जिन की नष्ट हुई हो नौका, चट्टानों से टकराकर॥ "
" लाख लाख संकट सहकर भी, फिर भी साहस बांधे वे।
आकर मार्ग मार्ग पर अपना, 'गिरिधर' कारज साधें वे॥ "

आपश्री की प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची ।

संख्या.	पुस्तक का नाम.	आवृत्ति	कुल संख्या.	मूल्य.
१	प्रतिमा छत्तीसी	६	२५०००	)॥
२	गयवर विलास	२	२०००	।)
३	दानछत्तीसी	४	८०००	)॥
४	अनुकम्पाछत्तीसी	४	८०००	)॥
५	प्रश्नमाला	३	३०००	-)
६	स्तवनसंग्रह भाग १ ला	४	४०००	=)
७	पैंतीस बोलसंग्रह	१	१०००	-)
८	दादासाहिबकी पूजा	१	२०००	=)
९	चर्चा का पब्लिक नोटिस	१	१०००	-)
१०	देवगुरुवन्दनमाला	२	६०००	-)
११	स्तवनसंग्रह भाग दूसरा	३	३०००	=)
१२	लिंगनिर्णय बहत्तरी	३	३०००	-)
१३	स्तवनसंग्रह भाग ३ रा	३	३०००	=)
१४	सिद्धप्रतिमा मुक्तावली	१	१०००	॥)
१५	बत्तीससूत्र दर्पण	१	५००	≢)
१६	जैन नियमावली	२	२०००	)॥
१७	चौरासी आशातना	२	२०००	)॥
१८	डंके पर चोट	१	५००	अमूल्य
१९	आगम निर्णय प्रथमांक	१	१०००	०
२०	चैत्यवन्दनादि	२	२००	=)

२१	जिनस्तुति	२	२०००	)॥
२२	सुबोधनियमावली	२	६०००	~)
२३	जैनदीक्षा	२	२०००	अमूल्य
२४	प्रभुपूजा	२	२०००	"
२५	व्याख्याविलास भाग १ ला	१	१०००	=)
२६	शीघ्रबोध भाग १ ला	३	३०००	।)
२७	शीघ्रबोध भाग २ रा	२	२०००	।)
२८	शीघ्रबोध भाग ३ रा	२	२०००	।)
२९	शीघ्रबोध भाग ४ था	२	२०००	।)
३०	शीघ्रबोध भाग ५ वां	२	२०००	।)
३१	सुखविपाक मूलसूत्र पाठ	१	५००	=)
३२	शीघ्रबोध भाग ६ ठा	२	२०००	।)
३३	शीघ्रबोध भाग ७ वां	२	२०००	।)
३४	दशवैकालिक मूल सूत्र	१	१०००	=)
३५	मेझरनामा	२	४५००	॥)
३६	तीन निर्नामक लेखों का उत्तर	२	२०००	अमूल्य
३७	ओशियों ज्ञानभंडार की लिस्ट	१	१०००	"
३८	शीघ्रबोध भाग ८ वां	२	२०००	॥)
३९	शीघ्रबोध भाग ९ वां	२	२०००	।)
४०	नन्दीसूत्र मूलपाठ	१	१०००	।)
४१	तीर्थयात्रास्तवन	२	२०००	अमूल्य
४२	शीघ्रबोध भाग १० वां	१	२०००	।)
४३	अमे साधु शा माटे थया !	१	१०००	अमूल्य
४४	विनती शतक	१	१०००	"

४५	द्रव्यानुयोग प्रथम प्रवेशिका	१	५०००	≈)
४६	शीघ्रबोध भाग ११ वां	१	१०००	।)
४७	शीघ्रबोध भाग १२ वां	१	१०००	।)
४८	शीघ्रबोध भाग १३ वां	१	१०००	।)
४९	शीघ्रबोध भाग १४ वां	१	१०००	।)
५०	आनन्दघन चौवीसी	१	१०००	अमूल्य
५१	शीघ्रबोध भाग १५ वां	१	१०००	।)
५२	शीघ्रबोध भाग १६ वां	१	१०००	।)
५३	शीघ्रबोध भाग १७ वां	१	१०००	।)
५४	ककावत्तीसी सार्थ	१	१०००	।)
५५	व्याख्याविलास भाग २ रा	१	१०००	≈)
५६	व्याख्याविलास भाग ३ रा	१	१०००	≈)
५७	व्याख्याविलास भाग ४ था	१	१०००	≈)
५८	स्वाध्याय गुँहली संग्रह भाग १ ला	१	१०००	≈)
५९	राइदेवसि प्रतिक्रमण	१	१०००	≈)
६०	उपकेशगच्छ लघुपटावली	१	१०००	अमूल्य
६१	शीघ्रबोध भाग १८ वां	१	१०००	(५ के भागों ॥)
६२	शीघ्रबोध भाग १९ वां	१	१०००	
६३	शीघ्रबोध भाग २० वां	१	१०००	
६४	शीघ्रबोध भाग २१ वां	१	१०००	
६५	वर्णमाला	२	१०००	
६६	शीघ्रबोध भाग २२ वां	१	१०००	
६७	शीघ्रबोध भाग २३ वां	१	१०००	।)
६८	शीघ्रबोध भाग २४ वां	१	१०००	।)

६९	शीघ्रबोध भाग २५ वां	१	१०००	|)
७०	तीनचतुर्मास का दिग्दर्शन	१	१०००	अमूल्य
७१	हितशिक्षा प्रश्नोत्तर	१	१०००	≈)
७२	विवाहचूलिका की समालोचना	१	२०००	≈)
७३	स्तवनसंग्रह भाग ४ था	१	१०००	‑)
७४	सूचीपत्र	५	११०००	अमूल्य
७५	महासती सुरसुन्दरी कथा	१	१०००	≈)
७६	पंचप्रतिक्रमण विधिसहित	१	५०००	अमूल्य
७७	मुनि नाममाला स्तवन	१	१०००	≈)
७८	छ कर्मग्रन्थ हिन्दी भाषान्तर	१	१०००	|)
७९	दानवीर झगडूशाहा	१	१०००	अमूल्य
८०	शुभमुहूर्त शकुनावली	२	३०००	≈)
८१	जैन जातिनिर्णय प्रथमांक	१	१०००	|)
८२	जैन जातिनिर्णय द्वितीयांक	१	१०००	
८३	पंचप्रतिक्रमण मूलसूत्र	१	१०००	|)
८४	प्राचीन छन्द गुणावली भाग १ ला	१	१०००	≈)
८५	धर्मवीर सेठ जिनदत्त की कथा	१	१०००	≈)
८६	जैन जातियों का इतिहास सचित्र	१	१०००	|)
८७	ओसवाल जाति समय निर्णय	१	१०००	≈)
८८	मुखवस्त्रिका‑निरीक्षण	१	१०००	)॥
८९	निराकार निरीक्षण	१	१०००	अमूल्य
९०	दो विद्यार्थियों का संवाद	१	१०००	≈)
९१	प्राचीन छन्द गुणावली भाग २ रा	१	१०००	≈)
९२	एक प्रसिद्ध वक्ताकी तस्करवृत्ति	१	१०००	‑)

९३	धूर्तपंचो की क्रान्तिकारी पूजा	२	२०००	)॥
९४	ओसवाल जाति का पद्यमय इतिहास	१	१०००	~)
९५	नयचक्र सार हिन्दी भाषांतर	१	१०००	।=)
९६	स्त्री स्वतंत्रता और पश्चिममें व्यभिचार लीला या अर्द्ध भारत (Half India)	१	१०००	॥)
९७	स्तवन संग्रह भाग ५ वाँ	१	१०००	अमूल्य
९८	समवसरण प्रकरण हिन्दी अनु०	१	१०००	,,
९९	गोडवाड़ के मूर्तिपूजक और लुंपा०	१	१०००	।)
१००	वादीके फेसले	१	१०००	=)
१०१	प्राचीन छन्द गुणावली भाग ३ रा	१	१०००	=)
१०२	प्राचीन छन्द गुणावली भाग ४ था	१	१०००	॥)
१०३	जैनजाति महोदय प्र० १ ला	१	१०००	४)
१०४	जैनजाति महोदय प्र० २ रा	१	१०००	
१०५	जैनजाति महोदय प्र० ३ रा	१	१०००	
१०६	जैनजाति महोदय प्र० ४ था	१	१०००	
१०७	जैनजाति महोदय प्र० ५ वाँ	१	१०००	
१०८	जैनजातिय महोदय प्र० ६ टा	१	१०००	
			२२३५००	२२॥)

आपश्री के सदुउपदेश से स्थापित संस्थाएँ।

संख्या.	संस्थाओं के नाम.	स्थान.	संवत्
१	जैन बोर्डिंग	ओशियाँतीर्थ	१९७२
२	जैन पाठशाला	फलोधी	१९७२
३	श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला	,,	१९७२
४	श्री जैन लायब्रेरी	,,	१९७३
५	श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला	ओशियाँतीर्थ	१९७३
६	श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानभण्डार	,,	१९७६
७	श्री कक्कान्ति लायब्रेरी	,,	१९७६
८	श्री जैन नवयुवक प्रेममण्डल	फलोधी	१९७७
९	श्री रत्नप्रभाकर प्रेम पुस्तकालय	,,	१९७९
१०	श्री जैन नवयुवक मित्रमण्डल	लोहावट	१९८०
११	श्री सुखसागर ज्ञानप्रचारक सभा	,,	१९८०
१२	श्री वीर मण्डल	नागोर	१९८१
१३	श्री मारवाड तीर्थ प्रबन्धकारिणी कमेटी	फलोधीतीर्थ	१९८१
१४	श्री ज्ञानप्रकाशक मण्डल	रूण	१९८१
१५	श्री ज्ञानवृद्धि जैन विद्यालय	कुचेरा	१९८१
१६	श्री महावीर मित्रमण्डल	,,	१९८१
१७	श्री ज्ञानोदय जैन पाठशाला	खजवाणा	१९८१
१८	श्री जैन मित्रमण्डल	,,	१९८१
१९	श्री रत्नोदय ज्ञानपुस्तकालय	पीसांगण	१९८२

२०	श्री जैन पाठशाला	बीलाड़ा	१९८१
२१	श्री ज्ञानप्रकाशक मित्रमण्डल	,,	१९८१
२२	श्री जैन मित्रमण्डल	पीपाड़	१९८१
२३	श्री ज्ञानोदय जैन लायब्रेरी	,,	१९८३
२४	श्री जैन श्वेताम्बर सभा	,,	१९८३
२५	श्री जैन लायब्रेरी	बीसलपुर	१९८३
२६	श्री जैन श्वेताम्बर मित्रमण्डल	खारिया	१९८४
२७	श्री जैन श्वेताम्बर ज्ञान लायब्रेरी	सायरा (मेवाड़)	१९८४
२८	श्री जैन कन्याशाला	सादड़ी	१९८४
२९	श्री जैन कन्याशाला	लुणावा	१९८५

ज्ञानप्रकाशक मण्डल रूणसे प्रकाशित पुस्तकें ।

१ भाषण संग्रह भाग १ ला	ॐ)	४ नित्यस्मरण पाठमाला	।)
२ भाषण संग्रह भाग २ रा	~)	५ गुणानुकुलक (लोहावटसे)	ॐ)
३ नौपदानुपूर्वि	~)	६ द्रव्यानुयोग द्वि० प्रवेश (,,)	ॐ)

पुस्तकें मिलनेके पते— श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला,

पो० फलोधी (मारवाड़)

या

मैनेजर राजस्थान सुन्दर साहित्य सदन—जोधपुर.

विषयानुक्रमणिका।

जैन जातिमहोदय प्रकरण पहला।

विषय.	पृ.
जैन धर्म्म की महत्वता	१
जैन धर्म्म पर अन्य लोगों का मिथ्याक्षेप	२
जैन धर्म्म की ऐतिहासिक प्राचीनता	३
जैन धर्म्म पर विद्वानों की सम्मतिएँ....	४
डॉक्टर हर्मन जैकोबी	
श्रीयुत् तुकाराम शर्मा लट्टर बी. ए.	
सर्व तन्त्र स्वतंत्र सत्सम्प्रदाचार्य स्वामी राममिश्र शास्त्री	
श्रीयुत् रामेशचन्द्र दत्त (भा० व० प्र० स० ई० भूमिका)	
लोकमान्य बालगंगाधर तिलक	
प्रोफेसर मणिलाल नथुभाई सिद्धान्तसारमें।	
जैन धर्म्मकी महत्ता	
डॉक्टर हर्मन जैकोबी जैन सूत्रों की प्रस्तावना	
श्रीयुत् वारदाकान्त मुरुयोपाध्याय एम्. ए.	
भारतेन्दू बाबू हरिश्चन्द्र इतिहास समुच्चय....	
डॉक्टर फुहरर +++ मि० कन्नूलालजी	
मि० आवे जे० ए० डवाई मिशनरी	

सर्वतंत्र स्वतंत्र सत्संप्रदाचार्य स्वामी राममिश्र शास्त्री
जैन धर्मकी महत्ता (मुनिश्री कल्याणविजयजी)....
राव बहादुर पूर्णेन्द्र नारायणसिंह ....
महोपाध्याय पं० गंगानाथझा ए० ए० डि० एल. एल.
श्रीयुत् नैपालचन्द्रराय ....
श्रीयुत् एम० डी० पाण्डे थीयोसोफीस्ट० ....
इन्डियन रेव्यू ओक्टोबर ई. स. १९२० का अंक....
राजेन्द्रनाथ पण्डित—(भारत मतदर्पण) ....
श्रीयुत् सी० वी० राजवाड़े एम. ए. बी. ....
डॉक्टर FOTTOSCHRADER. P. H. D. ....
राजा शिवप्रसाद सतारे हिन्द ....
पाश्चात्य विद्वान् रेवरेन्ड जे स्टीवेन्स साहब० ....
,, ,, सर विलियम और हैमिल्टन् ....
,, डॉक्टर टामस.... ... .
इम्पिरीयल गेजीटीयर ऑफ इन्डिया— ...
मिस्टर टी० डब्लू राइस डेविड साहब.... ....
वेदों के प्रमाण १८
ब्रह्मांडपुराण, महाभारत, नागपुराण, शिवपुराण... .... २०
योगवासिष्ठ प्रथम वैराग्य प्रकरण.... ... ... २१
दक्षिणामूर्ति सहस्रनाम.... .... २२
महिम्न स्तोत्र, भवानी सहस्रनाम.... .... २२
मनुस्मृति धर्मशास्त्र २३

महाभारत में श्रीकृष्णचन्द्र क्या फरमाते हैं ? २४
दश अवतार की कल्पना २४
भगवान् ऋषभदेव–रामचन्द्र व श्री कृष्णचन्द्र.... .... २६
जैनियोंकी चालीस क्रोड़ की संख्या का प्रमाण २८
जैन धर्मोपासक राजाओंकी शुभ नामावलि २८
दीर्घायु और लम्बे शरीर के विषयमें ३४
जैन धर्मकी प्राचीनता और स्वतंत्रता विषयक सम्मतिऐं....
श्रीयुत् महोपाध्याय० सतीशचन्द्र विद्याभूषण ....
स० स० सत्यसम्प्रदायाचार्य राममिश्र शास्त्री ....
भा० पु० ऐ० पं० बालगंगाधर तिलक ....
मु० म० शिवव्रतलालजी वर्म्मन एम० ए० ....
श्रीयुत् वारदाकन्त मुखोपाध्याय एम० ए० ....
रा. रा. वासुदेव गोविंद आपटे बी. ए. ....
पेरिस के डाक्टर ऐ० गिरनार ....
जर्मनी के डाक्टर जोन्स हर्टल ....
जैन हितैषी अंक ९ भाग ९ नं ५–६–७ ....
पूर्व खानदेश के कलकटर साहिब ....
मुहम्मद हाफिज सैयद बी० ए० ....
श्रीयुत तुकाराम कृष्ण शर्मा ... ...
साहित्य सम्राट डाक्टर रवीन्द्रनाथ टागोर.... ....
टी० पी. कप्पुस्वामी शास्त्री बी० ए०.... ....
श्री स्वामी विरूपाक्ष वडीयार धर्मभूषण... ....

अम्बुजाक्ष सरकार एम० ए० बी० एल० ....
पंडितश्री महावीर प्रसादजी.... ....
इन्डियन रिव्यु के अक्टोबर के अंक में ....

जैन जातिमहोदय प्रकरण दूसरा.

सृष्टिका अनादिपना और कालका परिवर्तन.... ... १
अवसर्पिणीकाल और पहला आरा ३
,, ,, दूसरा आरा ४
,, ,, तीसरा आरा ४
कुलगर और दंडनीति ५
भगवान ऋषभदेवका जन्म, ... ७
भगवान् ऋषभदेवका राज्याभिषेक ८
नीतिधर्म—पुरुषोंकी ७२ कला स्त्रियोंकी ६४ कला ... ९
वर्षीदान और भगवानकी दीक्षा... .... १०
वर्षीतपका पारणा और श्रेयांसकुमार ११
तक्षशिला तीर्थकी स्थापनाका कारण ....
भगवान् ऋषभदेवको कैवल्यज्ञान.... .... १२
भरत महाराजको एकसाथ तीन बधाइयें.... .... १३
माता मरुदेवीका विलाप और कैवल्यज्ञान.... .... १४
चतुर्विध संघकी स्थापना और द्वादशांगकी रचना १५
अष्टापदपर २४ तीर्थंकरों के २४ मन्दिर १५

मरीची कपिल और सांख्यमत.... .... १६
वैताड का राज और नमिविनामि की ४८००० विद्याओं १७
भरत बाहुबली का युद्ध और ९८ भाइयों की दीक्षा १८
चार आर्य वेदों की रचना और जैन ब्राह्मण.... .... १९
भगवान् ऋषभदेव का निर्वाण.... .... २१
सम्राट् चक्रवर्ति महाराजा भरत २३
भरत बाहुबल की संतानसे सूर्य व चंद्र वंश.... .... २४
भगवान अजीतनाथ तीर्थंकर २५
सम्राट् चक्रवर्ती महाराजा सागर २६
भगवान् संभवनाथ तीर्थंकर २७
,, अभिनन्दन ,, ... ,,
,, सुमतिनाथ ,, ... २८
,, पद्मप्रभ ,, ... ,,
,, सुपार्श्वनाथ ,, ... ,,
,, चन्द्रप्रभ ,, ... २९
,, सुविधिनाथ ,, ... ,,
आर्य वेदोंमें परावर्तन और ब्राह्मणभाष्यों की उत्पत्ति ३०
भगवान् शीतलनाथ तीर्थंकर ३१
,, श्रीयंसनाथ ,, ... ३२
,, वासुपूज्यस्वामी,, ... ३२
,, विमलनाथ ,, ... ३३
,, अनंतनाथ ,, ... ३३

,, धर्म्मनाथ ३४
,, शान्तिनाथ ,, ... ३५
,, कुंथुनाथ ,, ... ३६
,, अरनाथ ,, ... ३६
सुभूमनामक अष्टम चक्रवर्तीराजा ३७
भगवान् मल्लिनाथ तीर्थंकर ३६
महापद्म चक्रवर्ती और विष्णुकुमार मुनि ४०
भगवान् मुनिसुव्रत तीर्थंकर–राम–रावणादि.... .... ४१
,, नमिनाथ ,, ... ४२
,, नेमिनाथजी तीर्थंकर ४२
,, पार्श्वनाथ ,, ... ४३
अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी ४६
भगवान् के पूर्व (२७)भव ....
,, महावीर स्वामी का जन्म ....
,, ,, की बाल्यावस्था ... .
,, ,, की युवावस्था ....
,, ,, की दीक्षा.... ... .
,, ,, की दृढ़ प्रतिज्ञा ....
,, ,, को उपसर्ग ....
,, ,, के छद्मस्थपनेका भ्रमण ....
,, ,, के कठिन तपश्चर्य.... ....
भगवान् महावीर को दिव्य कैवल्यज्ञान ....

भगवान् महावीर स्वामी का समवसरण ....
,, ,, की चतुर्विध संघकी स्थापना ...
,, ,, का विशाल सिद्धान्त ....
भगवान् महावीर के उपासक राजा ....
भगवान् महावीर के समकालीन धर्म ७७
बारह चक्रवर्तियों का यंत्र ४८
वासुदेव बलदेवों का यंत्र ४९
चौवीस तीर्थंकरों का यंत्र ४९

जैन जातिमहोदय प्रकरण तीसरा।

मङ्गलाचरण के कवित्त.... .... १
भगवान् पार्श्वनाथ के प्रथम पट्टपर शुभदत्त गणधर ... २
,, ,, दूसरे पट्टपर आचार्य हरिदत्तसूरि ३
शास्त्रार्थ और लोहित्याचार्य की जैन दीक्षा ४
लोहित्याचार्य का दक्षिण में विहार ५
आर्य समुद्रसूरि और यज्ञवादियों का पराजय... .... ६
केशीकुमार का पूर्वभव—दीक्षा और सूरिपद ७
जैनों की विराट् सभा और अहिंसा धर्म का प्रचार १२
बौद्ध मत की उत्पत्ति का कारण १३
आचार्य स्वयंप्रभसूरि की यात्रा ... ...
,, ,, श्रीमालनगर में पदार्पण १५

आचार्य स्वयंप्रभसूरि का राजसभा में प्रवेश और शास्त्रार्थ १८

" " श्रीमालनगर के राजा–प्रजा को जैन बनाना २७

" " पद्मावतीनगरी और शास्त्रार्थ ....

" राजा–प्रजा को जैन धर्म की दीक्षा।

" " रत्नचूड़ विद्याधर को दीक्षा ...

आचार्य रत्नप्रभसूरि ४०

उपकेशपुर (ओशियाँ) की स्थापना ४२

भीमसेन चन्द्रसेन का धर्मयुद्ध और चन्द्रावती की स्थापना.... ४९

श्रीमालनगर का नाम भीनमाल ४९

आचार्य रत्नप्रभसूरि ५०० मुनियों सहित उपकेशपुर पधारे... ५०

चाँवुडादेवी की विनती और ३५ मुनियों का चातुर्मास ५२

राजा के जँवाई त्रिलोकसिंह को सर्प का काट खाना और स्मशान में जाते हुए को बाल मुनि का रोकना.... ... ५४

श्री रत्नप्रभसूरि के पास आना और निर्विष होना ५५

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि का धर्मोपदेश ५६

वाम मार्गियों का संक्षिप्त परिचय ....

जैन धर्म को इष्ट पंच परमेष्टी का वर्णन ....

देव गुरु धर्म और आगम का संक्षिप्त स्वरूप ...

श्रावक (गृहस्थधर्म) के बारह व्रत, व मुनिव्रत. ...

राजा–प्रजा को जैन धर्म की दीक्षा दे 'महाजन संघ' की स्थापना. ७१

राजसभा में शास्त्रार्थ और सत्यता की कसौटी ७६
ऊहड मंत्री का बनाया हुआ मन्दिर ८०
चाँवुडादेवी की बनाई हुई दूध और वेलु का की मूर्ति ८०
नौरात्रि का पूजन और देवी का प्रकोप ८२
आचार्यश्री की वेदना और देवी का सम्यक्त्व स्वीकार करना ... ८५
महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा ८६
आचार्यश्रीका आकाशगमन और कोरंटपुर में प्रतिष्ठा ... ८७
कनकप्रभसूरिका उपकेशपुर पधारना और पार्श्व मन्दिर की प्रतिष्ठा ९१
श्री वीरधवल उपाध्याय का पूर्व में विहार ९२
सिद्धगिरि पर आ० रत्नप्रभसूरि का स्वर्गवास ९३
उपकेशगच्छ आचार्यों की नामावली ९४

जैन जातिमहोदय प्रकरण चौथा.

ओसवाल जाति का समय निर्णय.... .... १
(क) भाट भोजक और कितनेक वंशावलियों का मत ....
(ख) जैनाचार्यों जैन पट्टावलियों और जैन ग्रन्थों का मत ....
(ग) वर्तमान इतिहासकारों का मत ....
(क) भाट भोजकादि का मत की समालोचना ....
(ग) वर्तमान इतिहासके मत की समालोचना ...
उपकेशपुर शब्द का अपभ्रंस ओशियाँ हुआ ९
ग्राम नगरों का नाम परिवर्तन ....

शिलालेखों में उपकेश वंश जाति ११
नगर के नाम पर जातियों के नाम ....
उपकेशपुर उपकेशवंश और उपकेशगच्छ का सम्बन्ध.
मुनोयत नैणशी की ख्यात का खुलासा ... १५
ओसवाल जाति के शिलालेख का खुलासा ....
ओशियों के शिलालेख के विषय में ....
ओसवाल जाति की प्राचीनता के ऐतिहासिक प्रमाण २१
एक दूसरी शंका ....
ओसवालोंमें चण्डालिया ढेढिया बलाही चामड वगैरह
जातियों शूद्र वर्ण मे नहीं पर राजपूत वर्ण से बनी हैं ३४
जातियों किस कारण से बनी हैं ? ३५
जैन सिद्धान्तों की विशालता ३८
ओसवाल जाति का परिचय ४१
ओसवाल जाति का मूल वर्ण क्षत्रिय है। ...
" " का स्थान ....
" " के गुरू ....
" " का धर्म ....
" " के धर्म कार्य ....
" " की परोपकारिता ....
" " " पंचायतिएँ ... .
" " के पर्वदिन ... .
ओसवाल जाति का संम्मेलन ....

ओसवाल जाति का आचार व्यवहार ....
" " की वीरता ....
" " का पदाधिकार ....
" " की मानमर्यादा ....
" " का द्रव्य (व्यौपार) .. ...
" " की वोहरगते (लेनदेन) ....
" " का व्यौपारक्षेत्र की विशालता ....
" " के विवाह लग्न ....
" " की औरतों की इज्जत ....
" " की पौशाक ....
" " की भाषा.... ....
" " की महत्वता ....
" " के घरों मे गोधन का पालन ....
" " के याचक.... ....
" " की सर्वजीवों से मैत्रिक भावना ....
" " के गौत्र जातियों शाखाआदि ....
ओसवाल—तातेड़, बाफणा, करणावट, बलाहा, मोरख कुलहट, विरहट, श्री श्रीमाल, श्रेष्टि, संचेती अदित्यनाग, भूरि, भाद्र, चींचट, कुंमट, डिडु, कनोजिया, लघुश्रेष्टि.
१८ गोत्रों की ४९८ जातियों ५४
ओसवाल जातियों के नररत्नों के प्राचीन कवित्त ६०
भैसाशाह (अदित्यनाग) चोरडिया गोत्र ....

बंदीवान छुड़ानेवाला भैरूशाहा का छन्द ....
भैरूशाह का भाई रामाशाह की महत्त्वता ....
बंदी छुड़ानेवाला कर्मचन्द चोपड़ा अन्नदाता धर्मेशी
लाखों को जीवानेवाला नरहरदास सिंघवी ....
सुराणों की उदारता, सोहिलशाह का छन्द ....
दानवीर छजमल बाफणा ....
जगत सेठ हीरानन्द झवेरी ....
कोरपाल सोनपाल लोढा ....
ठाकुरशी मेहता, वीरसमदड़िया ... .
धारा के वैद मुहता हथुडिया राठोड शूरवीर संचेती
रणथंभोर के संचेती, मोजत के वैद मुहता ....
प्राग्वट (पोरवाल) जाति का परिचय ८१
पोरवाड़ जाति ....
,, ,, को मात अरदान ....
,, ,, का वीर विमलाशाह ....
,, ,, वस्तुपाल तेजपाल का शुभकार्य ....
आचार्य हरिभद्रसूरि के बनाये पौरवाल। ....
श्रीमाल जाति का संक्षिप्त परिचय ९१
श्रीमाल जाति के प्रतिबोधक आचार्य ....
उपकेश वंशियोंपर श्रीमाल ब्राह्मणों का टेक्स ....
ऊहड़ मंत्री का विदेशमें व्योपार ... .
उपकेश वंशी महाजनों के गुरु ब्राह्मण नहीं है। ....

भीनमाल के तालाव पर के शिलालेख के वाक्य ।....
श्रीमाल वंश की जातियों की नामावली ....
श्रीमाल वंश के नररत्न दानवीरों के नाम ....
भविष्य के लिये शुभ सूचना ....

जैन जातिमहोदय प्रकरण पाँचवाँ ।

भगवान् पार्श्वनाथ के सातवें पट्टपर आचार्य यक्षदेवसूरि १
आचार्य यक्षदेवसूरि ....
आचार्यश्री का उपकेशपुर में चातुर्मास.... ....
सूरिजी और सच्चायिका देवी का वार्तालाप ....
सिन्ध प्रान्त में सूरिजी का पदार्पण.... ....
शिकार को जाते हुए घुड़सवारों को उपदेश ....
शिवनगर में आचार्यश्री का प्रभावशाली व्याख्यान
राजा प्रजा को जैन धर्म की शिक्षा और दीक्षा ....
आचार्यश्री का शिवनगर में चातुर्मास.... ....
जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा, विद्यालयों की स्थापना।....
महाराजा रूद्राट् और राजकुमार कक्वकी दीक्षा
सिन्ध प्रान्त से सिद्धाचलजी का महान् संघ । ....
आचार्यश्री कक्कसूरिजी.... ... . ५२
सिन्ध प्रान्त में जैन धर्मका प्रचार ....
कच्छ देश में सूरिजी का विहार ....

देवी के बलिदान पर सूरिजी का उपदेश ....
भद्रावती नगरी में आचार्यश्री का व्याख्यान ....
राजा प्रजाको जैन बना के राजकुमार देवगुप्त को दीक्षा
सिद्धगिरि का संघ और सूरिजीका सचोट उपदेश....
देवगुप्त मुनिको सिद्धगिरि पर आचार्य पद ...
आचार्यश्री कोरंटपुर में, जैनों की विराट् सभा ....
" का उपकेशपुर में स्वर्गवास.... ....

आचार्यश्री देवगुप्त सूरि.... .... ६८

कर्मसिंह श्रावकका कौनाल देशसे आगमन ....
आचार्यश्री का पञ्जाब देशकी ओर विहार ....
सूरिजी और सिद्धपुत्राचार्य का शास्त्रार्थ ....
सिद्धपुत्राचार्यादि ५०० को जैन दीक्षा.... ....
सिद्धपुत्र को आचार्य बनाया ....
आचार्यश्री का मरुभूमि में विहार ....

आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वरजी। ७४

आचार्यश्री का मरु भूमि में विहार ....
पाहलिका नगरी में जैनों की विराट सभा.... ....
मरु प्रान्त से श्री सिद्धाचलजी का बड़ा संघ ....
लाट सोरठ कच्छ सिन्ध पंजाब प्रान्तों में विहार....

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि दूसरे ८१

आचार्यश्री यक्षदेवसूरि (दूसरे).... .... ८६

आचार्यश्री कक्कसूरि (दूसरे) ९३

उपकेशपुर में स्वयंभू महावीर मूर्त्तिकी आशातना...
उपकेशपुर में महान् उपद्रव (अशान्ति).... ....
आचार्यश्री का अष्टम तप करना। देवी का आना....
विधि विधानसे अष्टोतरी पूजासे शान्ति.... ...
भगवान् महावीर प्रभु की वंशपरम्परा १०९
आचार्य सौधर्म स्वामी १०९
आचार्य जम्बु स्वामी १०७
आचार्य प्रभव स्वामी ११४
आचार्य शिय्यंभव सूरि ११८
आचार्य यशोभद्र सूरि ... .१२०
आचार्य सम्भूतिविजयसूरि १२१
आचार्य भद्रबाहु सूरि १२२
आचार्य स्थूलभद्र सूरि ... .१३०
आचार्य महागिरि सूरि ... .१३७
आचार्य सुहस्ति सूरि १३९
आचार्य सुस्थित सूरि १४४
आचार्य इन्द्रादिन सूरि ... .१४४
जैन इतिहास.... ....१४६
भगवान् आदिनाथ से सुबुद्धिनाथ तक जैन धर्म....१४६
मिथ्यात्वकी प्राबल्यता और आर्य वेदोंका परिवर्तन १४७
शान्तिनाथ से मुनिसुव्रतनाथ तक १४८
नमिनाथ से अन्तिम भगवान् महावीर तक १४९

मगध देश का राजा प्रश्नजीत और श्रेणिक १५१
महाराजा कौणक (अजातशत्रु) और उदाई १५७
पाटलिपुत्र और नौ नन्दों का राज शासन । ....
मौर्यवंश—महाराजा चन्द्रगुप्त १६२
सम्राट् चन्द्रगुप्त के जैन होने के प्रमाण.... ....१६३
महाराज बिन्दुसार ... .१६६
सम्राट् महाराजा अशोक १६७
,, ,, सम्प्रति १७०
आचार्य सुहस्तिसूरि और रथयात्रा १७१
महाराजा सम्प्रति के किये हुए पुन्यकार्य... ....१७३
जैनो की विराट् सभा और अन्य देशों में जैनधर्म का प्रचार १७४
बलमित्र और भानुमित्र उज्जैन का राजा १८१
नभवाहन राजा.... ....१८२
कलिङ्ग देश का इतिहास १८३
कलिङ्ग देश की प्राचीनता ....
,, ,, में जैनों का साम्राज्य १८४
,, ,, से जैन धर्म कैसे उठ गया ... .१८५
महाराजा खारवेल के शिलालेख की सोधखोज १८८
,, ,, ,, ,, नकल १९३
,, ,, ,, ,, का हिन्दी अनुवाद २००
कुमार–कुमारिपर्वत की गुफाओं के विषय में ...२०५
जैन पट्टावलियोंमें महाराजा खारवेल का वर्णन .. २०६

कुमारपर्वतपर जैनियों की विराट सभा २१२
महाराजा विक्रमराय कलिङ्ग का राजा २१५
मूर्त्तिपूजा विषयक चर्चा का उत्तम समाधान २१७
जैनधर्म व जैन जातियों का महोदय २१६
आर्य और अनार्य देशों में जैन धर्म २१६
नैपाल देश में जैन धर्म का प्रचार २२२
अंग बंग और मगध देशमें जैन धर्म का प्रचार ...२२२
कलिङ्ग प्रान्तमें ,, ...२२३
पञ्जाब प्रान्तमे जैनधर्म ,, ...२२४
सिन्ध प्रान्तमें ,, ,, ...२२५
कच्छ प्रान्तमें ,, ,, ...२२७
सौराष्ट्र प्रान्तमें ,, ,, ...२२७
महाराष्ट्र प्रान्तमें ,, ,, ...२२६
आवन्ती प्रदेशमें ,, ,, ...२३१
संयुक्त प्रान्तमें ,, ,, ...२३२
मेदपाट (मेवाड़) प्रान्तमें ,, ,, ...२३३
मारवाड़ प्रान्तमें ,, ,, ...२३३
जैन जातियों की नामावली.... ....२३७
उपसंहार २३८

जैन जातिमहोदय प्रकरण छठा.

जैन जातियों की वर्तमान दशापर उद्भवित प्रश्नोत्तर १
पूर्वाचार्योंपर मिथ्याक्षेपरूपी प्रश्न २
विश्वप्रवाह और वर्ण व्यवस्था ५
पहले प्रश्न का उत्तर १६
दूसरे प्रश्न का उत्तर २१
जैन मुत्सदों की प्रचण्ड वीरता २३
लुणावतों के नररत्नों का महत्त्व .... ..
भण्डारियों की वीरता का एक उदाहरण.... ....
सिंघियों की कार्यकुशलता ....
मुनोयतों का प्राबल्य प्रताप.... ....
गुजरात के जैनियों का प्रबल प्रभाव ... ...
जैन धर्म के उपासक राजा महाराजा ....
जैनियों के जरिये भारत में शान्ति का साम्राज्य ...
जैन जातियों ने व्योपारसे की हुई देशोन्नति ...
जैन जातियों के द्रव्यका सदुपयोग ... .
जैन धर्म के अहिंसातत्त्व की विशालता ... .
तीसरे प्रश्न का उत्तर ३३
चौथे प्रश्न का उत्तर ३७
पांचवें प्रश्न का उत्तर ४०
जैन जातियों का महोदय के पश्चात् पतनदशा का कारण ... ४९

बाललग्न और अनमेल विवाह ९२

,, विद्वानों की सम्मतिएँ ... .

वृद्ध विवाह ७४

कन्याविक्रय का क्रूर व्यापार.... .... ८०

विधवाओं का करुण रूदन.... .... ८८

सामाजिक व्यर्थ खर्च ९६

साधारण जनताकी दुर्दशा.... ....१०२

बालरक्षण और माताओं का कर्तव्य १०९

दम्पति जीवन और गृहस्थाश्रम ११४

शुद्धि और संगठन १३२

जाति न्याति और संघ शृंखला १४१

जैन समाज की वीरता १४७

,, ,, के दयालत्व की विशालता १४८

,, ,, का व्यापार १४९

,, ,, की वृद्धि और हानी.... ....१५०

,, ,, की ऐकता व फूट १५१

,, ,, का विद्याप्रेम १५२

,, ,, की शिक्षा प्रणाली.... ....१५३

,, ,, का स्वामि वात्सल्य.... ....१५४

,, ,, के मन्दिर और प्रतिष्ठाएँ १५६

,, ,, की मूर्त्तियों १५८

,, ,, ,, मूर्तियों पर श्रद्धा... ....१६१

,, ,, के जैनाचार्य व मुनि १६३
हमारे गुरुदेवों का विहार क्षेत्र ... .१७२
,, ,, धर्मस्नेह.... ... ...१७४
,, ,, व्याख्यान प्रणाली ... .१७५
,, ,, साहित्य सेवा १७६
,, ,, शास्त्रार्थ.... ....१७८
,, ,, संग्रह कोष १८०
,, ,, दीक्षा प्रवृति १८१
,, ,, प्रतिसमाजकी श्रद्धा.... ....१८२
क्षमा याचना १८३

चित्रसूची।

क्रमसंख्या.	नाम.	प्रकरण.	पृष्ट.
१	श्री नवपदजी महाराज	मुखपृष्ट	१
२	आचार्यश्री रत्नप्रभ सूरि (तीरंगा)	,,	
३	गुरुवर्य्य श्री रत्नविजयजी महाराज	,,	
४	श्री उपकेशगच्छ चरित्र	प्रस्तावना	
५	मुनि ज्ञानसुन्दरजी	ले० प.	
६	मुनि श्री गुणसुन्दरजी	,, ,,	

७ भगवान् केसरियानाथजी ,, ,,

८ मुनि ज्ञानसुन्दरजी ,, ,,

९ आदि तीर्थंकर के वर्षीतप का पारणा प्रकरण दूसरा १२

१० माता मरुदेवी और भगवान् का समवसरण ,, १४

११ महर्षि बाहुबलजी का ध्यान ,, १५

१२ अष्टापद पर चौवीस मन्दिर ,, १६

१३ पार्श्वकुमार और कमठ तापस ,, ४४

१४ भगवान् महावीर और चण्डकौशिक सर्प ,, ५८

१५ भगवान् महावीर के कानों में खीले ,, ६०

१६ आर्य समुद्रसूरि और केशीकुमार प्र० तीसरा ८

१७ श्रीमाल नगरमें दो मुनि भिक्षार्थी ,, १७

१८ आ० स्वयंप्रभसूरि और श्रीमालनगर ,, २७

१९ आ० स्वयंप्रभसूरि और पद्मावती नगरी ,, ३७

२० आ० स्वयं० और रत्नचूड का विमान ,, ३८

२१ आ० रत्नप्रभसूरि ५०० मुनियोसे उपकेशपुर ,, ५०

२२ देवीका आग्रह और सूरिजी का चातुर्मास ,, ५२

२३ मंत्रिपुत्र को पूर्णिया नाग का काटना ,, ५४

२४ मंत्रिपुत्र की अर्थी और बाल साधु का रोकना ,, ५६

२५ अर्थी सहित मंत्रिपुत्र को सूरिजी के पास लाना ,, ५६

२६ आचार्यश्री के चरणप्रक्षालके जल से सजग होना ,, ६०

२७ राजा और प्रजा को जैनी बनाया तब पुष्प वृष्टि हो रही है ३७

२८	मंत्रीश्वर की गाय और कैर का झाड़	,,	७६
२९	भगवान् महावीर मूर्त्ति का मामगेह से वरघोड़ा	,,	८०
३०	नौरात्रि में देवी की पूजा और उसका प्रकोप	,,	८३
३१	आचार्यश्री की वेदना और देवी सम्यक्त्व गृहन	,,	८९
३२	उपकेशपुर व कोरंटाजी के मन्दिरकी प्रतिष्ठाएँ	,,	८८
३३	ओशियों के देवीमन्दिर में प्राचीन जैन मूर्त्ति	,,	९०
३४	सिद्धगिरिपर आ० रत्नप्रभ सूरिका स्वर्गवास	,,	९४
३५	फलोधी नगर में आ० रत्नप्रभसूरिकी मूर्त्ति	,,	९६
३६	आ० यक्षदेव सूरि और शिकारी राजकुमार	प्र० पाँचवा	१६
३७	आचार्य कक्कसूरि और देवी की बली	,,	५९
३८	आष्ट्रियाहंगेरी प्रान्तमें भगवान महावीर की प्राचीन मूर्ति		१८०
३९	बाललग्न तथा अनमेल विवाह	प्र० छट्ठा	५८
४०	वृद्धविवाह	,,	७४
४१	कन्या तथा वर विक्रय	,,	८०

भूल सुधार।

इस संस्करण में कई अनिवार्य कारणों से ह्रस्व दीर्घ सम्बन्धी अनेक भूलें रह गई हैं। पाठकगण क्षमा करें। शुद्ध तथा साहित्य संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा। प्रकाशक.

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला पुष्प नं १०३ से १०८ तक

श्री पार्श्वनाथाय नमः ।

श्री

जैन जातिमहोदय ।

मङ्गलाचरण

वीतरागाष्टकम् ।

तुभ्यं नमः समयधर्म्मनिवेदकाय,
तुभ्यं नमस्त्रिभुवनेश्वरशेखराय ।
तुभ्यं नमः सुरनरामरसेविताय,
तुभ्यं नमो जिन जनार्चितपङ्कजाय ॥ १ ॥
तुभ्यं नमो विलसिते हरिचन्दनाय,
तुभ्यं नमो वरकुलाम्बरभास्कराय ।
तुभ्यं नमःप्रणतदेवनराधिपाय,
तुभ्यं नमः प्रवररूपमनोहराय ॥ २ ॥
तुभ्यं नमो हरिण नायक नायकाय,
तुभ्यं नमः यतिपतिप्रतिपालकाय ।
तुभ्यं नमो विकचनीरजलोचनाय,
तुभ्यं नमः स्तनितनादविराजताय ॥ ३ ॥

तुभ्यं नमः कुशलमार्गविधायकाय,
तुभ्यं नमो विकटकष्टनिषेधकाय ।
तुभ्यं नमो दुरितरोगचिकित्सकाय,
तुभ्यं नमः त्रिजगतोहृदि भूषणाय ॥ ४ ॥

तुभ्यं नमो दलितमोहतमोभराय,
तुभ्यं नमः कनक सन्निभ भूधनाय ।
तुभ्यं नमोऽप्यखिलसद्गुणमन्दिराय,
तुभ्यं नमो मुखकलाधिकचन्द्रकाय ॥ ५ ॥

तुभ्यं नमोऽतिशयराजितभूषिताय,
तुभ्यं नमः कुमतितापसुभञ्जनाय ।
तुभ्यं नमो सुखपयोधिवहित्रकाय,
तुभ्यं नमो विगतकैतवमत्सराय ॥ ६ ॥

तुभ्यं नमो विदितभव्यजिनाशयाय,
तुभ्यं नमो निखिलसंशयवारकाय ।
तुभ्यं नमः प्रथितकीर्तियशोन्विताय,
तुभ्यं नमो जितहृषीकमुनिश्वराय ॥ ७ ॥

तुभ्यं नमः प्रमितपुद्गलनिर्मिताय,
तुभ्यं नमः सकलवाङ्मयपारगाय ।
तुभ्यं नमो भविकचातकनीरदाय,
तुभ्यं नमश्चरणवैभवदायकाय ॥ ८ ॥

" गुर्वष्टकम् "

भक्तायाभीष्टवस्तु प्रथितसुमहिमा कल्पशाखीव नित्यं
दत्ते यो दिव्य देहः सपदि हुत भुजो रक्षितो येन चाहिः ।
संसाराम्भो निधौ नौ निखिल भयहरं कीर्तनं यस्य रम्यं
देवं मे हृत्सरोजे नमनिशमहं पार्श्वनाथं स्मरामि ॥ १ ॥

जिस की महिमा विश्वविख्यात है, जो अपने भक्त को कल्पतरु के सदृश इष्ट वस्तु को देता है, जिसने सर्प को अग्नि से बचाया था, जो दिव्य और अलौकिक देहधारी था, जिसका नामस्मरण सर्व भयों को मिटानेवाला है और कर्णप्रिय है, जिस का नाम संसाररूपी समुद्र से पार होने के लिए नौका रूप है उस पार्श्वदेव का मैं निशि दिन हृदय कमल में स्मरण करता हुँ ।१।

जैनश्रेयस्करः श्रीगणधरशुभदत्तः प्रसिद्धो बभूव
लोहित्याहं मुनि चाकुरुतनुहरिदत्तः स्वबोधेन जैनम् ।
आचार्यः श्लाध्यकीर्तिस्तदनुगुणगणोऽभूत्समुद्राख्यसूरिः
सर्वेऽपीमानुवन्नास्तिमिर पट मपा कुर्वतां मानसानाम् । २ ।

जिन शासन के प्रचार में जी जान से प्रयत्न करनेवाले प्रातःस्मरणीय गणधर शुभदत्ताचार्य, स्वस्ति नाम्नी नगरी में पधार कर लोहित्य को भरी राज सभा में प्रबोध देकर जैन मुनि बनाने वाले स्वनामधन्य गुरु हरिदत्ताचार्य और अपने अनवरत उद्योग द्वारा जैनधर्म का प्रचार करनेवाले यशस्वी जो आचार्य आर्य

समुद्रसूरि हुए हैं—ये सब महात्मा, जिनके स्मरण से हमारा हृदय अपने अतीत गौरव को जानकर फूल उठता है, मेरे हृदयगृह के निविड़ अन्धकार रूपी पट को सूर्यवत् दूर करें।

आचार्योऽदत्तकेशी—श्रमण इति शुभं नामभृद्भूपतिभ्यो
बोधं बौधांश्चजित्वाप्यकुरुतविजयी यः स्वधर्म प्रचारम्।
श्रीमालं समजंयोऽकुरुत च नृपतिं यः स्वयं कान्ति सूरि
जैनं पद्मावतीशं स्वहृदयकमले तद्गुरुप्रार्थयेऽहम् ॥ ३ ॥

केशी श्रमणाचार्य जिन्होंने अनेक राजाओं को प्रतिबोध दिया और बौधमतवालों को पराजित कर स्वधर्म की विजय पताका फहराई तथा स्वयंप्रभकांतिसूरि जिन्होंने श्रीमालनगर और पद्मावती नगरी के राजा को प्रजा सहित जैनी बनाया इन दोनों महापुरुषों को मैं गौरव के साथ अपने हृदयकमल में वास करने की प्रार्थना करता हूँ। ३।

सूरीरत्न प्रभाहृस्तिलकइवकुलेऽभूत्तुविद्याधराख्ये
जैनार्येनोपकेशे नगर उपल देवादयः कारिताश्च।
लेभेयस्यप्रसादात्क्षितिपति तनयश्चेतनं मूर्च्छितोऽपि
स्वर्गं तस्मै गताय क्षितिभृति यतिने लब्धकृत्वो नमोऽस्तु ॥४॥

विद्याधर वंश के तिलक प्रातःस्मरणीय श्री रत्नप्रभसूरि जिन्होंने उपकेश नगर में उपलदेव आदि को जैनी बनाया तथा अपने अपूर्व चमत्कार से मुर्छित कुमार को जागृत किया और जिन्होंने परम पावन क्षेत्र सिद्धगिरि पर अनसन करते हुए देह

त्याग कर स्वर्गधाम को प्रस्थान किया, उन निस्पृह योगीश्वर को मैं लक्षवार सहर्ष नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

यक्षायोपद्रवं राजगृह पुरवरस्यापनीयोपदेशं
प्रातः स्मर्यो ददौ यस्त्वगद इव रुजं यक्ष देवाख्यसूरिः ।
चक्रे जैनं प्रयात्वा निखिल गुण निधिर्यश्च सिन्ध प्रदेशं
रुद्राटं कक्कपुत्रं च वितरतु शिवं सोऽनिशं सेवकानाम् ॥ ५ ॥

प्रातःस्मरणीय यक्षदेवसूरिने, जिस प्रकार औषधि रोग को दूर करती है उसी प्रकार अपूर्व बुद्धिबलसे राजगृह नगरी के उपद्रव को दूर करते हुए यक्ष को प्रतिबोध दिया तथा सिन्ध प्रान्त में पर्यटन कर महाराज रुद्राट और कक कुमार को जैनी बनाया ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न गुरु हम सदृश सेवकों का सदा सर्वदा कल्याण करें ॥ ५ ॥

कुर्वन्धर्म प्रचारं तदनु गुरुवरः सिन्ध देशे च देव्या
बल्यर्थं नीयमानं नरपति तनयं यो ररक्ष प्रवीणः ।
कष्टान्मर्त्यान्प्रसह्याध्वनि परि पतनः कच्छ देशेऽपियश्च
चक्रे धर्म प्रचारं मतिमल हतये स्तौमितं कक्क सूरिम् ॥ ६ ॥

इस के पश्चात् श्री कक्कसूरि आचार्य हुए जिन्होंने देवी के निमित्त बलिदान दिये जानेवाले राजपुत्र की रक्षा कर उसे दीक्षित किया तथा मार्ग के उपसर्गों को सहन करते हुए कच्छ प्रान्त में जैन धर्म का प्रचुरता से प्रचार किया, ऐसे परोपकारी गुरु को मेरे मन के मैल को दूर करने की प्रार्थना करता हुआ नमस्कार करता हूँ । ६ ।

सूरिः श्री देवगुप्ता विधुविमलयशा यः प्रतापी बभूव
पीयूषस्यन्दि भिर्यो जनपदमकरोद्वाषणै रेव मुग्धम् ।
शास्त्रार्थे सिद्धपुत्रं हतषडरिगणो यश्च निर्जित्य चक्रे
जैनं भूयादतिर्मे चरण कमलयोस्तद्गुरोरार्तिहर्त्रोः ॥ ७ ॥

चंद्रमा के सदृश विमलयशस्वी प्रतापशाली श्री देवगुप्तसूरि आचार्य हुए जिनकी पियुषवर्षी वाणी श्रवण कर सब लोग मंत्र मुग्ध हो गए तथा जिन्होंने सिद्धपुत्र को शास्त्रार्थ में पराजित कर जैनी बनाया जिन्होंने षट्रिपुओं के दल के मद का मर्दन किया ऐसे दुःख मिटानेवाले गुरु के चरणकमलों में मेरी प्रीति सर्वदा बढ़ती रहे । ७ ।

आचार्यः सिद्धसूरिस्तदनु दनुजहन्याचरज्जैनधर्म
पंजाबादि प्रदेशेष्व विरतमहता सौ प्रयासेन योगी ।
निर्विघ्नो यत्प्रतापात्क्षितितल उपकेशादिगच्छान्तवंशः
पञ्चाचार्येश्वरास्ते ममहृदयगृहे मप्रमोदा वसन्तु ॥ ८ ॥

इन के पीछे आचार्य श्री सिद्धसूरि हुए जिन्होंने अविरल प्रयत्न द्वारा पंजाब आदि प्रदेशों में जैन धर्म का खूब प्रचार किया ऐसे इन पिछले पांचों आचार्यों का जिन की कृपा से संसार में उपकेश वंश आजलों निर्विघ्नतया चला आ रहा है, मेरा प्रणाम है । मैं प्रार्थना करता हूँ कि ये मेरे हृदयगृह में सदा इसी प्रकार निरन्तर निवास करते रहें ॥ ८ ॥

जैन जातिमहोदय।

[प्रथम प्रकरण]

श्री रत्नप्रभसूरीश्वर पादपद्मेभ्यो नमः

अथ श्री.

जैन जाति महोदय.

पहला प्रकरण.

(जैन धर्म्म की प्राचीनता)

जैन धर्म्म एक प्राचीन धर्म्म है. जैन धर्म्म एक पवित्र उच्च कोटिका धर्म्म है. जैन धर्म्म एक विश्वव्यापि धर्म्म है. जैन धर्म्म एक अनादि कालसे अविच्छन्नपने चलता हुवा सर्व धर्म्मों में श्रेष्ठ धर्म्म है. जिन जिन महानुभावोंने जैन धर्म्म के स्याद्वाद रहस्यमय जैन सिद्धान्तों का अवलोकन कीया है वह अपक्षपात दृष्टिसे अपना अभिप्राय पब्लिक के सन्मुख रख चुके है कि जैन धर्म्म एक प्राचीन स्वतंत्र धर्म्म है, जिसकी आदिका पत्ता खोज निकालना बुद्धि के बाहर है. जैनके कर्म्मफिलोसोफी और आत्मा तत्त्व, वैज्ञानीक ढंगपर उन महापुरुषोंने रचा है कि जो सर्वज्ञ अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञानवाले केवली थे। यों कहा जाय कि दूसरे धर्म्मवालोंने जो कुच्छ शिक्षा पाई है वह जैन धर्म्मसेही पाइ है, अतः हम विगर संकोच यह कह सक्ते है कि जैन

धर्म्म सर्व धर्म्मसे प्राचीन और स्वतंत्र धर्म्म है। जिसके प्रबल प्रमाण हम आगे चलके इसी प्रकरणमें देंगे.

आज ऐतिहासिक युग के अन्दर ज्ञानका बहुत कुच्छ प्रकाश हो चुका और होता जा रहा है तो भी वर्तमान समय में अज्ञ लोगों कि भी संख्या कम नहीं है। कितनेक तो बिल्कुल अज्ञानता के अन्धकार में ही पडे हुवे है, कितनेक परम्परा व रूढिके गुलाम बन बेठे है, कितनेक द्वेष--बुद्धि के उपासक बन यहांतक कहने में भी संकोच नहीं करते है कि जैन धर्म्म वैदिक धर्म्मसे निकला हुवा नूतन धर्म्म है कितनेही जैन धर्म्मको बोद्ध धर्म्मकी शाखा बतलाते है तो कितनेक बौद्ध धर्म्म को जैन धर्म्मकी शाखा कहते है। कितने ही कहते है कि जैन धर्म्म भगवान् महावीरसे प्रचलित हुवा तो कितनेक जैन धर्म्मके उत्पादक भगवान् पार्श्वनाथको ही बतलाते है कितनेक तो यहां तक कह बैठते है कि गौरखनाथ मच्छेन्द्रनाथके शिष्योंने ही जैन धर्म्म चलाया है इत्यादि मनमानी कल्पनाएं घड लेते है इससे जैन धर्म्मको तो कुच्छ भी हानि नहीं है पर ऐसे अज्ञ भव्यों को सत्य सिद्धान्तका अवलोकन करवा देना हम हमारा परम कर्त्तव्य समजके ही यह परिश्रम प्रारंभ कीया है.

एक यह बात भी खास जरुरी है कि जिस धर्म्मके विषयमें जो कुच्छ लिखना चाहे तो पहिले उस धर्म्मका साहित्य अवश्य अवलोकन करना चाहिए फिर उसपर टीका टीप्पणी करनेमें लेखक स्वतंत्र है. आज हम देखते हैं तो एसे लेखक हमें विस्तृत संख्यामें मीलेंगे

कि दूसरे धर्म्मके शास्त्र हाथमें लेनेमें महान् पाप मान बैठे है इतनाही नहीं पर " हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मन्दिरम् " फिर भी यह समजमें नहीं आता है कि वह दूसरा प्राचीन धर्म्मको नूतन बतलाने को क्यों तैय्यार हो जाते हैं ?

जैन शास्त्रोंसे जैन धर्म्म अनादि है. हिंदू शास्त्रोंमें वेद ईश्वर कृत और सृष्टिकी आदिसे माने गये है पर वेद रचना कालके पूर्व भी पृथ्वी पर जैन धर्म्म मोजुद था एसा वेदोंसे ही सिद्ध होता है. वह हम आगे चलके बतलावेंगें । पहिले हम ऐतिहासिक शोधखोल द्वारा सिद्ध हुइ जैन धर्म्मकी प्राचीनता जनता के सन्मुख रख देना चाहते है कि मनमानी कल्पनाएं पर विश्वास करनेवालोंका भ्रम दूर हो जाय ।

जैन धर्म्मकी ऐतिहासिक प्राचीनता के विषयमें यदि निश्चयात्मक कहा जाय तो यही कहना होगा कि जितनी भारत वर्षके ऐतिहासिक कालकी प्राचीनता सिद्ध होती जायगी उतनी ही जैन धर्म्मकी प्राचीनता बढती जायगी. वर्तमानमें जिस प्रकार भारत वर्षका इतिहासकाल इसुसे पूर्व ६००–७०० वर्षसे प्रारंभ होता है. इसी प्रकार जैन ऐतिहासिक काल गीनना–समझना चाहिए. इतनाही नहीं बल्के जैन धर्म्मकी ऐतिहासिक प्रमाणिकता इस्वी सन् पूर्व ८००–९०० वर्ष तक बढ जाती है क्यों कि आधूनिक खोजने अन्तिम तीर्थंकर महावीर के पूर्वगामि २३ वां तीर्थंकर पार्श्वनाथको ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध कर दीया है जो कि भगवान् महावीरसे २५० वर्ष पहले हुवे थे इससे जैन ऐतिहासिक प्राचीनता इसुके पूर्व नौवी शताब्दीसे प्रारंभ होना ठीक साबित कर दीया है ।

उधर भगवान् पार्श्वनाथके पूर्वगामी तीर्थंकर नेमिनाथ को ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध कर दिया है जो कि श्रीकृष्णाचन्द्र और अर्जुनके समकालिन हुवे थे. उनका समय जैन शास्त्रों में लिखा मुताबिक पार्श्वनाथसे ८४००० वर्ष पहलेका माना जाता है आगेके लिये जैसे जैसे ऐतिहासिक शोधखोल होती जायगी वैसे ही जैन धर्मकि प्राचीनता आगे बढती जायगी. यहां तक कि भगवान् ऋषभदेव जो जैनोंके आदि तीर्थंकर माना जाता है वहां तक पहुँच जानी चाहिये। वर्त्तमान ऐतिहासिक विद्वानोंने जैन धर्म्मकी प्राचीनताके विषयमें जो उल्लेख किये हैं उनसे कुच्छ उद्धारण यहां दर्ज कर दीये जाते है।

(१) " पार्श्व ए ऐतिहासिक पुरुष हता ते वात तो बधी रीते संभवित लागे छे. केशी के जे महावीरना समयमां पार्श्वना संप्रदायनो एक नेता होय तेम देखाय छे. (हरमन जेकोबी).

(२) " सबसे पहिले इस भारतवर्षमें ऋषभदेव नामके महर्षि उत्पन्न हुए, वे दयावान् भद्रपरिणामी, पहिले तीर्थंकर हुए, जिन्होंने मिथ्यात्व अवस्थाको देखकर सम्यगदर्शन, सम्यगज्ञान और सम्यग् चारित्ररुपी मोक्षशास्त्रका उपदेश किया. बस यह ही जिनदर्शन इस कल्पमें हुआ. इसके पश्चात् अजितनाथसे लेकर महावीर तक तेईस तीर्थंकर अपने अपने समयमें अज्ञानी जीवोंका मोह अंधकार नाश करते रहे. " (श्रीयुत तुकाराम शर्मा लट्टु बी. ए. पी. एच्. डी एम. आर. ए. एस्. एम. ए. एस. बी. एम. जी. ओ. एस. प्रोफेसर क्विन्स कॉलेज बनारस.

(३) जैसे उन्हे आदिकालमें—खाने, पीने, न्याय, नीति और कानूनका ज्ञान मिला, वैसे ही अध्यात्मशास्त्रका ज्ञान भी जीवोंने पाया। और वे अध्यात्मशास्त्रमें सब है. जैसे सांख्य योगादि दर्शन और जैनादिदर्शन। तब तो सज्जनो! आप अवश्य जान गये होंगे कि—जैनमत तबसे प्रचलित हुआ है जबसे संसारमें सृष्टिका आरम्भ हुआ।" (सर्वतन्त्रस्वतन्त्र सत्संप्रदायाचार्य स्वामि राममिश्र शास्त्री).

(४) वेदोंमें संन्यास धर्मका नाम-निशान भी नही है. उस वक्तमें संसार छोड कर वन जा कर तपस्या करनेकी रीति वैदिक ऋषि नहीं जानते थे, वैदिक धर्ममें संन्यास आश्रमकी प्रवृत्ति ब्राह्मणकालमें हुइ है कि जो समय करीब ३००० तीन हजार वर्ष जितना पुराणा है, यही राय श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त अपने 'भारतवर्षकी प्राचीन सभ्यताके इतिहास' में लिखते हैं जो नीचे मुजब है—" तब तक दूसरे प्रकारके ग्रंथोकी रचना हुई जो 'ब्राह्मण' नामसे पुकारे जाते है। इन ग्रंथोमें यज्ञोंकी विधि लिखी है। यह निस्सार और विस्तीर्ण रचना सर्व साधारणके क्षीणशक्ति होने और ब्राह्मणोंके स्वमताभिमानका परिचय देती है। संसार छोड कर वनोंमें जानेकी प्रथा जो पहिले नामको भी नहीं थी, चल पडी, और ब्राह्मणोंके अंतिम भाग अर्थात् आरण्यकमें वनकी विधिक्रियाओंका ही वर्णन है।" (भा० व० प्रा० स० इ. भूमिका). (तात्पर्य यह कि यह शिक्षा जैनोंसे ही पाई थी)

(५) " यज्ञ यागादिकोमें पशुओंका वध हो कर 'यज्ञार्थ पशुहिंसा' आजकल नहीं होती है जैनधर्मने यही एक बडी भारी छाप

ब्राह्मणधर्म पर मारी है. पूर्वकालमें यज्ञके लिये असंख्य पशुहिंसा होती थी इसके प्रमाण मेघदूत काव्य तथा और भी अनेक ग्रन्थोंसे मिलते हैं. रतिदेव (रंतिदेव) नामक राजाने यज्ञ किया था उसमें इतना प्रचुर पशुवध हुआ था कि नदीका जल खूनसे रक्तवर्ण हो गया था उसी समयसे उस नदीका नाम " चर्मवती " प्रसिद्ध है. पशुवधसे स्वर्ग मिलता है इस विषयमें उक्त कथा साक्षी है, परंतु इस घोर हिंसाका ब्राह्मणधर्मसे विदाई ले जानेका श्रेय: जैनके हिस्सेमें है । " (ता. ३०-९-१९०४ के दिन जैन श्वेताम्बर कोन्फरन्सके तीसरे अधिवेशनमें बडौदेमें दिये हुए लोकमान्य बालगंगाधर तिलकके भाषणमेंसे).

(६) " बुद्धना धर्मे वेदमार्गनो ज इन्कार कर्यो हतो, तेने अहिंसानो आग्रह न हतो. ए महादयारूप, प्रेमरूप धर्म तो जैनोनो ज थयो. आथी हिन्दुस्थानमांथी पशुयज्ञ निकली गयो छे. × + × " (सिद्धान्तसारमें प्रो० मणिलाल नभुभाई)

हिन्दु, ईसाई, मुसलमान विगैरह ईश्वर, गोड, खुदा विगैरह नामोंसे एक असाधारण और सर्वविलक्षण शक्तिशाली तत्त्वकी कल्पना करते है और उसे सर्व सृष्टिका कर्ता हर्ता और नियन्ता मानते है ।

हिन्दुस्थानमें यह ईश्वरविषयक मान्यता वैदिक युगके अन्तमें (वि० पू० १४५६ के लगभग) प्रचलित हुई तब यूरोपमें दार्शनिक तत्त्ववेत्ता विद्वान् एनेक्सा गोरसने (वि० पू० ४४४-३५४) पहल पहिले ईश्वरका स्थापन किया । इससे यह बात तो निश्चित है

कि भगवान् महावीर और पार्श्वनाथके समयमें भारतवर्षमें ईश्वरविषयक उपर्युक्त मान्यता चिरप्रचलित हो चुकी थी तब भी जैनदर्शनमें इसका बिल्कुल स्वीकार नहीं हुआ है. इससे यह बात पाई जाती है कि जैनदर्शनके तत्व ईश्वरीय मान्यताके प्रचलित होनेके पहिले ही निश्चित हो चुके थे।

जैनधर्ममें ईश्वरविषयक मान्यता अन्य दर्शनोंसे निराले ढंगकी है।

जैनदर्शनमें मुख्यवृत्त्या जीव और अजीव अथवा चेतन और जड ये दो पदार्थ माने गये हैं, जीव अनन्त हैं, देव, मनुष्य, पशु, नारक विगैरह देहधारियोंमें प्रत्येक जुदा जुदा जीव है, सृष्टिके प्रत्येक देहधारीका जीव वा आत्मा अनन्त ज्ञानमय और शक्तिमय है, परंतु उसका ज्ञान व शक्ति कर्मके जोरसे दबी रहती है ज्यों ज्यों जीव सत्प्रवृत्ति द्वारा आवरणोंका नाश करता है त्यों त्यों उसकी ज्ञानादि आत्मिक शक्तियां विकसित होती है. शुभप्रवृत्ति द्वारा आत्मिक आवरणों (कर्मो) का क्षय कर आत्माका संपूर्ण विकास करना यही जैनदर्शनमें आत्मोन्नतिसाधक कार्योंका साध्यबिन्दु माना गया है, इस नियमके अनुसार जो मनुष्यात्मा अपनी संपूर्ण उन्नति कर चुकता है अर्थात् ज्ञानादि शक्तियां संपूर्ण उन्नति कर पाता है तब जैनपरिभाषामें उसे 'केवली' वा 'जिन' कहते है, जुदे जुदे युगमें जिस विशिष्ट केवलीके हाथसे जैनधर्मका पुनरुद्धार अथवा नयी स्थापना होती है उसको 'तीर्थंकर' कहते है, विशिष्ट केवली (तीर्थंकर) अगर सामान्य केवली जब देहादि संपूर्ण कर्मफलांशोंसे मुक्त हो जाते है तब उन्हें सिद्ध कहते है, जैनशास्त्र इन्ही सिद्धोंको और कभी

कभी केवलीयोंको भी ईश्वर मानते है, क्योंकि ईश्वर शब्दका वाच्यार्थ ' सामर्थ्य ' संपूर्णतया विकसित हो जानेके कारण ये ईश्वर कहलानेके योग्य है, ऐसे सिद्ध अनन्त हैं और भविष्यमें अनन्त होंगे, ये अनन्त शक्ति–ऐश्वर्यसंपन्न होने पर भी सृष्टिरचनादि किसी भी दुनियवी खटपटोंमें नहीं पड़ते, वे कभी अवतार नहीं धारण करते और दुनियाके भले बुरेमें कुछ भी भाग नहीं लेते, यह अनन्तरोक्त जैनदर्शनका सिद्धान्त बहुत ही प्राचीन है। भारतवर्षमें सबसे प्राचीन ' जीवदेवस्वरूप ' धर्म होनेका विद्वानोंका प्रतिपादन जैनधर्मको बराबर लागू होता है, क्योंकि अर्हन् केवली विगैरह देहधारि पुरुषोंको देव माननेकी प्रथा जैनदर्शनमें अनादिकालसे बराबर चली आती है। (जैन धर्मकी महत्ता)

(७) जैनदर्शनकी चेतनवाद संबंधी मान्यता भी बहुत ही प्राचीन है. प्रत्येक देहधारीमें और वनस्पति मिट्टी विगैरहमें चेतन–जीव माननेका जैनधर्मका सिद्धान्त सृष्टिके सबसे पुराने धर्मका सिद्धान्त है, यह जैनदर्शनके सिवाय किसी भी दर्शनमें नहीं पाया जाता, और यह मान्य कोइ धार्मिक विश्वासमात्र ही नहीं है किन्तु विज्ञानशास्त्रसिद्ध सत्य सिद्धान्त है. डॉ. ऑ. परटोल्डने भी अपने एक व्याख्यानमें यही अभिप्राय दर्शाया है जिसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है---" आ मतने निःसंशय असल इतिहासनो आधार मले छे. तो पण ' नीति ' ए विषय उपर हेस्टिंग्स साहेबना ग्रन्थमां अने प्रो० जेकोबीना निबन्धमां " जैनधर्मे पोताना केटलाक मतो प्राचीन जीवदेवना धर्ममांथी लीधेला होवा जोइये " एवुं कहेलुं

होवाथी प्रत्येक प्राणी तो शुं पण वनस्पति अने खनिज पण जीव-स्वरूप ज छे. एवो तत्त्व छे ते महत्त्वनो छे, आ कारणथी जैनधर्म ए अत्यन्त प्राचीन छे. जैनोना निर्ग्रन्थोनो उल्लेख वेदोमां पण मळे छे तेथी आ मारा कथननी प्रतीति थशे. " (जै म०)

(८) जैनशास्त्रोंमें प्राणियोंके शरीर और आयुष्य संबंधी मान्यता भी अति प्राचीन समयकी झलक है, जीवित प्राणियोंका पहिले क्रोडों वर्षोंका आयुष्य और कोशों बडा शरीर होना जैनशास्त्रोंमें लिखा है, यह सिद्धान्त अति पुराने वक्तका है इसमें तो कोइ शक नहीं है पर यह मान्यता सत्य होनेके बारेमें विद्वानोंको बडी शंका है, इतना ही नहीं बल्के अनेक विद्वानोंके ख्यालसे यह सिद्धान्त केवल अन्धविश्वासमात्र प्रतीत होता है, परंतु ज्यों ज्यों सृष्टिका पुराना इतिहास प्रकाशमें आता जायगा त्यों त्यों जैनोंका उपर्युक्त सिद्धान्त सत्य होनेकी प्रतीति होती जायगी, भूमिके गर्भमेंसे कोइ १० हजार वर्षके पुराने कलेवर निकले है जिनकी स्थूलता देख कर लोग आश्चर्यमें डूब जाते है, तो क्रोडों वर्ष पहिलेके प्राणीयोंके शरीर कितने बडे और उनका आयुष्य कितना लंबा होना चाहिये इस बातका विद्वानोंको ख्याल करना चाहिये, अपनी बुद्धि नहीं पहुंचनेसे ही किसी बातको जूठ कहना ठीक नहीं है. (जैन धर्म की महत्ता)

(९) " महाराज ! अहिंयां एक निगंठ चारे दिशाना नियमथी सुरक्षित छे. (चातुयामसंवरसंवुतो) हे महाराज, केवी रीते निगंठ चारे दिशाना संवरथी रक्षित छे ? महाराज आ निगंठ सघळुं (थंडु)

पाणी वापरता नथी, सर्व दुष्ट कर्म करता नथी, अने सघला दुष्कर्मोना विरमन वडे ते सर्व पापोथी मुक्त छे, अने सर्व प्रकारना दुष्कर्मोथी सघलां पापकर्मोथी निवृत्ति अनुभवे छे. आ प्रमाणे हे महाराज ! निगंठ चारे दिशाना संवरथी संवृत छे, अने महाराज ! आ प्रमाणे संवृत होवाथी ते निगंठ नातपुत्तनो आत्मा मोटी योग्यतावालो छे. संयत अने सुस्थित छे. " (दीर्घनिकाय—सामञ्जफलसुत्तकी सुमंगलविलासीनी टीकाका अनुवाद, हरमन जेकोबीकी जैनसूत्रों की प्रस्तावना).

(१०) " पार्श्वनाथजी जैनधर्मके आदि प्रचारक नहीं थे. परंतु इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेवजीने किया था, इसकी पुष्टिके प्रमाणोंका अभाव नहीं है । बौद्धलोग महावीरजीको निग्रन्थोंका (जैनियोंका) नायक मात्र कहते है स्थापक नहीं कहते हैं. "

(श्रीयुत वरदाकांत मुखोपाध्याय एम. ए. के बंगला लेखका अनुवादित अंश.)

(११) भारतेंदु बाबु हरिश्चंद्रने इतिहाससमुच्चयांतर्गत काश्मीरकी राजवंशावलीमें लिखा है कि " काश्मीरके राजवंशमें ४७ वां अशोक राजा हुआ, इसने ६२ वर्ष तक राज्य किया, श्रीनगर इसीने वसाया और जैनमतका प्रचार किया, यह राजा शचीनरका भतीजा था मुसलमानोंने इसको शुकराज वा शकुनिका बेटा लिखा है, इसके वक्तमें श्रीनगरमें ७ लाख मनुष्य थे इसका सत्तासमय १३९४ ईसवी सन पूर्वका है " (देखो इतिहाससमुच्चय पृ. १८)।

ऊपरकी हकीकतसे यह बात सिद्ध होती है कि आजसे ३३१९ वर्ष पहले काश्मीर तक जैनधर्म प्रचार पा चुका था और बडे बडे राजा लोग इस धर्मके माननेवाले थे, इसी इतिहाससमुच्चयमें रामायंणका समयवर्णन करते (पृष्ठ ६) बाबु हरिश्चंद्र लिखते हैं "अयोध्याके वर्णनमें उसकी गलियोंमें जैन फकीरोंका फिरना लिखा है, इससे प्रकट है कि रामायणके बननेके पहले जैनीयोंका मत था।"

(१२) डाक्टर फूहररने एपीग्राफिका इंडिका वॉल्युम २ पृष्ठ २०६–२०७ में लिखते हैं कि—"जैनियोंके बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ ऐतिहासिक पुरुष माने गये है, भगवद्गीताके परिशिष्टमें श्रीयुत बरवे स्वीकार करते है कि नेमिनाथ श्रीकृष्णके भाई (Cousih) थे, जब कि जैनियोंके बाईसवें तीर्थंकर श्रीकृष्णके समकालीन थे तो शेष इक्कीस तीर्थंकर श्रीकृष्णसे कितने वर्ष पहिले होने चाहिये, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते है।"

(१३) "जैनधर्म एक ऐसा प्राचीन धर्म है कि जिसकी उत्पत्ति तथा इतिहासका पत्ता लगाना एक बहुत ही दुर्लभ बात है।"

(मि० कन्नुलालजी).

(१४) "निस्संदेह जैनधर्म ही पृथ्वी पर एक सच्चा धर्म है, और यही मनुष्यमात्रका आदि धर्म है। और आदेश्वरको जैनियोंमें बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध पुरुष जैनियोंके २४ तीर्थंकरोंमें सबसे पहिले हुए है ऐसा कहा है।"

(मि० आवे जे० ए० डबाई मिशनरी)

(१५) " जिनकी सभ्यता आधुनिक है वे जो चाहे सो कहे परंतु मुझे तो इसमें किसी प्रकारका उज्र नहीं है कि जैनदर्शन वेदान्तादि दर्शनोंसे भी पूर्वका है। तब ही तो भगवान् वेदव्यास महर्षि ब्रह्मसूत्रोंमें कहते है—नैकस्मिनसंभवात् । सज्जनो ! जब वेदव्यासके ब्रह्मसूत्र–प्रणयनके समय पर जैनमत था तब तो उसके खण्डनार्थ उद्योग किया गया। यदि वह पूर्वमें नहीं होता तो वह खंडन कैसा और किसका ?, सज्जनो ! समय अल्प है और कहना बहुत है इससे छोड दिया जाता है नहीं तो बात यह है कि–वेदोंमें अनेकान्तवादका मूल मिलता है। + + + सृष्टिकी आदिसे जैनमत प्रचलित है। "

(सर्वतन्त्रस्वतंत्र सत्संप्रदायाचार्य स्वामिरामिश्र शास्त्री.)

(१६) वर्तमान मुस्लीम धर्मकी उत्पत्ति हजरत मुहम्मद साहब पैगंबरसे हुई मानी जाती है. मुसलमानोंका अरबी, फारसी, उर्दु विगेरह भाषाका साहित्य मुहम्मद साहेबके वक्तका अथवा इनके पीछले वक्तका है, मुहम्मद साहबको हुए पूरे १४०० वर्ष अभीतक नही हुए है, इससे यह बात साफ तौरसे सिद्ध है कि मुसल्मानी किताबोंमें सृष्टिके आदि पुरुषकी (आदमबाबाकी) जो कथा लिखी गई है वह जैनोंके प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवके चरित्रके साथ संबंध रखती है, क्योंकि जैनशास्त्रोंमें उनको प्रथमतीर्थंकर, आदिनाथ, आदिप्रभु, आदिमपुरुष, युगादिम विगेरह अनेक नामोंसे उल्लिखित किया है, ' आदम ' शब्द ' आदिम ' शब्दका हुबहू रूपान्तर है, जैनोंमें ' आदिम ' शब्द आदि तीर्थंकरके अर्थमें दो हजार वर्ष पहिलेसे प्रयुक्त हुआ

दृष्टिमें आता है तब मुसलमानोंकी धार्मिक किताबोंमें उसका प्रयोग बहुत पीछे हुआ है. (जैन धर्म्म की महत्ता)

(१८) रायबहादुर पूर्णेन्दु नारायणसिंह एम० ए० बांकीपुर लिखते है—जैन धर्म पढनेकी मेरी हार्दिक इच्छा है क्योंकि मैं ख्याल करता हूं कि व्यवहारिक योगाभ्यासके लिये यह साहित्य सबसे प्राचीन (Oldest) है। यह वेदकी रीति रिवाजोंसे पृथक् है इसमें हिन्दु धर्मसे पूर्वकी आत्मिक स्वतंत्रता विद्यमान है, जिसको परम पुरुषोंने अनुभव व प्रकाश किया है यह समय है कि हम इसके विषयमें अधिक जानें।

(१९) महामहोपाध्याय पं० गंगानाथझा एम० ए० डी० एल० एल० इलाहाबाद—' जबसे मैंने शंकराचार्य द्वारा जैन सिद्धान्त पर खंडनको पढा है, तबसे मुझे विश्वास हुआ कि इस सिद्धान्तमें बहुत कुछ है जिसको वेदान्तके आचार्यने नहीं समझा, और जो कुछ अब तक मैं जैन धर्मको जान सका हूं उससे मेरा यह विश्वास दृढ हुआ है कि यदि वह जैन धर्मको उसके असली ग्रन्थोंसे देखनेका कष्ट उठाता तो उनको जैन धर्मसे विरोध करनेकी कोई बात नहीं मिलती।

(२०) श्रीयुत् नैपालचन्द्र राय अधिष्ठाता ब्रह्मचर्य्याश्रम शांति-निकेतन बोलपुर—मुझको जैन तीर्थंकरोंकी शिक्षा पर अतिशय भक्ति है।

(२१) श्रीयुत् एम. डी. पाण्डे थियोसोफिकल सोसाइटी बनारस मुझे जैन सिद्धान्तका बहुत शौक है, क्योंकि कर्म सिद्धान्तका इसमें सूक्ष्मतासे वर्णन किया गया है।

(२२) इन्डियन रिव्युके अक्टोबर सन् १९२० ई० के अङ्कमें मद्रास प्रेसीडेन्सी कॉलेजके फिलोसोफीना प्रोफेसर भि० ए० चक्रवर्ती एम. ए. एल. टी. ए. लिखित " जैन फिलोसोफी " नामके आर्टिकलका गुजराती अनुवाद महावीर पत्रके पौष शुक्ला १ संवत २४४८ वीर संवतके अंकमें छपा है उसमेंसे कुछ वाक्य उध्धृत।

रिषभदेवजी ' आदि जिन ' ' आदीश्वर ' भगवानना नामे पण ओलखाय छे ऋग्वेदनां सूक्तोमां तेमनो ' अर्हन ' तरीके उल्लेख थएलो. छे जैनो तेमने प्रथम तीर्थंकर माने छे. बीजा तीर्थंकरो बधा क्षत्रियोज हता.

(२३) भारत मत दर्पण नामकी पुस्तक राजेन्द्रनाथ पंडित उर्फ रायप्रपन्नाचार्य्यने समाजी प्रेस वडोदामें छपा कर प्रकाशित की है। इसके पृष्ठ १० की पंक्ति ९ से १४ में लिखा है कि पूज्यपाद बाबू कृष्णनाथ बेनरजी अपने ' जिन जन्म ' (जेनिजम) में लिखा है कि भारतमें पहिले ४००००००० जैन थे उसी मतसे निकल कर बहुत लोग दूसरे धर्ममें जानेसे इनकी संख्या घट गई, यह धर्म बहुत प्राचीन है इस मतके नियम बहुत उत्तम है इस मतसे देशको भारी लाभ पहुंचा है ।

(२४) श्रीयुत् सी. वी. राजवाडे एम. ए. बी. एस. सी. प्रोफेसर ऑफ पाली, बरोडा कालेजका एक लेख " जैन धर्मनुं अध्ययन " जैन साहित्य संशोधक पुना भाग १ अंक १ में छपा है उसमेंसे कुछ वाक्य उध्धृत ।

प्रोफेसर वेबर बुल्हर जेकोबी हॉरनल भांडारकर ल्युयन राइस गॅरीनोट वगैरा विद्वानोए जैन धर्मना संबंधमां अंतःकरण पूर्वक अथाग परिश्रम लेई अनेक महत्वनी शोधो प्रगट करेली छे। जैन धर्म पूर्वना धर्मोमां पोतानो स्वतंत्र स्थान प्राप्त करतो जाय छे. जैन धर्म ते मात्र जैनोनेज नहीं परंतु तेमना सिवाय पाश्चात्य संशोधनना प्रत्येक विद्यार्थी अने खास करीने जो पौर्वात्य देशोंना धर्मोना तुलनात्मक अभ्यासमां रस लेना होय तेमने तल्लीन करी नाखे एवो रसिक विषय छे.

(२५) डाक्टर F. OTTO SCHRADER, P. H. D. का एक लेख बुद्धिष्ट रिव्युना पुस्तक अंक १ मां प्रकट थयेला अहिंसा अने वनस्पति आहार शीर्षक लेख का गुजराती अनुवाद जैन साहित्य संशोधक अंक ४ में छपा है उसमेंसे कुछ वाक्य उध्धृत।

अत्यारे अस्तीत्व धरावता धर्मोमां जैन धर्म एक एवो धर्म छे के जेमां अहिंसानो क्रम संपूर्ण छे ब्राह्मण धर्ममां पण घणा लांबा समय पच्छी सन्यासीओ माटे आ सुक्ष्मतर अहिंसा विदित थई अने आखरे वनस्पति आहारना रुपमां ब्राह्मण ज्ञातिमां पण ते दाखील थई हती. कारण ए छे के जैनोना धर्म तत्वोए जे लोक मत जीत्यो हतो तेनी असर सज्जड रीते वधनी जती हती.

(२६) राजा शिवप्रसाद सतारेहिंदने अपने निर्माण किये हुये " भूगोल स्तामलक " में लिखा है कि दो–ढाइ हजार वर्ष पहिले दुनियाका अधिक भाग जैन धर्मका उपासक था।

(२७) पाश्चात्य विद्वान् रेवरेन्ड जे० स्टीवेन्स साहेब लिखते है कि:—

साफ प्रगट है कि भारतवर्षका अधःपतन जैनधर्मके अहिंसा सिद्धान्त के कारण नहीं हुआ था, बल्कि जब तक भारत वर्षमें जैन धर्मकी प्रधानता रही थी, तब तक उसका इतिहास सुवर्णाक्षरोंमें लिखे जाने योग्य है। और भारतवर्षके ह्रासका मुख्य कारण आपसी प्रतिस्पर्धामय अनैक्यता है। जिसकी नींव शङ्कराचार्यके जमानेसे जमा दी गई थी। जैन मित्र वर्ष २४ अङ्क ४० से.

(२८) पाश्चात्य विद्वान् मि० 'सर विलियम' और हैमिल्टन ने मध्यस्थ विचारोंके मंदिरका आधार जैनोंके इस अपेक्षावादका को ही माना है। जैनमत में अपेक्षावादका ही दूसरा नाम नयवाद है।

(२९) डाक्टर टामसने जे. एच. नेलसन्स "साइन्टिफिक स्टडी ऑफ हिन्दु लॉ." नामक ग्रन्थमें लिखा है कि यह कहना काफी होगा कि जब कभी जैन धर्मका इतिहास बनकर तय्यार होगा तो हिन्दू कानूनके विद्यार्थी लिये उसकी रचना बडी महत्वकी होगी, क्योंकी वह निःसंशय यह सिद्धकर देगा की जैनी हिन्दु नहीं है।

(३०) इम्पीरियल ग्रेजीटियर ऑफ इंडिया व्हाल्यूम दो पृष्ट ९४ पर लिखा है कि कोई २ इतिहासकार तो यह भी मानते हैं कि गोतम बुद्ध को महावीर स्वामी से ही ज्ञान प्राप्त हुआ था जो कुछ भी हो यह तो निर्विवाद स्वीकार ही है कि गोतम बुद्धने महावीर

स्वामी के बाद शरीर त्याग किया, यह भी निर्विवाद सिद्ध ही है कि बौद्ध धर्म के संस्थापक गोतम बुद्ध के पहिले जैनियों के तेवीस तीर्थंकर और होचुके थे।

(२१) मिस्टर टी डब्लू राईस डेविड साहिब इन साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका० व्हा. २६ नाम की पुस्तक में लिखा है, यह बात अब निश्चित है कि जैन मत बौद्ध मत से निः संदेह बहुत पुराना है और बुद्ध के समकालीन महावीर द्वारा पुनः संजीवन हूआ है और यह बात भी भले प्रकार निश्चय है कि जैनमत के मंतव्य बहुत ही जरुरी और बौद्ध मत के मंतव्यो से बिलकुल विरुद्ध है, यह दोनों मत न केवल प्रथम ही से स्वाधीन हैं बल्कि एक दूसरे से बिलकुल निराले हैं।

इत्यादि सेंकडो नहीं पर हजारो प्रमाण सांसार साहित्य में उपलब्ध है जिनसे यह सिद्ध होता है कि भगवान् महावीर पार्श्वनाथ और नेमिनाथ ऐतिहासिक पुरुष है और इनकी कालगीणना इसा से हजारो वर्ष पूर्व कि है इन से गौरखनाथ मच्छेन्द्रनाथ के शिष्यों से जैन धर्म्म प्रचलीत हुवा तथा जैन धर्म्म बौद्ध धर्म्म कि साखा बतलानेवाले और जैन धर्म्म के उत्पादक महावीर और पार्श्वनाथ माननेवालो कि कल्पनाए बिल्कुल असत्य–मिथ्या व अन्ध परम्पर और द्वेष बुद्धिका ही कारण ठेर सक्ती है।

उपरोक्त ऐतिहासिक प्रमाणों से यह भी सिद्ध हो जाता है कि वेद काल के पूर्व भी जैन धर्म्म आस्तित्व था तद्यपि हमे कुच्छ वेदों

के व पुराणों के एसे प्रमाण यहां दे देना चाहिये कि जैन धर्म्म वेद धर्म्म से निकला मोनने वालो का भ्रम मूलसे। नष्ट हो जाय।

(१) यजुर्वेद–ॐ नमोऽर्हन्तो ऋषभो ॥ अर्थ अर्हन्त नाम-वाले (व) पूज्य ऋषभदेव को नमस्कार हो।

(२) यजुर्वेद–ॐ रक्ष रक्ष अरिष्ट नेमि स्वाहा ॥ अर्थ–हे अरिष्ट नेमि भगवान् हमारी रक्षा करो (अध्य० २६)

(३) ऋग्वेद–ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्टितानां, चतुर्विंशति तीर्थ कराणां। ऋषभादि वर्द्धमानान्तानां, सिद्धानां शरणं प्रपद्ये ॥ अर्थ तीन लोक मे प्रतिष्टित श्री ऋषभदेवसे आदि लेकर श्री वर्द्ध-मान स्वामि तक चौवीस तीर्थकरो (तीर्थ की स्थापना करनेवाले) है उन सिद्धांकी शरण प्राप्त होता हुं।

(४) ऋग्वेद–ॐ पवित्रं नग्नमुपवि (ई) प्रसानहे येषां नग्ना (नग्नये) जातिर्येषां वीरा ॥ अर्थ हम लोग पवित्र, "पापसे बचानेवाले" नग्न देवताओं को प्रसन्न करते है जो नग्न रहते हैं और बलवान् है.

(५) ॐ नग्नं सुधीरं दिग् वाससं ब्रह्मगर्भ सनातनं उपैमि वीरं पुरुष मर्हतमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात् स्वाहा ॥ अर्थ नग्न धीर वीर दिगम्बर ब्रह्मरूप सनातन अर्हन्त आदित्यवर्ण पुरुष की शरण प्राप्त होता हुं।

(६) श्री ब्रह्माण्ड पुराण।

नाभिस्तु जनयेत्पुत्रं, मरुदेव्यां मनोहरम् ।
ऋषभं क्षत्रिय श्रेष्ठं, सर्व क्षत्रस्यपूर्वकम् ॥
ऋषभाद्भारतोजज्ञे, वीर पुत्रशता ग्रज ।
राज्ये अभिषिच्य भरतं, महा प्रव्रज्या माश्रितः ॥ १ ॥

अर्थ—नाभिराजा के यहां मरुदेवि से ऋषभ उत्पन्न हुए जिसका बडा सुन्दर रुप है जो क्षत्रियों मे श्रेष्ठ और सर्व क्षत्रियों कि आदि है और ऋषभ के पुत्र भरत पैदा हुवा जो वीर है और अपने १०० भाईओं मे वडा है ऋषभदेव भरत को राज देकर महा दीक्षा को प्राप्त हुवे अर्थात् तपस्वी हो गये ।

भावार्थ—जैन शास्त्रो में भी यह सब वर्णन प्राचीन समयसे इसी प्रकार है इससे यह भी सिद्ध होता है कि जिस ऋषभदेव कि महिमा वेदान्तियों के ग्रन्थों मे वर्णन की है वह जैनों के आदि तीर्थंकर है और जैन उस महापुरुषकों अपने पूज्य समझ के पूजते है

नोट—वेदान्तियोंने ऋषभ देव कि सर्व कथा जैनियों से ही ली है कारण वेदान्ति लोग चौवीस अवतारों मे ऋषभदेव को आठवा अवतार मानते है तो फिर क्षत्रियों का आदि पुरुष ऋषभदेव को कैसे माना जावे कारण सात अवतार तो इन के पूर्व हो गये थे वह भी तो क्षत्री ही थे क्षत्रियों के आदि पुरुष ऋषभदेव कों तो जैनि ही मान सक्ते है कि वह ऋषभदेव को आदि तीर्थंकर आदि क्षत्री मानते है ।

(७) महा भारत—

युगे युगे महापुण्यं दृश्य ते द्वारिकापुरी
अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभास शशि भूषणः ।
रेवताद्रौजिनो नेमि र्युगादिर्विमलाचले
ऋषीणामाश्रमा देव मुक्ति मार्गस्य कारणम् ॥ १ ॥

अर्थ—युग युगमे द्वारिकापुरी महाक्षेत्र हैं जिस्मे हरिका अवतार हुवा जो प्रभास क्षेत्रमे चन्द्रमा की तरह शोभित है और गिरनार पर्वतपर नेमिनाथ और कैलास (अष्टापद) पर्वत पर आदिनाथ अर्थात् ऋषभदेव हुवा है यह क्षेत्र ऋषियों के आश्रम होनेसे मुक्ति मार्ग के कारण हे।

नोट—महा भारत के समय पूर्व भी जैन धर्म्म कि मान्यता मोजुद थी. जैनों का अष्टापद व गिरनार तीर्थ भी मोजुद था।

(८) श्री नाग पुराण—

दर्शयन् वर्त्म वीराणं सुरासुर नमस्कृतः ।
नीति त्रयस्य कर्ता यो युगदौ प्रथमो जिनः ॥
सर्वज्ञ सर्वदर्शी च सर्व देव नमस्कृतः ।
छत्र त्रयीभिरा पूज्यो मुक्ति मार्गम सौ वदन् ॥
आदित्य प्रमुखाः सर्वे बद्धां जलि भिरीशितुः ।
ध्यायांति भवतो नित्यं यदं ध्रि युग नीरजम् ॥
कैलास विमले रम्ये ऋषभोयं जिनेश्वरः ।
चकार स्वावतारं यो सर्वःसर्वगतः शिवः ॥

अर्थ—वीरपुरुषो को मार्ग दिखाते हुये सुरासुर जिनको नमस्कार

करते है जो तीन प्रकार कि नीति के बनानेवाले है वह युग कि आदि मे प्रथम जिन अर्थात् आदिनाथ भगवान् हुये सर्वज्ञ (सब लौकालौकके भावो को जानने वाले) सर्व कों देखने वाले सर्व देवो कर पूजनिय, छत्र त्रीयकर पूज्य मोक्षमार्गका व्याख्यान करते हुए सूर्यको आदि लेकर सर्व देवता सदा हाथ जोडकर भाव सहित जिसके चरणकमलो का ध्यान करते हुए एसे ऋषभ जिनेश्वर निर्मल कैलास (अष्टापद) पर्वत पर अवतार धारण करते हुवे जो सर्व व्यापि ओर कारूणावान् है। भावार्थ जिन व जिनेश्वर जैनोमे तीर्थकरोकों कहेते है जिनभाषित धर्म्म को ही जैन धर्म्म कहते है इस श्लोको से भी जैन धर्म्म कि प्राचीनता साबित होती है।

(९) शिवपुराण—

अष्ट षष्टिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत्
आदि नाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत्।

अर्थ अडसठ (६८) तीर्थो कि यात्रा करनेका जो फल है उतना फलश्री आदिनाथ के स्मरण करने ही से होता हैं यह आदिनाथ वह ही है जो जैनियों के आदि तीर्थकर हुए।

(१०) योग वासिष्ठ प्रथम वैराग्य प्रकरण, राम कहे ते है—

नाहं रामो नमे वाच्छा भावेषु च न मे मनः
शान्ति मास्थातु मिच्छामि चात्मन्येव जिनोयथा।

अर्थ—महात्मा रामचन्द्रजी कहते है कि न में राम हुँ न मेरी

कुच्छ इच्छा है और न मेरा मनः पदार्थोंमें है में केवळ यह ही चाहता हुँ कि जिनदेव कि तरफ मेरी आत्मा में शान्ति हो।

भावार्थ—रामचन्द्रजीने भी जो जिनदेव रामजीसे पहला और उत्तमोत्तम हुवे उसका अनुकरण किया है। यह श्लोक भी मिथ्या कल्पनाओंको नष्ट कर जैनो की प्राचीनता बतला रहा है।

(११) दक्षिणामूर्त्ति सहस्रनाम ग्रन्थ में—

" जैन मार्गरतो जैनो जित क्रोधो जितामयः

अर्थ—शिवजी कहेते है कि जैन मार्ग मे रति करने वाले जैनी क्रोधकों जीतनेवाले और रोगो को जितनेवाले वैसे में हुँ। शिव अपने हजार नामो में एक नाम जैनी बता कर क्रोधकों जितनेवाले बनते है।

भावार्थ—शिवजी के पूर्व भी जैन थे और उन जैनो का अनुकरण करने को ही शिवजी कह रहे है।

(१२) दुर्वासा ऋषिकृत महिम्न स्तोत्र—

तत्र दर्शने मुख शक्ति रि ति च त्वं ब्रह्म कर्मेश्वरी
कर्त्ताऽर्हन पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिव स्त्वं गुरुः ॥

अर्थ—वहां दर्शनमें मुख्य शक्ति आदि कारण तुँ है और ब्रह्मा भी तुं है माया भी तुं है कर्ता भी तुं है अर्हन् भी तुं है और पुरुष हरि सूर्य बुद्ध और महादेव गुरु वे सभी तुं है। यहां अर्हन् कहै के तीर्थंकर की स्तुति की है।

(१३) भवानी सहस्र नाम ग्रंथ—

कुण्डसना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी
जिनमाता जिनेन्द्रा च शारदा हंस वाहिनी ।

अर्थ—भवानी के नाम ऐसें वर्णन कीये है जिस्से जिनेश्वरी जिनदेव की माता जिनेन्द्रा कहा है ।

(१४) मनुस्मृति—

कुलादि बीजं सर्वेषां प्रथमो विमल वाहनः ।
चक्षुष्मांश्च यशस्वी वाभिचन्द्रोथ प्रसनेजित् ॥
मरूदेवि च नाभिश्च भरतेः कुल सत्तमः ।
अष्टमो मरूदेव्यां तु नाभेजतिउरुक्रमः ॥
दर्शयन वत्मर्वीराणां सुरासर नमस्कृतः ।
नीति त्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमोजिनः ॥

अर्थ—सर्व कुलो का आदि कारण पहला विमलवाहन नाम और चक्षुष्मान ऐसे नामवाला यशस्वी अभिचन्द्र और प्रसन्नजित मरूदेवी और नाभि नामवाला कुलमें वीरो के मार्ग कों दिखलाता हुवा देवता और दैत्यों से नमस्कार को पानेवाला और युग के आदि में तीन प्रकारकी नीति के रचनेवाला पहला जिन भगवान् हुए ।

भावार्थ—यहां विमलवाहनादिको मनु कहा है जैनसिद्धान्तोमे इने कुलकर कहा है और महायुग के आदिमें जो अवतार हुवा है उस्को जिन अर्थात् जैन देवता लिखा है ईससे भी विदित होता है कि जिनधर्म्म युग कि आदिमे भी विद्यमान ही था उक्त लेखसे भी ज्ञात हो जायगा कि सब धर्मोमे जैनधर्म्म प्राचीन है ।

(१५) महाभारतमे श्री कृष्णचन्द्र क्या कहते है ।

आरोहस्व रथे पार्थ गांडी वंच करे करू
निर्जिता मेदिनी मन्ये निग्रन्था यादि सन्मुखे ।

अर्थ—हे युधिष्ठिर । रथमें सवार हो और गांडिव धनुष्य हाथमे ले में मानता हु कि जिसके सन्मुख निग्रन्थ (जैनमुनि) आया हो उसने पृथ्वी जीतली । क्या इस श्लोकसे जैनधर्म्म कि प्राचीनता सिद्ध नही होती है । (तत्त्वनिर्णयप्रसाद)

उपरोक्त वेद श्रुतियो व स्मृतियों और पुराणो के प्रमाणो से यह भलिभांति सिद्ध हो गया कि वेदकाल के पूर्व जैनधर्म्म अच्छी उन्नति पर था, और पुराणो में जो भगवान् ऋषभदेव की कथा लिखी है वह जैनियों के शास्त्रों से लेकर ही लिखी है और भगवान् ऋषभदेव का संबंध भी जैनियोंके साथ ही है नकी वेदान्तियोंसे कारण पुरांणकारोने भगवान ऋषभदेवको सृष्टिका आदि पुरुष मानते हुवे भी आठवा अवतार लिखा है यह दोनो वाक्य परस्पर विरूद्ध है आगे चलकर हमे यह भी पता मीलता है कि वेदों में चौवीस अवतारों का नाम निशांन तक भी नहीं है वादमे पुरांणकारोने छोटे वडे दशावतार मानके उनका उल्लेख अपने पुरांणों मे कर के कीतनेक स्थानोंपर दशावतार के मन्दिर भी बनाया दशावतार के बारा मे

मत्स्य कूर्मो वराहश्च, नरसिंहो थ वामनः
रामो रामश्च कृष्ण श्च, बुद्ध कल्की चेतदशः ॥ १ ॥

मच्छा कच्छा सुयर नरसिंह वामन राम परशुराम कृष्ण बुद्ध और

कल्की एवं दशावतार माना है इस्मे भी तुँग यह है कि महात्मा बुद्ध वेदान्तियों का कट्टर शत्रु होने परभी उसको अवतारोमे दाखल कीया है खेर कुच्छ भी हो इस्मे ऋषभदेवका नाम अवतरो में नहीं है जब पुरांण कारोको दश अवतारोसे संतोष नहीं हुवा तब जैनोंमे प्राचीन समयसे २४ तीर्थंकरो कि मान्यता कों देख पुरांणकारो कों भी चौवीस अवतारो की कल्पनाए करनी पडी है और चोवीस अवतारो मे भगवान् ऋषभदेव को आठवा अवतार तरिके मान भागवतादि पुराणों में उन्हों की कथाओ लिखि गइ पर साथमें तुँग यह है कि जैनि-यें मे भगवान् ऋषभदेव कों आदि पुरुष माना गया देख उसका अनु-करण करते हुवे पुरांणकारोंने भी भगवान ऋषभदेव को आदि पुरुष मान लिया पर यह नहीं सोचा कि आदि पुरुष मान लेने पर आठवा अवतार कैसे हो सके गा ? कारण अगर एसा ही होगा तों पूर्व हुवे सात अवतारों कि आदि करनेवाला कौन हुवा. परन्तु कल्पित कथाओ लिखने वालो को पूर्वापर विरोधका ख्याल ही क्यो आवे । अब हमे यह देखना है कि पुरांणकारोंने भगवान ऋषभदेव को कबसे अपनाये है इस-के विषयमे सबसे पहला उल्लख श्रीमद् भागवत पुरांण में मिलता है तब तो हमे भगवत का भी पेत्ता निकालना जरूरी बात है कि भगवत की रचना किस समय मे हुई है श्रीमद्भागवत के विषय में कितनेक विधानों-का तो मत है कि भागवत विक्रम कि दशवी शताब्दी में रची गइ है पर

---

(१) " भागवत ए एक उत्कृष्ट अने रसपूर्ण ग्रन्थ छे ए सहु कोइने मान्य छे, पंतु आपणे धारीये छीये एटलो ते प्राचीन नथी. लगभग ४०० वर्ष पहेलां बंगा-लामां मुसलमानोना राज्यना वखतमां थइ गयेला ' वोपदेव ' नामना विद्वाने ए ग्रंथ

विशेष खोज करने पर यह निश्चित हुवा है कि भागवत विक्रम कि सोल-हवी शताब्दी में मुशलमान राजत्व कालमे वापदेव नाम का पण्डितने बंगाल में भागवत कि रचना करी है और शेष पुरांणो का रचना काल भी विक्रम की पांचवी शताब्दी से पूर्वका नहीं है इनसे पूर्व किसी वेद व श्रुतियों मे भगवान ऋषभदेव प्र आठवा अवतार के रूपमे माना हुवा दृष्टि गोचर नहीं होता है इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् ऋषभदेव जै-नियों के आदि तीर्थकर इस अवसर्पिणि कालमे भारतभूमिपर सबसे पहला जैनधर्म्म का प्रचार कीया शेष धर्म इसी धर्म्म से निकले हुवे अव-र्चीनि धर्म्म है ॥

जैसे भगवान् ऋषभदेव के विषय में पुराणकारोने कल्पित कथाओ लिखी है वैसे ही महात्मा रामचन्द्रजी और श्री कृष्णचंद्र के बारा मे भी लिखी है देखिये रामचन्द्रजी का समय करीबन ९०००० वर्ष पूर्व का बतलाते है तब बालमीकीय रामायण में लिखा

लख्यो छे. कृष्णभक्तिनो प्रचार ए ग्रंथथी वध्यो ए खरुं, परंतु ए इतिहास नथी ए वात ध्यानमां राखवी जोइये."

(ऋग्वेदीकृत आर्योना तहेवारोनो इतिहास. पृष्ट ३५०)

(२) रामने परमेश्वरना अवतार गणवानो वाल्मीकिनो विचार होय एम लागतुं नथी. पण तुलसीदास तो तेने साक्षात् विष्णुना अवतार कह्या छे.

(ऋग्वेदी, आर्योना तहेवारोनो इतिहास ८५)

३ कीतनेक लोगोंका मत है कि भागवतकी रचना विक्रमकी दशवी शताब्दी मे हुइ है और शेष पुरांणोका समय इसाकी पांचवी सादीका पृष्ट होता है इससे प्राचीन-ताका कोइभी प्रमाण अबीतक नहीं मीलता है विशेष देखो आर्य्यसमाजियो की तरफसे प्रसिद्ध हुवा पुरांण परिक्षा तथा पुरांणोकी पोंपलीला और शंकाकोष नामका पुस्तको ।

है कि राजा दशरथ की ६०००० वर्ष कि आयुष्यथी और रामचन्द्रजी ने इग्यारा हजार वर्ष अयोध्या मे राज कीया था क्या इस वातको कोइ सिद्धकर वतला सक्ते है कि ५०००० वर्ष पूर्व ६०००० वर्ष का आयुष्य हो सक्ता था एसा ही श्री कृष्णचंद्र का समय है पौरांणिक लौग श्रीकृष्णचंद्र हुवो कों करीबन ५००० वर्ष मानते है और उनकि आयुष्य १००० वर्षका वतलाते है यह भी वैसा ही है कि जैसा रामचंद्रजी का समय, पर ५००० वर्षो पहला १००० वर्ष का आयुष्य होना कीसी हालत में सिद्ध नहीं होता है जैन शास्त्रकारोने रामचन्द्रजी का समय तीर्थंकरों का शासनपरत्वे ११८७००० वर्ष पूर्व का और श्रीकृष्णचन्द्रका समय करीबन ८७००० वर्ष पूर्वका माना है वह युक्तायुक्त है इतने समय के अन्तर मे पूर्व लिखील आयुष्य ठीक ठीक हो सक्ता है। इन सब प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता हैं कि भगवान् ऋषभदेव इस अवसर्पिणि कालमें जैन धर्म्म के आदि प्रवृतक है चक्रवृति भरत, महाराज रामचंद्र, वासुदेव श्रीकृष्णचंद्र और कौरव पांडव यह सब महापुरुष जैन ही थें इनके सिवाय सेकडो हजारों राजा जैनधर्म्मके परमोपासक थे जिनका जीवन जैनशास्त्रों में आज भी उपलब्ध है विद्वानों का मत्त है कि भग-

---

१ " चतुरङ्ग समायुक्तं मया सह च तं नया।
षष्ठि वर्ष सहस्राणि, जातस्य मम कौशिक ।१।
(बा० रा० का० १ सर्ग २०)

२ दश वर्ष सहस्राणि, दश वर्ष शतानि च।
रामो राज्य मुपासित्वा ब्रह्मलोक प्रयास्यति।
(बा० रा० बालकाण्ड सर्ग १ श्लोक ९७)

वान् महावीर के समय जैनोकि संख्या चालीस क्रोडकी थी जिस्का एक ही उधारण--

"भारतमें पहिले ४०००००००० जैन थे, उसी मतसे निकल कर बहुत लोग अन्य धर्ममें जानेसेइन की संख्या घट गई, यह धर्म बहुत प्राचीन है, इस मतके नियम बहुत उत्तम हैं, इस मतसे देशको भारी लाभ पहुंचा है।"

(बाबू कृष्णनाथ बनरजी, जैनिज्म)

भगवान महावीर के पश्चात विक्रम कि तेरहवी शताब्दी तक जैन-धर्म अच्छी उन्नति पर था मौर्यवंशी कलचूरीवंस बल्लभीवंस कदम्बवंस राष्ट्रकुट वंस पँवारवंशी और चोलंकयवंस के राजा जैनधर्म्मके उपासक ही नहीं पर जैनधर्म्म कि बहुत उन्नति भी करी थी जिनकाशिला लेख और ताम्रपत्र आजभी इतिहास में उच्चस्थान पा चुके है—यद्यपि जैन राजाओं का सविस्तार विवर्ण आगेके प्रकरण में लिखा जावेंगा तद्यपि यहांपर सिर्फ अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के उपासक तथा उनके बादमे जो राजा जैनधर्म्म के उपासक हुवे उनकी नामावलि यहांपर दर्ज कर दी जाती है।

(१) वैशाला नगरीका चेटक महाराज सकुटुम्ब परम जैनी थे.

(२) लच्छवीवंशके नौराजा और मल्लीकवंशके नौराजा एवं १८ देशके अढारा गणराजा जों चेटकराजाके साधर्मि थे जिनने पावापुरी नगरी में भगवान् महावीर के अन्तिम समय पौषद कीया था।

(३) वीतवयपट्टनका उदाईराजा (राजर्षि था) और—अभिचराजा केशीकुमार राजाभी परम जैन थे.

(४) सावत्थी (श्रीवस्ती) नगरीका अदिन शत्रुराजा

(५) साकेतपुरका चन्द्रपालराजा जिस्के पुत्रने जैन दीक्षा ली थी.

(६) क्षत्रिकुण्डनगरका सिद्धार्थराजा—नंदिवर्द्धनराजा.

(७) पोलासपुरका विजयसेनराजा जिस्के पुत्रने जैन दीक्षा लीथी.

(८) कांचनपुरका धर्मशिलराजा.

(९) कौसंबी नगरीका सांतानिक राजा उदाईराजा. जिसकी बहेन जयंतिने जैन दीक्षा ली थी.

(१०) राजगृहका प्रसन्नजीत—श्रेणिकराजा.

(११) कपिलपुरका जयकेतुराजा.

(१२) वैरंगपुरका वैराटराजा.

(१३) श्वेतम्बका नगरीका प्रदेशीराजा.

(१४) दर्शनपुरका दर्शनभद्रराजा.

(१५) उज्जैननगरीका चंडप्रद्योतराजा.

(१६) चम्पानगरीका दधिवाहनराजा.

(१७) चम्पानगरीका करकन्डुराजा—दुम्मइराजा निग्धाईराजा.

(१८) मथिला नगरीका नमिराजा. एवं चारों राजाओंने जैन दीक्षा ली थी वह प्रतिक बुद्ध के नामसे मशहूर है.

(१९) हस्तीनापुरका अदिनशत्रुराजा एवं १० राजा सुखविपकसूत्रमे.

(२०) चम्पानगरीका कौनक (अजातशत्रु) राजा.

(४७) पाडलीपुत्रका उदाईराजा इत्यादि राजा तथा इनके सिवाय और भी कीतनेही राजा जैनधर्म्म के परमोपासक थे—

(४८) श्रीमालनगरका जयसेनराजा वीरात् प्रथम शताब्दी आचार्यश्री स्वयंप्रभसूरि जो पार्श्वनाथके पांचवे पाट और रत्नप्रभसूरिके गुरू थे जिन्होने प्रतिबोध दे जैनधर्म के परमोपासक बनाया.

(४९) पद्मावतीनगरीका राजा पद्मसेन ,, ,,

(५०) चंद्रावती नगरीका चन्द्रसेनराजा ,, ,,

(५१) मलकावती नगरीका सलोरराजा ,, ,,

(५२) उपदेशपट्टन (ओशीयों का) उत्पलदेवराजा वीरात् ७० वर्ष आचार्य रत्नप्रभसुरि प्रतिबोधित जिसके वंसके उपदेशवंस (ओसवाल) कहलाते है और उत्पलदेवकी १४ पींढी जैन राजाओने राज कीया था.

(५३) पाटलीपुत्र नगरका चन्द्रगुप्तराजा वीरात् १६० आचार्य भद्रबाहु प्रतिबोधित जिसके पुत्र बिन्दुसारभी जैनराजा हुवा और आशोक पहला जैनराजा था गजनीकी प्रशस्तीयो व शिलालेखों मे पार्श्वनाथ व जैनमुनियों कि स्तुतियों है बादमे आशोकराजा बौद्धधर्म्म स्वीकार कीया मालुम होता है.

(५४) उजैन नगरीका राजा संप्रति वीरात् ३३० वर्ष आचार्य सुहस्ती सूरी प्रतिवोधित जिसने सवा लक्ष नया मन्दिर और हजारो मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराया म्लेच्छ देशोंमे भी जैन-धर्म्मका प्रचार कीया.

(५५) कलिंगदेशका राजाखारवेल जिसने उडीसाका पहाडोमे जैन मुनियोंकों ठेरनेके लिये हस्ती गुफाओ कराई जिस गुफाओ के अन्दर एक वडा भारी शिलालेख खुदा हुवा है प्राचीन जैन शिलालेख भाग पहला देखो ! वीरात् ३६० वर्षका समय है ।

(५६) विजयापट्टन का राजा विजयसेन वीरात् ३५८ आचार्यककसूरि प्रतिबोधित् जिसने विजयापट्टन वसाई (हालकी फलोधी)

(५७) संक्खपुरका राजा संखपाल जिसने सांखपुर नगरमें भगवान् ऋषभदेव कां वडा भारी मन्दिर बनवाया था.

(५८) वल्लभी नगरीका राजा शीलादित्य वीरात् ४३२ (देवगुप्तसूरि)

(५९) उज्जैन नगरीका राजा विक्रमादित्य वीरात् ४९० आचार्य सिद्धसेन दीवाकर अवंति पार्श्वनाथ तिर्थ प्रगटकर्त्ता तथा कल्याण-मन्दिर स्तोत्रका कर्ता के उपदेशसे.

(६०) भरूच्छ नगरका बलमित्र राजा वीरात् ४५३ आचार्य्य काल-कासूरी शुकनिक विहार उद्धारकर्ता.

(६१) सोपारपट्टनका जयशत्रु राजा वि. सं. ११४ (आ. देवगुप्तसूरी)

(६२) कोलापुर पाट्टनकाराना केपर्दि वि. सं. १२५ (आ. कक्कसूरी)

(६३) कन्नाकुब्ज देशका चित्रगोंदराजा सं. ६०९ (आ. देवगुप्तसूरि।

(६४) बनारसनगरीका हर्षदेवराजा सं. ६४० आ० मान्तुंगसूरी भक्ताम्बरस्तोत्रके कर्ता ।

(६५) धारानगरीका वृद्ध भोजराजा आ. मानदेवसूरी।

(६६) वल्लभीनगरीका शीलादित्यराजा आ० धनेश्वरसूरि शत्रुंजय महात्म्यका कर्ता।

(६७) आनंदपुरनगरका राजा ध्रुवसेनको आचार्य कालकासूरी "चोथ की सवत्सरी करनेवाले। प्रतिबोध दे जैनी बनाया।

(६८) भीन्नमाल को तोरमाण हूणवंशी राजा हरिद्त्तसूरिने प्र० जैन बनाया।

(६९) वेलाकुलपट्टनका अरिमर्दनराजाको आचार्य लोहितसूरि प्र०

(७०) मारोटकोटका राजकक्कको वि. सं. ६७० आ० कक्कसूरि प्र०

(७१) संक्खपुरका राजा विजयवंतको वि० सं० ७२३ आचार्य सर्वदेवसूरि। प्र० ,,।

(७२) भीन्नमालका राजा भांणको वि० सं० ७६४ आचार्य उदयप्रभसूरिने प्रतिबोध दीया जिसने वि० सं० ७६५ में वडा भारी संघ निकाला वहांसे ही स्वगच्छस्वगच्छकि वंसावलियो लिखने का प्रयत्न हुवा।

(७३) पट्टन (अनहलवाडा) का राजा वनराजचावडा को वि० सं० ८०२ मे आ० शिलगुणसूरि प्र० जिसने नयी पाट्टन बसाई।

(७४) ग्वलयेर का राजा आमको आचार्य बप्पभट्टसूरि प्र० वि० सं० ८१७ जिसने जैनधर्म्म की बहुत उन्नति करी तीर्थोंका संघनिकाला जिसके वंशवाले राजकोठारीके नामसे मशूहर है।

(७५) नाणकपुरका शत्रुशल्यराजा वि० सं० ८३२ आ० परमानंदसूरि. प्र०

(७६) ग्वालेयरका राजा भोजको आ० गोविंदसूरि प्र०

(७७) मानखेट (दक्षिण) का राजा अमोघवर्ष आ० दि० जिनसेन प्रति०

(७८) कलिंगदेश का राजा धर्म्मशिलको आ० बप्पभट्टसूरि प्र० वि. सं. और विक्रमकी नौवीशताब्दी मे दक्षिणमे अमोघवर्ष राजा गुजरातमे वनराज चावडो मध्यप्रान्तमे आमराजा पूर्वमे धर्म्मशिलराजा जैनधर्म्म को बडी भारी तरक्कीदी थी ।

(७९) चन्द्रावर्तीका राजा जैतसी को आ० रूपदेवसूरि प्र० वि. सं. १०६९.

(८०) पाट्टनका राजा कुमारपालको आचार्य हेमचन्द्रसूरि प्रतिबोध इनके पहला भी पाटन के चावडा सोलंकी राजा जैनधर्म्म तथा जैनधर्म्मसे साहानुभुति रखते थे. मूलराजा मुंजराजा सिद्धराजजयसिंह बहुत प्रसिद्ध राजा हुवे है ।

(८१) शाकंभरीका प्रथुनराजा को आ० धर्म्मघोषसूरी वि. सं. १२६३ मे प्र०

(८२) सुवर्णनगरीका राजा समरसिंहको आ० अजितदेवसूरीने १३१४ इनके सिवाय दक्षिण महाराष्ट्रय मे दिगम्बर जैनोका वडा भारी जौर शौर था । और बहुतसे राजा जैनधर्म्म पालते थे बहुतसे आचार्यने राजाओ और राजपुत्तोंको जैनी बनाके ओसवाल आदि जातियोंमे मीलाते गये वह राजाओ के दीवान प्रधान मित्री सैनापति आदि राजतंत्र चलानेवाले जैन बडेही बुद्धिशाली हुवे जबतक देशका राजतंत्र उन जैनमित्रियों के हस्तगत था

वहांतक देशबडाही बलवान् समृद्ध और शौर्यके सिक्खपर था देशकी आबाधी–उन्नति और देशवासी बडेही सुखशान्तिमे थे इस्का कारण जैन मुत्शद्दिओं बडे ही नीतिज्ञ कार्य्यकुशलता रणाकुशलता। संधिकुशलता ही था वहसब आगेके प्रकरणों में बतलाये जावेंगे जैनाचार्योंने केवल हिन्दूराजाओं को ही नहीं पर मुशलमान बादशाओंको प्रतिबोध दे देशका बहुत कुच्छ भला कीया है। देखें जगद्गुरु आचार्य हिरविजयसूरि और बादशाहा अकबर अर्थात् सूरीश्वर और सम्राट् नामका पुस्तक।

जबसे राजा लोगोंने जैनधर्म्मसे कीनारा लीया मुत्शद्दीयो के हाथों से राजतंत्र छीना गया तबसे ही देशकि क्रमशः हालत बीगडती गइ जिसका फल आज हमारी आंखो के सामने मोजुद है इत्यादि।

इस प्रकरणको अपक्षपातदृष्टिसे आद्योपान्त अवलोकन करनेसे पाठकोंको भलीभांति ज्ञान हो जायगा कि जैनधर्म्मके विषयमें कितनेक अज्ञ लोग भिन्न भिन्न कल्पनाए करते है वह बिलकुल मिथ्या है जैनधर्म्म इतना प्राचीन है कि जितनी सृष्टि प्राचीन है।

जैनधर्म्म मे वर्तमान अवसर्पिणि कालमें भगवान् ऋषभदेवसे लेकर अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर हुवे है जिनका संक्षिप्त जीवन दूसरा प्रकरणमे वर्णन करेंगे जिनकी दीर्घायुष्य और शरीरके उच्चपनमे कीतनेक लोग शंका कर बैठते है की जैनोने मनुष्यों की ५०० धनुष्य की लम्बाई और कोडाक्रोडी वर्षका आयुष्य माना है ? यह शंका वहही कर सकता है कि जिनका विचार बिलकुल संकुचित हो पहला यह समज लेना चाहिये कि जैन इस वर्तमानकालको अवसर्पिणी काल मानते है और इस्का

स्वभाव देहमान आयुष्य बलकान्ति संहननादि सबमे क्रमश: हानि पहुँचाना है वह हानी आजभी चालु है जैनोने ही क्या पर अन्य लोगोंने भी पूर्व जमाना के मनुष्योंका--ऋषियोंका हजारों लाखों वर्षोंका आयुष्य माना है लाखो वर्ष तक तो एकेक ऋषियोने तपश्चर्य करी थी आयुष्य बडा हो जिस्का शरीर बडा होना स्वभावि बात है स्वल्प समय कि जिक्र है कि रामचन्द्रजी के पिताका आयुष्य ६०००० वर्षका था तो जैनोके दीर्घ काल पूर्व बडा आयुष्य और बडा शरीर मानना कोन विद्वान अनुचित कह सकेगा फिरभी आज हम प्रत्यक्षमे पूर्व जमानाके जीवोके शरीर पिञ्जर देखते है तो सेकडो फुटके शरीर दीख पडते है जैसे जैसे प्राचीन कालके ध्वंस विशेष मीलते है वह अधिक उंचाइवाले मीलते है प्राणि शास्त्रका यह भी एक नियम है कि जीस जीवोंके जीतना बडा शरीर होगा उनका आयुष्य भी उतना ही बडा होगा जैसे हस्ती एक बडा शरीरवाला जीव है तो उनका आयुष्यभी सब जीवोसे बडी है यहही नियम वनस्पतिके जीवोका है जो वड जैसा वृक्ष सब वृक्षोसे बडा है तो उनका आयुष्यभी सब मे बडी होती है वर्तमानकी सोध खोलने यह सिद्ध करबतला दीया है कि पूर्व जमाना के मनुष्य तथा पशु दीर्घ कायावाले थे इ. स. १८५० मे ग्वोद काम करते एक मनुष्यका कलेवर मीला है जिसके जडवाका हाड पग जीतना जिस्के मस्तक की खोपरी मे २४ रतल गाहु मा सक्ता है एकेक दान्त दो दो तोलेका है | गुजराती पत्र ता. १२--११--१८९३ का पत्रमे एक मींडक जिस्के दोनो आंखो के अन्तर १८ इंचका था खोपरीका वजन ३१२ रतलका और सर्व पींजर का

+ विशेष प्रमाण विश्वरचना प्रबंध नामकी किताबमें देखो.

वजन १८६० रतलका है महाभारतमे एक इंडा पकनेका काल १००० वर्ष बतलाया है राहुका मस्तक पर्वत जीतना, महाभारतमे छ जोजन लम्बा एकेक हस्ती बतलाया है जब इतने लम्बे शरीरवाले मनुष्य या पशु थे तो जैनोके माने हुवे क्रोडाक्रोड सागरोपम पहला ५०० धनुष्यवाले मनुष्य हो इसमे आश्चर्य क्या है जैनोकी दीर्घायुष्य और दीर्घ शरीरकी मान्यता केवल कल्पनारुप ही नहीं है पर यह जैनोकी खास प्राचीनता बतला रही है कि जैनधर्म्म कीतना प्राचीन है कि जिसकी गणाना करना बुद्धि अगम्य है ।

जैनधर्म्म के तत्वों कि जैनशास्त्रकारोने खुबही विस्तारसे व्याख्या करी है जिन जिन महानुभावों कों जैनधर्म्म के विषयमे जो कुच्छ शंका हों वह जैनधर्म्म के सिद्धान्तोंके ज्ञानाओंसे दरियाफ करे या जैनशास्त्रोका अभ्यास करे जैसे जर्मनके विद्वान डाक्टर हरमनजेकोबीने कीया है अगर बिगैरह अभ्यास कीयें या बिगैरह जैनशास्त्रों के ज्ञानाओसे दरियाफत कीये । मन कल्पित कल्पनाए कर जैनधर्म्मके बारामे कुच्छ भी आक्षेप करेगें वह स्वामि शंकराचार्य या दयानंद सरस्वतीकी माफीक हाँसीके पात्र बनेगें. अस्तु कल्याणमस्तु ।

इति श्री जैन जाति महोदय प्रथम प्रकरण समाप्तम् ॥

जैन धर्म्मकी प्राचीनता स्वतंत्रता और विशाल भावना के लिये जगत् प्रसिद्ध विद्वानोंकी सम्मतिए

(१)

श्रीयुत् महामहोपाध्याय डॉक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम० ए०, पी० एच० डी०, एफ० आई० आर० एस०, सिद्धान्त महोदधि प्रीन्सीपाल संस्कृत कोलिज कलकत्ता.

यह महाशय अपने २७ दिसम्बर सन् १९१३ को काशी (बनारस) नगर में दिये हुये व्याख्यान में नीचे लिखे वाक्य सहर्ष पबलिक के सन्मुख प्रस्तुत करते है:—

(१) जैन साधु............एक प्रशंसनीय जीवन व्यतीत करने के द्वारा पूर्ण रीति से व्रत, नियम और इन्द्रिय संयम का पालन करता हुआ जगत् के सन्मुख आत्मसंयम का एक बडा ही उत्तम आदर्श प्रस्तुत करता है।

(२) एक गृहस्थ का जीवन भी जो जैनत्व को लिये हुए

है इतना अधिक निर्दोष है कि हिन्दुस्तान को उसका अभिमान होना चाहिये।

(३) जैन साहित्यने न केवल धार्मिक विभाग में किन्तु दूसरे विभागों में भी आश्चर्यजनक उन्नति प्राप्त की। न्याय और अध्यात्म विद्या के विभाग में इस साहित्यने बडे ही ऊँचे विकाश और क्रम को धारण किया............ ।

(४) न्यायदर्शन जिसे ब्राह्मण ऋषि गौतमने बनाया है अध्यात्म विद्या के रूप में असंभव होजाता यदि जैन और बौद्ध अनुमान चौथी शताब्दिसे न्याय का यथार्थ और सत्याकृति में अध्ययन न करते।

(५) जिस समय मैं जैनियों के न्यायावतार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका आदि कुछ न्यायग्रन्थों का सम्पादन और अनुवाद कर रहा था उस समय जैनियों की विचारपद्धति, यथार्थता, सूक्ष्मता, सुनिश्चितता और संक्षिप्तता को देख कर मुझे आश्चर्य हुआ था और मैंने धन्यवाद के साथ इस बात का नोट किया है कि किस प्रकार से प्राचीन न्याय पद्धतिने जैन नैयायिकों के द्वारा क्रमशः उन्नति लाभ कर वर्तमान रूप धारण किया है।

(६) जो मध्यमकालीन न्यायदर्शन के नाम से प्रसिद्ध है वह सब केवल जैन और बौद्ध नैयायिकोंका कर्तव्य है और ब्राह्मणो के न्याय की आधुनिक पद्धति जिसे 'नव्य न्याय'

कहते हैं और जिसे गणेश उपाध्याय ने १४ वीं शताब्दि में जारी किया है वह जैन और बौद्धों के इस मध्यमकालीन न्याय की वजह से उत्पन्न हुई है।

(७) व्याकरण और कोश रचना विभाग में शाकटायन, पद्मनन्दि और हेमचन्द्रादि के ग्रन्थ अपनी उपयोगिता और विद्वत्तापूर्ण संक्षिप्तता में अद्वितीय हैं।

(८) छन्दशास्त्र की उन्नति में भी इनका (जैनियों का) स्थान बहुत ऊँचा है।

(९) प्राकृतभाषा अपने सम्पूर्ण मधुमय सौन्दर्य को लिये हुये जैनियों की रचनामें ही प्रकट कीगई है।

(१०) ऐतिहासिक संसार में तो जैन साहित्य शायद जगत् के लिये सबसे अधिक काम की वस्तु है। यह इतिहास लेखकों और पुरावृत्त विशारदों के लिये अनुसन्धान की विपुल सामग्री प्रदान करने वाला है।

(११) यदि भारत देश संसार भर में अपनी आध्यात्मिक और दार्शनिक उन्नति के लिये अद्वितीय है तो इससे किसी को भी इन्कार न होगा कि इस में जैनियों को ब्राह्मणों और बौद्धों की अपेक्षा कुछ कम गौरव की प्राप्ति नहीं है।

श्रीयुत महामहोपध्याय, सत्यसम्प्रदायाचार्य्य सर्वान्तर पं० स्वामी राममिश्रजी शास्त्री भूतप्रोफेसर संस्कृत कोलेज बनारस.

(२)

यह शास्त्रीजी महोदय अपने मि० पौष श० १ सं० १९६२ को काशी नगरमें दिये हुये व्याख्यान में कहते हैं:—

(१) वैदिक मत और जैनमत सृष्टि की आदिसे बराबर अविछिन्न चले आए हैं और इन दोनों मतों के सिद्धान्त विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं जैसा कि मैं पूर्व में कह चुका हूं अर्थात् सत्कार्यवाद, सत्कारणवाद, परलोकास्तित्व, आत्मा का निर्विकारत्व, मोक्षका होना और उसका नित्यत्व, जन्मान्तर के पुण्य पाप से जन्मान्तर में फलभोग, व्रतोपवासादि व्यवस्था, प्रायश्चित व्यवस्था, महाजनपूंजन, शब्दप्रामाण्य इत्यादि समान हैं।

(२) जिन जैनोंने सब कुछ माना उनसे नफरत करनेवाले कुछ जानते ही नहीं और मिथ्या द्वेषमात्र करते हैं।

(३) सज्जनो ! जैनमत में और बौद्धमत में जमीन आसमानका अन्तर है उसे एक जानकर द्वेष करनाअज्ञजनों का कार्य है।

(४) सबसे अधिक वह अज्ञ है जो जैन सम्प्रदाय सिद्ध मेलों में विघ्न डालकर पापभागी होते हैं।

(५) सज्जनों ! ज्ञान, वैराग्य, शान्ति, क्षांति, अदम्भ, अनीर्ष्या, अक्रोध, अमात्सर्य, अलोलुपता, शम, दम, अहिंसा, समदृष्टिता

इत्यादि गुणों में एक एक गुण ऐसा है कि जहां वह पाया जांय वहां पर बुद्धिमान् पूजा करने लगते है । तब तो जहां ये (अर्थात् जैनों में) पूर्वोक्त सब गुण निरतिशय सीम होकर विराजमान है उनकी पूजा न करना अथवा ऐसे गुणपूजकों की पूजा में बाधा डालना क्या इन्सानियत का कार्य है ?

(६) पूरा विश्वास है कि अब आप जानगए होंगे कि वैदिक सिद्धान्तियों के साथ जैनोंके विरोध का मूल केवल अज्ञोंकी अज्ञता है.............. ।

(७) मैं आपको कहां तक कहूं, बड़े बड़े नामी आचार्योंने अपने ग्रन्थों में जो जैनमतखंडन किया है वह ऐसा किया है जिसे सुन देख कर हंसी आती है ।

(८) मैं आप के सन्मुख आगे चलकर स्याद्वाद का रहस्य कहूंगा तब आप अवश्य जान जायंगे कि वह अभेद्य किला है उसके अन्दर वादी प्रतिवादियों के मायामय गोले नहीं प्रवेश कर सकते परन्तु साथही खेद के साथ कहा जाता हैं कि अब जैनमत का बुढ़ापा आगया है । अब इसमें इने गिने साधु गृहस्थ विद्वान् रहगए हैं...

(९) सज्जनों ! एक दिन वह था कि जैनसम्प्रदाय के आचार्यों के हुंकार से दसों दिशाएँ गूँज उठती थीं ।

(१०) सज्जनों ! जैसे कालचक्रने जैनमत के महत्वको ढांक दिया है वैसे ही उसके महत्वको जाननेवाले लोग भी अब नहीं रहे ।

(११) " रजब सांचे सूरको वैरी करे वखान " यह किसी

भाषाकविने बहुत ही ठीक कहा है। सज्जनो ! आप जानते हैं मैं उस वैष्णवसम्प्रदायका आचार्य हूं यही नहीं मैं उस सम्प्रदायका सर्व-तोभावसे रक्षक हूं और साथही उसकी तरफ कड़ी नज़रसे देखनेवाले का दीक्षकभी हूं तौ भी भरी मजलिस में मुझे यह कहना सत्य के कारण आवश्यक हुआ है कि जैनों का ग्रन्थसमुदाय सारस्वत महासागर है उसकी ग्रन्थसंख्या इतनी अधिक है कि उन ग्रन्थों का सूचिपत्र भी एक निबन्ध होजायगा.......उस पुस्तक समुदाय का लेख और लेख्य कैसा गंभीर, युक्तिपूर्ण, भावपूरित, विषद और अगाध है। इसके विषयमें इतनाही कहदेना उचित है कि जिन्होंने इस सारस्वत समुद्र में अपने मतिमन्थान को डालकर चिर आन्दोलन किया है वेही जानते हैं...............

(१२) तब तो सज्जनों ! आप अवश्य जान गए होंगे कि जैनमत तब से प्रचलित हुआ है जब से संसार सृष्टि का आरम्भ हुआ।

(१३) मुझे तो इसमें किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि जैन दर्शन वेदान्तादिदर्शनों से भी पूर्व का है इत्यादि........।

भारतगौरव के तिलक, पुरुषशिरोमणि, इतिहासज्ञ, माननीय पं० बालगंगाधर तिलक, भूतसम्पादक, " केसरी "

(३)

इनके ३० नवम्बर सन् १९०४ को बड़ोदा नगरमें दिये हुए व्याख्यान से—

(१) जैनधर्म विशेषकर ब्राह्मणधर्म के साथ अत्यन्त निकट सम्बन्ध रखता है। दोनों धर्म प्राचीन हैं।

(२) ग्रन्थों तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है कि जैनधर्म अनादि है। यह विषय अब निर्विवाद तथा मत भेदरहित है और इस विषय में इतिहास के दृढ़ प्रमाण हैं।

(३) इसी प्रकार जैनधर्म में " महावीर स्वामी " का शक (सम्वत्) चला है जिसे चलते हुए २४०० वर्ष हो चुके हैं। शक चलानेकी कल्पना जैनी भाइयोंने ही उठाई थी।

(४) गौतमबुद्ध महावीर स्वामी (जैन तीर्थंकर) का शिष्य था जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि बौद्ध धर्मकी स्थापना के प्रथम जैनधर्मका प्रकाश फैल रहा था। चोवीस तीर्थंकरों में महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर थे। इससे भी जैनधर्मकी प्राचीनता जानी जाती है। बौद्धधर्म पीछे से हुआ यह बात निश्चित है। बोद्धधर्मके तत्त्व जैन-धर्म्मके तत्वोंके अनुकरण हैं।

(५) श्रीमान् महाराज गायकवाड (बड़ोदा नरेश) ने पहिले दिन कान्फ्रेंस में जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार ' अहिंसा परमो-धर्मः ' इस उदार सिद्धान्तने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छापमारी है। पूर्वकाल में यज्ञ के लिये असंख्य पशुहिंसा होती थी इसके प्रमाण मेघदूतकाव्य आदि अनेक ग्रन्थों से मिलते हैं.........परन्तु इस घोर हिंसा का ब्राह्मणधर्मसे विदाई ले जानेका श्रेय (पुण्य) जैनधर्म ही के हिस्से में हैं।

(६) ब्राह्मणधर्म और जैनधर्म दोनोंमें झगड़े की जड़ हिंसा थी जो अब नष्ट होगई है। और इस रीति से ब्राह्मण धर्म को जैनधर्म ही ने अहिंसाधर्म सिखाया।

(७) ब्राह्मणधर्म पर जो जैनधर्मने अक्षुण्ण छाप मारी है उसका यश जैनधर्म के ही योग्य है। अहिंसा का सिद्धान्त जैनधर्म में प्रारम्भ से है और इस तत्व को समझने की त्रुटि के कारण बौद्ध धर्म अपने अनुयायी चीनियों के रूप में सर्वभक्षी होगया, है।

(८) ब्राह्मण और हिन्दुधर्म में मांस भक्षण और मदिरा पान बन्द होगया, यह भी जैनधर्म का ही प्रताप है।

(९) महावीर स्वामी का उपदेश किया हुआ धर्मतत्व सर्वमान्य होगया।

(१०) पूर्वकाल में अनेक ब्राह्मण जैनपण्डित जैनधर्म के धुरन्धर विद्वान् होगए हैं।

(११) ब्राह्मणधर्म जैनधर्म से मिलता हुआ है इस कारण ठिक रहा है। बौद्धधर्म का जैनधर्मसे विशेष अमिल होने के कारण हिन्दुस्थान से नाम शेष होगया है।

(१२) जैनधर्म तथा ब्राह्मणधर्म का पीछेसे कितना निकट सम्बन्ध हुआ है सो ज्योतिषशास्त्री भास्कराचार्य्य के ग्रन्थ से विशेष उपलब्ध होता है। उक्त आचार्य्यने ज्ञान दर्शन और चारित्र (जैनशास्त्र विहित रत्नत्रय धर्म) को धर्म के तत्व बतलाए हैं।

सुप्रसिद्ध श्रीयुत महात्मा शिवव्रतलालजी वर्म्मन, एम० ए०, सम्पादक 'साधु' 'सरस्वतीभण्डार,' 'तत्वदर्शी,' 'मार्तण्ड,' लक्ष्मीभण्डार,' 'सन्त सन्देश,' आदि उर्दू तथा नागरी मासिकपत्र, रचयिता 'विचार कल्पद्रुम,' 'विवेक कल्पद्रुम,' 'वेदान्त कल्पद्रुम,' कल्याण धर्म, "कबीरजी का बीजक" आदि ग्रन्थ, तथा अनुवादक "विष्णु-पुराण," इत्यादि.

(४)

इस महात्मा महानुभावद्वारा सम्पादित 'साधु' नामकउर्दू मासिकपत्र के जनवरी सन् १९११ के अङ्क में प्रकाशित 'महावीर स्वामी का पवित्र जीवन' नामक लेख से उद्धृत कुछ वाक्य, जो न केवल श्री महावीर स्वामी के लिये किन्तु ऐसे सर्व जैन तीर्थंकरों, जैन मुनियों तथा जैन महात्माओं के सम्बन्ध में कहे गए हैं:—

(१) "गए दोनों जहान नज़र से गुज़र तेरे हुस्न का कोई बशर न मिला।"

(२) यह जैनियो के आचार्य्यगुरू थे। पाकदिल, पाक ख्याल मुजस्सम पाकी व पाकीज़गी थे। हम इनके नाम पर इनके काम पर और इनकी बेनज़ीर नफसकुशी व रिआज़त की मिसाल पर, जिस कद्र नाज़ (अभिमान) करें बजा (योग्य) है।

(३) हिन्दुओ! अपने इन बुजुर्गों की इज़्ज़त करना सीखो ....तुम इनके गुणों को देखो, उनकी पवित्र सूरतों का दर्शन

करो उनके भावों को प्यार की निगाह से देखो, यह धर्म कर्म की झलकती हुई चमकती दमकती मूर्ते है........उनका दिलविशाल था, वह एक वेपायांकनार समन्दर था जिसमें मनुष्य प्रेमकी लहरें जोर शोर से उठती रहती थीं और सिर्फ मनुष्य ही क्यों उन्होंने संसार के प्राणी मात्र की भलाई के लिये सब का त्याग किया, जानदारो का खून बहाना रोकने के लिये अपनी ज़िन्दगी का खून कर दिया। यह अहिंसा की परम ज्योतिवाली मूर्त्तियां है। वेदों की श्रुति "अ-हिंसापरमो धर्मः" कुछ इन्हीं पवित्र महान् पुरुषों के जीवन में आ मीली सूरत इख्तियार करती हुई नज़र आती है।

ये दुनियां के जबरजस्त रिफ़ार्मर; जबरदस्त उपकारी और बड़े ऊंचे दर्जे के उपदेशक और प्रचारक हो गुजरे है। यह हमारी क़ोमी तवारीख़ (इतिहास) के क़ीमती (बहुमूल्य) रत्न हैं। तुम कहां और किनमें धर्मात्मा प्राणियों की खोज करते हो इन्हीं को देखो, इनसे बेहतर (उत्तम) साहवेकमाल तुम को और कहां मिलेंगे। इनमें त्याग था, इनमें वैराग्य था, इनमें धर्म्म का कमाल था, यह इन्सानी कम-जोरीयों से बहुत ही ऊँचे थे। इनका खिताब "जिन" है, जिन्होंने मोहमाया को और मन और काया को जीत लिया था, यह तीर्थंकर हैं, इनमें बनावट नहीं थी, दिखावट नहीं थी, जो बात थी साफ साफ थी। ये वह लासानी (अनौपम) शख्सीयतें होगुजरी हैं जिनको जिसमानी कमज़ोरियों, व ऐबोंके छिपाने के लिये किसी ज़ाहरी पोशाक की ज़रुरत लाहक़ नहीं हुई। क्योंकि उन्होंने तप

करके, जप करके, योगका साधन करके, अपने आपको मुकम्मिल और पूर्ण बना लिया था........इत्यादि इत्यादि............ ।

श्रीयुत वरदाकान्त मुख्योपाध्याय एम० ए० के बंगला लेख के श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी द्वारा अनुवादित हिन्दी लेखसे उद्धृत कुछ वाक्य.

(९)

(१) हमारे देशमें जैनधर्मकी आदि उत्पत्ति, शिक्षा नेता और उद्देश्य सम्बन्धी कितने ही भ्रान्तमत प्रचलित हैं इसलिये हम लोग जैनियोंसे घृणा करते रहते हैं........ । इसलिए मैं इस लेखमें भ्रमसमूह दूर करनेकी चेष्टा करूंगा ।

(२) जैन निरामषभोजी (मांसत्यागी) क्षत्रियों का धर्म है। " अहिंसा परमोधर्मः " इसकी सार शिक्षा और जड़ है । इस मतमें " जीव हिंसा नहीं करना, किसी जीवको कष्ट नहीं देना " यही श्रेष्ठ धर्म है ।

(३) **शंकराचार्य** महाराज स्वयं स्वीकार करते हैं कि जैनधर्म अति प्राचीन कालसे है । वे **बादरायण** व्यास के वेदान्त सूत्र के भाष्य में कहते हैं कि दूसरे अध्याय के द्वितीय पाद के सूत्र ३३–३६ जैनधर्म ही के सम्बन्ध में हैं। शारीरिक मीमांसा के भाष्यकार **रामानुजजी** का भी यही मत है ।

(४) **योगवाशिष्ट** रामायण वैराग्य प्रकरण, अध्याय १९ श्लोक ८ में श्री रामचन्द्रजी जिनेन्द्र के सदृश शान्त प्रकृति होने की इच्छा प्रकाश करते हैं, यथाः—

नाहं रामो नमे वांछा भावेषु च न मे मनः ।
शान्तिमासितु मेच्छामि स्वात्मनीव जिनो यथा ॥

(५) **रामायण**, बालकांड, सर्ग १४, श्लोक २२ में राजा दशरथने श्रमणगणों (अर्थात् जैन मुनियों) का अतिथिसत्कार किया, ऐसा लिखा है:—

तापसाभुंजते चापि श्रमणा भुंजते तथा ।

भूषण टीका में श्रमण शब्दका अर्थ दिगम्बर (अर्थात् सर्व वस्त्रादि रहित जैनमुनि) किया है यथा:—

श्रमणा दिगम्बराः श्रमणा वातवसना इति निघण्टुः ।

(६) **शाकटायन** के उणादि सूत्रमें 'जिन' शब्द व्यवहृत हुआ है:—

इणजस जिनीङुष्यविभ्योनक सूत्र २५९ पाद ३, **सिद्धान्त कौमुदी** के कर्त्ताने इस सूत्रकी व्याख्या में 'जिनोऽर्हन्,' कहा है ।

मेदनीकोष में भी 'जिन' शब्द का अर्थ 'अर्हत्' 'जैन-धर्मके आदि प्रचारक' है ।

वृत्तिकारगण भी 'जिन' के अर्थमें 'अर्हत्' कहते हैं यथा उणादि सूत्र सिद्धान्त कौमुदी ।

शाकटायन ने किस समय उणादि सूत्रकी रचना की थी ? **यास्क** की निरुक्त में शाकटायन के नाम का उल्लेख है । और पाणि-निके बहुत समय पहिले निरुक्त बना है इसे सभी स्वीकार करते हैं ।

और महाभाष्य प्रणेता पतञ्जलि के कई सौ वर्ष पहिले पाणिनिने जन्म ग्रहण किया था। अतएव अब निश्चय है कि शाकटयन का उणादि सूत्र अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ है।

(७) बौद्धशास्त्रमें जैनधर्म निर्ग्रंथोंका धर्म बतलाया है। और यही निर्ग्रन्थ धर्म बौद्ध धर्मके बहुत पहिले प्रचलित था।

(८) डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र योगसूत्रकी प्रस्तावना में कहते हैं कि सामवेद में एक बलिदानविरोधी यति (जैन मुनिका) उल्लेख है। उसका समस्त ऐश्वर्य भृगुको दान कर दिया गया था, क्यों कि ऐतरेय ब्राह्मण के मतमें बलिदान विरोधी यतिको शृगालके सन्मुख प्रक्षिप्त करना चाहिये। मगध वा कीकटमें यज्ञदानादिका विरोधी एक सम्प्रदाय था, (देखो ऋग्वेद अष्टक ३, अध्याय ३, वर्ग २१ ऋचा १४, तथा ऋग्वेद, मं० ८, अ० १०, सूक्त ८६, ऋचा ३, ४ तथा ऋग्वेद मं० २, अ० २, सू० १२, ऋचा ९; ऋग्वेद अष्टक ६, अध्याय, ४, वर्ग ३२, ऋचा १०, इत्यादि)।

(९) साँख्य दर्शन सूत्र ६—"अविशेषश्चोभयोः" अर्थात् दुःख और यंत्रणा दूर करनेवाले दृश्यमान और वैदिक उपायों में कोई भेद नहीं है। क्योंकि वैदिक बलिदान एक निष्ठुर प्रथामात्र है। यज्ञ में पशु हनन करने से कर्मबन्ध होता है, पुरुष को तज्जन्य लाभ कुछ नहीं होता।

"मा हिंस्यात्सर्वभूतानि।"
"अग्निषोमीयं पशुमालभेत्"

" दृष्टिवदानु अविकासह्यविशुद्धि स्रयातिशययुक्तः "

सांख्यकारिका ॥

गौडपाद्—सांख्यकारिका के भाष्य में निम्न लिखित श्लोक उद्धृत करके कपिल ऋषि के मतका समर्थन करते हैं:—

ताते तद्बहुशोभ्यस्तं जन्मजन्मांतरेष्वपि ।
त्रयी धर्ममधर्माढ्य न सम्यक्प्रतिभाति मे ॥

अर्थात्—हे पिता ! वर्तमान और गत जन्म में मैंने वैदिक धर्मका अभ्यास किया है; परन्तु मैं इस धर्म का पक्षपाती नहीं हूं क्योंकि यह अधर्म-पूर्ण है ।

(१०) कपिलसूत्रका भाष्यकार विज्ञान भिक्षु " मार्कण्डेय पुराणसे " निम्न लिखित श्लोक उध्धृत करके कपिलमत का समर्थन करता है:—

तस्माद्यास्याम्यहं तात दृष्ट्वेमं दुःखसन्निधिम् ।
त्रयी धर्ममधर्माढ्यं किंपाकफलसन्निभम् ॥

अर्थात्—हे तात ! वैदिक धर्मको सब प्रकार अधर्म और निष्ठुरता पूर्ण देखकर मैं किस प्रकार इसका अनुकरण करूं ? वैदिक धर्म किंपाक फल के समान बाह्यमें सौन्दर्य किन्तु भीतर हलाहल (विष) पूर्ण है " ।

(११) " महाभारत " का मत इस विषयमें जानने के लिये अश्वमेध पर्व, अनुगीत ४६, अध्याय २, श्लोक १२ की नीलकंठ कृत टीका पढ़िये ।

(१२) प्राचीन काल में महात्मा ऋषभदेव "अहिंसा परमो धर्मः" यह शिक्षा देते थे। उनकी शिक्षाने देव मनुष्य और इतर प्राणियों के अनेक उपकार साधन किये हैं। उस समय ३६३ पुरुष पाखंड धर्म प्रचारक भी थे। चार्वाक के नेता "बृहस्पति" उन्हीं में से एक थे। मेक्समूलर आदि यूरोपीय पण्डितों की भी यही धारणा है जो उनके सन् १८९९ के लेखसे प्रकट है जिसे ७६ वर्ष की उमर में उन्होंने लिखा है।

(१३) अतएव प्राचीन भारत में नाना धर्म और नाना दर्शन प्रचलित थे इसमें कोई संदेह नहीं है।

(१४) जैनधर्म हिन्दूधर्म से सर्वथा स्वतंत्र है। उसकी शाखा वा रूपान्तर नहीं है। विशेषतः प्राचीन भारत में किसी धर्मान्तर से कुछ ग्रहण करके एक नूतन धर्म प्रचार करनेकी प्रथा ही नहीं थी। मेक्समूलर का भी यही मत है।

(१५) लोगों का यह भ्रमपूर्ण विश्वास है कि पार्श्वनाथ* जैनधर्म के स्थापक थे। किन्तु इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेवने किया था, इसकी पुष्टिके प्रमाणोंका अभाव नहीं है। यथाः—

(१) बौद्ध लोग महावीर को निर्ग्रन्थ अर्थात् जैनियोंका नायक मात्र कहते हैं स्थापक नहीं कहते।

(२) जर्मन डाक्टर जैकोबी भी इसी मतके समर्थक हैं।

* इनके निर्वाण को आजसे २७०५ वर्ष होचुके। यह जैनियों के तेईसवें तीर्थङ्कर थे जो चोवीसवें अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी से २५० वर्ष पूर्व हुए।

(३) हिन्दूशास्त्रों और जैनशास्त्रोंका भी इस विषय में एक मत है। भागवतके पांचवें स्कन्ध के अध्याय २–६ में ऋषभदेव का कथन है जिसका भावार्थ यह है:—

चौदह मनुओं में से पहले मनु स्वयंभू के प्रपौत्र नाभिका पुत्र ऋषभदेव हुआ जो इस कालकी अपेक्षा जैन सम्प्रदाय का आदि प्रचारक था। इनके जन्मकाल में जगतकी बाल्यावस्था थी, इत्यादि।

भागवतके अध्याय ६ श्लोक ९–११ में लिखा है कि "कोंकवेंक और कुटक का राजा अर्हत् ऋषभ के चरित्र श्रवण करके कलयुग में ब्राह्मण विरोधी एक नवीन धर्म के प्रचार का मानस करेगा किन्तु हमने अन्य किसी भी ग्रन्थ में ऐसे किसी राजा का नाम नहीं पाया। अर्हत् को अन्य कोई भी ग्रन्थकार कोंकवेंक और कुटक का राजा नहीं कहता।

अर्हत् का अर्थ (अर्ह धातु से) प्रशंसार्ह तथा पूज्य है। शिव पुराण में अर्हत् शब्दका व्यवहार हुआ है किन्तु अर्हत् नाम से कोई राजाका नाम नहीं है, ऋषभ ही को अर्हत् कहते है। अर्हत राजा कलियुग में जैनधर्म का प्रचारक होता तो वाचस्पत्य (कोषकार) ने ऋषभको जिनदेव वा शब्दार्थ चिंतामणिने उन्हे आदि जिनदेव कभी नहीं कहा होता। किसी किसी उपनिषद् में भी ऋषभ को अर्हत् कहा है।

भागवत् के रचयिताने क्यों यह बात कही सो कहा नहीं जा सका।

(४) महाभारत के सुविख्यात टीकाकार शांतिपर्व, मोक्षधर्म अध्याय २६३, श्लोक २० की टीका में कहते हैं:—

अर्हत् अर्थात् जैन ऋषभ के चरित्र में मुग्ध हो गये थे। यथा:— "ऋषभादीनां महायोगिनामाचारे
दृष्टाव अर्हतादयो मोहिताः"

इस प्रकार जाना जाता है कि हिन्दू शास्त्रों के मत से भी भगवान् ऋषभ ही जैनधर्म के प्रथम प्रचारक थे।

(५) डॉ० फुहरर ने जो मथुरा के शिला लेखो से समस्त इति वृत्तका खोज किया है उसके पढ़नेसे जाना जाता है कि पूर्व काल में जैनी ऋषभदेव की मूर्तियां बनाते थे। इस विषय का एपिग्रेफिया इंडिका नामक ग्रन्थ अनुवाद सहित मुद्रित हुआ है। यह शिला लेख दो हज़ार वर्ष पूर्व कनिष्क, हुवष्क, वासुदेवादि राजाओं के राजत्व काल में खोदे गये हैं।

(देखो उपरोक्त ग्रन्थ का भाग १, पृष्ट ३८९, नं० ८ व १४ और भाग २, पृष्ट २०६, २०७ नं० १८ इत्यादि)।

अतएव देखा जाता है कि दो हजार वर्ष पूर्व ऋषभदेव प्रथम जैन तीर्थंकर कह कर स्वीकार किये गये हैं। महावीर का मोक्षकाल ईसवी सन् से ५२६ वर्ष पहिले और पार्श्वनाथ का ७७६ वर्ष पहले निश्चित है। यदि ये जैनधर्म के प्रथम प्रचारक होते तो दो हजार वर्ष पहिले के लोग ऋषभदेव की मूर्ति की पूजा नहीं करते।

(१६) जैन धर्म की सार शिक्षा यह है:—

१—इस जगत का सुख, शान्ति, और ऐश्वर्य मनुष्य के चरम उद्देश्य नहीं हैं। संसार से जितना बन सके निर्लिप्त रहना चाहिये।

२—आत्मा की मंगल कामना करो।

३—तुम जब कभी किसी सत्कार्य के करने में तत्पर हो तब तुम कौन हो और क्या हो यह बात स्मरण रक्खो।

४—यह धर्म परलोक, (मोक्ष) विश्वासकारी योगियोंका है।

५—सांसारिक भोग विलास की इच्छायें जैनधर्म की विरोधनी हैं।

६—अभिमान त्याग, स्वार्थ त्याग और विषय सुख त्याग इस धर्म की भित्तियां हैं।

(१७) जैनधर्म मलिन आचरण की समष्टी है, यह बात सत्य नहीं है दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों श्रेणियों के जैन शुद्धाचरणी हैं।

(१८) जैनधर्म ज्ञान और भाव को लिए हुए है और मोक्ष भी इसी पर निर्भर है।

(१९) जैन मुनियों की अवस्था और जिन मूर्ति पूजा उनका प्राचीनत्व सप्रमाण सिद्ध करता है।

रा० रा० वासुदेव गोविन्द आपटे बी० ए०, इन्दोर निवासी के व्याख्यान का सारांश*

(६)

जिस में वे सब से पहिले एक सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीमद्भट्टाकलंक देव के निम्न लिखित श्लोक को पढ़ कर और उस का अर्थ समझा कर उस के महत्व और निष्पक्षता पूर्ण भावों को दर्शाते हैं:—

(१) यो विश्वं वेद वेद्यं जनन जलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा ।
पौर्वा पर्या विरुद्धं वचन मनुपमं निष्कलंकं यदीयम् ॥
तं वंदे साधुवंद्यं सकल गुण निधिं ध्वस्त दोष द्विषंतम् ।
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलय केशवं वा शिवं वा ॥

अर्थात् जानने योग्य ऐसे सम्पूर्ण विश्वको जिसने जाना, संसाररूपी महासागरकी तरंगें दूसरी तरफ तक जिसने देखी, जिस के वचन परस्पर अविरुद्ध, अनुपम और निर्दोष हैं, जो सम्पूर्ण गुणों का निधि साधुओं करके भी वन्दनीय है, जिसने राग द्वेषादि अठारह शत्रुओं को नष्ट कर दिया है और जिस की शरण में सैंकड़ो लोग आते है, ऐसा जो कोई पुरुष विशेष है उस को मेरा नमस्कार हो; फिर चाहे वह शिव हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो, बुद्ध हो अथवा वर्द्धमान (महावीर) हो। पूर्वोक्त श्लोक में श्री भट्टाकलंक देव ने ऐसी स्तुति की है ।

(२) हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक किंबहुना उस

* यह व्याख्यान उपरोक्त महाशय ने बम्बई के हिन्दु युनियन क्लब में डीसेम्बर १९०३ ई० मे दिया था।

से भी आगे सीलोनद्वीप तक व करांची से ले कर कलकत्ता तक अथवा उस से भी आगे श्याम, ब्रह्मदेश, जावा आदि देशों में जैनधर्मीलोग फैले हुए मिलते हैं।

(३) हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण व्यापार का एक तिहाई भाग जैनियों के हाथ में है।

(४) बड़े बड़े जैन कार्यालय, भव्य जैन मंदिर अनेक लोकोपयोगी संस्थाएँ हिन्दुस्तान के बहुत से बड़े २ नगरों में हैं।

(५) प्राचीन काल से जैनियों का नाम इतिहास प्रसिद्ध है और जैनधर्म के अनेक राजा हो गए हैं।

(६) स्वतः अशोक ही बौद्धधर्म स्वीकार करने से पहले जैन धर्मानुयायी था।

(७) कर्नल टॉड साहेब के राजस्थानीय इतिहास में उदयपुर के घराने के विषय में ऐसा लिखा है कि कोई भी जैन यति उक्त स्थान में जब शुभागमन करता है तो रानी साहिबा उसे आदर पूर्वक लाकर योग्य सत्कार का प्रबन्ध करती है। इस विनय प्रबन्ध की प्रथा वहां अब तक जारी है।

(८) प्राचीन कालमें जैनियों ने उत्कट पराक्रम वा राज्य कार्य भार का + परिचालन किया है। आज कल के समय में इनकी राजकीय अवनति मात्र दृष्टिगोचर होती है।

+ प्राचीन काल में चक्रवर्ती, अर्द्ध चक्री, महा मंडलीक, मंडलीक आदि बड़े २ पदाधिकारी जैनधर्मी हुए।

(९) प्राचीन जैन वाङ्मय संस्कृत वाङ्मय के प्रायः बराबर था। धर्माभ्युदय महाकाव्य, हम्मीर काव्य, पार्श्वाभ्युदय काव्य, यशस्तिलक चम्पू आदि काव्य ग्रन्थ, जैनेन्द्र व्याकरण, × काशिका वृत्ति व पंजिका, रंभामंजरी नाटिका, प्रमेय कमल मार्तण्ड सरीखे न्याय शास्त्र विषयक ग्रन्थ, हेमचन्द्र सरीखे कोष व इनके सिवाय जैन पुराण, धर्मग्रन्थ, इतिहास ग्रन्थ आदि असंख्य शास्त्र ‡ थे। इनमें से बहुत थोडे प्रकाशित हुए हैं और सैंकड़ों ग्रन्थ अभी अज्ञात होरहे हैं।

(१०) इन संस्कृत ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य प्रकार से भी जैनियों ने वाङ्मय की बडी भारी सेवा की है।

(११) दक्षिण में तामिल व कानडी (कर्णाटकी), इन

जैनियो के परम पूज्य चोवीश तीर्थङ्कर भी सूर्यवंशी चन्द्रवंशी आदि क्षत्री कुल उत्पन्न बडे २ राज्याधिकारी हुए जिसकी साक्षी अनेक जैन इतिहास ग्रन्थों तथा किसी २ अजैन शास्त्रों व इतिहास ग्रन्थों स भी मिलती है।

× शाकटायन व्याकरण जिस का मत कई स्थानो में पाणिनिय व्याकरण ने भी ग्रहण किया है जैनाचार्य कृत ही है। तथा और भी अनेक जैन व्याकरण हैं।

‡ नाटक, काव्य, साहित्य, कोष, न्याय, छन्द, व्याकरण, गणित, वैद्यक, ज्योतिष, आदि अनेक विषयों के जैन ग्रन्थ अब भी अनेक विद्यमान हैं। इसी ट्रेक्टके पूर्व भाग में नं० १ में महा महोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र, विद्याभूषण तथा माननीय महा महोपाध्याय पं० राममिश्र शास्त्री की भी सम्मतियां देखें।

दोनों भाषाओं के जो व्याकरण प्रथम प्रस्तुत हुए हैं वे जैनियों ही ने किये थे * ।

(१२) प्राचीन काल के भारतवर्षीय इतिहास में जैनियों ने अपना नाम अजर अमर रक्खा है † ।

(१३) वर्तमान शान्ति के समय व्यापारवृद्धि के कार्योंमें अग्रेसर होकर इन्हों ने (जैनियों ने) अपना प्रताप पूर्ण रीति से स्थापित किया है ।

(१४) हमारे जैन बान्धवो के पूर्वज प्राचीन कालमें ऐसे २ स्मरणीयकृत्य कर चुके हैं तो भी, जैनी कौन हैं, उनके धर्मके मुख्य तत्व कौन कौन से हैं, इसका परिचय बहुत ही कम लोगों को होना बडे आश्चर्य की बात है ।

(१५) " न गच्छेज्जैन मंदिरम् " * अर्थात् जैनमंदिर में प्रवेश करने मात्र में भी महा पाप है, ऐसा निषेध उस समय कठोरता के साथ पाले जाने से जैन मन्दिर की भीत की आड

---

* कर्णाटक भाषा का बहुत बड़ा व्याकरण भी भट्टाकलंक देव। रचित रैस साहबने छपा भी दिया है। परन्तु वह सब विलायत के विद्या विलासियों ने मँगा लिया है। इस देश में मिलना अब दुर्लभ है।

† इसी ट्रेक्ट कं नं० १ में महा महोपाध्याय डा० शतीश्चन्द्र एम० ए० पी० एच० डी०, एफ० आई० आर० एस० विद्याभुषण की सम्मति देखें।

* न पठेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ट गतैरपि ।
हस्तिना पीडय मानोपि न गच्छेज्जिन मन्दिरम् ॥

में क्या है, इसकी खोज करे कौन ? ऐसी स्थिति होने से ही जैन धर्म के विषय में झूंठे गपोडे उडने लगे । कोई कहता है जैनधर्म नास्तिक है, कोई कहता है बौद्धधर्म का अनुकरण है, कोई कहता है जब शंकराचार्य ने बौद्धो का पराभव किया तब बहुत से बौद्ध पुनः ब्राह्मण धर्म में आगये । परन्तु उस समय जो थोडे बहुत बौद्ध धर्म को ही पकडे रहे उन्हीं के वंशज यह जैन हैं, कोई कहता है कि जैनधर्म बौद्धधर्म का शेष भाग तो नहीं किंतु हिन्दू धर्म का ही एक पंथ है । और कोई कहते हैं कि नग्न देव को पूजने वाले जैनी लोग ये मूल में आर्य ही नहीं हैं किन्तु अनार्यों में से कोई हैं । अपने हिंदुस्तान में ही आज चौवसि सौ वर्ष पूर्व से पडौस में रहने वाले धर्म के विषय में जब इतनी अज्ञानता है तब हजारों कोस से परिचय पानेवाले व उससे मनोऽनुकूल अनुमान गढ़नेवाले पाश्चिमात्यों की अज्ञानत पर तो हँसना ही क्या है !

(१६) ऋषभदेव जैनधर्म के संस्थापक थे यह सिद्धान्त अपनी भागवत से भी सिद्ध होता है । पार्श्वनाथ जैनधर्म के संस्थापक थे ऐसी कथा जो प्रसिद्ध है वह सर्वथा भूल है । ऐसे ही वर्द्धमान अर्थात् महावीर भी जैनधर्म के संस्थापक नहीं हैं । वे २४ तीर्थंकरो में से एक प्रचारक थे ।

(१७) जैनधर्म में अहिंसा तत्व अत्यन्त श्रेष्ट माना गया है । बौद्ध धर्म व अपने ब्राह्मण धर्ममें भी यह तत्व है त-

थापि जैनियों ने इसे जिस सीमा तक पहुंचा दिया है वहां तक अद्यापि कोई नहीं गया है ।

(१८) अपने धर्म में जिस प्रकार १६ संस्कारों का वर्णन है उसी प्रकार जैनियों में ५३ क्रिय है, उन में बालक के केशवाय अर्थात् शिखा रखना, पांचवें वर्ष में उपाध्याय के पास विद्यारंभ करना, आठवें वर्ष गले में यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहिरना ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याभ्यास करते रहना इत्यादि विषय जैसे अपने धर्मशास्त्र में हैं वैसे ही जैन शास्त्रों में भी हैं । परन्तु हम लोगों में जैसे सम्पूर्ण संस्कार नहीं किये जाते हैं वैसे ही जैनियों की भी दशा है, सेकडो जैनी तो यज्ञोपवीत संस्कार तक नहीं करते ।

(१९) जैन शास्त्रों में जो यति धर्म कहा गया है वह अत्यन्त उत्कृष्ट है इस में कुछ भी शंका नहीं ।

(२०) जैनियों मे स्त्रियों को भी यति दीक्षा लेकर परोपकारी कृत्यों में जन्म व्यतीत करने की आज्ञा है । यह सर्वोत्कृष्ट है । हिन्दु समाज को इस विषय में जैनियों का अनुकरण अवश्य करना चाहिये ।

(२१) ईश्वर सर्वज्ञ, नित्य और मंगल स्वरूप है, यह जैनियों को मान्य है परन्तु वह हमारी पूजन व स्तुति से प्रसन्न होकर हम पर विशेष कृपा करेगा--इत्यादि, ऐसा नहीं है । ईश्वर सृष्टि का निर्माता, शास्ता या संहार कर्ता न होकर अत्यन्त पूर्ण अवस्था को प्राप्त हुआ आत्मा ही है ऐसा जैनो मानते है । अत-

एव वह ईश्वर का अस्तित्व नहीं मानते ऐसा नहीं है। किन्तु ईश्वर की कृति सम्बन्धि विषय में उनकी और हमारी समझ में कुछ भेद है। इस कारण जैनी नास्तिक हैं ऐसा निर्बल व्यर्थ अपवाद उन विचारों पर लगाया गया है।

अतः यदि उन्हें नास्तिक कहोगे तो.

न कर्तृत्व न कर्माणि लोकस्य सृजाति प्रभुः ।
न कर्म फल संयोगं स्वाभावस्तु प्रवर्तते ॥
नादत्ते कस्य चित्पापंन कस्य सुकृत्यं विभुः ।
अज्ञानो नावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ *

ऐसा कहनेवाले श्री कृष्णजी की भी नास्तिकों में गणना करना पड़ेगी।

आस्तिक व नास्तिक यह शब्द ईश्वर के अस्तित्व संबन्ध में व कर्तृत्व सम्बन्ध में न जोड़ कर पाणीनीय ऋषि के सूत्रानुसारः—

परलोकोऽस्तीति मतिर्यस्यास्तीति आस्तिकः ।
परलोको नास्तीति मतिर्यस्यास्तीति नास्तिकः ॥

---

*देखो श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक १४, १५ इस का अर्थः—परमेश्वर जगत का कर्तृत्व व कर्म को उत्पन्न नहीं करता, इसी प्रकार कर्मों के फलकी योजना भी नहीं करता, स्वभाव से सब होता है। प मेश्वर किसी का पाप नही लेता और न पुण्य लेता है। अज्ञान के द्वारा ज्ञान पर पर्दा पड जाने से प्राणी मात्र मोह मे फस जाते है।

श्रद्धा करें तो जैनियों पर नास्तिकत्व का ×आरोप नहीं आ सकता। कारण जैनी परलोक का अस्तित्व मानने वाले है ।

(२२) सृष्टि का कर्त्ता कोई ईश्वर है कि नहीं, यह विषय प्रथम से ही वाद ग्रस्त है। शास्त्रज्ञों का इस विषय में आज तक एकमत नहीं हुआ ।

(२३) मूर्ति का पूजन श्रावक अर्थात् गृहस्थाश्रमी करते हैं, मुनि नहीं करते। श्रावकों की पूजन विधि प्रायः हम ही लोगों सरीखी है ।

(२४) हमारे हाथ से जीव हिंसा न होने पावे इसके लिये जैनी जितने डरते है इतने बौद्ध नहीं डरते। बौद्ध धर्मी देशों में मांसाहार अधिकता के साथ जारी है। " आप स्वतः हिंसा न करके दूसरे के द्वारा मारे हुए बकरे आदि का मांस खाने में कुछ हर्ज नहीं " ऐसे सुभीते का अहिंसा तत्व जो बौद्धोंने निकाला था वह जैनियों को सर्वथा स्वीकार नहीं ।

(२५) बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। इस धर्म का परिचय सब को हो गया है। परन्तु जैन-धर्म के विषय में वैसा अभी तक कुछ भी नहीं हुआ है। बौद्ध धर्म चीन, तिबेट, जापानादि देशों में प्रचलित होने से और विशेष कर उन देशों में उसे राज्याश्रय मिलने से उस धर्म के शास्त्रों

× इस विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिये " जैनियों के नास्तिकत्व पर विचार " नामक पुस्तक देखें ।

का प्रचार अति शीघ्र हुआ, परन्तु जैनधर्म जिन लोगों में है थे प्रायः व्यापार व्यवहार में लगे रहने से धर्म ग्रन्थ प्रकाशन सरीखे कृत्य की तरफ लक्ष देने के लिए अवकाश नहीं पाते इस कारण अगणित जैन ग्रन्थ अप्रकाशित पडें हुए हैं।

(२६) यूरोपियन ग्रन्थकारो का लक्ष भी अद्यापि इस धर्म की ओर इतना खिंचा हुवा नहीं दिखाई देता। यह भी इस धर्म के विषय में उन लोगो के अज्ञान का एक कारण है।

(२७) जैनधर्म के काल निर्णय सम्बन्ध में दूसरी ओर के प्रमाण भी आने लगें हैं कोलब्रुक साहिब सरीखे पण्डितोंनें भी जैनधर्म का प्राचीनत्व ×स्वीकार किया है। इतना ही नहीं किन्तु 'बौद्ध धर्म जैनधर्म से निकला हुआ होना चाहिए' ऐसा विधान किया है। मिस्टर एडवर्ड थाम्स का भी ऐसा ही मत है। उपरोक्त पंडीतने " जैन धर्म ' या " अशोक की पूर्व श्रद्धा " नामक ग्रन्थ में इस विषय के जितने प्रमाण दिए हैं वे सब यदि यहां पर दिए जाय तो बहुत विस्तार हो जायगा।

(२८) चन्द्रगुप्त (अशोक जिस का पोता था) स्वतः जैन था इस बात को वंशावली का दृढ आधार है। राजा चन्द्रगुप्त श्रमण अर्थात् जैनगुरु से उपदेश लेता था ऐसी मेगस्थीनीज ग्रीक इतिहासकार की भी साक्षी है।

× देखो इसी ट्रेक्ट के पूर्व भाग में पुरुष शिरोमणि पं० बाल गंगाधर तिलक आदि महाशयों की सम्मति।

अबुलफजल नामक फारसी ग्रन्थकार ने " आशोक ने काश्मीर में जैनधर्म का प्रचार किया " एसा कहा है । राजतरंगिणी नामक काश्मीर के संस्कृत इतिहास का भी इस विज्ञान का आधार है ।

(२९) उपरोक्त विवेचन से ऐसा मालुम पडता है कि इस धर्म में सुज्ञों को आदरणीय जंचने योग्य अनेक बातें हैं । सामान्य लोगों को भी जैनियोंसे अधिक शिक्षा लेना योग्य है । जैन लोगों का भाविकपन, श्रद्धा व औदार्य प्रशंसनीय है ।

(३०) जैनियों की एक समय हिन्दुस्तान में बहुत उन्नतावस्था थी । धर्म, नीति, राजकार्य, धुरन्धरता, वाङ्मय (शास्त्र ज्ञान व शास्त्र भंडार) समाजोन्नति आदि बातों में उन का समाज इतर जनों से बहुत आगे था । संसार में अब क्या हो रहा है इस और हमारे जैन बन्धु लक्ष दे कर चलेंगे तो वह महत्पद पुनः प्राप्त कर लेने में उन्हें अधिक श्रम नहीं पड़ेगा ।

(३१) जैन व अमेरिकन लोगों से संघटन कर आने के लिए बम्बई के प्रसिद्ध जैन गृहस्थ परलोक वासी मि० वीरचन्द गांधी अमेरीका को गये थे । वहां उन्हों ने जैनधर्म विषयक परिचय कराने का क्रम भी स्थित किया था ।

अमेरीका में गांधी फिलॉसोफिकल सोसायटी, अर्थात् जैन तत्वज्ञानका अध्ययन व प्रचार करने के लिए जो समाज स्थापित हुई वह उन्हीं के परिश्रम का फल है । दुर्दैवसे मि० वीरचन्द गांधी

का अकाल मृत्यु होने से उक्त आरंभ हुआ कार्य अपूर्ण रह गया है, इत्यादि।

(७) पेरीस (फ्रान्स की राजधानी) के डॉक्टर ए. गिरनारने अपने पत्र ता. ३–१३–११ में लिखा है कि मनुष्योंकी तरक्की के लिए जैन धर्मका चरित्र बहुत लाभकारी है यह धर्म बहुत ही असली, स्वतंत्र, सादा, बहूत मूल्यवान तथा ब्राह्मणों के मतोंसे भिन्न है तथा यह बौद्धके समान नास्तिक नहीं है।

(८) जर्मनी के डाक्टर जोन्सहर्टल ता. १७–६–१९०८ के पत्रमें कहते हैं कि मैं अपने देशवासियों को दिखाउंगा कि कैसे उत्तम नियम और उंचे विचार जैनधर्म और जैन आचार्यों में हैं। जैनोका साहित्य बौद्धोंसे बहुत बढ़कर है और ज्यों २ मैं जैन-धर्म और उसके साहित्य को समझता हूं त्यों २ मैं उनको अधिक पसंद करता हूं।

(९) जैनहितैषी भाग ५ अंक ५–६–७ में मि. जोहन्नेसहर्टल जर्मनी की चिट्ठी का भाव छपा है उसमें से कुछ वाक्य उधृत.

(१) जैन–धर्म में व्याख्यान हुए सुदृढ नीति प्रमाणिकता के मूलतत्व, शील और सर्व प्राणियोंपर प्रेम रखना इन गुणों की मैं बहुत प्रशंसा करता हूं।

(२) जैन–पुस्तको में जिस अहिंसा धर्मकी शिक्षा दी है उसे मैं यथार्थ में श्लाघनीय समझता हूं।

(३) गरीब प्राणीयों का दुःख कम करनेके लिए जर्मनी

में ऐसी बहुत सी संस्थाएँ अब नीकली हैं (परन्तु जैनधर्म यह कार्य हजारों वर्षोंसे करता है।

(९) ईसाई धर्म में कहा है कि " अपने प्यारे लोगोंपर और अपने शत्रुओंपर भी प्यार करना चाहिए " परन्तु यूरोपसे यह प्रेम का तत्व संपूर्ण जातिके प्राणियों की ओर विस्तृत नहिं हुआ.

(१०) पूर्व खानदेशके कलेक्टर साहिब श्रीयुत ऑटोरोयफिल्ड साहिब ७ दिसम्बर सन् १९१४ को पाचोरामें श्रीयुत् वच्छराजजी रूपचंदजी की तरफसे एक पाठशाला खोलने के समय आपने अपने व्याख्यान में कहा कि—जैन जाति दयाके लिए खास प्रसिद्ध है, और दयाके लिये हजारों रूपया खर्च करतें हैं। जैनी पहले क्षत्री थे, यह उनके चेहरे व नामसे भी जाना जाता है। जैनी अधिक शान्तिप्रिय हैं। (जैन हितेच्छु पुस्तक १६ अंक ११ से)

(११) मुहम्मद हाफिज सैयद बी. ए. एल. टी. थियॉसॉफिकल हाईस्कुल कानपूर लिखते हैं:—" मैं जैन सिद्धांत के सूक्ष्मतत्वोंसे गहरा प्रेम करता हूं। "

(१२) श्रीयुत् तुकाराम कृष्णशर्मा लट्टु बी. ए. पी. एच. डी. एम. आर. ए. एस. एम. ए. एस. बी. एम. जी. ओ. एस. प्रोफेसर संस्कृत शिलालेखादिके विषयकें अध्यापक क्वीन्स कॉलेज बनारस।

स्याद्वाद् महाविद्यालय काशीके दशम वार्षिकोत्सव पर दिये हुए व्याख्यान में से कुच्छ वाक्य उधृत।

" सबसे पहले इस भारतवर्षमें " रिषभदेवजी " नामके

महर्षि उत्पन्न हुए। वे दयावान भद्र परिणामी, पहिले तीर्थंकर, हुए जिन्होंने मिथ्यात्व अवस्था को देखकर" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूपी मोक्षशास्त्र का उपदेश दीया। बस-यह ही जिनदर्शन इस कल्पमें हुआ। इसके पश्चात् अजित-नाथसे लेकर महावीर तक तेइस तीर्थंकर अपने अपने समयमें अज्ञानी जीवोंका मोह अंधकार नाश करते थे।

(१३) साहित्यरत्न डाक्टर रवीन्द्रनाथ टागोर कहते हैं कि महा-वीरने डींडींग नादसे हिन्दमें ऐसा संदेश फैलाया किः—धर्म यहमात्र सामाजिक रूढि नहि हैं परन्तु वास्तविक सत्य हैं, मोक्ष यह बाहरी क्रियाकांडसे नहिं मिलता, परन्तु सत्य—धर्म स्वरुपमें आश्रय लेनेसे ही मिलता है। और धर्म और मनुष्यमें कोई स्थायी भेद नहीं रह सकता। कहते आश्चर्य पैदा होता है कि इस शिक्षाने समाजके हृदयमें जड़ करके बैठी हुई भावनारूपी विघ्नोंको त्वरासे भेद दिये और देशको वशीभूत करलिया, इसके पश्चात् बहुत समय तक इन क्षत्रिय उपदेशकोंके प्रभाव बलसे ब्राह्मणों की सत्ता अभिभूत हो गई थी।

(१४) टी. पी. कुप्पुस्वामी शास्त्री एम. ए. आसिस्टेन्ट गवर्नमेन्ट म्युजियम तंजोरके एक अंग्रेजी लेखका अनुवाद " जैन हितैषी " भाग १० अंक २ में छापा है उसमें आपने बतलाया है किः—

(१) तीर्थंकर जीनसे जैनियों के विख्यात सिद्धांतोंका प्रचार हुआ है आर्य क्षत्रिय थे।

(२) जैनी अवैदिक भारतिय–आर्य्योंका एक विभाग है ।

(१५) श्री स्वामी विरूपाक्ष वडीयर " धर्मभूषण ' पण्डित ' ' वेदतीर्थ ' ' विद्यानिधी ' एम. ए प्रोफेसर संस्कृत कॉलेज इन्दोर स्टेट । आपका ' जैनधर्म मीमांसा ' नामका लेख चित्रमय जगत में छपा है उसे " जैन पथ प्रदर्शक " आगराने दिपावली के अंक में उधृत कीया है उससे कुछ वाक्य उद्धृत ।

(१) ईर्षा द्वेषके कारण धर्म प्रचार को रोकनेवाली विपत्ति के रहते हुए जैन शासन कभी पराजित न होकर सर्वत्र विजयी ही होता रहा है। इस प्रकार जिसका वर्त्ति है वह ' अर्हत्-देव ' साक्षात परमेश्वर (विष्णु) स्वरूप है इसके प्रमाण भी आर्य ग्रन्थों में पाये जाते हैं ।

(२) उपरोक्त अर्हत परमेश्वर का वर्णनवेदों में भी पाया जाता है ।

(३) एक बंगाली बैरिष्टरने ' प्रेक्टिकल पाथ ' नामक ग्रन्थ बनाया है । उसमें एक स्थान पर लिखा है कि रिषभदेवका नाती मरीची प्रकृतिवादी था, और वेद उसके तत्वानुसार होनेके कारण ही ऋग्वेद आदि ग्रंथों की ख्याति उसीके ज्ञानद्वारा हुई है फलतः मरीचिऋषी के स्तोत्र, वेदपुराण आदि ग्रन्थो में हैं और स्थान २ पर जैनतिर्थकरों का उल्लेख पाया जाता है, तो कोई कारण नहीं कि हम वैदिक कालमें जैनधर्म का अस्तित्व न माने ।

(४) सारांश यह हैं कि इन सब प्रमाणों से जैनधर्मका उल्लेख हिन्दूओं के पूज्य वेदमें भी मिलता है।

(५) इस प्रकार वेदोंमें जैनधर्म का अस्तित्व सिद्ध करनेवाले बहुतसे मन्त्र हैं। वेदके सिवाय अन्य ग्रन्थों में भी जैनधर्म के प्रति सहानूभूति प्रकट करनेवाले उल्लेख पाये जाते हैं। स्वामीजीने इस लेखमें वेद, और शिवपुराणादिके कई स्थानोंके मूल श्लोक देकर उसपर व्याख्या भी की है।

पहिलेसे जब ब्राह्मण लोगोंने यज्ञ आदिमें बलिदान कर " मा हिंसात सर्वभूतानि " वाले वेद वाक्यपर हरताल फेरदी उस समय जैनियोंने उन हिंसामय यज्ञ योगादिका उच्छेद करना आरंभ कियाथा बस तभीसे ब्राह्मणों के चित्तमें जैनोंके प्रतिद्वेष बढ़ने लगा, परन्तु फिर भी भागवतादि महापुराणोंमें भगवान् रिषभदेवके विषयमें गौरवयुक्त उल्लेख मिल रहा है।

(६) अम्बुजाक्ष सरकार एम. ए. बी. एल. लिखीत " जैनदर्शन जैन धर्म " जैन हितैषी भाग १२ अंक ९–१० में छपा है उसमें के कुछ वाक्य।

(१) यह अच्छी तरह प्रमाणीत हो चुका है कि जैन धर्म बौद्ध धर्मकी शाखा नहिं है। महावीर स्वामी जैन धर्मके स्थापक नही है। उन्होने केवल प्राचीन धर्मका प्रचार किया है।

(२) जैनदर्शनमें जीव तत्वकी जैसी विस्तृत आलोचना है वैसी और किसी भी दर्शनमें नहिं है।

(३) हिन्दी भाषाके सर्वश्रेष्ठ लेखक और धुरंधर विद्वान् पंडीत् श्री महावीर प्रसादजी द्विवेदीने प्राचीन जैन लेख-संग्रहकी समालोचना " सरस्वती " में की है। उसमेंसे कुछ वाक्य ये है:—

(१) प्राचीन ढर्हेके हिन्दू धर्म्मावलम्बी बडे बडे शास्त्री तक अब भी नहिं जानते कि जैनियोंका स्याद्वाद किस चिडियांका नाम है। धन्यवाद है जर्मनी और फ्रान्स, इंग्लांड के कुछ विद्यानुरागी विशषज्ञोंको जिनकी कृपासे इस धर्मके अनुयायिओंके कीर्तिकलापकी खोज और भारत वर्षके साक्षर जैनों का ध्यान आकृष्ट हुआ यदि ये विदेशी विद्वान् जैनों के धर्म ग्रंथों आदि की आलोचना न करते। यदि ये उनके कुछ ग्रन्थोका प्रकाशन न करते और यदि ये जैनोंके प्राचीन लेखोंकी महत्ता न प्रकट करते तो हम लोग शायद आज भी पूर्ववत् ही अज्ञानके अंधकारमें ही डूबे रहते।

(२) भारतवर्षमें जैन धर्म्म ही एक ऐसा धर्म्म है जिसके अनुयाई साधुओं (मुनिओं) और आचार्योंमेंसे अनेक जनोंने धर्मोपदेशके साथ ही साथ अपना समस्त जीवन ग्रन्थरचना और ग्रन्थ संग्रहमें खर्च कर दीया है.

(३) बीकानेर, जैसलमेर और पाटन आदि स्थानों में हस्तलिखीत पुस्तकोंके गाडीयों बस्ते अब भी सुरक्षीत पाये जाते है।

(४) अकबर इत्यादि मुगल बादशाहोंसे जैन धर्म्मकी कितनी सहायता पहुंची, इसका भी उल्लेख कईमें हैं।

(५) जैनोंके सैकडों प्राचीन लेखोंका संग्रह संपादन और आलोचना विदेशी और कुछ स्वदेशी विद्वानोंके द्वारा हो चुकी है। उनका अंग्रेजी अनुवाद भी अधिकांशमें प्रकाशित हो गया है।

(६) इन्डियन एन्टीकेरी, इपिग्राफिया इन्डीका सरकारी गैजेटीयरों और आर्कियालॉजिकल रिपोर्टों तथा अन्य पुस्तकों में जैनोंके कितनेही प्राचीन लेख प्रकाशित हो चुके है। बूलर, कौसेस किस्टे विल्सन, हूलश, केलटर और कीलहार्न आदि विदेशी पुरातत्वज्ञोंने बहुतसे लेखोंका उद्धार किया है।

(७) पेरीस (फ्रान्स) के एक फ्रेन्च पंडित गेरिनाटने अकेलेही १२०७ ई० तकके कोई ८५० लेखोंका संग्रह प्रकाशित कीया है तथापि हजारों लेख अभी ऐसे पडे हुए है जो प्रकाशित नहीं हुए.

(८) इन्डीयन रिव्यू के अक्टोबर सन् १९२० के अंकमें मद्रास प्रेसीडेन्सी कॉलेज के फिलोसोफीका प्रोफेसर मि. ए. चक्रवर्ती एम. ए. एल. टी. लिखित " जैन फिलॉसोफी " नामके आर्टिकल का गुजराती अनुवाद महावीर पत्रके पौष शुक्ला १ संवत् २४४८ वीर संवत् के अंकमें छपा है उसमेंसे कुछ वाक्य उध्धृत।

(१) धर्म अने समाजनी सुधारणाभां जैनधर्म बहु अगत्यनो भाग भजवी शके छे. कारण आ कार्य माटे ते उत्कृष्ट रीते लायक छे.

(२) आचार पालनमां जैन धर्म घणो आगळ वधे छे. अने बीजा प्रचलित धर्मोने तो संपूर्णतानुं भान करावे छे, कोई धर्म

मात्र श्रद्धा (भक्ती) उपर तो कोइ ज्ञान उपर अने कोइ वली मात्र चारित्र उपरज भार मूके छे, परन्तु जैन धर्म ए त्रणेनां समन्वय अने सहयोगथीज आत्मा परमात्मा थाय छे एम स्पष्ट जणावे छे.

(३) रिषभदेवजी ' आदिजिन ' ' आदिश्वर ' भगवान्‌ना नामे पण ओळखाय छे. ऋग्वेदनी सूक्तीमां तेमनो अर्हत तरीके उल्लेख थएलो छे. जैनो तेमने प्रथम तीर्थंकर माने छे.

(४) बीजा तीर्थंकरो बधा क्षत्रीयोंज हता.

(५) श्रीयुत् बाबू चंपतरायजी जैन बैरिष्टर एट–लॉ हरदोइ सभापति, श्री भ. दि. जैन महासभाका ३६ वा अधिवेशन लखनउने अपने व्याख्यानमें जैन धर्मको बौद्ध धर्मसे प्राचीन होनेके प्रमाण दिये हैं उससे उध्धृत ।

(१) इन्सायक्लोपेडियामें यूरोपीयन विद्वानोने दिखाया है कि जैन धर्म बौद्ध धर्मसे प्राचीन है और बौद्ध मतने जैन धर्मसे उनकी दो परिभाषाऐं आश्रव व संवर लेली है अंतिम निर्णय इन शब्दोंमें दिया है कि:—

जैनी लोग इन परिभाषाओं का भाव शब्दार्थमें समझते है और मोक्ष प्राप्तिके मार्गके संबंधमें इन्हे व्यवहृत करते हैं (आश्रवों के संवर और निर्जरासे मुक्ति प्राप्त होती है) अब यह परिभाषाए उतनी ही प्राचीन है जितना कि जैन धर्म है । कारण कि बौद्धोंने इससे अतीव सार्थक शब्द आश्रवको ले लिया है । और धर्मके समान ही उसका व्यवहार कीया है । परन्तु शब्दार्थमें, नहीं कारण की

बौद्ध लोग कर्म सूक्ष्म पुद्गल नहीं मानते है जिसमें कर्मोका आश्रव हो सके। संवरके स्थानपर वे आश्रवको व्यवहृत करते हैं। अब यह प्रत्यक्ष है कि बौद्ध धर्ममें आश्रवका शब्दार्थ नहिं रहा। इसी कारण यह आवश्यक है कि यह शब्द बौद्धोंमें किसी अन्य धर्मसे जिसमें यह यथार्थ भावमे व्यवहृत हो अर्थात् जैन धर्मसे लिया गया है। बौद्ध संवरका भी व्यवहार करते है अर्थात् शील संवर और क्रिया रूपमें संवरका यह शब्द ब्राह्मण आचार्यो द्वारा इस भावमें व्यवहृत नहीं हुए है अतः विशेषतया जन धर्मसे लिये गये है। जहां यह अपने शब्दार्थ रूपमें अपने यथार्थ भावको प्रकट करते है। इस प्रकार एक ही व्याख्यासे यह सिद्ध हो जाता है कि जैन धमका काय सिद्धांत जैन धर्ममें प्रारंभिक और अखंडीत रूपमें पूर्वसे व्यवहृत है और यह भी सिद्ध होता है कि जैन धर्म बौद्ध धर्मसे प्राचीन है.

(जैन भास्करोदय सन् १९०४ ई. से उध्धृत.)

इत्यादि जैन धमकी प्राचीनता स्वतंत्रा और विशालताके विषय अनेकोनक सम्मतिए मिलती है और जैसे जैसे इतिहासकी खोज होती जावेगा वैसे वैसे जैन धर्मकी महत्वत्ता सिद्ध होती जायगी. और विद्वानोंका यह ख्याल अवश्य हो जायगा कि जगतको दुःखोंसे मुक्त कर सच्चा सुखका देनेवाला एक जैन धर्म ही है. शम्.

इति जैन जातिमहोदय प्रथम प्रकरण समाप्तम्.

जैन जातिमहोदय।

[द्वितीय प्रकरण]

श्री रत्नप्रभसूरीश्वर सद्गुरुभ्यो नमः

अथ श्री

जैन जाति महोदय.

प्रकरण दूसरा.

(चौवीस तीर्थंकरोंका संक्षिप्त वर्णन)

जैसे कालका आदि अन्त नहीं है वैसे सृष्टिका भी आदि अन्त नहीं है अर्थात् सृष्टिका कर्त्ता—हर्त्ता कोइ नहीं है। अनादिकालसे प्रवाहरूप चली आती है और भविष्यमें अनन्तकाल तक ऐसे ही संसार चलता रहेगा। इसका अन्त न तो कभी हुवा और न कभी होगा.

सृष्टिमें चैतन्य और जड़ एवं मुख्य दो पदार्थ है आज जो चराचर संसार दीखाइ देता है वह सब चैतन्य और जड़ वस्तुका पर्यायरूप है । कालका परिवर्तनसे कभी उन्नति कभी अवनति हुवा करती है उस कालका मुख्य दो भेद है (१) उत्सर्पिणी (२) अवसर्पिणी। इन दोनोंकों मीलानेसें कालचक्र होता है एसा अनन्त कालचक्र भूतकालमें हो गये और अनंते ही भविष्यकालमें होगा वास्ते कालका आदि अन्त नहीं है । जब कालका आदि अन्त

नहीं है तब कालकी गीणना करनेवाला संसार (सृष्टि) का भी आदि अन्त नहीं होना स्वयंसिद्ध है ।

(१) उत्सर्पिणी कालके अन्दर वर्ण गन्ध रस स्पर्श संहनन संस्थान जीवोंका आयुष्य और शरीर (देहमान) आदि सब पदार्थोंकी क्रमशः उन्नति होती है ।

(२) अवसर्पिणी कालमें पूर्वोक्त सब बातोंकी क्रमशः अवनति होती है पर उन्नति और अवन्नति है वह समूहापेक्षा है न कि व्यक्ति अपेक्षा । उत्सर्पिणी काल अपनी चरमसीमातक पहुँच जाता है तब अवसर्पिणी कालका प्रारंभ होता है और अवसर्पिणी काल अपनी आखिर हदपर चला जाता है तब फीर उत्सर्पिणी कालकी शरुआत होती है क्रमशः इसी कालचक्रसें सृष्टिकी उन्नति और अवनति हुवा करती है ।

जब समयकी अपेक्षा काल अनंता हो चुका है तब इतिहास भी इतना ही कालका होना एक स्वभावी बात है परंतु वह केवली गम्य है न कि एक साधारण मनुष्य उसे कह सके व लिख सके ।

जैसे हिन्दूधर्म्ममें कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलयुगसे कालका परिवर्त्तन माना है, वैसे ही जैनधर्म्ममें प्रत्येक उत्सर्पिणी–अवसर्पिणीके छे छे हिस्सें (आरा) द्वारा कालका परिवर्त्तन माना गया है ।

(१) उत्सर्पिणीके छे हिस्से (१) दुःषमादुःषम (२) दुःषम (३) दुःषमासुषम (४) सुषमादुःषम (५) सुषम (६) सुषमासुषम. इस कालका स्वभाव है कि वह दुःखकी चरम-

मीमासें प्रवेश हो क्रमशः उन्नति करता हुवा सुखकी चरमसीमा तक पहुँचके खतम होजाता है वाद अवसर्पिणीका प्रारंभ होता है।

(२) अवसर्पिणीके छे हिस्से (१) सुखमासुखम (२) सुषम (३) सुषमादुःखम (४) दुःषमासुषम (५) दुःषम (६) दुःषमादुःषम. इस कालका स्वभाव है कि वह सुखकी चरमसीमार्से प्रवेश हो क्रमशः अवनति करता हुवा दुःखकी चरमसीमा तक पहुँचके खतम होजाता है । बाद फिर उत्सर्पिणी कालका प्रारंभ होता है। एवं एकके अन्तमें दूसरी घटमालकी माफीक काल घूमता रहता है। वर्तमान समय जो वरत रहा है वह अवसर्पिणी काल है। आज मैं जो कुच्छ लिख रहा हूं वह इसी अवसर्पिणी कालके छे हिस्सोंके लिये है।

अवसर्पिणी कालके छे हिस्सोंमें पहला हिस्साका नाम सुषमासुषमारा है. वह च्यार कोडाकोड सागरोपमका है उस समय भूमिकी सुन्दरता सरसाइ व कल्पवृक्ष वडे ही मनोहर—अलौकिक थे उस समयके मनुष्य अच्छे रूपवान, विनयवान्, सरलस्वभावी, भद्रिक परिणामी, शान्तचित्त, कषायरहित, ममत्वरहित, पदचारी, तीन गाउका शरीर, तीन पल्योपमका आयुष्य, दोसो छपन्न पास अस्थि, असी मसी कसी, कर्म्मरहित दश प्रकारके कल्पवृक्ष मनइच्छित भोगोपभोग पदार्थसे जिनको संतुष्ट करते थे उन युगलमनुष्यों (दम्पति) से एक युगल पैदा होता था। वह ४९ दिन उसका प्रतिपालन कर एकको छींक दूसरेको उबासी आते ही स्वर्ग पहुँच जाते थे पीछे रहा हुवा युगल युवक होनेपर दम्पति सा वरताव स्वयं ही करलेते थे कारण कि उस जमानेमें बहनभाइकी संज्ञा न होनेसे वह दोषित

भी नही कहलाते थे उस जमानेके सिंह व्याघ्रादि पशु भी भद्रिक. वैरभावरहित, शान्तचित्तवाले ही थे जैसे जैसे काल निर्गमन होता रहा वैसे वैसे वर्ण गन्ध रस स्पर्श संहनन संस्थान देहमान आयुष्यादि सबमें न्यूनता होती गई। यह सब अवसर्पिणी कालका ही प्रभाव था।

(२) दूसरा हिस्साका नाम सुषमआरा वह तीन क्रोडाक्रोड सागरोपमका था इस समय भी युगलमनुष्य पूर्ववत् ही थे पर इनका देहमान दो गाउ और आयुष्य दो पल्योपमका था प्रतिपालन ६४ दिन पास अस्थि १२८ और भी कालके प्रभावसें सब वातोंमें क्रमशः हानि होती आइ थी।

(३) तीसरा हिस्साका नाम सुषमदुःषमारा. यह दो कोडा कोड सागरोपमका था एक पल्योपमका आयुः एक गाउ का शरीर ७९ दिन प्रतिपालन ६४ पासास्थि आदि क्रमशः हानि होती रहीं इसके तीन हिस्सों सें दो हिस्सा तक तो युगलधर्म्म बराबर चलता रहा पर पच्छिला हिस्सामें कालका प्रभावसें कल्पवृक्ष फल देनेमें संकोच करने लगे इस कारणसें युगल मनुष्योंमें ममत्वभावका संचार हुवा जहां ममत्वभाव होता है वहां कलेश होना संभवित है जहां क्लेश होता है वहां इन्साफ की भी परमावश्यक्ता हुवा करती है। युगल मनुष्य एक एसा न्याय-धीश की तलासीमें थे उस समय एक युगल मनुष्य उज्ज्वल वर्णके हस्तीपर सवारी कर इधर-उधर घूमता था युगलमनुष्योंनें सोचा कि यह सबसें बडा मनुष्य है "कारण की इस के पहले कीसी युगलमनुयोंनें सवारी नहीं करी थी" सब युगलमनुष्य एकत्र हो

उस सवारीवाला युगलको अपना न्यायाधीश बनाके उसका नाम " विमलवाहन " रखदिया कारण उसके वाहन सुफेद (विमल) था जब कोइ भी युगलमनुष्य अपनि मर्यादाका उल्लंघन करे तब वहां ' विमलवाहन ' उसको दंड देनेको ' हकार ' दंड नीति मुकरर करी तदानुसार कह देता कि हे ! तुमने यह कार्य कीया ? इतने पर वह युगल लज्जित विलाज्जित हो जाता और ताम उमर तक फीरसें एसा अनुचित्त कार्य्य नहीं करता था । कितने काल तो इस्में निर्गमन हो गया । बाद विमलवाहन कुलकर कि चंद्रयशा भार्यामें चक्षुष्मान नामका पुत्र हुवा वह भी अपने पिताके माफीक न्यायाधीश (कुलकर) हुवा. उसनें भी ' हकार ' नीतिका ही दंड रखा चक्षुष्मान की चंद्राक्रान्ता भार्यासे यशस्वी नामका पुत्र हुवा वह भी अपने पिताके स्थान कुलकर हुवा पर इसके समय कल्पवृक्ष बहुत कम हो गया जिस्मे भी फल देनेमें बहुत संकीर्णता होनेसें युगलमनुष्योंमें और भी क्लेश बढ गया ' हकार ' नीतिका उल्लंघन होने लगा तब यशस्वीने हकारको बढाके ' मकार ' नीति बनाई अगर कोइ युगलमनुष्य अपनी मर्यादाका उल्लंघन करे उसे ' मकार ' दंड अर्थात् ' मकरो ' इससे युगलमनुष्य बडे ही लज्जितविलाज्जित होकर वह काम फिर कदापि नहीं करते थे । यशस्वी कि रूपालिसें अभिचंद्र नामका पुत्र हुवा वह भी अपने पिताकी माफीक कुलकर हुआ उसके समय हकार मकार नीति दंड रहा अभिचंद्रके प्रतिरूपा नामकी भार्या से प्रसेनजीत नामका पुत्र पैदा हुवा वह भी अपने पिताके स्थान कुलकर हुआ इसके समय कालका और भी प्रभाव बढ गया कि इसकों

'हकार' 'मकार' सें बढ के 'धिकार' नीति बनानी पड़ी अर्थात् मर्यादा उल्लंघनेंवालें युगलोंको 'धीकार' कहनेंसें वह लज्जितविलज्जित हो फिर दूसरीवार एसा कार्य्य नहीं करता था प्रसेनजीतकी चक्षुष्कान्ता-स्त्रिसें मरुदेव नामका पुत्र हुवा. वह भी अपने पिताके स्थान कुलकर हो तीनों दंड नीतिसें युगलमनुष्योंको इन्साफ देता रहा मरुदेवकी भार्या श्रीकान्ता कि कुर्क्षीसे नाभी नामका पुत्र हुवा वह भी अपने पिताके पदपर कुलकर हुवा इसके समय भी तीनो प्रकारकी दंड नीति प्रचलितथी पर कालका भयंकर प्रभाव युगलमनुष्योंपर इस कदरका हुवा कि वह हकार मकार धिक्कार एसी तीनों प्रकारकी दंड नीतिकों उल्लंघन करनेंमें अमर्यादित हो गये थे उस समय कल्पवृक्ष भी बहुत कम हो गये जो कुछ रहे थे वह भी फल देनेमें इतनी संकीर्णता करते थे कि युगलमनुष्योंमें भोगोपभोग के लिये प्रचुर कषायका प्रादुर्भाव होने लग गये——

सं.	कुलकर.	भार्या.	पिता.	माता.	आयुष्य.	देहमान.	दंडनीति.
१	विमलवाहन	चंद्रयशा			पल्योपमके दशमेअंश	९०० धनुष्य	हकार
२	चक्षुष्मान	चंद्रकान्ता	विमलवाहन	चंद्रयशा	कुच्छन्यून	८०० ,,	,,
३	यशस्वी	स्वरूपा	चक्षुष्मान	चंद्रकान्ता	सं० ,,	७०० ,,	मकार
४	अभिचंद्र	प्रतिरूपा	यशस्वी	स्वरूपा	,, ,,	६५० ,,	,,
५	प्रसेनजीत	चक्षुकान्ता	अभिचंद्र	प्रतिरूपा	,, ,,	६०० ,,	धीकार
६	मरुदेव	श्रीकान्ता	प्रसेनजीत	चक्षुकान्ता	सं० व०	५५० ,,	,,
७	नाभिराजा	मरुदेवा	मरुदेव	श्रीकान्ता	,,	५०५ ,,	,,

यद्यपि जैनशास्त्रकारोंने युगलमनुष्योंका व कुलकरोंका विषय सविस्तर वर्णन कीया है पर मैंने मेरे उद्देशानुसार यहां संक्षिप्तसें ही लिखा है अगर विस्तारसें देखनें की अभिलाषा हो उन ज्ञान-प्रेमियोंकों श्री जम्बुद्विपप्रज्ञप्तिसूत्र जीवाभिगमसूत्र आवश्यकसूत्र और त्रिपष्टि शलाका पुरुष चरित्रादि ग्रन्थोंसें देखना चाहिये ।

इति भोगभूमि मनुष्योंका संबन्ध ॥

सर्वार्थसिद्ध वैमानमें राजा वज्रजंघका जीव जो देवता था वह तेतीस सागरोपमकी स्थितिको पूर्ण कर इक्ष्वाकु भूमिपर नाभीकुलकरकी मरूदेवा भार्याके पवित्र कुक्षीमें आसाढ वद ४ कों तीन ज्ञान संयुक्त अवतीर्ण हुवे माताने वृषभादि १४ स्वप्न देखा नाभीकुलकर व इन्द्रने स्वप्नोंका फल कहा—शुभ दोहला पूर्ण करते हुए चैत्र वद ८ को भगवान्का जन्म हुवा ५६ दिग्कुमारिकाओंने सूतिकाकर्म किया और ६४ इन्द्रोंने सुमेरु गिरिपर भगवान्का स्नात्रमहोत्सववडे ही समारोहके साथ कीया । वृषभका स्वप्नसूचित भगवानका नाम वृषभ यानि ऋषभदेव रखा । इन्द्र जब भगवान्के दर्शनको आया तब हाथमें इक्षु (सेलडीका सांठा) लाया था और भगवान्को आमन्त्रण करनेपर प्रभुने ग्रहन कीया वास्ते इन्द्रने आपका इक्ष्वाकुवंश स्थापन कीया ।

सुमंगला——भगवान्के साथ युगलपने जन्म लिया था ।

सुनंदा——एक नूतन युगल ताड वृक्ष निचे बेठा था उस ताड का फल लडकाके कोमल स्थानपर पडनेसे लडका मर गया बाद

लडकीको नाभीराजाके पास पहुँचा दी। इन दोनो (सुमंगला और सुनंदा) के साथ भगवान्का पाणिग्रहण हुआ. यह पाणिग्रहण पहला पहल ही हुवा था जिसके सब व्यवहार विधि विधान पुरुषोंका कर्त्तव्य इन्द्रने और ओरतोंका कार्य्य इन्द्राणिने कीया था जबसे युगल धर्म्मबन्ध हो सब युगलमनुष्य इस रीतीसे पाणि-ग्रहण करने लगें।

इधर कल्पवृक्ष प्रायः सर्व नष्ट हो जानेसे युगल मनुष्योंमे अधिकाधिक क्लेश बढने लगा नाभीकुलकर हकार मकार धीक्कार दंड देनेपर भी क्षुधातुर युगल मर्य्यादाका वारवार भंग करने लगें युगल-मनुष्योंने नाभीराजासे एक राजा बनानेकी याचना करी उत्तरमें यह कहा कि " जाओ तुमारे राजा ऋषभ होगा " इस अवसरमें इन्द्र आके भगवान्का राजअभिषेक करनेका सब रीतरीवाज युगल-मनुष्योंको बतलाया. और स्वच्छ जल लानेका आदेश दीया तब युगल पाणिलानेको गया बाद इन्द्रने राजसभा राजसिंहासन राजाके योग्य वस्त्राभूषणोंसे भगवान्को अलंकृत कर सिंहासनपर विराज-मान कर दीये। युगलमनुष्य जलपात्र लाये भगवान्को सालंकृत देख पैरोंपर जलाभिषेक कर दीये तब इन्द्रने युगलोंको विनीत कह कर स्वर्गपुरी सदृश १२ योजन लंबी ९ योजन चौडी विनीता नामकी नगरी वसाई उसके देखादेख अन्य नगर ग्राम वसना प्रारंभ हुवा. भगवान्का इक्ष्वाकुवंश था। जिनको कोटवाल पदपर नियुक्त किया उनका उग्रवंश, जिनको बडा माना उनका भोग-वंश, जिनको मंत्रिपदपर मुकरर किया उनका राजन्वंश शेष जन-

वाका क्षत्रियवंश स्थापन किया जबसे कुल व वंशोकि स्थापना हुई शेष कुल व वंश इनोके अन्दरसे कारण पा पाके प्रगट हुवे है।

भगवान्ने युगल मनुष्योंका प्रतिपालन करनेमें व नीतिधर्म्मका प्रचार करनेमें कितना ही काल निर्गमन कीया उसके दरम्यान भगवान्के भरत बाहुबलादि १०० पुत्र और ब्राह्मी सुन्दरी दो पुत्रियों हुइ थी। भरत बाहुबलादिको पुरुषोंकि ७२ कैला और ब्राह्मी सुन्दरीको स्त्रियोंकी ६४ कैला व अठारा प्रकारकी लीपी बतलाई

१ पुरुषोंकी ७२ कला, लिखनेकीकला, पढनेकीकला, गणितकला, गीतकला, नृत्यकला, तालबजाना, पटहबजाना, मृदंगबजाना, वीणाबजाना, वंशपरीक्षा, भेरीपरीक्षा, गजशिक्षा, तुरंगशिक्षा, धातुर्वाद, दृष्टिवाद, मंत्रवाद, बलिपलितविनाश, रत्नपरीक्षा, नारीपरीक्षा, नरपरीक्षा, छंदबंधन, तर्कजल्पन, नीतिविचार, तत्वविचार, कवित्वशक्ति, जोतिषशास्त्रकाज्ञान, वैद्यक, षड्भाषा, योगाभ्यास, रसायणविधि, अंजनविधि, अढारहप्रकारकी लिपि, स्वप्नलक्षण, इंद्रजालदर्शन, खेतीकरनी, वाणिज्यकरना, राजाकीसेवा, शकुनविचार, वायुस्तंभन, अग्निस्तंभन, मेघवृष्टि, विलेपनविधि, मर्दनविधि, ऊर्ध्वगमन, घटबंधन, घटभ्रमन, पत्रछेदन, मर्मभेदन, फलाकर्षण, जलाकर्षण, लोकाचार, लोकरंजन, अफल वृक्षोंको सफल करना, खड्गबंधन, छूरीबंधन, मुद्राविधि, लोहज्ञान, दांतसमारणे, काललक्षण, चित्रकरण, बाहुयुद्ध, मुष्टियुद्ध, दंडयुद्ध, दृष्टियुद्ध, खड्गयुद्ध, वाग्युद्ध, गारुडविद्या, सर्पदमन, भूतमर्दन, योगसोद्रव्यानुयोग, अक्षरानुयोग, व्याकरण, औषधानुयोग, वर्षज्ञान।

२ अब स्त्रीयोकी चौसठ कला—नृत्यकला, औचित्यकला, चित्रकला, वादित्रकला, मंत्र, तंत्र, ज्ञान, विज्ञान, दंभ, जलस्तंभ, गीतज्ञान, तालज्ञान, मेघवृष्टि, फलवृष्टि, आरामारोपण, आकारगोपन, धर्मविचार, शकुनविचार, क्रियाकल्पन, संस्कृतजल्पन, प्रसादनीति, धर्मनीति, वर्णिकावृधि, स्वर्णसिद्धि, तैलसुरभीकरण, लीलासंचरण, गजतुरंगपरीक्षा, स्त्रीपुरुषके लक्षण, कामक्रिया, अष्टादश लिपिपरिच्छेद, तत्कालबुद्धि,

जिनसे संसारव्यवहारका सब कार्य प्रचलीत हुवा अर्थात् आज संसारभरमें जो कलाओं व लीपियों चल रही है वह सब भगवान् ऋषभदेवकी चलाइ हुइ कलाओंके अन्तर्गत है न कि कोइ नविन कला है। हाँ कभी कीसी कला व लीपीका लोप होना और फीर कभी सामग्री पाके प्रगट होना तो कालके प्रभावसे होता ही आया है।

भगवानके चलाया हुवा नीति धर्म्म—संसारका आचार व्यवहार कला कौशल्यादि संपूर्ण आर्यव्रतमें फैल गया मनुष्य असी मसी कसी आदि कर्मसे सुखपूर्वक जीवन चलाने लगे पर आत्मकल्याणके लिये लौकिकधर्म्मके साथ लौकोत्तर धर्म्मकि भी परमावश्यक्ता होने लगी।

भगवान्के आयुष्यके ८३ लक्षपूर्व इसी संसार सुधारनेमें निकल चुके तब लौकान्तिकदेवने आके अर्ज करी कि हे दीनोद्धारक! आपने जैसे नीतिधर्म्म प्रचलित कर क्लेश पाते हुवे युगलमनुष्योंका उद्धार किया है वैसे ही अब आत्मीक धर्म्म प्रकाश कर संसार-समुद्रमें परिभ्रमन करते हुवे जीवोंका उद्धार किजिये आपकी दीक्षाका

वस्तुशुद्धि, वैद्यकक्रिया, सुवर्णरत्नभेद, घटभ्रम, सारपरिश्रम, अंजनयोग, चूर्णयोग, हस्तलाघव, वचनपाटव, भोज्यविधि, वाणिज्यविधि, काव्यशक्ति, व्याकरण, शालिखंडन, मुखमंडन, कथाकथन, कुसुमगुंथन, वरवेष, सकलभाषा विशेष, अभिधानपरिज्ञान, आभरण पहनने, भृत्योपचार, गृहाचार, शाठ्यकरण, परनिराकरण, धान्यरंधन, केश-बंधन, वीणावादीनाद, वितंडावाद, अंकविचार, लोकव्यवहार, अंत्याक्षरिका, इसके सिवाय नौनारू नौकारू जो कुंभकार सुतार नाइ दरजी छीपा आदिकी कलाओ अर्थात् यों कहे तो दुनियोंका सब व्यवहार ही भगवान् आदिनाथने ही चलाया था।

समय आ पहुँचा है अर्थात् कुच्छ न्यून अठारा क्रोडाक्रोड सागरोपमसे मोक्षमार्ग बन्ध हो रहा है उसको आप फीरसे चालु करावे।

भगवान् दीक्षाका अवसर जान एक वर्ष तक (वर्षिदान) अति उदार भावनासे दान दीया, भरतको विनीताका राज बाहुबलीको तक्षशीलाका राज और संग वंग कुरु पुंड्र चेदि सुदन मागध अंध्र कलिंकभद्र पंचाल दशार्ण कौशल्यादि पुत्रोंको प्रत्येक देशका राज देदीया. पुत्रोंका नाम था वह ही नाम देशका पड गया. भगवान् कि दीक्षाके समय चौसठ इन्द्र सपरिवार आके बडा भारी दीक्षा महोत्सव कीया भगवान् ४००० पुरुषोंके साथ चैत वद ८ के दिन सिद्धोंको नमस्कारपूर्वक स्वयं दीक्षा धारण कर ली।

पूर्वजन्ममें भगवानने अन्तराय कर्मोपार्जन[1] कीया था वास्ते भगवान् भिक्षाके लिये पर्यटन करने पर भी एक वर्ष तक भिक्षा न मीली कारण भगवानके पहला कोई इस रीतीसे भिक्षा लेनेवाला था ही नहीं और उस समयके मनुष्य इस बातको जानते भी नहीं थे कि भिक्षा क्या चीज होती है? हाँ हस्ति अश्व रत्न माणक मौती और सालंकृत सुन्दर बालाओंकी भेटें वह मनुष्य करतेथे पर भगवान्को इनसे कोइ भी प्रयोजन नहीं था। उस एक वर्षके अंदर जो ४००० शिष्य थे वह क्षुधा पिडित हो जंगलमें जाके फलफूल कन्द मूलादिका भोजन कर वहांही रहने लगे. कारण उच्च कुलिन मनुष्य संसार त्यागन कर फीर उसको स्वीकार नहीं करते है वह सब जंगलो में रह कर भगवान् ऋषभदेवका ध्यान करते थे।

---

१ कीसी कालमें ५०० बलदोंके मुंहपर छीकीयों बन्धा के अन्तरायकर्म बान्धा था।

एक वर्ष के बाद भगवान् हस्तनापुरनगरमें पधारे वहां बाहुबलीका पौत्र श्रेयांस कुमारके हाथसे वैशाख शुद ३ को इक्षुरसका पारणा कीया देवताओंने रत्नादि पंच पदार्थ कि वर्षा करी तबसे वह मनुष्य मुनियोंको दान देनेकी रीति जानने लगें. यह हाल सुनके ४००० जंगलवासि मुनि फक्त कच्छ महाकच्छ वर्ज के क्रमशः सब भगवान् के पास आके अपने संयम तपसे आत्म-कल्याण करने लग गये ।

भगवान् छद्मस्थपने बाहुबली कि तक्षशीला के बाहर पधारे बाहुबलीको खबर होनेपर विचार किया कि प्रभातको में बडे आडम्बरसे भगवानको वन्दन करनेको जाउंगा पर भगवान् सुबह अन्यत्र विहार कर गये उस स्थान बाहुबलीने भगवान् के चरण पादुकाओं की स्थापना करी वह तीर्थ राजा विक्रम के समय तक मोजुद था बाद म्लेच्छोंने नष्ट कर दीया.

क्रमशः भगवान् १००० वर्ष छद्मस्थ रहे अनेक प्रकारके तपश्चर्यादि करते हुवे पूर्वोपार्जित कर्मोका क्षय कर फागण वद ११ को पुरिमताल उद्यानमें दिव्य कैवल्यज्ञान कैवल्यदर्शन प्राप्त कर लीया आप सर्वज्ञ हो सकल लोकालोक के भावोंको हस्तामलककी माफीक देखने लग गये. भगवानको कैवल्यज्ञान हुवा उस समय सर्व इन्द्र-मय देवदिवताओं के कैवल्य महोत्सव करनेको आये महोत्सवकर समवसरण की रचना करी यानि एक योजन भूमिमें रत्न, सुवर्ण, चांदीके तीन गढ बनाये उपर के मध्यभागमें स्फटिक रत्नमय सिंहासन बनाया. पूर्व दिशामें भगवान् विराजमान हुवे शेष तीन दिशा-

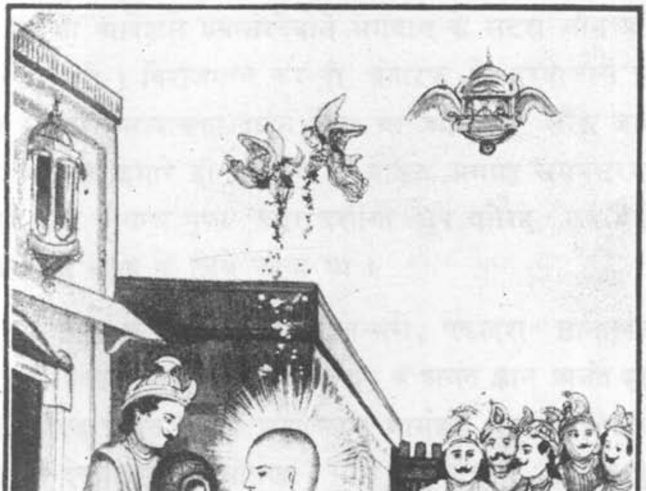

भिक्षार्थ भ्रमण करते दीर्घ तपस्वी प्रभु ऋषभदेव वर्ष दिनकी तपस्या के बाद श्रेयाँस कुमार के द्वारपर आ पहुंचे कुमारने दिव्य ज्ञानसे भगवान को इक्षुरसका दान दिया; देवी देवताओंने दुंदुंभीनाद से पुष्प सुवर्णादिकी वृष्टि की.

Lakshmi Art, Bombay, 8

ओमें इन्द्रका आदेशसे व्यन्तरदेवोंने भगवान् के सदृश तीन प्रतिबिंब (मूर्त्तियों) विराजमान कर दी चोतरफ के दरवाजासे आनेवाले सबको भगवान्का दर्शन होता था और सब लौक जानते थे किं भगवान् हमारे ही सन्मुख है योजन प्रमाण समवसरणमें स्वच्छ जल सुगन्ध पुष्प और दशांगी धूप वगैरह सब देवोंने तीर्थंकरों की भक्ति के लिये कीया था ।

भगवान् के चार अतिशय जन्मसे. एकादश ज्ञानोत्पन्नसे और १९ देवकृत एवं चौंतीस अतिशय व अनंत ज्ञान अनंत दर्शन अनंत चारित्र अनंत लब्धि अशोकवृक्ष भामंडल स्फिटक सिंहासन आकाशमें देववाणि (उद्घोषणा) पांच वर्णके घुटने प्रम्मणे पुष्प तीनछत्र चौसट इन्द्र दोनो तर्फ चमर कर रहे इत्यादि असंख्य देव देवि नर विद्याधरोसे पूजित जिनोके गुण ही अगम्य है ?

इधर माता मरूदेवा चिरकालसे ऋषभदेवकी राह देख रहीथी कभी कभी भरतको कहा करती थी कि हे भरत ? तुं तो राजमें मग्न हो रहा है कभी मेरे पुत्र ऋषभ कि भी खबर मंगवाइ है ? उसका क्या हाल होता होगा ? इत्यादि ।

भरत महाराजा के पास एक तरफ से पिताजीको कैवल्यज्ञानोत्पन्न कि वधाई आइ. दूसरी तरफ आयुधशाळामे चक्ररत्न उत्पन्न होने की खुश खबर मीली, तीसरी तरफ पुत्र प्राप्ति कि वधाई मीली. अब पहेला महोत्सव किसका करना चाहिये ? विचार करने पर यह निश्चय हुवा कि पुत्र और चक्ररत्न तो पुन्याधिन है इस

भवमें पौद्गलिक सुख देनेवाला है पर भगवान् सच्चे आत्मीक सुख अर्थात् मोक्ष मार्ग के दातार है वास्ते पहिले कैवल्यज्ञानका महोत्सव करना जरूरी है इधर माता मरूदेवाको भी खबर दे दी कि आपका प्यारा पुत्र वडा ही ऐश्वर्य संयुक्त पुरिमतालोद्यानमें पधार गये है यह सुन माता स्नान मज्जन कर भरतको साथ ले हस्तीके उपर होदेमें बैठ के पुत्रदर्शन करनेको समवसरणमें आई भरतने उंचा हाथ कर दादीजीको बतलाया कि वह रत्नसिंहासनपर आपके पुत्र ऋषभ देव विराजमान है माताने प्रथम तो स्नेहयुक्त बहुत उपालंभ दीया. बाद वीतराग की मुद्रा देख आत्मभावना व क्षपकश्रेणि और शुक्ल ध्यान ध्याती हुई कों कैवल्यज्ञान कैवल्यदर्शोत्पन्न हुवा. असंख्यात कालसे भरतक्षेत्रके लिये जो मुक्ति के दर्वाजे बन्ध थे उसको खोलने कों अर्थात् नाशमान शरीरको हस्तीपर छोड सबसे प्रथम आप ही मोक्षमें जा विराजमान हुइ मानो ऋषभदेव भगवान् अपनी माताको मोक्ष भेजने के लिये ही यहां पधारे थे. तत्पश्चात् चौसठ इन्द्रों और सुरासुर नर विद्याधरोंसे पूजित—भगवान् ऋषभदेवने चार प्रकार के देव व चार प्रकार कि देवियों व मनुष्य मनुष्यणि और तीर्यंच तीर्यंचनि आदि विशाल परिषदा में अपना दिव्य ज्ञानद्वारा उच्चस्वर से भवतारणि अतीव गांभिर्य मधुर और सर्व भाव प्रकाश करनेवाली जो नर अमर पशु पक्षी आदि सबके समजमें आ जावे वैसी धर्मदेशना दी जिस्में स्याद्वाद, नय निक्षेप द्रव्य—गुणपर्याय कारणकार्य निश्चय व्यवहार जीवादि नौतत्त्व षट्द्रव्य लोकालोक स्वर्ग मृत्यु पाताल का स्वरूप, व सुकृतकर्मका सुकृतफल दुःकृतकर्मका दुः-

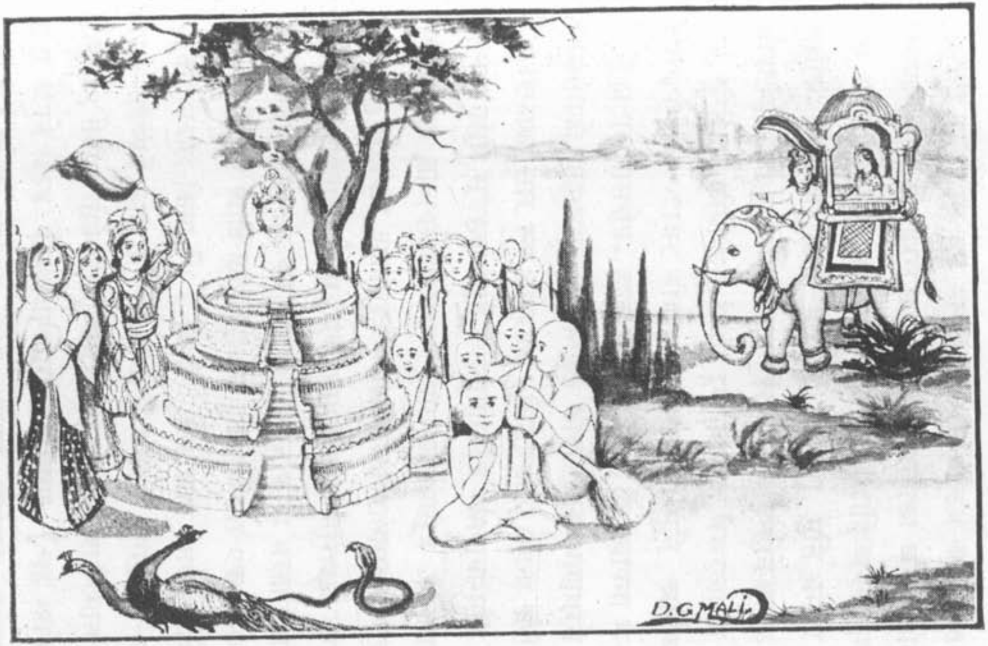

भरतेश्वरने, पुत्र विरह पिडित माता मरुदेवीको, हस्ति सिंहासन पर बिराजमान कर, देवरचीत रत्नमय समवसरणमें साधुसाध्वी, देवीदेवता मनुष्यादि की मेदनी के बीचमें बिराजे हुए भगवान ऋषभदेव के दर्शन करायें.

कृतफल दान शील तप भाव गृहस्थधर्म षट्कर्म बारहाव्रत यतिधर्म पंचमहाव्रतादि विस्तारसे फरमाया उस देशनाका असर श्रोताजनपर इस कदर हुवा कि वृषभसेन (पुंडरिक) आदि अनेक पुरुष और ब्रह्मीआदि अनेक स्त्रियों भगवान् के पास मुनि धर्मको स्वीकार कीया और जो मुनिधर्म पालनमें असमर्थ थे उन्होने श्रावक (गृहस्थ) धर्म अंगीकार कीया उस समय इन्द्रमहाराज वज्ररत्नों के स्थालमें वासक्षेप लाके हाजर कीया तब भगवान्ने मुनि अर्यिक श्रावक श्राविका पर वासक्षेप डाल चतुर्विध संघ कि स्थापना करी जिस्में वृषभसेनको गणधरपद पर नियुक्त कीया जिस गणधरने भगवान् कि देशनाका सार रूप द्वादशाङ्ग सिद्धान्तोकी रचना करी यथा— आचारांगसूत्र सूत्रकृतांगसूत्र स्थानायांगसूत्र समवायांगसूत्र विवाह्-पन्नति सूत्र ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र उपासकदशांगसूत्र अन्तगढदशांग-सूत्र अनुत्तरोववाइ दशांगसूत्र प्रश्नव्याकरणदशांगसूत्र विपाकदशांग-सूत्र और दृष्टिवादपूर्वांगसूत्र एवं तत्पश्चात् इन्द्रमहाराजने भगवान् कि स्तुति वन्दन नमस्कार कर स्वर्गको प्रस्थान कीया भरतादि भी प्रभु की गुणगान स्तुति आदि कर विसर्जन हुवे—अन्यदा एक समय सम्राट् भरतने सवाल किया कि हे विभो ! जैसे आप सर्वज्ञ तीर्थंकर है वैसा भविष्यमें कोइ तीर्थंकर होगा ? उत्तरमें भगवान्ने भविष्यमें होनेवाले तेवीस तीर्थंकरोंके नाम वर्ण आयुष्य शरीरमानादि सब हाल अपने दिव्य कैवल्यज्ञानद्वारा फरमाया (वह आगे बताया गया है) इसकि स्मृतिके लिये भरतने अष्टापद पर्वतपर २४ तीर्थंकरोंके रत्न सुवर्णमय २४ मन्दिर बनाके उसमे तीर्थ-

करोंके नाम वर्ण और देहमान प्रमाणे मूर्त्तियों बनवाके स्थापन करवा दी वह मन्दिर भगवान् महावीरके समय तक मोजुद थे जिनकि यात्रा भगवान् गौतमस्वामिने की थी।

भगवान्के साथ ४००० राजकुमारोने दीक्षा ली थी जिनमे भरतका पुत्र मरिचीकुमार भी सामिल था पर मुनि मार्ग पालनमे असमर्थ हो उसने अपने मनसे एक निराला वेषकि कल्पना कर ली जैसे परिव्राजक सन्यासियोका वेष है। पर वह तत्त्वज्ञान व धर्म्म सब भगवान्का ही मानता था अगर कोइ उसके पास दीक्षा लेनेको आता था तब उपदेश दे उसे भगवान्के पास भेज देता था एक समय भरतने प्रश्न किया कि हे प्रभु! इस समवसरणके अन्दर कोइ एसा जीव है कि वह भविष्यमें तीर्थंकर हो ? भगवान्ने उत्तर दीया कि समवसरणके बहार जो मरिची बेठा है वह इसी अवसर्पिणीके अन्दर त्रिपृष्ट नामका प्रथम वासुदेव व विदेह क्षेत्र मूका राजधानीमे प्रीयमित्र नामका चक्रवर्त्ति और चौवीसवां महावीर नामका तीर्थंकर होगा यह सुन भरत. भगवान्को वन्दन कर मरिचीके पास आके वन्दना करता हुवा कहने लगा कि हे मरिची! में तेरे इस वेपको वन्दना नहीं करता हुं परंतु वासुदेव चक्रवर्त्ति और चरम तीर्थंकर होगा वास्ते भावि तीर्थंकरको में वन्दना करता हूं यह सुन मरिचीने मद (अहंकार) किया कि अहो मेरा कुल कैसा उत्तम है ? मेरा दादा तीर्थंकर मेरा बाप चक्रवर्त्ति और मैं प्रथम वासुदेव हुँगा इस मदके मारे मरिचीने निच गोत्रोपार्जन किया। एक समय मरिची भगवान्के साथ विहार करता था कि उसके शरीरमे बीमारी हो गइ पर

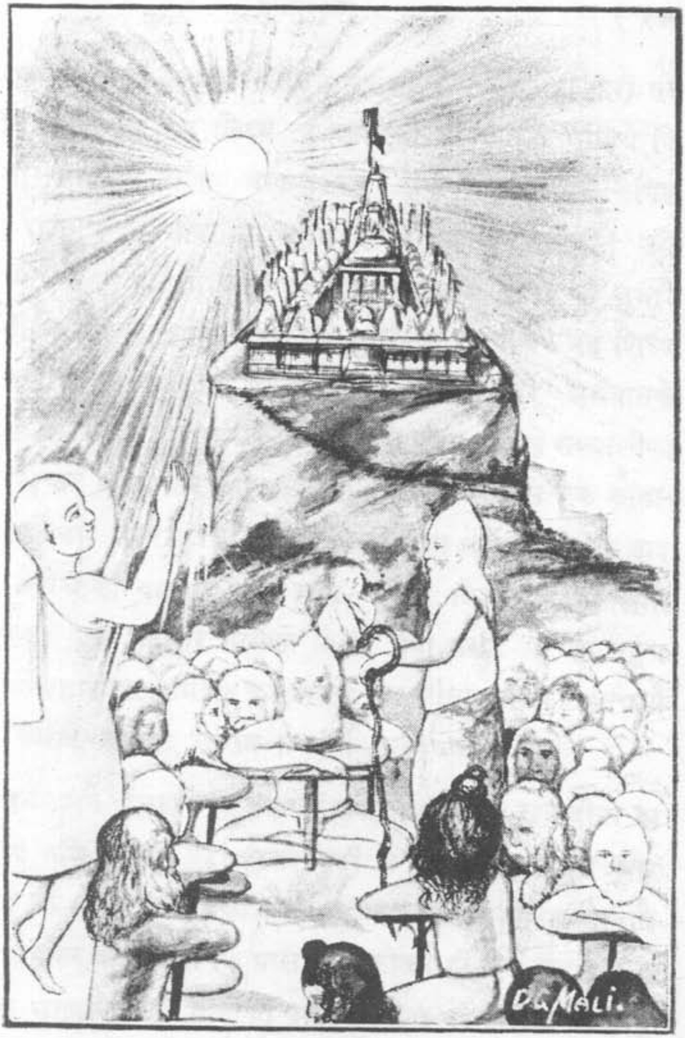

भगवान् गौतमने अन्तिम
तीर्थंकर के मुखारविंदसे सुने हुए चोवीस अरिहंतोंकी प्रतिमाओंसे
विभूषित, भरत चक्री के अष्टापद स्थापित जिनालयकी यात्रा कर,
१५०३ तापसको भागवती दीक्षा दे मोक्षाधिकारी बनाये.

Lakshmi Art, Bombay, 8.

उसे असंयति समज कीसी साधुने उसकी वैयावृत्य नहीं करी तब मरिचीने सोचा कि एक शिष्य तो अपनेको भी बनाना चाहिये कि वह एसी हालतमें टहल चाकरी कर सके? बाद एक कपिल नामका राजपुत्र मरिचीके पास दीक्षा लेनेको आया, मरिचीने उसे भगवानके पास जानेको कहा पर वह बहुलकर्मि बोला की तुमारे मतमे भी धर्म है या नहीं? इस पर मरिचीने सोचा कि यह शिष्य मेरे लायक है तब कहा कि मेरे मतमे भी धर्म है और भगवान्के मतमे भी धर्म है इसपर कपिलने—मरिचीके पास योग ले सन्यासीका वेष धारण कर लीया मरिचीने इस उत्सूत्र भाषण करनेसे एक कोडा-कोड सागरोपम संसारकी वृद्धि करी। मरिचीका देहान्त होनेके बाद कपिल मरिचीकी बतलाई हुइ ज्ञान शून्य क्रिया करने लगा इस कपिलके एक आसूरि नामका शिष्य हुवा उसने भी ज्ञानशून्य मार्गका पोषण कीया क्रमशः इस मतमें एक सांख्य नामका आचार्य हुवा था उसीके नामपर सांख्य मत प्रसिद्ध हुआ।

भगवानने दीक्षा समय पर सब पुत्रोंको अलग २ राज दीया था उस समय नमि विनमि वहां हाजर नहीं थे बाद में वह आये और खबर हुई कि भगवानने सबको राज दे दीया अपुन भाग्यहिन रह गये एसा विचार कर वह भगवान्के पास आये कीतने ही दिन प्रभुके पास रहे परन्तु भगवानने तो मौन ही साधन किया उस समय धरणेन्द्र भगवानको वन्दन करनेको आया था उसने नमि विनमिको समजाके ४८००० विद्याओंके साथ वैताढ्यगिरिका राज्य दीया फीर नमिने

उत्तर श्रेणिमें ६० नगर और विनमिने दक्षिण श्रेणीपर ५० नगर वसाके राज करने लगे जो विद्याधरकहलाते है क्रमशः उनके वंशमे रावण कुंभकरण सुग्रीव पवन हनुमानादि हुवे है वह सब इन दोनोंकि संतान है।

सम्राट भरतने जब छै खण्डमे दिग्विजय करके आया तब भी चक्ररत्नने आयुधशालामे प्रवेश नहीं किया इसका विचार करनेसे ज्ञात हुवा कि बाहुबलने अभी तक हमारी (भरतकी) आज्ञा स्वीकार नहीं करी तब दूतको तक्षशिला भेजके बाहुबलीको कहलाया कि तुम हमारी आज्ञा मानो, इसपर बाहुबलीने अस्वीकार कीया तब दोनों भाईयोंमे युद्धकी तय्यारी हुई अन्य लोगोंका नाश न करते हुवे दोनो भाईयोंमे कइ प्रकारका युद्ध हुवा पर बाहुबली पराजय नहीं हुवा अन्तमें मुष्टियुद्ध हुवा बाहुबलीने भरतपर मुष्टिप्रहार करनेको हाथ उंचा कर तो लीया पर फीर विचार हुवा कि अहो संसार असार है एक राजके लिये वृद्ध बन्धुको मारनेको में तैयारहुवा हूं बस, उंचा किया हुआ हाथसे अपने बालोंका लोच कर आप दीक्षा धारण करली पर भगवान्के पास जानेमें यह रूकावट हुई कि—

भरतने बाहुबलीके पहिले ९८ भाइयोंके पास दूत भेजा था तब ९८ भाइयोंने भगवान्के पासमें जाके अर्ज करी कि हे दयाल! आपका दीया हुवा राज हमसे भरतराजा छीन रहा है वास्ते आप भरतको बुला के समजा दो इसपर भगवानने उपदेश किया कि हे भद्र! यह तो कृत्रिमराज है पर आओ मेरे पासमे तुमको अक्षयराज देता हुँ की जिसका कभी नाश ही नहीं हो सकेगा इसपर ९८ भाईयोंने भगवान्के पास दीक्षा ले ली—बस बाहुबलीने सोचा कि

महार्षि बहुबलजी
वरस दीवस काउसग्ग रह्या, वेलडीयाँ वींटांनारे
पंखी माळा मांडिया, शिनेताप सुकांनारे वीरा मारा गज थकी उतरो.

Lakshmi Art, Bombay, 8.

में छोटे भाईयोंको वन्दना कैसे करू अर्थात् उन लघु बन्धुओंको नमस्कार करना नही चाहता हुवा जंगलमे जाके ध्यान लगा दीया जिसको एक वर्ष हो गया. उनके शरीर पर लताओ वेल्लियो और घास इतना तो छा गया कि पशुपक्षीयोंने वहां अपना घर बना लीया. इधर भगवान् | बाहुबलऋषिको समजाने के लिये ब्राह्मी तथा सुन्दरी साध्वीयोंको भेजी वह आके भाईको कहने लगी "वीरा म्हारा गजथकी उतरो, गज चढियो केवल नहीं होसीरे" यह सुन के बाहुबलीने सोचा कि क्या साध्वीयां भी असत्य बोलती है! कारण कि मैं तो गज तुरंग सब छोड के योग लिया है पर जब ज्ञान दृष्टिसे विचारने लगा तब साध्वीयोंका कहना सत्य प्रतीत हुआ सच ही मैं मानरूपी गजपर चढा हुं एसा विचार ९८ भाई-योंको वन्दन करने कि उज्ज्वल भावना से ज्यों कदम उठा या कि उसी समय बाहुबलीजीको कैवल्यज्ञानत्पन्न हो गया वहांसे चलके भगवान् के पास जाके भगवान्को प्रदक्षिना कर केवली परिषदामे सामिल हो गये ।

इधर भरत सम्राट्ने सुना कि मेरे राजलोभ के कारण ९८ भाईयोंने भी भगवान् के पास दीक्षा लेली है अहो मेरी कैसी लोभदशा कि भगवान् के दीये हुवे राज भी मैंने ले लीया भगवान् क्या जानेगा इत्यादि पश्चात्ताप करता हुवा विचार किया कि मैं ९८ भाईयोंके लिये भोजन करवा के वहाँ जा मेरे भाईयोंको भोजन जीमा के क्षमा कि याचना करू वैसे ही ५०० गाडा भो-जनसे भरके भगवान् के समवसरणमें आया भगवान्को वन्दन कर

अर्ज करी कि हे प्रभो ! हमारे भाईयोंको आज्ञा दो कि में भोजन लाया हुँ सो वह करके मुझे कृतार्थ करे भगवान्ने फरमाया कि हे राजन् ! मुनियोंके लिये बनाया हुवा भोजन मुनियोकों करना नहीं कल्पता है इस पर भरत बडा उदास हो गया कि अब इस भोजनका क्या करना ? उस समय इन्द्रनें फरमाया कि हे भरतेश यह भोजन आपसे गुणी हो उसको करवा दीजिये तब भरतने सोचा कि मैंतो अव्रती सम्यकृदृष्टि हूं मेरेसे अधिक गुणवाले देशव्रती है तब भरतने देशव्रती उत्तम श्रावकोकों बुलाके वह भोजन करवा दीया और कह दीया कि आप सबलोक हमेशा यहां ही भोजन कीया करो बस फीर क्या था ? सिधा भोजन जीमनेमें कौन पीछा हटता है फीरतो दिन ब दिन जीमनेवालो कि संख्या इतनी बडने लगी कि रसोया गभरा उठा भरत महाराजकों अर्ज करी तब भरतने उन उत्तम श्रावकों के हृदय पर कांगनी रत्नसे तीन तीन लीक खांचके चिन्ह कर दीया मानो वह "यज्ञोपवित" ही पहना दी थी भोजन करने के बाद उन श्रावकोंको भरतने कह दीया कि तुम हमारे महेल के दरवाजा पर खडे रह के. हरसमय "जितो भगवान् वर्द्धते भयं तस्मान्माहन माहने" एसा शब्दोच्चारन किया करो श्रावकोंने इसको स्वीकार कर लीया इसका मतलब यह था कि भरतमहाराज सदैव राजका प्रपंच व सांसारिक भोगविलासमें मग्न रहता था जब कभी उक्त शब्द सुनता तब सोचता था कि मुझे क्रोध मान माया लोभने जीता है और इनसे ही मुझे भय है इससे भरतको बडा भारी वैराग्य हुवा करता था जब वह श्रावक

वार वार माहन माहन शब्दोच्चारन करते थे इसे लोक उनकों ब्राह्मण अर्थात् जैनसिद्धान्तोमें ब्राह्मणोको माहन शब्दसे ही पुकारा है अनुयोगद्वारसूत्रमे ब्राह्मणोका नाम " वुड्ढसावया " वृद्धश्रावक लिखा है ।

जब ब्राह्मणो कि संख्या बढ गइ तब भरतने सोचा कि वह सिधा भोजन करते हुवे प्रमादि पुरुषार्थहीन न बन जावे वास्ते उनके स्वाध्याय के लिये भगवान् आदीश्वर के उपदेशानुसार चार आर्यवेदों कि रचना करी उनके नाम (१) संसारदर्शन वेद (२) संस्थापन परामर्शन वेद (३) तत्त्वबोध वेद (४) विद्या-प्रबोध वेद इन चारों वेदोंका सदैव पठन पाठन ब्राह्मणलोक किया करते थे और छे छे माससे उन की परिक्षा भी हुवा करती थी । आगे नौवां सुविधि नाथ भगवान् के शासनमे हम बतलावेंगे कि ब्राह्मणोने उन आर्य वेदोमे कैसा परिवर्तन कर स्वार्थवृत्ति और हिंसामय वेद बना दीया ।

भगवान् ऋषभदेवका सुवर्णकान्तिवाला ५०० धनुष्य वृषभ-का चिन्हवाला शरीर व ८४ लक्ष पूर्वका आयुष्य था जिस्मे ८३ लक्ष पूर्व संसारमें १००० वर्ष छद्मस्थपने औरएक हजार वर्ष कम एकलक्ष पूर्व सर्वज्ञपणे भूमिपर विहार कर असंख्य भव्यात्माओका कल्याण कीया अर्थात् जैनधर्म अखिल भारत व्याप्त बना दीया. था. आप आदि राजा, आदि मुनि, आदि तीर्थंकर, आदि ब्रह्मा, आदि ईश्वर हुवे पुंडरिकादि ८४ गणधर, ८४००० मुनि, तीनलक्ष आर्यिकाएं एवं श्रावक और श्राविकाओ की बहुत संख्या थी जिस्मे

पुंडरिक गणधर तो पंचक्रोडी मुनियो के परिवारसे पवित्र तीर्थ शत्रुँजय पर मोक्ष गये जिस शत्रुँजय पर भगवान् ऋषभदेव ननाणु पूर्ववार समवसरे थे अन्तमे भगवान् ! अष्टापद पर्वतपर दशहजार मुनियों के साथ माघ वदी १३ को निर्वाण पधार गये इस अवसर शोक युक्त इन्द्रोने भगवान्का निर्वाण कल्याणक किया भगवान्को जहांपर अग्नि संस्कार किया था. वहांपर इन्द्रने एक रत्नो का विशाल स्तूप बनवा दीया और एकेक गणधर व मुनियोंके स्थान भी स्तूप बंधवाया था भगवान्के दाडों व अस्थि इन्द्र व देवता ले गये थे और उनका पूजन पक्षालन वन्दन भक्ति जिनप्रतिमा तूल्य किया करते हैं।

जैसे एक सर्पिणी कालमे २४ तीर्थंकर होनेका नियम है वैसे ही १२ चक्रवर्तिराजा होनेका भी नियम है। इस कालमें बारह चक्रवर्त्तिराजाओमें यह भरत नामाचक्रवर्ति पहला राजा हुवा है इन कि ऋद्धि अपरम्पार है जैसे चौदह रत्न नौनिधांन पचवीस हजार देवता बतीसहजर मुगटबंधराजा सेवामें चौरासी हजार २ हस्ती रथ अश्व–छन्नूक्रोड पैदल और चौसठहजार अन्तउरादि । छे खंड साधन करते हुवे को ६० हजार वर्ष लगा था ऋषभकूट पर्वतपर आप के दिग्विजय कि प्रशस्तिए भी अंकित की गइ थी उस समय के आर्य अनार्य सब हि देशोंके राजा आप की आज्ञासादर सिरोद्धार करते थे और आर्य–अनार्य राजाओंने अपनी

---

१ नौनिधान नैसर्ग, पांडुक, पिंगल, सर्वरत्न, पद्म महापद्म, माणव, संक्ख ! काल

२ चौदह रत्न–सैनापति, गाथापति, वडाइ, पुरोहित, स्त्रि, हस्ती, अश्व, चक्र, छत्र, चामर, मणि, कांगणि, अर्मा, दंड रत्न ।

पुत्रियोंका पाणिग्रहन भी भरत सम्राट् के साथ कीयाथा इत्यादि जो आज पर्यन्त इस आर्यव्रतका नाम भारतवर्ष है वह इसी भरत सम्राट कि स्मृति रूप है ।

भरत सम्राट् (चक्रवर्त्ति) ने छे खंडमें एक छत्र न्याय-युक्त राजकर दुनियाकी वडी भारी आबादी (उन्नति) करी आपने अपने जीवनमें धर्म्मकार्य भी वहुत सुन्दर कीया अष्टापद पर चौवीस तीर्थंकरों के चौवीस मन्दिर और अपने ९८ भाइयोंका "सिंह-निषद्या" नामका प्रासाद, शत्रुंजय तीर्थका संघ और भी अनेक सुकृत कार्य्यकर अन्तमें आरिसा भुवनमें आप विराजमान थे उस समय एक अंगुलीसे मुद्रिका गिरजानेसे दर्पणमें अंगुली अनिष्ट दीखने लगी तब स्वयं दूसरे भूषण उतारते गये वैसे ही शरीरका स्वरूप भयंकार दीखाई देने लगा बस ! वहां ही अनित्य भावना और शुक्लध्यान क्षपकश्रेणि आरूढ हो कैवल्यज्ञान प्राप्ति कर लिया देवतोने मुनिवेष दे दीया दश हजार राजपुत्रोंको दीक्षा दे आपने केइ वर्षतक जनताका उद्धार कर आखिर मोक्षमे अक्षय-सुखमे जा विराजे ।

भरतमहाराज चक्रवर्ती राजा था इनोके बहुतसी ऋद्धिथी पर इनका अन्तरआत्मा सदैव पवित्र रहता था एक समय भरतने आदेश्वर भगवान्से पुच्छा कि हे प्रभो ! मेरा भी कभी मोक्ष होगा ? भगवान्ने कहा कि भरत ! तुम इसी भवमे मोक्ष जावोगें इतनामे कीसीने कहा की बाप तो मोक्ष देनेवाला और पुत्र मोक्ष जानेवाला जिस भरतके इतना वडा भारी आरंभ परिग्रह लग रहा है फीर भी

इसी भवमें मोक्ष हो जावेगा क्या आश्चर्य है इसपर भरतने चौरासी बजारोके अन्दर सुन्दर सुन्दर नाटक मंडा दीये और आश्चर्य करनेवाला के हाथमें एक तैलसे पूर्ण भरा हुआ कटोरा दिया और चार मनुष्य नंगी तलवारवालेको साथ दीया कि इस कटोरासे एक बुंद भी गिर जावे तो इसका शिर काट लेना. (यह धमकीथी) बस ! जीवका भयसे उस मनुष्यने अपना चित्त उसी कटोरेमें रखा न तो उसको मालुम हुवा की यह नाटक हो रहा है न कोइ दूसरी बातपर ध्यान दीया. सब जगह फीरके वापिस आनेपर भरतने पूछा कि बजारोमें क्या नाटक हो रहा है ? उसने कहा भगवान् मेरा जीव तो इस कटोरामे था मेने तो दूसरा कुच्छ भी ध्यान नहीं रखा भरतने कहा कि इसी माफीक मेरे आरंभ परिग्रह बहुत है पर दर असल उसमे मेरा ध्यान नहीं है मेरा ध्यान है भगवान्के फरमाया हुवा तत्त्वज्ञानमें यह दृष्टान्त हरेक मनुष्यके लिये बडा फायदामंद है इति ।

भरतकि मोक्ष होनेके बाद भरतके पाट आदित्ययश राजा हुवा और बाहुबलके पाट चंद्रयशराजा हुवा इन दोनो राजाओकी संतानसे सूर्यवंश और चंद्रवंश चला है और कुरु राजाकी संतानसे कुरुवंश चला है जिस्से कौरव पांडव हुवे थे ।

भरतके पास कांगणी रत्न था जीससे ब्राह्मणोके तीन रेखा लगाके चिन्ह कर देता था पर आदित्ययशः के पास कांगणी न होनेसे वह सुवर्ण कि तीन लड दे दीया करता था बाद सोनासे रूपा हुवा रूपासे शुद्ध पंचवर्णका रेशाम रहा बाद कपासके सुतकी वह आज पर्यन्त चली आती है ।

भरतराजाके आठ पाट तक तो सर्व राजा बराबर आरीसाके भुवनमे केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये और भी भरतके पाट असंख्य राजा मोक्ष गये अर्थात् भगवान ऋषभदेवका चलाया हुवा धर्मशासन पचास लक्ष क्रोड सागरोपम तक चलता रहा जिस्मे असंख्यात जीवोंने अपना आत्मकल्याण कीयाथा इति प्रथम तीर्थंकर.

(२) श्री अजितनाथ तीर्थंकर—विजय वैमानसे तीन ज्ञान संयुक्त वैशाख शुद १३ को अयोध्या नगरीके जयशत्रु राजाकी विजयाराणी कि रत्नकुक्षीमें अवतीर्ण हुवे। माताने चौदह स्वप्नें देखे जिसका शुभ फल राजा व स्वप्नपाठकोंने कहा माताको अच्छे अच्छे दोहले उत्पन्न हुवे उन सबको राजाने सहर्ष पूर्ण किये बाद माघ शुद ८ को भगवान्का जन्म हुवा छप्पन्न दिग्कुमारि देवियोंने सुतिका कर्म्म किया और चोसठ इन्द्रमय देवी देवताओंके भगवान्को सुमेरु गिरिपर लेजा के जन्माभिषेक स्नात्रमहोत्सव कीया तदनन्तर राजाने भी बडा भारी आनंद मनाया युवकवयमें उच्च कुलिन राजकन्याओंके साथ भगवान्का पाणिग्रहण करवाया भगवान्का शरीर सुवर्ण कान्तिवाला ४५० धनुष्य प्रमाण गजलंच्छन कर सुशोभित था जब सांसारिक यानि पौद्गलिक सुखोसे विरक्त हुवे उस समय लोकान्तिक देवोने भगवान्से अर्ज करी कि हे प्रभो ! समय आ पहुंचा है आप दीक्षा धारण कर भगवान ऋषभदेवके चेलाये हुवे धर्मका उद्धार करो तब माघ वद ९ को एक हजार पुरुषके साथ भगवान् दीक्षा धारण करी उग्र तपश्चर्या करते हुवे पौष शुद ११ को भगवान्

कैवलज्ञान प्राप्त कीया भगवान् ऋषभदेवका प्रचलीत कीया हुवा धर्म्मकी वृद्धि करते हुवे सिंहसेनादि एकलक्ष मुनि फाल्गुनीन आदि तीनलक्ष तीसहजार आर्यीकाए दोलक्ष अठानवे हजार श्रावक, पंचलक्ष पैतालीसहजार श्राविकाओं का सम्प्रदाय हुआ क्रमशः बहत्तरलक्ष पूर्व का सर्व आयुष्य पूर्ण कर सम्मेतशिखर पर्वतपर चैत शुद ५ को भगवान् मोक्ष पधारे आपका शासन तीसलक्ष कोड सागरोपम तक प्रवृतमान रहा। उस समय प्रायः राजा प्रजाका एक धर्म जैन ही था।

आपके शासनमें सागर नामका दूसरा चक्रवर्ती हुवा वह अयोध्या नगरीका सुमित्रराजाके यशोमति राणीकि कुक्षीसे चौदहा स्वप्न सूचीन पुत्र हुवा जिसका नाम " सागर " था वह ४५० धनुष्यका शरीर ७२ लक्ष पूर्वका आयुष्य शेष छे खण्डादिका एक छत्रराज वगैरह भरत चक्रवर्तीकी माफिक जानना विशेष सागरके साटहजार पुत्रोंसे जन्हुकुमार अपने भाईयोंके साथ एक समय अष्टापद तीर्थपर भरतके बनाये हुवे जिनालयोंकी यात्रा करी विशेषमें उनका संरक्षण करनेके लिये चौतरफ खाइ खोद गंगानदीकी एक नहर लाके उस खाईमें पाणि भर दीया और जन्हुकुमारका पुत्र भागीरथने उस अधिक पाणीको फीरसे समुद्रमें पहुँचा दीया जबसे गंगाका नाम जन्ही व भागीरथी चला पर उस पाणीसे नागकुमारके देवोको तकलीफ होनेसे उन सब कुमारोकों वहां ही भस्म कर दीया अस्तु ! सागर चक्रवर्ती अन्तमे दीक्षा ग्रहन कर कैवल्यज्ञान प्राप्तकर नाशमान शरीर छोडके आप अक्षय सुखरूपी मोक्षमन्दिरमें पधार गये ।

(३) श्री संभवनाथ तीर्थंकर—नवग्रैवेयकसे फागण शुद ८ को चव के सावत्थी नगरीका जितारीराजा कि सेनाराणि की कुक्षी में अवतीर्ण हुवे क्रमशः माहा शुद १४ को जन्म हुवा, ४०० धनुष्य का सुवर्ण कान्तिवाला शरीर अश्वचिह्न से भूषितथा पाणिग्रहन हुवा और राजपद भोगव के मृगशर शुद १५ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहन करी. बाद तपादि करते हुवे कार्तिक वद ५ को कैवल्यज्ञान प्राप्त किया चारू आदि २००००० मुनि व श्यामादि ३३६००० आर्यिकाएं, २९३००० श्रावक, ६३६००० श्राविका कि सम्प्रदाय हुई अन्त में चैत्र शुद ५ को सम्मेतशिखरपर ६० लक्षपूर्व का सर्व आयुष्य पूर्ण कर मोक्ष पधारे आप का शासन दशलक्ष क्रोड सागरोपम तक प्रवृत्तमान रहा।

(४) श्री अभिनंदन तीर्थंकर—जयंत वैमान से वैशाख शुद ४ को अयोध्या नगरी के संबरराजा–सिद्धार्थाराणि कि कुक्षी में अवतीर्ण हुवे. क्रमशः माहा शुद २ को भगवान् का जन्म हुवा ३५० धनुष्य का पितवर्ण बंदर के चिह्नवाला शरीरथा पाणिग्रहन–राज भोगव के महा शुद १२ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहन करी। पोष वद १४ को कैवल्यज्ञान प्राप्त हुवा. वज्रनाभादि ३००००० मुनि, अजितादि ६३०००० आर्यिकाएं, २८८००० श्रावक और ५२७००० श्राविकाओं कि सम्प्रदाय हुई. सर्व पचास लक्ष पूर्वायुष्य पूर्ण कर वैशाख शुद ८ को सम्मेतशिखरपर मोक्ष पधारे. आप का शासन नौलक्ष क्रोड सागरोपम तक प्रवृत्तमान रहा।

(५) श्री सुमतिनाथ तीर्थंकर—जयंत वैमान से श्रावण शुद २ को अयोध्या नगरी के मेघरथराजाकी मंगलाराणिकी कुक्षी में अवतीर्ण हुवे. क्रमशः वैशाख शुद ८ को जन्म हुवा. ३०० धनुष्य सोवनवर्ण शरीर क्रौंचपक्षी का चिह्न—पाणिग्रहन-राजपद भोगव के वैशाख शुद ९ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा—चैत्र वद ११ को कैवल्यज्ञानोत्पन्न हुवा. चरमादि ३२०००० मुनि, काश्यपा आदि ५३०००० साध्वीयों, २८१००० श्रावक, ५१६००० श्राविकाओ की सम्प्रदाय हुई. चालीशलक्ष पूर्व का सर्वायुष्य पूर्ण कर चैत्र शुद ९ को सम्मेतशिखरपर मोक्ष सिधाये. ९० हजार क्रोड सागरोपम आप का शासन प्रवर्त्तमान रहा।

(६) श्री पद्मप्रभु तीर्थंकर—नवग्रैवेयक वैमान से माघ वद ६ को कौसंबी नगरी का श्रीधरराजा—सुषमाराणि कि कुक्षी में अवतार लिया. कार्तिक वद १२ को जन्म, २५० धनुष्य रक्तवर्ण पद्मकमल का चिह्नवाला सुन्दर शरीर, पाणिग्रहन—राज भोगव के कार्तिक वद १३ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा, वैशाख शुद १५ को कैवल्यज्ञान, प्रद्योतनादि ३३०००० मुनि, रति आदि ४२०००० साध्वियों, २७६००० श्रावक, ५०५००० श्राविकाओं कि सम्प्रदाय हुई. सर्व तीसलक्ष पूर्वायुष्य पूर्ण कर मृगशर वद ११ को सम्मेतशिखरपर मोक्ष पधारे. आप का शासन ९ हजार क्रोड सागरोपम तक वर्त्तता रहा।

(७) श्री सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर—मध्य ग्रवैग वैमान से भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को बनारसी नगरी प्रतिष्ठितराजा—पृथ्वीराणि

कि कुक्षी में अवतीर्ण हुवे. जेष्ट शुद १२ को जन्म, २०० धनुष्य सुवर्ण-सात्थिया का लञ्छनवाला शरीर, पाणिग्रहन राज भोगव के जेष्ट शुद १३ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा-फागण वद ६ को कैवल्यज्ञान हुवा. विक्रमादि ३००००० मुनि, शीमादि ४३०००० साध्वियों, २५७००० श्रावक, ४९३००० श्राविकाओं कि सम्प्रदाय हुई. वीसलक्ष पूर्व का सर्वायुष्य पूर्ण कर फागण वद ७ को सम्मेतशिखरपर मोक्ष सिधाये. आप का शासन नौसो क्रोड सागरोपम तक चलता रहा।

(८) श्री चंदाप्रभ तीर्थंकर—विजयंत वैमान से चैत्र वद ५ को चंद्रपुरी नगरी महासेनराजा लक्ष्मणाराणि कि रत्नकुक्षी में अवतार धारण कीया. पौष वद १२ को जन्म हुवा. १५० धनुष्य श्वेतवर्ण चंद्र लञ्छनवाला शरीर, पाणिग्रहन-राज भोगव के पोष वद १३ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ली. फागण वद ७ को कैवल्यज्ञान हुवा. दीनादि २५०००० मुनि, सुमनादि ३८०००० साध्वियों, २५०००० श्रावक, ४७९००० श्राविकाओं कि सम्प्रदाय हुई. दशलक्ष पूर्व का सर्वायुष्य पूर्ण कर भाद्रवा वद ७ को सम्मेतशिखरपर मोक्ष पधारे. ९० क्रोड सागरोपम तक शासन चला. यहां तक तो इस भरतक्षेत्र में प्राय: सर्वत्र जैनधर्म्म एक राष्ट्रीय धर्म्म ही था।

(९) श्री सुविधिनाथ तीर्थंकर—आणत वैमान से फागण वद ९ को काकंदी नगरी सुग्रीवराजा-रामाराणि कि कुक्षी में अवतीर्ण हुवे. मृगशर वद ५ को जन्म, १०० धनुष्य श्वेतवर्ण

मगर का लञ्छनवाला शरीर—पाणिग्रहन राजपद भोगव के एक हजार पुरुषों के साथ मृगशर वद ६ को दीक्षा, कार्तिक शुद ३ को कैवल्यज्ञान. वरहादि २००००० मुनि, वारूणी आदि २२०००० साध्वियों, २२९००० श्रावक, ४७१००० श्राविकाओं कि सम्प्रदाय हुई. दोलक्ष पूर्व सर्वायुष्य पूर्ण कर भाद्र. शु० ९ को सम्मेतशिखरपर मोक्ष पधारे. नौक्रोड सागरोपम शासन प्रवृत्तमान रहा*

* इस समय हुन्डावसर्पिणी काल का महाभयंकार असर आप का शासनपर इस कदर का हुवा कि स्वल्पकाल से ही शासन का उच्छेद हो गया अर्थात् सुविधिनाथ भगवान मोक्ष पधारने के बाद थोडे ही काल में मुनि, आर्याए व श्रावक–श्राविका रूप चतुर्विध संघ व सत्यागम और उनकि उद्घोषना करनेवाले लोप हो गये।

जैन ब्राह्मणों कि मान्यता जैसे राजा–महाराजा करते थे वैसे ही प्रजा भी करती थी, पर उस समय उनमें पूजा सत्कार का गुण था. इस समय शासन उच्छेद होने से उन ब्राह्मणों में स्वार्थवृत्ति से जो भगवान् आदीश्वर के उपदेश से भरतचक्रवर्तीने चार आर्यवेद जनता का कल्यान के लिये वनाये थे उनमें इतना तो परिवर्तन कर दिया कि जहां निःस्वार्थपने जनता का कल्यान का रहस्ता था वह स्वार्थवृत्ति से दुनियों को लुंटने के लिये हुवा और नये नये ग्रन्थादि बना लिया. कारण उस जमाना कि जनता ब्राह्मणों के हि आधिन हो चूकी थी, सब धर्म का ठेका ही ब्राह्मणभासोंने ले रखा था; तब तो उन्होंने गौदान, कन्यादान, भूमिदान आदि का विधि–विधान बना के स्वर्ग कि सडक को साफ कर दी; इतना ही नहीं किन्तु एसे ही ग्रन्थ बना दीया कि जो कुच्छ ब्राह्मणों को दीया जाता है वह स्वर्ग में उनके पूर्वजों को मीलजाता हैं. ब्राह्मण हैं सो ही ब्रह्मा है इत्यादि.

क्रमशः धर्म्मनाथ भगवान् का शासन तक जैनधर्म्म स्वल्पकाल उदय और विशेषकाल अस्त होता रहा. इस सात जिनान्तर में उन ब्राह्मणभासों का इतना तो जोर बढ गया कि इनके आगे कीसी की चल ही नहीं सक्ति थी. ब्राह्मणों को इतना से ही संतोष नहीं हुवा था पर उन आर्यवेदो का नाम तक बदल के उनके स्थानपर

(१०) श्री शितलनाथ तीर्थंकर—अच्युत देवलोकसे वैशाख वद ६ को भद्दीलपुरनगर के राजा द्रढरथ की नंदा राणि की कुत्तीमें अवतीर्ण हुवे क्रमशः माघ वद १२ को भगवान का जन्म हुवा। ९० धनुष्य, सुवर्णकान्ति श्रीवत्सचिन्ह विभूषित शरीर, पाणिग्रहन व राजपद भोगव के माघ वद १२ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहन कर तप करतें को पौष वद १४ को कैवल्यज्ञान हुवा। नंदादि १००००० मुनि सुयशादि १००००६ साध्वियों २८९००० श्रावक ४५८००० श्राविकाओं की सम्प्रदाय हुई। सर्व एक लक्ष पूर्व सर्वायुष्य पूर्ण कर वैशाख वद २ को

ऋगवेद, युजुर्वेद, शामवेद, अथर्ववेद नाम रख दीया. इन वेदो में भी समय समय परिवर्तन होता गया था, जिस कीसी की मान्यता हुइ वह भी इनमें श्रुतियों मीलाते गये. अन्तमें यह छाप ठोक दि कि वेद ईश्वरकृत है और इन वेदों को न माने वह नास्तिक हैं. वेदो में विशेष श्रुतियों हिंसामय यज्ञों के लिये हि रचि गइ है. जिस्में भी याज्ञवल्क्य सुलसा और पिप्पलादने तो नरमेघ, मातृमेघ, पितृमेघ, गजमेघ, अश्वमेघ तक का विधि–विधान ठोक मारा और एसा यज्ञ किया भी था. वेदो में "**याज्ञवल्केतिहोवाच**" यानि याज्ञवल्क्य एसा कहता है और उपनिषदों में कहां कहां पिप्पलाद का भी नाम आता है.

आगे मुनिसुव्रतनाथ के शासनान्तर में वसुराजा और परवतने महाकाल व्यन्तर देव कि सहायता से यज्ञकर्म को यहां तक बढाया था कि जिसको लिखना ही लेखनि के बाहर है. आज अच्छे अच्छे इतिहासज्ञ ईसका निर्णय कर चूके है कि भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध के पहिले भारतवर्षमें यज्ञों कि हिंसा–रूदर से नदियो चलती थी. इन दोनों महात्माओंने ही अपनि बुलंद अवाज से जनता को जागृत कर हिंसा कर्म को दूर कर शान्ति स्थापन करी थी. उपर बताये याज्ञवल्क्य और वसु–पर्वत का सम्बन्ध त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र में सविस्तर है।

सम्मेदसिखर पर निर्वाण हुवे। एक सागरोपम के अन्तरमें. आप का भी शासन विछेद हुवा था. इनोके शासनान्तरमें एक युगल मनुष्यसे हरिवंस कुलकि उत्पत्ती देखो दश आश्चर्य।

(११) श्री श्रेयांसनाथ तीर्थंकर—अच्युत देवलोकसे जेष्ट वद ६ को सिंहपुरीनगरी के विष्णुराजा-विष्णाराणी की कुक्षिमें अवतार लीया। क्रमशः फागण वद १२ को जन्म, ८० धनुष्य सुवर्णसदृश, गैंडा का चिन्हवाला सुन्दर शरीर, पाणिग्रहन कर राजपद भोगव के फागण वद १३ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ले तप कर माघ वद १३ को कैवल्यज्ञान हुवा। कच्छपादि ८४००० साधु धाराणि आदि १०३००० साध्वियों २७९००० श्रावक ४४८००० श्राविकाए की सम्प्रदाय हुई। ८४००० पूर्व वर्ष का सर्वायुष्य भोगव के श्रावण वद ३ को सम्मेदसिखर पर निर्वाण हुवे। चौपन सागरोपमका अन्तर. (आप का शासन भी विच्छेद हुवा था.)

आप के शासनमें त्रिपृष्ट नामका पहला वासुदेव, अचल बलदेव, और अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव हुवे थे जिस का संबन्ध — पोतनपुर नगर का राजा जयशत्रु था उनकी मृगावती नाम की पुत्री अत्यन्त सरूपवान् होनेसे राजाने अपनी पुत्री के साथ ग्रहवास कर लिया जिससे दुनियोंने जयशत्रु का नाम प्रजापति रख दीया उस मृगावती के त्रिपृष्ट नाम का वासुदेव हुवा और उसी राजा की भद्राराणीसे अचल बलदेव हुवा। हिन्दू शास्त्रोंमें जो ब्रह्माने अपनी पुत्रीसे गमन करनेका लिखा है स्यात् उसी कथा का अनु-

करण किया हो पर जिस को ईश्वर परमेश्वर सर्वज्ञ ब्रह्मा कहते है उस पर एसा कलंक पुराणोंवालोंने क्या समज के लगाया होगा ?

(१२) श्री वासुपूज्य तीर्थंकर—प्राणान्त देवलोकसे जेष्ट शुद ९ को चम्पापुरी नगर वसुपूज्य राजा–जया राणी के कुक्षीमें अवतीर्ण हुवे । क्रमशः फागण वद १४ को जन्म हुवा ७० धनुष्य रक्तवर्ण पाडा का चिन्हवाला शरीर, पाणिग्रहन करने के बाद फागण शुद १५ को छसौ पुरुषों के साथ दीक्षा ली तप करते हुवे को माघ शुद २ को कैवल्यज्ञान हुवा सुभूमादि ७२००० मुनि धारणि आदि १००००० साध्वियों २१५००० श्रावक ४३६००० श्राविकाए, बहुत्तर लक्ष वर्ष का सर्वायुष्य पूर्ण कर आषाढ शुद १४ को चम्पानगरीमें आपका निर्वाण हुवा तीस सागरोपम शासन जिस्में कुच्छ काल धर्म विच्छेद भी हुवा । आप के शासनमें द्विपृष्ट नामका वासुदेव विजयबलदेव और तारक नामका प्रतिवासुदेव हुवा. (देखो अन्त का यंत्र.)

(१३) श्री विमलनाथ तीर्थंकर—सहस्रा देवलोकसे वैशाख शुद २ को कंपिलपुर कृतवर्मा राजा की श्यामा राणी की कुक्षीमें अवतीर्ण हुवे क्रमशः माघ शुद ३ को जन्म हुवा ६० धनुष्य सुवर्णसदृश वराह का चिन्हवाला उत्तम शरीर था पाणिग्रहन, राज भोगव के माघ शुद ४ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा तपादिसे पौष शुद ६ को कैवल्यज्ञान हुवा मन्दिरादि ६८००० मुनि, धरादि १००८०० आर्यिकाए २०८००० श्रावक ४२४०००

श्राविकाए की सम्प्रदाय हुई साठ लक्ष वर्ष का सर्वायुष्य पूर्ण कर आषाढ वद ७ को सम्मेदसिखर पर आप का निर्वाण हुवा, नौ सागरोपम शासनमें कुच्छ समयतक धर्म विच्छेद भी हुवा।

आप का शासनमें तीसरा स्वयंभू वासुदेव, भद्रबलदेव, मेरक प्रतिवासुदेव हुवा. (देखो अन्त का यंत्र.)

(१४) श्री अनंतनाथ तीर्थंकर—प्राणत देवलोकसे श्रावण वद ७ को अयोध्यानगरी सिंहसेन राजा–सुयशा राणी की कुक्षीमें अवतार लीया क्रमशः वैशाख वद १३ को जन्म हुवा ५० धनुष्य पितवर्ण, सिंचाणा का चिन्ह पाणिग्रहन–राज भोगव के वैशाख वद १४ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा तपश्चर्यादि कर वैशाख वद १४ को कैवल्यज्ञान प्राप्त किया यशःस्वी आदि ६६००० मुनि पद्मादि ८२००० आर्यीकाए २०६००० श्रावक ४१४००० श्राविकाओं कि सम्प्रदाई तीस लक्ष वर्षका सर्वायुष्य पूर्ण कर चैत्र शुद ५ को सम्मेदसिखर पर निर्वाण हुवा चार सागरोपम शासन पर कुच्छकाल विचमें विच्छेद भी हो गया था.

आपका शासन में पुरुषोतम नामका चोथा वासुदेव सुप्रभबलदेव मधु प्रतिवासुदेव हुवा (देखो आगे यंत्रसे)

(१५) श्रीधर्मनाथ तीर्थंकर—विजय वैमान से वैशाख शुदी ७ को रत्नपुरीनगरी–भानूराजा–सुव्रताराणि कि रत्नकुक्षीमें अवतीर्ण हुवे. क्रमशः माघ शुदी ३ को जन्म ४५ धनुष्य पीतवर्ण वज्रलंच्छनवाला सुन्दर शरीर–पाणिग्रहन,–राज भोगवके

माघ शु० ३ को हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ली. तपादि कर पौष शु० १५ को कैवल्य ज्ञान हुवा अरिष्टादि ६४००० मुनि आर्यशिवादि ६२४०० आर्यिकाए २०४००० श्रावक ४१३००० श्राविकाओ हुइ दश लक्ष वर्ष सर्वायुष्य पूर्ण कर सम्मेदसिखरपर जेष्ट शु० ५ को निर्वाण हुवे तीन सागरोपम का शासन जिसमें कुन्छ काल विच्छेद भी हुवा.

आपका शासन में पुरुषसिंह नाम पंचवा वासुदेव सुदर्शन बलदेव निष्कुंभ नाम का प्रति वासुदेव (देखो यंत्र से) यहां तक पांचो वासुदेवादि सब राजा अरिहंतोपासक जैनधर्मि हुवे है.

आपका शासनान्तर में मघवा और सनत्कुमार नामका चक्रवर्ती जैन राजा हुवे जिस्का अधिकार भरत कि माफिक शेष यंत्र मे देखो—

नौवा भगवान से यहां तक विचविचमे शासन विच्छेद होने से पाखंडि ब्राह्मणभासों का इतना जौर शौर वढ गया था और आर्यवेदों को नष्ट भ्रष्ट कर ऋग् युजुर् साम और अर्थवण नाम के नये वेद बना के अनेक स्वार्थपोषक श्रुतियो बनादीथी—

(१६) श्रीशान्तिनाथ तर्थिकर—सर्वार्थसिद्ध वैमान से भाद्रपद वद ७ को हस्तिनापुर का विश्वसेन राजा अचिरा राणि की रत्नकुक्षमें अवतार लिया क्रमशः जेष्ट वद १३ को जन्म हुवा ४० धनुष्य सुवर्णकान्ति मृगचिन्हवाला शरीर—पाणिग्रहन—राजपद और चक्रवर्तीपना भोगव के जेष्ट वद १४ को एक हजार पुरुषो के

सांथ दीक्षा ग्रहन कर आत्मचिंतवन करते हुवे की पोष शुदी ९ को कैवल्यज्ञान हुवा चक्रयुद्धादि ६२००० मुनि, सूचि आदि ६१६०० आर्यिकाए १९०००० श्रावक ३९३००० श्राविकाओ कि सम्प्रदाय हुई एक लक्ष वर्ष का सर्वायुष्यपूर्ण कर जेष्ट वद १३ को सम्मेतसिखरपर निर्वाण हुवा आपका शासन आधा पल्योपम अविच्छन्नपणे चलता रहा आपके समय मिथ्यात्वी पाखण्डि लोगों का जोर बहुत कम हो गया था. (आप छे पद्वीधारक थे) *

(१७) श्रीकुंथुनाथ तीर्थंकर—सर्वार्थसिद्ध वैमान से श्रावण वद ९ को हस्तीनापुर शूरराजा श्रीराणि कि कुक्षमे अवतीर्ण हुवे क्रमशः वैशाख वद १४ को जन्म हुवा ३५ धनुष्य पीत वर्ण—बकारा का चिन्हवाला सुन्दर शरीर—पाणिग्रहन—राजपद चक्र वर्ती राजभोगव के चैत वद ५ को एक हजार पुरुषोंके साथ दीक्षा ग्रहन करी तपादि भावनाओंसे चैत शुद ३ को कैवल्यज्ञान हुवा संबादि ६०००० मुनि दामनि आदि ६०६०० आर्यिकाए १७९००० श्रावक ३८१००० श्राविकाए कि सम्प्रदाय हूइ ९५००० वर्षका सर्वायुष्य भोगवके वैशाख वद १ को सम्मेद शीखरपर आपका निर्वाण हुवा पल्योपम के चोथे भाग अविच्छिन्नपणे शासन प्रवृत्तमान रहा. (आप छे पद्वीधारक थे)

(१८) श्री अरनाथ तीर्थंकर—सर्वार्थसिद्ध वैमानसे फागण शुद २ को हस्तिनापुरके सुदर्शनराजा श्री देविराणिकि कुक्षमे अवतार लिया क्रमशः मृगशर शुद १० को जन्म ३० धनुष्य सुवर्ण

* सम्यग्दृष्टि. मंडलीक. चक्रवर्ति, मुनि, कैवली० तीर्थंकर. एवं ६ पद्वी ।

कान्ति—नंदावृत लंच्छन भूषीत शरीर पाणिग्रहन—राजपद व चक्रवर्ती राजा हो फीर मृगशर शुद ११ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा धारण करी. कार्तीक शुद १२ को कैवल्यज्ञान. कुंभादि ५०००० मुनि रक्षितादि ६०००० आर्यिकाए १८४००० श्रावक ३७२००० श्राविकाए हुई ८४००० वर्षका सर्वायुष्य पूर्णकर सम्मेद सिखरपर मृगशर शुद १० को निर्वाण हुवा एक हजार क्रोड वर्ष तक शासन चलता रहा । (आप छै पट्टीधारक थे)

आपके शासनान्तरमें पुरिषपुंडरिक नामका छठावासुदेव आनंदवलदेव बली नामका प्रति वासुदेव हुवा (देखो यंत्रसे)

आपके शासनान्तरमें आठवा सुभूम नामक चक्रवर्ती राजा हुवा इसकि कथा जैन शास्त्रकारोने बहुत विस्तारसे लिखी है*

* वसंत ुर नगरमें एक नाबालक ल डका था वह किसी सथवाहा के साथ देशान्तर जाता हुवा रस्तेमे एक तापस के आश्रम मे टेर गया वह बडा भारी तप करा वास्ते लोकोने यमदग्नि नाम रखा दीया उस समय एक विश्वानर नामका जैनदेव दूसरा धनंतरी तापस-भक्त देव इन दोनो के आपुसमे धर्म्म संबंधि बिवाद हुवा अपना २ धर्म को अच्छा बताते हुवे परीक्षा करने को मृत्यु लोकमें आये उस समय मिथला नगरीका पद्मरथ राजा भाव यति बन चम्पानगरीमे विराजमान जैनमुनि के पास दीक्षा लेनेको जा रहा था दोनो देवोंने उसे अनुकुल प्रतिकुल बहुत उपसर्ग किया पर वह तनकभी नहीं चला बाद दोनों देवता यमदग्नितापस जो ध्यान लगा के तपस्या करता था उसकि दाढी मे चीडा चीडीका रूप बना कर बेठके चीडा कहने लगा कि मैं हेमाचलपर जाउंगा—चीडी बोली तुम वहां जाके कीसी दुसरी चीडीसे यारि कर लोगे ? चीडाने कहा नहीं करूगा अगर में एसा करुं तो मुझे गौ हत्याका पाप लगे। चीडीने कहा एसे में नही मानु एसे कहो कि में कीसी दूसरी चीडीसे यारि करु तो इस यमदग्नि का मुझे पाप लगे यह सुनते ही तापस को खुब गुस्सा आया और पुच्छा कि क्या मेरा पाप गौहत्यासे भी ज्यादा

सुभूम चक्रवर्ती के बाद इसी अन्तर में दतनामा सातवा वासुदेव नंदनामा बलदेव प्रल्हाद नामका प्रति वासुदेव हुवा—

है चीडीने कहा कि तुमको मालुम नहीं हैं कि शास्त्र कहता है " अपुत्रस्य गतिर्नास्ति " यह सुनके तापस को पुत्रकि पीपासा लगी. तब एक नेमिक नगरी मे गया वहाका जयशत्रु राजाने आदर दीया बाबाजीने राजाके १०० पुत्रियोंमें एक पुत्रि की याचना करी. राजाने कहा जो आपको चाह उसको आप ले लिजिये। तापसने सबको आमन्त्रण कीया पर एसी भाग्यहिन कोन के उस तापस को वर करे. एक छोटी लडकी रेतमे खेलतीथी उसे ललचा के तापस अपने आश्रममे ले आया युवाहोनेपर उसके साथ लग्न कीया. रेणुका ऋतु धर्म हुइ तब तापस चरु (पुत्रविद्या) साधन करने लगा रेणुकाने कहा कि मेरी बेहन हस्तनापुरका अनंतवीर्य को परणी है उसके लिये भी एक चरू साधन करना. तापसने एक ब्राह्मण दूसरा क्षत्रिय होनेकि विद्या साधन करी रेणुकाने क्षत्रिवाला और बेहन को ब्राह्मणवाला चरू खीलानेसे दोनों के पुत्र हुवा रेणुका के पुत्रका नाम राम, बेहन के पुत्रका नाम कृत वीर्य–रामने एक बेमार विद्याधर कि सेवा करी जिससे संतुष्ट हो उसने परशुविद्या प्रदान करी. तबसे रामका नाम परशुराम हुवा । एकदा अनंतवीर्य राजा अपनी साली रेणुका को अपने वहां लाय परिचय विशेष होनेसे रेणुकासे भोगविलास करते हुवे को एक पुत्रभी हो गया बाद यमदग्नि स्त्रि मोहमें अन्ध हो सपुत्र रेणुका को अपने आश्रममे लाये परन्तु परशुराम उसका व्यभिचार जान माता और भाईका सिर काट दीया बाद अनंतवीर्य यह बात सुनी तत्काल फौज ले आया तापसोंका आश्रम भस्म कर दीया यह परशुराम को ज्ञात हुवा तब परशू लेके हस्तनापुर जाके राजाको मारडाला. कृतवीर्य क्रोधित हो यमदग्निको मारा तब परशुराम कृतवीर्य को मारडाला व कृतवीर्य कि तारा राणी सगर्भा वहांसे भाग के तापसो के सरणे गई परशुराम हस्तनापुरका राजा बनगया—ताराराणी भूमिग्रहमें छीपके रही थी वहां चौदह स्वप्नसूचक पुत्र जन्मा जीसका नाम सुभूम रखा गया. परशुरामने सातवार निःक्षत्रियपृथ्वी कर दी उन क्षत्रियोंकि दाढीसे एक स्थल भरा. परशूराम कीसी निमित्तिये को पुच्छा कि मेरा मरणा कीसके हाथसे होगा तब उसने कहाकि जिस्के देखते ही दाढीका थाल खीर बनजावेगा उस खीरको खानेवाला निश्चय तुमको मारेगा. परशूरामने एक दानशाला खोली और दाढीवाला थाल वहां सिंहासन-

(१९) श्रीमल्लिनाथ तीर्थंकर—जयंत नामका वैमान से फागण सुद ४ को मिथिलानगरी—कुम्भराजा—प्रभावती राणि की कुक्षीमें अवतीर्ण हुवे क्रमशः मागशर शुदी ११ को जन्म, २५ धनुष्य—निलवर्ण—कलस चिन्हवाला शरीर—कुमारावस्थामें मृगशर शुद ११ को ३०० पुरुष ३०० स्त्रियों के साथ दीक्षा ग्रहन करी मृगशर शुदी ११ को कैवल्यज्ञान हुवा अभिक्षादि ४०००० मुनि, बिंदुमति आदि ५५००० आर्यिकाए १८३००० श्रावक ३७०००० श्राविकाए कि सम्प्रदाय हुई ५५००० वर्षका सर्वायुष्य पूर्ण कर फागण शुद १२ को सम्मेदसिखर पर निर्वाण पधारे आपका शासन ५४०००० वर्ष तक अविच्छीन्नपणे प्रचलित रहा।

(२०) श्रीमुनिसुव्रत तीर्थंकर—अप्राजीत वैमानसे श्रावण शुद १५ को राजग्रह नगर सुमित्रराजा पद्मावती राणी कि कुक्षीमें अवतार लीया क्रमशः जेष्ट वद ८ को जन्म हुवा २० ध-

---

पर रखदीया इधर एक मेघ नामका विद्याधर निमित्तियाके कहनेसे अपनि पद्मश्री नामकि पुत्री सुभूम को परणादीथी बाद माताको कहनेसे सुभूम पीछली सब बात और परशुरामका अत्याचार जान वहांसे हस्तनापुरमे गया दाढी कि खीर देखतेही बन गई उसको सुभूम खा गया उसी थालका चक्र बना परशुरामका सिर काट आप एक नगर का ही नहीं पर सार्वभौम्य राजकर चक्रवर्ती हुवा.

पुराणवालोने लिखा है कि परशुराम परशु ले क्षत्रियोंको कादता हुवा रामचन्द्रजीके पास आया तब रामचन्द्रजीने परशुरामकी पग चंपी कर उसका तेज हर लिया तब परशु निचा पड गया फीर उठा नहीं सके। कैसी अज्ञानता है कि एक अवतार दूसरा अवतारको मारनेको आवे फीर भी तुरा यह कि एक अवतार दुसरा का तेजको भी हरण कर लिया क्या बात हैं सत्य तो यह है कि वह रामचंद्रजी नहीं पर सुभूम चक्रवर्ती ही था. इति अष्टमा चक्री—

नुष्य श्यामवर्ण कच्छप लंच्छन कर शोभित शरीर पाणिग्रहन कीया और राज भोगव के फागण शुद १२ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा धारण करी अध्यात्माध्यान करते हुवे को फागण वद १२ को कैवल्यज्ञान हुवा मल्लादि ३०००० मुनि पुष्पमति आदि ५०००० आर्यिकाए १७२००० श्रावक ३५०००० श्राविकाओ कि सम्प्रदाय हुइ ३०००० वर्ष का सर्वायुष्य भोगव के जेष्ट वद ९ को सम्मेतसिखर पर निर्वाण हुवा ६००००० वर्ष आपका शासन चलता रहा इति*

---

* आपके शासनमें महापद्म नामका नौवा चक्रवर्ती हुवा जिसके संबन्ध—हस्तनापुर नगरमें पद्मोतर राजाकि ज्वलादेवी राणिके विष्णुकुमार और महापद्म नामके दो पुत्र हुवा इस समय अवंती नगरी के श्री धर्म नामका राजा का नमूची जिस्का दुसरा नाम बल था जातिका वह ब्राह्मण था उस समय मुनिसुव्रत भगवान् के शिष्य सुव्रताचार्य वहां पधारे नमुचिबलने उनके साथ शास्त्रार्थ कर पराजय हुवा तब रात्रिमे तलवार ले आचार्य को मारने को चला आचार्य के अतिशयसे वह रस्तामें स्थंभित हो गया शुभे उसकी बहुत निंदा हुइ तब वहां से मुक्त हो हस्तनापुरमें जा कर युगराजा महापद्म कि सेवा करने लगा एक समय महापद्म किसि कार्य से संतुष्ट हो " यथेच्छा " वर दे दीया था कालान्तर पद्मोतर राजा और विष्णुकुमार तो सुव्रताचार्य के पास दीक्षा ग्रहन करली और महापद्म राजा हो क्रमशः छे खण्डाधिपति चक्रवर्ती राजा हो गया बाद सुव्रताचार्य फीरसे हस्तनापुर आये नमुचि-बलने सोचा कि इस समय इस आचार्य से वैर लेना चाहिये तब महापद्म से अर्ज करी कि वेदो मे कहा माफीक मेरे एक महा यज्ञ करना है वास्ते मुझे पूर्व दीया हुवा वर—वचन मिलना चाहिये राजाने कहा मांगो तब नमुचिने यज्ञ हो वहां तक सर्व राज मांगा वचन के बंधा राजाने नमुचि को राज दे आप अन्तेवर घर में चला गया बाद नमुचिने नगरके बहार एक मण्डप तैयार करवायके आप राजा बन गया एक जैन साधुओ के सिवा सब लोक भेट ले के नमुचिके पास

इस भगवान् के शासनान्तर मे अयोध्यानगरी का दशरथ राजा कौशल्या राणि से रामचन्द्र (पद्म) नामका बलदेव और

आये नमस्कारादि कीया नमुचिने पुच्छा कि सब लोगों कि भेट आ गइ व कोइ रहा भी है ब्राह्मणोने कहा एक जैनाचार्य नहीं आये है.

इस पर ममुचिने गुस्से हो कहला भेजा कि जैनाचार्य तुमको यहां आना चाहिये आचार्यने कहलाया कि संसारसे विरक्त को एसे कार्यो से प्रयोजन नहीं है इसपर नमूचि क्रोधित हो हुक्म दीया हमारा राजसे सातदिनोमें शीघ्र चले जावो नहीं तो कतल करवा दि जायेगा यह सुन आचार्य को बडी चिंता हुइ की चक्रवर्ती का राज छे खगड में है तो इनके बाहार कैसे जा सके आचार्य श्री सब साधुओंको पुच्छा कि तुमारे अन्दर कोई शक्तिशाली है कि ! इस धर्म निंदक को योग्य सजादे इसपर मुनियोने अर्ज करी एसा मुनि विष्णुकुमार है पर वह सुमेरुगिरिपर तप कर रह है आचार्यश्रीने कहा कि जावो कोइ मुनि उसको यह समाचार कहो ? एक मुनिने कहा कि वहां जाने कि सक्ति तो मेरे मे है पर पीच्छा आनेकी नहीं सूरिजीने कहा तुम जावो विष्णुकुमार को सब हाल कहके यहां ले आवो वह तुमको भी ले आवेगा इस माफीक मुनि गुरु पास आया बाद विष्णुमुनि राजसभामें गया नमूचि के सिवाय सबने उठके वन्दन करी बाद धर्मदेशना दी और नमूचि से कहा हे विप्र ! क्षणक राजके लिये तुं अनिति क्यों करता है चक्रवर्तीका राज छे खगडमें है तो वह साधु सात दिनमें कहां जा सके इत्यादि नमूचिने कहा कि तुम राजा का बडा भाई हैं वास्ते तुमको तीन कदम जगहा देता हुं बाकी कोइ मुनि मेरे राज्यमें रहेगा उसे में तत्काल ही मरा दुंगा। इसपर विष्णु मुनिने सोचा कि यह मधुर वचनोसे माननेवाला नही है तब वैक्रयलब्धि से लक्ष योजनका शरीर बनाके एक पग भरतक्षेत्र दूसरा समुद्र और तीसरा पग नमूचि -बलके सिर पर रखा कि उसको पतालमें घूसा दीया वह मरके नरकमें गया और विष्णुमुनि अपने गुरुके पास जा आलोचना कर क्रमशः कर्म क्षय कर मोक्ष गया.

इसी कथा को तोडमोड ब्राह्मणोंने लिख मारा है कि विष्णु भगवान् वामनरूप धारण कर यज्ञ करता बलराजा कोछला पर यह नहीं सोचा क्या भगवान् भी छल करते थे पर जिस मतके भगवान् पुत्रीसे गमन और परस्त्रीओंसे लिला करे उसको छल कोनसी गिनती मे ह ।

सुमित्रा राणिसे लक्ष्मण नामका वासुदेव तथा रावण नामका प्रति-वासुदेव हुवा अन्य लोक रावण के दस मस्तक मानते है वह गलत है कारण रावण के पूर्वजोसे नौ माणकवाला हार था वह धारण करता था तब माणकके प्रभावसे नौ मुंह और एक असली एवं दश मस्तक दीखाइ देते थे.

रावण एक कटर जैनधर्मि राजा था ब्राह्मणोंके यज्ञको इसने केइवार ध्वंस कीया था वास्ते हि वह लोक रावण को राक्षस लिखकर कहते है कि राक्षसों यज्ञ विध्वंस कीया करते थे—रामचंद्र श्रीकृष्ण और भगवान् ऋषभदेव परम जैन थे उनको ब्राह्मणोंने अपने शास्त्रोंमे अवतार लिखा है वह कहांतक ठीक है इनके बारामें में आगे ठीक प्रमाणों से बतलाउंगा कि यह महापुरुष कटर जैन थे

आपके शासनान्तरमें महाराज हरिसेन नामका दशवा चक्रवर्ती राजा हुवा (देखो यंत्रसे)

(२१) श्रीनमिनाथ तीर्थंकर—आप प्राणान्त देवलोकसे आसोज शुदी १५ को मिथलानगरी विजयसेनराजा—विप्राराणिकी कुक्षीमे अवतीर्ण हुवे क्रमशः श्रावण वद ८ को जन्म हुवा १५ धनुष्य सुवर्णवर्ण कमलका लंच्छनवाला शरीर—पाणिग्रहन—राजपद भोगव, आसाढ वद ९ को एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहन करी—अध्यात्म ध्यानादि करते हुवे को मृगशर शुद ११ को कैवल्यज्ञान हुवा शुभदत्तादि २०००० मुनि अनिलादि ४५००० आर्यिकाए १७०००० श्रावक ३४८००० श्राविकाए हुई—सर्वायुष्य १०००० वर्षका पूर्णकर वैशाख वद १० को

श्रीसम्मेत सिखरपर निर्वाण हुवे ५०००० वर्ष तक आपका शासन प्रवृतमान रहा।

आपके शासनान्तरमें जयनामका चक्रवर्ती राजा हुवा (देखो यंत्रसे)

(२२) श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर—अप्राजीत वैमानसे कार्तिक वद १३ को शौरीपुरनगर समुद्रविजय राजा शिवादे राणि की कुक्षीमें अवतीर्ण हुवे क्रमशः श्रावण शु० ५ को जन्म हुवा दश धनुष्य—श्यामवर्ण—संखलंच्छनवाला शरीर—कुमारपनेमें श्रावण शुद ६ को एक हजार पुरुषोंके साथ दीक्षा ली. तपश्चर्यादि कर आसोज वद १५ को कैवल्य ज्ञान हुवा वरदत्तादि १८००० मुनि—यक्षदीनादि ४०००० आर्यिकाए १७६००० श्रावक ३३६००० श्राविकाएँ हुई एक हजार वर्षका सर्वायुष्य पूर्णकर आसाढ शु० ८ गिरनार पर्वतपर आपका मोक्ष हुवा ८३७५० वर्ष तक आपका शासन चलता रहा।

आपका शासनमें श्रीकृष्ण वासुदेव—बलभद्र बलदेव—जरासिंध नामका नौवा प्रतिवासुदेव हुवा जिनका सविस्तार वर्णन त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्रसे देखना.

आपका शासनान्तरमे बारहवा ब्रह्मदत्त नामका चक्रवर्ती हुवा (देखो यंत्रसे).

(२३) श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकर—प्राणान्त देवलोकसे चैत वद ४ को बनारसनगरी अश्वसेनराजा—वामाराणि कि रत्नकुक्षमें

अवतीर्ण हुवे क्रमशः पौष वद १० को जन्म हुवा नौहाथ--नील-वर्ण--सर्पलंच्छनवाला शरीर--पाणिग्रहण करने के बाद पौष वद ११ को ३०० पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहन करी. तपश्चर्यादि कर चैत वद ४ को कैवल्यज्ञान प्राप्त कीया. आर्यदीनादि १६००० मुनि, पुष्पचूलादि ३८००० श्रावक १६४००० श्राविकाए ३३९००० कि सम्प्रदाय हुई सर्व एक सौ वर्षका आयुष्य पूर्ण-कर सम्मेद सिखरपर निर्वाण हुवे बाद आपका शासन २५० वर्ष तक चलता रहा।

आप कुमारपद थे उस समय एक कमठ नामका तापस आया था. उसकि दुष्कर तपस्या देख नगर के लोग दर्शनार्थ गये पार्श्वकुमार भी गया जो तापस के पास काष्ट जलता था उसके अन्दर एक सर्प था भगवान् ने अवधिज्ञानसे देख उसको काष्टसे निकालके न. सि. आ. उ. सा. मंत्र सुनाया जिसे वह मरके धरणेन्द्र हुवा और तापसका बडा भारी उपहास हुवा--

आपका निर्वाण होनेके स्वल्प ही समय में भारत वर्षका हाल इस कदर हो गया था कि भारतीय समाज के अन्तर्गत एक भयंकर विशृँखला उत्पन्न हो रही थी ब्राह्मण लोक अपने ब्राह्म-णत्व को भुल गये थे स्वार्थ के वशीभूत होकर वह अपनि सत्र सत्ताओंका दुरुपयोग करने लग गये थे क्षत्रिय लोग भी ब्राह्मणों के हाथ कि कटपुतली बन अपने कर्त्तव्यसे चुत हो गये थे समाजका व राजका प्रबन्ध अत्याचारों के हाथमे जा पडा था और सत्ता अहंकार कि गुलम हो गइ थी राजमुगट अधर्म के शिरपर

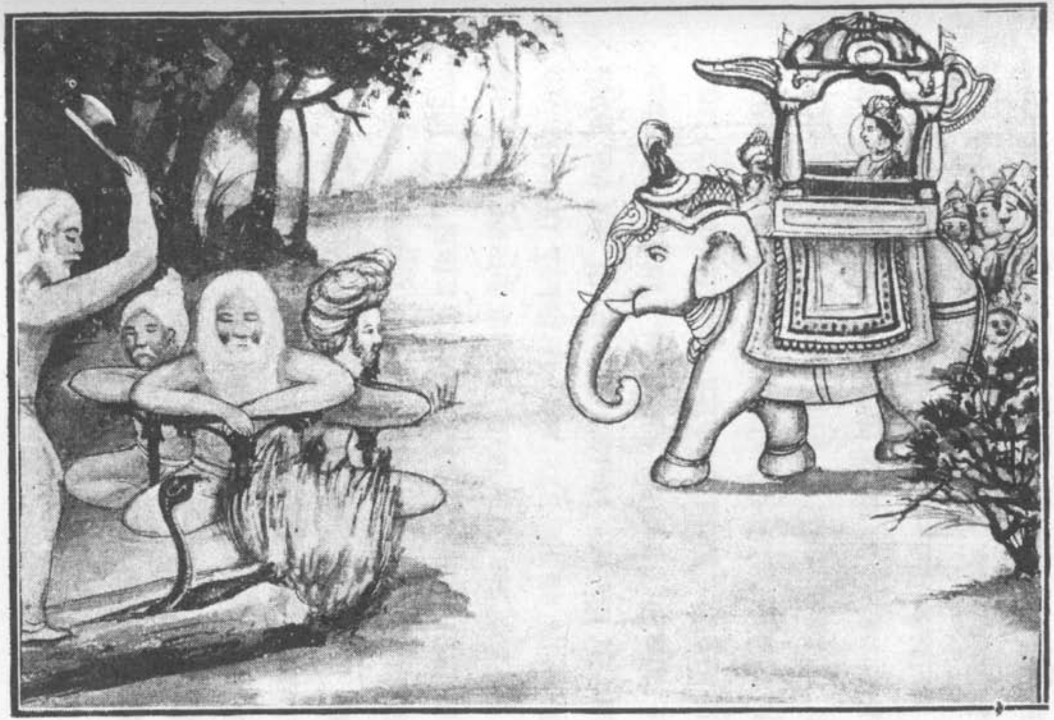

राज कर्मचारीयुक्त कमठके आश्रम स्थानपर पधार हुए प्रभु पार्श्वकुमारने दयारसपूरित शद्बोंसें कहा, कि हे कमठ यह अज्ञान हिंसामय तपस्या छोड; ज्ञानवश प्रभुने लकडेको धूनीसे निकलवायके, चिरवाया तो अर्धदग्ध सर्प बहार आया; सर्प भगवान भावित नवकार मंत्रका ध्यान लगाता हुआ स्वगको सिधार गया.

मंडित था. समाजमें त्राहि त्राहि मच गइ थी भारत वर्षके सामाजिक और धार्मिक विषय के लिये. इतिहाससे पता मिलता है कि यह काल बडा ही भीषण था. समाज के अन्तर्गत अत्याचार कि भट्ठी धघक रही थी धर्म्मपर स्वार्थ का राज्य था कर्त्तव्य सत्ताका गुल्म था धर्म्म कि विश्रृंखला हो इतने तो टुकडे टुकडे हो गये थे कि जिसकी भयंकरता जनताकी आबादीके बदले महान् हानी के रूप देखाई देने लग गइ थी पशुवध हिंसामय यज्ञकर्म्म तो भारत व्याप्त हो गया था, निरापराधि असंख्य पशुओंका रूधीर से नदिये चल रही थी इत्यादि हाहाकार मच रहा था बस कुदरत एक ऐसा महा पुरुषकी राह देख रही थी वह ही भगवान् महावीर था कि जिन्होंने अवतार धारण कर उक्त सब बुरी दशा को अपनि बुलंद अवाज द्वारा शान्तकर धार्म्मिक व सामाजिक सुधारा के साथ भारतवर्षमें शान्तिका साम्राज्य स्थापन कीया जिस भगवान् महावीर प्रभु का पवित्र चरित्र बुद्धि अगम्य है आज पूर्वीय पाश्चात्य इतिहासकारोंने भगवान् महावीर के विषयमें बडे बडे ग्रन्थ निर्माण कर मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करी है महावीर भगवान् के विषयमें प्रचलीत भाषामे भी अनेक पुस्तके छप चुकी है वास्ते यहां पर मैं मेरा उपदेश्यानुसार संक्षिप्त ही परिचय करवाना समुचित्त समझता हु.

अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ।

अनादिकाल से प्रवाहरुप संसार चल रहा है अनंते जीव अपने २ कर्मोनुसार भवभ्रमन करते है उन में महावीर भी एक थे उन्होंने किस भव में सम्यक्त्व प्राप्त कर किस किस साधनों से संसारी आत्मा से परमात्मा पद हांसिल किया ?

भगवान महावीर के पूर्वभव ।

(१) पश्चिमविदेह–जयन्ति राजधानी के अन्तर्गत पृथ्वीप्रतिष्ट ग्रामपति नयसारने रास्ता च्यूत मुनियों को भक्ति पूर्वक भोजन दे मार्ग बतलाया. बदले में मुनियोंने नयसार को धर्मोपदेशद्वारा धर्म्म (मोक्ष) का मार्ग समझाया. फलरूप में नयसार को बोधबीज (सम्यक्त्व रत्न) की प्राप्ति हुई अन्त में नमस्कार पूर्वक कालकर वहांसे

(२) सौधर्म देवलोक में देवता हुवा–वहां से चवके

(३) भरतचक्रवर्ति का पुत्र मरीचि हुवा जिस का परिचय भगवान् रूषभदेव के अधिकार में आप पढ चुके है । वहांसे

(४) ब्रह्मदेवलोक में देवतापने उत्पन्न हुवे । वहांसे

(५) कोल्लक सन्निवेश में त्रिदंडी का भवकर बहुत कर्मोपार्जन किया और संसार में परिभ्रमनभी किया वह भव इस गीनती के बाहार है ।

(६) स्थुणा नगरी में त्रिदंडीक भव किया । वहांसे

(७) सौधर्म देवलोक में देवता हुवा । वहांसे

(८) चैत्य सन्निवेश में अग्निद्योत त्रिदंडी हुवा ।

(९) ईशान देवलोक में देवपने उत्पन्न हुवा ।

(१०) मन्दिर सन्निवेश में अग्निभूति त्रिदंडी हुवा ।

(११) तीसरा देवलोक में देवतापने उत्पन्न हुवा ।

(१२) श्वेताम्बी का नगरी में भारद्वीज त्रिदंडी का भव ।

(१३) चोथा देवलोक में देवता हुवा । वहांसे

(१४) राजगृह नगर में स्थावर त्रिदंडी हुवा ।

(१५) ब्रह्म देवलोक में देवतापणे उत्पन्न हुवा ।

(१६) राजगृह नगर के राजा विश्वनन्दी की प्रियङ्ग रांणी से विशाखानंदी नामका पुत्र हुवा और युवराज विशाखभूति की धारणी राणीसे **विश्वभूति** का जन्म हुवा (जो महावीर का जीव पंचम स्वर्ग से अवतीर्ण हुवा) विश्वभूति तारूण्यावस्था मे अपने अन्तेउर सहित पुष्पकारण्डोद्यान में क्रिडा कर रहा था. वहांपर विशाखानन्दी भी आया पर पहेले से विश्वभूति उद्यानमे था वास्ते वह बाहार ठहर गया. इतने मे प्रियङ्ग राणिकी दासियें पुष्प लेनेको आई । एक को बाहार दूसरे कों अन्दर देख वह वापिस लोट गई और महाराणि कों सब हाल सुना दिया इस पर प्रियङ्ग राणिने अपने पुत्र का अपमान हुवा समझ क्रोधित हो राजा से इन का बदला लेने का कहा ।

राजाने एक षट यंत्र रचा कर सभा में यह प्रस्ताव किया कि पुरुषसिंह नाम का सामन्त हमारी आज्ञा का भंग कर देश में लुंटफाट कर रहा है वास्ते सैना तैयार कि जाय की शीघ्रता से उनका दमन करे ! यह बात विश्वभूतिने सुनी तब बडा पिताजी से अर्ज कर वह भार अपने शिर ले मयसैना के वहां गया । वहांपर पुरुषसिंह को सर्वथा अनुकूल देख वापिस लौट आया. रास्ता में क्या देखता है कि पूर्वोक्त उद्यान में विशाखानन्दी क्रिडा कर रहा है इसपर विश्वभूतिने सोचा कि यह षडयंत्र हम कों उद्यान से निकालने का ही था. बस मारा क्रोध के एक वृक्ष पर मुष्टि प्रहार किया तो उस के सब पुष्प भूमिपर गिर गये. द्वारपाल को संबोधन कर कहा कि अगर बडा पिताजी पर मेरी भक्ति न होती तो तुमारे मुंडकों से भूमि आछादित होनेमे इतनी ही देर लगती की जितनी इन वृक्ष के पुष्पों के लिये लगी है पर इस विषमय भोगकी अब मुझे परवाह नहीं है ऐसा कह विश्वभूतिने संभूति मुनि के पास दीक्षा ग्रहन करली ! इस बातको सुन राजा सहकुटम्ब जाके मुनि को वन्दन कर राज का आमन्त्रण किया ? विश्वभूति मुनिने अस्वीकार कर बदले मे धर्मोपदेश दिया ।

विश्वभूति मुनिने ज्ञानाध्ययन के पश्चात् घोर तपश्चर्या करी कि जिन्ह का शरीर अति कृश हो गया. एक समय मथुरा नगरी में भिक्षा के लिये जा रहा था रास्ता मे एक गायने मुनि को भूमिपर गिरा दिया उस समय विशाखानन्दी विवाह प्रसंग मथुरा में आयाथा वह मुनि को गिरता हुवा देख हांसि के साथ बोल उठा रे मुनि तेरा

वह बल कहां गया जो मुंडकों से भूमि आच्छादित करता था. यह सुन मुनि अपने आपा को कब्जे नहीं रख सका उस गाय को दोनो शींग पकड चक्र की माफिक आकाश से गुमा के फेंक दी और निधान किया कि मेरे तप संयम ब्रह्मचार्य का फल हो तो भविष्य में महान् पराक्रमी हो विशाखानन्दी की धात करूं ! वहां से कालकर।

(१७) महाशुक्र देवलोक में देवता हुवा । वहांसे

(१८) पोतनपुर नगर के राजा प्रजापाल कि मृगावती राणि की कुक्षि से त्रिपृष्ट्र वासुदेव का जन्म हुवा और विशाखानन्दी का जीव भवभ्रमन करता हुवा तुंगगिरीपर केशरीसिंह हुवा. उसकों प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव शालि के क्षेत्र मे त्रिपृष्टने मारके बदला लिया. क्रमशः दक्षिण भरत के तिन खण्डकों विजय कर त्रिपृष्ट्रवासुदेव सम्राट् राजा हुवा एक समय त्रिपृष्ट अपने शय्या पालक को आज्ञा दी थी कि जब मुझे निन्द्रा आ जावे तब गायन बन्द कर देना पर कानोंको प्रिय होने के कारण वासुदेव कों निद्रा लगजाने पर भी शय्या पालकने गायन बन्ध न किया इतने में त्रिपृष्ट जागृत हुवा तो गायन हो ही रहा था इसपर गुस्सा हो त्रिपृष्टने हुकम किया रे दुरात्मा ! हमारी आज्ञा से भी तुमरे कानों को गायन प्रिय लगा बस उसके कानों में गर्मागर्म गाला हुवा सीसा डलवाके निकाचित कर्मोपार्जन किया. वहां से काल कर

(१९) सातवी नरकमेगये । वहांसे

(२०) महा क्रूरवृतिवाला सिंहका भव किया । फिर

(२१) चोथी नरकमें गया वहांसे अनेक भव भ्रमन करता हुवा (वह इस स्थुल भवों की गीनतीमें नहीं है)

(२२) मनुष्यका भव किया, वहांपर अनेक सुकृत कार्यों द्वारा भविष्यमे चक्रवर्ति होने के पुन्योपार्जन कर वहांसे

(२३) विदेहक्षेत्र मुका राजधानी के धनञ्जय राजाकी धारणिराणिकी कुक्षीसे चौदह स्वप्न सूचित प्रियमित्र नामका पुत्र हुवा क्रमशः षट खण्ड विजयकरचक्रवर्तिपद भोगवके पोट्टिलाचार्य के पास दीक्षा ले चिरकाल चारित्रपाल अन्तमें वहांसे

(२४) महाशुक्र देवलोकमें देवपने उत्पन्न हुवे । फिर

(२५) ईसी भारत भूमिपर छत्रिका नगरी के राजा जय-शत्रुकी भद्रा राणिकी कुक्षीसे नन्दन नामक पुत्र हुवा क्रमशः राजपद भोगवके जैनाचार्य पोटिल के पास दीक्षा ले ज्ञानाभ्यास के पश्चात् जावजीव तक मासमास क्षामणाके पारणा करते हुवे वीसस्थानक जो तीर्थंकर पद प्राप्त करने के कारणोंकी आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्मका धन बन्धनकर एक लक्ष वर्ष दीक्षापाल अन्तमें समाधिपूर्वक कालकर ।

(२६) प्रणितनाम दशवेदेवलोकमे देवपने उत्पन्न हुवे वहांसे सतावीसवे भवमे भगवान् महावीर प्रभु हुवे वह हमारे कल्यान में सदैव कारणभूत है

भगवान् महावीरका जन्म ।

नन्दनमुनिका जीव दशवाप्रणित देवलोकसे वीस सागरोपमकि स्थिति पूर्ण कर तीन ज्ञानसंयुक्त क्षत्रियकुण्ड नगरके राजा सिद्धार्थ

कि त्रिशला राणिके रत्नकुक्षीमे चौदह स्वप्नसूचित अवतीर्ण हुवे जिस स्वप्नोंके शुभ फल राजा सिद्धार्थ व स्वप्नपाठकोंने कहा. माताको अनेक शुभ दोहले उत्पन्न हुवे जिनकों राजा सिद्धार्थने सहर्ष पूर्ण किये. इत्यादि आनन्दोत्सवके साथ गर्भ दिन पूर्ण हुवे। इधर दशों दिशाएं फूल उठी प्रसन्नताका पवन चारो ओर चलने लगा। आकाशसे पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी. सुगन्धित पदार्थसे जगतका वायुमण्डल में शान्तिका सञ्चार हो रहाथा सारा संसार हर्षनादसे खुल उठा, सर्वत्र सुंदर निमित और शुभ शुकनोंका स्वाभाविक प्रादुर्भाव हुवा वह दिन था चैत्र शुक्ल त्रयोदशी चन्द्र हस्तोत्तरा नक्षत्रमें और विजय मूहुर्त वरत रहाथा सवग्रह अनायासे उच्च स्थान भोगव रहेथे. ठीक उसी समय महाराणि त्रिशलादेवीने सिंह का लाञ्छन और सुवर्ण कान्तिवान् पुत्रको जन्म दिया जिस रात्रिमें भगवान्का जन्म हुवा उसी रात्रिमें देवतोंने राजा सिद्धार्थके वहां धनधान्य वस्त्रभूषणमें वृद्धि करी संसारभरमें शान्तिका साम्राज्य छा गया नरक जैसे महान् दुःखी प्राणियोंको भी सुखी होनेका समय मिला। छप्पनादिग् कुमारिकाओने सुतिका कर्म किया। चोसट इन्द्र और असंख्य देवदेवियोंने सुमेरू गिरिपर भगवानका जन्म महोत्सव किया दूसरे दिन महाराजा सिद्धार्थने पुत्र जन्मकी खुशालीमे बन्दीखानेके केदियोंको छोडवाया. तोलमाप बढाया नगरमें स्थान स्थानपर महोत्सव और जिनमन्दिरोंमे सौ–हजार और लक्ष द्रव्यवालि पूजाए रचाइ तीसरे दिन सूर्य चन्द्र दर्शन, छटे दिन रात्रि जागरण, ग्यारवे दिन असूचि कर्म दूर कर बारहवे दिन न्याति जाति सगे संबंधीयोको वस्त्राभूषण पुष्पमाला तंबो-

लादिसे सत्कार कर अपने पुत्रका नाम 'वर्द्धमान' रखा जो कुलमे अव तीर्थो होतेही राजवदेशमें धनधान्य राजकोष्टागर सुखशोभाग्यादि एवं सर्व प्राकरकी वृद्धि हुईथी क्रमशः भगवान् महावीर बीजके चन्द्रकि माफीक वृद्धि होंने लगें।

भगवान् महावीरकी बाल्यावस्था।

भगवान् महावीरकि बाल्यावस्थाके विषय खास कर ऐसे उल्लेख बहुत कम मिलने हे तथापि आपकी दिव्य कान्ति तप तेज उतम प्रतिभा और अगाध शक्ति अलौकिक ही थी जन्म समय आपने एक अंगुष्ठसे मेरू कम्पाया जिससे मुग्ध हो ईन्द्रने आपका वीर—महावीर नाम रखा, बचपनमें आमली वृक्षकी बालक्रिडामे आपश्रीने देवका पराजय किया. विद्या अध्ययनके विषय तो वडे वडे अध्यापक आश्चर्यमे डुब गये इन्द्रके किये हुवे प्रश्न और प्रभु महावीरके दिये हुवे उत्तरोंसे ही जिनेन्द्र व्याकरणका जन्म हुवा जैनाचार्य शाकटायनादि और भी पाणिनी जैसेनेभी उसका अनुकरण किया, भगवान्कि दिनचर्याके विषय भी स्पष्टरूप उल्लेख नहीं मिलता है पर कल्पसूत्रादि ग्रन्थोमे राजा सिद्धार्थकी दिनचर्या जैसे वह प्रातः समय व्यायामशालामे कसरत कर सौ—हजार-लक्षपाकादि तैलका मर्दन और स्नान मज्जनकर देवपूजनके पश्चात् राजसभामे खुद इन्साफ करतेथे राजा सिद्धार्थ जैसे नैतिज्ञ था वैसेही वह धर्मज्ञ भी था कारण राजा सिद्धार्थ और त्रिशलादेवी भगवान पार्श्वनाथ के श्रावक अर्थात् अनुयायि थे उनकि वीरता उदारता और दिनचर्या इतनी तो उत्तम रितीका था कि उनका अनुकरण करनेवालोका जीवन सुख व शान्तिमय बन जाता है पिताका संस्कार पुत्रके अन्दर होना एक

स्वाभाविक बात है व भगवान् महावीरकी बाल्यावस्था और उनकी दिनचर्यके विषय इतनाही लिखना पर्याप्त होगा कि उनका जीवन-जन्मसे ही पवित्र था और पवित्र रितिसे ही बाल्यावस्था व्यतिक्रम हुई थी।

भगवान महावीर की युवकावस्था।

भगवान् महावीर बाल्यावस्था कों अतिक्रम के आगे पैर रखा तो एक तरफ युवकावस्था खुल उठी तब दूसरी ओर आत्मभाव विकाशीत हो रहा था संसार के मोहक पदार्थों से आप बिलकुल विरक्त थे इतना ही नहीं पर आप के माता पिता और सज्जनों को भी आपके विरक्तपने के चिन्ह स्पष्ट रूपसे देखाइ दे रहे थे तथापि माता पिताने पुत्र स्नेह के वशीभूत हो वर्द्धमान के विवाह की कौशिष करना प्रारंभ किया। इधर महाराजा समरवीरने अपनि 'यशोदा' नाम की कन्या का लग्न प्रभु वर्द्धमान के साथ करदेने का प्रस्ताव सिद्धार्थराजा के पास भेजा। भगवान महावीर की इच्छा न होनेपर भी मातापिता की आज्ञा भंग करना अनुचित समझ यशोदा राजकन्या के साथ विवाह किया, दूसरा प्रकृति का यह भी अटल नियम है कि पूर्व संचित शुभ व अशुभ कर्म सिवाय भोगवने के छुट नहीं सकते है फिर भीं ज्ञानियों के लिये भोग भी कर्मनिर्ज्जरा का हेतु होता है महावीर प्रभु जलकमलवत् संसार में रहे आप के सन्तान 'प्रियदर्शना' नामक एक पुत्री हुई वह जमाली राजकुमार को व्याही थी भगवान गृहस्थावास मे रहते हुवे भि अपना जीवन एक पवित्र योगि की तरह व्यतिक्रम कर रहे थे.

भगवान महावीर की दीक्षा ।

भगवान् महावीर के आयुष्य के २८ वें वर्ष राजा सिद्धार्थ और त्रिसला रांणी का स्वर्गवास हुवा उनका वियोग से नन्दिवर्द्धन को महान् दुःख हुवा. प्रभु वर्द्धमानने उन को समझाया। भाई साहेब ! संसार में उत्पाद् व्यय होना स्वभाविक बात है जन्म मरण का दुःख संसारी जीवों के साथ अनादिकाल से लगा हुवा है मातापिता का वियोग का दुःख और आर्तध्यान कर कर्मबन्ध करना वृथा है ज्ञानदृष्टि से विचार कर भविष्य में ऐसे संबन्ध कर दुःखी न होने के उपाय को सोचिये। वह उपाय एक आत्मिक धर्म है इस लिये ही महात्मा पुरुष संसार का त्याग कर जंगलो की पवित्र छाया में ध्यान करना पसंद करते है इत्यादि जगत पूज्य वर्द्धमान के वचनों से नन्दीवर्द्धन को संतोष हुवा पश्चात् नन्दीवर्धनने पिताश्री के सिंहासनपर राज करने का आमन्त्रण किया. पर परमयोगी वर्द्धमानने स्वीकार नहीं किया तब क्षत्रियगण मिलके नन्दिवर्द्धन को राज्याभिषेकपूर्वक राजपदपर नियुक्त किये बाद भगवान् वर्द्धमानने दीक्षाकि आज्ञा मागी नन्दी-वर्द्धनने कहा प्रिय हालही में तो हमारे मातापिता का वियोग हुवा हे जिस दुःखसे हम दुःखी हे और जो कुच्छ सुख है तो तुमारी तरफका ही हैं वास्ते अबी दो वर्ष तक ठेरे। भगवान वर्द्धमानने पिताकी माफीक वृद्ध भ्राताकी आज्ञाकों स्वीकार कर गृहवासमें साधु जीवन व्यतिक्रम करने लगें एक वर्षके बाद लोकान्तिक देव भगवानसे अर्ज करी कि हे जगदोद्धारक प्रभो ! दुनियोमें अज्ञानान्धकार फेल रहा है जनता एक महापुरुषकी रहा देख रही हैं आपके दीक्षाका

समय भी आ पहुंचा है वास्ते दीक्षा धारण कर लोकमे शान्ति वरतावे। इसपर भगवान् एक वर्ष तक महा दान देकर नर—नरेन्द्र। देव देवेन्द्र के महामहोत्सवपूर्वक व इन्द्रने खांधेपर रखा हुवा एक वस्त्रके साथ आप एकले मागशर कृष्ण दशमिके रोज भगवान् महावीरने दीक्षा धारण की उसी समय आपश्रीकों चोथा मनःपर्यव ज्ञानोत्पन्न हुवा।

भगवान् महावीरकी प्रतिज्ञा।

भगवान् महावीरने जिस दिन दीक्षा धारण करी उसी रोज इस नाशमान शरीरकी बिलकुल परवाह न करते हुवे ऐसी कठिन प्रतिज्ञा कर ली कि कोइभी देवमनुष्य तीर्यच संबंधी उपसर्ग हो वह मुझे सम्यक् प्रकारसे सहन करना कारण ऐसा करनेसेही दुष्ट कर्मोका नाश हो सचे सुखकी प्राप्ति होगा। जो वस्त्र दीक्षा समय इन्द्रने खांधेपर रखा था वह साधिक एक वर्ष रहा बाद भगवान् दिगम्बरावस्थामें स्वतंत्र विहार करने लगे पर भगवान्का अतिशय ऐसा था कि वह अन्यकों नग्न नहीं दीखते थे उनका दृश्यही अलौकीक था। भगवान्ने प्रायः द्रव्य और भावसे मौन व्रतकाही सेवन किया था. कारण उच्चात्माओंका एक यह भी अटल नियम है कि जब तक अपना कार्य सिद्ध न हो जाय, तब तक दूसरोंका कल्यान करनेमे प्रवृत्ति नही करते है बात भी ठीक है कि ऐस करने से ही अन्य कार्यों में सफलता प्राप्त कर शक्ते है इस नियमानुसार भगवान् महावीरने छदमस्थावस्थामे आदेश उपदेश व दीक्ष देनेकी उपेक्षा कर पहला अपने आत्माका कल्याण करनाही जरूरी समझ मौनव्रत धारण किया था.

भगवान् महावीरको उपसर्ग ।

यों तो भगवान् महावीर साधिक बारह वर्ष तपश्चर्या करी थी वह सब काल उपसर्गमेही निर्गमन हुवा था. परन्तु यहांपर हम कतीपय ऐसे उदाहरण बतलादेना चाहते है कि जिन जगत्पूज्य महान् आत्माने आत्मकल्यानके लिये कैसे कैसे महान् संकटोंका सामना किया कुदरतका सिद्धान्त है कि जो मनुष्य अपना करज चुकानेके लिये आमन्त्रण करते हैं तब सबके सब लेनदार आके खडे हो जाते है इस नियमानुसार भगवान् महावीर अपने कर्मोका करजा चुकानेके लिये पैरोपर खडे हुवे है तब उनपर कैसे हृदयभेदी महाभयंकर उपसर्ग आपडा कि जिनको पडनेसे ही हमारी आत्मा कांप उठती है पर भगवान् के उत्कठ बल व साहसीकता के सामने वह उपसर्ग ऐसे तो फीके पड गये थे कि सूर्य के प्रबल प्रकास के सामने चन्द्र का तेज झांखा पड जाता है. तथा च—

(१) भगवान के दीक्षा समय शरीर पर चन्दनादि सुगन्धि पदार्थो का लेप न किया था उस सुगन्धसे आकर्षित हो भ्रमर गए शरीर का मांस काट खाया दूसरी तरफ भगवान का अद्भुत रूप देख कामातुर ओरतोंने अनुकुल उपसर्ग किया पर उन शान्त मूर्ति महावीरने दोनोंको समभावसेही देखा अर्थात् मांस काटनेवाले भ्रमरो पर द्वेष नहीं और हावभाव करनेवाली स्त्रियोंपर राग नहीं वह ही तो महावीरकी वीरता है ।

(२) एक समय कुमार ग्रामके निकटवर्ति भगवान् पर अज्ञान गवालोंने मारणेका हुमला किया. उस समय शक्रेन्द्रका

आसन कम्प उठा ज्ञानद्वारा सब हाल जान वह शीघ्र आया और गोवालको कहा रे अधम्म पापात्मा ! क्या तुं नहीं जानता है कि यह त्रिजगपूज्य परमेश्वर हैं इत्यादि वचनोंद्वारा गोवालको शान्त कर भगवान् से अर्ज करी, हे प्रभो ! आपपर बारह वर्ष उपसर्गोंका बरसाद वरसनेवाला है वास्ते मेरी इच्छा है कि मैं आपकी सेवामें रहूं ? भगवान्ने कहाँ हे इन्द्र ! यह न हुवा और न होगा कि तीर्थ-कर किसी दूसरो के जरिये कैवल्यज्ञान प्राप्त करे। मुझे किसी कि सहायता की आवश्यक्ता नहीं हैं। इन्द्र निराश हो अपनि तर-फसे एक व्यान्तर को भगवानकी सेवामें रख दीया कि कभी मर-णान्त कष्ट हो तो तुम निवारण करना। तत्पश्चात् इन्द्र भगवान् को वन्दन कर स्वर्गकि और चला गया।

(३) शूलपाणि और संगमदेवका उपसर्गोंसे हृदय भेदा जाता है, हाथ थंभ जाता है, लेखनी तूट जाती है, दील दुःखी और नेत्रोंसे नदियें वह निकलती है कि उन अधम देवोंने एक रात्रिमें अनुकूल व प्रतिकूल कैसे कैसे उपसर्ग किया है। जो भमरें, चिटियें, नलवें, विच्छु, सर्प, सिंह, व्याघ्रादि अनेक क्षुद्र जीवों से प्रतिकूल उपसर्ग और युवा औरतोंके हावभाव तथा सिद्धार्थ राजा त्रिशला राणि के रूप बनाके अनुकूल उपसर्ग किया पर ताकत क्या है देवकि, की उन दीर्घ तपस्वी परमयोगि महावीरके एक प्रदे-शकोभी विचलित कर सके। जैसे वायु कितनीही जोरसे चले तो भी क्या सुमेरुको चलायमान कर सके ? अपितु कबी नहीं.

(४) एक समय श्वेतांबीका नगरीके नजदिक के जंगलसे

भगवान् जा रहे थे एक गोवालने कहा प्रभो ! आप दूसरे रास्तेसे पधारिये. कारण इस अटवीमें एक भयंकर प्रकृति और दृष्टिविष-वाला " चण्डकौशिक " सर्प रहता है । जिसकी विषभयंकरता के मारा मनुष्य तो क्या पर पशु पक्षी भी नहीं ठेर सक्ता है, अ-गर कोइ अकस्मात् आ-जावे तों शीघ्रही भस्मिभूत हो जाता है. आप जानबुझ के आपनि आत्माको जोखममें डालनेका प्रयत्न क्यों करते हो ? भगवान्ने सोचा कि सर्पके अन्दर इतनी बडी भारी शक्ति है और वह उनका दुरुपयोग करता है अगर उसको बोध हो जावे और अपनि शक्तिका सद्उपयोग करे तो उस जीव का कल्यान हो सक्ता है । कारण शक्ति है सो आत्मा का निज गुण है जिस शक्ति से जीव सातवीं नरक में जाने की ताकत रखता है वह उसी शक्ति से मोक्ष भी जा सक्ता है इस विचार में गोवाल की एक भी न सुन भगवान् तो सर्प की तरफ रवाने हो गये । वहां जाकर उसी सर्प की बांदी (बिल) पर ध्यान लगा दिया । बस, फुंकार करता हुवा सर्प बाहर आया गुस्सा के मारा उस का सब शरीर लायपुलाय हो उठा नेत्रों में विषज्वाला निकल रही थी इधर उधर देखने लगा तो एक और दीर्घ तपस्वी महान् योगि एक निडर आत्मा ध्यान में स्थित दीख पडा । फिर तो क्या था सर्प के क्रोध की सीमा तक न रही एकदम ज्वाला-मय हो सोचने लगा कि मेरा साम्राज्य में पशुपक्षी भी नहीं ठेर सक्ता है तो यह ध्रुव की माफिक निश्चल कौन है वारंवार क्रोध करता हुवा खुब जोर आ कर भगवान् को काट खाया. उस समय

कृपा रसपूरित महावीरदेवने ध्यान लगाया, क्रोधानलसे प्रकोपित
चंडकौशिक सर्पने प्रभूके अंगूठे पर जहेरी डंक लगाया,
जिससे दूधकी श्वेतधारा बहने लगी.

Lakshmi Art, Bombay, 8.

आश्चर्य इस बात का था कि साधारण आदमि को काटने से रक्त बहता है पर भगवान् को काटने से सर्प को पयपान मिला इस पर सर्प टीक टीकी लगा के प्रभो के सामने देखता है तो उन की मुखमुद्रा पर क्रोध की तनीक भी झलक न पाई उपसर्ग के पश्चात् भी शान्ति–क्षमा और दया की नदिये वह रही थी. शान्ति मुद्रा देखते ही सर्प तो मुग्ध बन गया कारण ऐसी मुद्रा पहले नहीं देखी थी फिर भी एकाग्र हो सर्प जैसे जैसे भगवान् को देख रहा है वैसे वैसे भगवान् के परमाणवें सर्प का अन्तःकरण को साफ बना रहे थे जब सर्प की क्रोध आत्माने सुधारा की और पलटा खाया तब भगवान् बोले, रे चण्डकौशिक ! समझ ! समझ !! क्रोध के वश अंधा क्यों हो रहा है ? अपने पूर्वभव को स्मरण कर और इस भव में करी हुई भूलों पर पश्चाताप कर इत्यादि भगवान् के शान्तिमय वाक्य श्रवण कर विचार करते को ' जाति स्मरण ' ज्ञानोत्पन्न हो गया। सर्पने अपना पूर्व भव देखा कि मोक्ष साधना के लिये बना हुवा साधु, क्रोध के वशीभूत हो मैं चण्डकौशिक सर्प हुवा फिर भी इस वख्त महा क्रोध कर अनेक जीवों को तकलीफ दे रहा हुं इतना ही नहीं पर जगत्पूज्य करूणासागर भगवान् महावीर को भी मैंने काट खाया है न जाने मेरी क्या गति होगा ? बस ! उस शक्ति को ही पलटानी थी. सर्प जैसे उत्कृष्ट क्रोधी था वह ही आज उत्कृष्ट शान्तिमय मूर्तिमान बन गया मानों एक मोक्षाभिलाषी महात्मा वैरागभावको धारण किया हो सर्पने अनसन कर आठवा स्वर्ग को प्राप्त किया. जिस सर्पने भगवान् को अतिशय

उपसर्ग दीया था बदला में भगवान् उस को आठवे स्वर्ग पहुंचा दिया यह ही तो प्रभु की प्रभुता है।

(५) एक समय प्रभु विहार करते एक जंगल के अन्दर कायोत्सर्ग में स्थित थे वहां पर किसी गोपालने अपने बलदों को छोड कार्यवशात् स्थानान्तर गमन किया वह बैल चरते चरते दूर चले गये। गोवाल पीच्छा आया, प्रभु से पुच्छा कि मेरे बलद कहां है ? भगवान् तो ध्यान में थे, उत्तर न मिलने पर गोवाल बलदों की शोध में गया. इधर बलद चर फिर के वापिस उसी स्थान पर आगये की जहां प्रभु ध्यान में थे. गोवाल ढूंढ ढूंढ के बहुत हेरान अर्थात् दुःखी हो भगवान् के पास आया तो वहां बैल मोजुद था. बस गोवाल को विचार हुवा कि मैरे बैल ले जाने के लिये ही इसने यह षडयंत्र रचा है अगर एसा न होता तो यह जानता हुवा भी मुझे कष्ट न देता मारागुस्सा के भगवान् के कानों में खीली ठोक मारी वह दोनों कानों के आरपार निकल गई. उस समय प्रभु को अतूल वेदना हुई पर जो त्रिपृष्ट वासुदेव के भव में शय्यापलक के कानों में सीसा डलवाया था वह ही त्रिपृष्ट आज प्रभु महावीर है और वह ही शय्यापलक आज गोवाल है। कर्मों का बदला अवश्य देना पडता है उस का यह एक उत्तम उदाहरण है उस महान् उपसर्ग से भगवान् को वेदना अवश्य हुई पर अपने अमोघ धैर्य और प्रतिज्ञा से तनिक भी चलित न हुये इतना हि नहीं बल्कि अपने दुष्ट

ध्यानारूढ महावीर देवके कानोंमें तीक्षण खील ठेकके कोपित गोवालने अपने भवान्तरका बदला लीया.

Lakshmi Art, Bombay. 8.

कर्मो का बदला चुकाने में आप अपना गौरव ही समझा जैसे चलती दुकान में पाक नियत का साहुकार अपने पूर्वजों का करज चुकाने में अपना महत्व समजता है। गोवाल अपना बदला लेने पर भी क्रोध के वशीभूत हो ऐसे नया कर्मोपार्जन किया कि वह वहां से मरके सातवीं नरक गया। खर नामक वैद्यने भगवान् के कांनो से खीलीयें निकाल सुन्दर चिकित्सा कर अनन्त पुन्योपार्ज्जन किया, तत्पश्चात् भगवान् अन्यत्र विहार किया।

(१) इन के सिवाय छोटे बडे सहस्रों उपसर्ग जैसे अनार्य देशमें विहार समय उन के पैरोंपर खीर पका के खा जाना कुत्तोंनें उन के मांस के लोधे के लोधे काट खाना, अनार्य लोगों से अनेक आक्रोश व बद्ध परिसह का होना गौशाला जैसेकु शिष्यों का संयोग इत्यादि. अगर कोइ यह सवाल करे कि भयंकर सर्प का काट खाना देवकृत धूल से श्वासोश्वास रूक जाना, कांनों में खील ठोक देना ऐसे मरणान्त कष्ट में भी महावीरदेव का एक भी प्रदेश नहीं चलना क्या यह संभव हो सक्ता है? वेदना को सहन करना यह वैदनिय कर्म का क्षयोपशम है, आत्मभावमें स्थिर रहना यह मोहनिय कर्म का क्षय व क्षयोपशम है मजबूत संहनन होना यह शुभनामकर्म का उदय है, नहीं मरना यह आयुष्यकर्म है अर्थात् अलग अलग कर्मो का भिन्न भिन्न स्वभाव है भगवान् महावीर प्रभु के वज्र ऋषभनाराच सहन न था वेदनियकर्म का उदय होने पर भी मोहनियकर्म शान्त था जो वेदना समय दुःख मानना, हाहा

करना, यह मोहनिय कर्म का उदय है वह भगवान् के नहीं था मनोविज्ञान, आत्मबल, सहनशीलता, स्थिरचित्त और आत्मज्ञान इतना उत्कृष्ट था कि घोर वेदना होने पर भी उन की आत्मा का एक प्रदेश भी विचलित नहीं होता था।

भगवान् महावीर के छद्मस्थपने का भ्रमन—

(१) अस्थिग्राम (२) राजगृहनगर (३) चम्पानगरी (४) पृष्टचम्पा (५) भद्रिकानगरी (६) आलम्बिकानगरी (७) राजगृहनगर (८) भद्रिकानगरी (९) अनार्यदेशमें (१०) सावत्थिनगरी (११) विशालानगरी (१२) चम्पानगरी। एवं बारह चातुर्मास छद्मस्थावस्था में हुए, इन के अन्तर्गत की भूमि पर विहार करते हुए भगवान् कों अनेकानेक कठिनाईयों का सामना करना पडा जिस में भी अनार्यदेश के लोगोंने तो भगवान् से खूब ही बदला लिया था और भगवान् भी बदला चुकाने के लिये वज्रभूमि में विहार किया था।

भगवान् महावीर की घोर तपश्चर्या—

भगवान् महावीरदेवने कठन से कठन तपश्चर्या करी अर्थात् साढाबारह वर्ष के अन्दर पूर्ण एक वर्ष भी भोजन नहीं किया इतना ही नहीं बल्कि जीतनि तपस्या करी वह सब पाणि बगर चौवीहार ही करी थी वह निम्न अङ्कित कोष्टक से ज्ञात होगा।

तपश्चर्या के नाम	संख्या	तप दिन	पारणा दिन	सर्व दिन
छ मासी तप	१	१८०	१	१८१
न्यून छ मासी तप	१	१७५	१	१७६
चतुर्मासी तप	९	१०८०	९	१०८९
तीनमासी तप	२	१८०	२	१८२
अढाई मासी तप	२	१५०	२	१५२
दो मासी तप	६	३६०	६	३६६
डोढ मासी तप	२	९०	२	९२
एक मासी तप	१२	३६०	१२	३७२
पाक्षीक तप	७२	१०८०	७२	११५२
अष्टम तप	१२	३६	१२	४८
छट्ठ तप	२२९	४५८	२२९	६८७

यह सब तप प्रतिज्ञापूर्वक ही किया था। ध्यान, मौन, आसन, समाधि, आत्मचिंतवन कर अन्त में शुक्लध्यानरूपी जाज्वल्यमान अग्नि में चार घनघाति (ज्ञानावर्णिय, दर्शनावर्णिय, मोहनिय, अन्तराय) कर्मों को जला के कैवल्यज्ञान दर्शन को प्रगट कर लिया।

भगवान् महावीर को केवल्यज्ञान—

जिस ज्ञानके अभाव दुनियाँ अज्ञानान्धकार में गोता खा रही है, जिस ज्ञानके अभाव जनता मिथ्या रूढियों के वशीभूत हो अथाग

समुद्रमें डुब रही है, जिस ज्ञानके अभाव अज्ञ लोग ममत्त्व माया और तृष्णा के गुलाम बन रहे है, जिस ज्ञान के अभाव संसार एक क्लेश कारागृहका स्थान बन अपना अहित करने में नहीं ही चकते है, जिस ज्ञानके अभाव आत्मा निज गुणको भूल परस्वभाव में रमणता करता हुवा भवभ्रमण कर रहा है, उसी ज्ञानके लिये भगवान् महावीर कठिनसे कठिन तपश्चर्या करी मरणान्त उपसर्ग सहन किया, और उत्तमोत्तम भावनासे चार घनघाति कर्मोंका समूल नष्ट कर--जम्बुकग्रामके पास रजुबालिका नदीकी तीरपर समकका क्षेत्र--शालिवृक्षके निचे छठ्ठतप गोदु आसन शुक्लध्यानमें वर्तते हुवे वैशाख शुक्ल दशमिके रोज चन्द्र हस्तोत्तरा नक्षत्रपर विजयनामक शुभ मुहूर्तमें सर्व लोकालोकके सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको जानने-वाला कैवल्यज्ञानकों उत्पन्न किया. उस समय संसारभरमें आनन्द छा गया स्वर्गभी प्रोत्साहित हो उठा. सुगन्धी पुष्प व जलकी वृष्टि हुई. सय देवि देवता के इन्द्रोंने महा महोत्सव किया. भगवान् महा-वीरने अपने दिव्य ज्ञानद्वारा धर्म्मदेशनादि पर उनका फल स्वरूपमें किसीने व्रत ग्रहन नहीं किया। तथापि जो जनतामें विश्रृंखलनाकी भट्टी धधक रही थी उसमें शान्तिका सञ्चार तो अवश्य होने लगा।

भगवान् महावीर का समवसरण—

भगवान् महावीर प्रभु, वैशाख शुक्ल एकादशी कों अपापा नगरीके महासेन उद्यानमें पधारे। इन्द्रके आदेशानुसार देवतोंने रजत, सुवर्ण और रत्नमय तीन गढ, बारह दरवाजे, सिंहासन अशोकवृक्ष

आदि समवसरण कि रचना करी. भगवान् के चार अतिशय तो जन्म समय ही होते है; एकादश कैवल्योत्पन्न समय और एकोनीस देवकृत एवं चौतीस अतिशय अष्टमहाप्रतिहार हुवा करते है तत्पश्चात् "तीर्थायनमः" तीर्थ कों नमस्कार कर भगवान् सिंहासनपर विराजमान हो धर्मोपदेश देना प्रारंभ किया. भगवान् के उपदेश के लिये क्या तो देव, देवेन्द्र, क्या मनुष्य, विद्याधर, क्या क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, क्या शूद्र, क्या राजा, रांक, क्या अमीर, गरीब, क्या स्त्रियें क्या पुरुष इतनाही नहीं पर पशु पक्षी तक को भी धर्म के अधिकारी बननेकी स्वतंत्रता दे दी थी. धर्म के लिये वर्ण व जाति और उच्च नीचका वहां बिल्कूल भेद नहीं था. भगवान्ने अपने उपदेश में सबसे पहला "अहिंसा परमो धर्मः" का खूब विवेचन किया अन्तमें कहा कि जो जीव अनादिकालसे संसार में परिभ्रमण करता है उसका मूल कारण 'हिंसा' ही है। असत्य, चौर्य, कुशील, ममत्व, क्रोध, मान, माया, लोभादि अनेक पाप हिंसा से ही पैदा हुवे है हिंसा के भी अनेक भेद है। द्रव्यहिंसा, भावहिंसा, निश्चयहिंसा, व्यवहारहिंसा, स्वरूपहिंसा, अनुबन्धहिंसा, अर्थादंडहिंसा, अनर्थादंडहिंसा. इनका विवरणके पश्चात् भगवान्ने फरमाया कि सब चराचर प्राणियों कों अपने अपने प्राणप्रिय है उनको तकलीफ पहुँचाना महान् पाप है तो फिर इरादापूर्वक हजारों लाखों प्राणियों का बलिदान करदेना इनके सिवाय अधर्म ही कौनसा है? हे भव्यों! रूधिर का कपडा रूधीरसे कभी साफ नही होता है जिस हिंसा के जरिये कर्मोपार्जन किया

वह कर्मोदय होनेपर बलिदान जैसे निष्ठुर कर्म में बलि देने से कर्म नहीं छूटता है पर तप संयमसे जीव उन कर्मों कों नष्ट कर सक्ते है वास्ते अगर तुम सम्पूर्ण अहिंसाको पालन कर सको तो मुनिव्रत को स्वीकार करो सर्व से उत्तम और जन्म मरण से शीघ्र छोडाने वाला और मोक्ष देनेवाला एक मुनिमार्ग ही है अगर ऐसा न बने तो गृहस्थधर्म बारहा व्रतों को स्वीकार करो और तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान, व्यवहारिकज्ञान को प्राप्त करो इत्यादि। भगवान् का उपदेश सिधा, सरल, मधुर, रोचक, भावार्थ सहित, अर्थसूचक, निःस्वार्थ केवल जनताका हितके लिये होनेसे जनतापर उन उपदेशका बडा भारी असर हुवा। कारण संसार पहलेसे ही अत्याचारियों की अशान्तिसे पिडित शान्तिमय उपदेशकी इन्तजारी कर रहा था वह ही शान्ति भगवान् महावीर के झुंडा नीचे मिल गई फिर तो पूच्छना ही क्या. संसार एकदम पलटा खा गया मानो उन्हके अन्तःकरण में महावीर मूर्त्ति विराजमान हो गई।

चतुर्विध संघ की स्थापना—

अपापा नगरी के अन्दर एक बडा भारी 'यज्ञ' की तय्यारीयें हो रही थी बहुतसे यज्ञाध्यक्षक एकत्र हुवे थे जिसमें इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सौधर्म्म, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकम्प, अचलभ्रात, मेतारज, और श्रीप्रभास एवं एकादश मुख्य थे. भगवान् महावीर की विभूति और देवादिसे परिपूजित देख मारे द्वेष ईर्षा के क्रमशः ऐकेक ऋषि भगवान् के पास आये और वह शान्ति के समुद्र में डूब गये और अपने अपने मनका

संशय निवारण कर वह एकादश ब्राह्मण अपने ४४०० छात्रों के साथ भगवान् महावीर के शिष्य बन गये इन्द्रने वज्ररत्नोंके थालमें वासक्षेप हाजर किया. भगवान्ने इन्द्रभूति और राजकन्या चन्दनबाला, आनन्दगाथापति और सुलसा श्राविका जो संघ में अग्रेसर थे उन्हपर वासक्षेप डाल चतुर्विध संघकी स्थापना करी और उनके सिवाय सहस्रों जीवोंको मुनि आर्यिकाए श्रावक श्राविका व्रतकि दीक्षा दि। इस आनन्दोत्सव के समय इन्द्रादि देवोने पुष्प बरसाये और जय जय ध्वनिके साथ सभा विसर्जन हुई * तत्पश्चात् भगवान् महावीर अपने शिष्य समुदाय के साथ भूमिपर भ्रमण-कर असंख्य भव्यजीवोंका उद्धार किया क्रमशः आपके उत्तम ग्रन्थ रचनाके करनेवाले १४००० मुनि, ३६००० साध्वियों, बारहव्रत और प्रतिमाके धारण करनेवाले १५९००० श्रावक ३१८००० श्राविकाए हुई यह संख्या मुख्यतासे बतलाई गई है साधारणतया तो भगवान् महावीर प्रभुके धर्मतत्त्वों को माननेवाले

---

* कितनेक लोग भगवान् महावीर कों ही जैनधर्म स्थापक मानते हे वह उनकी गेहरी भूल है कारण वर्तमान कालपेक्षा जैनधर्म के स्थापक भगवान् ऋषभदेव है अन्तिम तीर्थंकर महावीर के पूर्वकालिन भगवान् पार्श्वनाथ हो गये थे और महावीर प्रभुके समय भी पार्श्वनाथके साधु समुदाय विशाल संख्यामें मोजुद थे. भगवान् महा-वीरके मातापिता भगवान् पार्श्वनाथ के श्रावक थे पार्श्वनाथ कि सन्तानमें आचार्य केशी-श्रमण बडेही मशहूर थे यह बाततो इतिहासकारोने एक ही अवाजसे स्वीकार करलि कि भगवान् पार्श्वनाथ एक इतिहासिक महापुरुष हे वास्ते महावीर प्रभुको जैनधर्म के स्थापक मानना एक अज्ञानता नहीं तो और क्या हे। हां महावीर भगवान् जैनधर्म के संशोधक और प्रचारक अवश्य थे--

चालीस क्रोड जनता भगवान् के झुंडा निचे जैनधर्म्म पालन कर अपना कल्यान कर रही थी और ऐसा होना संभव भी होता है आजके विद्वान भी इसकी सम्मतिये देते है. (देखो पहला प्रकरण).

भगवान् महावीर प्रभुका सिद्धान्त—

भगवान् महावीर का सिद्धान्त मुख्य अनेकान्तवाद अर्थात् 'स्याद्वाद' है नयनिक्षेप, द्रव्यगुणपर्याय, कारणकार्य, निश्चय व्यवहार, उत्सर्गोपवाद, गौण मौख्य, द्रव्य क्षेत्र काल भाव, द्रव्य-भावादि यह सब स्याद्वाद के अन्तर्गत है. जो जो उपदेश भगवान् महावीरदेवने जनता के हितार्थ दिया उनको गणधरोने संकलित किया जैसे आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवयांग, विवहा प्रज्ञप्ति (भगवती), ज्ञाताधर्म्मकथाङ्ग उपासकदशाङ्ग, अन्तगढद-शाङ्ग, अनुत्तरोत्पातिक, प्रश्नव्याकरण, विपाक और दृष्टिवाद एवं द्वादशाङ्ग। इनके उपाङ्ग रूप में स्थविरोंने भी केइ आगम रचे थे वह सब आगमों चार हिस्से में विभक्त है।

(१) द्रव्यानुयोग—जिसमें षट्द्रव्य–धर्मास्तिकाय, अध-र्म्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवात्मा पुद्‌गल और काल का व्याख्यान है। जीव–कर्म मुक्ति ईश्वर लोकालोक सप्तभंग त्रिभगं चतुरः‌भंग वगरह वगरह का खूब ही विस्तार है।

(२) गणितानुयोग—जिसमें स्वर्ग, नरक, पर्वत, पहाड, मनुष्यों के क्षेत्र लम्बा चोडा द्विप समुद्र चन्द्र–सूर्य की चाल उदयास्त वगेरह गीनत विषय है।

(३) चरणाकरनानुयोग—जिसमें मुनियों के या गृहस्थों के आचार व्यवहार क्रिया कल्प धर्म के कानुन सुकृत करनी का सुकृत फल दुष्कृत करनी के दुष्कृत फल इत्यादि व्याख्यान है।

(४) धर्मकथानुयोग—जिस में तीर्थंकर, चक्रवर्ति, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, राजा, महाराजा, मण्डलिक, शेठ साहुकार, आदि आदि महापुरुषों के आदर्श जीवन वह औपदेशिक उदाहरण रूप कथाओं. जिसमें नैतिक, व्यवहारिक, सामाजिक, धार्मीक आदि अनेक विषयपर सुन्दर रोचक अर्थसूचक व्याख्यान है। जैनकथा साहित्य के विषय आज अच्छे अच्छे विद्वानों का मत है कि अपना जीवन आदर्श बनने में सब से पहला साधन है तो जैनकथा साहित्य ही है जिस की उत्तमता, विशालता, गांभीर्यता वह ही जान सकता है कि जिसने जैनकथा साहित्य का अध्ययन किया है। जैनो के आचार धर्ममें 'अहिंसा' और तत्त्व धर्ममें 'स्याद्वाद' मुख्य सिद्धान्त है।

भगवान् महावीर के उपासक राजा—

(१) राजगृह नगर का राजा श्रेणिक (भंभसार)

(२) विशालानगरी का राजा चेटक (भगवान के मामा)

(२०) काशी कौशाल के अढारागण राजा

(२१) पोलासपुर का राजा विजयसेन (जिस के पुत्र अतिमुक्तने भगवान् के पास दीक्षा ली

(२२) चम्पानगरी का राजा कौणक (अजातशत्रु)

(२३) अमल कम्पानगरी का राजा श्वेत
(२४) वतवयपट्टन का राजा उदाई (अन्तिमराजर्षि)
(२५) क्षत्रीकुण्ड का राजा नन्दीवर्द्धन (भगवान के भाई)
(२६) कौशंबी नगरी का राजा उदाई
(२७) उज्जन नगरी का राजा चण्डप्रद्योतन
(२८) पृष्टचम्पा का राजा शालमहाशाल (दीक्षा ली थी)
(२९) पोतनपुर का राजा प्रभचन्द्र (राजर्षि)
(३०) हस्तीशिर्ष नगर का राजा अदिनशत्रु
(३१) ऋषभपुर का राजा धनबाहा
(३२) वीरपुर का राजा वीरकृष्ण
(३३) विजयपुर का राजा वासवदत्त
(३४) सौगन्धी नगरी का राजा अप्रतिहत
(३५) कनकपुर का राजा प्रियचन्द्र
(३६) महापुर का राजा वत्सराज
(३७) सुघोष नगर का राजा अर्जुन
(३८) साकेतपुर का राजा मित्रानन्दी
(३९) दशानपुर का राजा दर्शनभद्र

इन दशों राजाओं के पुत्र पंच पंच सौ अन्तेवर और राजऋद्धि त्याग भगवान के पास दीक्षा ली थी।

इन के सिवाय राजा अनंगपाल, चन्द्रपाल, वीरजस, जयसेन, वीरंगयादि अनेक राजा महाराजा और महामंत्री सेठ साहुकार-आनंद, कामदेव, चूलनिपिता, चूलशतक, सूरादेव, कुण्डकोलिक, शकडाल, महाशतक, शालनिपिता, नेदानिपिता, उदकपैडाल, संक्ख, पुष्कलि,

ऋषिभद्रपुत्र, मंग्डुक, सुदर्शनादि अनेक वैश्य थे। भगवान् का धर्म केवळ वर्ण या जाति बन्धनमें ही नहीं था पर विश्वव्यापि था. जैसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य धर्म के अधिकारी थे वैसे शूद्र भी धर्म के स्वतंत्र अधिकारी थे। हरकैशी, मैतार्य जैसेने मुनिपद धारण कर मोक्षसुख के विलासी बन गये थे। जैसे भगवान् के शासनमें पुरुषों को स्वतंत्रताथी वैसे स्त्रियों को भी स्वाधिनता थी जब पुरुष ७०० कि संख्यामे मोक्ष गये तब स्त्रियों १४०० मोक्षमें गई थी कहां तो भगवान् महावीर की विशाल उदारता और कहाँ आज जैन समाज की संकूचित दृष्टि जिस का फलरूप चित्र आज हमारे सामने मौजुद है।

भगवान् महावीर के समकालिन धर्म्म--

वेदान्तिक—भगवान् महावीर के पूर्वकालिन भारत की धार्मिक अवस्था बहुत ही भयंकर थी यज्ञ में पशुओं की बलि अपनि चरम सीमा तक पहुंच गई थी। प्रतिदिन हजारों लाखों दीन मुक निरापराधि प्राणियों के रक्त से यज्ञवेदी लाल कर ब्राह्मण अपने नीच स्वार्थ की पूर्ति करते थे। जो मनुष्य अधिक से अधिक जीवों की यज्ञ में हिंसा करता था वह बडा भारी पुन्यवान् समझा जाता था। जो ब्राह्मण पहले किसी समय दया के अवतार माने जाते थे वह ही इस समय पाश विकताकी प्रचण्ड मूर्त्ति बन मुक प्राणियों के कोमल कण्ठ पर छूरा चलाने को निर्दय दैत्य बन बैठे थे। उस समय विधिविधान बनाना तो

उन स्वार्थप्रिय ब्राह्मणों के हाथ में ही थे वास्ते संसारभर में यज्ञ विषय क्रियाकाण्ड का साम्राज्य जमा दिया उन की प्राबल्यता भारत के चारों ओर फैली हुई थी पशुवधमय अनेक ग्रन्थ रच जनता को अपनि मिथ्या झाल में जकड दी थी. उन झाल को तोडनेवाला भगवान् महावीर के सिवाय कोई नहीं थे अर्थात् ब्राह्मणों के वेदान्तिक धर्म पर भगवान् महावीरने ऐसी छाप मारी कि जनता उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगी. भगवान्ने अहिंसा परमो धर्मः का संदेश थोडा ही समय में अखिल भारत में पहुंचा दिया ।

भारत में जैन और वेदान्तिक धर्म चिरकाल से चला आ रहा था पर जब से स्वार्थप्रिय ब्राह्मणोंने अपने धर्म में हिंसा को अग्रस्थान दिया तब से जैनो और ब्राह्मणों के आपस में पारस्परिक विरोध हो उठा । भगवान् महावीर के समय तो उन का भयंकर रूप और भी बढ गया था, तथापि सत्य के सामने शिर झुकाना ही पडा उस समय वेदान्तिक धर्म के अन्तर्गत द्वैतवाद--अद्वैतवाद एवं छोटे बडे केइ धर्म प्रचलित थे उन के अन्दर एक पक्ष जो संन्यासीयों के नाम से प्रसिद्ध था वह ब्राह्मणों के खिलाफ यज्ञ बलि के विरूद्ध झंडा उठाया था पर उन को उस में विशेष सफलता नहीं मिली थी.

दूसरा क्षिणवादी बौद्धधर्म का भी उस समय बहुत प्रचार था जिस का उत्पादक महात्मा बुद्ध था. और तीसरा नियतवादी आजीविक धर्म का भी प्रादुर्भाव हो चुका था. इन का प्रवर्तक

भगवान् महावीर प्रभु का एक साधु जो गोशाला का नाम से प्रसिद्ध था. जैन--आजीविक और बौद्ध इन तीनों धर्म में ' अहिंसा परमो धर्म ' का उपदेश साधारण तय समान ही था। यज्ञ निषेध के विषय तीनों का उपदेश मिलता भूलता ही था. आजीविक और बौद्धधर्म के नियम बहुत सिधा और सरल थे जिस में ऐसी खास कर कोई रूकावट नहीं थी कि जैसे भगवान् महावीर के धर्म में थी। आजीविक और बौद्ध धर्म की निव- आत्मज्ञानशून्य इतनी तो कमजोर थी कि वह उदय पाके शीघ्रही अस्त हो गया जो. कि जिस भूमिपर उनका जन्म हुवा था वहाँ आज शेष नाममात्र रह गया है जब जैनधर्म्म की नींव सरूमें ही अध्यात्मज्ञान, आत्मज्ञान, तत्त्वज्ञान, विज्ञानिक और स्याद्वादद्वारा ऐसी तो सुदृढ पायापर रची गइ थी की उनके अभेद कीला के अन्दर वादियों का प्रवेश होना भी मुश्किल है जैनधर्म का खास उद्देश्य सांसारिक प्रवृति से निवृत हो आत्मकल्यान करने का है इस सुदृढ नींव के कारण ही जैनधर्म सर्व धर्मो से उच्चासन भोगव रहा है जैन जनता की संख्या कम होने पर भी उनकी मजबुत नींव के कारण अन्योन्य धर्मो से टकर खाता हुवा भी आज अपने पैरोंपर खडा हो अपने धर्म का महत्व विश्वव्यापि बना रहा है। अस्तु.

पूर्वोक्त धर्मो के सिवाय पंचभूतवादी, जडवादी, अज्ञेयवादी और नास्तिकादि केइ छोटे वडे धर्म और उन की साखाए प्रच-

लित थी पर सूर्य (जैनधर्म्म) का प्रकाश के सामने तारों का तेज हमेशों झाखा पड़ जाता है ।

भगवान् महावीरदेवका निर्वाण ।

भगवान् महावीर प्रभु कैवल्यावस्था में तीस वर्ष भूमण्डलपर भ्रमन कर हजारो लाखो नहीं पर क्रोडों मनुष्यों को अशान्ति का आवेग से बचा के शान्ति की सिधी सडक पर ले आये । असंख्य दीन, मुक, निरपराधि प्राणियों को अभयदान प्रदान कर अहिंसा परमोधर्म का झंडा भूमण्डलपर फरका दीया नैतिक, समाजिक और धार्मिक तुटि हुई शृंखला का सर्वाङ्ग सुन्दर बनाया. अनेक राजा महाराजा, नवयुवक राजकुमार–राजअन्तेउर, शेठ साहुकारों कों जैन धर्मकी दीक्षा दे मोक्ष के अधिकारी बनाये. अनेक भव्यों को गृहस्थ धर्म के व्रत दीये. इत्यादि.

बारहा चतुर्मास राजगृह नगर में, एकादश विशाला वाणिया ग्राम मे, छ मथुरा, और अन्तिम चातुर्मास पावापुरी नगरी के राजा हस्तपाल की रथशाला मे किया–मुनि आर्यिकाए श्रावक श्राविका अनक राजा महाराज देव देवेन्द्र नर नरेन्द्रों से परिपूजित भगवान् महावीर प्रभु कार्तिक कृष्ण अमावश्या की मध्य रात्रि में शेप नाममात्र रहे हुए अघातिचार कर्मो का नाश कर अर्थात् सकल कर्मोपाधि से मुक्त हो भगवान् महावीरदेव मोक्ष पधार गये । जिस रात्रि में भगवान् महावीर प्रभु का मोक्ष हुवा उसी रात्रि मे देव देवियों सहित इन्द्रोंने भगवान् का निर्वाण

कल्याण महोत्सव किया भावानुद्योत चला जाने पर लोगोंने दीपक वगैरह से द्रव्योद्योत किया उसी का अनुकरणरूप आज दीपमालीका का महोत्सव मनाया जाता है।

जिस रात्रि में भगवान् महावीर का निर्वाण हुवा था. उसी रात्रि के प्रातः समय गणधर इन्द्रभूति (गौतम) को कैवल्य ज्ञानोत्पन्न हुवा, जो भगवान् के निर्वाण से श्रीसंघ में शोक के बद्दल छा गये थे. मानों उस का निवारणार्थ ही मय देव देवि के इन्द्रोंने कैवल्य महोत्सव किया। तत्पश्चात् भगवान् महाप्रभु के पट्टपर एक शासन नायक सामर्थ्य आचार्य कि आवश्यक्ता हुई भगवान् महावीर के इग्यार गणधरों से नौ गणधर वों भगवान् की मौजुदगी में ही मोक्ष पधार गये. भगवान् गौतमस्वामी कों कैवल्यज्ञान हो आया शेष रहे सौधर्म्म गणधर को सकल संघ की सम्मति पूर्वक भगवान् महावीर प्रभु के पट्टपर आचार्य नियुक्त कर चतुर्विध संघ उन्ह की आज्ञा सिराह्वार करते हुवे अपने अपने आत्मा का कल्याण करने लगे। भगवान् सौधर्म्माचार्य भी अपनि शिष्य समुदाय के साथ भूमण्डलपर विहार करते हुवे अनेक भव्यात्माओं का कल्यान करने को प्रवृतमान हुए इति वीर चरित्रम् ।

जैन तीर्थंकर भगवान् । इन्ह जगदोद्धारक महान् आत्मा के लिए ऐसा नियम है कि, वह तीसरे भवपूर्व वीसस्थानक जैसे अरिहन्त, सिद्ध प्रवचन, गुरु, स्थविर. बहुश्रुति--गीतार्थ, तपस्वी, ज्ञान का उत्कृष्ट पठन पाठन, दर्शनपद, विनयपद, आवशक, निर-

तिचार व्रत का पालन, अध्यात्म ध्यान, उत्कृष्ट तपश्चर्या, अभयदान सुपात्रदान, चतुर्विध संघकी व्यावच, समाधि, विनय भक्तिपूर्वक अपूर्व ज्ञान का पढना. सूत्र सिद्धान्त की भक्ति, मिथ्या मत कों हटा के शासन की प्रभावना, तीर्थादि पवित्र भूमि कि यात्रा पूर्वोक्त वीस उतम कारणों की उत्कृष्ट भावना से आराधना कर के तीर्थंकर नाम कर्मोपार्जन करते है या तीन भवों क पूर्व भी तीर्थंकर नामकर्म के दलक एकत्र कर लेते है पर धनबन्ध तीसरे भव पूर्वक ही होते है ।

(२) सब तीर्थंकरों के चवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य ज्ञानोत्पन्न और निर्वाण कल्यान मय देवदेवि के इन्द्र महाराज करते है ऐसा निश्चय है ।

(३) सब तीर्थंकरों के चौतीस अतिशय—पैंतीस वानि के गुण, अष्ट महा प्रतिहार और अनंत चतुष्ट सामान ही होते है ।

(४) भगवान् ऋषभदेव के ८ महावीर प्रभु के १२ शेष बावीस तीर्थंकरों के दो दो समवसरण हुवें अर्थात् जहाँ जहाँ मिथ्यात्व का अधिक जोर हो वहां वहां इन्द्र आदि देव समवसरण की दिव्य रचना करते है ।

(५) चौवीस तीर्थंकरों से २१ तीर्थतक इक्ष्वाकु कुल में मुनिसुव्रत, और नेमिनाथ भगवान् हरीवंश कुल और भगवान् महावीर प्रभु काश्यपगोत्र अर्थात् सब तीर्थंकर उत्तम जाति कुल विशुद्ध वंश मे ही उत्पन्न होते है ।

(६) सर्व तीर्थंकरों के मुनि आर्यिकाए श्रावक और श्राविकाए की संख्या बतलाइ है वह तीर्थंकरों के मोजुदगी में थे वह भी उच्च कोटि सर्वोत्कृष्ट व्रत के पालन करनेवालों कि जैसे मुनि उत्तम ग्रन्थादि की रचना और श्रावक बारहा व्रत और प्रतिमा धारण करनेवालों की समझना साधारण तय तो जैनधर्म विश्वव्यापि था. भगवान् ऋषभदेव से नौवा सुविधिनाथ के शासन तक तों सम्पूर्ण जगत् का धर्म एक जैन ही था तत्पश्चात् भी प्रबल्यता जैनधर्म की ही थी. अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर प्रभु के उपासक चालीस क्रोड जनता जैनधर्म पालन कर रही थी- चौवीस तीर्थंकर बारह चक्रवर्ति नौ बलदेव नौ वासुदेव नौ प्रति-वासुदेव इन त्रिषष्टि पुरुषों का पवित्र चारित्र विस्तार पूर्वक पढना चाहे वह त्रिशष्टि सिलाका पुरुष चारित्र जो संस्कृत और भाषा दोनो में मुद्रित हो चुका है उस को मगवा कर पढे, प्रस्तुत चारित्र में केवल धार्मिक विषय ही नहीं पर साथ में नैतिक समाजिक और व्यवहारिक विषयपर भी वडे वडे व्याख्यान है. इति तीर्थंकर चरित्र समाप्तम् ।

इति जैनजाति महोदय द्वितीय प्रकरण समाप्तम्.

क्रमांक	चक्रवर्ति नाम.	माता	पिता	नगरो.	शरीरमान.	आयुष्य.	जिनतीर्थ.	गती.	वंश.
१	भरतचक्री	सुमंगला	ऋषभदेव	विनीता	५०० धनुष	८४००००० ल. पूर्व	श्री ऋषभदेव	मोक्ष	इक्ष्वाकुवंश
२	सागर ,,	यशोमति	सुमित्र	अयोध्या	४५० ,,	७२००००० लक्षपूर्व	,, अजितनाथ	,,	,,
३	मघवा ,,	भद्रा	समुद्रविजय	सावत्थी	५० ,,	५००००० वर्ष	धर्म–शान्तिके अन्तर	तीजादेवलोकमें	,,
४	सनत्कुमार ,,	सहदेवी	अश्वसेन	हस्तनापुर	४५ ,,	३००००० ,,	,,	,,	,,
५	शान्ति ,,	अचरा	विश्वसेन	गजपुर	४० ,,	१००००० ,,	स्वशासन	मोक्ष	,,
६	कुंथु ,,	श्रीराणी	शूरराजा	,,	३५ ,,	९५००० ,,	,,	,,	,,
७	अर ,,	श्रीदेवी	सुदर्शन	,,	३० ,,	८४००० ,,	,,	,,	,,
८	सुभूम ,,	ताराराणी	कृतवीर्य	हस्तनापुर	२८ ,,	६०००० ,,	अर मल्लीके अन्तर	७ नरकमें	,,
९	महापद्म ,,	ज्वालाराणी	पद्मोत्तर	बनारसी	२० ,,	३०००० ,,	मुनिसुव्रत नमी	मोक्ष	,,
१०	हरीसेन ,,	मेरादेवी	महाहरी	कंपीलनगर	१५ ,,	१०००० ,,	अन्तर्में हुवे	,,	,,
११	जयनाम ,,	वप्रादेवी	विजयराजा	राजग्रही	१२ ,,	३००० ,,	२१–२२ अंतरमे	,,	,,
१२	ब्रह्मदत्त ,,	चुलनीराणी	ब्रह्मराज	कंपीलनगर	७ ,,	७०० ,,	२२–२३ अंतरमे	नरक ७	,,

संख्या.	वासुदेव ना.	माता नाम.	पीता नाम.	शरीर मान.	आयुष्य.	ग्राम.	जिनतीर्थ.	गती.
१	त्रिपृष्ठ	मृगावती	प्रजापती	८० धनुष्य	८४ लक्ष वर्ष	पोतनपुर	श्रेयांस	७ पृथ्वी
२	द्विपृष्ठ	पदमादेवी	ब्रह्मराजा	७० ,,	७२ ,,	द्वारका	वासपूज्य	६ ,,
३	स्वयंभू	पृथ्वीदेवी	भद्रराजा	६० ,,	६० ,,	,,	विमलनाथ	६ ,,
४	पुरुसोतम	सीतादेवी	सोम राजा	५० ,,	३० ,,	,,	अनंतनाथ	६ ,,
५	पुरुषसिंह	अमृतादेवी	शिव राजा	४० ,,	१० ,,	अम्बपुर	धर्मनाथ	६ ,,
६	पुरुषपुंडरीक	लक्ष्मीवती	महासिर	२६ ,,	६५००० वर्ष	चक्रपुरी	१८–१६ ना अन्तरमे	६ ,,
७	दत नामा	सेषवती	अग्निसिंह	२६ ,,	५६००० ,,	कानीनगर	१८–१९ ना अन्तर	५ ,,
८	लक्षमण	सुमित्राराणी	दशरथ राजा	१६ ,,	१२००० ,,	अयोध्या (राजग्रही)	२०–२१ ना अन्तर	४ ,,
९	श्रीकृष्ण	देवकी	वसुदेव	१० ,,	१००० ,,	मथुरा	२२ माके तीर्थमें	३ ,,

सं.	बलदेव नाम.	माता.	पिता.	गति.	प्रतिवासुदेव	आयुष्य
१	अचल	भद्रा	प्रज्यापति	मोक्ष	अश्वगिरि	८५००००० वर्ष
२	विजय	सुभद्रा	ब्रह्मराजा	,,	तारक	७५ ,,
३	भद्र	सुप्रभा	भद्रराजा	,,	मेरक	६५ ,,
४	सुप्रभ	सुदर्शना	सोमराजा	,,	मधु	५५ ,,
५	सुदर्शन	विजया	शिवराजा	,,	निकुंभ	१७ ,,
६	आनंद	विजयंती	महासिंह	,,	बली	८५०००
७	नंद	जयंति	अग्निसिंह	,,	प्रल्हाद	५,०१००
८	रामचंद्र	अप्राजीता	दशरथ	,,	रावण	१५,०००
९	बलभद्र	रोहणी	वसुदेव	ब्रह्मदेव लोक	जरासिंघ	१२००

नगर शरीरमान और तीर्थंकरोंका शासन वासुदेव यंत्रसे जानना

नं.	तीर्थंकर नाम	पितानाम	मातानाम	जन्मस्थान	लच्छन	शरीर वर्ण	शरीरमान	आयुष्यमान
१	ऋषभदेव	नाभिराजा	मरुदेवा	अयोध्या	वृषभ	सुवर्ण	५०० धनुष्य	८४ लक्षपूर्व
२	अजितनाथ	जितशत्रु ,,	विजया	,,	हस्ती	,,	४५० ,,	७२ ,,
३	संभवनाथ	जितारी ,,	सेनाराणी	श्रावस्ति	अश्व	,,	४०० ,,	६० ,,
४	अभिनंदन	संवरराजा	सिद्धार्था	अयोध्या	बन्दर	,,	३५० ,,	५० ,,
५	सुमतिनाथ	मेघरथ ,,	सुमंगला	,,	क्रौंच	,,	३०० ,,	४० ,,
६	पद्मप्रभ	श्रीधर ,,	सुसीमा	कौसंबी	पद्म	रक्त	२५० ,,	३० ,,
७	सुपार्श्वनाथ	सुप्रतिष्ठ ,,	पृथ्वी	काशी	स्वस्तिक	सुवर्ण	२०० ,,	२० ,,
८	चन्द्रप्रभ	महासेन ,,	लक्ष्मणा	चन्द्रपुरी	चंद्र	श्वेत	१५० ,,	१० ,,
९	सुविधिनाथ	सुग्रीव ,,	रामा	काकंदी	मकर	,,	१०० ,,	२ ,,
१०	शितलनाथ	दृढरथ ,,	नंदा	भद्दिलपुर	श्रीवत्स	सुवर्ण	९० ,,	१ ,,
११	श्रेयांसनाथ	विष्णु ,,	विष्णा	सिंहपुर	गेंडो	,,	८० ,,	८४ लक्षवर्ष
१२	वासुपूज्य	वसुपूज्य ,,	जया	चम्पा	पाडो	रक्त	७० ,,	७२ ,,

१३	विमलनाथ	कृतवर्मा ,,	श्यामा	कंपीलपुर	सूवर	सुवर्ण	६० धनुष्य	६० लक्षवर्ष
१४	अनंतनाथ	सिंहसेन ,,	सुयशा	अयोध्या	सिंचाणो	,,	५० ,,	३० ,,
१५	धर्मनाथ	भानु ,,	सुव्रता	रत्नपुर	वज्र	,,	४५ ,,	१० ,,
१६	शान्तिनाथ	विश्वसेन	अचिरा	हस्तीनापुर	मृग	,,	४० ,,	१ लक्षवर्ष
१७	कुंथुनाथ	सूरराजा	श्रीदेवी	,,	बकरो	,,	३५ ,,	९५ हजारवर्ष
१८	अरनाथ	सुदर्शन ,,	देवि	,,	नंदावर्त	,,	३० ,,	८४ ,,
१९	मल्लिनाथ	कुंभ ,,	प्रभावती	मिथिला	कुंभ	निल	२५ ,,	५५ ,,
२०	मुनिसुव्रत	सुमित्र ,,	पद्मा	राजगृह	काचवो	कृष्ण	२० ,,	३० ,,
२१	नमिनाथ	विजय ,,	विप्रा	मिथिला	निलकमल	सुवर्ण	१५ ,,	१० ,,
२२	नेमिनाथ	समुद्रवि० ,,	शिवा	शौरीपुर	शंख	कृष्ण	१० ,,	१ ,,
२३	पार्श्वनाथ	अश्वसेन ,,	वामा	बनारसी	सर्प	निल	९ हाथ	१०० वर्ष
२४	महावीर	सिद्धार्थ ,,	त्रीशला	क्षत्रीकुंड	सिंह	सुवर्ण	७ ,,	७२ वर्ष

इन चौवीसों तीर्थंकरोंका जन्म पवित्र क्षत्रिय कूलमें हुवा है जिस्में २१ तो इक्ष्वाक कुल दोय हरिवंस और एक काश्यप कुलमें अवतार लीया है।

जैन जातिमहोदय।

[तृतीय प्रकरण]

श्री रत्नप्रभसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः

अथ श्री

जैन जाति महोदय.

तीसरा प्रकरण.

नत्वा इन्द्र नरेन्द्र फणीन्द्र, पूजित पाद सदा सुखदाई ।
कैवल्यज्ञान दर्शन गुणधारक, तीर्थंकर जग जोति जगाई ॥
करुणावंत कृपाके सागर, जलता नागको दीया बचाई ।
वामानंदन पार्श्वजिनेश्वर, वन्दत 'ज्ञान' सदा चितलाई ॥

(२)

पालित पञ्चाचार अखण्डित, नौविध ब्रह्मव्रतके धारी ।
करी निकन्दन चार कषायको, कब्जे कर पंच इन्द्रियप्यारी ॥
पञ्च महाव्रत मेरु समाधर, सुमति पंच बडे उपकारी ।
गुप्ति तीन गोपि जिस गुरुको, प्रतिदिन वन्दित 'ज्ञान' आभारी ॥

(३)

संस्कृत दिव वाणि प्राकृत, रची पट्टावलि पूर्वधारी ।
तांको यह भाषान्तर हिन्दी, बाल जीवोंको है सुखकारी ॥
सरल भाषाको चाहत दुनियो, परिश्रम मेरा है हितचारी ।
ओसवंस उपकेश गच्छते, प्रगट्यो पुण्य 'ज्ञान' जयकारी ॥

तेवीसवां तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ का पवित्र जीवन के विषयमें "पार्श्वनाथ चरित्र" नाम का एक स्वतंत्र ग्रन्थ प्रसिद्ध हो चुका है पार्श्वनाथ भगवान् के दश भवां सहित वर्णन कल्पसूत्र में छप चुका है पार्श्वनाथ प्रभु की संक्षिप्त जीवनी इसी किताब का दूसरा प्रकरण में हम लिख आये है भगवान् पार्श्वनाथ मोक्ष पधारने के बाद आपके शासन की शेष हिस्ट्री रह जाती है वह ही इस तीसरा प्रकरण में लिखी जाति है।

(१) भगवान् पार्श्वनाथ के पहले पाट पर आचार्य शुभदत्त हुए--भगवान् पार्श्वनाथ के मोक्ष पधार जानेपर चार प्रकारके देवता और चौसठ इन्द्रोंने भगवान् का शोकयुक्त निर्वाण महोत्सव कीया तत्पश्चात् जैसे सूर्य के अस्त हो जाने से लोक में अन्धकार फैल जाता है इसी प्रकार धर्म्मनायक तीर्थंकर भगवान् के मोक्ष पधार जाने पर लोकमें अज्ञान अन्धकार छा गया। सकल संघ निरूत्साही हो गये. तदनन्तर चतुर्विध संघने पार्श्वनाथ भगवान् के पाट पर श्री शुभदत्त नामक गणधर "जो आठ गणधरों में सबसे बडे थे," को निर्वाचित किया, सूर्य के अस्त हो जाने पर भी चन्द्रका प्रकाश लोगोंको हितकारी हुवा करता है उसी भांति भगवान् के मोक्ष पधार जाने पर आचार्य शुभदत्तसूरि चन्द्रवत् लोक में प्रकाश करने लगे, आचार्य श्री द्वादशांगी के पारगामि श्रुत केवली जिन नहीं पर जिन तूल्य सद्उपदेशद्वारा जैनधर्म्मकी उन्नति करते हुवे और तप संयमादि आत्मबलसे कर्म्म शत्रुओं को पराजय कर आपने कैवल्य ज्ञानदर्शन प्राप्त किया. फिर भूमण्डल पर वि-

हार कर अनेक भव्य जीवोंका उद्धार कर शासनकी खूब ही प्रभावना करी. आपके शिष्य समुदाय भी बहुत विशाल संख्या में जैन धर्म का प्रचार बढा रही थी. आपश्री के पवित्र जीवन के विषय में पट्टावलिकारने विशेष वर्णन न करते हुए यह ही लिखा है कि आप अपनी अन्तिमावस्था में शासन का भार आचार्य हरिदत्तसूरि को अर्पणकर आपश्री सिद्धाचलजी तीर्थपर एक मास का अनशन पूर्वक चरम श्वासोश्वास और नाशमान शरीर का त्याग कर अनंत सुखमय मोक्ष मन्दिरमें पधार गये इति पार्श्वनाथ प्रभुके प्रथम पट पर हुवे आचार्य शुभदत्तसूरि ।

(२) आचार्य शुभदत्तसूरि मोक्ष पधार जाने पर श्री संघ में बहुत रंज हुवा तत्पश्चात् आचार्य हरिदत्तसूरि को संघ नायक नियुक्त कर सकल संघ उन सूरिजी की आज्ञा को शिरोद्धारण करते हुवे आत्मकल्याण करने में तत्पर हुवे आचार्य श्री श्रुत समुद्र के पारगामी, वचन लब्धि, देशनामृत तूल्य, उपशान्त, जीतेन्द्रिय, यशस्वी, परोपकार परायणादि अनेक गुण संयुक्त भूमण्डल में विहार करने लगें । दूसरी तरफ यज्ञहोम में असंख्य प्राणियोंकी बली देनेवालों का भी पग पसारा विशेष रूपमें होने लगा । हजारो लाखो निरापराधी पशुओं का बलीदान से स्वर्ग बतलानेवालों की संख्या में वृद्धि होने लगी । परिव्राजक प्रव्रजित सन्यासी लोगोंने इसके विरूद्ध में खडे हो यज्ञ में हजारो लाखों पशुओंका बलिदान करना धर्म्म विरूद्ध निष्ठूर कर्म्म बतला रहे थे आचार्य हरिदत्तसूरि के भी हजारो मुनि भूमण्डल पर "अहिंसापरमो धर्म्मः" का झंडा

फरका रहे थे। एक समय विहार करते हुवे आचार्य श्री अपने ५०० मुनियों के परिवार से स्वस्तिनगरी के उद्यान में पधारे वहां का राजा अदीनशत्रु व नागरिक बडे ही भक्तिपूर्वक आडम्बरसे सूरिजी को वन्दन करने को आये आचार्यश्रीने बडे ही उच्चस्वर और मधुरध्वनि से धर्म्मदेशना दी. श्रोताजनों पर धर्म्मकी अच्छी असर हुई। यथाशक्ति व्रत नियम किये तत्पश्चात् परिषदा विसर्जन हुई। जिस समय आचार्य हरिदत्तसूरि स्वस्ति नगरी के उद्यान में विराजमान थे उस समय परिव्राजक लोहिताचार्य भी अपने शिष्य समुदायके साथ स्वस्तिनगरीके बहार ठेरे हुवे थे। दोनोंके उपासकलोग आपसमें धर्म्मवाद करने लगे, यहांतक कि वह चर्चा राजा अदिनशत्रु की राजसभा तक भी पहुंच गइ। पहले जमाना के राजाओं को इन वातों (चर्चा) का अच्छा शौख था. राजा जैनधर्म्मोपासक होनेपर भी किसी प्रकारका पक्षपात न करता हुवा न्यायपूर्वक एक सभा मुकरर कर ठीक टैमपर दोनों आचार्यों को आमन्त्रण किया. इसपर अपने अपने शिष्य समुदाय के परिवारसे दोनों आचार्य सभामें उपस्थित हुवे। राजाने दोनों आचार्यों को बडे ही आदर सत्कार के साथ आसनपर विराजने की विनंति करी. आचार्य हरिदत्तसूरि के शिष्योंने भूमि प्रमार्जन कर एक कामलीका आसन बीछा दीया। राजाकी आज्ञा ले सूरिजी विराजमान हो गये इधर लोहित्ताचार्य भी मृगछाला बीछा के बैठ गये तदन्नतर राजाको मध्यस्थ तरीके मुकरर कर दोनों आचार्यों के आपुस में धर्म्मचर्चा होने लगी. विशेषता यह थी कि सभाका होल

खीचोखीच भरजाने पर भी शास्त्रार्थ सुनने के प्यासे लोग बडेही शान्तचितसे श्रवणकर रहे थे. लोहीताचार्यने अपने धर्म्मकी प्राचीनता के बारेमें केइ युक्तियों व प्रमाण दिये जो कि सब कपोल कल्पित थे, और जैनधर्म के विषय में कहा कि जैनधर्म पार्श्वनाथजी से चला है ईश्वरको मानने में जैन इन्कार करते है। इत्यादि इसपर श्री हरिदत्ताचार्यने फरमाया कि जैनधर्म नूतन नहीं परन्तु वेदोंसे भी प्राचीन है वेदोंमे भी जैनाके प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव व नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के नामोंका उल्लेख है (देखो वेदोंकी श्रुतियों पहला प्रकरण में) वेदान्तियोंने भी जैनतीर्थंकरोंको नमस्कार किया है। राजा भरत–सागर दशरथ रामचंद्र श्रीकृष्ण और कौरव–पाण्डु यह सब महा पुरुष जैन धर्मोपासक ही थे। दूसरा जैन लोग ईश्वरको नहीं मानते यह कहना भी मिथ्या है। जैसे ईश्वरका उच्चपद और श्रेष्टता जैनोंने मानी है वैसी किसीने भी नहीं मानी है। अन्य लोगोंमें कितनेक तो ईश्वर को जगतके कर्त्ता मान ईश्वरपर अज्ञानता व निर्दयताका कलंक लगाया है। कितनेकोंने सृष्टिको संहार और कितनेकोंने पुत्रीगमनादिके कलंक से व्यभिचारी भी बना दीया है इत्यादि। हाँ जैन ईश्वरको जगतके कर्त्ता हर्त्ता तो नहीं मानते है पर सर्वज्ञ शुद्धात्मा अनंतज्ञान दर्शनमय निरंजन निराकार निर्विकार ज्योतिस्वरूप परमब्रह्म सकल कर्म रहित मानते है। फिर ईश्वर को पुनः पुनः अवतार धारण करना भी जैन नहीं मानते हैं इत्यादि वादविवाद प्रश्नोत्तर होता रहा अन्तमें लोहिताचार्य को सद्ज्ञान प्राप्त होनेसे अपने १००० साधुओं के साथ

आप आचार्य हरिदत्तसूरि के पास जैन दीक्षा धारण करली, इस्के साथ सेंकडो हजारो लोग जो पहलेसे ही यज्ञकर्मसे त्रासित थे वह सूरिजीका सद्ज्ञानसे प्रतिबोध पाके जैनधर्म्मको स्वीकार कर लीया। क्रमशः लोहितादि मुनि आचार्य हरिदत्तसूरि के चरण-कमलों में रहते हुवे जैन सिद्धान्तों के पारगामी हो गये तत्पश्चात लोहित मुनिको गणिपदसे विभूषित कर १००० मुनियोंको साथ दे दक्षिण की तरफ विहार करनेकी आज्ञा दी। कारण वहां भी पशुवधका बहुत प्रचार था। आपश्री अहिंसा परमो धर्म्मः का प्रचार करने में बडे ही विद्वान और समर्थ भी थे. आचार्य हरि-दत्तसूरि चिरकाल पृथ्वीमण्डल पर विहार कर अनेक भव्य आत्माओं का उद्धार करते हुवे धर्म्मका प्रचार शासनकी उन्नति और शिष्य समुदाय में वृद्धि करी। तत्पश्चात् आपश्री अपनी अन्तिम अवस्थाका समय नजदीक जान अपने पदपर आर्य समुद्रसूरिको स्थापन कर आप २१ दिनका अनशन पूर्वक वैभार गिर उपर समाधि पूर्वक इस नाशमान शरीरका त्याग कर स्वर्ग सिधारे। इति दूसरापाट्ट

(३) आचार्य हरिदत्तसूरिके पाट पर आचार्य आर्य्यसमुद्र-सूरि महा प्रभाविक विद्याओं और श्रुतज्ञानके समुद्र ही थे आपके शासन कालमें थोडा बहुत यज्ञवादियोंका प्रचार भी था हजारों लाखो निरापराधि पशुओंके कोमल कण्ठपर निर्दय दैत्य छूरा चलानेमें ही धर्म्म बतला रहे थे। और धर्म्म के नामसे मांस मदिरादि अनेक अत्याचार स्वयं करते थे और दुनियोंको भी छुट दे रखी थी

उसमें ही मोक्ष व स्वर्ग बतला रहे थे । इधर आचार्यश्रीके मुनि समुदाय विशाल संख्यामें पूर्व बंगाल ऊडीसा पंजाब मुल्तानादि जिस २ देशमें विहार करते थे उस २ देशमें अहिंसाका खुब प्रचार कर रहे थे । उधर लोहितगणि दक्षिण करणाटक तैलंग महाराष्ट्रियादि देशोंमें विहार कर अनेक राजा महाराजाओं कि राजसभामें उन पशु हिंसकों का पराजय कर जैनधर्म्मका झंडा फरका रहे थे आपके उपासक मुनिगण कि संख्या करीबन् ६००० तक पहुंच गइ थी. दक्षिणमें अन्योऽन्य मत्तके आचार्यों को देख दक्षिण जैनसंघने लोहित गणिको इसपद के योग्य समज आचार्य आर्य्यसमुद्रसूरि की सम्मति मंगवाके अच्छा दिन शुभ मुहूर्त में लोहितगणि को आचार्य पद्विसे विभूषीत किये, आगे चल कर दक्षिण विहारी मुनियोंकी ' लोहित साखा ' और उत्तर भारतमें विहार करनेवाले मुनियोंकी ' निर्ग्रन्थ समुदाय ' के नामसे ओलखाने लगी. दोनों श्रमण समुदायोंने हाथमें धर्म्मदंड लेकर उत्तरसे दक्षिणतक जैनधर्म्मका इस कदर प्रचार कर दिया कि वेदान्तियोंका सूर्य अस्ताचल पर चलेजानेसे नाममात्र के रह गये थे.

आर्य्यसमुद्रसूरि के शिष्योंमे, ' विदेशी नामका ' एक महा प्रभाविक अतिशय ज्ञानी मुनि जो ५०० मुनियों के साथ विहार करते हुवे अवंति (उज्जैन) नगरी के उद्यानमें पधारे वहां का राजा जयसेन तथा महाराणी अनंगसुन्दरी और करीबन १० वर्षकी आयुष्यवाला बालपुत्र केशीकुमारादि नागरिक मुनिश्री को वन्दन करनेको आये. मुनिजीने संसार तारक दुःखनिवारक

और परम वैराग्यमय देशना दी उसको श्रवणकर परिषदा यथाशक्ति व्रत नियम लीये तत्पश्चात् मुनिको वन्दन कर परिषदा विसर्जन हुई पर राजपुत्र केशीकुमर पुनः पुनः मुनिश्रीके सन्मुख देखता वहांही बेठा रहा फीर प्रश्न किया कि हे करूणासिन्धु ! में जैसे जैसे आपश्रीके सामने देखता हुँ वैसे वैसे मेरेको अत्यन्त हर्ष होता है पूर्व एसा हर्ष मुझे किसी कार्य्य में भी न हुवा था इतना ही नहीं पर आप पर मेरा इतना धर्म्म प्रेम हो गया है कि जिस्कों में जबानसे कहनेको भी असमर्थ हुँ.

मुनिश्रीने अपना दिव्यज्ञान द्वारा उस भाग्यशाली कुमर का पूर्व भव देखके कहा कि राजकुमर ! तुमने पूर्वभवमें इस जिनेन्द्र दीक्षा का पालन कीया है वास्ते तुमको मुनिवेष (मेरे) पर राग हो रहा है कुमरने कहा कि भगवान् ! क्या सच ही मेंने पूर्वभव में जैन दीक्षा का सेवन कीया है ? अगर एसा ही हो तो कृपा कर मेरा पूर्व जनम का हाल सुनाइये इसपर मुनिने कहा कि हे राज-कुमार ! सुन, इसी भारतवर्ष में धनपुर नगरका पृथ्वीधर राजा था उसकी सौभाग्यदेविके सात पुत्रियों पर देवदत्त नामका कुमार हुवा. वह बाल्यावस्थामें ही गुणभूषणाचार्यके पास दीक्षा ले चिरकाल दीक्षापाल अन्तमें सामाधिपूर्वक कालकर पंचवा ब्रह्मस्वर्गमें देव पने उत्पन्न हुवा वहांसे चव कर तुं राजा का पुत्र केशीकुमार हुवा है यह हाल सुनके कुमरने उहापोह लगाया जिनसे जातिस्मरण ज्ञानोत्पन्न हुवा मुनिने कहा था वह आप प्रत्यक्ष ज्ञान के जरिये सब हाल आबेहुब देखने लग गया बस फिर क्या था ! ज्ञानियोंके लिये

दीक्षा रंगसे रंगीत बालवयमें, केशीकुमार अपने माता पिताके साथ आर्यसमुद्र सूरिदेवके चरणोंमें हाजर हुए और दिक्षा दानके लिए प्रार्थना की.

Lakshmi Art, Bombay, 8.

सांसारिक राजसम्पदा सब कारागृह सदृश ही है कुमर तो परम वैराग्य भावको प्राप्त हो मुनिश्रीसे अर्ज करी की हे भगवान् ! मेरे मातापिताकी आज्ञा ले में आपके पास दीक्षा लुंगा। मुनिने कहा 'जहा सुखम्' तत्पश्चात्–मुनिको वन्दन कर अपने मकानपर आया मातापितासे दीक्षा की ाज्ञा मांगी पर १० वर्षका बालक दीक्षामें क्या समजे एसा जान मातापिताने एक किस्म की हांसी समजली प जब कुमरका मुखसे ज्ञानमय वैराग्य रस रंगमे रंगित शब्द सुना तब मातापिता खुद ही संसारको असार जान बडा पुत्रको राज दे आप अपने प्यारा पुत्र केशी कुमार को साथ ले विदेशी मुनिके पास बडे आडम्बर के साथ जैन दीक्षा धारण कर ली. जयसेन राजर्षि और अनंगसुन्दरी आर्यिका ज्ञान ध्यान तप संयमसे आत्म कल्यान करने लगे। इधर केशीकुमार श्रमण जातिस्मरण ज्ञानसे जो पूर्व भवमें पढा हुवा ज्ञानका स्मरण करते ही सब ज्ञान स्मृतिमें आ गया तथा विशेषमें ज्ञानाभ्यास करता हुवा स्वल्प समयमें श्रुत समुद्र का पा गामी हो गया। आचार्य आर्य्यसमुद्रसूरि अपने जीवन कालमें शासन की अच्छी उन्नति कर अपनि अन्तिमावस्था जान केशीश्रमण को अपने पद पर नियुक्तकर आपश्री सिद्धक्षेत्रपर संलेखनां करते हुवे १५ दिनोंका अनसन पूर्वक स्वर्गगमन कीया इति तीसरा पाट.

(४) आचार्य आर्य्यसमुद्रसूरि के पाट पर आर्य्यकेशीश्रमणाचार्य बालब्रह्मचारी अनेक विद्याओं के पारगामि देव देवियांसे पूजित अपने निर्मल ज्ञानरूपी सूर्य का प्रकाशसे भव्यों के मिथ्या-

स्वरुप अंधकारका नाश करते हुवे भूमण्डलपर विहार करने लगें इधर दक्षिणविहारी लोहिताचार्य का स्वर्गवास हो जाने के बाद मुनिवर्गमें निर्नायकता के कारण आपुसमें फूट शिथिलता पड जानेसे अन्य लोगों को अवकाश मिल जाना यह स्वभाविक बात है वह भी अपना पग-पसारा करना सरु करदीया मतमतान्तरोंके वादविवादमें आत्मशक्तियों का दुरुपयोग होने लगा. यज्ञ कर्म और पशु हिंसकों का फिर जोर वढने लगा धार्मिक और सामाजिक श्रृंखलनायेंमें भी परावर्तन होने लगा.

यह सब हाल उत्तर भारतमें रहे हुवे केशीश्रमणाचार्यने सुना तब दक्षिण भारतमें विहारकरनेवाले मुनियोंको अपने पास बुलवा लिये तथापि कितनेक मुनि वहाँपर रह भी गये थे. दक्षिणविहारी मुनि उत्तरमें आने पर कुच्छ अरसा के बाद वहां भी वह ही हालत हुई कि जो दक्षिणमे थी। इधर आचार्यश्री घर की बिगडी सुधारने में लग रहे थे तब उधर पशुहिंसक यज्ञवादीयोंने अपना पक्ष मजबुत करनेमें प्रयत्नशील बन यज्ञका प्रचार करने लगे. घरकी फूटके परिणाम एसे ही हुवे करते है उस समय भारतीय सामाजिक दृश्य कुच्छ विचित्र प्रकारका था.

आज इतिहासकी शोधखोजसे पता मिलता है कि वह जमाना भारतवर्षके लिये बडा ही विकट--भीषण था सामाजिक नैतिक और धार्म्मिक श्रृंखलनाए इतनी तो शिथिल पड गइ थी जिसकी भयंकर दशा समाजको भस्म बना रहीथी उस जमानाका विशेष कार-बार ब्राह्मणोंके हस्तगत था, ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्वकों भुल बैठे थे स्वार्थके कीचड में फंस के समाजकों उलटे रास्ते लेजा रहे थे.

क्षत्रिय वर्ग अर्थात् केइ राजा महाराजा उन स्वार्थप्रिय ब्राह्मणोंके हाथ के कटपुतले बनके अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो गये थे। हजारों लाखों निरपराधि प्राणियोंके रक्तकी नदियां बहा रहे थे. समाजका राज-दंड अत्याचारियों के हाथमें जा पडा था, सत्ता अहंकारकी गुलाम बन गई थी सत्ताधारी अपनि सत्ताका दुरूपयोग कर रहे थे। बलवान् निर्बलोंपर अपनि सत्ता जमा रहे थे। शूद्र वर्ण के लोग तो घास फूसकी तरह माने जा रहे थे। धर्म्मपर स्वार्थका साम्राज्य था। कर्त्तव्य सत्ताका गुलाम बन बैठाथा. करूणा पैशाचत्वका रूपको धारण कर रही थी. समाजने अपना मनुष्यत्वकों अत्याचार पर बलीदान कर रखाथा. प्रेम ऐक्यताका नाम तो केवल प्राचीन ग्रन्थोंमें ही रह गया था. इत्यादि ब्राह्मणोंकी अनुचित्त सत्ता मानों समाजमें त्राहि त्राहि मचादीथी उस जमाना में समाजमें मानों एक अग्नि की भट्टी भभक उठी थी इस हालतमें समाज एक जगतोद्धारक महान् पुरुषकी प्रतिक्षा कर रही हो तो वह स्वाभावीक बात है जब जब समाजिक और धार्म्मीक दशाका पतन होता है तब तब किसी न किसी महात्माका अवतार हुवाही करता है.

उसी समय जगतोद्धारक, जगदीश्वर, करूणासिन्धु, शान्तिके सागर, चरमतीर्थंकर, भगवान् महावीरने, अवतार धारण किया, जिन्ह महात्मा महावीरका जीवन चारित्रवडे बडे ग्रन्थोंद्वारा प्रकाशित हो चुका है तथापि संक्षिप्तमें यहाँपर भी परिचय करवा देना समुचित होगा।

क्षत्रिकुण्ड नगरके महाराजा, सिद्धार्थ के त्रिसलादेवी राणि की

पवित्र ' रत्नकुक्ष ' से चैत्र शुक्ल १३ को भगवान् महावीरका जन्म हुवा छप्पन्न दिगकुमारीकाओने सुतिकाकर्म और अनेक देवदेवियोंके साथ चोसठ इन्द्रोंने सुमेरुगिरिपर भगवान् का जन्म महोत्सव किया तत्पश्चात् राजा सिद्धार्थने भी जन्ममहोत्सव बडे ही धामधूम पूर्वक किया. भगवान् के जीवन पवनसे ही जगतका वायुमण्डलमें परिवर्तन होने लगा, क्रमशः शान्ति भी फैलती गई आपका गृहवासका जीवन भी इतना उत्तम और पवित्र है कि जनतामें शुभभावोंका स्वयं सञ्चार होने लगा।

इधर भगवान केशीश्रमणाचार्य अपने श्रमण संघकी एक वैराट् सभाकर उनका कर्त्तव्यपर इतना तो जोरदार अर्थात् असरकारी सचोट उपदेश दीया, उन प्रभावशाली उपदेश का फल यह हुवा कि श्रमण संघने शिथिलताको त्याग कर फूट देविका मुंह काला कर देशनिकाला दिया और अपना कर्त्तव्य पर कम्मर कस तय्यार होगये आचार्यश्रीने उन श्रमणसंघ को निम्नलिखित विहार करनेकी आज्ञाए फरमाई।

५००	मुनियोंसे	वैकुटाचार्यको	कर्णाट तैलंगदेशकी	तरफ
५००	मुनियोंसे	कालिकपुत्राचार्य	दक्षिण महाराष्ट्रीय	,,
५००	मुनियोंसे	गर्गाचार्य	सिन्धुसोवीरकी	,,
५००	,, ,,	यवाचार्य	काशीकोशलकी	,,
५००	,, ,,	अर्हन्नाचार्य	अंगवंगकी	,,
५००	,, ,,	काश्यपाचार्य	संयुक्तप्रान्त	,,
५००	,, ,,	शिवाचार्य	अवंतिकी	,,

इनके सिवाय अन्योअन्य प्रान्तोंमे थोडी थोडी संख्यामें मुनि-

योंको विहार करवाके आप हजारमुनियों के साथ मागधदेश व उनके आसपास के प्रदेशमें विहार किया मानो इन श्रमणसंघने जगत्का उद्धार करनेका एक कंट्राक्ट ही लिया हो आपश्रीके उपदेशकी असर जनतापर इस कदर की हुई कि भुली हुई दुनियों सिधी सडकपर आगई। यज्ञ जैसे निष्ठुर कर्म्ममें निरापराधि असंख्य प्राणीयों का बलीदान होता था उसे बन्धकर जैनधर्मका सरण ले आत्मकल्यान करने लगी। आचार्यश्री वह आपके आज्ञावर्त्ति मुनियों के सदुपदेश का फल यह हुवा की राजा चेटक, दधिवाहन, सिद्धार्थ, विजयसेन, चन्द्रपाल, अदिनशत्रु, प्रसन्नजीत, ऊदाई धर्म्मशील सतानिक जयकेतु दर्शानभद्र और प्रदेशी आदि अनेक राजाओं और साधारण जनताको प्रतिबोध दे जैनधर्म्मके परमोपासक बनाये इत्यादि।

आचार्य केशीश्रमणके शासन में एक पेहित नामक मुनिका शिष्य जिसका नाम 'बुद्धकीर्ति' था वह किसी कारणसे समुदायसे अपमानित हो अपनी अलग खीचडी पकानी चाहता था और इसके लिये बहुत कुच्छ तपश्चर्या आदि प्रयत्न कीया पर उसमें वह सफल नहीं हुवा आखिर "अहिंसा परमो धर्मः" का सरण ले अपने नामसे 'बौधे' धर्म्म प्रचलित कीया। बुद्धने अपने धर्म्म के

---

१ जैन श्वेताम्बर आम्नाय के आचारांग सूत्र की टीकामें बुद्ध धर्म्म का प्रवर्तक मुल पुरुष बुद्धकीर्ति पार्श्वनाथ तीर्थ में एक साधु था जिसने बौद्धधर्म चलाया.

२ दिगम्बर आम्नायका दर्शनसार नामका ग्रन्थमें लिखा है कि पार्श्वनाथ के तीर्थ में पिहित मुनिका शिष्य बुद्धकीर्त्ति साधु जैन धर्म्म से पतित हो मांसमदिराकी आचरण करता हुवा अपना नामसे बोध्ध धर्म्म चलाया है.

नियम एसे तो सिधे और सरल रखा था कि कितने ही अज्ञलोग उन बुद्धकी जालमें फंस गये क्रमशः बुद्धने मांस मदिराकी भी छुट देदी फिर तो कहना ही क्या ? जो वेदान्तियो के यज्ञ कर्मसे त्रासित हुई जनता बुद्धके जंडा निचे शीघ्रही आगई उस समय जैन जनता की संख्या भी कम नहीं थी पर जैनधर्म केवल आत्मकल्याण पर ही निर्भर है और इनके नियम भी इतने सख्त हैं कि संसारलुब्ध जीवों को पालना बडा ही मुश्किल है उनको वह ही पाल सक्ते है कि जिन को आत्मकल्याण करना हो ।

भगवान् महावीर ३० वर्ष गृहवास में रहे मातापिता का स्वर्गवास होने के बाद वर्षीदान देकर नरेन्द्रदेवेन्द्रों के महोत्सवपूर्वक दीक्षा धारण की। भगवान् ने १२॥ वर्ष तक घोर तपश्चर्या करते हुवे अनेक देव मनुष्य और तीर्यंचों के बडे बडे उपसर्गों और परिसहों को सहन करते हुवे पूर्व संचित दुष्ट कर्मों का क्षय कर कैवल्य ज्ञान दर्शन को प्राप्त कर लीया. आप सर्वज्ञ वितराग ईश्वर परमब्रह्म लोकालोक के चराचर पदार्थों का भाव एक ही समय में देखने जानने लगे पूर्व तीर्थंकरों ने निर्देश किया हुवा " अहिंसा परमोधर्म " का तथा तत्त्व ज्ञान, अध्यात्म ज्ञान का बडे ही तेजी से प्रचार कीया और पूर्व नियमों का संशोधन करते हुवे भगवान् महावीरने बडे ही बुलंद अवाज

---

३ बोद्ध ग्रन्थोमें लिखा है कि बुध्ध एक राजा शुध्धोदीत का पुत्र था वह तापसों के पास दीक्षा लीथी बोधि होनेके बाद अहिंसा धर्म्म का खुब प्रचार कीया था इसका समय भगवान् महावीर के समकालिन माना जाता है कुच्छ भी हो. बुध्धने जैनोंसे अहिंसा धर्म्म की शिक्षा जरुर पाई थी.

से ' अहिंसा परमोधर्मः ' का प्रचार करना प्रारंभ कीया, शान्ति रूपी एसा जल बरसाया कि दग्ध भूमिरूप जनता में एकदम नव जीवन के साथ शान्ति पसर गई। धार्मिक सामाजिक नैतिक त्रुटि हुई शृंखला फिर अपने स्थानपर पहुंच गई. आज के ऐतिहासिक विद्वानों का मत है कि भगवान् महावीर के झंडा निचे राजा महा-राजा और चालीश क्रोड जनता शान्तिरस का अस्वादन कर रही थी केशी श्रमणादि पार्श्वनाथ संतानियें भी प्रायः सब भगवान महावीर के शासनको स्वीकार कर उनका आचार–व्यवहार, क्रिया–समाचारी में प्रवृत्ति करते हुवे अपना कल्यान करने लगे पर पार्श्वनाथ के संतानिये थे वह पार्श्वनाथ के नाम से ही विख्यात रहे और आज पर्यन्त भी पार्श्वनाथ भगवान् की संतान परम्परा से अविच्छन्न चली आ रही है। भगवान् महावीर का पवित्र जीवन के लिये पूर्वीय और पाश्चात्य विद्वान सब एक ही अवाज से स्वीकार करते है कि महावीर भगवान् एक जगत् उद्धारक ऐतिहासिक महापुरुष हो गये हैं। जगत्में अहिंसा का झंडा भगवान् महावीरने ही फरकाया हैं। वेदान्तियों की यज्ञप्रवृति में पशुहिंसा को निर्मूल करी हो तो भगवान् महावीरने ही करी है जनता का कल्याण के लिये महावीर प्रभु का जीवन एक धेयरूप है इत्यादि महावीर भगवान् के जीवन विस्तार मुद्रित हो गया है वास्ते में मेरे उद्देशानुसार महावीर भगवान् का संबन्ध यहाँ ही समाप्तकर आगे जैनजाति के बारा में ही मेरा लेख प्रारंभ करता हुं.

भगवान् केशीश्रमणाचार्यने जैनधर्म्म को अच्छी तरक्की दी अन्तिमावस्थ में आप अपने पाट पर श्रीस्वयंप्रभ नाम के मुनि को

स्थापन कर एक मासका अनशन पूर्वक सम्मेतशिखर तीर्थ पर स्वर्ग को प्रस्थान कीया इति पार्श्वनाथ भगवान् का चतुर्थ पाट हुवा ।*

(५) केशीश्रमणाचार्य के पट्ट उदयाचल पर सूर्य के समान श्रुतज्ञान का प्रकाश करनेवाले आचार्य स्वयंप्रभसूरि हुए आपका जन्म विद्याधर कुलमें हुवा था. वास्ते आप अनेक विद्याओं के पारगामी, व स्वपरमत्त के शास्त्रों में निपुण थे आप के आज्ञावर्त्ति हजारों मुनि भूमण्डल पर विहार कर धर्म्म प्रचार के साथ जनता का उद्धार कर रहेथे भगवान् महावीर का झंडेली उपदेशसे ब्राह्मणों का जोर और यज्ञकर्म्म प्राय: नष्ट हो गया था तथापि मरूस्थल जैसे रैतीले प्रदेश में न तो जैन पहुँच सके और न बौद्ध भी यहां आ सके थे। वास्ते यहां वाममार्गियो का बड़ा भारी जोरशोर था. यज्ञ होमके सिवाय और भी बड़े धडे अत्याचार हो रहे थे, धर्म्म के नामपर दुराचार (व्यभिचार) का भी पोषण हो रहा था कुण्डापन्थ कांचलीयापंथ यह वाममार्गियों की शाखाएं थी देवीशक्ता के वह उपासक थे इस देश के राजा प्रजा प्राय: सब इसी पन्थ के उपासक थे उस समय मारवाड में श्रीमाल नामक नगर इन वाममार्गियों का केन्द्रस्थान गीना जाता था.

आचार्य स्वयंप्रभसूरि के उपासक जैसे खेचर भूचर मनुष्य विद्याधर थे वैसे देवि देवता भी थे वह भी समय पा कर व्याख्यान श्रवण करने को आया करते थे—एक समय आचार्य श्रीसंघ के साथ

---

* भगवान गौतम के साथ शास्त्रार्थ किया व केशीश्रमण तीन ज्ञानवाले मोक्ष गये, और राजा प्रदेशी आदि को प्रतिबोध कर्त्ता चार ज्ञानवाले केशीश्रमणाचार्य बारह वे स्वर्गे पधारे वास्ते दोनों केशीश्रमण अलग अलग समझना चाहिये.

सिद्धाचलजी की यात्राकर अर्बुदाचलकी यात्रा करनेको आये थे वहांपर व्यापार निमित्त आये हुवे श्रीमालनगर के कितनेक शेठ साहुकार सूरिजी की अहिंसामय अपूर्व देशना सुनकर सूरिजी से विनंति करी कि हे भगवान् ! आप तो अहिंसा भगवती का बडा भारी महत्व बतला रहे हो और हमारे वहां तो प्रत्येक वर्ष में हजारो लाखो पशुओं का यज्ञमें बलिदान हो रहा है और उसमें ही जनता की शान्ति और धर्म्म माना जाता है आज आप का उपदेश श्रवण करनेसे यह ज्ञात हुवा है कि यह एक महान् नरक का ही द्वार है अगर आप जैसे परोपकारी महात्माओं का पधारना हमारे जैसे अपठित देशमें हो तो वहां की भद्रिक जनता आप के उपदेश का महान् लाभ अवश्य उटावे इत्यादि विनंति करनेपर सूरिजीने उसे सहर्ष स्वीकार कर ली जैसे चितसारथी की विनंति को केशीश्रमणाचार्यने स्वीकार करी थी। समय पाके सूरिजी क्रमश: विहार कर श्रीमालनगर के उद्यानमें पधार गये, क्रमश: यह खबर नगर में भी पहुंच गई तब जिन्होंने अर्बुदाचल पर विनंति करी थी वह सज्जन अपने मित्रों के साथ सूरिजी की सेवा उपासना करने को तत्पर हुवे और सब तरह की अनुकूलता करदी। उस समय श्रीमालनगर में अश्वमेघ नामक यज्ञ की तैयारियें हो रही थी देश विदेश के हजारों याज्ञिक लोग एकत्र हुवे इधर हजारों लाखो निरापराधि पशुओं को एकत्र कीये गये थे एक वडा भारी यज्ञ मण्डप भी रचा गया था घर घर में बकारे भैंसे बन्धे हुवे है कि उनकों धर्म्म के नाम पर यज्ञ में बलिदान कर शान्ति मनावेंगे इत्यादि। इधर सूरिजी के शिष्य नगर में भिक्षा को गये। नगर का हाल देख जनतापर कारुण्यभाव लाते हुवे वैसे के तैसे

वापिस आ गये। सुरिजी को अर्ज करी कि हे भगवान ! यह नगर साधुओंको भिक्षा लेने योग्य नहीं है अर्थात् यज्ञ संबन्धी सब हाल सुनाये, इस पर करुणासिन्धु सुरिजी महाराज अपने कितनेक विद्वान् शिष्यों को साथ ले राजसभामें गये, जहाँ यज्ञ संबन्धी विचार और सब तय्यारीये हो रही थी और महान् निष्ठुर कर्मके अध्यापक बडे बडे जटाधारी शिरपर खुब भस्म लगाइ हुई गलेमें सूतके रस्से डाले हुवे मांस लुब्धक मदिरा लोलुपि नामधारी पण्डित बैठे हुये थे, वह सब लोग अनेक कपोलकल्पित वातों से राजाको अपनी तरफ आकर्षित कर रहे थे, कारण नगरी में जैनाचार्यका आगमन होनेसे उनके दीलमें बडा भारी भय भी था "।

सूरीश्वरजी महाराजका अतिशय तप तेज इतना प्रभावशाली था कि आपश्रीजी सभा में प्रवेश होते ही राजा जयसेन अपने आसन से उठ कर सूरीजीके सामने आया और बडे ही आदर सत्कार से वन्दन नमस्कार किया. सूरिजीने भी राजाको " धर्मलाभ " दीया इस पर वहां बैठे हुवे नामधारी पण्डित आपसमें हँसने लगे। राजाने पूर्व " धर्मलाभ " शब्द कानों से सुना भी नहीं था वास्ते नम्रता के साथ सूरिजीको पुच्छा कि हे प्रभो ! यह धर्मलाभ क्या वस्तु है ? क्या आप आशीर्वाद नहीं देते हैं जैसे कि हमारे गुरु ब्राह्मण लोग दिया करते है ? इसपर सूरीश्वरजी महाराजने कहा कि हे राजन् ! कितनेक लोग दीर्घायुष्यका आशीर्वाद देते है पर दीर्घायुष्य तो नरकमें भी हुवा करता है, कितनेक बहु पुत्रादिका आशीर्वाद देते है पर यह तो कुकर कुर्कटादि के भी होते है, कितनेक लक्ष्मी

आहार निमित्त श्रीमाल नगरमें घरघर घूमके थके हुए दोनों साधुओंने एक घरमें प्रवेश किया; जहां पशुपक्षीको यज्ञार्थ काटनेको हाथमें छुरी सह विप्रको देख साधु हताश हुए। (पृ १७)

वृद्धिका आशीर्वाद देते है पर वह शूद्र व वैश्याके वहाँ भी होजाति है। हे राजेन्द्र ! इसमे कोइ महत्वका आशीर्वाद नहीं है पर जैन मुनियोंका जो " धर्मलाभ " रूपी आशीर्वाद अर्थात् आपको धर्मका लाभ सदैव मिलता रहे, धर्मलाभका प्रभावसे ही इस लोकमें कल्याण के साधन सामग्री (सुख सम्पति) और परलोकमें स्वर्ग व मोक्षकी प्राप्ति होती है इस लिये जैन मुनियोंका धर्मलाभ जगतवासी जीवोंके कल्याण का हेतु है। सूरिजी महाराज कि युक्ति और विद्वतामय शव्द सुनके राजा को अतिशय आनंद हुवा राजाने सूरीश्वरजी कि स्तुति व आदर सत्कार कर आसनपर विराजनेकी अर्ज करी तत्पश्चात् सूरिजी भूमि प्रमार्जन कर कांबलीका आसन बिछाके अपने शिष्यों के साथ विराजमान हो गये। यद्यपि राजा शैवोपासक था पर उनके हृदयमें मध्यस्थ वृत्ति थी और नीतिज्ञ होनेसे महापुरुषोंपर गुणानुराग होना स्वभावीक बात है सूरिजी महाराजसे राजाने अर्ज करीकि हे भगवान्। धर्म्मका क्या लक्षण है ? किस धर्म्म से जीव जन्म मरण से मुक्त हो अक्षय पद प्राप्त करता हैं ? इसपर सूरिश्वरजी महाराजने अपने विशाल ज्ञान से धर्म्मकी व्याख्या करी जिसका सारांश रूप कुच्छ उल्लेख यहां बतलाते है।

अहिंसा लक्षणो धर्मो ह्यधर्मः प्राणिनां वधः।
तस्माद् धर्मार्थिभिर्लोकैः कर्त्तव्या प्राणिनां दया ॥ १ ॥

अर्थात् धर्म्मका लक्षण अहिंसा है और प्राणिका वध यह अधर्म्म है वास्ते धर्म्मार्थियोंका कर्तव्य है कि वह सदैव प्राणियों का रक्षण करे फिर भी सुनिये।

पञ्चैतानि पवित्राणि, सर्वेषां धर्मचारिणाम् ।
अहिंसा सत्यमस्तेयं, त्यागो मैथुन वर्जनम् ॥१॥

अर्थात् अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचार्य और मुच्छा त्याग यह पञ्च महाव्रत सर्वदर्शनानुयायी महापुरुषोंको बहुमान पूर्वक माननीय है। हे राजन् ! प्राणियोंकी दया करना ही मनुष्यका परम धर्म्म है देखिये श्रीकृष्णचन्द्रने भी यह ही फरमाया है ।

यो दद्यात् कांचनं मेरूः, कृत्स्नां चैव वसुन्धरा ।
एकस्य जीवितं दद्यात् , न च तुल्य युधिष्ठिरः ॥

अर्थात् सुवर्णका मेरू और सम्पूर्ण पृथ्वीका दान देनेवाला भी एक जीवको प्राण दान देनेके बराबरी नहीं कर सकता है । और भी सुनिये ।

सर्वे वेदा न तत् कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत ।
सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च, यत् कुर्यात् प्राणिनां दया ॥

अर्थात् हे अर्जुन ! जो प्राणियोंकी दया फल देती है वह फल न तो चारों वेदके पढनेसे, न सर्व यज्ञसे, न सर्व तीर्थोंमें स्नान करनेसे होता है इस लिये सर्व तत्त्ववेत्ता महर्षियोंने धर्म्मका लक्षण अहिंसा ही बतलाया है यथा--

अहिंसा सर्व जीवेषु । तत्त्वज्ञैः परिभाषितम् ।
इदं हि मूल धर्मस्य । शेषस्तस्यैव विस्तरम् ॥

हे नरेश ! इस आरपर संसारके अन्दर जीतने तत्त्ववेत्ता अवतारीक महापुरुष हुवे है उनने धर्म्मका मूल अहिंसा ही बतलाया है

शेष सत्य–अचौर्यादि अहिंसाका ही विस्ताररूप है । इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे सूरिजीने राजाको उपदेश दीया और कहा कि हे राजन् ! जैसा अपना जीवन अपने को प्यारा है वैसा ही सर्व जीवोंको अपने अपने प्राण प्रिय है पर मांस लोलुपि कितने ही अज्ञान पापात्माओंने विचारे निरापराधि पशुओंको बलीदान करने में भी धर्म्म मान भद्रिक लोगों को घोर नरक मे डालने का पाखण्ड मचा रखा है यद्यपि कितनेक देशोंमें सत्य वक्ताओंके उपदेशद्वारा ज्ञानका प्रकाश होनेसे यह निष्ठुर कर्म्म मूलसे नष्ट हो गया हैं पर मरूस्थल जैसे अपठित प्रान्तमें सद्ज्ञान व उपदेश का अभाव से अज्ञात लोग इस कुपथाके किचड में फंसके नरक के अधिकारी बन रहे है इत्यादि ।

यह सुनते ही वह निर्दय दैत्य पाखंडी मांस लोलुपि यज्ञाध्यक्ष बोल उठे कि महाराज, यह जैन लोग नास्तिक है । वेदो को और ईश्वर कों नहीं मानते है । दया दया पुकार कर सनातन यज्ञ धर्म का निषेध कर रहे है—इन लोगों कों क्या खबर है कि शास्त्रों में यज्ञ करना महान् धर्म्म और दुनियों में शान्ति होना फरमाया है देखिये भगवान् मनुने क्या फरमाया है यथा—

यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य, तस्मात् यज्ञेवधोऽवधः ॥ ३९ ॥
औषध्यः पशवोवृक्षास्तिर्यंचः पक्षिणस्तथा ।
यज्ञार्थं निधानंप्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥ ४० ॥

अर्थात् ब्राह्माने स्वयंही यज्ञ के लिये और सम्पूर्ण सिद्धि के निमित्त ही पशुवो को रचे है यज्ञ में औषधी–पशु–वृक्ष कूर्मादितीर्यंच

जीव और कपिंजलादि पक्षीयों की जो बली दी जाति है वह जीव यज्ञ मे मर के उत्तम जन्म को प्राप्त होता है इत्यादि.

इसपर सूरिजी महाराजने कहा हे महानुभावों, तुम लोग स्वल्पसा स्वार्थ के लिये मिथ्या उपदेश दे आप स्वयं क्यों डुबते हो और विचारे अज्ञ लोगों कों अधोगति के पात्र क्यो बनाते हो अगर यज्ञ मे बली देने से प्राणि उत्तम गति (स्वर्ग) मे जाते हो तों

निहतस्य पशोर्यज्ञे । स्वर्ग प्राप्तिर्य दीर्ष्यते ।
स्वपिता यजमानेन ।किन्तु तस्मान्नहन्यते ॥

अगर स्वर्ग मे पहुंचाने के हेतु ही पशवों को मारते हो तों पहले अपने मातापिता पुत्र स्त्रि व यजमान ओर तुम खुद ही स्वर्ग के लिये यज्ञ मे बलीं क्यों नहीं होते हो कारण आप लोगों को जीतनी स्वर्ग की अभिलाषा हैं उतनी पशुवों को नहीं हैं पशु तो विचारे पुकार पुकार कहते है—एक कवि का वाक्य.

नाहं स्वर्ग फलोपभोग तृषितो नाभ्यर्थितस्त्वमया ।
संतुष्टस्तृण भक्षणेन सततं माधो न युक्तं तवं ॥
स्वर्गे यान्ति यादित्वया विनिहता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो ।
यज्ञं किं न करोषि मातृपितृभिः पुत्रैस्तथा बान्धवैः ? ॥१॥

भावार्थ यज्ञ में असंख्य पशुवों का बलीदान देनेवालों जरा हमारी भी पुकार सुनिये । हम लोग स्वर्ग फलोपभोग के प्यासे नहीं हैं और न हमने आप से यह प्रार्थना ही की है कि आप मुझे स्वर्ग मे पहुंचा दो । किन्तु हम तो मात्र तृण भक्षण से ही मग्न रहना चाहते हैं वास्ते मुझे मारना उचित नहीं है अगर हमे स्वर्ग भेजने

के इरादा से ही मारते हो तो पहला आप के मातापिता पुत्र स्त्रि बालबच्चादि को स्वर्ग भेजना चाहिये।

महानुभावों। आप जरा ज्ञान दृष्टि से विचारो कि—

यूपंछित्वा पशून हत्वाः कृत्वारुधिर कर्दमम्।
यद्येव गम्यते स्वर्गे। नरके केन गम्यते॥

प्राणियों के रूधिर का कर्दम करने वाले भी स्वर्ग में जावेगे? तब नरक में कोन जावेंगे हे राजन्। इस निष्ठुर वृति से जनतामें शान्ति नहीं पर अशान्ति होनी है देखिये.

हिंसा विघ्नाय जायते। विघ्नशान्त्यै कृताऽपि हि।
कुलाचारधियाऽप्येषा। कृता कुलविनाशिनी"॥

याने विघ्न की शान्ति के लिये की हुई हिंसा शान्ति नहीं पर उलटी विघ्न की ही करनेवाली होतीं है जैसे किसी के कुलकी मिथ्यारूढि है कि अमुक दिन हिंसा करनी चाहिये, पर वह हिंसा ही कुल नाश करनेवाली होती है। हे नरेश। कितनेक एसे लोग भी होते है कि उस निष्ठुर कर्म्म को भी अपने कुल परंपरा से चला हुवा समझ उसको छोडने मे हिचकते है पर बुद्धिवान् अहितकारी कर्म्म को शीघ्र ही छोड के सुखी बन जाते है जैसे।

अपि वंशक्रमायातां यस्तु हिंसा परित्यजेत्।
सश्रेष्टः सुलस इव काल सौकरिकात्मजः॥

हे राजन्। प्राणियों की हिंसा करने मे किसी शास्त्रकारोने धर्म नहीं बतलाया है आप खुद बुद्धि से विचार करोगे तो ज्ञात होगा कि—

यदि ग्रावातोये तरति तरणिर्यद्युदयते ।
प्रतीच्यांसप्तार्चिर्यदि भजति शैत्यं कथमपि ॥
यदिक्ष्मापीठं स्यादुपरि सकलस्यापि जगतः ।
प्रसूते सत्त्वानां तदपि न वधः कापि सुकृतम् " ॥१॥

अर्थात् जलमे पत्थर तीरता नहीं है ? सूर्य पश्चिम दिशा मे उगता नहीं है ? अग्नि कदापि शीतल नहीं है ? पृथ्वी कभी अधो भाग मे नही जाती है ? पर उपरोक्त कार्य किसी देव प्रयोगसे हो भी जा तब भी प्राणीयों की हिंसा से तो सुकृत कभी नहीं हो सक्ता है कारण कि—

यावन्ति पशुरोमाणि, पशु गात्रेषु भारत ?
तावद् वर्ष सहस्राणि, पच्यन्ते पशुघातकाः ।

जीतने पशु के शरीर मे रोम (बाल) है इतने हजार वर्ष तक पशु को मारणेवाला नरकमे जा के दुःख भोगवता है । हे राजन् । प्राणियों को प्राण कैसा वल्लभ है

दीयते म्रिय माणस्य कोटिर्जीवित एव या ।
धनकोटिं परित्यज्य जीवो जीवितु मिच्छति ।

अर्थात् मृत्यु के समय एक तरफ कोटी सुवर्ण देनेवाला है और दूसरी तरफ जीवित देनेवाला है तो वह जीव सुवर्ण को त्याग के जीवना ही चाहेगा ?

हे नीतिज्ञ महानुभाव, जरा आप अपनि नीतिपर देखिये ।

वैरिणोऽपि विमुच्यन्ते । प्राणान्ते तृणभक्षणात् ।
तृणाहराः सदैवैते हन्यन्ते पशवः कथम् ॥१॥

प्राणान्त मुहमे तृण लेने से महान वैरि भी अवध होता है तो सदैव तृण भक्षण करनेवाले पशुवों को मारना कितना अन्याय है।

ये, चक्रुः क्रूर कर्माणः शास्त्रं हिंसोपदेशकम् ।
क ते यास्यन्ति नरके नास्तिके भ्योऽपि नास्तिकाः ? ।

अर्थात् जिन क्रूर कर्म्मियोंने हिंसोपदेश शास्त्रों को रचा है वह नास्तिको से भी नास्तिक होने से नरक के भागी होगे। इतनाही नहीं पर एसे शास्त्रों पर विश्वास और श्रद्धा रखनेवालो को भी वह नरकमे साथ ले जायगा। जेसे—

विश्वस्तो मुग्धधीर्लोकः पात्यते नरकावनौ ।
अहो नृशंसैर्लोभान्धे हिंसा शास्त्रोपदेश कैः ॥१॥

भावार्थ—विचारे विश्वासु भद्रिक लोग भी निर्दय लोभान्ध और हिंसा शास्त्र के उपदेश को से वञ्चित हो कर नरक भूमि मे जाते है अर्थात् वह निर्दय अपने भक्तो को भीं नरक में साथ ले जाते है इत्यादि धर्म्मोपदेश देने पर राजा और राज सभा वडे ही हर्ष चित्त से बोले की भगवान् हमने तो ऐसे उत्तम शब्द कानों में आज ही सुना है और आपश्री का फरमाना भी सत्य है प्राणियों की हिंसा करना तो घोर नरक का ही कारण है और यह सर्वता त्यज्य है मैं आपके सामने प्रतिज्ञा करता हुं की मेरे नगर में तो क्या पर मेरे राज में किसी निरापराधि जीवों को मारना तो दूर रहा पर तकलिफ भी नहीं दी

जावेगा पर। हे कृपानिधि ! जगत् में धर्म्म के अनेक भेद सुने जाते है अर्थात् मत्तमत्तान्तर है इसकी परिक्षा किस कसोटी से हो सक्ती है वह बतलाइये, मैं उस धर्म्म कों स्वीकार करना चाहता हुं कि जिन से आत्म-कल्यान हो। इसपर सूरीश्वरजीने कहा हे धराधिप। एसे तों सब धर्म्म-वाले अपने अपने धर्म्म को श्रेष्ट बतलाते है पर बुद्धिवान हो वह स्वयं परिक्षा कर सक्ते है—

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्षते; निघर्षच्छेदन तापताडनैः।
तथैव धर्म्मे विदूषा परीक्षते; श्रुतेन शीलेन तपोदयागुणै ॥१॥

१ जैसे कसोटी पर कसना २ छेदना ३ तपाना और ४ पीठना एवं चार प्रकार से सुवर्ण की परीक्षा की जाति हैं इसी माफीक १ शास्त्र २ शील ३ तप और ४ दया इन चार प्रकार से बुद्धिवान पुरुषधर्म्म की परीक्षा भी कर सक्ते हैं

(१) जिस शास्त्रों के अन्दर परस्पर विरूद्धता नहीं " अहिंसापरमोधर्मः को प्रधान स्थान दीया हो, आत्म कल्याण का पूर्ण रहस्ता बतलाया हो। उन शास्त्र का धर्म परमार्थिक होता है।

(२) शील—जिसका खान पान आचार व्यवहार ब्रह्मचार्यादि शुद्ध हो. वह शील परमार्थिक माना जाता है।

(३) तप—इच्छा का निरूध करना यानि प्रमादि का त्याग।

(४) दया सर्व जीवो के साथ मैत्रिक भावना रखनी

इन परीक्षा के चारो साधनोपर सूरीश्वरजी महाराजने जैन और जैनेतर धर्म्म की खुब ही समालोचना पूर्वक विवेचन कर

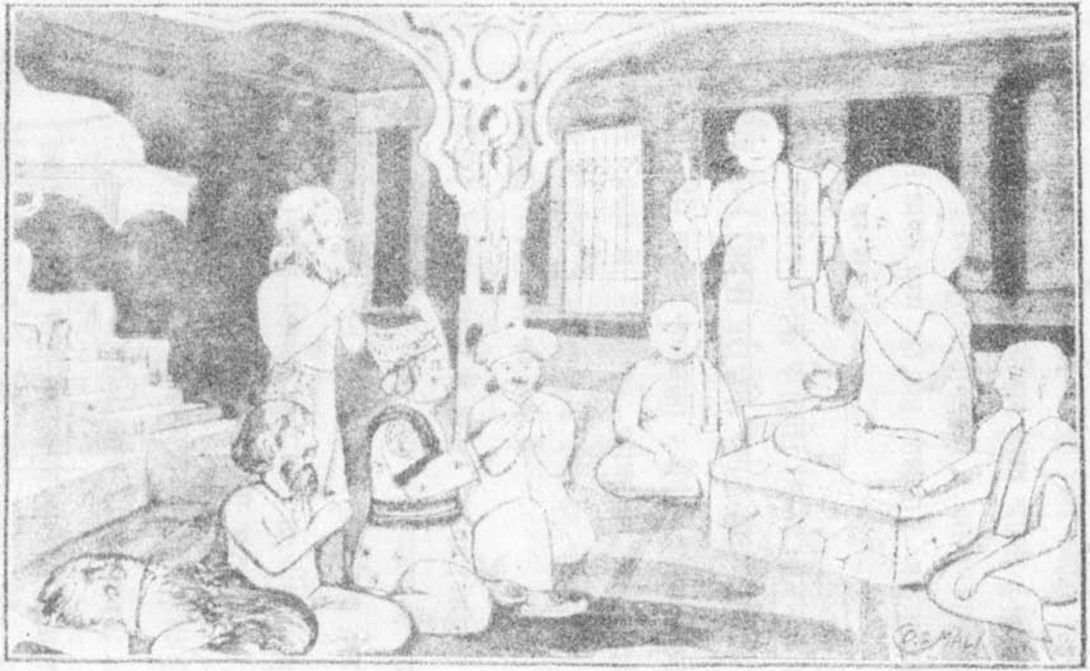

सुनाया और जैन धर्म का तात्त्वीक ज्ञान के साथ मुनि धर्म्म–श्रावक धर्म्म और सम्यक्त्व का स्वरूप बतलाया जिसको सुनते ही राजा और नागरिको के अन्तरपट्ट खुल गये, जो चिरकालसे हृदय मे मिथ्यात्व घुसा हुवा था वह एकदम दूर हो गया, राजाने कहा कि हे भगवान् ! मेने मेरी इतनी उम्मर व्यर्थ गमादी उसके लिये मैं अधिक क्या कहुँ ? हे प्रभो ! आज मैं जैन धर्म्म स्वीकार करने को तय्यार हुँ, सूरीश्वरजीने कहा " जहा सुखम् " तत्पश्चात् विधि विधान के साथ वासक्षेपपूर्वक राजा और प्रजा कों जैनधर्म्म की दीक्षा दी, राजा सम्यक्त्व को प्राप्त होते ही अपना राजमे यह हुकम निकाला की जो यज्ञ के लिये मंण्डप बनाया गया उसको शीघ्रता मे तोडफोड दो जो हजारों लाखो प्राणियों को बलीदान के लिये एकत्र किये थे उन सब को छोड दो, और मेरे राजमे यह संदेसा पहुचा दो कि जो कोइ सक्स किसी निरापराधी जीवों को मारेगा वह प्राणदंड के भागी होगा अर्थात् प्राण के बदले प्राण देना पडेगा राजा प्रजा अहिंसा भगवती के परमोपासक बन गये । इधर हजारो लाखो पशुयों को यज्ञमे बली के लिये एकत्र किये थे उनकों जीवितदान मिलने से वह जाते हुवे आशीर्वाद दे रहे है नगरमें स्थान स्थान जैनधर्म्म की और सूरीश्वरजी महाराज की तारीफ हो रही है पट्टावलियोसे यह पत्ता मिलता है कि इस समय कुल ९०००० घर को जैन बनाये गये थे और सबसे पहले आचार्यश्री स्वयंप्रभसूरिने ही वर्णरूपी जंजिर को तोड के एक " महाजन " संघ की स्थापना करी तत्पश्चात् श्रीमाल नगर के लोग अन्योन्य प्रदेशमें जाने से

इनको श्रीमालवंसी कहने लगे और वह ही शब्द भविष्य मे ज्ञाति के रूपमें प्रणित हुवा इति श्रीमाल ज्ञाति। इसके लिये देखो परिशिष्ट नं. ३.

श्रीमालनगर के लोग जैनधर्म्म के तत्त्वज्ञान और क्रिया समाचारी का अभ्यास के लिये सूरीश्वरजीसे प्रार्थना करी और आचार्यश्रीने उसे सहर्ष स्वीकार भी करली और अपने कितनेक मुनियों को वहाँ कुच्छ अरसा के लिये ठरने कि आज्ञा भी फरमा दी.

उसी रोज समाचार मिला की आबु के पास पद्मावती नगरी में चैत्र शुक्ल पूर्णिमा का अश्वमेध नाम का महायज्ञ है यह हाल सुनते ही श्राद्धवर्ग एकत्र हो श्याम कों आचार्यश्री के पास आये और अर्ज करी की भगवान्! आपश्री का पवित्र आगमन से हजारों लाखों प्राणियों को अभयदान मिला जो क्रूर कर्म्मि व्यभिचारी और यज्ञ बलिदान जैसे मिथ्याचरणाओंसे नरक में जानेवाले जीवों को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई स्वर्ग व मोक्षका रहस्ता मिला, पवित्र जैनधर्म की वडी भारी प्रभावना हुई हे दयाल! करूणासिन्धु! अपके उपकार का बदला इस भवमें तो क्यापर भवोभव में देनेको हमलोग सर्वता असमर्थ है आपश्री के चरण कमलों की सेवा उपासना एक क्षणभर भी हमलोग छोडना नहीं चाहाते है पर इस समय एक अर्ज करना हम लोग खास जरूरी समझते है वह यह है की आबु के पास पद्मावती नगर है वहाँका राजा पद्मसेनने देविका उपद्रव को शान्ति के लिये अश्वमेध नामक

यज्ञ करना प्रारंभ किया है वहाँभी हजारों लाखों प्राणियों कों बलीदान निमित एकत्र किये है कल पूर्णिमा का ही यज्ञ है अगर आपश्रीमानों का किसी प्रकारसे वहाँ पधारना हो जा तों जैसा यहां पर लाभ हुवा है वैसा ही यहाँपर उपकार होगा लाखों जीवों को प्राणदान और जैनधर्म की उन्नति होगा? हमको दृढ विश्वास है कि आपश्री वहाँ पधारे तो इस कार्य्यमें जरूर सफलता मिलेगा इत्यादि।

सूरिजी महाराजने उन श्राद्धवर्ग की अर्ज को सहर्ष स्वीकार करके कह दिया कि हम कल शुभेही पद्मावती पहुँच जावेगें. इस बात को श्रवण कर संघने सोचा कि महात्माओं के लिये कौनसा कार्य अशक्य है फिर भी " परोपकाराय संत विभूषिय " पर अपनेको भी सूरिजी महाराज की सेवामें शुभे जरूर पहुँचना चाहिये सबकी सम्मति होते ही शीघ्र गामनी सवोरियोंद्वारा उसी समय रवाना हो शुभे पद्मावती पहुँच गये और पद्मावती नगरी में स्थान स्थानपर यह बात होने लगी की श्रीमालनगरमें एक जैन भिक्षुकने राज्य प्रजा को यज्ञ धर्मसे हटाके जैन बनादिये, वह भिक्षुक यहाँ भी आनेवाला है यह बात सुन यज्ञाध्यक्षकों के अन्दर बडी भारी खलबलाट मच गया और वह अपना पक्षकों मजबुत बनानेकी कोशीषमे लगे।

इधर आचार्यश्री सूर्योदय होतेही अपनि मुनिक्रियासे निवृति पातेही विद्याबलसे एक मुहूर्तमात्रमें पद्मावती पहुँच गये. श्रीमाल नगर के श्राद्धवर्ग पहलेसे ही रहा देखरहेथे. आचार्यश्रीके पधारते ही वह श्राद्धवर्ग बडेही स्वागतके साथ आपश्री को राजसभामें

पधारणे की अर्ज करी ? सूरिजी उन श्राद्धवर्ग के साथ राजसभा में पधारे। राजाने बडे ही सत्कारके साथ सूरीजी को नमस्कार कर आसन का आमन्त्रण किया सूरीश्वरजी महाराज अपनि कांबली डाल आसनपर विराजगये इतने में तो नागरिको से सभाका होल चकारबद्ध भरगया राजा के पास वह यज्ञाध्यक्षक बडी बडी जटावाले भी बेठ गये तत्पश्चात् आचार्यश्रीने " अहिंसा परमो धर्मः " पर विस्तृत्व विवेचन के साथ व्याख्यान दीया धर्म्मकी रहस्य और आत्मकल्यान का मार्ग एसी उत्तम शैलीसे बतलाया की वहाँ उपस्थित श्रोतागण के कठोर पत्थर नहीं पर बज्र सादृश्य हृदय भी एसे कोमल हो गये की उनकी अन्तर आत्मासे अहिंसा के झरने वहने लग गये और यज्ञ जैसे निर्दय निष्ठुर कर्म्म की तरफ घृणा होने जगी मानो अहिंसा भगवती उन लोगो के हृदय कमल को अपना स्थान ही न बना लिया हो ?

सूरीजी महाराज का व्याख्यान के अन्तमें वह नामधारी ब्राह्मण अर्थात् यज्ञाध्यक्षक एकदम बोल उठे कि महात्माजी ! यहाँ कोइ श्रीमालनगर नहीं है कि आपके दया दया की पुकार सुन स्वर्ग मोक्षका फल देनेवाले यज्ञ करना छोड दे यह धर्म नूतन नहीं पर हमारे राजपरम्परासे चला आया है इत्यादि। इसपर आचार्यश्रीने कहा कि महानुभावों ! न तो मैं श्रीमालनगरसे धनमाल ले आया हु। न मुझे यहाँसे कुच्छ ले जाना है। सदुपदेशके अभाव भद्रिकलोग आत्मकल्यानके रहस्त को छोडके हजारों लाखो प्राणियों के खुनसे रक्त की नदी बहानेवाले कुकृत्योंसे नरक के

पात्र बन रहे है उनको पुनः सद्मार्ग बतलाना हमारा परम् कर्त्तव्य है इतना ही नहीपर इस कार्य्य के लिये हमने हमारा जीवन ही अर्पण करदीया है । महानुभावों !

तुष्यन्ति भोजनैर्विप्राः, मयूर घनगर्ज्जिते ।
साधवाः परकल्याणैः, खलपर विपत्तिभिः ॥ ५ ॥

जैसे विप्रलोगो को भोजनमिलनासे संतुष्ट होते है घनगर्ज्ज-नासे मयूरमग्न रहते है पर के विपतसे खल पुरुष खुशीमनाते है वैसे ही साधुजन परकल्याणमें ही आनन्द मानते है ।

हे विप्रों ! श्रीमालनगरके सज्जनोंने हजारो लाखो निराप-राधि प्राणियों को अभयदान दिया क्या आप उसे बुरा समझते हो ? और यज्ञके लिये एकत्र किये हुवे असंख्य प्राणियों को बली-दान कर उनका मांस खाना अच्छा समझते हो ? भलो आप ही अपने दीलमें सोचियें कि आपके भाई कोइ नरमेघ यज्ञकर आपको बलीदान करदे तो आपकों दुख होता है या खुशी ? जटाधारियोंने इसका कुच्छभी जबाव नहीं दीया । सूरिजीने कहाँ महानुभावो ! प्राणियों की घौर हिंसारूप यज्ञका त्यागकर शास्त्रके आदेश मुआ-फीक भाव यज्ञ करो—

सत्य यूपं तपोह्यग्निः कर्मणा समाधीमम् ।
अहिंसा महुतिदद्या । देवं यज्ञ सतांमतः ॥ १ ॥

अर्थात् सत्यकायूप तप की अग्नि कर्मो की समाधी व अ-हिंसारूप आहुतिसे आत्मा के साथ चिरकालसे लगे हुवे कर्म्मों

का नाश कर आत्माको पवित्र बनाना विप्रोंकापरम कर्तव्य अर्थात् इसको भाव यज्ञ कहते है इस भाव यज्ञसे जीव स्वर्ग व मोक्षका अधिकारी बन सक्ता है पर मांस मदिर के लोलुपी लोग पशुहिंसा रूपी यज्ञकर खुद नरक जाते है और विचारे भद्रिक जीवोंको नरक भेजने का घोर अधर्म्म करते है देखिये वराहावतरने मांस भक्षण करनेवालो कों अठारवा देषितमाना है।

यस्तु मात्स्यानि मांसानि भक्षयित्वा प्रपद्यते ।
अष्टादशापराधं च कल्पयामि वसुन्धरा ॥ १ ॥

और भी देखिये—

देवापहार व्याजेन, यज्ञव्याजेन येऽथवा ।
घ्नन्ति जन्तून गतघृणा घोरं ते यान्ति दुर्गतिम् ॥१॥

अर्थात् देव की पूजाके निमित्त या यज्ञकर्म के हेतुसे जो निर्दय पुरुष प्राणियों को मारते है वह घोर दूरगतिमे जाता है फिर भी सुनिये वेदान्तियो के वचन—

अन्धे तमसि मज्जमठ. पशुभिर्यजामहे ।
हिंसा नाम भवेद् धर्मो, न भूतो न भविष्यति ॥ १ ॥

अर्थात्—जो लोग यज्ञ करते है वह अन्धकारमय स्थानमे (नरकमें) डुबते है क्योंकि हिंसासे न कबी धर्म हुवा न होगा. हिंसासे धर्म की इच्छा रखनेवालो के लिये शास्त्रकारोने ठीक कहा है—

स कमल वनमग्नेर्वासरं भास्वदस्ता—
दमृतमुरगवक्त्रात् साधुवादं विवादात् ।

रूगपम मपजीर्णाज्जीवितं कालकूटा—
दभिलषति वधाद् यः प्राणिनां धर्ममिच्छेत् ॥ १ ॥

अर्थात् जो पुरुष प्राणियो के बधसे धर्म्म की इच्छा करता है वह दावानलसे कमल की इच्छा, सूर्य के अस्त होनेपर दिनकी बाँच्छा, सर्पके मुखसे अमृत की अभिलाषा, विवाद के अन्दर साधुवाद, अजीर्णसे रोगकी शान्ति, और हलाहल जहरसे जीने की इच्छा करता है अर्थात् पूर्वोक्त कल्पनाऐ करना वृथा है इसी-माफीक हिंसासे धर्म्मकी इच्छा करना भी निरर्थक है कारण पूर्व महार्षियों ने सर्व धर्म्ममें अहिंसा और सर्व दानमें अभयदान को प्रधान माना है कहा है कि—

न गोप्रदानं न महीप्रदानं नाऽन्नप्रदानं हि तथाप्रदानम् ।
यथा वादन्तीह बुधाः प्रदानं सर्व प्रदानेष्वभय प्रदानम् ॥

अर्थात् सर्व दानों मे जैसा अभयदान को उत्तम माना है वैसा गोदान, सम्पुर्णपृथ्वीदान और अन्नदानको भी नहीं माना है हे राजन् ! हिंसा करना धर्म नहीं पर शास्त्रकारोंने हिंसा को, धर्म नष्ट करनेवाली ही बतलाइ है ।

धर्मोपघात कस्त्वेष समारंभ स्तव प्रभो ।
नायं धर्मकृतो यज्ञो नहि साधर्म उच्यते ॥ (सुगमार्थ)

हे नरनाथ ! अहिंसा भगवती का महात्व महार्षियोंने किस कदर किया है उनको भी आप जरा ध्यान लगा के सुनिये ।

मातेव सर्वभूतानां महिंसा हितकारिणी ।
अहिंसैव हि संसारमरावमृत सारिणिः ॥ १ ॥
अहिंसा दुःख दावाग्नि प्रवृषेण्य धनाऽऽवली ।
भवभ्रमिरु जातांनाम हिंसा परमौषधी ॥ २ ॥

अर्थात् अहिंसा सब प्राणियों की हित करनेवाली माता के समान है और अहिंसा ही संसाररूप मरू (निर्जल) देशमें अमृत की नाली के तुल्य है तथा दुःखरूप दावानलको शान्त करने के लिये वर्षाकाल की मेघपंक्ति के समान है एवं भव भ्रमण रूप महारोग से दुःखी जीवों के लिये परमौषधी के तरह है.

इत्यादि अनेक शास्त्र और युक्तियोंद्वारा आचार्यश्रीने उन श्रोतागण पर अहिंसा भगवती का ऐसा जोरदार प्रभाव डालाकी जिससे राजा और प्रजा के हृदय मे उस धृणित यज्ञ कर्मरूपी मिथ्या अन्धकार दूर हो गया और अहिंसा भगवतीरूपी सूर्यकी कीरणो प्रकाशित होने लगी.

राजा व नागरिक लोग सूरिजी महाराज का व्याख्यान सुनके बडे ही हर्षित–आनंदित हुवे और बोले की भगवान् आप का फरमान अक्षरशः सत्य है. हमलोग इतने दिन अज्ञानता के किचडमे फसे हुवे थे. हमलोग हरकीसी कार्य में यज्ञ करनाही धर्म और शान्ति मानते थे, पर आज आपश्री की देशनासे हमलोगो को ठीक ज्ञान हो गया की प्राणियों को तकलीफ देने से भी परभवमें बदला देना पडता है तो फिर उनके प्राणों को नष्ट कर देना यह धर्म नहीं पर

परम अधर्म ही है और निश्चय कर परभवमे बदला अवश्य देना पडेगा ।

आचार्यश्रीने अपने सन्मुख बेठे हुवे ब्राह्मणोंसे कहा क्यो भट्टजी महाराज ! आपके हृदयमें भी आहिंसा भगवती का कुच्छ संचार हुवा है या नहीं ? कारण मैंने प्राय: आप के महार्षियों के वाक्य ही आप के सन्मुख रखे है. हे ! भूर्षियों आपके उपर जनता ठीक विश्वास रखती है और अपना स्वल्प स्वार्थ के लिये विश्वास रखनेवालों को अधोगतिके पात्र बनाना यह एक विश्वासघात और कृतघ्नीपना है इससे आपखुद डुबते हो और आप के विश्वासपर रहनेवालोंकोभी गेहरी खाडमें डुबाते हो अगर आप अपना कल्यान चाहाते हो तो वीतराग–ईश्वर सर्वज्ञ प्रणित शुद्ध पवित्र आहिंसामय धर्म को स्वीकार करो तांके पूर्व किये हुवे दुष्कर्म्मोंसे छुटके भविष्यके लिये आपकी सद्गति हो यह हमारी हार्दिकभावना है ।

इसपर ब्राह्मणोंने कहाँ कि आपके सर्वज्ञ पुरुषोंने कोनसा धर्म्म वतलाया है कि जिनसे आप हमारा भला कर सको ?

सूरीश्वरजी महाराजने कहा कि हे महानुभावो ? धर्म्मका मूल सम्यक्त्व (श्रद्धा) है वह समकित दो प्रकार का है (१) निश्चय सम्यक्त्व (२) व्यवहार सम्यक्त्व जिसमें यहाँ पर मैं व्यवहार सम्यक्त्व के लिये ही संक्षिप्तसे कहुंगा जैसे—

देवत्व श्री जिनेश्वरा, मुमुक्षुगुरुत्वधी ।
धर्म धीरार्हता धर्मः तत्स्यात् सम्यक्त्व दर्शनम् ॥

देव--अरिहन्त वीतराग सर्वज्ञ सकलदोष वार्जित कैवल्यज्ञान दर्शन अर्थात् सर्व चराचर पदार्थों को हस्तामल की तरह जाने देखे जिनका आत्मज्ञान तत्त्वज्ञान बडे ही उच्चकोटी का हो पर कल्याणके लिये जिन का प्रयत्न हो सर्व जीवो प्रति जिनों की समदृष्टि हो ' अहिंसा परमोधर्मः ' जिन का खास सिद्धान्त हो क्रीडा कुतूहल क्रीड़ा और पुनः पुनः अवतार धारण करने से सर्वथा मुक्त हो वह देव समझना चाहिये.

गुरू--अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और निस्पृहीता एवं पंचमहाव्रत पांच समिति तीनगुप्ति, दशप्रकार यतिधर्म्म, सतरह प्रकार संयम, बारह प्रकार तप, इत्यादि शम दम गुणयुक्त भव्य प्राणियों का कल्यान के लिये जिनोने अपना जीवन ही अर्पण कर दीया हो उसकों गुरु समझना चाहिये।

धर्म्म--अहिंसा परमोधर्मः ही धर्मका मुख्य लक्षण है इसके साथ क्षमा तप दान ब्रह्मचर्य देवगुरु संघ की पूजा स्वाधर्मीयों की सेवा उपासना भक्ति आदि करना. जिस धर्म से किसी प्राणियोंको तकलीफ न पहुँचे और भविष्यमें स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति हो उसकों धर्म समझना.

तत्पश्चात् सूरीश्वरजी महाराजने मुनिधर्म्म पंचमहाव्रत और श्रावक (गृहस्थ) धर्म्म के बारह व्रत और इनके आचार व्यवहार का खुब विस्तार से व्याख्यान किया जिसका प्रभाव जनता पर इस कदर हुवा कि उसी स्थान पर

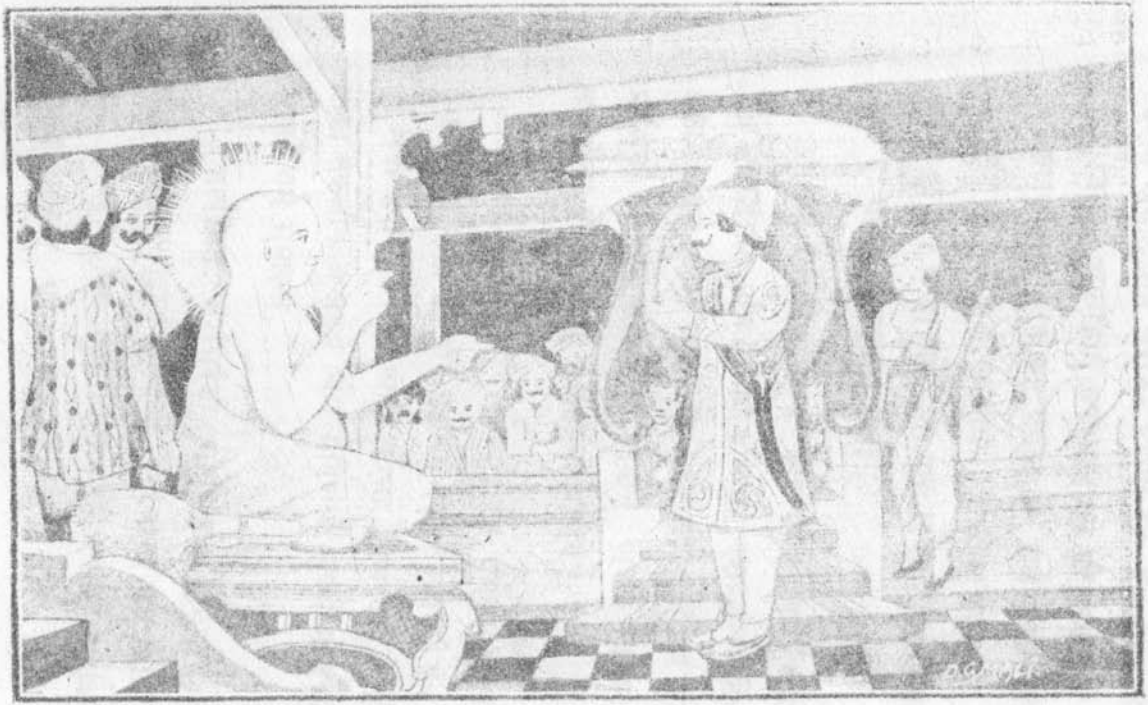

पद्मावती नगरी के महाराजा पद्मसेनको असंख्य कुटुम्बोंके साथ आचार्य श्री स्वयंप्रभसूरिजीने उपदेश दे जैन बनाये।

Lakshmi Art, Bombay, 8.

राजादि ४५००० घर पवित्र जैन धर्म्म को स्वीकार कर हजारों लाखों पशुओ को अभयदान दीया. राजा के पूर्वावस्था मे गुरु प्राग्वट ब्राह्मण थे उन्होंने कहा की हे प्रभो ! हमारे यजमानों के साथ हमारा भी कुच्छ नाम रखना चाहिए कि हम आप के उपदेश से जैनधर्म्म को स्विकार कीया है इस पर सूरिजीने उन सब संघ की प्राग्वट जाति स्थापन करी आगे चलकर उसी जाति का नाम "पोरवाड" हुवा है इसी माफिक श्रीमालनगर और पद्मावतीनगरी के आसपास फिर हजारों लाखो मनुष्यो कों प्रतिबोध दे जैन बना के उन पूर्व जातियों में मीलाते गये वास्ते यह जातियों बहुत विस्तृत संख्या में हो गई। आपश्री के उपदेश से श्रीमालनगर में श्री ऋषभदेव भगवान् का विशाल मन्दिर और पद्मावतीनगरी में श्रीशान्तिनाथ भगवान् का मन्दिर तथा उस प्रान्त में और भी बहुत से जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा आप के कर कमलो से हुई. श्रीमालनगर से यों कहो तो उस प्रान्त से एक सिद्धाचलजी का बडा भारी संघ निकाला था आबू के मन्दिरो का जीर्णोद्धार भी इसी संघने करवाया इत्यादि आपश्री के उपदेश से अनेक धर्म्म कार्य हुवे ।

आचार्य स्वयंप्रभसूरि के पास अनेक देव देवियां व्याख्यान श्रवण करने को आया करते थे एक समय कि जिक्र है कि श्री चक्रेश्वरी अंबिका पद्मावति और सिद्धायिका देवियां सूरिजी का व्याख्यान सुन रही थी उस समय आकाश मार्गसे रत्नचुड विद्याधर सकुटुम्ब नंदीश्वर द्विपकी यात्रा कर सिद्धाचलजी की यात्रा करने को जा रहेथे उस का विमान आचार्य स्वयंप्रभसूरि के

उपर हो के निकल रहा था वह सूरिजी के सिर पर आते ही रूक गया. रत्नचूड विद्याधरनायकने सोचा की मेरा विमान को रोकनेवाला कोन है. उपयोग लगाने से ज्ञात हुवा कि मेंने जंगम तीर्थ की आशातना करी यह बुरा किया, झट वैमान से उतर, निचे आ, सूरिजी को वन्दन नमस्कार कर अपना अपराध की माफी मागी. सूरिजीने धर्म्मलाभ दीया और अज्ञातपणे हुवा अपराध की माफी भी दी. तत्पश्चात् रत्नचूड विद्याधर सपरिवार सूरिजी का व्याख्यान श्रवण करने कों बेठ गया आचार्यश्रीने वैराग्यमय देशना दि संसार की असारता और मनुष्य जन्मादि उत्तम सामग्री की दुर्लभता बतलाइ. इत्यादि विद्याधर नायक के कोमल हृदय पर उपदेश का असर इस कदर हुवा कि वह संसार त्याग सूरिजी महाराज के पास दीक्षा लेने कों तय्यार हो गया परंतु एक प्रश्न उनके दीलमें ऐसा उत्पन्न हुवा की वह झट खडा हो सूरिजीसे कहने लगा कि—

"सुगुरु मम विज्ञापयति मम परम्परागत श्रीपार्श्वनाथजिनस्य प्रतिमास्ति, तस्यवन्दनो मम नियमोऽस्ति, सा रावणालंकेश्वरस्य चैत्यालय अभवत्. यावत् रामेण लंका विध्वंसिता तावद् मदीया पूर्वजेन चन्द्रचुड नरनाथेन वैताढ्य आनीता साप्रतिमा मम पार्श्वास्ति तया सह अहं चारित्रं ग्रहीष्यामि"

भावार्थ—जिस समय रामचंद्रजीने लंकाका विध्वंस किया था उस समय हमारे पूर्वज चन्द्रचुड विद्याधरोंका नायक भी साथमें था अन्योन्य पदार्थोंके साथ रावणके चैत्यालयसे लीलापन्ना की पार्श्वनाथ प्रतिमा वैताढ्यगिरिपर ले आये थे वह क्रमशः आज मेरे पास है और

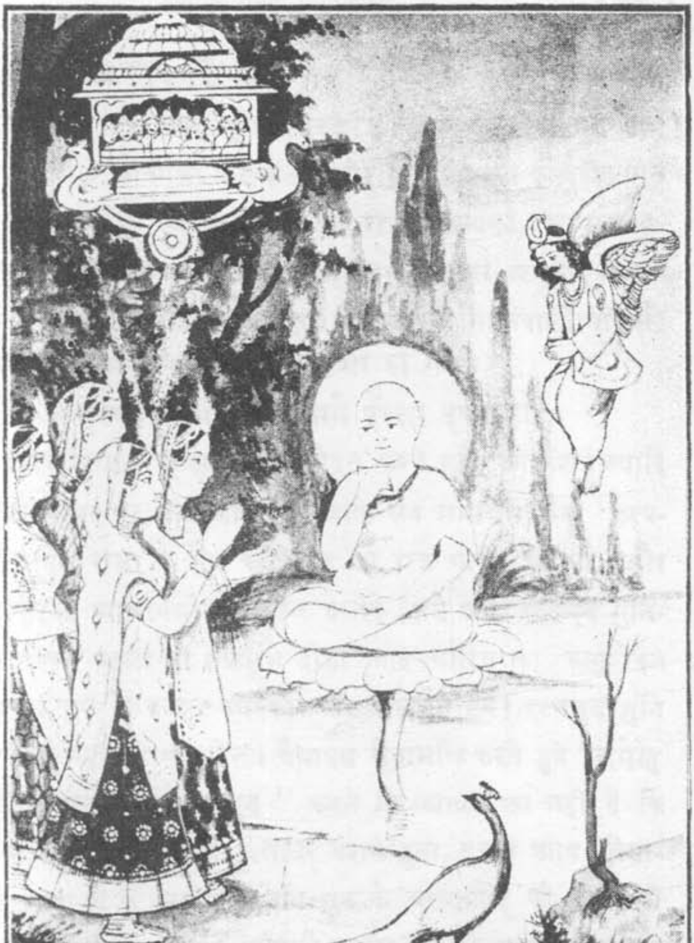

वड़ी शीघ्रताके साथ जाता हुआ विमान रूक गया. जंगम तीर्थ आचार्य श्री स्वयंप्रभसूरिजी को देवांगनाओं को उपदेश देते हुए देख. विद्याधर रत्नचूड (भावी रत्नप्रभसूरिजी) विमानसे नीचे उतर. करी हुइ आशातना की माफि मांगी। (पृ ३८)

Lakshmi Art. Bombay. 8.

मुझे ऐसा अटल नियम है कि मैं उस प्रतिमा का दर्शन सेवा कीये वगर अन्न जल नहीं लेता हुं मेरी इच्छा है कि भगवानकी प्रतिमा साथ मे रख दीक्षा ले भावपूजा करता हुवा मेरे पूर्व नियमको अखण्डितपने रखुं; आचार्यश्रीने अपना श्रुतज्ञानद्वारा भविष्यका लाभालाभ-पर विचार कर फरमाया कि " जहासुखम् " इसपर रत्नचुड विद्या-धरोका राजा बडा भारी हर्ष मनाता हुँवा अपने बैमानवासी पांचसो विद्याधरों के साथ दीक्षा लेने को तय्यार हो गये.

" गुरुणा लाभं ज्ञात्वा तस्मै दीक्षा दत्ता "

शेष विद्याधर दीक्षाका अनुमोदन करते हुवे श्री शत्रुंजयादि तीर्थों की यात्रा कर वैताढ्यगिरिपर जाके सब समाचार कहा तत्प-श्चात् रत्नचूड राजा के पुत्र कनकचूड को राज गादी बेठाया और वह सहकुटम्ब आचार्यश्री को वन्दन करनेके लिये आये रत्नचूड मुनि-का दर्शन कर पहला तो उपालंभ दीया बाद चारित्र का अनुमोदन कर देशना सुन के वन्दन नमस्कार कर विसर्जन हुवे। रत्नचुड मुनि क्रमशः गुरु महाराज का विनय वैयावच्च सेवाभक्ति करते हुवे "क्रमेण द्वादशांगी चतुर्दश पूर्वी बभूव " कहने कि आवश्यक्ता नहीं है कि पहले तो आपका जन्म ही विद्याधर वंशमे हुवा, दूसरा आप विद्या-धरों के राजा थे तीसरा विद्यानिधि गुरु के चरणार्विंद की सेवा की फिर कमी कीस बात की ? आपश्री स्वल्प समयमे द्वादशांगी चौदा-पूर्वादि सर्वागम और अनेक विद्या के पारगामि हो गये इतनाही नहीं पर धैर्य गांभिर्य शौर्य तर्कवितर्क स्याद्वादादि अनेक गुणोंमें निपुण हो गये, इधर आचार्य स्वयंप्रभसूरि शासनोन्नति, शासनसेवा आदिकर अनेक

भव्यों का उद्धार करते हुवे आपनि अन्तिमावस्था देख के रत्नचुड-मुनिको योग्य समझ आचार्य पदार्पण किया.

" गुरुणा स्वपदे स्थापितः श्रीमद्वीरजिनेश्वरात् द्वपंचाशत वर्षे (५२) आचार्यपद स्थापिताः पंचशत साधुसह धरां विचरन्ति "

भगवान् वीरप्रभुके निर्वाणात् ५२ वर्षे रत्नचुडमुनिको आचार्यपदपर स्थापनकर ५०० मुनियोंके साथ भूमण्डलपर विहार करने की आचार्य स्वयंप्रभसूरिने आज्ञा दी. अन्य हजारों मुनि आचार्य रत्नप्रभसूरि की आज्ञासे अन्योन्य प्रान्तोंमे विहार करने लगे, इधर स्वयंप्रभसूरि संलेखनः करते हुवे अन्तमे श्री सिद्धगिरिपर एक मासका अनसन कर स्वर्गमे अवतीर्ण हुवे इति पार्श्वनाथ भगवान् का पंचवापट्ट पर आचार्य स्वयंप्रभसूरि हुवे ।

आपश्रीने अपने पवित्र जीवनमें वर्ण जंजिरो कों तोड " महाजन " संघकी स्थापना कर जैन धर्मपर बडा भारी उपकार किया करीबन् २० लाख जनता को जैनधर्म की दीक्षा दी आकाश में चन्द्रसूर्य का अस्तित्व रहेगा वहां तक जैन जाति में आपका नाम अमर रहेगा जैन कोम सदैव के लिये आपके उपकार की आभारी हैं कारण श्रीमाल पोरवाड जातियों की स्थापना और अनेक राजा महाराजाओ को धर्मबोध । लाखो पशुओ को जीवतदान और यज्ञ में हजारों पशुओका बलिदानरूप मिथ्यारुढियो का जडामूलसे नष्ट कर देना इत्यादि बहुत धर्म्म व देशोन्नति हुई. यह सब आपश्री की अनुग्रह कृपाकाही फल है ।

(६) आचार्य स्वयंप्रभसूरि के पट्ट प्रभाकर जो मिथ्यात्वान्धकार को नाश करनेमे भास्कर सदृश अनेक चमत्कारी विद्याओ भूषित सकल आगम पारगामी और विद्याधर देवेन्द्र नरेन्द्र से परिपूजित आचार्य रत्नप्रभसूरि (मुनि रत्नचुड) हुवे इधर जम्बुस्वामिके पट्टपर प्रभवस्वामि भी महा प्रभाविक इनका विहार पूर्व बंगाल उडीसा मागध अंगादि देशों में और रत्नप्रभसूरि का विहार प्रायः राजपुताना, व मरूस्थल की तरफ हो रहा था दोनो आचार्यो की आज्ञावृति हजारो मुनिपुंगव पृथ्वीमण्डल पर विहार कर जैनधर्मका खुब प्रचार कर रहे थे यज्ञवादियो का जोर बहुत कुच्छ हट गया था पर बोद्धोंका प्रचार कुच्छ २ बढ रहा था केइ राजाओने भी बौधधर्म्म स्वीकार कर लीया था तद्यपि जैन जनता की संख्या सबसे विशाल थी. इसका कारण जैनमुनियो की विशाल संख्या और प्रायः सब देशो मे उनका विहार था. दूसरा जैनो का तत्वज्ञान और आचार व्यवहार सबसे उच्च कोटी का था जैन और बौद्धोंका यज्ञनिषेध विषय उपदेश मीलता जुलता ही था वेदान्तिक प्रायः लुप्तसा हो गये थे. जैन और बौद्धो के आपसमे कभी कभी वाद विवाद भी हुवा करता था.

आचार्य रत्नप्रभसूरि एकदा सिद्धगिरि की यात्रा कर अपने श्रमण संघ के साथ अर्बुदाचल की यात्रा करन को पधारे थे वहांपर एक समय चक्रेश्वरी देवीने सूरिजीको विनंति करी की हे दयानिधि ! आपके पूर्वजोने मरूभूमि की तरफ विहार कर अनेक भव्यों का कल्याण कीया असंख्य पशुओं की बलिरूपी 'यज्ञ' जैसे मिथ्यात्व कों समूल से नष्ट कर दीया पर भवितव्यता वशात् वह श्रीमालनगर से आगे नहीं बड सके। वास्ते अर्ज है कि आप जैसे समर्थ महात्मा उधर पधारे तो बहुत लाभ

होगा ? सूरिजीने देविकी विनंति को स्वीकार कर कहा की ठीक मुनियों को तों जहां लाभ हो वहां ही विहार करना चाहिये इत्यादि सन्मानित वचनो से देवीको संतुष्ट कर आप अपने ५०० मुनियों के साथ मरुभूमि की तरफ विहार किया।

उपकेशपट्टन (हालमेजिसकोंओशीया नगरी कहते है) की स्थापना—इधर श्रीमालनगरका राजा जयसेन जैनधर्म्मका पालन करता हुवा अनेक पुन्य कार्य्य कीया पट्टावलि नम्बर ३ मे लिखा है कि जयसेनराजाने अपने जीवनमे १८०० जीर्णमन्दिरों का उद्धार और ३०० नये मन्दिर ६४ वार तीर्थों का संघ निकाला और कुवे तलाव वावडीयों वगरह करवा के धर्म व देश की बहुत सेवा कर अनंत पुन्योपार्जन कीया. विशेप आपका लक्ष स्वधर्मीयों की तरफ अधिक था. जैनधर्म पालनकरनेवालों कि संख्या मे आपने खुब ही वृद्धि करी जयसेनराजा के दो राणि थी बडी का पुत्र भीमसेन छोटी का चन्द्रसेन जिसमें भीमसेन तो अपनि माताके गुरु ब्राह्मणों के परिचयसे शिवलिंगोपासक था और चन्द्रसेन परम जैनोपासक था. दोनों भाइयों में कभी कभी धर्म्मवाद हुवा करता था. कभी कभी तो वह धर्म्मवाद इतना जोर पकड लेता था की एक दूसरा का अपमान करने में भी पीच्छे नहीं हटते. थे ?

यह हाल राजा जयसेन तक पहुंचनेपर राजा को बडा भारी रंज हुवा भविष्य के लिये राजा विचार में पड गया कि भीमसेन बडा है पर इसकों राज दे दीया जाय तो वह धर्म्मान्धता के मारा और ब्राह्मणों की पक्षपातमे पड जैन धर्म्म ओर जैनोपासकोंका अ-

वश्य अपमान करेगा ! अगर चंद्रसेनकों राज दे दीया जाय तो राजमे अवश्य विग्रह पैदा होगा, इस विचारसागरमे गोताखाता हुवा राजाको एक भी रास्ता नहीं मीला पर काल तो अपना कार्य कीया ही करता है राजा की चित्तवृत्ति को देखएक दिन चंन्द्रसेनने पुच्छा कि पिताजी आपका दील में क्याविचार है इसपर राजाने सब हाल कहा चन्द्रसेनने नम्रतापुर्वक मधुर वचनों से कहा कि पिताजी आपतो ज्ञानी हो आप जानते हे की सर्व जीव कर्म्माधीन है जो जो ज्ञानियोने देखा है अर्थात् भविनव्यता होगा सो ही बनेगा, आप तो अपने दिलमें शान्ति रखो जैन धर्म्म का यह ही सार है मेरी तरफ से आप खातरी रखिये कि मेरी नशोमें आपका खुन रहेगा वहां तक तो में तन मन और धन से जैन धर्म्म की सेवा करुंगा । इससे राजा जयसेन को परम संतोष हुवा तद्यपि आपनि अन्तिम अवस्था में मंत्रियो व उमरावो को खानगीमे यह सूचन करदीथी की मेरे पीच्छे राजगादी चन्द्रसेन को देना कारण वह राज के सर्व कार्य्यों में योग्य हे इत्यादि सूचना करदी फिर राजातो अरिहंतादि पंचपरमेष्टी का स्मरण पूर्वक इस मृत्युलोग और नाशमान शरीर का त्याग कर स्वर्गकी तरफ प्रस्थान कर दीया. यह सुनते ही नगरमे शोक के बादल छा गये. हाँहाँकार मचगया, तत्पश्चात् सबलोगोने मिलके राजाकी मृत्युक्रिया बडाही समारोह के साथ करी बाद राजगादी के विषयमे दो मत हो गयें एकमत का कहनाथा कि भीमसेन बडा है वास्ते राजका अधिकार भीमसेनको है जब दूसरा मत कह रहा था की महाराज जयसेनका अन्तिम कहना है कि राज चन्द्रसेन को देना

और चन्द्रसेन राजगुण धैर्य गांभिर्य वीरता पराक्रमी और राज तंत्र चलानेमे भी निपुण है इन दोनो पार्टियोके वादविवाद यहां तक बढ गयाकी जिस्का निर्णयकरना भुजबलपर आपडा, पर चन्द्रसेन अपने पक्षकारोको समजादीया की मुझे तो राजकी इच्छा नहीं है आप अपना हठको छोड दीजिये. कारण गृह क्लेशसे भविष्यमें बडी भारी हानी होगा इत्यादि समझाने पर उन्होंने स्वीकार कर लिया बस। फिर था ही क्या ब्राह्मणों आदि शिवोपासकोका पाणि नौ गज चढ गया बडी धामधूमसे भीमसेनका राज्याभिषक हो गया. पहला पहल ही भीमसेनने अपनी राजसत्ताका जौर जुलम जैनोपर ही जमाना शरु कीया। कभी कभी तो राजसभामे भी चन्द्रसेनके साथ धर्म्म युद्ध होने लगा। तब चन्द्रसेनने कहा कि महाराज अब आप राजगादीपर न्याय करने को बिराजे है तो आपका कर्तव्य है की जैनोको और शिवोको एक ही दृष्टिसे देखे, जैसे महाराजा जयसेन परम जैन होने पर भी दोनो धर्म्म वालोको सामान दृष्टिसे ही देखते थे में आपको ठीक कहता हुँ कि आप अपनी कुट नीतिका प्रयोग करोगे तो आपके राजकी आज जो आबादी है वह आखिर तक रहना असंभव है इत्यादि बहुत समजाया पर साथमे ब्राह्मणलोग भी तो राजाकी अनभिज्ञताके जरिये जैनोसे बदला लेना चाहाते थे भीमसेनको राजगादी मीली उस समयसे जैनोपर जुलम गुजारना प्रारंभ हुवा था वह आज जैन लोग पुरी तंग हालत में आ पडे। तब चन्द्रसेन के अध्यक्षत्वमे एक जैनोकी बिराट सभा हुइ उसमें यह प्रस्ताव पास हुवा कि तमाम जैन इस नगरको छोड देना चाहिये इत्यादि। बाद चन्द्रसेन अपना दशरथ

नामका मंत्रीको साथले आबुकी तरफ चले गये वहांपर एक उन्नत भूमि देख शुभशुकन—मुहूर्त में नगरी वसाना प्रारंभ करदीया बाद श्रीमाल नगरसे ७२००० घर जिस्मे ९९०० घर तो अर्बाधिप और १०००० घर करीबन् क्रोडपति थे वह सभी अपने कुटम्ब सह उस नूतन नगरीमें आगये । उस नगरीका नाम चन्द्रसेन राजाके नामपर चन्द्रावती रख दीया प्रजाका अच्छा जमाव होनेपर चन्द्रसेनको वहांका राजपद दे राज अभिषेक कर दीया. नगरीकी आबादी इस कदरसे हुइ की स्वल्प समयमें स्वर्ग सदृश बन गइ राजा चन्द्रसेन के पुत्र शिवसेनने पास ही में शिवपुरी नगरी बसादी वह भी अच्छी उन्नतिपर बस गइ.

इधर श्रीमालनगरमे जो शिवोपासक थे वह ही लोग रह गये नगरकी हालत देख राजाभीमसेनने सोचा की ब्राह्मणों के धोखा में आके मेने यह अच्छा नहीं किया कि मेरे राजकी यह दशा हुई इत्यादि । पर वीतीवातको अब पश्चात्ताप करनेसे क्या होता है रहे हुवे नागरिको के लिये उस श्रीमालनगरके तीन प्रकोट बनाये पहले प्रकोट में क्रोडाधीप दूसरा में लक्षाधिपति, तीसरा में साधारण लोग एसी रचना करके श्रीमालनगरका नाम भीन्नमाल रखदीया जोकी राजा भीम-सेनकी स्मृतिके लीये कारण उधर चन्द्रसेनने अपने नामपर चन्द्रावती नगरी आबाद करीथी । चन्द्रसेनने चन्द्रावती नगरी में अनेक मन्दिर बनाये । जिसकी प्रतिष्टा आचार्य स्वयंप्रभसूरि के करकमलोसे हुइ थी अस्तु चन्द्रावती नगरी विक्रमकी बारहवीं तेरहवीं शताब्दी तक तो बडी आबाद थी ३६० घरतो केवल करोडपतियों के ही थे और प्रत्येक करोडपतियोंकी तरफसे हमेश स्वामीवात्सल्य हुवा करता था ।

पट्टावलियोंसे पता मिलता है कि चन्द्रावती में ३०० जैनमन्दिर देव-भुवनके सादृश्य थे आज उसका खन्डहर मात्र रह गये है यह समय की ही बलीहारी है ।

इधर भिन्नमाल नगर शिवोपासकों व वाममार्गियों का नगर बन गया वहांके कर्त्ता हर्त्ता सब ब्राह्मण ही थे, राजा भीमसेन तो एक नामका ही राजा था राजा भीमसेनके दो पुत्र थे एक श्रीपुंज दूसरा उपलदेव पटावली नं. ३ में लिखा है कि भीमसेनका पुत्र श्रीपुंज और श्रीपुंज का पुत्र सुरसुंदर और उपलदेव था । पर समय का मीलान करनेसे पहली पट्टावलीका कथन ठीक मीलता हुवा है । महाराज भीमसेनके महामात्य चन्द्रवंशीय सुवड था उसके छोटाभाइका नाम उहड था सुवड के पास अठारा क्रोडका द्रव्य होनेसे वह पहला प्रकोट में और उहड के पस नीनाणवें लक्षका द्रव्य होनेसे वह दूसरा कोंटमे बसता था एक समय उहड के शरीरमे तकलीफ होनेसे यह विचार हुवा कि हम दो भाइ होने पर भी एक दूसरे के दुःख सुखमें काम नहीं आते हैं वास्ते एक लक्ष द्रव्य वृद्ध भाइसे ले में क्रोडपति हो पहले प्रकोट में जा वसुं. सुवह उहड अपने भाई के पास जा के एक लक्ष द्रव्य की याचना करी इसपर भाईने कहा की तुमारे विगर प्रकोट शुन्य नहीं है (दूसरी पट्टावली मे लिखा है की भाई कीं औरत ने एसा कहां) कि तुम कर्ज ले क्रोडपति होनेकी कौशीस करते हों इत्यादि यह अभिमान का वचन उहड को बडा दुःखदाई हुवा झट वहांसे निकल के अपने मकानपर आया और एक लक्ष द्रव्य पैदा करनेका उपाय सोचने लगा.

इधर युवराज श्रीपूंज के और राजकुमार उपलदेव के आपसमें किसी साधारण कार्य के लिये बोलना पड गया इस पर श्रीपूंजने कहा भाई एसा हुकम तो तुम अपने भुजबलसे राज जमावो तब ही चलेगा ? इस ताना के मारा उपलदेवने प्रतिज्ञा कर ली की जब हम भुजबलसे राज स्थापन करेंगे तब ही आप को मुह बतलावेंगे बस ! इसके सहायक ऊहड मंत्री व्यग्रचितमें बेठा ही था दोनों आपसमें वार्तालाप कर प्रतिज्ञापूर्वक भिन्नमालनगरसे निकल गये और चलते चलते राहस्तामें एक सरदार मीला उसने पुच्छा कि कुमरसाहिब आज किस तरफ चडाई हुई है ? उपलदेवने उत्तर दिया कि हम एक नया राज स्थापन करने कों जा रहे है फिर पुच्छा यह साथ में कौन है ? यह हमारा मंत्रि है उस सरदारने कहा कुमर साहिब राज स्थापन करना कोइ बालकोंका खेल नहीं है आपके पास एसी कौनसी सामग्री है कि जिसके बलसे आप राज स्थापन कर सकोंगे ? कुमरने कहा की हमारी भुजामें सब सामग्री भरी हुई है जिसके जरिये हम नया राज स्थापन कर सकेंगे ? इस वीरताके वचन सुन सरदारने आमन्त्रण कीया कि दिन बहुत तंग हे वास्ते रात्रि हमारे वहां विश्राम लीजिये कल पधार जाना, बहुत आग्रह होनेसे कुमरने स्वीकार कर उस सरदार के साथ चल दीया वह सरदार था वैराट नगरका राजा संग्रामसिंह कुमरको बडे सत्कारके साथ अपने नगरमें लाया बहुत स्वागत कीया उसका शौर्य धैर्य गांभिर्य आदि अनेक सद्गुणोंसे मुग्ध हो राजा संग्रामसिंहनें अपनि पुत्री की सगाइ उस उपलदेव कुमर के साथ कर दी रात्रि तो वहां ही रहे दूसरे दिन प्रातःसमय

लोंकों नगरमें वसा रहे थे यह खबर भीन्नमालमें हुइ वहांसे भी उपलदेव और उहडके कुटम्ब व नागरिक बहुतसे लोग उएसपट्टन में आ मिलें—

" ततो भीन्नमालात् अष्टादश महस्र कुटम्ब आगतः द्वादश योजन नगरी जाता " इस के सिवाय कइ प्राचीन कवित भी मीलते है ।

" गाडी सहस गुणा तीस, भला रथ सहस इग्यार
अठारा सहस असवार, पाला पायक नहीं पार
ओठी सहस अठार, तीस हस्ती मद झरंता
दश सहस दुकान, कोड व्यापार करंता
पंच सहस विप्र भीन्नमाल से मणिधर साथे माडिया.
शाह उहडने उपलदे सहित, घर बार साथे छांडिया । १ । "

अगर उपलदेव और ऊहड के कुटुम्ब अठारा हजार और शेष बादमें आये हो ? पर यह तो निश्चय है कि भिन्नमाल तुटके उएश-पट्टन बसी है । मूळ पट्टावलिमें नगरका विस्तार बारह योजनका है साथ में मंडोवर नगरी भी उस समयमें मोजुद थी उएशका नाम संस्कृत ग्रन्थकारोंने उपकेशपट्टन लिखा है उएशका अपभ्रंश " ओशीयों " हुवा है वंशावलियोंसे ज्ञात होता है कि वर्तमान ओशीयों से १२ मिल तिवरी ग्राम है वह तेलीपुरा था ६ मिल खेतार क्षत्रिपुरा २४ मिल लोहावट ओशीयोंकी लोहामंडी थी ओशीयोंसे २० मिल पर घटियाला ग्राम है वहां पर ओशीयां का दरवाजा था जिसके

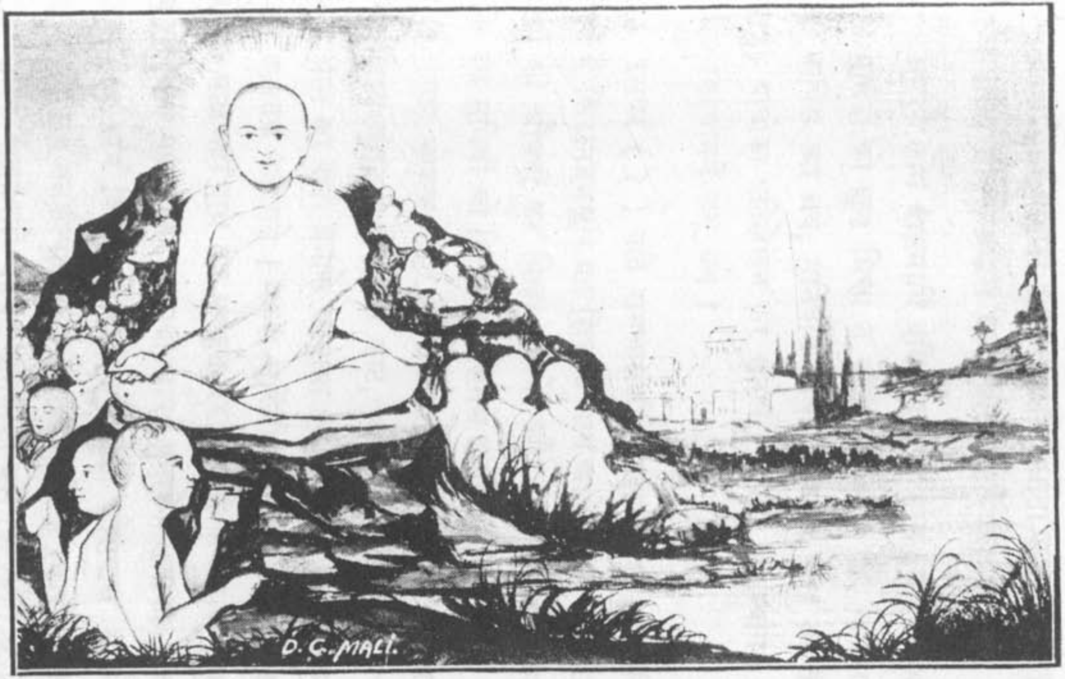

आ० रत्नप्रभसूरिजीने पांचसो मुनियोंके साथ, उपकेशपुर निकटवर्ती लूणाद्रि टेकरी पर समवसरण कीया।

(पृ. ६०)

Lakshmi Art, Bombay, 8.

मिथ्यात्व वासिता यादृशा गता तादृशा आगता मुनीश्वराः तपो-वृद्धि पात्राणि प्रतिलेख्यमास यावत् संतोषेणास्थिताः

नगरमे लोग वाममार्गि देवि उपासक मांस मदिरा भक्षी होनेसे मुनियों को शुद्ध भिक्षा न मीली जैसे पात्रे ले के गयेथे वैसेही वापिस आ गये, मुनियोंने सोचा कि आज और भी तपो-वृद्धि हुइ पात्रोका प्रतिलेखन कर संतोषसे अपना ज्ञानध्यानमे मग्न हो आत्मकल्यानमें लग गये ।

इसपर (१) यति रामलालजीने महाजनवंश मुक्तावलिमें लिखते है कि रत्नप्रभसूरि एक शिष्यके साथ आये भिक्षा न मिलेनसे गृहस्थों की औषधी कर भिक्षा लातेथे. और (२) सेवगलोग कहते है कि उन मुनियों को भिक्षा न मलिनेसे हमारे पूर्वजोंने भिक्षा दी थी (३) भाट भोजक कहते है कि भिक्षा न मीलनेपर आचार्य-श्रीका शिष्य जंगलसे लकडीयों काट, भारी बना, बजारमें बेंचके उसका धान ला रोटी बनाके खाताथा इसी रीतसे उस शिष्यके सिरके बालतक उड गये । एकदा सूरिजीने शिष्यके सिरपर हाथ फेरा तो बाल नहीं पाये तब पुच्छने पर शिष्यने सब हाल सुनाया जब सूरिजीने एक रुइका मायावी साप बनाके राजाका पुत्रको कटाया फिर स्वयं विष उतार के सब नगरको ओसवाल बनाये । इत्यादि यह सब मनकल्पीत झूठी दन्तकथाओं है कारण अख-ण्डित चारित्र पालनेवाले पुर्वधर मुनियोंको एसे विटम्बना करनेकी जरूरत क्या अगर भिक्षा न मीले और तप करनेकी सामर्थ्य

नहोतो फिर उस नगर में रहनेका प्रयोजन हीं क्या, उस समय मामुली साधुभी एक शिष्यसे विहार नहीं करते थे तो रत्नप्रभाचार्य जेसे महान् पुरुष विकट धरतीमें एक शिष्यके साथ पधारे यह बिलकुल असंभव है आगे भाट भोजको या कितनेक यतियोंने ओसवालोकी उन्नति और रत्नप्रभसूरिका समय बीयेबाइसे वि. सं. २२२ का बतलाते है वह भी गलत है जिसका खुलासा हम चतुर्थ प्रकरणमें करेंगें दर असल वह समय विक्रम पूर्व ४०० वर्षका था और भिक्षा न मिलनेसे मुनियोंने तप वृद्धि करीथी ।

मुनियों के तपवृद्धि होते हुवेकों बहुत दिन हो गये तब उपाध्याय वीरधवळने सूरिजीसे अर्ज करी कि यहां के सब लोग देवि उपासक वाममार्गि मांस मदिरा भक्षी है शुद्ध भिक्षा के अभाव मुनियोंका निर्वाह होना मुश्किल है ? इस पर आचार्यश्रीने कहा कि एसाही हो तो विहार करों. मुनिगण तो पहलेसे ही तैयार हो रहे थे हुकम मिलतें ही कम्मर बान्ध तय्यार हो गये । यह हाल वहां की अधिष्टायिका चामुंडा देविको ज्ञानद्वारा ज्ञात हुवा तब देविने सोचा कि मेरी सखी चक्रेश्वरी के भेजे हुवे यह महात्मा यहां पर आये है और यहांसे क्षुधा पिपासा पिडित चले जावेंगे तो इसमें मेरी अच्छी न लगेगी इस विचारसे देवी सूरिजीके पास आई " शासन देव्या कथितं भो आचार्य ? अत्र चतुर्मासकं कुरुं तत्र महालाभो भविष्यति " हे आचार्य । आप मेरी विनंतिसे यहां चतुर्मास करे तांकि आपको बहुत्त लाभ होगा ? इस पर सूरिजीने देवि की विनंतिको स्वीकार कर मुनियोंसे कह दीया कि जो

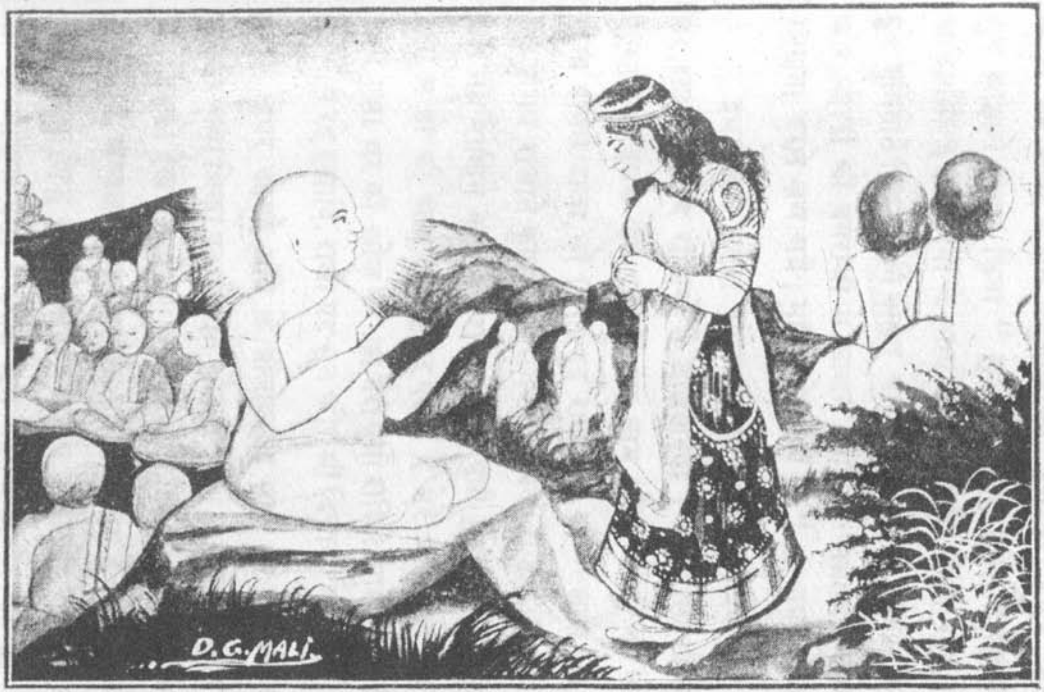

चामुंडा देवी की महान लाभ मय प्रार्थना को स्वीकार कर, आचार्य श्री ने ३५ दीर्घ तपस्वी मुनीओंके साथ उपकेशपुरमें चतुर्मास कर दिया, शेष ४६५ साधुओंको अनुकुल प्रदेशमें विहार करने को आज्ञा दी। (पृ ६२)

विकट तपस्या के करने वाले हो वह हमारे पास रहे शेष यहां से विहार कर अन्य क्षेत्रोंमे चतुर्मास करे, इस पर ४६५ मुनि तो गुरु आज्ञासे विहार किया " गुरुःपंचत्रिंशत् मुनिभिःसहस्थितः" आचार्यश्री ३५ मुनियों के साथ वहां चतुर्मास स्थित रहे । रहे हुवे मुनियोंने विकट यानि उत्कृष्ट चार चार मासकी तपस्या करली। और पहाडी की बनराजी मे आसन लगा के समाधि ध्यान में रमणता करने लग गये। मुनियों के लिये तो " ज्ञानामृत भोजनम्"

इधर स्वर्ग सदृश उएसपट्टन में राजा उत्पलदेव राम राज कर रहा था अन्य राणियों में जालणदेवी (सग्रामसिंहकी पुत्री) पट्टराणिथी उसके एक पुत्री जिस्का नाम शोभाग्यदेवी था वह वर योग्य होनेसे राजा को चिंत्ता हुइ राजा वर की तलास मे था, एक समय राजाने कुमरि का सगपण विषय राणिके पास बात करी तब राणिने कहा महाराज ! मेरी पुत्री मुझे प्राणसे वल्लभ है एसा न हो की आप इसकों दूर देशमें दे मेरे प्राणों कों खो बेठो, आप एसा वर की खोज करे की मेरी पुत्री रात्रिमे सासरे और दिनमें मेरे पास रहे इत्यादि. राजा यह सुन और भी विचारमे पड गया।

इधर उहडदे मंत्रि के त्रीलोकासिंह नाम का पुत्र जो बडाही शूरवीर तथा लिखा पढा विद्वान और शरीरकी सुन्दरता कामदेव तुल्य थी जिसकों देख राजाने सोचाकी शोभाग्यदेवी की सादी इसके साथ कर देनेमे अव्वल तों घर व वर पुत्री के योग्य है दूसरा जो मैं मंत्रि का ऋणि हुँ वह भी अदा हो जायगा तीसरा राणिका कहेना भी रह जायगा एसा समझके शुभ मुहुर्तके अन्दर बडे ही आड-

श्वर के साथ अपनी कन्या शोभाग्यदेवीको मंत्रीश्वरके पुत्र त्रीलोक-सिंह को परणादी. तत्पश्चात् थोडाही समयकी जिक्र है की वह दम्पति एकदा अपनि सुखशैय्यामें सुते हुवे थे " मंत्रीश्वर ऊहड सुतं भुजंगेनदष्टाः " मंत्रीश्वरके पुत्र त्रीलोकासिंह को अकस्मात् सर्प काट खाया " अज्ञ लोक कहते है की सूरिजीने रुइ का मायावी साप बना के राजा का पुत्र को कटाया था यह बिलकुल मिथ्या है " मूल पट्टावलिमे लिखा है कि नूतन परणा हुवा राजा के जमाई (मंत्रीश्वर का पुत्र) को सांप काट खाने से नगर में हा–हाकार मच गया बहुत से मंत्र यंत्र तंत्र वादी आये अपना अपना उपचार सबने किया जिस्का फल कुछ भी न हुवा आखिर कुमारको अग्नि संस्कार करने के लिये स्मशान ले जाने की तैयारी हुइ " तस्य स्त्री काष्ट भक्षणा स्मशाने आयाता " राजपुत्री सौभाग्यदेवी अपना पति के पीच्छे सती होने को अश्वारूढ हो वह भी साथ मे होगइ। राजा, मंत्री, और नागरिक महान् दुःखि हुवे वह रूदन करते हुवे स्मशान भूमि की तरफ जा रहे थे " कारण उस समय एसी मृत्यु कचित् ही होती थी "—

इधर चमुंडा देविने सोचा कि मेने सूरिजी को विनंति की थी उस समय वचन दिया था की आपके चतुर्मासमें यहांपर बहुत लाभ होगा पर उसके लिये आज तक मेने कुच्छ भी प्रयत्न नहीं किया किन्तु आज यह अवसर लाभ का है एसा विचार एक लघु मुनि का रूप बना कर स्मशान की तरफ कुमर का भापान (सेविका) जा रहा था उस के सामने जाके देवीने कहा कि " जीवितं कथं

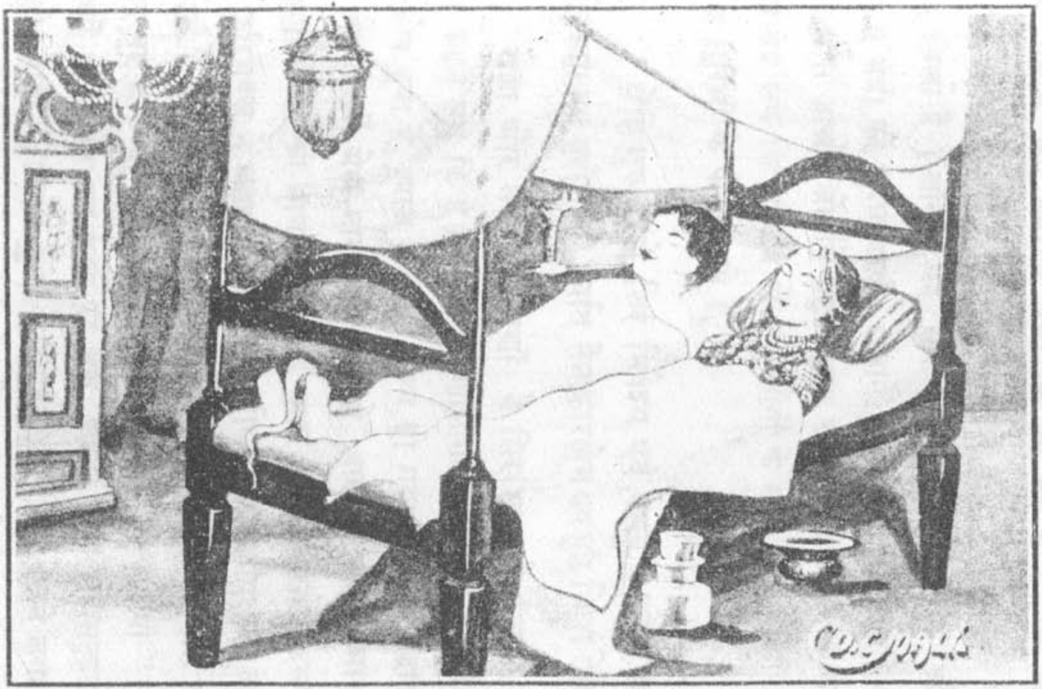

निद्रावश दंपति के पलंग पर पूर्णीया सर्प चड़गया और कुमारके पगके अंगूठे पर जहरी डंस लगाया। (पृ [illegible])

Lakshmi Art Bombay 8.

उवालियत: " भो भद्र लोंगो इस जीवीत राजकुमर को तुम लोग जलाने को स्मशान क्यों ले जा रहे हो इतना कह देवि तों अदृश हो गई (पट्टावलि नं ३ में वह मुनि सूरिजी का शिष्य लिखा है) लोगोंने यह सुन बडा ही हर्ष मनाया और राजा व मंत्री कों खुशखबरदी, राजाने हुकम दीया कि उस मुनि को हमारे पास लाओ. लोगोंने बहुत कुच्छ खोज करी पर वह मुनि न मिला तब सब कि सन्माति से सब लौगों के साथ कुमर का झांपांन को ले सूरिजी के पास आये ।

" श्रेष्ठि गुरु चरणे शिरं निवेश्य एवं कथयति भो दयालु ममदेवरूष्टा मप गृहीशून्यो भवति तेन कारणेन मम पुत्र भिक्षां देहि"

राजा और मंत्री गुरूचरणों मे सिर झूका के दीनता के साथ कहने लगे कि हे दयाल ? करूणासागर आज मेरे पर दुर्दैव-का कोप हुवा है, आज मेरा गृह शुन्य हो गया है आप महात्मा हो आप रेखमें मेख मारनेको समर्थ हो वास्ते में आज आपसे पुत्ररूपी भिक्षा की याचना करता हुं आप अनुग्रह करावे । इसपर उ० वीरधवल ने कहा " प्रासु जल मानीय गुरु चरणौप्रक्षाल्य तस्य छंटितं " फासुकजल से गुरु महाराज के चरणो का प्रक्षाल कर कुमर पर छांट दो " बस इतना केहने पर देरी ही क्या थी " गुरु चरणों का प्रक्षाल कर कुमर पर जल छांटते ही " सहसात्कारेण सज्जोव भुवः " एकदम कुमर बेठा हुवा इधर उधर देखने लगा तो चोतरफ हर्षके वार्जित्र बज रहे थे और जयध्वनि के साथ कहने

लगे कि गुरु महाराज की कृपासे कुमरजी आज नये जन्म आये है सब लोगोंने नगरमें जा पोषाकें बदल के बडे ही धामधूम और गाजावाजा के साथ जो सूरिजी को हजारो लाखों जीह्वाओं से आशीर्वाद देते हुवे अच्छे समारोह के साथ कुमरकों नगरमे प्रवेश कराया राजाने अपने खजानावालो को हुकम दे दिया कि खजाना में बढिया से बढिया रत्नमणि माणेक लीलम पन्ना पीरोजिया लशणियादि बहूमूल्य जवाहिरात हो वह महात्माजी के चरणो में भेट करो ! तदानुसार राजा के खजाना से व मंत्री ऊहड श्रेष्टिने बहुत द्रव्य भेट किया ।

" पट्टावलि नं. ५ में १८ थाल रत्नो से भर के सूरिजी महाराज के चरणों मे भेट किया लिखा है "

" गुरुणा कथितं मम न कार्ये " आचार्यश्रीजीने फरमाया कि मेने तो खुद ही वैताढ्यगिरि का राज और राज खजाना त्याग के योग लिया है अब हम त्यागियोंको इस द्रव्यसे प्रयोजन नहीं है यह परिग्रह अनर्थ का मूल है अगर गृहस्थ लोग इसकों धर्म्म कार्य्य व देशहित में लगावे तो पुन्योपार्जित हो सकता है नहीं तो दुर्गतिका ही कारण है इत्यादि सूरिजीने कहा कि आप अगर हमें खुश करना चाहैं तो " भवद्भिः जिनधर्मो गृह्यतां " आप सब लोग पवित्र जैनधर्मको श्रवण कर श्रद्धा पूर्वक स्वीकार करो जिससे आपका कल्याण हो इत्यादि। सूरिजी के निर्लोभता के वचन सुनके श्रेष्ठि और खजानची लोग आश्चर्य में डुब गये, विचारने लगे कि कहाँ तो अपने गुरु लोभानन्द और कहां इन महात्माकी निर्लोभता अरे

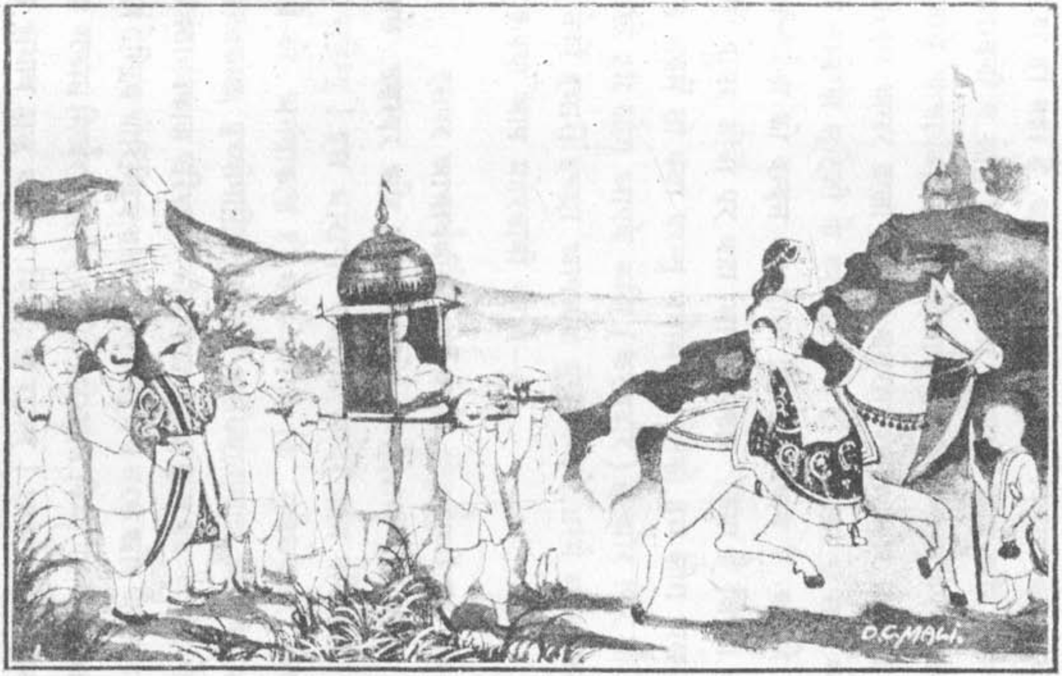

सर्पमूर्छित कुमारको, सति राजकन्याके साथ, अग्निदाह निमित्त स्मशान भूमि तरफ ले जाते हुए शोक पिडीत राजमंडल को रोक, तेजस्वी बाल साधुने दिव्य स्वरसे कहा कि "जीवित राजकुमार को जला देना यह मूर्खता है"। (पृ ९४)

Lakshmi Art, Bombay, 8.

जिस द्रव्यके लिये दुनियो मर कट रही है उनकी इन महात्माको परवा ही नहीं है अहो आश्चर्य इत्यादि विचार करते हुवे सब खजानची व श्रेष्ठि वगैरह राजा के पास आये और सब हाल सुनाये आचार्यश्रीकी निःस्पृहीताने राजाके अन्तकरणपर इतना तो जोरदार असर डाला कि वह चतुरांग शैन्या और नागरिक जनों को साथ ले सूरिजी के दर्शनार्थ बडे ही आडम्बर के साथ आये। आचार्यश्री को वन्दन कर बोला कि हे भगवान् ? आपने हमारे जैसे पामर जीवों पर बडा भारी उपकार किया है जिस्का बदला इस भवमें तो क्या परन्तु भवोभवमें देनेको हम लोग असमर्थ है वास्ते हम लोग आपके रूणि (करजदार) है और फिर भी रूणि होनेकों हमारी इच्छा आपश्रीके मुखार्विन्दसे धर्म्म श्रवण करनेकी है कृपया आप महेरबानी करावें—

इसपर आचार्यश्रीने उन धर्म्म जिज्ञासुओं पर दया भाव लाके उच्चस्वर और मधुर भाषासे धर्म्मदेशना देना प्रारंभ किया हे राजेन्द्र ! इस आरापार संसारके अन्दर जीव परिभ्रमण करते हुवे को अनंताकाल हो गया कारण कि सुक्षमबादर निगोदमें अनंतकाल, पृथ्वीपाणि तेउवाउमें असंख्याताकाल, और वनस्पति में अनंतानंतकाल परिभ्रमन कीया बाद; कुच्छ पुन्य बड जानेसे बेन्द्रिय एवं तेन्द्रिय चोरिंन्द्रिय व तीर्यंच पांचेन्द्रिय व नरक और अनार्य मनुष्य वा अकाम निर्ज्जरादिसे देव योनिमें परिभ्रमन किया पर उत्तम सामग्री के अभाव शुद्ध धर्म्म न मिला, हे राजन् ! शास्त्रकारोंने फरमाया है कि सुकृत कार्य्योंका सुकृत फल और दुष्कृत्य कार्योंका दुष्कृत्य

फल भवान्तरमें अवश्य मिलता है इस कारण जीव चतुर्गतिमें परिभ्रमण करतेंको अनंतानंतकाल निर्गमन हो गया। अव्वलतों जीवको मनुष्य भव ही मिलना मुश्किल है कदाच मनुष्य भव मिल भी गया तो आर्य्यक्षेत्र, उत्तमकूल, शरीर आरोग्य, इन्द्रिय परिपूर्ण, और दीर्घायुष्य, क्रमशः मिलना दुर्लभ है कारण पूर्वोक्त साधनोके अभाव धर्म्मकार्य बन नहीं सक्ता है अगर किसी पुन्य के प्रभाव से पूर्वोक्त सामग्री मिल भी जावे पर सद्गुरुका समागम मिलना तो अति कठिन है और सद्गुरु विगरह सद्ज्ञान कि प्राप्ति होना सर्वथा असंभव है कारण जगतमें एसे भी नाम-धारि गुरु कहला रहे है कि यह भांग गंजा चरस उडाना मांस मदिराका भक्षण करना यज्ञ यागादिमें हजारों लाखों निरापराधि प्राणियोंका बलिदान करना और धर्म्मके नामपर व्यभिचार यानि ऋतुदान पण्डदान वगैरहसे आप स्वयं डुबते है और उनके भक्तों को भी वह गेहरी खाड अर्थात् अधोगतिमें साथ ले जाते है।

हे राजन्! कितनेक पाखण्ड लोगोंने केवल अपना अल्प स्वार्थ के लिये विचारे भद्रिक जीवो कों अपनि जालमें फसानेके हेतु एसे एसे ग्रन्थोंकी रचना भी कर डाली है कि—

मद्यं मासं च मीनं च। मुद्रा मैथुन मे वच।
ए ते पंच मकारश्च। मोक्षदा हि युगे युगे। १।

अर्थात् (१) मदिर (२) मांस (३) मीन (जलके जीव) (४) मुद्रा (५) मैथुन इन पांच मकारका सेवन

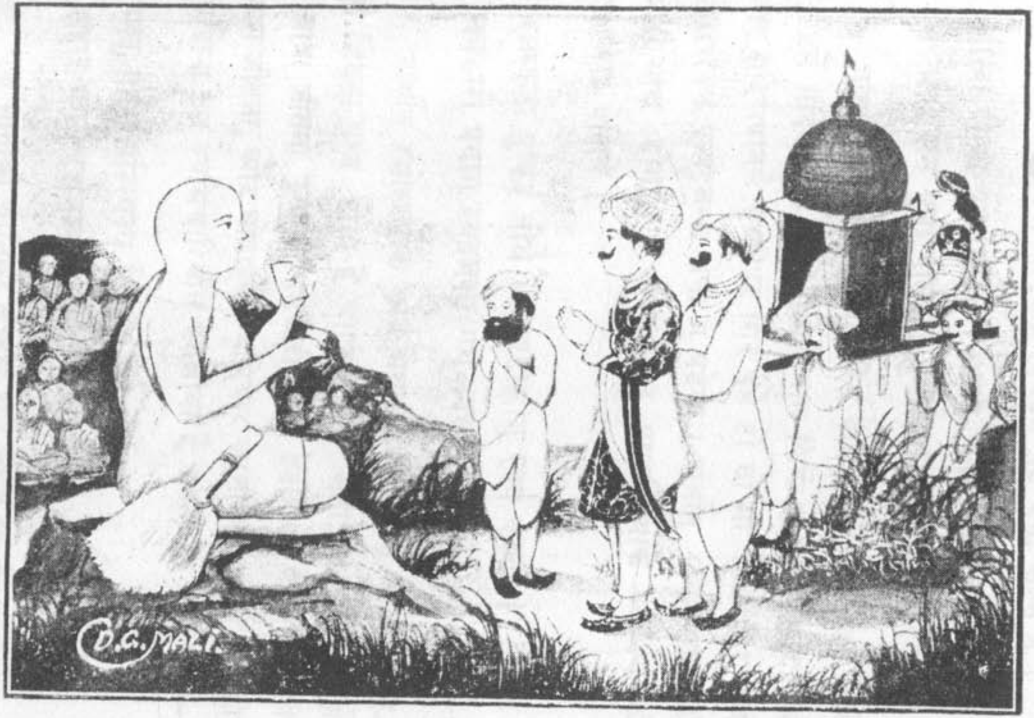

अशान्ति राजा, प्रधान, सती राजकन्या और उसके मूर्छित पती को साथ ले आचार्य श्री के चरणोंमें हाजर हुए सजल नेत्रोंसे जीवन प्रदान करने की अर्ज की। (पृ ५६)

करनेसे युगयुगमें मोक्षकी प्राप्ती होती है और भी इन पाखण्डियोंकें वचनको सुनिये. मदिराके विषयमें वह क्या कहते है ।

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा । यावत् पतति भूतले ।
उत्थितः सन् पुनः पीत्वा । पुनर्जन्मो न विद्यते । १ ।

अर्थात् वह अधम्म पाखण्डि वाम मार्गि लोग कहते है कि हे लोगों मदिरा खुब पीवो पहिले पान किया हो तो भी फीर पीवों अगर मदिरापानसे पृथ्वीपर गिर पडे हो तो भी उठके फिर पीवों मदिरापानसे पुनः जन्म लेना न पडेगा । अर्थात् मदिरापानसे ही तुमारी मोक्ष होगा । हे नरेश ! उन पाखण्डियोंके व्यभिचारकी तरफ जरा देखिये ।

रजस्वला पुष्करं तीर्थं । चाण्डालीतु स्वयं काशी ।
चर्मकारी प्रयाग स्यद्रजकी मथुरामत्ता । × × × ×

अर्थात् रजोस्वलाके साथ मैथुन सेवन करना मानो पुष्करतीर्थ जितना पुन्य होता है चाण्डालनीसे भोग करना काशीतिर्थ की यात्रा जीतना पुन्य व चर्मकारी यानि ढेढणीसे मैथुन सेवनमें प्रायाग जीतना, और धोबणसे व्यभिचार करना मथुरातीर्थ जीतना पुन्य होना उन व्यभिचारियोंने बतलाया है इतना ही नहीं पर—

मातृ योनि परित्यज्य विहरेत् सर्व योनिषु × ×
सहस्र भग दर्शनात् मुक्तिः × × × × ×

एक माताकी योनिको छोडके सर्व योनि अर्थात् व्यभिचार

के लिये बेहन बेटी तक भी निषेद नहीं है फिर भी व्यभिचारियोंका यह तुर्रा है कि सहस्र योनि एक हजार योनिका दर्शन करनेसे मुक्ति होती है हे धराधिप ! इन दुराचारियोंने मांस मदिरा और मैथुनके वसीभूत हो एसे एसे देवि देवताओं कि स्थापना करी है वह भी पर्वत पहाड और जंगल जाडीमें की जहां स्वच्छन्दचारी मन माना अत्याचार करे तभी कोइ रोकनेवाले नहीं है मांसके लिये देव देवियों और यज्ञ होमके नामसे निरपराधि असंख्य प्राणियोंके प्राण लुंटके भी जनताको धर्म वह शान्ति वतला रहे है इस पर सद्ज्ञानशुन्य जनता उन पाखण्डियों कि भ्रम जालमें फस जाती है पर शास्त्रकारोंका कहना सत्य है कि—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा । शास्त्र तस्य करोति किं ।
लोचनाभ्यों विहीनस्य । दर्पणं किं करोष्यति । १ ।

अर्थात् जिस आदमि, के स्वयं प्रज्ञा—बुद्धि—अकल नहीं है उसके लिये शास्त्र तो क्या पर ब्रह्म भी क्या करे जैसे नेत्रहीन के लिये दर्पण क्या कर सक्ता है अगर खुद उनकेही शास्त्रोंसे देखा जावे तो यज्ञ करना किस रीतिसे वतलाया है—

इन्द्रियाणि पशुन् कृत्वा । वेदी कृत्वा तपो मयीं ।
अहिंसा माहुति कृत्वा । आत्म यज्ञ यजाम्यहम् । १ ।
ध्यानाग्नौ जीव कुण्डस्थ । दममारूत दीपिते ।
असत्कर्म समितत्क्षेपे । अग्निहोत्रं कुरूत्तमम् । २ ।

अर्थात् तपरूपी वेदी, असत्यकर्मरूपी समित (काष्टा)

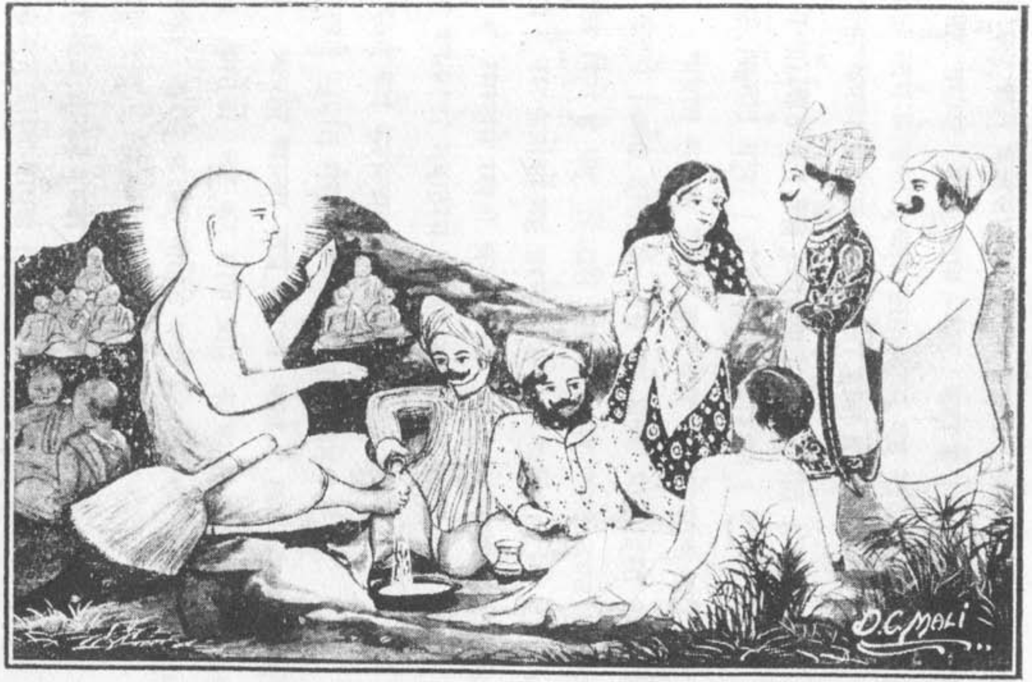

आचार्य श्री के चरण प्रक्षालन जलके छंटनेंसे मूर्छीत कुमार सजग हो, श्वसुर, पिता, पत्नि आदिको श्मशान वेशमें देख आश्चर्यमुग्ध हो गया। (पृ ८७)

ध्यानरूपी अग्नि, दम रूपी वायुसे प्रदीपत्त, पांच इन्द्रियकी विषय रूपी पशु और अहिंसा आहुतिरूप यज्ञ कर स्वपर आत्माकों पवित्र बनाना इसका नाम भाव यज्ञ कहा है। अगर पशुबलिरूप यज्ञकर स्वर्ग मोक्षकी इच्छा करता होतों वह युक्ति भी ठीक है कि रूदरका कपडा रूदरसे निर्मल नहीं होता है जैसे—

न शोणित कृतं वस्त्रं। शोणिते नैव शुध्यते।
शोणितार्द्र यद्वस्त्रं। शुद्धं भवति वारिणा। १।

अर्थात् रूदरसे खरडा हुवा वस्त्र रूदरसे साफ नहीं होता है पर जलसे निर्मल होता है जैसे पूर्व भवमें घोर हिंसा कर कर्मोपार्जन किये है वह हिंसासे नष्ट नहीं पर उलटे डबल दुःखदाइ होता है उस कर्मोकों नष्ट करनेके लिये एक अहिंसा ही है हे राजन्! यह भी स्मरणमे रखना चाहिये कि पूर्व भवमें उपार्जन किये कर्म स्वयं आत्माको भवांतरमे अवश्य भोगवना पडता है। जैसे

स्वयं कर्म करोत्यात्मा। स्वयं तत्फलम श्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे। स्वयं तस्माद्विच्यते। १।

अर्थात् आत्मा स्वयं कर्मका कर्ता है स्वयं भुक्ता है और स्वयं कर्मोकों नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करता है इस वास्ते आपको सत्यकों धारण करना चाहिये क्यों कि संसारमें सत्य एक एसा पवित्र वस्तु है की—

सत्येन धार्यते पृथ्वी। सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च। सर्व सत्य प्रतिष्टतम्। १।

हे नरेश! मनुष्य मात्रका कर्त्तव्य है कि प्रत्येक धर्म्म का

संशोधन कर आत्म कल्याण करनेको समर्थ हो उसी धर्म्मको स्वीकार करना चाहिये यहतो आपखुद ही समझ सके हो की पूर्वोक्त मांस मदिरा मैथुनादि अत्याचार करनेवालोंसे सद्ज्ञानकी प्राप्ति होना तो सर्वथा असंभव ही है वास्ते आत्म कल्याणके लिये सबसे पहिले सत्गुरु अर्थात् सत्संगकी आवश्यक्ता है कथञ्चित् सद्गुरुका समागम मिल भी जावे तो भी सदागमका श्रवण मिलना अति कठिन है कारण एसे समयमें अनेक बाधाए आया करती है पर सदागम श्रवण वगरह हिताहितके मार्गकी खबर नहीं पडती है अगर सदागमका श्रवण करना भी किसी पुन्योदय मिल भी गया, पर पहलेसे मिथ्यागमरूपी वासना हृदयमेंजमी हो तो सदागम पर श्रद्धा जमना मुश्किल है। कदाच सत्यको सत्य समज लिया पर कितनेक तो मत्त बन्धनमें बन्धे हुवे कितनेक पूर्वजों कि लकीर के फकीर बने हुवे और कितनेक कुल परम्पराकों लेकर सत्यको स्वीकार करनेमें हिचकते है अर्थात् सरमाते है। अगर कितनेक एसे हिम्मत बहादुर भी होते है कि असत्यको धीकारके सत्यको स्वीकार भी कर लेते है पर उस सत्य धर्म्म पर पाबंदी रख पुरुषार्थ करना सबसे ही कठिन है। परन्तु आत्माके कल्याणकी इच्छावालोंको पूर्वोक्त कोइ भी बात दुःसाध्य नहीं है।

हे राजन्! इस भूमण्डल पर अनेक धर्म्म प्रचलित है पर सबसे प्राचीन और सर्वोत्तम धर्म्म है तो एक जैन धर्म्म ही है जैन धर्म्मका आत्मज्ञान तत्त्वज्ञान इतना तो उच्च कोटीका है कि साधारण मनुष्योंके एकदम समझमें आना ही

मुश्किल है हाँ गुरु व ज्ञानियोंका सत्संग कर उन पवित्र ज्ञानको समझ लिया हो तो फिर इतर धर्म्म तो उसकों बच्चोका खेल जेसा ही ज्ञात होता है जैसे जैन धर्म्मका आत्मज्ञान उच दर्जेका है वैसे ही जैनोंका आचार व्यवहार खान पान रित रिवाज भी उत्तम है जैन धर्म्मके तत्त्वज्ञानमें ' स्याद्वाद ' और आचार ज्ञानमें ' अहिंसा परमो धर्म्म । मुख्य सिद्धान्त है हे राजन् ! यह धर्म्म सम्पूर्ण ज्ञानवाले सर्वज्ञ ईश्वरका फरमाया हुवा है जैन धर्म्ममें मांस मदिरा सिकार परस्त्री चौर्य जुवा और वैश्या एवं सात कुव्यसन बिलकुल निषेध है और रांधा हुवा वासी अन्न विद्वल अनंतकाय रात्रिभोजनादि अभक्ष पदार्थो कों सर्वता त्याज्य वत लाया है सुवा सुतक और ऋतुधर्म्म का बडाभारी परहेज रखा जाता है अगर पूर्वोक्त कार्य्य के लिये कोइ भी धर्म्म छुट देता हो तो उन के लिये जैनधर्म घृणा की दृष्टि से देखता है जैनधर्म्म के उपदेशकों का फर्ज है की कोइ भद्रिक जीव अज्ञातपणे एसे अपवित्र कार्यों कों सेवन करता हो तो उसको उपदेशद्वारा त्यागकरवाके दुर्गतिमे पडते हुवे भव्यों का उद्धार करे हे राजन् । अब आप जरा ध्यान लगा के जैनधर्म्म कों भी सुन लिजिये ।

जैन धर्म्म का इष्ट—जैन धर्म्म के अन्दर पंचपरमेष्टि की मुख्य मान्यता है जैसे अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ।

(१) अरिहन्त—जिन्ह पवित्र आत्माओने उच्च कोटि का

संयम और घौर तपश्चर्य के जरिये अठारादोषर्[1] और चार्[2] घन-घातिकर्मरूपी शत्रुओं का सर्वता नाशकर बाह्य, श्री. अष्टमहाप्रतिहार[3] चौतीस अतिशयादि और अभिंतर कैवल्यज्ञान, कैवल्यदर्शनरूप लक्ष्मी को प्राप्ति कर ली हो जिसके द्वारा लोकालोक के चराचर पदार्थों को अपने तीक्षण ज्ञानद्वारा हस्तामल की माफीक देख के पर उपकारार्थ तत्त्वज्ञान का प्रकाश किया इस विषय में बडे बडे ग्रन्थ निर्माण हो चुके है अर्थात् जिन्हों का जीवन ही जनता का उद्धार के लिये है जिन्ह का फरमाया हुवा सध्धर्म्म और सदागम जनता का कल्याण करने मे ध्ययरूप है इत्यादि इन महान् आत्मा को जैन, अरिहन्त–सर्वज्ञ ईश्वर मानते है.

(२) सिद्ध–जो सकल कर्मो का नाशकर सम्पूर्ण आत्म-भाव को विकाशित कर इस अ.रापार संसार से मुक्त हो अक्ष-यधाम (मोक्ष) पधार गये जहाँ जन्म जरा मृत्यु आदि कोइ प्रकार की उपाधि नहीं है अपने कैवल्यज्ञान कैवल्यदर्शनद्वारा लोकालोक के भावों को देख रहे है स्वगुण के भोक्ता अपने ही द्रव्यगुण पर्य्याय मे रमणता कर रहे उन को जैन सिद्ध मानते है

१ मिथ्यात्व, अज्ञान, अव्रत, राग, द्वेष, मोह, निंद्रा, हास, भय, शोक, जुगप्सा, रति, अरति, दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय एवं १८ दोषवरहित अरिहन्त होते है ।

२ ज्ञानावर्णिय, दर्शनावर्णिय, वेदंनिय, मोहनिय, आयुष्य नाम गोत्र अन्तराय एवं आठकर्म्म जिसमे नं. १–२–४–८ घाती कर्म है ।

३ अशोकवृक्षः[1] सुरपुष्पवृष्टि[2], दिव्यध्वनि[3]श्चमर[4]मासनं[5] च ।
भामण्डलं[6] दुन्दुभी[7]रातपत्रं[8], सत्प्रतिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥

(३) आचार्य–जो अरिहन्त भगवानने जनताका कल्याण के लिये धर्म्म (ज्ञान) फरमाया है उनका विश्वमें प्रचार करना. मिथ्या अज्ञान व कुसंगत से मोक्ष साधन का रास्ता भूल दुर्गति के रास्ते जाते हुवे प्राणियों कों सद्ज्ञान द्वारा सत्य धर्म्म का रास्ता बतलाना. व ज्ञान दर्शन चारित्र तप और वीर्य्य एवं पंचाचार स्वयं पालन करे औरो से पलावे चतुर्विध संघ के अन्दर सुख शान्ति का संचार के साथ शासन की उन्नति करे और भव्य जीवों का कल्याण करने के लिये ही अपना जीवन अर्पण कर चुके है वह आचार्य कहलाते हैं.

(४) उपाध्याय–इनका कार्य्य पठनपाठन करना और दूसरोंको करवाना इन के अन्दर सर्वगुण आचार्य के सदृश्य होते है अर्थात् आचार्यश्री के उत्तराधिकारी उपाध्याय हुवा करते है.

(५) साधु–मोक्षमार्ग का साधन करे अर्थात् ज्ञानध्यान तप संयम समिति गुप्ति आदिक अनेक सद्कार्यों द्वारा आत्मसाधन करते हुवे भव्य जीवों का उद्धार करे। हे राजन् ! यह साधु पद एक महान् पुरूषों की खान है जो कि अरिहंत सिद्ध आचार्य और उपाध्याय यह सब इस साधु पद से ही प्राप्त होवे है इन पंच परमेष्टि का इष्ट रखने से जीवों की सद्गति होती है.

हे राजन् ! जैन धर्म्म पालन करने वालों के मुख्य तीन दर्जा बतलाया है. (१) सम्यक्त्ववंत् (२) देशव्रति गृहस्थधर्म्म (३) सर्वव्रती मुनिधर्म्म, जिस्मे सम्यग् दृष्टि तो उसकों कहते है कि

व्रत नियम नहीं लेनेपर भी निम्नलिखित जैन तत्त्वज्ञान का अभ्यास कर उसपर पूर्ण श्रद्धा प्रतित और रूची रखे जैसे

(१) देव अरिहन्त–विश्वोपकारी सर्व जीवों प्रति समभाव जिन्हके पवित्र जीवन और शान्त मुद्रामें एसी उत्तमता उदारता और विशाल भावना है कि उनकों पढने सुनने व देखने से ही दुनियों का कल्याण होता है जिनका उदार आगम और धर्म्म इतना तो विशाल है कि उसको पालन करने का अधिकार सम्पूर्ण विश्वको दे रखा है जी चाहे वह मनुष्य इस धर्म कों पाल के सदूगति का अधिकारी बन सक्ता है. एसें सर्वज्ञ ईश्वर कों ही देव मानना चाहिये. इस के सिवाय कितनेक लोग अदेव में भी देवबुद्धि कर लेते है कि जिनके पासमें स्त्री है धनुषबान व त्रीशूल और जपमाला हाथमें हो रागद्वेष के विकारीक चिन्ह हो जिनकों मांस मदिर चढता हो एसे देव न तो स्वयं अपना कल्याण कर सके और न दूसरे जो उनके उपासक हो उनका भला कर सके वास्ते ऐसे विकारी कों देव नहीं मानना चाहिये.

(२) गुरु–निग्रन्थ अर्थात् अभ्यंतर राग द्वेष रूपी ग्रन्थी बाह्य धन धानादि की ग्रन्थी इन दोनोंसे विरक्त हो कनक कामिनि और जगतकी सब उपाधियों से मुक्त हो अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य निस्पृहीता एवं पंचमहाव्रत और भलाई सचाई अभाई न्यायि बेपरवायि इत्यादि गुण संयुक्त जिन्हों का जीवन ही परोपकार परायण हो उस को गुरु समजना. इनके सिवाय जो भांग गांजा चडस मांस मदिरादि अभक्ष पदार्थों का भक्षण करता हो जनता

को उलटे रास्ते पर चढा के आप व्यभिचार करे और उसमें धर्म बतला के दूसरों से करावे जिसमें कबी गुरुत्व नहीं समजना चाहिये

(३) धर्म्म—जिस तीर्थंकरदेवने अपने सम्पूर्ण ज्ञान द्वारा जनता का कल्याण के लिये अहिंसा परमो धर्म्म फरमाया है अलावे दान शील तप भाव क्षमा दया विवेक, कषायोका उपशम इन्द्रियों का दमन् सामायिक (समताभाव) प्रतिक्रमण (पापसे हटना) पौषध (आत्मा को ज्ञान से पोषण करना) व्रत प्रत्याख्यान पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य तीर्थयात्रा संघपूजा नये मन्दिर बनाना, पुराणो का उद्धार करना पूर्वोक्त सब कार्यो में धर्म्म श्रद्धा रखना.

(४) आगम—जिस्मे परस्पर विरोध भाव न हो जिनागमो में तत्त्वज्ञान आत्मज्ञान अध्यात्मज्ञान आसन समाधि योगाभ्यास वगेरह का बयान हों साधुधर्म्म, गृहस्थधर्म्म, की मर्यादा अर्थात् आचार व्यवहार और आत्मवाद, लोग (सृष्टि) वाद, कर्म्मवाद, क्रियावाद, एवं मोक्ष साधन का सम्पूर्ण ज्ञान हो, अवतारिक यानि तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव, वासुदेव और बडे बडे धर्म्मवीर कर्म्मवीरो का जीवन वगेरह वगेरह ऐसा विषय हो कि जिसको पढने सुनने से अपने जीवनमें सद्गुणों की प्राप्ति हो, उस को सदागम समझना, पर जिन शास्त्रों में ऋतुदान पण्डदान बलीदान वगेरह मिथ्या उपदेश जो जनता को गेहरी खाड में डूबाने वाला हो उनकों मिथ्या शास्त्र समझ उनसे दूर ही रहना चाहिये.

इन तत्त्वोपर श्रद्धा प्रतित व रूची रखने से जीव सम्यक्

दर्शन कों प्राप्त करलेता है वह जीव भी मोक्ष का अधिकारी हो सकता हैं दूसरा, जो, गृहस्थ धर्म्म का दरजा है, वह सम्यक्त्व (जो उपर कहा हुवा तत्त्व श्रद्धाना) मूल बारहा व्रत है जैसे.

(१) पहिला व्रत—हलते चलते त्रस जीवों कों विना अपराध मारने की बुद्धि से मारने का त्याग है अगर कोइ अपराध करे, व मारने को आवे, आज्ञा भंग करे इत्यादि उनका सामना करना गृहस्थों के लिये व्रत भंग नहीं है.

(२) दूसरा व्रत—एसा झूट न बोलना चाहिये कि राजकानुन से खिलाफ हो अर्थात् राजदंड ले । और लोगों से भंडाचार हो अपनी कीर्ति व प्रतिष्टा में हानि पहुँचे और भी झूटी गवाह देना विश्वासघात व धोखाबाजी राजद्रोह देशद्रोह मित्रद्रोह इत्यादि असत्य बोलने का मना है.

(३) तीसरा व्रत में अन दी हुई वस्तु लेना अर्थात् चोरी करने का त्याग है जो राजदंड ले—लोगों में भंडाचार अर्थात् व्रतधारी की कीर्त्ति व विश्वास में शंका हो परभव में उन क्रूर कर्म का बदला देना पडे एसे कार्यों की सख्त मना है.

(४) चोथा व्रतमें—स्वदारा संतोष अर्थात् संस्कारयुक्त सादी हुई हो उनके सिवाय परस्त्री वेश्यादि से गमन करना मना है.

(५) पांचवा व्रतमें—धन माल द्विपद चतुष:पद राजस्टेट जमीन वगरह स्व इच्छासे परिमाण किया हो उनसे अधिक ममत्व बढाना मना है.

(६) छठाव्रतमें—पूर्वादि छ दिशों में जाने की मर्यादा करने पर अधिक जाना मना है.

(७) सातवां व्रत—उपभोग परिभोग कि मर्यादा है जैसे खाने पीने के पदार्थ एक ही वक्त काम में आते है उसे उपभोग कहते है और वस्त्र भूषण स्त्री मकानादि पदार्थ वारंवार काम में आते है उसे परिभोग कहते है इनका परिमाण कर लेनेके बाद अधिक नहीं भोगव सक्ते है जिसमें मांस, मदिरा, मध, मक्खन, अनंतकाय, वासी रस चलित भोजन, द्विदलादि कि जिसमें प्रचूर जीवोत्पति होती हैं वह सर्वथा त्याज्य है दूसरा व्यापारापेक्षा जो १५ कर्मादान अर्थात् अधिकाधिक कर्मबन्ध के कारण हो जैसे (१) अग्नि का आरंभ कर कोलसादिका व्यापार, (२) वन कटाके व्यापार, (३) शकटादि किराया से फीराना, (४) किराया की नियत से मकानात बन्धाना व गाडी उंठ वगैरह भाडे फीराना (५) पत्थरकी खानों निकलाना, (६) दान्त, (७) लाख, (८) रस—तैल घृत मधु वगैरह, (९) विष सोमलादि, (१०) केसवाले जानवरों का उन जह का व्यापार, एवं पांच व्यापार, (११) यंत्रतीलआदि, (१२) पुरुष को नपुंसक बनाना, (१३) अग्नि वगैरह लगवाना (१४) सर तलाव का जल को शोषन करवाना, (१५) असति जनका पोषन एवं १५ कर्मादान यानि अपनि आजीवकाके निमित्त एसे तुच्छ कार्य करना व्रतधारि श्रावकोंके लिये मना है.

(८) अनर्थ दंडव्रत है जो कि अपना स्वार्थ न होनेपर भी पापकारी उपदेशका देना। दूसरों की उन्नति देख इर्षा करना—आवश्यक्तासे अधिक हिंसाकारी उपकरण एकत्र करना। प्रमाद के वश हो घृत तेल दुद्ध दही छास पाणि के वरतन खुले रख देना मना है.

(९) नौवा व्रतमे हमेशां समताभाव सामायिक करना।

(१०) दशवा व्रतमे दिशादि में रहे हुवे द्रव्यादि पदार्थों के लिये १४ नियम याद करना।

(११) ग्यारवा व्रतमें तीथी पर्व के दिन अवश्य करने योग पौषध जो ज्ञानध्यानसे आत्माकों पुष्टि बनाने रूप पौषध करना।

(१२) बारहवा व्रत—अतिथी महात्माओको सुपात्रदान देना इन गृहस्थधर्म्म पालने वालोको हमेशां परमात्मा की पूजा करना, नये नये तीर्थों की यात्रा करना, स्वधर्मिभाइयों के साथ वात्सल्यता और प्रभावना करना, जीवदया के लिये बने वहां तक अमारि पडह फीराना, जैनमन्दिर जैनमूर्ति ज्ञान, साधु, साध्वियों, श्रावक, श्राविकाओं, एवं सात क्षेत्रमें समर्थ होनेपर द्रव्य को खरचना और जिनशासनोन्नति में तनमन और धन लगा देना गृहस्थोंका आचार है इत्यादि यह गृहस्थधर्म सम्राटराजासे लेकर साधारण इन्सान भी धारणकर सुखपूर्वक पालन कर आत्मकल्याण करसक्ते है.

(३) आगे तीजा दर्जा मुनि धर्म्मका है मुनिपद की इच्छावाले सर्व प्रकारसे जीवहिंसाका त्याग एवं झूंट बोलना चौरी करना मैथुन और परिग्रहका सर्वथा परित्याग करना, सिरका बाल भी हाथोंसे खेंचना, पैदल विहार करना, आत्म कल्याण और परोपकारके सिवाय और कोइ कार्य्य नहीं करना, एसा मुनियोंका आचार है हे राजन् ! इस पवित्र धर्म्मका सेवन करने से भूतकालमें अनंते जीव जरामरण रोगशोक और संसारके सब बंधनोंसे मुक्त हो सास्वते सुख जो मोक्ष है उस कों प्राप्ति कर लीया या वर्तमान मे कर रहे है और भविष्यमें करेगा वास्ते आप सब सज्जन मिथ्या पाखण्ड मतका सर्वथा त्याग कर इस सनातन शुद्ध

पवित्र सर्वोत्तम धर्मको स्वीकार करो तांकी आप इस लोक परलोकमें सुखके अधिकारी बनों किमधिकम् ।

सूरिजी महाराजकी अपूर्व और अमृतमय देशना श्रवण कर राजा प्रजा एकदम अजब और आश्चर्यमें गरक बन गये. हर्ष के मारे शरीर रोमांचित हो गये कारण इस के पहले कभी ऐसी उत्तम देशना नहीं सुनी थी। राजा हाथ जोड बोला कि हे प्रभो ! एक तरफ तो हमें बडा भारी दुःख हो रहा है और दूसरी तरफ हर्ष हमारा हृदय में समा नहीं सक्ता है इस का कारण यह है कि हमने दुर्लभ मनुष्यभव पाके सामग्रीके होते हुवे भी कुगुरुओं की वासना की पास में पड हमारा अमूल्य समय निरर्थक खो दीया इतना ही नही परन्तु धर्म्म के नाम से हम अज्ञान लोगोंने अनेक प्रकारके अत्याचार कर मिथ्यात्वरूप पाप की पोठ सिर पर उठाइ वह सब आज आपश्रीका सत्योपदेश श्रवण करने से ज्ञान हुवा है फिर अधिक दुःख इस बातका है कि आप जैसे परमयोगिराज महात्मापुरुषोंका, हमारे यहां विराजना होने पर भी हम हतभाग्य आप के दर्शनतक भी नहीं किये। हे प्रभो! इसका कारण यह था कि हम लोगों को प्रारंभ से ही ऐसे बुरे संस्कार डाल देते है कि जैन नास्तिक है ईश्वर को नहीं मानते है शास्त्रविधिसे यज्ञ करना भी वह निषेध करते है नग्न देव को पूजते है अहिंसा २ कर जनताके शौर्य पर कुठार चलाते है इत्यादि। पर आज हमारा सौभाग्य है कि आप जैसे परमोपकारी महात्माओंके मुखार्विन्दसे अमृतमय देशना श्रवण करनेका समय

मीला, हे दयालु ! आज हमारा सब भ्रम दूर हो गया है न तो जैन नास्तिक है न जैनधर्म जनताको निर्बल कायर बनाता है न ईश्वरको माननेको इन्कार करते है पर जिसमें ईश्वरत्व है उसे जैन लोग, ईश्वर (देव) मानते है जैन धर्म्म एक पवित्र उच्च कोटीका सनातनसे, स्वतंत्र धर्म्म है। हे विभो ! इतने दिन हम लोग मिथ्यात्व रुपी नशेमें इतने तो बेभान हो गयेथे कि मिथ्या फाँसीमें फँस कर सरासर व्यभिचार-अधर्म्मको भी धर्म्म समझ रखा था, सत्य है कि विना परीक्षा मनुष्य पीतलको भी सोना मान धोका खा लेता है वह युक्ति हमारे लिये ठीक चरितार्थ होती है। हे भगवान् ! हम तो आपके पहेलेसेही ऋणि है और भी आप श्रीमानोंने एक हमारे जमाइको ही जीवतदान नहीं दीया पर हम सबको एक भवके लिये ही नहीं किन्तु भवोभवके लिये जीवन दीया है इतनाही नही बल्कि नरकके रास्ते जाते हुवे जीवोंको स्वर्ग मोक्षका रास्ता बतला दिया है इत्यादि सूरिजी के गुण कीर्त्तन कर राजाने कहा कि हम सब लोग जैनधर्म्म स्वीकार करने को तैयार है आचार्यश्रीने कहा " जहासुखम् " इस सुअवसर पर एक नया चमत्कार यह हुवा कि आकाशमें सनघन अवाजो और झणकार होना प्रारंभ हुवा सब लोग उर्ध्व दृष्टि कर देखने लगें इतनेमें तो वैमानोंसे उत्तरते हुवे सालंकृत अर्थात् सुन्दर वस्त्रभूषण धारण किये हुए सेंकडो विद्याधर नरनारियें अपने कोमल कण्ठसे गुण करते हुए सूरिजी महाराज के चरण कमलोंमें शिर झूका के वन्दना किया और इतनामें तो फिर एकदम झणकार व दुंदुभीनादसे आकाश

राजा और प्रजाने संख्यातीत कुटुम्बियोंके साथ मुनिजीके आमन्त्रणसे जैन धर्म स्वीकार कीया, और महाजन
संघकि स्थापना हुई, [illegible] [illegible]

गुंझ उठा देखते देखतेमें चक्रेश्वरी अंबिका पदमावती और सिद्धाय-कादि देवियों सूरिजिकों बन्दनार्थ आई वहभी नम्रता भावसे वन्दन किया राजा मंत्री और नागरिक लोग यह दृश्य देख चित्रवत् हो गये अहो ! हम निर्भागय है कि, ऐसे अमूल्य रत्नको एक कंकर समज तिरस्कार किया इस पापसे हम कब और कैसे छुटेगें ! राजा और नागरिक लोग जैन धर्म स्वीकार करनेमें इतने आतुर हो रहे थे कि सब लोगोंने जनोंयों व कण्ठियों तोड तोडके सूरिजी के चरणोंमे डालदी और अर्ज करी कि भगवान् आपही हमारे देव हे आपही हमारे गुरु है आपही हमारे धर्म्म दाता आपके वचन ही हमारे शास्त्र है हम तो आजसे आप और आपकी सन्तानके परमोपासक है इतनाही नही पर हमारी कुल संतति भविष्यमें सूर्यचन्द्र पृथ्वीपर रहेगा वहांतक जैनधर्म पालेगा और आपकी सन्तानके उपासक बने रहेगें यह सुनतेही चक्रेश्वरी देवि रत्नका सुन्दर थालके अन्दर वासक्षेप हाजर कीया, सूरि-जीने राजा उपलदेव, मंत्रि उहड, और नागरिक क्षत्रिय ब्राह्मण वेश्यकों पूर्व सेवित मिथ्यात्वकी आलोचना करवाके महा ऋद्धि सिद्धि वृद्धि संयुक्त महामंत्रपूर्वक विधि विधान के साथ वासक्षेप देकर उन भिन्नभिन्न वर्ण की तुटि हुइ सक्तियों के तंतू एकत्र कर एक "महाजनसंघ" स्थापन किया, उस समय अन्य देवियों के साथ चामुंडा भी वहां हाजर थी वह बीच में बोल उठी कि हे भगवन् ! आप इन सब को जैन धर्मोपासक बनाते हो वह तो बहुत अच्छा है पर मेरा कडुडके मडूडके न छोडावे, ? सूरिजीने कहा ठीक है । देवि ! तुमारा कडूडका मडूडका न छुडाया जावेगा, इस पवित्र दृश्य को देख उन विद्याधरोंने

राजा उपलदेवादि सब को उत्साहवर्धक धन्यवाद दीया कि हे राजन् ! आप लोगोंका प्रबल पुन्योदय है कि एसे गुरु महाराज का समागम हुवा है आपको कोटीशः धन्यवाद है कि मिथ्या फांसी से छूट के पवित्र धर्म्म को स्वीकार कीया है आगे के लिये आप ज्ञान श्रद्धा पूर्वक इस धर्म्म का पालनकर अपनि आत्मा का कल्यान करते रहेंगे ऐसा हमको पूर्ण विश्वास है। इसपर राजा उपलदेव उन विद्याधरो का परमोपकार माना और स्वधर्मि भाइ समज महेमान रहने की अर्जे करी, इसपर वह सबलोग आपसमे वात्सल्यता करते हुवे उन नूतन श्रावकों के उत्साह में वृद्धि करी बाद देवियों और विद्याधर सूरिजी को वन्दन नमस्कार कर विसर्ज्जन हुऐ।

अब तो उपकेशपुर के घर घरमें जैन धर्म्म की तारीफ होने लगी और कितनेक इधर उधर गये हुवे क्षत्रियादि लोग थे वह भी आ-आके, जैन धर्म्म को स्वीकार करने लगे यह बात वाममार्गिमत के अध्यक्षकों के मट्टों तक पहुंच गई कि एक जैन सेवडा आया है वह न जाने राजा प्रजापर क्या जादु डाला कि वह राजा मंत्री व कितनेक लोगों को जैन बना दीया. अगर इस पर कुच्छ प्रयत्न न किया जावेगा तो अपनि तो सब की सब दुकानदारी उठ जावेगी । यह तो उनको विश्वास था कि राजा व प्रजा कों जैसे हम पाठ पढावेगें वैसे ही मान लेंगे अगर सेवडा ने उसे जैन बनाया तो क्या हुवा, चलो अपन फीरसे शैव बना लेगें एसा सोच वह सब जमात की जमात सज धज के राज सभामें आये, पर जैसे किसीका सर्व श्रेय लुंट लेनेसे उन पर

दुर्भाव होता है वैसे उन पाखंडियों पर राजा और प्रजा का दुर्भाव हो गया था. राजाने न तो उनको आदरसत्कार दीया, न उनको बोलाया, इसपर वह लोग कहने लगें कि हे राजन्! हम जानते है कि आप अपने पूर्वजों से चला आया पवित्र धर्म्म को छोड अर्थात् पूर्वजो की परम्परा पर लकीर फेर जैन धर्म्म को स्वीकार किया है आपने ही नहीं पर आप के दादाजी (जयसेन राजा) भी परम्परा धर्म्म छोड के जैनी बन गये थे पर आपके पिताजीने सत्य धर्म्म की शोध कर पुनः शैवधर्म्म के अन्दर स्थिर हो उसका ही प्रचार किया है। भलां आप को ऐसा ही करना था तो हम को वहां बुला के शास्त्रार्थ तो करावाना था, कि जिससे आप को ज्ञात हो जाता कि कौनसा धर्म्म सत्य सदाचारी और प्राचीन है इत्यादि। इसपर राजाने कहा कि मेरे दादाजीने और मैंने जो किया वह ठीक सोच समझ के ही कीया है आपके धर्म्म की सत्यता और सदाचार मैं अच्छी तरहसे जानता हूं कि जहां बेहन बेटीयां के साथ व्यभिचार करने में भी धर्म्म समजा गया है ओर रूतुवंती से भोग करना तो तीर्थयात्रा जीतना पुन्य माना गया है। धीक्कार है। एसे धर्म्म और एसे दुराचारके चलाने वालों को कि जिन्होने बिचारे भद्रिक जीवों को अधोगति के पात्र बना दीये है। कल्यान हो महात्मा रत्नप्रभसूरिजीका कि जिन्ह के जरिये हम लोगों को पवित्र धर्म की प्राप्ति हुई है अब हम लोग आपके मिथ्या धर्म्म को कानोंद्वारा सुनने में भी महान् पाप समझते है, शरम है कि ऐसे अधर्म्म को धर्म्म मानकर भी शास्त्रार्थ

का मिथ्या घमंड रखते हो क्या पवित्र जैनधर्म्म के सामने व्याभिचारी धर्म्म शास्त्रार्थ तो क्या पर एक शब्द भी उच्चारण करने को समर्थ हो सक्ता है ? अगर तुमारा ऐसा ही आग्रह हो तो हमारे पूज्य गुरुवर्य्य शास्त्रार्थ करने को भी तय्यार है. इसपर गुस्से से भरे हुवे वाममार्गि लोग बोल उठे कि राजन् ! देरी किसकी है हम तो इसी वास्ते आये है। यह सुनते ही राजा अपने योग्य आदमियों कों सूरिजी के पास भेजे और शास्त्रार्थ के लिये आमन्त्रण भी कीया. आदमीओंने जाके सूरिजी से सब हाल निवेदन कीया, यह सुनते ही अपने शिष्य मण्डल से सूरिजी महाराज राजसभा में पधार गये। नगर मे इस वात की खबर होते ही सभा एकदम चीकार बद्ध भर गइ। प्रारंभ में ही शैव लोग बडे ही उच्च स्वर से बोल उठे कि हे लोगों ! में आज आमतौर से जाहिर करता हुं कि जैन धर्म्म एक आधुनिक धर्म्म है पुनः वह नास्तिक धर्म्म है पुनः वह ईश्वर को नहीं मानते है इनके मन्दिरो मे नग्न देव है इत्यादि कहनेपर सूरिजी के पास बेठे हुवे मुनियों से वीरधवलोपाध्याय ने गंभीर शब्दो में बडी योग्यता के साथ कहा कि सज्जनों ! जैनधर्म आधुनिक नहीं परन्तु प्राचीन धर्म्म है जिस जैन धर्म के विषय में वेद साक्षि दे रहे है, ब्रह्मा विष्णु और महादेवने जैनधर्म के तीर्थंकरो कों नमस्कार किया है पुरांणोवालाने भी जैन धर्म को परम पवित्र माना है यजुर्वेद अ० ८ श्रु० २५ में। ऋगवेद मं. १० अ० ६-८ में। तथा सामवेद और भी अनेक पुरांणों में जैन धर्म्म कि इतनी प्राचीनता बतलाइ है कि वेद काल के पूर्व जैनों के तीर्थकरों

ने जैन धर्म की खुब उन्नति करी थी इतना ही नहीं पर जैन धर्म एक विश्वव्यापि धर्म है—जहां जहांपर जैनाचार्यों का विहार न हुवा वहां वहां पाखण्डि लोगों ने अधर्म और व्याभिचार से मुग्ध लोगों को भ्रम मे डाल दीये है इत्यादि (देखो पहला प्रकरण में जैन धर्म्म की प्राचीनता) और जैन धर्म नास्तिक भी नहीं है कारण जैन धर्म जीवाजीव पुन्य पाप आश्रव संवर निर्जरा बन्ध और मोक्ष तथा लोकअलोक स्वर्ग नरक तथा सुकृत करणि का सुकृत फल दुःकृतकरणि का दुःकृतफलकों मानता है इत्यादि जैन आस्तिक है। नास्तिक तो वह ही है कि पुन्य पाप का फल व यहलोक परलोक न माने फिर नास्तिकों का यह लक्षण है कि वह व्याभिचार में भी जनता कों धर्म्म बतला के धोखा देता है इत्यादि आगे ईश्वर के विषय में यह बतलाया गया था कि जैन ईश्वर को बराबर मानते है जो सर्वज्ञ वीतराग परम ब्रह्म ज्योती स्वरुप जिसको संसारी जीवों के साथ कोइ भी संबंध नहीं है, लीला—क्रीडा रहित, जन्म मृत्यु योनि अवतार ले आदि आदि कार्यों से सर्वथा मुक्त हो उन परमेश्वर को जैन ईश्वर मानते है न कि बगलमें प्यारी को ले बैठा हो, हाथमें धनुष ले रखा हो, केइ योनीमे ही अपना डेरा लगा रखा हो, केइ अश्वारूढ हो रहे हो, केइ पशुबलि में ही मग्न हो रहे हो, एसे एसे रागी द्वेषी विकारी निर्दय व्यभिचारियों को जैन कदापि ईश्वर नहीं मानते है। जैनों के देव नग्न नहीं पर एक अलौकीकरूप सालंकृत दृश्य और शान्तिमय है इत्यादि विस्तार से उत्तर देने पर पाखण्डियों का मुंह श्याम और दान्त खटे हो गये। हाहो कर रास्ता

पकड़ा। वह अपने मठों में जाके विशेषशुद्रलोग जो कि बिल्कुल अ-ज्ञानी और मांसमदिरा भक्षी और व्यभिचारी थे उन्हकों अपनी जालमें फसा रखने के लिये जैसे तेसै उपदेश दे अपने उपासक बना रखे अर्थात् शुद्र लोग ही उन वाममार्गियों के उपासक रहेथे पर उन पाखण्डियों की पोल खुल जाने से राजा प्रजा कि जैन धर्म्मपर और भी अधिक दृढ श्रद्धा हो गई उपसंहार में सूरिजीने कहा भव्यो ! हमे आपसे नतो कुच्छ लेना है न कोइ आप को धोखा देना है जनता को सत्य रास्ता बतलाना हम हमारा कर्त्तव्य समझ के ही उपदेश करते है जिसको अच्छा लगें वह स्वीकार करें। भगवान् महावीर के 'अहिंसा परमोधर्मः' रूपी सदुपदेशद्वारा बहुत देशो में ज्ञानका प्रकाश होने से मिथ्यांधकार का नाश हो गया है। हजारो लाखो निरापराधि जीवों की यज्ञमें होती हुइ बलि रूप मिथ्या कुरूढियों मूल से नष्ट हो गइ परन्तु यह मरूभूमि की भ-द्रिक जनता ही अज्ञान दशा व्याप्त हो रही थी पर कल्याण हो आचार्य स्वयंप्रभसूरि का कि वह पद्मावती और श्रीमाल–भिन्नमाल तक अहिंसा का प्रचार कीया, आज आप लोगों का भी अहोभाग्य है कि पवित्र जैन धर्म्म को स्वीकार कर आत्मकल्यान करने को तत्पर हुवे हो इत्यादि—

राजा उपलदेवने नम्रतापूर्वक अर्ज करी कि हे प्रभो ! भगवान् महावीर और आचार्य स्वयंप्रभसूरि जो कुछ अहिंसा भगवती का झुंडा भूमि पर फरकाया वह महान् उपकार कर गये है, पर हमारे लिये तो आप ही महावीर आप ही आचार्य है कि

हम कों मिथ्याजालसे छुडवा के सत्य रास्ता पर लगाये इत्यादि जयजयध्वनी के साथ सभा विसर्जन हुई ।

एक उपकेशपट्टन में ही नहीं किन्तु आसपास में जैसे जैसे जैन धर्म्मका प्रचार होने लगा वैसे वैसे पाखण्डियों का मिथ्यात्व मार्ग लुप्त होता गया. राजा उपलदेव आदि सूरिजी कि हमेशां सेवा भक्ति उपासन कर व्याख्यान भी सुन रहे थे और आसपासमें जैन धर्म्मका खूब प्रचार भी कर रहे थे "यथा राजा तथा प्रजा" सूरिजीने तत्त्वमिमांसा तत्त्वसार भत्तपरिज्ञा और विधि विधानादि केइ ग्रन्थ भी निर्माण किये, एक समय राजाने अर्ज करी कि भगवान् ! यहां पाखण्डियोंका चिरकालसे परिचय है स्यात् आपके पधार जानेके बाद फिर भी इनका दाव न लग जावे वास्ते आप ऐसा प्रबन्ध करावे की साधारण जनताकि श्रद्धा जैनधर्म्मपर सदैव मजबुत बनी रहै । सूरिजीने फरमाया कि इसके लिये दो मुख्य रास्ता है (१) जैन तत्त्वज्ञानका अभ्यास और (२) जैन मन्दिरोंका निर्माण होना । राजाने दोनों बातों का स्वीकार कर एक तरफ तो ज्ञानाभ्यास बढाना शरू कीया, दूसरी एक विशाल पहाडी पर भगवान् पार्श्वनाथका मन्दिर बनाना प्रारंभ कर दीया ।

उसी नगरमें ऊहड मंत्री पहले से ही एक नारायणका मन्दिर बना रहा था पर वह दिनकों बनावे और रात्रिमें पुनः गिरजावे, इससे तंग हो मंत्रिने सूरिजीसे इसका कारण पुछा तो सूरिजी महाराजने कहा कि अगर यह मन्दिर भगवान महावीर के नाम से बनाया जाय, तो इसमे कोइ भी देव उपद्रव नहीं करेगा ।

इधर चातुर्मास के दिन नजदीक आ रहे थे जो राजाने प्रारंभ कियर था वह मन्दिर तैयार होनेमें बहुत दिन लगनेका संभव था वास्ते उहड मंत्री का मन्दिर को शीघ्रतासे तय्यार करवाया जाय कि वह प्रतिष्ठा सूरिजी महाराज के करकमलोंसे हो, इस वास्ते विशाल संख्यामें मजूर लगाके महावीर प्रभुका मन्दिर इतना शीघ्रतासे तय्यार करवाया कि वह स्वल्पकालमें ही तैयार होने लगा। कारण कि बहुतसा काम तो पहले से ही तय्यार था, इधर संघने अर्ज करी कि हे प्रभो भगवा-नका मन्दिर तो तैयार होनेमें हैं पर इस्में बिराजमान करने के लिये मूर्त्ति की जरूरत है। सूरिजीने कहा धैर्यता रखो मूर्त्ति तय्यार हो रही है। इधर क्या हो रहा है कि उहड मंत्रीकी एक गाय जो अमृत सदृश दुद्धकी देने वालिथी उधर लुणाद्री पहाडी के पास एक कैरका झाड था मंत्रिकी गाय वहां जाते ही उसके स्तनोंसे स्वयं ही दुध झर जाता था वहां क्या था कि चमुंडादेवि गायका दुध और वैलुरेतिसे भगवान् महावीर प्रभुका बिंब (मूर्त्ति) तय्यार कर रही थी। पहले सूरिजीसे देवीने अर्ज भी कर दी थी तदानु-सार सूरिजीने संघसे कहा था की मूर्त्ति तय्यार हो रही है पर संघने पहिला कबी जैन मूर्त्तिका दर्शन न किया था वास्ते दर्शन की बडी भारी आतुरता थी, पर सूरिजीने किसी कारणोंसे इस बातका भेद संघको नहीं दीया. इधर गायका दुधके अभाव मंत्रीश्वरने गवालियाकों पुच्छा की गायको दुध कम क्यों होता है ? उसने कहा मैं इस बातको नहीं जानता हुं कि गायका दुध कमति क्यों होता है मंत्रीश्वरने पुनः पुनः उपालंभ देनेसे एकदिन गवाल गायके पीच्छे पीच्छे

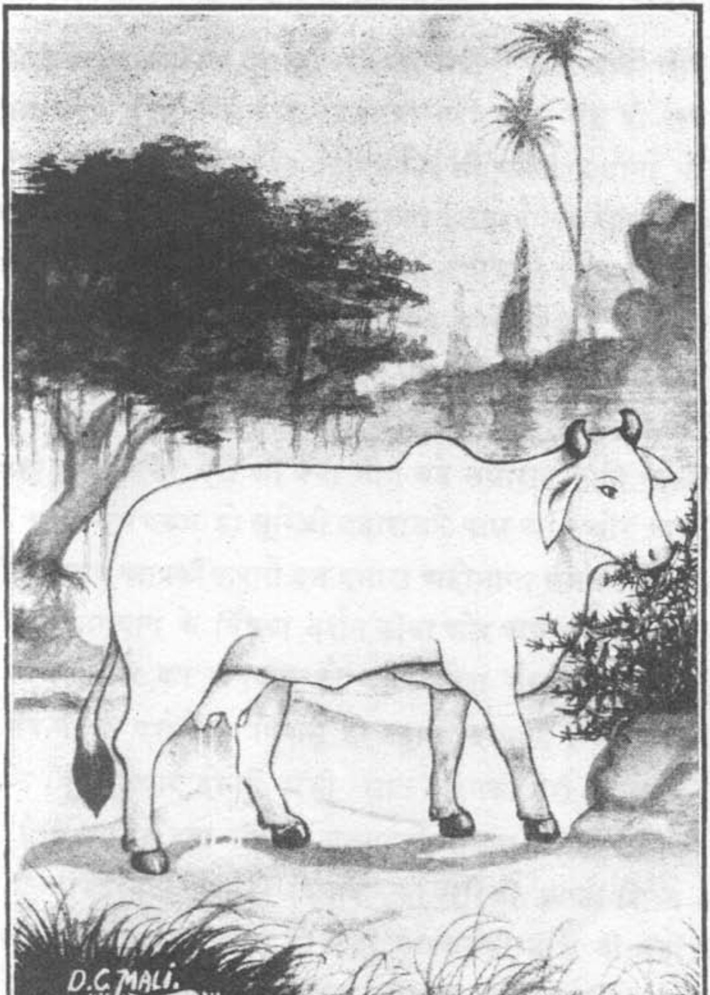

समकीत रसज्ञ चांमुडा देवीने, जंगलमें केरवृक्ष के नजीक चरती हुई प्रधान की गायका दूध दिव्य शक्तिसे खेंच, वालुरेतसे महावीर देवकी मूर्ति बनाना शरू कर दिया। (पृ ८०)

Lakshmi Art, Bombay. 8.

गया तों हमेशोंकी माफिक दुद्ध झरता देख, मंत्री के पास आया और सब हाल कहा. दूसरे दिन खुद उहडमंत्री वहां गया, वह ही सब हाल देखा और विचार किया कि यहांपर कोइ भी चमत्कार होना चाहिये गायकोदूर कर जमीन खोदी तो वह क्या देखता है कि शान्तमुद्रा पद्मासनयुक्त श्री वीतराग की मूर्त्ति दीखपडी, मंत्रीश्वरने दर्शन फरसन कर बडा आनंद मनाया, और सोचने लगा कि मेरेसे तो मेरी गाय ही बडी भाग्यशालिनी है जो कि अपना दुद्धसे भगवान का प्रक्षाल करा रही है खेर। मंत्रीश्वर नगरमें आकर राजा और अन्योन्य विद्वानोंसे सब हाल कहा। बस फिर देरी भी क्या थी। बडे समारोह यानि गाजा बाजाके साथ संघ एकत्र हो सूरिजी महाराजके पास आये और अर्ज करी कि भगवान् आपकी कृपासे हम हमारा अहोभाग्य समझते है कि हमने आज भगवान् के बिंबका दर्शन कीया और अब आप भी श्री संघके साथ पधार कर भगवान् को नगर प्रवेश करावे यह सब संघ भगवान् के दर्शनोंका पिपासु हो रहा है इत्यादि। सूरिजीने सोचा कि बिंब तैयार होनेमें अभी सात दिनकी देरी है परन्तु दर्शनके लिए आतुर हुवा संघका उत्साहको रोकना भी तो उचित नहीं है, 'भवितव्यता' पर विचार कर सूरिजी अपने शिष्य समुदायके साथ संघमे सामिल हो जहां भगवानकी मूर्त्ति थी वहां गये श्री संघने जमीनसे बिंब निकलकर नमस्कार पूर्वक हस्तीपरारूढ कर के धामधूम पूर्वक भगवानका नगर प्रवेश करवाया। संघमे बडा ही आनंद मंगल और घरघर उत्सव और हीरा पन्ना माणेक

६

करते भी होंगे तो मैं उसको उपदेश करूंगा। हे भद्रों ! यह देवि देवताओं का भक्ष नहीं है पर कितने ही पाखण्डि लोगोने मांस भक्षण के हेतु देवि देवताओंके नामसे ऐसी अत्याचार प्रवृत्ति को चला दी है जिस पदार्थोसे अच्छे मनुष्यों को भी घृणा होती है तो वह देव देवि कैसे स्वीकार करेंगे अगर तुम को धैर्य नहीं हो तो अपवाद के कारण लड्डू चुरमा लापसी खाजा नालियेर गुलराबादि शुद्ध सुगंधित पदार्थोसे देवि की पूजा कर सक्ते हो इत्यादि अधैर्य को प्राप्त हुवे श्राद्धवर्ग को सूरिजीने उपदेश किया उसको श्रवण कर संघने आपने आपने घरों में वह ही शुद्ध पदार्थ तैयार करवा के सूरिजीसे अर्ज करी कि आप हमारे साथ देवि के मन्दिर पधारें कारण हम को देवि का वडा भारी भय है इस पर सूरिजी भी अपने शिष्य मण्डलसे संघ के साथ देवि के मन्दिर में गये. गृहस्थ लोगोंने वह पूजापा नैवेद्य वगेरह देवि के आगे रखा जिन को देख देवि एकदम कोपायमान हो गइ। इधर दृष्टिपात्त किया तो सूरिजी दीख पडे। बस देवि का गुस्सा मन का मन में ही रह गया, तथापि देवि, सूरिजी से कहने लगी वहां महाराज आपने ठीक किया मैने ही आप को विनंती कर यहां पर रख के उपकार कराया और मेरे ही पेट पर आपने पग दीया, क्या कलिकाल कि छाया आप जैसे महात्माओ पर भी पड जाति है मैंने पहले ही आपसे अर्ज करी थी कि आप राजा प्रजा को जैनी तो बनाते हो पर मेरे कड्डके मरडके न छोडाना ? पर आपने तो ठीक ही क्या इत्यादि देवि का वचना सुन सूरिजी महाराजने कहा देवि यह नाळीअेर तो तेरा कड्डका है और

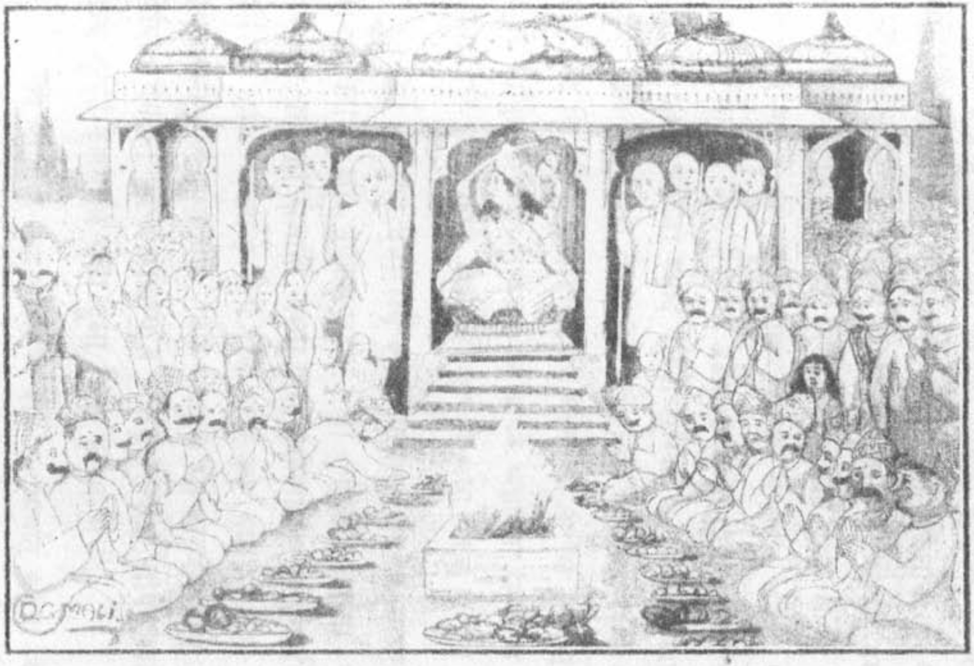

भयकंपित नूतन श्रावकोंने नैवेद्यादि थालसहित, आचार्य श्री को साथ ले, देवी समक्ष हुए क्रोधित नेत्रोंसे साक्षत आचार्य महाराज को देखा साक्षत और अपना मांस मदिरा छुडाने वाले आचार्य देवसे बदला लेनेकी ठान ली। (पृ ९२)

मैं चमुंडा देवि हुँ आपने मेरा करडका मरडका छोडाया जिस्का यह फल है सूरिजीने कहा कि इस फल से तो मुझे नुकशान नहीं बल्कि फायदा है पर तुँ तेरा दील में विचार कर कि उस करडका मरडका का भविष्य में तुमे कया फल मिलेगा पूर्वोपार्जित पुन्य से तो यहाँ देव योनि पाई है पर पशु हिंसारूप घौरपाप से संसार भ्रमण करना अर्थात् तीर्यंच हो नरक मे जाना पडेगा इत्यादि सूरिजी उपदेश दे रहे थे। उस समय चक्रेश्वरी आदि देवियों सूरिजी के दर्शनार्थी आइ थी चमुंडा और सूरिजी का संवाद देख चमुंडा को ऐसे उच्च स्वर से ललकारी, जो कि देवि लज्जित हो अपनि वेदना को वापिस खांच सूरिजी के चरणारविंद में वन्दन नमस्कार कर अपने अज्ञानता से किया हुवा अपराध की माफि मांगी, वहां पर बहुत से लोग एकत्र हो गये थे।

श्री सच्चिका देवी सर्व लोक प्रत्यक्ष श्री रत्नप्रभाचार्यैः प्रतिबोधिता " श्री उपकेशपुरस्था श्री महावीर भक्ता कृता सम्यक्त्व धारिणी संजाता अस्तां मांसं कुसममपि रक्तं नेच्छति कुमारिका शरीरे अवतीर्णा सती इति वक्ति भो मम सेवका अत्र उपकेशस्थं स्वयंभू महावीर. बिंबं पूजयति श्री रत्नप्रभाचार्यं उपसेविति भगवान् शिष्य प्रशिष्य व सेवति तस्याहं तोषंगच्छति। तस्य दुरितं दलयामि यस्य पूजा चित्ते धारयामि "

सब लोगों के सामने सचिका देवि (अर्थात् चमुंडा देविने पहला सूरिजी को वचन दीया था कि आप के यहां विराजना से बहुत उपकार होगा वह वचन सत्य कर बतलाने से सूरिजीने चमुंडा

का नाम "सच्चिका रखा था) को आचार्य रत्नप्रभसूरिने प्रतिबोध दे भगवान् महावीर के मन्दिर की अधिष्ठायिक स्थापन करी तब से देवि मांस मदिर छोड सम्यक्त्व को स्वीकार कर लिया, मांस तो क्या पर देवीने ऐसी प्रतिज्ञा कर कह दीया कि आज से मेरे रक्त वर्णा का पुष्प तक भी नहीं चडेगा. और मेरे भक्त जो उपकेशपुर में स्वयंभू महावीर के बिंब (प्रतिमा) की पूजा करते रेहगें आचार्य रत्नप्रभसूरि और इन की संतान की सेवा उपासना करते रहेगें उन के दुःख संकट कों में निवारण करूंगी और विशेष काम पडने पर मुझे जो आराधन करेगा तो में कुमारी कन्या के शरीर मे अवतीर्ण हो आउगी इत्यादि देवी के वचन सुन और भी "श्री सच्चिका देव्या वचनात् क्रमेण श्रुत्व प्रचुरा जनाः श्रावकत्वं प्रतिपन्नाः" बहुत से लोग जैन धर्म कों स्वीकार कर श्रावक बन गये और जैन धर्म का बडा भारी उद्योत हुवा.

उपकेश पट्टन में भगवान् महावीर प्रभु का सिखर बद्ध मंदिर तैयार हो गया तत्पश्चात् प्रतिष्ठा का मुहूर्त मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमि गुरुवार कों निश्चित हुवा सब सामग्री तैयार हो रही थी। इधर जो चातुर्मास के पूर्व रत्नप्रभसूरि की आज्ञा से ४६५ मुनि विहार किया था उन से कनकप्रभादि कितनेक मुनि कोरंटपुर (कोल्लापटन) में चतुर्मास किया था आपश्री के उपदेश से वहां के श्रावक वर्गने भगवान् महावीर का नवीन मन्दिर बनवाया जिसके प्रतिष्ठा का मुहूर्त भी मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमि का था तब कोरंट संघ एकत्र हो आचार्य रत्नप्रभसूरि को आमन्त्रण करने कों आये "तेनावसरे कोरंटकस्य श्राधानां आह्वानं आगतं" कोरंट संघने आग्रपूर्वक विनंति करी ?

जैन जाति महोदय

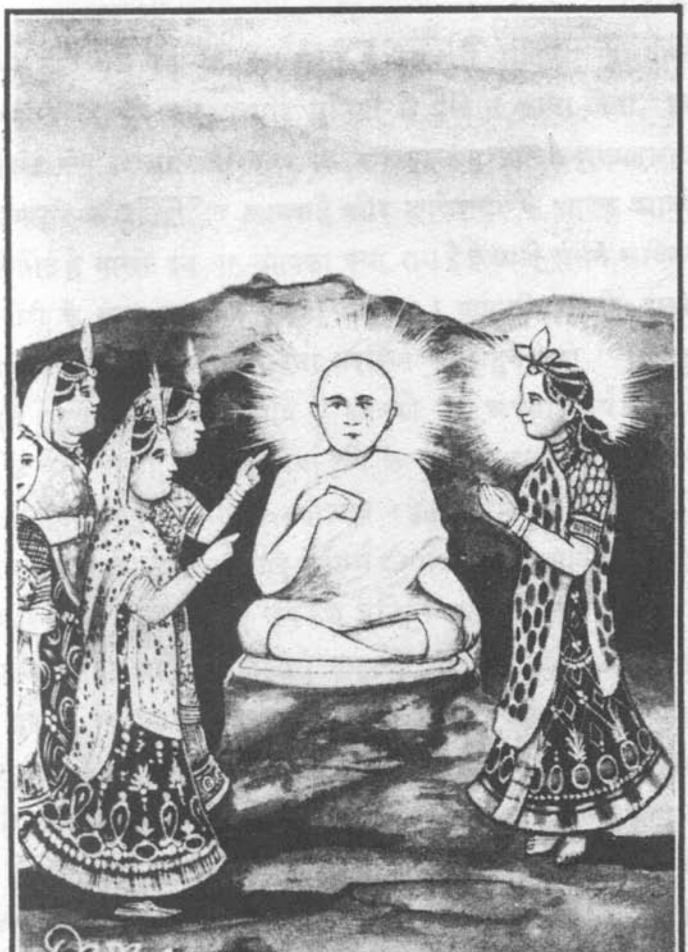

अकस्मात् ध्यानरहित आचार्य के नेत्रोंमें, चामुंडाने वेदना की, वंदनार्थ आई हुई चक्रेश्वरी, पद्मावती आदि देवीओंने, चामुंडा का तिरस्कार करते हुए कहा "पापीणी! मांस मदिरादि हिंसामय प्रवृत्ति द्वारा अधोगति से बचानेवाले गुरुदेवसे ऐसा बदला लिया?। (पृ ८४)

Lakshmi Art, Bombay, 8.

उस पर सूरिजीने कहा कि इस मुहूर्त में यहां भी प्रतिष्टा है वास्ते तुम वहांपर रहे हुवे कनकप्रभादि मुनियों से प्रतिष्ठा करवा लेना. इस पर कोरंट संघ दिलगीर हो कहा कि भगवान् हम आपके गुरुमहाराज स्वयंप्रभसूरि के प्रतिबोधित श्रावक है और उपकेशपुर के श्रावक आपके प्रतिबोधित है वास्ते इन पर आपका क्या राग है इत्यादि संघने सविनय दीलगीरी के साथ कहा की खेर। भगवान्। आपकी मरजी इसपर आचार्यश्रीने अपनि उदार भावना प्रदर्शित करते हुवे कहा " गुरुणा कथितं मुहूर्त वेलायां गच्छामि " श्रावको तुम अपना कार्य करों में मुहूर्तपर आ जाउगा, श्रावक जयध्वनि के साथ वन्दना कर विसर्जन हुवे इधर उपकेशपुर में प्रतिष्ठा महोत्सव बडे ही धामधूम से हो रहा है पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि से धर्म्म की बडा भारी उन्नति हो रही है। आचार्यश्रीने " निजरूपेण उपकेश प्रतिष्ठा कृता वेक्रयरूपेण कोरंट के प्रतिष्ठाकृता श्राद्धैः द्रव्यव्यय कृतः " यहतो आप पहला से ही पढ चुके है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि का जन्म विद्याधर वंसमे हुवा और आप अनेक विद्याओं के पारगामी थे आप निज रूपसे तो उपकेश पुर मे और वैक्रय रुप से कोरंटपुर में प्रतिष्ठा एक ही मुहूर्त में करवादी उन दोनो प्रतिष्टा महोत्सव में श्रावकोने बहुत द्रव्य खरच कर अनंत पुन्योपार्जन किया था तत्पश्चात् कोरंट संघ को यह खबर हुई कि आचार्य रत्नप्रभसूरि निज रुपसे उपकेशपूर प्रतिष्ठा कराइ और यहाँ तो वैक्रयरूप से आये थे इसपर संघ नाराज हो कनकप्रभ मुनि कों उस की इच्छा के न होने पर भी आचार्य पद से भूषीत कर आचार्य बना दीया इसका फल यह हुवा, कि उधर कोरंटपुर, श्रीमाल ओर पद्मावती

आदि के श्रावकों का आचार्य कनकप्रभसूरि और इधर उपकेशपुर के श्रावको के आचार्य रत्नप्रभसूरि अर्थात् इन दोनो नगरो के नामसे दो शाखा हो गइ उन साखाओ के नाम से हीं उपकेशगच्छ और कोरंटगच्छ कि स्थापना हुईथी वह आज पर्यन्त मोजुद है प्रस्तुतः दोनों मन्दिरों की प्रतिष्ठा का समय विषय निम्न लिखित श्लोक पट्टावलि में है सप्तत्या (७०) वत्सराणं चरम जिनपतेर्मुक्त जातस्य वर्षे.

पंचम्यां शुक्ल पक्षे सुर गुरु दिवसे ब्राह्मण सन्मुहूर्ते ।
रत्नाचार्यैः सकल गुणयुक्तैः सर्व संघानुज्ञातैः
श्रीमद्वीरस्य बिंबे भव शत मथने निर्मितेयं प्रतिष्ठाः । १ ।
उपकेशे च कोरंटे तूल्यं श्रीवीरबिंबयोः
प्रतिष्ठा निर्मिता शक्त्या श्रीरत्नप्रभसूरिभिः।१। } उपकेशगच्छ चारित्र.

कोरंटगच्छ में भी बडे बडे विद्वानाचार्य हो गये जिनके कर कमलो से कराइ हुइ हजारो प्रतिष्ठाए, के लेख मीलते है वर्तमान शिलालेखों मे भी कोरंट गच्छाचार्यो के बहुत शिलालेख इस समय मोजुद है वह मुद्रितभी हो चुके है समय की बलिहारी है जिस गच्छ मे हजारो की संख्या मे मुनिगण भूमण्डलपर विहार करते थे वहां आज एक भी नहीं वि. सं. १९१४ तक कोरंट गच्छ के श्री अजीतसिंहसूरि नाम के श्रीपूज्य थे वह बीकानेर भी आये थे लंगोट के बडे ही सचे और भारी चमत्कारी थे उन्हो के गच्छ के श्रीमाल पोरवाड और कितनेक ओसवालों के गोत्रो की वंशावलियों कि एक वही थी व बीकानेर के उपाश्रयमे रख गये थे यति माणकसुन्दरजी द्वारा वह वही मुझे भी देखने का शोभाग प्राप्त

हुवा था उक्त ज्ञातियों का इतिहास लिखने में वह वही वडी उपयोगी है । खेर । अब तो सिर्फ कोरंटगच्छीय महात्माओं कि पोसालों रह गइ है और वह कोरंटगच्छ के श्रावकों की वंसावलियों लिखते है तथापि जैन समाज कोरंट गच्छ के आभारी है और उस गच्छ का नाम आज भी अमर है । । ।

आचार्य रत्नप्रभसूरि उपकेश पटन मे भगवान् महावीर प्रभु के मन्दिर की प्रतिष्टा करने के बाद कुच्छ रोज वहां पर विराजमान रहे श्रावक वर्ग कों पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य सामायिक प्रतिक्रमण व्रत प्रत्याख्यानादि सब क्रिया प्रवृतियों व जैन तत्त्वज्ञान—स्याद्वादमयसिद्धान्त का अभ्यास करवा रहे थे.

आचार्यरत्नप्रभसूरिने यह सुना था कि मेरे वैक्रय रूप द्वारा कोरंटपुर जाना से वहां के संघ में मेरे प्रति अभाव हो कनकप्रभ मुनि को आचार्य पद प्रदान कीया है वास्ते पहला मुझे वहां जाके उनको शान्त करना जरूरी है कारण गृहक्लेश शासन सेवा मे बाधाए डालनेवाला हुवा करता है इस विचार से आप उपकेशपुरसे विहार कर सिधे ही कोरंटपुर पधार रहे थे आचार्य कनकप्रभसूरि को खबर होते ही सकल संघ के साथ आप बहुत दूर तक सामने गये बडे ही महोत्सवपूर्वक नगर प्रवेश करते समय भगवान् महावीर की यात्रा करी तत्पश्चात् दोनों आचार्य एक पाट पर विराजमान हो देशनादि और प्रतिष्टापर आप वैक्रय रूपसे आने का कारण बतलाया कि तुमतो हमारे गुरुमहाराज के प्रतिबोधित पुरांणे श्रावक श्रद्धासंपन्न हो पर वहां के श्रावक बिलकुल नये थे जैन

धर्म्मपर उनलोगों का विश्वास हो गया था तथापि उनकी श्रद्धा और भी मजबुत हो जा इत्यादि कारणों से मुझे मूलगे रूप वहाँ रहना पडा था ऐसे मधुर वचनों से कोरंट संघ को संतुष्ट कर फिर कहा कि आपने कनकप्रभसूरि कों आचार्य पद दिया यह भी ठीक ही किया है कारण प्रत्येक प्रान्त में एकेक योग्याचार्य होने की इस समय बहुत जरूरी है इतने मे कनकप्रभसूरिने अर्ज करी कि हे भगवन् ! में तों इस कार्य्य में खुशी नहीं था पर यहां के संघमे अधैर्यता देख संघ वचन को अनेच्छा भी स्वीकार करना पडा है आप तो हमारे गुरु है यह आचार्यपद आपश्री के चरणकमलों मे मैं अर्पण करता हु इसपर आचार्य रत्नप्रभसूरिने संघ समक्ष कनकप्रभसूरि पर वासक्षेप डाल के आचार्य पद कि विशेषता कर दी इस एकदीली को देख संघमें बडा भारी आनंद मंगल छा गया बाद जयध्वनी के साथ सभा विसर्जन हुइ तत्पश्चात् रत्नप्रभसूरि और कनकप्रभसूरिने अपने योग्य मुनिवरों से कहा कि मुनिवर्य भविष्यकाल महाभयंकर आवेगा जैनधर्म्म के कठिन नियम संसार लुब्ध जीवों कों पालन करना मुश्किल होगा वास्ते पूज्य गुरुवर्य्य स्वयंप्रभसूरिने दीर्घदृष्टि और दिव्य ज्ञानद्वारा महान् लाभ जान के " महाजन " संघ की स्थापना करी है उनकी खुब वृद्धि कर पवित्र जैनधर्म्मको एक विश्वव्यापिधर्म्म बना देना भविष्य में बहुत लाभकारी होगा इस लिये सब साधुओं को कम्मर कस के पैरोपर खडे हो जहां तहां भव्य जीवों कों प्रति बोध दे दे कर इस महाजन संघ में वृद्धि करना बहुत जरूरी बात है इत्यादि वार्तालाप

जैन जाति महोदय

ओशियांके सचायिकादेवी (पार्श्वनाथ) का मन्दिरमें
श्रीपार्श्वनाथ की प्राचीन मूर्ति।

Lakshmi Art. Bombay. 8.

के बाद कनकप्रभसूरि कों तो उपकेशपट्टन की तरफ विहार करने कि आज्ञा दी आपश्री, श्रीरत्नप्रभसूरि कि आज्ञा को सिरोद्धार कर शिष्यसमुदाय के साथ उपकेशपट्टन कि तरफ विहार किया रास्त में व उपकेशपुर के आसपास के प्रदेश में अनेक जीवोकों प्रतिबोध दे उन महाजन संघ में मिलाते गये केइ मुनि उपकेशपुर में स्थित रहकर ज्ञानका प्रचार बढा रहे थे कुच्छ अरसो के बाद उपलदेव राजा का बनाया हुवा पार्श्वनाथ* मन्दिर भी तैयार हो गया जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य कनकप्रभसुरि के कर कमलों से करवाई गइ थी इत्यादि अनेक शुभ कार्य्य आप के उपदेश से हुवे और आचार्यश्री रत्नप्रभसूरिजी आपने श्रमण संघ के साथ उसी प्रान्त मे व अन्य प्रान्तो मे विहार कर जैनशासन की बहुत उन्नति करी। रत्नप्रभसूरिने फिर अपने १४ वर्ष के जीवन मे हजारो लाखों नये जैन बनाये बाद कारण पा-पाके उस महाजन संघ से अनेक जातियें व गौत्र बन गये वह आज पर्यन्त भी मौजुद है आचार्यश्रीने उन ज्ञातियोंपर कितना उपकार किया कि एक कोमी धर्म्म बनाने से उनकी वंशपरम्परा भी जैन धर्म्म पालन किया और करते रहेंगे आपश्रीने अपने करकमलों से हजारो जैन मूर्त्तियोंकी प्रतिष्ठा और २१ वार श्रीसिद्ध-

* आज जो पहाडीपर देविके नामसे मन्दिर है वह राजा उपलदेवका बनाया पार्श्वनाथ का मन्दिर है और मन्दिरके बहार देविका स्थान था वह गिरजानेके समय वहां जैन वस्ती कम होनेसे लोगोने देविकी मूर्त्ति स्यात् जैन मन्दिर मे पधरादी हो तो ऐसा बन भी सक्ता है मन्दिरके पीच्छे किसी श्राविकाने महावीर रथशालाके लिये एक उपाश्रय भी बनाया है एक देहरीके पीच्छे भितमें आज भी पार्श्वनाथकी मूर्त्ति विराजमान है इत्यादि चिन्होसे भी पाया जाता है कि यह मूल मन्दिर पार्श्वनाथका था।

गिरि का संघ तथा अन्य भी शासन सेवा और धर्म्म का उद्योत कीया आपश्रीने करीबन १० लक्ष नये जैन बनाये थे, पट्टावलिमें लिखा है कि देविने महाविदेह क्षेत्रमें श्री सीमंधर स्वामिसे निर्णय कीया था कि रत्नप्रभसूरिका नाम चौरासी चौवीसी मे रहेगा एक भवकर मोक्ष जावेगा इत्यादि....जैन कोम आचार्यश्री के उपकार कि पूर्ण ऋणी है आपश्रीके नाम मात्र से दुनियोंका भला होता है पर खेद इस बातका है कि आज कितनेक कृतघ्नी ऐसे भी ओसवाल है कि कुमति कदाग्रहमें पडके ऐसे महान् उपकारी गुरुवर्य्य के नाम तक को भूल बैठे है। उन सज्जनों कों चाहिये कि वह अपने परम पूजनिये आचार्य रत्नप्रभसूरि प्रति अपना कृतज्ञपना प्रदर्शित करे।

यह तो आप पहले ही पढ चुके है कि आचार्य श्री के पास वीरधवल नामके उपाध्याय अच्छे विद्वान थे एक समय राजग्रह नगरमें किसी यक्षने बडा भारी उपद्रव मचा रखा था जिसके जरिय जैनों कों ही नहीं पर सब नागरिकों को बडा भारी दुखो हो रहाथा जिसके लिये बहुत उपचार किया पर उपद्रव शान्त नहीं हुव, इस पर श्रीसंघने श्रीरत्नप्रभसूरि कि तलास करवाइ तो आपका विहार मरूभूमिकी तरफ हो रहाथा तब राजगृहका संघ आचार्यश्रीके पास आ के वहांका सब हाल अर्जकर उधर पधारने की विनंति करी सूरिजी स्वयं तो अपनी सलेखना आदि केइ कारणो कों लेके नहीं जा सके पर आप अपने शिष्य वीरधवल उपाध्यायको आज्ञा दी कि संघकी आग्रे है वास्ते तुम वहां जावो और संघका संकटकों दूर करो तदानुसार उपाध्यायजी केइ मुनियों के साथ विहार कर

क्रमशः राजगृह पहूँच के रात्रिमे आपने स्मशानभूमि में ध्यान लगा दीया, आधी रात्रिके समय बडा भयंकर रूप धारण करके यक्ष आया पहले तो उपाध्यायजीको बहुतसे उपसर्गका ढोंग बतलाया पर गुरुकृपा के साथ ही आप का तप तेज और चमत्कार ऐसा प्रभावशाली था कि यक्ष हाथ जोड खडा हो गया तत्पश्चात् उपाध्यायजी ने उसकों प्रबोधकारी उपदेश दिया फल यह हूवा की यक्ष उपदेश से शान्त हो उपाध्यायजीसे अर्ज करी कि इस नगरीके लोगोंने मेरी बहुत आशातना करी है उपाध्यायजीने उसकों और भी उपदेशद्वारा शान्त करदीया बाद उसने कहा कि में आपकी आज्ञा सिरोद्धार करता हुं परन्तु आप के साथ मेरा भी कुच्छ न कुच्छ नाम रहना चाहिये! उपाध्यायजीने स्वीकार कर लिया। बस। सब उपद्रव शान्त हो गया संघमें और नगरमे आनंद मंगल और जैनधर्म्मकी जयध्वनि होने लगी अनेक भव्य प्राणियोंने जैनधर्म्म स्वीकार किया पट्टावलि नं. ५ में लिखा है कि उपाध्यायजीने उस प्रान्तमें सवालक्ष नये जैन बनाये थे और भी अनेक उपकार करते हूवे उपाध्यायजीने कितने ही काल तो उसी प्रान्तमें विहार कर पवित्र तीर्थोंकी यात्रा करी बाद वहांसे क्रमशः विहार कर सूरिजी महाराजकि सेवामे आये और वहांका सब हाल कह सुनाया, सूरिजीने उन यक्षका नाम रखनेके लिये वीरधवल उपाध्यायको अपने पद पर आचार्यपद स्थापन कर उसका नाम यक्षदेवसूरिरखदीया तत्पश्चात् आचार्य रत्नप्रभसूरिने अन्तिम सलेखना करते हुवे पवित्रतीर्थ सिद्धाचल पर पधार गये वहां एक मासका अनसन कर समाधिपूर्वक नमस्कार महामंत्र

का ध्यान करते हुवे नाशमान शरीर का त्यागकर आप बारहवें स्वर्गमें जाके विराजमान हो गये जिस समय आचार्य श्री सिद्धाचलपर अनसन कीया था उसरोजसे अन्तिम तक सेकडों साधु साध्वियों और करीबन ५००००० श्रावक श्राविका सिवाय विद्याधर और अनेक देवी देवता वहां उपस्थित थे आपश्रीका अग्निसंस्कार होने के बाद अस्थि और रक्षाकों (भस्मी) मनुष्योंने पवित्र समझ आपश्रीकी स्मृतिके लिये सबलोगोंने भक्ति भावसे लेलीथी आपके संस्कार के स्थानपर श्री संघने एक बडा भारी विशाल स्थुभभी कराया जिस्मे श्री संघने लाखो द्रव्य खरच कियाथा पर कालके प्रभावसे इस समय वह स्थुभ दृष्टिगोचर नहीं होता है तथापि आपश्रीकी स्मृति के चिन्ह वहांपर जरुर मिलते है जैसे विमलवसीमे आपश्री के चरण पादुका आज भी मोजुद है इस श्रीरत्नप्रभसूरि रुप रत्न खोदे नेसे उस समय संघको महान् दुःख हुवाथा भविष्यका आधार आचार्य यक्षदेवसूरि पर रख पवित्र गिरिराजकी यात्रा कर सब लोग वहांसे विदाहो आचार्य श्रीयक्षदेवसूरिके साथ यात्रा करते हुवे अपने अपने नगर गये और आचार्य यक्षदेवसूरि अपने पूर्वजोंका बनाया हुया महाजन संघ कों उपदेशरूपी अमृतधारा से पोषण करते हुवे और फिर भी नये जैन बना कर उसमे वृद्धि करने लगे, आपश्री चिरकाल शासनकी सेवा करे ऐसी उस जमाना के अन्दर जनताकी आन्तारिक भावनापर ही यह अधिकार यहां छोडदीया जाता है ॐ शान्ति । यह भगवान् पार्श्वनाथके छट्ठे पाटपर आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि आपना चौरासी वर्ष का आयुष्य पूर्ण कर वीरात् चौरासी वर्षे निर्वाण हुवे इति छट्टापाट्ट—

अंतिम अवस्था जान, तरण तारण सिद्धक्षेत्रकी तलेटीमें असंख्य मुनि व श्रावक श्राविकादि संघकी उपस्थितिमें अनशन कर, अपने जर्जरित देहको छोड आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरने समाधिपूर्वक स्वर्गको प्रस्थान कीया.

भगवान् पार्श्वनाथके पाटानुपाट.

१ गणधर श्री शुभदत्ताचार्य. ४ आचार्य केशीश्रमण.
२ आचार्य हरिदत्तसूरि. ५ आचार्य स्वयंप्रभसूरि.
३ आचार्य आर्य्यसमुद्रसूरि. ६ आचार्य रत्नप्रभसूरि.

इन छ आचार्योंका संक्षिप्त जीवन उपरोक्त प्रकरण में आ गया है शेष आचार्योंका जीवन आगेके प्रकरणमें लिखा जावेंगे यहां पर तो केवल शुभ नामावली ही दिजाती है ।

७ श्री रत्नप्रभसुरि	१७ श्री रत्नप्रभ सूरिः	२७ श्रीरत्नप्रभ सूरिः
८ श्री यक्षदेव सूरिः	१८ श्री यक्षदेव ,,	२८ ,, यक्षदेव ,,
९ श्री कक्क ,,	१९ ,, कक्क ,,	२९ ,, कक्क ,,
१०श्री देवगुप्त ,,	२० ,, देवगुप्त ,,	३० ,, देवगुप्त ,,
११ श्री सिद्ध ,,	२१ ,, सिद्ध ,,	३१ ,, सिद्ध ,,
१२ श्री रत्नप्रभ ,,	२२ ,, रत्नप्रभ ,,	३२ ,, रत्नप्रभ ,,
१३ श्री यक्षदेव ,,	२३ ,, यक्षदेव ,,	३३ ,, यक्षदेव ,,
१४ श्री कक्क ,,	२४ ,, कक्क ,,	३४ ,, कक्क ,,
१५ श्री देवगुप्त ,,	२५ ,, देवगुप्त ,,	३५ ,, देवगुप्त ,,
१६ श्री सिद्ध ,,	२६ ,, सिद्ध ,,	३६ ,, सिद्ध ,,

पैतीस वा पाट्टके बाद एक एसा कारण उपस्थित हुवा था कि भविष्य कालपर विचार कर श्री संघकी सम्मतिसे आगेके आचार्योंके लिये श्री रत्नप्रभसूरि और श्री यक्षदेवसूरि एवं दो नाम रखना सर्वता मना कर दिया । वह कारण उन समय के इतिहासमें लिखा जावेगा.

३७ ,, कक्क सूरिः	३९ ,, सिद्ध ,,	४१ ,, देवगुप्त ,,
३८ ,, देवगुप्त ,,	४० ,, कक्क ,,	४२ ,, सिद्ध ,,

४३ श्री कक्क सूरिः	५८ श्री कक्क सूरिः	७२ श्री सिद्ध सूरिः
४४ ,, देवगुप्त ,,	५९ ,, देवगुप्त ,,	७३ ,, कक्क ,,
४५ ,, सिद्ध ,,	६० ,, सिद्ध ,,	७४ ,, देवगुप्त ,,
४६ ,, कक्क ,,	६१ ,, कक्क ,,	७५ ,, सिद्ध ,,
४७ ,, देवगुप्त ,,	६२ ,, देवगुप्त ,,	७६ ,, कक्क ,,
४८ ,, सिद्ध ,,	६३ ,, सिद्ध ,,	७७ ,, देवगुप्त ,,
४९ ,, कक्क ,,	६४ ,, कक्क ,,	७८ ,, सिद्ध ,,
५० ,, देवगुप्त ,,	६५ ,, देवगुप्त ,,	७९ ,, कक्क ,,
५१ ,, सिद्ध ,,	६६ ,, सिद्ध ,,	८० ,, देवगुप्त ,,
५२ ,, कक्क ,,	६७ ,, कक्क ,,	८१ ,, सिद्ध ,,
५३ ,, देवगुप्त ,,	६८ ,, देवगुप्त ,,	८२ ,, कक्क ,,
५४ ,, सिद्ध ,,	६९ ,, सिद्ध	८३ ,, देवगुप्त ,,
५५ ,, कक्क ,,	७० ,, कक्क ,,	८४ ,, सिद्ध ,,
५६ ,, देवगुप्त ,,	७१ ,, देवगुप्त ,,	८५ ,, ...०१०,,
५७ ,, सिद्ध ,,		

पूर्वोक्त पट्टावलि वर्तमान् वीकानेर साखाकी है इनके सिवाय द्वि वन्दर्नाक साखा व खजवाना साखादि कि पट्टावलियोंमें भी उपरोक्त नामावलि आया करती है भिन्न भिन्न साखाओं के आचार्योंका एक ही नाम होनेसे इनका समय व इस नाम के आचार्यो की कराइ हुई प्रतिष्ठा व ग्रंन्थ निर्माण के समयका मिलान करनेमें कितनेक लोग चक्रमे पड जाते है जो की जिनको इन भिन्न भिन्न पटावलियोंका ज्ञान नहीं है इसलिये निवेदन है कि समय मिलान पहले इन पट्टावलियोंका ज्ञान करना जरूरी वात है। शम्

इति जैन जाति महोदय तीसरा प्रकरण समाप्त.

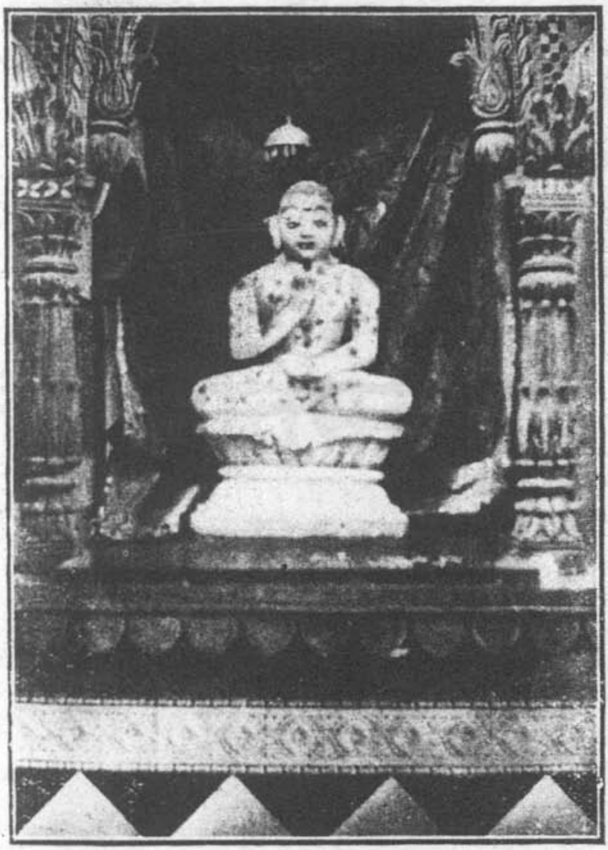

फलोधी नगरमें श्रीगौडीपार्श्वनाथ के मन्दिरमें आचार्य
श्रीरत्नप्रभसूरिजी की भव्यमूर्ति

Lakshmi Art, Bombay, 8.

जैन जातिमहोदय ।

[चतुर्थ प्रकरण]

श्री यक्षदेवसूरिपादपद्मेभ्यो नमः

श्री जैन जाति महोदय.

प्रकरण चोथा.

श्री ओसवाल ज्ञाति समय निर्णय.

ओसवाल ज्ञाति की उत्पत्तिके विषय आज जनतामें भिन्न भिन्न मत फैले हुए दीख पडते है कितनेक लोग कहते है कि ओसवालोकि उत्पत्तिं विक्रम सं. २२२ में हुई कितनेकोंका मत इस ज्ञातिकी उत्पत्ति विक्रम पूर्व ४०० वर्ष की है जब कितनेक लोगोंका अनुमान है कि विक्रमकी दशावि शताब्दीमें इस ज्ञातिकी स्थापना हुई। इत्यादि। समयकी भिन्नता होनेपरभी ओसवाल ज्ञातिके प्रतिबोधक आचार्य रत्नप्रभसूरि और स्थान ओशियों नगरीके विषयमें सबका एकही मत है--

अत्यन्त खेदके साथ लिखना पडता है कि अव्वल तों इस ज्ञातिका शृंखलाबद्ध इतिहासही नहीं मिलता है अगर जो कुच्छ थोडा बहुत मिलताभी है परन्तु यह ज्ञाति विशेष व्यापारी लेनमें

होनेके कारण इतिहासज्ञानमें इतनी तो पिच्छाडी रही हुई है कि आज पर्यन्त अपनी ज्ञातिका सत्य–प्रमाणिक इतिहास संसारके सन्मुख रखनेमें एक कदमभी नहीं उठाया इस हालतमें भिन्न भिन्न मतों द्वारा आज जमाना ओसवाल ज्ञातिको सावधान कर रहा हो तो आश्चर्य ही क्या है।

एक जमाना वह था कि भारतीय अन्योन्य ज्ञातियोंसे ओसवाल ज्ञातिकी शौर्यता, वीर्यता, धैर्यता, उदारता और देशसेवा चढ वढकेथी इस बातको तो आज संसार एकही अवाजसे स्वीकार कर रहा है। अतएव इस विषयमे यहाँपर अधिक लिखनेकी आवश्यक्ता नहीं है यहाँपरतो मुझे केवल ओसवाल ज्ञातिकी उत्पत्ति समयका ही निर्णय करना है।

(१) भाट भोजक सेवग और कितनेक वंसावलि लिखनेवाले कुलगुरु लोग ओसवालोकी उत्पत्ति वि. सं. २२२ में होना बतलाते है इसमें इतिहास प्रमाण तो नहीं है पर यह कहावत बहुत प्राचीन समयसे प्रचलित है इसका अनुकरण बहुतसे जैनेत्तर लोगोनेभी किया और अपने ग्रन्थोंमें यह ही लिखा है कि ओसवाल 'बांये बावीसे' मे हुवे जैसे 'जाति भास्कर' जाति अन्वेषण, जाति विलासादि पुस्तकोंमे लिखा मिलता है इतनाही नहीं बल्के कई राज तवारिखोंमेंभी इस ज्ञातिकी उत्पत्तिका समय वि. सं. २२२ का लिखा हुआ है इसी माफिक जनसमुहसे यही सुना जाता है कि ओसवाल 'बयेबावीसे' में हुए.

(२) दूसरा मत जैनाचार्यों और जैनग्रन्थकारोंका है उसमें ओसवाल ज्ञातिकी उत्पत्तिका समय विक्रम पूर्व ४०० वर्षका लिखा मिलता है अतः कतिपय उल्लेख यहां दर्ज कर देते हैं.

(१) श्री उपकेशगच्छ चरित्र जो विक्रमकी चौदहवी शताब्दीमें संस्कृत पद्यबद्ध लिखा हुआ है जिसमें उकेशवंस (जिसको हाल ओसवाल कहते है) की उत्पत्ति वीरात् ७० वर्ष अर्थात् विक्रम पूर्व ४०० वर्षका लिखा है ।

(२) उपकेशगच्छ प्राचीन पट्टावलि जो विक्रम सं. १४०२ में लिखी हुई है उसमें एसे प्रमाण मिलते हैं कि—

सप्तत्य (७०) वत्सराणां चरमजिनपतेर्मुक्तजातस्य वर्षे ।
पंचम्यां शुक्लपक्षे सुहगुरु दिवसे ब्रह्मणः सन्मुहूर्ते ।
रत्नाचार्यैः सकलगुणयुक्तैः, सर्वसंघानुज्ञातैः ॥
श्रीमद्वीरस्य बिंबे भवशतमथने निर्मितेयं प्रतिष्ठा ॥१॥

× × × ×

उपकेशे च कोरंटे, तुल्यं श्रीवीरबिम्बयोः ।
प्रतिष्ठा निर्मित्ता शक्त्या, श्रीरत्नप्रभसूरिभिः ॥१॥

इस पट्टावलिका अनुकरण रूपमें औरभी छोटी छोटी पट्टावलियें लिखी हुई मिलती है ।

इस प्रमाणसे सिद्ध होता है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरिने उपकेशपुरमे महावीर मन्दिरकी प्रतिष्ठा कराई थी

और प्रतिष्ठा करानेवाले उन आचार्यश्रीके स्थापन किये हुवे उकेशवंशीय श्रावक थे उस समय कोरंटामेंभी महावीर मन्दिरकी प्रतिष्टा हुई थी.

(३) जैनधर्म विषय प्रश्नोत्तर नामक पुस्तकमें जैनाचार्य श्री विजयानंदसूरिने जैन धर्म की प्राचीनता बतलाते हुवे व भगवान् पार्श्वनाथ होनेमें प्रमाण देते हुवे उपकेश गच्छाचार्यों सें रत्नप्रभसूरिने वीरात् ७० वर्षे उपकेश नगरी में ओसवाल बनाया लिखा है।

(४) गच्छमत प्रबन्ध नामके ग्रन्थमें आचार्य बुद्धिसागरसूरि लिखते है कि उपकेश गच्छ सब गच्छोमें प्राचीन है इस गच्छ में आचार्य रत्नप्रभसूरिने वीरात् ७० वर्षे उकेशा नगरीमें उकेश वंश (ओसवाल) कि स्थापना की थी इत्यादि—

(५) प्राचीन जैन इतिहास में लिखा है कि प्रभव स्वामि के समय पार्श्वनाथ संतानिये रत्नप्रभसूरिने वीरात् ७० वर्षे उएस नगर में उएसवंस (ओसवाल) की स्थापना की.

(६) जैन गोत्र संग्रह नामके ग्रन्थमें पं. हिरालाल हंसराज ने अपने इतिहासिक ग्रन्थ में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे पार्श्वनाथ के छठ्ठे पाट आचार्य रत्नप्रभसूरिने उकेश नगरमें उकेशवंस की स्थापना की.

(७) पन्यासजी ललीतविजयजी महाराजने आबु मन्दिरोंका निर्माण नाम की पुस्तक में कोचरों (ओसवाल) का इतिहास लिखते हुवे लिखा है कि आचार्य रत्नप्रभसूरिने वीरात् ७० वर्षे उकेशपुर म ओसवाल बनाये थे उसमेंकी यह कोचर ज्ञाति भी एक है.

(८) खरतर यति श्रीपालजीने जैन संप्रदाय शिक्षा नामक ग्रन्थ में ओसवालों का इतिहास लिखते समय लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरिने उकेश नगरी में ओसवाल वंस के १८ गोत्रों कि स्थापना की।

(९) खरतराचार्य चिदानंद स्वामिने स्याद्वादानुभव रत्नाकर नामक ग्रन्थ में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरिने ओसवाल बनाये।

(१०) जैन मतपताका नामक ग्रन्थ में वि. न्या. शान्तिविजयजीने जैन इतिहास लिखते हुवे लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरिने उकेस वंस की स्थापना की.

(११) खरतर यति रामलालजीने महाजन वंस मुक्तावलि में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरिने ओसवाल बनाये.

(१२) जैन इतिहास (भावनगर से प्र०) में लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरिने ओसवाल ज्ञाति की स्थापना की।

(१३) श्रीमाली वाणिया ज्ञाति भेद नामक किताब में प्रो० मणिलाल बकोरभाइने लिखा है कि विक्रम पूर्व ४०० वर्ष उपस—उकेश वंस कि स्थापना आचार्य रत्नप्रभसूरिद्वारा हुइ है इस पंडितजीने तो बहुत प्रमाणोंसे यह सिद्ध कर दिया है कि उकेशपुर कि स्थापना ही श्रीमाल नगर सें हुई है।

(१४) मुनि श्री रत्नविजयजी महाराज जो ओशियोंमें करीबन् १ वर्ष रह कर वहांके प्राचीन स्थानों की शोध खोज कर जैनपत्र में लेख द्वारा प्रकाशित करवाया था कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरिने इस नगरमें उकेश वंस की स्थापना और महावीर प्रभुके मन्दिर की प्रतिष्टा की थी.

(१५) ओसवाल मासिक पत्र तथा अन्य वर्तमान पत्रोंमें ओसवाल ज्ञाति कि उत्पत्ति का समय वीरात् ७० वर्ष अर्थात् विक्रम पूर्व ४०० वर्षका ही प्रकाशित हूवा है इत्यादि.

इसी माफिक और भी अनेक प्रमाण मिल सकते है। जिन जिन जैनाचार्योंने ओसवाल ज्ञाति की उत्पत्ति विषय में जो जो उल्लेख किये है उन उन ग्रन्थोंमें यही लिखा मिलता है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरिने उकेशपुर में उपकेश (ओसवाल) वंस की स्थापना की इनके सिवाय पट्टावलियों और वंसावलियां में तो सेंकडो प्रमाण और प्राचीन कवित वगैरह मिलते हैं वह उसी समयका है कि जिसको हम उपर लिख आये है।

(३) तीसरा मत–आज कितनेक लोगों का मत है कि ओसवाल ज्ञाति की उत्पत्ति विक्रम की दशवीं शताब्दीमें हूई जिसके विषय में निम्नलिखित दलीले पेश करते है.

(क) मुनोयत नैणसी की ख्यात में आबुके पँवारों की वंसावलि के अन्दर लिखा है कि उपलदेव पँवार ने ओशियों वसाई और उपलदेव पँवारका समय विक्रम की दशवीं सदीका है

इसपर कितनेक लोगोंने यह अनुमान कर लिया कि ओशियाँ नगरी ही दशवीं सदी में वसी है तो ओसवालों की उत्पत्ति प्राचीन नहीं है पर इस समयके बाद होनी चाहिये ।

(च) विक्रम की दशवीं शताब्दी पहिले ओसवाल ज्ञाति का शिलालेख नहीं मिलनेके कारण भी लोगोंने अनुमान कर लिया कि ओसवाल ज्ञाति विक्रम की दशवी शताब्दी के वाद बनी होगी.

(ट) ओशियों के महावीर मन्दिर में प्रशस्ति शिलालेख खुदा हुवा है उस का समय विक्रम सं. १०१३ का है इससे यह ही अनुमान होता है कि इस समय के आसपास में ओसवाल ज्ञाति बनी होगी ।

उपर लिखी तिनों मान्यता अर्थात् वि. सं. २२२ वीरात् ७० वर्ष—और विक्रम की दशवी शताब्दी इन तीनों मान्यता के अन्दर कोनसी मान्यता अधिक विश्वसनीय और प्रमाणिक है इस पर हम हमारे अभिप्राय यहांपर प्रगट करना चाहते हैं ।

(१) भाट भोजक सेवक और कुलगुरुओं की मान्यता वि. सं. २२२ कि है पर इसमें कोइ इतिहासिक प्रमाण नहीं है तथपि इन लोगों की कवितासे कुच्छ अनुमान किया जा सक्ता है जैसे—
" आभा नगरीथी आव्यो, जगा जगमें भाण । साचल परिचो जब दीयो, तब सिस चडाई आण ।१। जुग जिमाडयो जुगतसु, दीनो दान प्रमाण । देशल सुत जग दीपतों, ज्यारी दुनियों माने आण । २ । छूप धरी चित भूप, सैना ले आगल चाले । अडब

पति अपार, खडबपति मिल्या भाले । देरासर बहु साथ, बरथ सामो कुण भाले । घन गरजे वरसे नहीं, जगो जुग वरसे अकाले ।३। यति सति साथे घणा, राजा राणवड भूप। बोले भाट विरूदावलि, चारण कविता चूप । मिल्या सेवग सामटा, पुरे संख अनूप । जुग जस लीनो दान दे, वो जगो संघपति रूप ।४। दान दीयो लख गाय, लख वलि तुरी तेजाला, सोनो सौ मण सात सहस मोतीयोंरी माला । रूपारो नहीं पार सहस करहाकर माला, बीये बावीस भल उगियों ओसवंस वड भूपाला " + ×

अगर यह कविता सत्य हो तो इससे यह सिद्ध होता है कि वि. सं. २२२ पहिलि ओसवाल आभानगरी तक पसर गये थे अर्थात् सचायका देविका परिचय पाकर जगो ओसवाल संघ सहित ओशियामें बडे ही आडंबरसे आया हो, महावीर यात्रा और देविका दर्शन कर सेवग भाट चारण ओर ब्राह्मण वगैरहको वडा भारी दान दिया हो वह दन्त कथा परम्परासे चली आइ हो बाद ये किसी अर्वाचीन कविने कविताके रूपमे संकलित कर लि हो तो वह बन भी सक्ता है कारण कि वीरात् ७० वर्ष और वि. सं. २२२ बीचमें ६२२ वर्ष जितना समय होता है इतनेमे ओसवाल ज्ञाति आभानगरी तक पहुँच गइ हो तो आश्चर्य ही क्या है पर इसमें इतिहासिक प्रमाण न होनेके कारण इसपर हम इतना जौरदार विश्वास नहीं दिला सकते है.

(२) दूसरा मत—जो जैनाचार्यों और जैन ग्रन्थोंका है इस

विषयमें आज तक कोई भी इनसे खिलाफ प्रमाण नहीं मिलता है और जबतक खिलाफमे कोइभी प्रमाण न मिले वहाँ तक इसपर पूर्ण विश्वास रखना किसी प्रकारसे अनुचित नहीं समझा जावेगा इससे उपर लिखी दन्तकथा भी विश्वसनीय मानी जा सक्ती है ।

(३) तीसरा मत जो विक्रमकी दशवी सदीमें ओसवाल ज्ञातिकी उत्पतिका अनुमान करते है यह केवल भ्रमणा मात्र ही है कारण उन लोगोंने केवल ओसवाल और ओशियों नगरी इस नाम पर आरूढ हो यह अनुमान किया है अगर ओसवाल शब्दके लिये ही माना जावे तो वह सत्य भी हो सक्ते है कारण उक्त दोनों नामों की उत्पति विक्रम की इग्यारवी शताब्दी मेंही हुइ है परन्तु इससे यह नहीं समझा जावे कि ओशियों नगरी व ओसवाल ज्ञातिकी मूल उत्पत्ति उस समय हुईथी इस विषयमें हमकों दीर्घ द्रष्टिसे विचार करना होगा कि ओशियों नगरी और ओसवाल ज्ञातिका नाम शरूसे यह ही था वह किसी मूल नामका अपभ्रंश हुवा है ।

प्राचीन ग्रन्थ व शिलालेखों द्वारा यह पत्ता मिलता है कि आज जिस नगरीको हम ओशियों के नामसे पुकारते है उस नगरीका नाम पूर्व जमानेमें उएसपुर–उकेशपुर–ओर संस्कृत साहित्यमें उपकेशपुर मिलता है । देखियें ओशिया महावीर मन्दिरका शिलालेख जो श्रीमान् बाबु पुरणचंदजीने " जैन लेख संग्रह प्रथम खण्ड " में छपाया है जिस के पृष्ट १९२ लेखांक ७८८ में. + +

×× " समेतमेतत्प्रथितं पृथिव्यमुपकेश नामास्ति पुरं " + +

इस लेख का समय विक्रम सं. १०१३ का है। इस लेखसे यह सिद्ध होता है कि विक्रमकी इग्यारवी सदी तक तो इस नगरको उपकेशपुर कहते थे। इस विषयमें और भी बहुत प्रमाण मिलते है। बाद उएस–उकेश–उपकेश–का अपभ्रंश–ओशियों हुवा अर्थात् उएस का ओस होना स्वभाविक है एसा होना केवल इस नगरके लिये ही नहीं पर अन्यभी बहुतसे स्थानों के नाम अपभ्रंश हुवे दीख पडते है जैसे:—

" जाबलीपुरका जालोर–सत्यपुरका साचोर–वैराटपुरका बीलाडा–अहिपुरका नागोर–नारदपुरीका नादोल–शाकम्भरीका सांभर–हंसावलिका हरसोर इत्यादि सेंकडो नगरोंका नाम अपभ्रंश हुवा इसी माफीक उएसका अपभ्रंश ओशियां हुवा। जबसे नगरका नाम फीर गया तब वहांके रहनेवाले जनसमुह के वंस–ज्ञाति का नाम फीर जाना स्वभाविक बात है। उएस का नाम ओशियों हुवा तब उएस वंसका नाम ओसवंस हुवा। आज जो ओसवालों में एकेक कारण पाके भिन्न भिन्न गौत्र व जातियां बन गइ है। जिन गौत्र व जातियोंके दानवीरोंने हजारों मन्दिर और मूर्त्तियों बनाइथी जिनके शिलालेख आजभी मौजुद है उन गौत्र व जातियोंकि आदिमे उएस–उकेश–उपकेश वंस लिखे हुवे मिलते है इसका कारण यह है कि मूलतो उएस–उकेश वंस ही था बाद कारण पाके जातियोंके नाम पड गये है यहाँ पर समय निर्णयके पहले हम यह सिद्ध कर बतलाना चाहते कि उएस–उकेश–उपकेश वंशका हि अपभ्रंश ओसवाल नाम हुवा है यह निश्चय होनेपर समय निर्णय करनेमें बहुत सुगमता हो जावेगी यद्यपि उएस वंशके हजारों शिलालेख मुद्रित हो

चुके हैं तथापि हमें यहांपर खास आज जिन जिन जातियों के प्रचलित नाम ओस वंस के साथ बतलाये जाते है उन उन जातियों के शिला-लेखों का वह भाग यहां दे देना ठीक होगा कि उन जातियोंका मूल वंस ओसवाल नहीं पर उएश–उकेश–उपकेश है उनको ही आज ओसवाल कहते हैं। यद्यपि उनके लेखांक और जाति वंसके साथ उन शिलालेखों के संवत् भी लिखना था. पर हमें यहांपर समय निर्णय के पहिले वंस निर्णय करना है इस हालत में उन शिलालेखों के संवत लिखना अनुपयोगी समझ मुल्तवी रखा गया है इसपर भी देखनेवाले मुद्रित पुस्तकों मे देख सक्ते है।

प्राचीन जैन शिलालेख संग्रह भाग दूसरा.

संग्रहकर्त्ता––मुनि जिनविजयजी.

लेखांक.	वंस और गोत्र––जातियों	लेखांक	वंस और गौत्र—जातियों
३८४	उपकेशवंसे गणधरगोत्रे	२५९	उपकेशवंसे दरडागोत्रे
३८५	उपकेश ज्ञाति काकरेच गोत्रे	२६०	उपकेशवंसे प्रामेचागोत्रे
३९९	उपकेशवंसे कहाडगोत्रे	३८९	उ० गुगलेचा गोत्रे
४१५	उपकेश ज्ञाति गदइयागोत्रे	३८८	उ० चुंदलियागोत्रे
३९८	उपकेशज्ञाति श्री श्रीमालचं-डालिया गोत्रे	३९१	उ० भोगर गोत्रे
		३६६	उ० रायभंडारी गोत्रे
४१३	उपकेश ज्ञाति लोढागोत्रे	२६५	उकेशवंसिय वृद्धसज्जनिया

जैन लेख संग्रह खण्ड पहला-दूसरा.

संग्रहकर्ता-श्रीमान् बाबूपुरणचंद्रजी नाहार.

लेखांक.	वंस और गोत्र-जातियों.	लेखांक	वंस और गौत्र जातियों.
४	उपकेशवंसे जागोचा गोत्रे	४९७	उपकेशज्ञाति आदित्यनागोत्रे चोरवडिया साखायां
५	उपकेशवंसे नाहारगोत्रे		
६	उपकेशज्ञाति भादडागोत्रे	५०९	उपकेशज्ञाति चोपडागोत्रे
८	उपकेशवंसे लुणियागोत्रे	५९६	उपकेशज्ञाति भंडारीगोत्रे
१०	उपकेशवंसे बारडागोत्रे	५९८	ढंढियाग्रामे श्री उएसवंसे
२६	उपकेशवंसे सेठियागोत्रे	६१०	उकेशवंसे कुर्कटगोत्रे
४१	उपकेशवंसे संखवालगोत्रे	६१९	उपकेशज्ञाति प्रावेचगोत्रे
४७	उपकेशवंसे ढोका गोत्रे	६५९	उपकेशवंसे मिठडियागोत्रे
५०	उपकेशज्ञातौआदित्यनागगोत्रे	६६४	श्री-श्रीवंसे श्रीदेवा +++ इस ज्ञाति का शिलालेख पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर वीरात् ८४ वर्ष का हाल कि शोधखोज में मिला है वह मूर्त्ति कलकता के अजायब घरमें संरक्षित है (श्वेताम्बर जैन में)
५१	उपकेशज्ञातौ बंबगोत्रे		
७४	उ० बलहागोत्रेरांकासाखायां		
७५	उकेशवंसे गान्धीगोत्रे		
६३	उकेशवंसे गोखरू गोत्रे		
९६	उपकेशवंसे कांकरियागोत्रे	१०१२	उ० ज्ञाति विद्याधरगोत्रे

१०८	उपकेशवंसे भोरेगोत्रे	१०२५	उए ज्ञा० कोठारीगोत्रे
१२६	उकेशवंसे बरडागोत्रे	१०६३	उ० ज्ञा० गुदेचा गोत्रे
१३०	उपकेशज्ञातौ वृद्धसजनिया	११०७	उपकेशज्ञाति डांगरेचा गोत्रे
४००	उपकेशगच्छे तातेहडगोत्रे	१२१०	उ० सिसोदिया गोत्रे
४७३	उपकेशवंसे नाहटागोत्रे	१२९५	उपकेशज्ञाति साधुसाखायां
४८०	उकेशवंसे जांगडा गोत्रे	१२५६	उपकेश ज्ञातौ श्रेष्ठिगोत्रे
४८८	उकेशवंसे श्रेष्ठिगोत्रे	१२७६	उ. ज्ञा. श्रेष्ठिगोत्रे वैद्यसाखायां
१२७८	उकेश ज्ञा० गहलाडा गोत्रे	१३८४	उ०वंसे भूरिगोत्रे (भटेवरा)
१२८०	उपकेशज्ञातौ दूगडगोत्रे	१३५३	उपकेशज्ञातौ बोडियागोत्रे
१२८९	उएसवंसे चंडालियागोत्रे	१३८६	उ० ज्ञा० फुलपगर गोत्रे
१२८७	उपकेशवंसे कटारियागोत्रे	१३८६	उपकेश ज्ञाति–बापणागोत्रे
१२९२	उपकेशज्ञातियआर्यागोत्रेलुणा	१४१३	उकेशवंसे भणसाली गोत्रे
	उत साखायां	१४३९	उएसवंसे सुचिन्ती गोत्रे
१३०३	उकेशवंसे सुगणागोत्रे	१४९४	उपकेश सुचंति
१३३४	उपकेशवंसे मालूगोत्रे	१५३१	उ.ज्ञातौ बलहागोत्र रांकासा०
१३३५	उपकेशवंसे दोसीगोत्रे	१६२१	उपकेशज्ञातौ सोनी गोत्रे

इत्यादि सैंकडों नहीं पर हजारों शिलालेख मिल सक्ते है पर यहां परतो यह नमूना मात्र है।

इन शिलालेखों से यह सिद्ध होता है कि जिस ज्ञाति को आज

ओसवाल ज्ञाति के नाम से पुकारी जाति है उसका मूल नाम ओसवाल नहीं पर उएस–उकेश–उपकेशवंस था इसका कारण पूर्व बतला दिया है कि उएस–उकेश और उपकेशपुर में इस वंस कि स्थापना हुई बाद देश विदेश में जाने से नगर के नाम पर से ज्ञाति का नाम प्रसिद्धि में आया–जैसे अन्य जातियों का नाम भी नगर के नाम पर से पडा वह ज्ञातियों आज भी नगर के नाम से पहिचानी जाति है जैसे–महेश्वर नगरी से महेसरी–खंडवा से खंडेलवाल–मेडता से मेडतवाल मंडोर से मंडावरा–कोरंट से कोरंटीया–पाली से पल्लिवाल–आग्रा से अगरवाल जालौर से जालौरी–नागोर से नागोरी–साचोर से साचोरा–चित्तोड से चितोडा–पाटण से पटणि इत्यादि ग्रामों पर से ज्ञातियों का नाम पड जाता है इसी माफिक उएस–उकेश उपकेशपुर से ज्ञाति का नाम भी उएस उकेश उपकेश ज्ञाति पडा है इससे यह सिद्ध होता है कि आज जिसको ओशीयों नगरी कहते है उसका मुल नाम ओशियों नहीं पर उएसपुर था. और आज जिसको ओसवाल कहते है उसका मुल नाम उएस उकेश और उकेशवंस ही था.

जैसे उपकेशपुर से उपकेशवंस का घनीष्ट संबन्ध है वैसे ही उपकेशवंस व उपकेशपुर के साथ उपकेश गच्छ का भी संबन्ध है कारण आचार्य रत्नप्रभसूरि उपकेशपुरमें राजपुतादि को प्रतिबोध दे महाजन वंस की स्थापना की उन संघ का नाम उपकेशवंश हुवा तब से आचार्य श्री का गच्छ उपकेश गच्छ के नाम से प्रसिद्धि में आया बाद में भी बहुत से गच्छ ग्रामों के नाम परसे उत्पन्न हुए थे जैसे नागपुरसे नागपुरिया गच्छ–नाणासे नाणावाल गच्छ–कोरंट से कोरंट गच्छ–संख

नगासे संखेशरा गच्छ—वल्लभी से वल्लभि गच्छ—सांडेराव से सांडेरा गच्छ—जीरावला से जीरावला गच्छ इत्यादि—इन से यह सिद्ध होता है कि उपकेशगच्छ कि उत्पति उपकेशपुर से हुई—पहिला उपकेशपुर बाद उपकेशवंस फिर उपकेशगच्छ इनके स्थापक आचार्य रत्नप्रभसूरि श्री पार्श्वनाथ भगवान् के छट्ठे पाट वीरात् ७० वर्ष अर्थात् विक्रम पूर्व ४०० वर्षो पहिले हुए थे।

इन उपरोक्त प्रमाणों से हमने यह सिद्ध कर बतलाया है कि ओशियों और ओसवाल मूल नगर व ज्ञाति के नाम नहीं किन्तु उपकेशपुर और उपकेश वंस का अपभ्रंश नाम है इस अवार्चीन नाम परसे इस ज्ञाति कि उत्पत्ति समय विक्रम की दशवीं शताब्दी बतलाई जाति है वह बिल्कूल भ्रम व कल्पना मात्र है।

आगे आज कल के इतिहासकार किस कारणसे भ्रममें पड गये उनकी तीनों कल्पनाओं का उत्तर भी यहां लिख देना अनुचित न होगा

(१) मुनोयत नैणसी की ख्यात के विषय में—मुनौत नैणसी विक्रम कि सत्तरवी सदी में हुवे वह पुराणी बातों के अच्छे रसिक थे और चारण भाट भोजकों से पूछ पूछकर संग्रह किया करते थे यद्यपि नैणसी की ख्यात की कितनीक बातें बडी उपयोगी है तथापि उसकों सर्वांश सत्य मानने को ऐतिहासिक लोग तय्यार नहीं है. "देखो, काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ नैणसी की ख्यात का पहला भाग" जिसमें प्रकाशक कों बहुत स्थानपर विरुद्ध पक्ष से टीपणिऐं लिखनी पडी है। दर असल ओसवाल ज्ञातिके विषय भाटों को और नैणसी कों भ्रमोत्पन्न

होने का यह कारण हुवा हो कि विक्रम की सतरवी सदी में यह बात प्रचलीत थी कि ओशियों उपलदेव पँवारने वसाई बाद नैणसीने आबु के पँवारो की वंसावलि लिखते समय उपलदेव पँवार का नाम आया हो और पहिली प्रचलीत कथा के साथ जो उपलदेव पँवार का नाम सुन रखा था बस नैणसीने लिख दिया कि आबु के उपलदेव पँवार ने ही ओशिया वसाई और आबु के उपलदेव का समय विक्रम की दशवी शताब्दी का होनेसे लोगोंने अनुमान कर लिया कि ओसवाल ज्ञाति इसके बाद बनी है पर यह विचार नहीं किया कि आबु के उपलदेव कि वंसावलि आबु से ही संबन्ध रखती है न कि ओशियों से। उस समय ओशीयोंमें पडिहारों का राज था इतना ही नहीं पर आबु के उपलदेव पँवार के पूर्व सैंकडो वर्ष ओशियों मे पडिहारों का राज रहा था. जिसमें वत्सराज पडिहार का शिलालेख आज भी ओशियों के मन्दिर में मौजुद है जिस्का समय इ० स० आठवी सदी का है और दिगम्बर जिनसेनाचार्यकृत हरिवंस पुराण में भी वत्सराज पडिहार का वह ही समय लिखा है जब आठवी सदी से तेरहवी सदी तक उपकेश (ओशीयों) मे प्रतिहारों का राज होना शिला लेख सिद्ध कर रहे है तो फिर कैसे माना जावे कि विक्रम की दशवी सदी मे आबु के उपलदेवने ओशियों वसाई और आबु के उपलदेव पँवार की वंसावलि तरफ दृष्टिपात किया जाय तो यह नहीं पाया जाता है कि उनने जैन धर्म्म स्वीकार किया था। दर असल भिन्नमाल के राजा भिमसेन के पुत्र उत्पलदेवने उएसपुर नगर विक्रम पूर्व ४०० वर्ष पहिले वसाया था उस उपलदेव के बदले आबु के उपलदेव मानने की

भूल हो गई है वास्ते इस विषय में नैणसी की ख्यातपर विश्वास रखना सिवाय अन्ध परम्परा के और कुच्छ भी सत्यता नहीं है.

(२) दूसरी दलील यह है कि विक्रम की दशवी सदी पहिले ओसवाल ज्ञाति का कोई भी शिलालेख नहीं मिलता है इत्यादि.

अव्वल तो विक्रम कि दशवी सदीके पहिले 'ओसवाल' एसा शब्द कि उत्पत्ति भी नहीं थी वह हम उपर लिख आये हैं जिस शब्द का प्रादुर्भाव भी नहीं उसके शिलालेख ढूंढनाही व्यर्थ है कारण ओसवाल यह उएस वंस का अपभ्रंश विक्रम की इग्यारवी सदी के आसपास हुआ है बाद के सैंकडो हजारों सिलालेख मिल सक्ते हैं इस समय के पहिले उपकेश वंस अच्छी उन्नति पर था जिसके प्रमाण हम आगे चलकर देंगे।

किसी स्थान व ज्ञाति व व्यक्ति के सिलालेख न मिलने से वह अर्वाचीन नहीं कहला सक्ति है जैसे जैन शास्त्रकारोंने राजा संप्रति जो विक्रम के पूर्व तीसरी सदी में हुवे मानते है जिसने जैन धर्म्म की बडी भारी उन्नति की १२५००० नये मन्दिर बनाये ६०००० पुराणे मन्दिरों के जीर्णोद्धार कराये इत्यादि महाप्रतापि राजा हुवा था रा. बा. पं. गौरिशंकरजी ओझाने अपने राजपुताना का इतिहास के प्रथम खण्ड में लिखा है कि राजा कुणाल के दशर्थ और सम्प्रति दो पुत्र थे जिसमें संप्रतिने जैन धर्म्म को बहुत तरक्कीदी इत्यादि आज उन संप्रति राजा का कोई भी शिलालेख दृष्टिगोचर नहीं होता है एसे ही हमारे पवित्र तीर्थाधिराज श्री सिद्धाचलजी बहुत प्राचीन स्थान होनेपर भी

आज विक्रम की पन्द्रहवी सदी से प्राचीन कोई शिलालेख नहीं मिलता है पर आज उनको अर्वाचीन मानने का साहस किसी ने भी नहीं किया है इसका कारण यह है कि जैसे आज प्राचीनता का रक्षण किया जाता है वैसा पूर्व जमाना मे नहीं था इतनाही नहीं बल्के पुराणा मन्दिरों का स्मारक कार्य्य पुनः पुनः कराया जाता था उस समय प्राचीनता की बिलकूल गरज न रखते थे । एक जमाना एसा भी गुजर गया था कि मुसलमानों के राजत्व काल में बहुत से मन्दिर मूर्त्तियों तोड फोड दी गइ थी। उसमें भी प्राचीनता के चिन्ह शिलालेख व शीलपकला नष्ट हो गइ थी । जो कुच्छ रही थी वह स्मारक कार्य्य कराने मे लुप्त हो गई। इस हालत में प्राचीन शिलालेखादि चिन्ह न मिलनेपर उस स्थान व ज्ञातियो कों अर्वाचीन नहीं कह सक्ते है ।

कुच्छ समय के लिये मान लिया जाय कि ओसवाल ज्ञाति के प्राचीन शिलालेख न मिलनेपर उस ज्ञाति को हम अर्वाचीन मानले पर यह तो निश्चय मानना पडेगा कि विक्रम कि दशवी सदी पहिले जैन श्वेताम्बर हजारो आचार्य और लाखों क्रोडो मनुष्य जैन धर्म्म पालते थे हजारों लाखों जैन मन्दिर थे. जैनाचार्य और जैन मन्दिर विशाल संख्या मे थे तब उनके उपासक विशाल क्षेत्रमें होना स्वाभाविक बात है पर आज हम शिलालेखों पर ही आधार रखे तो किसी भी जैनधर्म पालनेवाली ज्ञातियोंका शिलालेख नही मिलता है इसपर यह तो नहीं कहा जा सक्ता है कि जिस समय के शिलालेख नहीं मिले उस समय जैन धर्म पालनेवाली कोई भी ज्ञाति नहीं थी या किसीने जैन

मन्दिर—मूर्त्तियों नहीं बनाइ थी। जैसे जैन ज्ञातियोंके प्राचीन शिलालेखों के अभाव है वैसेही जैनेतर ज्ञातियोंकी दशा है, तात्पर्य्य यह है कि किसी ज्ञातियोंका प्राचीन—अर्वाचिनका आधार केवल शीलालेखपर ही नही होता है पर दूसरेभी अनेक साधन हुआ करते है कि जिसके जरिये निर्णय हो सके।

(३) ओशियों मन्दिरके शिलालेखके विषयमें—अव्वलतो वह शिलालेख खास महावीर मन्दिर बनाने का नहीं है पर किसी जिनदासादि श्रावकने महावीर मन्दिरमें रंगमण्डप बनाया जिस विषय का शिलालेख हैं। रंगमंडपसे मन्दिर बहुत प्राचीन है और मन्दिरमें जो महावीर प्रभु कि मूर्त्ति विराजमान है वह वही प्राचीन मूर्त्ति है कि जो देवीने गाय के दुद्ध और वेलुरेतिसे बनाइ और आचार्य रत्नप्रभसूरिने वीरात् ७० वर्षे उनकी प्रतिष्टा करी थी दूसरा उस लेखमें ओसवाल बनानेका कोई जिक्र तक भी नहीं है अगर उस समय के आसपासमें ओसवाल बनाये होते तो जैसे पडिहार राजाओंकि बंसावलि और उनके गुण प्रशंसा लिखी है उसी माफिक ओसवाल बनानेवाले आचार्योंकि भी कीर्त्ति वगैरह अवश्य होती पर एसा नहीं बल्के प्रतिष्ठित आचार्यका नामतक भी नहीं है उस शिलालेखसे तों उलटा यह सिद्ध होता है कि उस समय अर्थात् वि. स. १०१३ में उस नगरका नाम ओशियों नहीं पर उपकेशपुर था और उपलदेव पँवारका राज नहीं पर सेंकडो वर्षोंसे पडिहारोंका राज था. आगे हम ओशियोंका मन्दिर और शिलालेखकी तरफ हमारे पाठकोंके चित्तको आकर्षित करते है—पट्टावलियों वंसावलियोंसे या पुराणे चिन्हसे ज्ञात होता है कि यह उपकेशपुर इतना

विशाल था कि हाल ओशियोंसे ६ कोस तीवरी ग्राम है वह उपकेशपुरका तेलिवाडा था ३ कोस खेतार-क्षत्रीपुरा ३ कोस पंडितजीकी ढाणी पंडित पुरा था १० कोस घटियाला इस नगरका दरवाजा था वहां खोदकाम करते समय कुच्छ पुराणे चिन्ह आजभी दृष्टिगत होते है। एक पडिहारों के राजका प्राचीन शिलालेख भी मिला हैं उस विशाल नगरमें ३६० जैन मन्दिर थे जैसे चंद्रावती—कुंभारीयादि प्राचीन स्थानोंमे सेंकडो मन्दिर थे वैसे उपकेशपुरमें भी सेंकडो मन्दिर होना कोइ अतिशय युक्ति नहीं कही जाति हैं। इस समय ओशियोंमें एक महावीर मन्दिरके सिवाय ८—१० मन्दिरोंके खंडहर मिल सक्ते है पूज्य मुनिश्री रत्नविजयजी महाराजने वहां शोध खोळ करनेपर एक तुटासा मन्दिरमे मस्तक रहित मूर्त्ति जिसके चन्द्रका चिन्ह था और एक तुटासा शिलालेख जिसमें वि. सं. ६०२ माघ शु. ३ उकेशवंस आदित्य नागगोत्र इत्यादि इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि वि० सं० ६०२ से सेकडो वर्ष पहिले उपकेशपुरमें सेकडो जैनमन्दिर थे हजारों लाखों उपकेशवंशीय (ओसवाल) उन्ह मन्दिरों कि सेवा पूजा करनेवाले मोजुद थे इस वास्ते ओशियां के रंगमण्डप बनानेका शिलालेख परसे ओसवालों की उत्पत्ति विक्रमकी दशमी शताब्दीमें बतानेवाले बडा भारी धोखा खा रहे है अर्थात् उन अज्ञ लोगोंकी वह कल्पना बिलकुल मिथ्या है।

आधुनिक तीनोंदलीलोंका निराकरणके पश्चात् हमको कुच्छ विश्वसनिय इतिहासिक प्रमाण एसे दे देना ठीक होगा कि जैनाचार्य जैनग्रन्थ जैनपट्टावलियों और वंसावलियोंमें लिखा हुवा उपकेश वंशो-

त्पत्तिका समय विक्रम पूर्व ४०० वर्ष पर जनता क्रमिक विश्वास रख सके और उपकेश वंशको प्राचीन माननेमें श्रद्धासंपन्न बने ।

(१) विक्रमकी बारहवी शताब्दी और इनके पिच्छेके सैंकडो हजारों शिलालेख उपकेश ज्ञातिके मिलते है वास्ते उस समयके प्रमाण यहाँ देने की आवश्यक्ता नहीं है ईसके पूर्वकालिन प्रमाणोंकी खास जरूरत है वह ही यहापर दिये जाते हैं—

(२) समराइच कथाके सारमें लिखा है कि उएस नगरके लोक ब्राह्मणोंके करसे मुक्त है अर्थात् उपकेश ज्ञातिके गुरु ब्राह्मण नहीं है यह बात विक्रम पूर्व ४०० वर्षकी है और कथा विक्रमकी छठी सदीमें लिखी गई है उस समयसे पूर्व भी यह मान्यता थी. इस लेखसे उपकेश ज्ञातिकी प्राचीनता सिद्ध होती है । यथा—

तस्मात् उकेश ज्ञातिनां गुरवो ब्राह्मणा नहि ।
उएसनगरं सर्व कर रीणा समृद्धिमत् ॥
सर्वथा सर्व निर्मुक्तमुएसा नगरं परम् ।
तत्प्रभृति सजातमिति लोकप्रवीणाम् ॥ ३६ ॥

(३) आचार्य बप्पभट्टीसूरि जैन संसारमें बहुत प्रख्यात है जिन्होंने ग्वालियरका राजा आमको प्रतिबोध दे जैन बनाया उसके एक राणि व्यवहारियाकी पुत्री थीं उसकि सन्तानको ओसवंस (उपकेसवंस) में सामिल कर दी उनका गौत्र राजकोष्टागर हुवा जिस ज्ञातिमें सिद्धाचलका अन्तिमोद्धार कर्त्ता कर्म्माशाह हुवा जिस्का शिलालेख शत्रुंजय तीर्थपर आदीश्वरके मन्दिरमें है वह लेख प्राचीन

जैन शिलालेख संग्रह भाग दूसरेके पृष्ट २ लेखांक १ में मुद्रित है वह बडी प्रशस्ति है जिससे उध्धृत दो श्लोक यहां दे दिये जाते है—

× इतश्च गोपाह्व गिरौ गरिष्ठः श्री बप्पभट्टी प्रतिबोधितश्च,
श्री आमराजोऽजनि तस्यपत्नी काचित्व भूव व्यवहारी पुत्री॥८॥
तत्कुक्षिजाताःकिल राजकोष्टागाराह्व गोत्रे सुकृतैकपात्रे।
श्री ओसवंसे विशादे विशाले तस्यान्वयेऽभिपुरुषाः प्रसिद्धाः॥९॥

बप्पभाट्टीसूरि और आमराजा का समय वि० नौवी सदी का प्रारंभ माना जाता है उस समय उकेश वंशिय (ओसवंस) विशाद–विशाल संख्या में और विशाल क्षेत्र में फले हुवे थे कि आम-राजा की सन्तान को जैन बना इस विशाल वंस में मिला दिये एक नगर से पैदा हुई ज्ञाति विशाल क्षेत्र में फल जाने कों कमसे कम कइ शताब्दियों तक का समय अवश्य होना चाहिये अस्तु। इस प्रमाण से विक्रम की तीजी चोथी सदि का अनुमान तो सहज ही में हो सक्ता है—राजकोठारी विशाल संख्या में आज भी अपने को आमराजा कि संतान के नाम से पूकारते है।

(४) विक्रम सं. ८०२ पाटण (अणहिलवाडा) की स्थापना के समय चन्द्रावती ओर भिन्नमाल से उपकेश ज्ञाति के बहुत से लोगों को आमन्त्रणपूर्वक पाटण में वसने के लिये ले गये थे उन की सन्तान आज भी वहाँ निवास करती है जिन्हों के बनाये मन्दिर मूर्त्तियों आज मोजुद है देखों उन की वंसाव-लियों (खुर्शीनामा).

(५) ओशियों मन्दिर की प्रशस्ति शिलालेख में उपकेशपुर के पडिहारराजाओं में वत्सराज की बहुत तारीफ लिखि है जिसका समय इ. स. ७८३–८४ का लिखा है इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय उपकेशपुर बडी भारी उन्नति पर था जिस से आबुके उपलदेव पँवारने ओशियाँ वसाई का भ्रम दूर हो जाता है.

(६) पंडित हीरालाल हंसराजने अपने इतिहासिक ग्रन्थ "जैन गौत्र संग्रह" नामक पुस्तक में लिखा है कि भिन्नमाल का राजा भांणने उपकेशपुर के रत्नाशाहा की पुत्री के साथ लग्न किया था इससे यह सिद्ध हुवा कि भांण राजा का समय वि. स. ७९५ का है उस समय उपकेश वंस खुब विस्तार पा चुका था ओर अच्छी उन्नति भी करली थी—

(७) पं. हीरालाल हंसराज अपने इतिहासिक ग्रन्थ जैन गौत्र संग्रह में भिन्नमाल के राजा भांण के संघ समय वासचेप की तकरार होनेसे वि. स. ७९९ में बहुत गच्छो के आचार्य एकत्र हो मर्यादाबादी की भविष्यमें जिसके प्रतिबोधित श्रावक हो वह ही वासचेपदेवे इसमे उपकेश गच्छाचार्य सिध्दसूरि भी सामिल थे–इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय पहिले उपकेशगच्छ के आचार्य अपनी अच्छी उन्नति करली थी तब उनसे पूर्व बनी हुई उपकेश ज्ञाति विशाल हो उसमें शंका ही क्या है.

(८) ओशियों का ध्वंस मन्दिर में वि. स. ६०२ का खुदा हुवा शिलालेख मिला उसे अदित्यनाग गौत्रवालो ने वह

चन्द्रप्रभु की मूर्त्ति बनाई थी इससे भी यह ही सिद्ध होता है कि उस समय उपकेश ज्ञाति अच्छी उन्नति पर थी—

(९) आचार्य हरिभद्रसूरि आदि आठ आचार्य सामिल मिल के ' महानिशिथ ' सूत्र का उद्धार किया जिस्मे उपकेश गच्छाचार्य देवगुप्तसूरि भी सामिल थे इसका समय विक्रम की छट्टी शताब्दी का है इस समय पहिला उपकेशगच्छ मोजुद था तो उपकेश ज्ञाति तो उस के पहिले ही अपनि अच्छी उन्नति कर चुकी यह निःशंक है (देखो महानिशिथ दू० अ० अन्त में).

(१०) आचार्यश्री विजयानंदसूरिने अपने जैन धर्म विषय प्रश्नोत्तर नामक ग्रन्थ में लिखा है कि देवरुद्धिगणि क्षमासमणजीने उपकेशगच्छाचार्य देवगुप्तसूरि के पास एक पूर्व सार्थ और आधा पूर्व मूल एवं दोढ पूर्व का अभ्यास किया था इसका समय विक्रम की छट्ठी सदी के पूर्वार्द्ध है यह ही वात उपकेश गच्छ चारित्र और पटावलि मे लिखी है इससे यह सिद्ध होता है कि छठी सदी मे उपकेशगच्छाचार्य मौजुद थे तो उपकेश ज्ञाति तो इन्के पहिला अच्छी उन्नति और आबादी मे होनी चाहिये—

(११) ऐतिहासिज्ञ मुन्शी देविप्रसादजी जोधपुरवालेने राजपुत्ताना की सोध खोज करते हुवे जो कुच्छ प्राचीनता मिलि उनके बारे में " राजपुताना कि सोध खोज " नामक एक पुस्तक लिखी थी जिस्मे लिखा है कि कोटा राज के अटारू नामक ग्राम मे एक जैन मन्दिर जो खंडहर रूपमे है जिसमें एक

मूर्ति के निचे वि. सं. ५०८ भैशाशाहा के नाम का शिलालेख है उन भैशाशाह का परिचय देते हुये मुन्शीजीने लिखा है कि भैशाशाहा के और रोडाविणजारा के आपस में व्यापार संबन्ध ही नहीं पर आपस में इतना प्रेम था कि दोनों का प्रेम चिरकाल स्मरणिय रहे इसलिये भैशा--रोडा इन दोनों के नामपर 'भैशरोडा' नाम का ग्राम वसाया वह आज भी मोजुद है. जैन समाज में भैशाशाहा बडा भारी प्रख्यात है वह उपकेश ज्ञाति आदित्यनाग गोत्र का महाजन था जब वि. स. ५०८ पहिला उपकेश ज्ञाति व्यापार मे भी अच्छी उन्नति करलिथी तो वह ज्ञाति कितनी प्राचीन होनी चाहिये इस्केलिये पाठक स्वयं विचार कर सक्ते है।

(१२) वल्लभि नगर का भंग कराने मे जो कांगसीवालि कथा को इतिहासकारोंने स्वीकार करी है वह शेठ दूसरा नहीं पर उपकेश ज्ञाति बलहागोत्र के रांका वांका नाम के शेठ थे और उन कि संतान आज रांका वांका जातियो के नाम से मशूहर हैं

(१३) श्वेतहूण के विषय में इतिहासकारों का यह मत्त है कि श्वेतहूण तोरमाण पंजाब से विक्रम की छठ्ठी शताब्दी में मरूस्थल की तरफ आया। और मारवाड का इतिहासिक स्थान भिन्नमाल को अपने हस्तगत कर अपनि राजधानी भिन्नमाल म कायम की. जैनाचार्य हरिगुप्तसूरिने उस तोरमाण को धर्मोपदेश दे जैनधर्म का अनुरागी बनाया जिस्के फल में तोरमाणने भिन्न-माल मे भगवान् ऋषभदेव का विशाल मन्दिर बनाया बाद

तोरमाण के पुत्र मिहिरगुल कट्टर शैवधर्मोपासी हुवा उसके हाथ में राजतंत्र आते ही जैनो के दिन बदल गये. जैन मन्दिर जबरन् तोडे जाने लगें जैन धर्म पालनेवाले लोगोंपर अत्याचार इस कदर गुजरने लगे कि सिवाय देशत्याग के दूसरा कोई उपाय नहीं रहा आखिर जैनोंको उस प्रदेशको त्याग लाट गुजरात कि तरफ जाना पडा उसमें उपकेश ज्ञाति व्यापारी वर्गमें अग्रेसर थी जो लाट गुजरातमें आज उपकेश ज्ञाति निवास करती है वह विक्रम की चोथी पांचवी व छट्ठी सदीमें मारवाडसे गइ हुई है और उन लोगोंने मन्दिर मूर्त्तियों कि प्रतिष्ठा कराई जिस्के शिलालेखोंमें भी उपकेश ज्ञाति व उपकेश–वंस दृष्टिगोचर होते है इस प्रमाणसे विक्रम की पांचवी–छट्ठी सदी पहिला तो उपकेश ज्ञाति अच्छी उन्नति पर थी।

(१४) महेश्वरी वंस कल्पद्रूम नाम पुस्तकमें महेश्वरी लोगों की उत्पत्ति विक्रम की पहिली शताब्दीमें होना लिखते है इसके पहिले ओसवाल अर्थात् उपकेश ज्ञाति महेश्वरी यो से पहिले बनी थी, इतना ही नहीं पर अपनी अच्छी उन्नति कर लीथी।

(१५) विक्रम की दूसरी शताब्दीमें उपकेशगच्छाचार्य यक्षदेवसूरि सोपारपटनमें विराजते थे उस समय वज्रस्वामी के शिष्य वज्रसेनाचार्य अपने चार शिष्योंको दीक्षा दे सपरिवार सोपारपट्टण यक्षदेव सूरिके पास ज्ञानाभ्यास के लिये पधारे थे शिष्यों के ज्ञानाभ्यास चलता ही था बिचमें आकस्मात् आचार्य वज्रसेनसूरिका स्वर्गवास हो गया बाद उन चारों शिष्योंको १२

वर्षं तक ज्ञानाभ्यास करवाके उनके भी शिष्यसमुदाय विशाल संख्यामें हो जानेपर उन चारों प्रभावशाली मुनियोंको वासक्षेप पूर्व पदार्पण कर वहांसे विहार करवाये बाद उन चारों महापुरुषों के नामसे अलग अलग चार शाखाओं हुई यथा—

(१) नागेन्द्र मुनि से नागेन्द्र साखा जिस्में उदयप्रभ और मल्लिसेनसूरि आदि आचार्य महा प्रभाविक हो शासन की उन्नति की—

(२) चन्द्रमुनि से चंद्र साखा–जिस्में बडगच्छ तपागच्छ खरतरादि अनेक साखाओं में वडे वडे दिग्विजय आचार्य हुऐ.

(३) निवृति मुनिसे निवृति साखा–जिस्मे शेलांगाचार्य दूणाचार्यादि महापुरुष हूवे जिन्होनें जैन साहित्य की उन्नति की.

(४) विद्याधर मुनि से विद्याधर साखा–जिस्में हरिभद्रसूरि जैसे १४४४ ग्रन्थ के रचयिताचार्य हूवे–यह कथन उपकेश गच्छ प्राचीन पट्टावलि में है और आचार्य श्री विजयानंदसूरिजीने अपने जैन धर्म प्रश्नोत्तर नामक ग्रन्थमें भी लिखा हैं इस से यह सिद्ध होता है कि उस समय उपकेश गच्छ अच्छी उन्नति पर था तो उपकेश ज्ञाति इनके पहिल होना स्वभावीक बात है.

(१६) भाट भोजक सेवक और कुलगुरु ओसवालों की उत्पत्ति वि. स. २२२ में बताते है मगर यह बात देशलशाहा के प्रभाविक पुत्र जगाशाहा के साथ संबन्ध रखनेवालि हो तों इस

समय के पहिले उपकेश ज्ञाति अच्छी उन्नति पर व दूर दूर के क्षेत्र में विशाल रूपसे पसरी हुई मानने में कीसी प्रकार की शंका नहीं है.

(१७)' इस समय पूरातत्त्व कि शोधखोज से एक पार्श्वनाथ भगवान् कि मूर्त्ति मिली वह कलकत्ते के अजायब घरमें सुरक्षित है उसपर वीरात् ८४ वर्षका शिलालेख है जिसमें लिखा है कि श्री वत्स ज्ञाति के........ .... ने वह मूर्त्ति बनवाइ है उसी श्री वत्स ज्ञातिका शिलालेख विक्रम की सोलहवी सदी तक के मिलते है अगर श्री वत्स ज्ञाति उपकेश वंस कि साखा रूपमें हो तो उपकेश ज्ञाति की उत्पत्ति वीरात् ७० वर्ष मानने में कोइ भी विद्वान शंका नहीं कर सकेगा। कारण कि जो लेख श्री वत्स ज्ञातिका विक्रम की सोलहवी सदीका मिलता है उसके साथ उपकेश वंस भी लिखा मिलता है वास्ते वह ज्ञाति उपकेश ज्ञाति की साखामें होना निश्चय होता है. इस उपरोक्त प्रमाणोंका इसारा लेके हम पट्टावलियों और वंसावलियों को भी किसी अंशसे सत्य मान सकते है यद्यपि वंसावलियों पट्टावलियों इतनी प्राचीन नहीं है तथापि उसको बिलकुल निराधार नहीं मान सकते है उसमें भी केइ बातें एसी उपयोगी है कि हमारे इतिहास लिखने में बडी सहायक मानी जाती है।

उपकेश ज्ञाति के विषयमें विक्रम की इग्यारवी सादी से वीरात् ८४ वर्ष तक के थोडे बहुत संख्यामें प्रमाण मिलते है

वह यहांपर बतला दीये है अगर फिर भी खोज किजाय तो अधिक संख्यामें भी प्रमाण मिलजाना कोइ बडी बात नहीं है कारण कि विशाल ज्ञाति के प्रमाण भी विशाल संख्या में हुवे करते है पर त्रुटि है हमारे औसवाल भाइयों की कि जिन्होंने अपनी ज्ञाति के इतिहास के लिये बिल्कुल सुस्त हो बेठे है—

इस प्रमाणो से यह सिद्ध होता है कि जिस ज्ञातिको आज ओसवाल कहते है उस ज्ञातिका मूल नाम उपकेश ज्ञाति है और उसका मूल स्थान उपकेशपुर है और इस ज्ञाति के प्रतिबोधक आचार्य रत्नप्रभसूरि है जिनके गच्छका नाम 'उपकेशपुर व उपकेश ज्ञाति के नामपर' उपकेश गच्छ हुवा है और आचार्य श्री पार्श्वनाथ के छठ्ठे पाटपर वीरात् ७० वर्ष इस ज्ञाति की स्थापना की थीं.

हम हमारे ओसवाल भाइयोंको सावचेत करनेको सूचना करते है कि जैसे अन्य ज्ञातियों अपनि अपनि प्राचीनताके प्रमाणों कों शोध निकालने में दत्तचित हो तन मन और धन अर्पण कर रही है तो क्या आप अपनि ज्ञाति कि प्राचीनता व गौरवके लिये सुते ही रहोगे ? नहीं नहीं अब जमाना आपको जबरन् उठावेंगा आप अगर सोध खोज करोगे तो आप की ज्ञाती के विषय में प्राचीन प्रमाणों की कमी नहीं है कमी है आप के पुरुषार्थ की—

निवेदन—जैसे मेरा स्वल्पकालिन अभ्यासके दरम्यान इस ज्ञाति के विषय जितना प्रमाण मिले है वह विद्वानों कि सेवा में रख चुका हुँ इसीमाफीक अन्य महाशय भी प्रयत्न करेंगे तो

विशेष प्रमाण मिल सकेगें साथ में यह भी ध्यान में रखे कि जो जो प्रमाण मिलते जावे वह वह सर्व साधारणके सामने रखते जावे तो उम्मेद है कि इश पवित्र और विशाल ज्ञातिका इतिहास लिखनेमें बहुत सुविधा हो जावे गा—

हम यह भी आग्रह नहीं करते है कि हमने निर्णय किया वह ही सत्य है अगर कोइ इतिहासज्ञ हमारे प्रमाणोंसे अतिरक्त अन्य प्रमाणिक प्रमाण बतलावेगे तो हम माननेको भी तय्यार है.

आज छोटी वडी सब जातियों अपनि ज्ञाति की प्राचीनता के लिये तन मन और धनसे प्रयत्न कर रही है तब हमे खेदके साथ लिखना पडता है कि कितनेक व्यक्ति जैन नाम धराते हुवे केवल गच्छ कदाग्रह में पडके जो २४०० वर्ष जितनी प्राचीन जैन ज्ञातियों है जिसकों अर्वाचीन बतलानेका मिथ्या प्रयत्न कर रहे है उन महाशयोंको भी इस छोटासे प्रबन्धको आद्योपान्त पढके अपने असत्य विचारोंको फोरन् बदल देना चाहिये.

अन्तमें हम यह निवेदन करना चाहाते है कि ओसवाल ज्ञाति का समय निर्णय करना यह एक महान् गंभिर विषय है इस विषय में यह मेरा पहिला पहल ही प्रयत्न है इसमें मति दोषादि अनेक त्रुटियों रहजाना यह स्वभाविक वात है जहाँतक बना वहांतक मेने सावधानीसे यह प्रबन्ध लिखा है फिर भी इतिहास वेत्ता महाशयों से निवेदन है कि अगर हमारे लेखमें किसी प्रकारसे त्रुटि रही हो तो आप कृपया सूचना करे कि द्वितीयावृत्ति

में सुधारा दीजावे. आशा है कि यह मेरा लिखा हुवा प्रबन्ध किसी न किसी रूपसे जैन जनताको फायदाकारी अवश्य होगा. इत्यलम् ।

एक दूसरी शङ्का—ओसवाल ज्ञातिके विषय कितनेक अज्ञ लोग जो ओसवाल ज्ञातिके इतिहाससे अज्ञात है वह एसी शंका कर बेठते है कि ओसवाल ज्ञातिमें शूद्र वर्ण भी सामिल है इसके प्रमाणमें दो दलिलें पेश करते हैं—

(१) जैनाचार्य रत्नप्रभसूरिने ओशियों नगरी में ओसवाल ज्ञाति कि स्थापना करी थी तब उस नगरी के सबके सब लोग अर्थात् तमाम जातियों ओसवाल बन गइथी जिस्में शूद्र जातियों भी सामिल थीं—

(२) आज ओसवाल ज्ञातियोंमें चण्डालिया, ढेढिया, बलाई और चामडादि जातियों शूद्रत्व की स्मृति करा रही है अर्थात् उक्त जातियों पहिले शूद्र वर्णकी थी वह ओसवाल होनेके बाद भी उनकी स्मृतिके लिये वहका वह पूर्व नाम रखा है—

समाधान—इन दोनों दलिलों में कल्पित कल्पनाके सिवाय कोईभी प्रमाण नहीं है कि जिसपर कुच्छ विश्वास रखा जावे। तथापि इन मिथ्या दलीलोंका समाधान करना हम हमारा कर्त्तव्य समझते है-किसी ग्रन्थ व पट्टावलि कारोंने एसा नहीं लिखा है कि उकेशपुर (ओशियों) में सब के सब लोग जैन ओसवाल बन गये थे, बल्के इसके विरूद्ध में एसा प्रमाण मिलता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि उपकेशपुर में १२५००० घर राजपुतों को प्रतिबोध

वे जैन बनाया और कितनेक पट्टावलिकारोंका मत है कि ३८४००० घरोंको प्रतिबोध दीया शेष शूद्रादि लोग जो वाममार्गियोंके पक्षमें थे उन्होंने जैन धर्म स्वीकार नहीं किया था कारण जैन धर्म्म के नियम (कायदा) एसे तों सख्त है कि उसे संसारलुब्ध–अज्ञ जीव पाल ही नहीं सक्ते है. अगर उपर की दोनों पट्टावलियों कि संख्यामें कोइ शंका करे तो उत्तरमें वह समझना चाहिये कि आचार्यश्रीने उकेशपुरमें पहिले पहल १२५००० घरों को प्रतिबोध दिया बाद आसपास के ग्रामोंमें तथा जैन मन्दिर की प्रतिष्टा के समय उपदेश दे जैन बनाया उन सब की संख्या ३८४००० की थी और एसा होना युक्तायुक्तभी है—

दूसरी बात यह है कि जिस जमानेमें शूद्र वर्ण के साथ स्पर्श करनेमें इतनी घृणा रखी जाति थी कि कोई ब्राह्मण लोग जहां शास्त्र पढते हो वहां से कोइ शूद्र निकल जावे या शूद्र के छाया पड जावे तथा दृष्टिपात तक भी हो जावे तो वह शूद्र बडा भारी गुन्हगार समजा जाता था। उस जमानेमें ब्राह्मण राजपुत वगैरह उन शूद्रोंके साथ एकदम भोजन व बेटी व्यवहार करले यह सर्वथा असंभव है अगर एसा ही होता तो जैन धर्म्मके कट्टर विरोधी लोग न जाने जैन ज्ञातियों के लिये किस सृष्टि की रचना कर डालते पर जैन ज्ञातियों के विरोधीयोंने अपने किसी पुराण व ग्रन्थमें एसा एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया कि जैन ज्ञातियोंमें शूद्र भी सामिल है अगर एसा होता तो आज संसार भर कि जातियों में जो ओसवाल ज्ञातिका गौरव मान–महत्त्व इज्जत चढबढके हैं वह स्याद् ही होता। इतना ही नहीं बल्के बडे

बडे राजा महाराजाओंने जो आदर सत्कार और अनेक खीताब जैन ज्ञातियों को दीया है व स्यात् ही अन्य ज्ञातियोंके लिये दीया हो, न जाने इसका ही तो फल न हो कि वह ज्ञातियों ओसवालों कि इस आबादी इज्जत कों सहन न कर वह आन्तरध्वनी निकाली हो कि ओसवालोंमें शूद्र सामिल है—

ओसवाल ज्ञातिमें शूद्र वर्ण सामिल होते तो ब्राह्मणाग्रेश्वर संज्जभव भट्ट, भद्रबाहु, सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्र और बप्पभट्टी आदि हजारों ब्राह्मण जैन धर्म स्वीकार कर इन ज्ञातियोंका आश्रय नहीं लेते और कुमरिल भट्ट तथा शंकराचार्य के समय कितनीक अज्ञात जैन जनोंने, जैन धर्म छोड शैव–वैष्णव धर्म्म स्वीकार कर लेने पर उनको शूद्र ज्ञातिमें सामिल न कर उच्च ज्ञातियोंमे मिलाली तो क्या उनको खबर नहीं थी कि जैन जातियों में शूद्र सामिल है ? मगर एसा नहीं था अर्थात् जैन जातियां पवित्र उच्च कुलसे बनी हुई है एसी मान्यता उन लोगों की भी थी.

अगर उस जमानामें जैनाचार्य शूद्र वर्ण को भी ओसवाल ज्ञातिमें मिला देते तो हमारे पडोसमें रहनेवाले शैव–वैष्णव धर्म्म पालनेवाले उच्च वर्णके लोग व बडे बडे राजा महाराजा ओसवाल ज्ञातिके साथ जो उच्च व्यवहार रखते थे और रख रहे हैं वह किसी प्रकार से नहीं रखते ? जैसे अधूनिक समय अंग्रेजोंको राजत्व काल में शूद्रोंके साथ पाहिला जमानें की जीतनी घृणा नहीं रखी जाति है तथापि शूद्र वर्ण को सामिल करनेसे इसाइयोंका धर्म प्रचार वहाँ

ही रूक गया अर्थात् उच्च वर्णवाले लोग इसाइ धर्ममें सामिल होते अटक गये पर जैन ज्ञातियां विक्रम पूर्व बारसों वर्षोंसे विक्रम की सोलहवीं सदी तक खुब वृद्धि होती गइ इसका कारण यही था कि जैन जातियां पवित्र उच्च वर्णसे उद्भव हुई है—

दूसरा ओसवाल ज्ञाति में चंडालिया, ढेढिया, बलाइ, चामड वगरह जातियों के नाम देखके ही कल्पना कर लि गई हो कि उक्त ज्ञातियों ही शूद्रताका परिचय दे रही है पर एसी कल्पना करनेवालों की गहरी अज्ञानता है कारण पहिले उक्त जातियों के इतिहासको देखना चाहिये कि वह नाम उस मूल ज्ञाति के है या पीच्छेसे कारण पाके मूल ज्ञातिके शाखा प्रति शाखा रूप उपनाम है जैसे शैव–विष्णु धर्म पालने वाले महेश्वरी ज्ञातिमें मुडदा चंडक भूतडा कबु कावरा बुत्र सारडादि अनेक जातियों है देखो "महेश्वरी बंस कल्पद्रुम" क्या इनसे हम यह मान लेंगें कि मुडदोंसे व चंडालोंसे उक्त ज्ञातियां बनी है ?

ओसवाल ज्ञाति प्रायः पवित्र क्षत्रिय वर्ण से बनी है क्षत्रिय वर्णमें उस समय एसी आचरणाओ थी कि जिस्के लिये आज पर्यन्त भी कहावत है कि "दारूडा पीणा और मारूडा गवाना" अर्थात् राजपुतोंमें मदिरापान की रूढी बिशेष थी और ढोलणियों ढाढणियों के पास एसे खराब गीत गवाये करते थे और ठठा मश्करी हांसी तो इतनी थी कि जिस्की मार्यादा भी स्यात् ही हो जब जैनाचार्योंने उन राजपुतोंको प्रतिबोध दे जैन बनाये तबसे

उनका खानपानादि कीतनीक आचारखा सुधर गई पर हांसी मस्करी ठठा करना सामान्य रूपसे वैसाका तैसा बना रहा जिस्के फलरूप ओसवाल ज्ञातियों में एकेक कारण पाके उपनाम पड गये है जैसे—

(१) सांढ सीयाल नाहार काग डुँगला गरूड कुकेंट मिन्नी चील गदइया हंसा मच्छा बोकडीया हीरण बागमार बकरा लुंकड गजा घोडावत् धाडीवाल धोखा मुर्गीपाल वागचार इत्यादि पशुओं के नाम पर ओसवालों कि ज्ञातियोंके नाम पड गये पर यह भी कदापि नहीं समझा जावे कि यह ज्ञातियों पशुओंसे पैदा हुई है यह फल केवल हांसी ठठाका ही है ।

(२) हथुडिया, साचोरा जालौरी सिरोहीया रामसेणा नागोरी रामपुरिया फलोदिया मेडतिया मंडोवरा जीरावला गुदोचा नरवरा संडेरा रत्नपुरा रूणिवाल हरसोरा भोपाला कुचेरिया बोरूदिया भिन्नमाला चीतोडा भटनेरा संभरिया पाटाणि खीवसरा चामड ढेढिया चंडालिया पूंगलिया श्रीमाल इत्यादि ज्ञातियों निवास नगरके नामसे ओलखाई जाति है ।

(३) भंडारी कोठारी खजानची कामदार पोतदार चोधरी पटवारी सेठ मुहता कानुंगा शूरवा रणधीरा बोहरा दफतरी इत्यादि जातियों राजओंके काम करनेसे क्रमशः उपनाम पड गये हैं ।

(४) घीया तेलिया केसरिया कपुरिया बजाज गुगलिया लुणिया पटवा नालेरिया सोनी चामड गान्धी जडिया बोहरा गुंदिया मणियार मीनारा सराफ झवरी पितलिया भंडोलिया धूपिया-

दि ज्ञातियों के नाम वैपारसे पडा है ।

(५) कोटेचा डांगरेचा ब्रह्मेचा वागरेचा कांकरेचा सालेचा ग्रामेचा पावेचा पालरेचा संखलेचा नांदेचा मादरेचा गुगलेचा गुदेचा केडेचा सुंधेचा इत्यादि ज्ञातियों के उपनाम दक्षिणकी तरफ गये हुवे ओसवालों के है ।

इसी माफीक मालावत् चम्पावत् पातावत् सिंहावत् आदि पिताके नामपर और सेखाणि लालाणि धमाणि तेजाणि दुद्धाणि सीपाणि वैंगाणि आसांणि जनाणि निमाणि इत्यादि थलिप्रान्त व गोडवाड प्रान्त में पिताके नामपर ज्ञातियों के नाम पड गये है ।

इत्यादि अनेक कारणोंसे ओसवालोंकी शाखा प्रति शाखा रूप सेंकडो नहीं पर हजारों जातियों बन गई जो ओसवालों में १४४४ गोत्र कहे जाते है पर अन्तिम " डोसी और गणाइ होसी " इस पुराणि कहावत के बाद भी एकेक गौत्रसे अनेक जातियां प्रसिद्धि में आई थी । यहांपर यह कहना भी अतिशययुक्ति न होगा कि ओसवाल ज्ञाति उस जमाने में साखा प्रति साखाफलफूलसे वट वृक्षकी माफीक फाली–फूली थी जबसे आपस कि द्वेषाग्निरूपी फूटके चिनगारियें उडने लगी तबसे इस ज्ञातिका अधःपतन होने लगा जिसकी साखा प्रति साखा तो क्या पर मूल भी अर्धदग्ध बन गया है अगर अबी भी प्रेम ऐक्यता रूपी जलका सिंचन हो तो उम्मेद है कि पुनः इस पवित्र ज्ञाति को हमे फली फूली देखनेका समय मिले ।

अब चंडालिया ढेढिया बलाइ आदि ज्ञातियों मूल किस वंस से बनी हैं वह बतलाके हमारे शंका करनेवालों भाइयों के भ्रमकों दूर कर देना ठीक होगा।

(१) चंडालिया—मूलक्षत्रिय चौहानवंसी थे जैन होने के बाद वंसावलिमें इन्होंका लुंग गोत्र होना लिखा है इनके पूर्वज चंडालिया ग्राम में रहते थे वहां गुरुकृपा से अपनि कुल देवि को चण्डालनि विद्याद्वारा आराधन की तब वह देवि चंडालनी के रूप से घर में आइ जिस के प्रभावसे घर में अखूट धन और पुत्रादि की वृद्धि हुई जिन्होंने दुष्काल में देश के प्राण बचाये, तीर्थोंका बडे बडे संघ निकाले और अनेक मन्दिर मूर्त्तियां—तलाव कुवा की प्रतिष्टादि शुभ कार्य्य कराये पर देवि के रूप को देख लोगोंने चंडालिया कहना शरूकर दिया बाद उस ग्राम को छोड अन्य ग्राम में जाने से ग्राम के नाम से उसको चंडालिया कहने लगे पर मूल यह चौहान राजपुत है।

(२) ढेढिये—बलाइ—चामड यह तीनों ज्ञातियों मूल पँवार राजपुत है. इन तीनों ज्ञातियों के पूर्वजोंने मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्टा कराई उन के शिलालेख बहुत संख्या में मिलते है जिसमें इन जातियों के नाम के साथ इनके मूल गौत्र व वंसभी लिखा गया है देखो जैन लेख संग्रह पहला दूसरा खण्ड तथा प्राचीन जैन शिलालेख संग्रह और धातू प्रतिमा लेख संग्रह ॥

(क) ढेढिये ग्राम से निकल दूसरे ग्राम में वसने से ढेढिये नाम पडा हैं। देखो जैन लेख संग्रह प्रथम खण्डका लेखांक—

(ख) चामडिया ग्राम से अन्य ग्राम में वास करने से चामड नाम पडा हैं | देखों उनकि वंसावलियों.

(ग) बलाई—रत्नपुरा ठाकुरों के और बोहारजी के तनाजा होने पर बोहारजीने माल बचाने कि गरजसे अपना माल स्टेट गाडियोंमे डाल रात्रि में गाडियों पर ' खालडे ' डाल रवाने हुवे पीछे से ठाकुरों के आदमि आने पर बोहारजीने कह दिया कि हम तो बलाइ है तब से इन के बोहार गोत्र वालोंकों बलाइ नाम से पुकारने लगे इत्यादिक कारणों से वह कौमी के साथ लेन देन वैपार करने पर भी हांसी ठठा में नाम पड जाते है इसी माफिक अन्य जातियों के लिये समझना चाहिये | विशेष खुलासा " जैन जाति महोदय " नामक किताब में इन जातियों कि उत्पत्ति और वंसावलि से देखना चाहिये |

जैन सिद्धान्त इतना तो उदार और विशाल है कि जैन धर्म्म पालने का अधिकार विश्वमात्र कों दे रखा है इस वास्ते ही जैन धर्म्म विश्वव्यापि धर्म्म कहलाता है अगर कोइ शूद्र वर्णवाला जैन धर्म पालना चाहे तो वह खुशी से पाल सक्ता है धर्म्म का संबंध आत्मा के साथ है और न्याति जाति के बन्धन वर्णों की संकलना वह लौकिक आचरणा है आत्मिक धर्म्म और लौकिक आचरणा के एसा कोइ नियम नहीं है कि अमुक वर्ण व ज्ञाति का हो वह ही अमुक धर्म्म पाल सके या अमुक धर्म्म पालनेवाला अमुक ज्ञाति के साथ संबन्ध रखनेवाला होना ही चाहिये | आज भी ओसवालों के अतिरिक्त और भी राजपुत ब्राह्मण महेश्वरी

अगरवाले कोपे पाटीदार आदि अनेक ज्ञातियां जैन धर्म्म पालती है पर उन का न्याति जाति का व्यवहार अपनि अपनि ज्ञाति के साथ में है इस रीती से अगर उकेशपुर (ओशियों) में कोइ शूद्र जैन धर्म्म पालनेवालों कि कल्पना कर लि जावे तों भी शूद्र जाति का भोजन व बेटी व्यवहार क्षत्रिय ब्राह्मण के साथ होना अर्थात् ओसवालों के साथ होना सिद्ध नहीं होता है। जैसे शैव–विष्णु धर्म्म पालनेवाले क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य है वैसे ही शूद्र भी है तो क्या कोइ यह कल्पना कर सकेगा कि शैव–विष्णु धर्म पालनेवाले शूद्रों का भोजन व बेटी व्यवहार क्षत्रिय ब्राह्मणों के साथ है ? इसी माफीक जैन धर्म्म पालनेवालों को भी समझ लेना चाहिये।

शूद्रादि जातियों जैन धर्म्म नहीं पालने का कारण यह है कि जैन धर्म्म के नियम (कायदा) आचार खान पान इतने उंचे दर्जे के है कि जिसमें मांस मदिरा अभक्ष अनंतकाय तो सर्वथा ताज्य है सुवां सुतक और ऋजोशलादि का बडा परेज रखा जाता है इत्यादि एसे सख्त नियम शूद्रादि से पालना मुश्किल होने से ही वह जैन धर्म्म पालन करने मे असमर्थ है अगर कोइ शूद्र पूर्व क्षयोपशम से जैन धर्म्म के नियमानुसार जैन धर्म्म पालन करता भी हो तो क्या हरजा हैं कारण जैन सिद्धान्तकारों ने आत्मा निमित वासी मानी है और जैनेत्तर लोगो ने भी अपने धर्म्मशास्त्रों में लिखा है यथा—

शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो, गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः, शूद्रापत्य समा भवेत् ॥ १ ॥

अर्थः—शील गुणादि सम्पन्न जो शूद्र है वह ब्राह्मण मानाजा सक्ता है और जो ब्राह्मण अपनि क्रियासे हीन शूद्रत्व कर्म करता हो वह ब्राह्मण भी शूद्र कहलाता है ।

इस शास्त्रकारोने वर्ण का आधार कर्म पर रख छोडा है कारण जिस्का कर्म अच्छा है उस का परिणाम अच्छा है जिसका परिणाम अच्छा है वह धर्म का पात्र है ।

इत्यादि इस प्रमाणिक प्रमाणों द्वारा समाधान से हमारे भ्रम वादियों की शंका मूल से दूर हो जाति है और पवित्र ओसवाल ज्ञाति २४०० वर्ष पूर्व पवित्र क्षत्रिय वर्ण से उत्पन्न हुई सिद्ध होती है इत्यलम्.

ता: १५–४–२८ श्रीमदुपकेश गच्छीय
सादडी (मारवाड) मुनि ज्ञानसुन्दर

परिशिष्ट नं. १ (ओसवाल ज्ञाति.)

ओसवाल ज्ञाति—यह उपकेश ज्ञातिका अपभ्रंश है उपकेश ज्ञातिकी उत्पत्ति का मूल स्थान उपकेशपुर है जबसे उपकेशपुर का अपभ्रंश नाम ओशिया हुआ और ओशियोंसे उपकेशज्ञाति के लोग अन्योन्य नगरोंमें जाके निवास किया तबसे उस उपकेश ज्ञातिवालो को ओसवालोके नामसे पुकारने लग गये। उपकेशज्ञातिका समय विक्रम पूर्व ४०० वर्ष का है अर्थात् आचार्य रत्नप्रभसूरिने वीरात् ७० वर्षे उपकेशपुरमें इस ज्ञातिकी स्थापना करी थी इस विषयमें मैंने "ओसवाल ज्ञाति समय निर्णय" नामक प्रबन्ध लिख इसी पुस्तक के अन्दर दे दिया है उसे आद्योपान्त पढनेसे यह निःशंक हो जायगा कि ओसवालज्ञातिका समय विक्रम पूर्व ४०० वर्षका है और इस ज्ञाति की गौत्रजा सचायिका देवी है

"ओसवाल ज्ञातिका परिचय"

(१) ओसवाल ज्ञाति—राजपुतोंसे बनी है जिस्मे पहिले तो अठारा कूलिन क्षत्रीय मुख्य थे बाद पँवार चौहान प्रतिहार सोलंकी राठोड शिशोदीया कच्छावे खीची वगैरह राजपुतों को प्रतिबोध दे जैन बनाकर पूर्व ओसवालो के सामिल कर दीये, इस विषय में अगर आप किसी ओसवाल को पुछेंगे कि आपका 'नख' क्या है ? तों उत्तरमें वह फोरन् कहेगा कि हमारा नख पँवार–चौहान या दुसरा जो जिनरोजपुत्तोंसे ओसवाल बने थे वह ही बतलावेगा–

राजपुतोंके सिवाय ब्राह्मण व वैश्योंको भी जैनाचार्योंने जैन बनाके ओसवाल ज्ञातिके सामिल मिला लिये थे।

(२) ओसवालज्ञातिका स्थान—ओसवालज्ञातिका मूलोत्पत्तिस्थान उपकेशपुर जिसको वर्तमान ओशियां नगरी कहते है बाद अन्योन्य स्थानोंसे भी राजपुतादि को ओसवाल बनाते गये वैसे ही यह ज्ञाति भारतके सब प्रदेशों में फैलती गई जैसे मारवाड, मेवाड, मालवा, ढूढाड, हाडोती संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, पंजाब, बंगाल, पूर्व, आसाम, दक्षिण, करणाट, तैलंग, महाराष्ट्रीय, गुजरात लाट, सोरठ, कच्छ, सिन्धादि भारतमें एसा कोइ देश व प्रान्त न होगा कि जहाँ ओसवालोंकी वस्ती नहो ?

(३) ओसवालोंके गुरु—जैनाचार्य जो कनक कामिनी आदि जगतकी सब उपाधियोंसे बिल्कूल अलग रहते है। परम निवृति भावसे मोक्षमार्गको साधन करनेवाले मुनिवर्गको ओसवाल गुरु मानते है और उन्ही पर इतना भक्तिभाव रखते है कि एकेक पदाधिकार और नगर प्रवेशके महोत्सवमें हजारों लाखों रुपये खरच कर डालते हैं। एसे आचार्य महाराज केवल ओसवालोंको ही नही पर आमजनता को उपदेश दे उनका जीवन नीतिमय धर्म्ममय परोपकारमय बनाके इस और परलोकमे सुखके अधिकारी बना देते है। ओसवालोंके दूसरे कुलगुरु होते है वह ओसवालोंके घरोमें सोलह संस्कार वगरह कार्य कराया करते है और ओसवालोंकी वंसावलिआंभी लिखा करते है।

(४) ओसवालोंका धर्म्म—ओसवालोंका धर्म्म जैनधर्म

है बचपनासे ही उनको एसी शिक्षा दी जाती है जिससे उनके संस्कार जैनधर्म पर दृढ जम जाते हैं। वे लोग अपने जैन मन्दिर मूर्तियों की त्रिकाल प्रार्थना, पुजा, पाठ, सेवा, भक्ति, उपासना करना अपना धर्म समझते है और जैनमुनियों की सेवा उपासना व व्याख्यानादि उपदेश श्रवण कर आत्मज्ञान, अध्यात्मज्ञान, तत्त्वज्ञान और ऐतिहासिकज्ञान प्राप्त करते है और अपने सत्यज्ञानद्वारा अन्य लोगोंको ही नहीं पर राजा महाराजाओंके चित्तको इस पवित्र जैनधर्मकी ओर आकर्षित करना अपना परम कर्त्तव्य समझते है।

(५) ओसवालोंके धर्म्म कार्य—जैन मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाकरवानी पुराणे मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करवाना, जैनतीर्थों की यात्राके लिये वडे वडे संघ निकालना, स्वामिवात्सल्य करना अर्थात् स्वधर्मि भाइयों को हरप्रकारसे मदद करना, शासनकी प्रभावना अर्थात् किसी प्रकारसे अपने धर्म्मका प्रभाव जनतापर डालना, स्थान स्थान पर ज्ञान भण्डारों कि स्थापना करना, अहिंसा परमोधर्म्मः का प्रचार विश्वव्यापि कर देना इत्यादि धर्म्म कार्य्य करना ओसवाल अपना परम कर्त्तव्य समझते है।

(६) ओसवालोंकी परोपकारिता—दानशाला (शत्रुकार) अनाथालय औषधालय, विद्यालय, मुसाफरखाना कुँवे, तलाव, वावडियों, सदाव्रत पाणिकी पोवों, दुष्कालादिमें अन्नदानादिसे दीन दुःखियोंका उद्धार करना, गौशाला पांजरापोलादि अनेक सुकृत कार्य कर देशवासी भाइयों की सेवामें हजारों लाखो क्रोडों द्रव्य खरच करना ओसवाल लोग अपना परम कर्तव्य समझते है।

(६) ओसवालोंकी पंचायतियें—ओसवालों के न्याति जाति पंचायतियोंका संगठन इतना उत्तम रीतिसे रखा गया है कि ग्राममें झघडा–रघडा टंटा–फिसाद व लेनदेन संवन्धी किसी प्रकारसे वैमनस्य होजाय तो उनको अदालतों का मुंह देखने की आवश्यक्ता भी नहीं रहती है कारण ओसवाल पंच उन वादी प्रतिवादियों कों इस उत्तम रीतिसे घरके घरमें समझादेते हैं कि फिर अपील तकका अवकाश ही नहीं रहता है इतना ही नहीं पर ओसवाल पंच ग्राम संवन्धी अनेक कार्य करनेमें अपना समय व द्रव्य खरचकर स्वयं कर लेते है पर ग्रामवालों को गरम हवा तक भी नहीं पहुँचने देते हैं इसलिये ही पंच परमेश्वर और मांबाप कहलाते है।

(८) ओसवालों के पर्व दिन—कार्तिक वद ०)) महावीर निर्वाण. कार्तिक शुक्ल १ गौतम केवल महोत्सव, शुक्ल ५ ज्ञान पञ्चमी पूजा, शुद ८ से १५ तक कार्तिक अठाइ महोत्सव, मार्गशिर्ष शुद ११ मौन एकादशी, पोष वद १० पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक, माघ वद १३ मेरुत्रयोदशी, फागण शुद ८ से १५ तक फाल्गुन अठाइ महोत्सव, चैत्र शुद ७ से पूर्णिमा तक आयंबिल तपश्चर्या के साथ अठाई महोत्सव. वैशाख में अक्षय तृतीया, ज्येष्ट मास में निर्जरा एकादशी, आषाढ मास शुद ८ से पुनम तक अठाई महोत्सव, श्रावण शु. ५ नेमिनाथ भगवान् का जन्म, भाद्रपद में पर्वाधिराज पर्युषण पर्व ८ दिन महोत्सव, आश्विन मास में आयंबिल कि तपश्चर्य के साथ अठाई महोत्सव। इनके सिवाय जिन कल्याणक तिथी प्रतिष्टा दिन आदि जैनोंमें पर्व माना गया है इस पवित्र दिनोमें धर्म्म कृत्य

विशेष किया जाता है पाप कर्म का त्यागकर आत्मभाव में रमणात करना ओसवाल लोग अपना कर्तव्य समझते है ।

(९) **ओसवालों का संमेलन**—दीर्घदर्शी ओसवालोंने अपने संमेलन के लिये प्रत्येक प्रान्त के एकेक तीर्थों पर ऐसे मेले-मुकरर कर दीये है कि वर्ष भर में एक दो संमेलन तो सहज ही में हो जाता है । वे भगवान् की भक्ति के साथ अपने न्याति जाति समाजिक और धार्मिक विषय में किसी प्रकार के नये नियम बनाना और पुराणे नियमों का संशोधन करना खराब रूढियों को निकालना सदाचार का प्रचार करना इत्यादि समयानुसार कार्य कर सकते है कारण वहां सब प्रान्त के लोग एकत्र होनेसे न तो किसी के घर पर वह कार्य होता है न किसी को बुलाने का या खरचा उठाने का जोर पडता है धर्मस्थानपर प्रेम एक्यता से किया हुवा कार्य को चलाने में कोशीस भी नहीं करनी पडती है ।

(१०) **ओसवालों का आचार व्यवहार**—जुवा, चोरी, शीकार, मांस, मदिरा, वैश्या, परनारी एवं सात कुव्यसन और विश्वा-सघात धोखेबाजी, राजद्रोह, देशद्रोह, समाजद्रोह आदि लोक निंद-नीय कार्य सर्वथा ताज्य है और वासी अन्न (भोजन) द्विदल, बावीश अभक्ष, अनछाना पाणी, रात्रीभोजन, आदि २ जीवहिंसा का कारण और शरीर में बिमारी वढानेवाले पदार्थ ओस-वालों के लिये सर्वथा अभक्ष है । सुवा सुतकवाले घरोंमें अन्न जल नहीं लेना ऋतु—धर्म्म चार दिन बराबर टालना सदैव स्नान मज्जन

से शरीर व वस्त्रशुद्धि कर पूजापाठ आदि अपना इष्ट स्मरण करने के बाद स्त्री व पुरुष अपने गृह कार्य्य में प्रवृतमान होते है इतना ही नहीं पर यज्ञोपत लेना भी ओसवालों का कर्त्तव्य है ओसवाल लोग सदैव थोडा बहुत पुन्य अपने घरों से निकालते है जैसे अभ्यागतों को अन्नजल गायों को घास कुत्तोंको रोटी भिक्षुकों को भोजन यह ओसवालों की दिनचर्या है।

(११) ओसवालों की वीरता—भारतीय अन्योन्य ज्ञातियों से ओसवालों की वीरता चढबढ के है। कारण यह ज्ञाति मूल-राजपुतों से बनी है ओसवालो में ऐसे एसे शूरवीर हुवे है कि सेंकडो जगह संग्राम में प्रतिपक्षी व अन्यायीओं का पराजय कर अपनी विजय पताका भूमण्डल में फरकाते हुवे देश का रक्षण किया जिनवीरोंकी वीरता का उज्ज्वल जीवन इतिहास के पृष्ठोपर आज भी सुवर्ण अक्षरों से अंकित है।

(१२) ओसवालों का पदाधिकार—दीवान, मंत्री, महामंत्री, सेनापति, हाकिम, तेहसीलदार, जज—जगतसेठ, नगरशेठ, पंच, चोधरी, पटवारी, कामदार, खजानची, कोंठारी, बोहारजी, आदि ओसवालो को पदाधिकार दिया जाता है तदनुसार वह जगत् का व नगर का भला भी किया करते है और नागरि कों की तरफ सेही नहीं पर राजा महाराजाओं की तरफ से बडा भारी मान मरतबा भी मिलता है यह कहना भी अतिशय युक्त न होगा कि उस समय राजदरबार में ओसवाल चाहते वह ही कर गुजरते थे। अर्थात् इस

पदाधिकारके जरिये ओसवालोंने दुनिया का बहुत भला किया देश को और राज को अच्छी तरक्की दी थी।

(१३) **ओसवालों का मानमर्यादा**—रीतरिवाज इज्जत वगरह अन्योन्य ज्ञातियों से खूब चढबढ के है कारण ओसवालो की शौर्यता, वीर्यता, धैर्यता, गांभिर्यता नीति कुशलता, रणकुशलता, सन्धीकुशलता, शाम, दाम, दंड, भेद प्रतिज्ञापालन, देशसेवा, राजसेवा, समाजसेवा, धर्म्मसेवा और चातुर्यादि अनेक सद्गुणों से आकर्षित हो राजा और प्रजा ओसवाल लोगों को इज्जत आदर सत्कार--मानमहत्व देना वह अपना खास कर्त्तव्य समझते है।

(१४) **ओसवालों का पेशा** (धंधा)—जिन राजामहाराजाओं को मिथ्याचरण छोडा के ओसवाल बनाये गये थे वह चिरकाल (कई पीढियों) तक राज ही करते रहे और कितनेक लोगोंने राजकर्मचारी बन राजतंत्र चलाये और कितनेक लोग व्यापार करने लगे उनके लिये यह कहना भी अतिशय युक्ति न होगा कि व्यापार में जितनी हिम्मत ओसवालों की है इतनी शायद ही अन्य ज्ञाति की होगी। व्यापार करने का तात्पर्य केवल पैसा पैदा करने का ही नहीं था किन्तु व्यापार देशोन्नति का एक अंग समझाजाता है जिस देश में व्यापार की उन्नति है वह देश सदैव के लिये सुखी और समृद्धशाली रहता है इसी लिये देशसेवा में ओसवाल अग्रेसर माने जाते है।

(१५) **ओसवालों का जैसे व्यापार का पेसा है वैसे नोहरगतें करना भी उन का धंधा है।** वे राजा महाराजा ठाकुरो जमीनदारो

और किसान लोगों को द्रव्य करज में दिया करते है इस में स्वार्थ के साथ देशसेवा भी रही हुई है कारण देश आबादी का आधार किसांनो पर है किसानों कों जैसे जैसे साधन सामग्री अधिक मिलती है वैसे वैसे पैदावारी अधिक करते है जिस देशमें खाद्यपदार्थादि की अधिक पैदावारी है वहां राजा प्रजा सब सुखी और उन्नत रहते है।

(१६) ओसवालों का व्यापारक्षेत्र की विशालता— भारतीय देशों के सिवाय सामुद्रिक जहाजों द्वारा अन्य देशो में भी ओसवाल व्यापारियों का व्यापार था, ज्ञाति भाइयों के सिवाय अपने देश भाइयों को भी व्यापार में उन्नत बनाने कि कौशीष करते है जो लोग देश में व्यापार करते है वह भी बडे ही थोकबंध व्यापार करते हैं कि एक बडे व्यापारी के पिच्छे सेंकडो लोग अपना गुजारा अच्छी तरह से कर सके। ओसवालो को कुलदेवी का वरदान है कि वह व्यापार मे बहुत द्रव्य पैदा करे " उपकेश बहुलं द्रव्यं " ओसवाल जैसे न्यायपूर्वक द्रव्योपार्जन करते है वैसे ही वह शुभ कार्यों में भी लाखो क्रोडों द्रव्य खरच के अपने जीवन को सफल बनाते है।

(१७) ओसवालों के व्याह लग्न—जो राजपुतों से ओसवाल बनाये गये थे उनकी लग्न सादी कितनेक अरसे तक तो राजपुतों के साथ ही होती रही। बाद ओसवाल ज्ञाति का एक बडा भारी जथ्था बन्ध गया तब से उनकी लग्न सादी चार साखाए छोड के अपनि ज्ञाति में होने लगी। पर इस ज्ञाति के पूर्वजोंने एसे उत्तम

रीतरिवाज कायम रखे है कि जिस्में धनाढ्य और साधारण एवं सब का निर्वाह अच्छी तरह से होता रहै। इस ज्ञाति में धर्म विवाह बडी इज्जत के साथ होते है कन्या का पैसा लेना तो दूर रहा पर कन्या के वर के वहां का पाणि पीना भी महान् पाप समझते है इसी कारण से इस ज्ञाति की बडी भारी इज्जत मानी जाती है और विस्तार से फलीफूली है।

(१८) **ओसवालों की औरतें**—ओसवालों के घरों मे औरतों की बडी भारी इज्जत मान मर्यादा काया कायदा बडे ही अदब के साथ है बाहार जाने के समय दो चार सेवगणीयों नायणियों साथ रहती है पाणि भरना, अनाज पीसना, गोबर उठाना वगरह इनके कार्य वह नहीं करती है वैसे कार्य उन्हो के घरोंमे प्राय: मजुर ही किया करते है ओसवालों की औरतें प्राय: लिखी पढी होती है हुन्नर उद्योग में वह हुसीयार होती है सलमासत्तारा व जरीके कसीदे वगरह वह आवश्यक्ता माफीक गृहकार्य में दूसरों की अपेक्षा विगर सब कार्य वह स्वयं कर लेती है जैसे वह गृहकार्य में चतुर होती है वैसे धर्मकार्य में भी वह बडी दक्ष हुवा करती है।

(१९) **ओसवालों की पौशाक**—ओसवालों की पौशाक प्राय: मारवाडी है। वे श्रेष्ठ कपडो के साथ जेवर पहिनना अधिक पसंद करते है मुसाफरी के समय तलवारादि शस्त्र भी रखा करते है ओसवालो के घरो में औरतों कि पौशाक जितनी सुन्दर व शोभनीय होती है उतनी ही अदबमय है चाहे ओसवाल लोग विदेशमें भी चले जावे

पर उनकी पौशाक तो अपने देश कि ही रहेगी परन्तु जो चिरकाल से विदेशवासी हो गये है उन्हो की पौषाक देशानुसार बदल भी गई हैं पर वह कभी देशमें आते है तब तो उन्हको अपने देश कि पौशा-कादि धारण करनी पडती है ।

(२०) ओसवालों की भाषा—ओसवालों की मूल भाषा मारवाडी है पर वे प्रायः संस्कृत प्राकृत गुजराती मरेठी कनडी तैलंगी बंगाली आदि बहुत भाषा भाषी हुवे करते है यह कहना भी अनिशय युक्ति न होगा कि जितनी भाषाओं का बोध ओसवालों को है उतना शायद ही अन्य ज्ञाति को होगा । ओसवालों मे उच्च भाषा व उच्च शब्दों का प्रयोग विशेष रूप में होता है पत्रों की लिखावट में भी एसा प्रीय और उच्च शब्दों का प्रयोग किये जाते है कि जिनसे प्रेम एेक्यता का संचार स्वभाव से ही हो जाता है। ओसवालों को जैसे भाषा का विशाल ज्ञान है वैसे लिपियों का ज्ञान भी विस्तृत्व है वह हरेक लिपि को इसारा मात्रसे पढ सक्ते है इसका कारण ओसवालों का व्यापार हरेक देशवाशियों के साथ है ।

(२१) ओसवालों की महत्वता—ओसवाल ज्ञाति अ-न्योन्य ज्ञातियों से चढ वढ के होनेपर भी अन्योन्य ज्ञातियों के साथ प्रेम ऐक्यता के साथ उनकी उन्नति में आप सहायक बन मदद करते हैं इतना ही नहीं बल्कि ग्राम संबन्धी कोइ भी कार्य हो उसमें आप कितने ही कष्ट व नुकशान उठा लेते है राज दरबार में जाने का काम पडने-पर आप अपना काम छोड वहां जावे जबाब सवाल करे पैसा खरच

करें परं ग्रामवासियों को गरम हवा तक भी नहीं आने देवे इस परोपकार वृत्ति से ही दुनियों मे ओसवालों का मानमहत्व मशहूर है।

(२२) ओसवालों के घरो में गौधन का पालन— ओसवालो के घरों में गौधन का पालन विस्तृत संख्या मे होता है एसा शायद ही घर होगा कि जिस घर मे गौमाता का पालन न होता हो ? सन्तान वृद्धि और वीरता का मुख्य कारण कहा जाय तो गौ का पालन करना ही है दूसरी बात यह भी है कि ओसवालों के घरों में गौ का पालन इतनी उत्तम रीती से होता है कि आप कष्ट सहन कर लेने पर भी गौ को तकलीफ नहीं होने देते। इसी कारणसे दूसरोंसे पंच दश रूपये ओसवालोंसे कम लिये जाते है कीसानोंको विश्वास है कि ओसवालोंके घरोंमे गौधन बहुत सुखी रहते है उन गौओंका लाभ केवल ओसवालों को ही नहीं पर दुध दही छास वगैरहका बहुतसे लोगोंको भी लाभ मिलता है यह उनकी उदारता का परिचय है।

(२३) ओसवालोंके याचक—ओसवालोंके न्याति-जाति पंच पंचायति सादी व संघ संबन्धी हरेक कामकाज अर्थात् एक घर संबन्धी व समुदाय संबन्धी कोइ कार्य हो उनके लिये सेवग जाति मुकरर है वह ओसवालोंके हरेक कार्य करने को व टैलबन्दगी में हाजर रहते है और जैनमन्दिर उपासराओंका काजा कचरा निकालना वरतन चिरागवत्ती धीसके तय्यार रखना इत्यादि और उन सेवग जातिके निर्वाह के लिये ओसवालोंने प्रतिदिन प्रत्येक घरसे एकेक रोटी देणा और लग्न सादी में त्याग वगैरहके रूपये देना कि जिससे उन सेवगोंका

सुखपूर्वक निर्वाह हो जाए और सेवगोंने भी एसी प्रतिज्ञा ले रखी है कि हम ओसवालों के सिवाय दूसरी ज्ञातिसे याचना नहीं करेंगें ।

(२४) ओसवालोंकी सर्व जीवों प्रति मैत्रीकी भावना— पर्युषणादि पर्वदिनों में ओसवाल स्वयं पापकर्मको त्याग करते है और दूसरी ज्ञातियोंको उपदेशद्वारा व द्रव्यद्वारा उन्हका पापकार्य छोडाते है इतना नहीं पर इस विषयमें बडे बडे राजामहाराजा और बादशाहों-का चित्तको आकर्षित कर जीवदया व पर्वदिनोंमे अम्ले पलानेके विषयमें पटे परवाने सनंदे प्राप्त कर उनका अमल दर अमल देश प्रदेशमें करवाके विचारे निरपराधी अबोले जीवोंका आशीर्वाद प्राप्त किया है केवल पशुवों के लीये ही नहीं बल्के कई दुष्कालोंमे. क्रोडो रूपैये खरचकर अपने देश भाइयोंके प्राण भी बचाये है यह ओसवालों की उदार भावनाका परिचय है ।

(२५) ओसवालोंके गोत्र व ज्ञातियां—इस विषयमें वंसावालियों और पट्टावलियों का भिन्न भिन्न मत है कितनेक लिखते है कि आचार्य रत्नप्रभसूरिने उपलदेवराजादिको प्रतिबोध दीया था उस समय १८ गौत्रकी स्थापना की । जब कितनेकों का मत है कि मंत्रीपुत्र कि खुशी में सूरिजीकी सेवामें १८ रत्नोंका थाल रखा था तदनुसार १८ गौत्र हुवे जब कितनेको का मत है कि देवीके मन्दिर पूजा करनेको गये हुवे श्राद्धवर्ग के १८ गोत्र स्थापन किये । कितनेकों का मत है कि अठारा कुलके राजपुतों कों प्रतिबोध दीये जिनके १८ गौत्र हुवे है इत्यादि समय के विषय भेद होनेपरभी शरूसे १८

गौत्र होनेमें सबका एक मत है । १८ गोत्रों कि स्थापना एक ही समय में हुई हो या कारण पाके अलग अलग समयमें हुई हो पर इतना तो निश्चय है कि आचार्य रत्नप्रभसूरिने उपकेसपुरमें उपकेश (महाजनवंस) वंसकी स्थापना कर वीरात् ७० वर्षे महावीर मूर्ति की प्रतिष्टा करी जिसके बाद ३०३ वर्षे मूल प्रतिष्टाका भंग होनेसे नगरमें बहुत अशान्ति फैली जिसकी शान्ति आचार्य श्री कक्कसूरिने कराइ उस समय १८ गोत्र के श्रावको को स्नात्रीये बनाये गये थे. तथाच—उपकेश चारित्रे—

(१) तातहडगोत्रं (२) बापणागोत्रं (३) कर्णाट-गोत्रं (४) बलहागोत्रं (५) मोरखगोत्रं (६) कुलहटगोत्रं (७) वीरहटगोत्रं (८) श्रीश्रीमालगोत्रं (९) श्रेष्टिगोत्रं एते दक्षिणबाहु ।

(१) सुचंतिगोत्रं (२) आदित्यनागगोत्रं (३) भूरि गोत्रं (४) भाद्रगोत्रं (५) चिंचटगोत्रं (६) कुम्भटगोत्रं(७) कन्नोजियेगोत्रं (८) डिडूगोत्रं (९) लघुश्रेष्टिगोत्रं एते वामबाहु ।

इस प्राचीन लेखसे निःशंक सिद्ध होता है कि वीरात् ३७३ अर्थात् विक्रमपूर्व ९७ वर्ष पहेले तो महाजनवंस (उपकेशवंस) में अलग अलग गोत्रोंकि संख्या हो चुकी थी और इन गोत्रवालोने अपनि अच्छी उन्नति भी करली थी पर प्रस्तुत, समयसे कितने काल पूर्व इन गोत्रोंका बन्धण हो चुकाथा इसका निर्णय के लिये पट्टावलियो व वंसावलियों के सिवाय इस समय हमारे पास कोइ साधन नहीं है

तथापि अनुमान हो सक्ता है कि स्नात्रीये बननेके समय गोत्रोंका अध्या बन्ध गया था तो कमसेकम दो तीन शताब्दी जीतना पुराणा समय तो अवश्य होना ही चाहिये इस अनुमानसे पट्टावलियों व वंसावलियों का समय भी स्थिर हो सक्ता है आगे हम इन १८ गोत्रों कि वृद्धि कि ओर देखते है तो प्रत्येक मूलगोत्रसे अनेक साखा प्रति साखासे प्रफुल्लित हो इस ज्ञातिने अपनी इतनी तो उन्नति करली कि इसके मुकाबलामें स्यात् ही दूसरी ज्ञातियों उन्नति क्षेत्रमें आगे पांव रखा हो इन अठारा गोत्रोंका विस्तार पूर्वक इतिहास जो हमको मिला है वह आगेके प्रकरणों मे दीया जावेगा यहाँ परतो केवल एकेक गोत्रोंसे कितनि कितनि साखाओरूप ज्ञातियों व गोत्र निकले है उनके नाम मात्र दे देना चाहते है कारण कि यह भी इस ज्ञातिके उन्नतिका एक नमूना है—

(१) मूलगौत्र तातेड़—तातेड, तोडियाणि, चौमोला, कोसीया, धावडा, चैनावत, तलोवडा, नरवरा, संघवी, डुंगरीया, चोधरी, रावत, मालावत, सुरती, जोखेला, पांचावत, बिनायका, साढेरावा, नागडा, पाका, हरसोत, केलाणी, एवं २२ जातियों तातेड़ोंसे निकली यह सब भाई है ।

(४) मूलगौत्र बाफणा—बाफणा, (बहुफूणा) नहटा, (नाहाटा नावटा) भोपाला, भूतिया, भाभू, नावसरा, मुंगडिया, डागरेचा, चमकीया, चोधरी, जांघडा, कोटेचा, बाला, धातुरिया, तिहुयणा, कुरा, बेताला, सलगणा, बुचाणि, सावलिया, तोसटीया, गान्धी, कोटारी, खोखरा, पटवा, दफ्तरी, गोडावत, कूचेरीया,

थालीया, संघवी, सोनावत, सेलोत, भावड़ा, लघुनाहटा, पंचवया, डुडिया, टाटीया, ठगा, लघुचमकीया, बोहरा, मीठडीया, मारू, रणधीरा, ब्रह्मेचा, पाटलीया वानुणा, ताकलीया, योद्धा, धारोला, दुद्धिया, वादोला, शुकनीया. एवं ९२ जातियों बाफणोंसे निकली हुई आपसमें भाई है।

(३) मूलगौत्र करणावट—करणावट, वागडिया, संघवी, रणासोत, आच्छा, दादलिया, हुना, काकेचा, थंभोरा, गुदेचा, जीतोत, लाभांणी, संखला, भीनमाला, एवं करणावटोंसे १४ साखाओं निकली वह सब आपसमें भाई है।

(४) मूल गौत्र बलाहा—बलाहा, रांका, वांका, शेठ, शेठीया, छावत, चोधरी, लाला, बोहरा, भूतेडा, कोटारी, लघु रांका देपारा, नेरा, सुखिया, पाटोत, पेपसरा, धारिया, जडिया, सालीपुरा, चितोडा, हाका, संघवी, कागडा, कुशलोत, फलोदीया एवं २६ साखाओ बलाहा गोत्रसे निकली वह सब भाई है।

(५) मूलगौत्र मोरख—मोरख, पोकरणा, संघवी, तेजारा, लघुपोकरणा, वांदोलीया, चुंगा, लघुचंगा, गन्ना, चोधरि, गोरीवाल, केदारा, वातोकडा, करचु, कोलोरा, शीगाला, कोटारी एवं १७ साखाओं मोरखगोत्र से निकली वह सब भाई है।

(६) मूलगौत्र कुलहट—कुलहट, सुरवा, सुसाणी, पुकारा, मसांणीया, खोडींया, संघवी, लघुसुखा, बोरडा, चोधरी, सुराणीया, सालेचा, कटारा, हाकडा, जालोरी, मनी, पालखीया,

सुसाण्या एवं १८ साखाओं कुमहट गौत्रसे निकली वह सब भाई है ।

(७) मूलगौत्र विरहट—विरहट, भुरंट, तुहाण्या, ओसवाला, लघुभुरंट, गागा, नोपत्ता, संघवी, निबोलीया, हांसा, धारीया, राजसरा, मोतीया, चोधरी, पुनमिया सरा, उर्जोत, एवं १७ साखाओं विरहट गौत्र से निकली है वह सब भाई है ।

(८) मूल गौत्र श्री श्रीमाल—श्रीश्रीमाल, संघवी, लघुसंघवी, निलडिया, कोटडिया, झाबांणी नाहरलांणी, केसरिया, सोनी, खोपर, खजानची, दानेसरा, उद्धावत, अटकलीया, धाकडिया भीन्नमाला, देवड, माडलीया, कोटी, चंडालेचा, साचोरा, करवा एवं २२ साखाओं श्रीश्रीमाल गौत्रसे निकली वह सब भाई है ।

(९) मूल गौत्र श्रेष्ठि—श्रेष्ठि, सिंहावत्, भाला, रावत, वैद, मुत्ता, पटवा, सेवडिया, चोधरी, थानावट, चीतोडा, ओधावत्, कोटारी, बोत्थाणी, संघवी, पोपावत, ठाकुरोत्, बालेटा, विजोत्, देवराजोत्, गुंदीया, बालोटा, नागोरी, सेखांणी, लाखांणी, भुरा, गान्धी, मेढतिया, रणधीरा, पातावत्, शूरमा एवं ३० साखाओ श्रेष्ठि गौत्रसे निकली वह सब भाई है ।

(१०) मूलगौत्र संचेति—संचेति (सुचंति साचेती) ढेलडिया, धमाणि, मोतिया, बिंबा, मालोत्, लालोत्, चोधरी, पालाणि लघुसंचेति, मंत्रि, हुकमिया, कजारा, हीपा, गान्धी, बेगाणिया, कोठारी, मालखा, ब्राह्मा, चितोडिया, इसराणि, सोनी,

मकवा, घरघटा, खेंपा, लघुचोधरी, धोसरीया, बापनात्, संघवी, मुरगीपाल, कोलोचा, जालोत्, लघभंडारी, भोजावत्, काटी जाटा, तेजाणी, सहजाणि सेया मन्दिरवाला, मालतीया, भोपावत्, गुधीया, एवं ४४ साखाओ संचेति गोत्रसे निकली वह सब भाई है ।

(११) मूल गौत्र आदित्यनाग—आदित्यनाग, चोरडिया, सोढाणि, संघवी, उडक मसाणिया, मिणियार, कोटारी, पारख, 'पारखों' से भावसरा, संघवी, ढेलडिया, जसाणि, मोल्हाणि, मडक, तेजाणि, रूपावत्, चोधरि, 'गुलेच्छा'—गुलेच्छोंसे दोलताणी, सागाणि, संघवी, नापडा, काजाणि, हुला, सेहजावत्, नागडा, चित्तोडा, चोधरी, दाताग, मीनागरा, 'सावसुखा' सावसुखोंसे मीनागा, लोला, बीजाणि, केसरिया, बला, कोटारी, नांदेचा, 'भटनेराचोधरी'—भटनेराचोधरियोंसे कुंपावत्, भंडारी, जीमणिया, चंदावत्, सांभरीया, कानुंगा, 'गदईया' गदइयोंसे गेहलोत, लुगावत्, रयाशोभा, बालोत्, संघवी, नोपत्ता, 'बुचा' बुचोंसे सोनावत, भंडलीया, करमोत्, दालीया, रत्नपुरा, फिर चोरडियोंसे नावरिया, सराफ, कामाणि, दुद्धोणि, सीपांणि, आसाणि, सहलोत्, लघु सोढाणी, देवाणि, रामपुरिया, लघुपारख, नागोरी, पाटणीया, लालोत्, ममइया, बोहरा, खजानची, सोनी, हाडेरा, दफतरी, चोधरी, लोलावत्, राव, जौहरी, गलाणि इत्यादि एवं ८५ साखाओं आदित्यनाग गोत्रसे निकली वह सब भाई है ।

मूलगौत्र भूरि—भूरि, भटेवरा, उडक, सिंधि, चोधरी,

हिरया, मच्छा, बोकड़िया, बलोटा, बोसूदीया, पीतलीया, सिहावत्, जाजोत्, दोसाखा, लाडवा, हलदीया, नाचाणि, मुरदा, कोठारी, पाटोतीया एवं २० साखाओं भूरि गौत्रसे निकली वह सब भाई है।

(१३) मूलगौत्र भद्र—भद्र, समदडिया, हिंगड, जोगड, गिगा, खपाटीया, चवहेरा, बालडा, नामाणि, भमराणि, देलडिया, संघी, सादावत्, भांडावत्, चतुर, कोटारी, लघु समदडिया, लघु हिंगड, सांढा, चोधरी, भाटी, सुरपुरीया, पाटणिया नांनेचा, गोगड, कुलधरा, रामाणि, नाथावत्, फूलगरा एवं २६ साखाओं भद्रगौत्रसे निकली वह सब भाई है।

(१४) मूलगौत्र चिंचट—चिंचट, देसरडा, संघवी, ठाकुरा, गोसलांणि, खीमसरा, लघुचिंचट, पाचोरा, पुर्विया, निसाणिया नौपोला, कोठारी, तागवाल, लाडलखा, शाहा, आकतरा, पोसालिया, पूजारा, वनावत्, एवं १९ साखाओं चिंचटगोत्र से निकली वह सब भाई है।

(१५) मूत्रगौत्र कुमट—कुमट काजलीया, धनंतरि, सुघा, जगावत्, संघवी पुगलीया, कठोरीया कापुरीत, संभरिया चोक्खा, सोनीगरा, लाहोरा, जाखाणी, मरवाणि, मोरचीया, आलीया, मालोत्, लघुकुंमट, नागोरी एवं १६ साखाओं कुंमटगोत्र से नीकली वह सब भाई है।

(१६) मूलगोत्र डिडू—डिंडू, राजोत्, सोसलाणि, धापा भीरोत्, खंडिया, योद्धा, भाटिया, भंडारी समदरिया, सिंधुडा,

झाजन, कोचर, दाखा, भीमावत्, पालखिया, सिखरिया, बांका, वड-बडा वादलीया, कानुंगा, ऐवं २१ साखाओं. डिडूगौत्रसे निकली वह सब भाई है।

(१७) मूलगौत्र कन्नोजिया—कन्नोजिया, वडभटा, राका-वाल, तोलीया, धाधलिया, घेवरीया, गुंगलेचा, करवा, गढवाणि, करेलीया, राडा, मीठा, भोपावत्, जालोरा, जमघोटा, पटवा, मुशलीया एवं १७ साखाओ कन्नोजिया गोत्रसे निकली यह सब भाई है ।

(१८) मूलगौत्र लघुश्रेष्ठि—लघुश्रेष्ठि, वर्धमान, भोभलीया, लुणेचा, बोहरा, पटवा, सिंधी, चितोडा, खजानची, पुनोत्—गोधरा, हाडा, कुबडिया, लुणा, नालेरीया, गोरेचा, एवं १६ साखाओ लघु-श्रेष्ठिगोत्रसे निकली वह सब भाई है ।

२२–५२–१४–२६–१७–१८–१७–२२–३०–४४–८५–२०–२९–१९–१६–२१–१७–१६ कुल संख्या ४९८ मूल अठारा गोत्रकी ४९८ साखाओ हुई इसपर पाठकवर्ग विचार कर सक्ते है कि एक समय ओसवालोंका कैसा उदय था और केसे वड़वृक्षकी माफीक वंसवृद्धि हुई थी ।

इन के सिवाय उपकेशगच्छाचार्य व अन्य गच्छ के आचार्योने राजपुत्तादि को प्रतिबोध दे जैन जातियो में मिलाते गये अर्थात् विक्रम पूर्व ४०० वर्ष से लेके विक्रम कि सोलहवी शताब्दी तक जैनाचार्यो ओसवाल बनाते ही गये ओसवालो कि ज्ञातियों

विशाल संख्यामे होने का कारण यह हुवा कि कितनेक कों व्यापार करने से, कितनेक एक ग्राम से अन्यग्राम जाने से पूर्व ग्राम के नाम से, कितनेकों के पूर्वजोंने देशसेवा, धर्मसेवा या बडे बडे कार्य करने से, और कितनेक हाँसी ठठा मस्करी से उपनाम पडते पडते वह ज्ञाति के रूपमें प्रसिद्ध हो गये एक याचकने ओसवालोंकी जातियों कि गणाती करनी प्रारंभ करी जिस्मे उसे १४४४ गोत्रों के नाम मिला बाद उसकि औरतने पुच्छा कि हमारे यजमान का गोत्र आप की गणाती में आया है या नहीं ? याचकने पुछाकि उन्हों का क्या गोत्र है ? औरतने कहा 'डोसी' याचकने देखातो यह नाम गीणाती मे नहीं आया तब उसने कहा कि " डोसी तो ओर बहुत से होसी " ओसवाल ज्ञाति एक रत्नागर है इसकी गणाती होना मुश्किल है इस समय कितनिक जातियों बिलकूल नाबुद हो गई पर उन दानवीरों के बनाये मन्दिर व मूर्तियों जिनके शिलालेखों से पता मिलता है कि पूर्वोक्त ज्ञातियों भी एक समय अच्छी उन्नतिपरथी इतना ही नहीं पर प्राचीन कवियों ने उन ज्ञाति के दानवीर धर्म्मवीर शूरवीर नररत्नों कि कविता बना के उनकी उज्वल कीर्ति को अमर बनादी है कतिपय प्राचीन कवित यहांपर दर्ज कर देते है—

भैसाशाहा आदित्यनाग (चोरडीया) गोत्र

छपन कोटि गुजरात बात जग सयल प्रसिद्धि ।
सचायिका प्रसिद्ध, रहै सिरपै सिधि दिधी ॥
नौखंड हुवोज नांव, राव राणा सहु जांणै ।
ग्यारा सैने आठ (११०८) हलुकवि किति वखांणै ॥

थेइज गोतमंडण मुगट, सुघन सुलेखी वाह्वा ।
भैंरुज शेठ लरहथ तणौ, अपनी बोल निवाहिया ॥

॥ बंदिवान छोडनेवाला भेरूशाहका छंद ॥

असुर सेन दल संभरि आइ, बंधवि मुगलां बंदि चलाइ ।
शहुसम परज करै पुकारं कीधा चरित किसौ करतारं ॥ १ ॥
अगड भीम जगसी नहीं, सारंग सहजा तंन;
बाहर चढि डाहा तणां, महि भैरू महिवंन ॥ २ ॥
मृगनैणी मंनि ओदकै, परवसि 'पोली' जाई ।
कै 'लोढी' तुमथी उबरै, कै सुरसाण विकाइ ॥ ३ ॥

छंद॰

सुरसाण काबिल दिसह खंचहि एक रूसन वरसये ।
असवरे यौ मुलितांन लीजै, करव चेडी दखये ॥
खटहडे कोट दुरंग पाडी, धरा असपति धावये ।
पुनिवंत सारंग पछे भैरू, बहुत बंदि छुडावये. ॥ १ ॥
भड सुहड ते भै भंति भगा, कौ न वाहर आवये ।
फिरि राज कुवरी वाट हाले, अम्हे कोण छुडावये ॥
अहिवात अविचल दिये 'लोढौ,' सील संचिगां लाइयं ।
पुनिवंत सारंग पछे भैरू, बहुत बंदि छुडाइयं ॥ २ ॥
बाभणी विणाणी पवणी सारी, दे असीसां अति घणी ।
लख बरस 'लोढा' पाघ कायम, किति चहु खंडी तुम तणी ।

१ आदित्यनाग गौत्र चोरडिया साखा, २ मारवाडमें पाली, ३ ओसवाल लोढा गोत्र.

सांचीया सुकृत निवाण निश्चल, भांण सुजस सुणाइयं ॥
पुनिवंत सारंग पछे भेरु, बहुत बंदि छुडाइयं. ॥ ३ ॥
बिलबिलै बालक माय पाखै, एक रणमें रडवडै ।
पीडिजे लोक प्रभोमि लीजे, डराये दहु दिसि डरै ॥
मेलीया ते ओसवाल उदिवंत, सीख क्रिपणां लाइयं ।
पुनिवंत सारंग पछे भेरू बहुत बंदि छुडाइयं. ॥ ४ ॥

कविता.

छुडाइ सब बंदि, अवनि अखीयात उवारी ।
अलवरि गढि उवर्या, सिपति सहु करे तुहारी ॥
सो परिभूं भैंसाहि, तिपुर सोनया समप्या ।
जीवदया जिनधर्म, दांन छह दरसणि अप्या ॥
डाहाज साह अंगो भमी, भणति भांण जगि जस घणो ।
बंदी छोड बिरद भेरू सदा दिन दिन दोलति दस गुणो. ॥१॥
जुगति जोग रस भोग, अचल आसण मेवातह ।
डेड खग खिति मझि बथ मेखलि त्रिगातह ॥
तनु बभुति धन रिधि, बचन बोलीये सुद्ध जहि ।
श्रवन नाद सोवंन सबद सीरी सीगी बजे ॥
आदेस खांन सुरतांण नै, भणि सीहू ससि रवि तवै ।
भैरवां ग्यान गोरख तु, चहु दिसि चेला चक्रवै ॥ १ ॥
हाटि बसै मेवात भयों नवनिधि किरांणो ।
बिणाज करें जस काजि, बेसि अलवर गढ थाणो ॥

डांडिय दुरिजन राइ, पाइ पलडा बहुतरि ।
बाद न को उघटै खान सोदागर सतरि ॥
भणि सीहू डाहासा तन मेरू करि कंचन श्रवे ।
वाणीयो वसु विधि निर्मियो, जिहि तुलं न तुल्या चक्कवे ॥ २ ॥

कितइक क्रपण करण काजि नवि किणही आवे ।
सुख मागग सेविए सूलसां मही भजावे ॥
तु सारंग दूसरा, दूनी संकडे सधारी.[1], ।
भड भोपत दगिया, अचल अखियात उबारी ॥
मति हीण मूगल अथ बढियो, छाया तर धर तौ धरा ।
भेरवां तरोवर तु परवे, पछितावे पंखी खरा. ॥ ३ ॥

तुझ बिण असूर अनंत संक नवि कोइ मांने ।
तुझ विण पान कुपात भला को भेव न जांणे ॥
तुझ विण बंदी बंदिजात, काविल न वहोडे ।
तुज विण चाडी करे, चाडके नाक न फोडे ॥
भणि सीहू तुझ बिणि दांन गौ, कछु न बात दीसे भली ।
भैरवा आव इक वार तु, इती अनीति अजवर चली ॥

प्रथम रमी चहूवांन, वंस जिस हूवो हमीरा ।
दुजे खीलची माहि, जास माफुर बजीरा ॥
ती पीछे पेरोज, चढ बिमलुखां दल कुटयो ।
बहू रांण भुगइ, साहि महमुद अहुटयो ॥

१ दुनियाके संकटमें प्रबल आधार देनेवाला.

अवसांन अंति आयो न को, पातिसाह परगट कहुं।
मेरू नरिंद संभरि भणुं, तुव जस करि कंक्या बहू. ॥ ५ ॥
उदधि बार लगि अखल, भगति परवरी हित।
अखा कोट पुतली असुर आगम अगम गति॥
महा बेगम के बैर, लुथ लथबथ गहि लुटत।
जो न हुति क्रम दसा, हीयो ततखिन फुनि फुट्टत॥
मेरू न उबारत खगतलि, अतुर बचन अनदिन सह।
उचरति उभय सरसुरि निसुंनि, तत्र तुहि तीरथ कुंया कहत॥

भेरूशाहका भाइ रामाशाहकी कीर्त्ति

नेक निजरि करै साहिआलम, राम च्यारि पतिसाहां मालिम।
बहतरि पाल मेवात वसावैं राजकुली निति सेवा आवै. ॥ १ ॥

छंद.

सेवे कछवाहा, जोधक जादो, भारथ जोगै भील भला।
निरवांण चौहांण चंदेल सोलंखी, देल्ह निसाण जिके दुजला॥
बढ गुजर ठाकुर छेछर छीभर, गौड गहेल महेल मिली।
दरबारि तुहारे रामनरेसुर, सेवै राज छतीस कुली. ॥ १ ॥
जे तुवर तार पंवारक सोढा, साखल खीची सोनगरा।
राठौड जीके रायजादा रावत, स्वांमि कांमि संग्राम खडा॥
जे रावल राजा रांण राजवी, कोडि कला मंडलिक मिली।
दरबारि तुहारै रामनरेसुर, सेवै राज छतीस कुली. ॥ २ ॥

भुमियां भुपतिक राइ महा भड, ते दिसे दरबारि खड़ा ।
जे बंभण भट दिवांण दरसंण, अगातीहुजिदार बडा ॥
जे मंगण गीत करे कवि, मांहि महाजन मेल मिली ।
दरबार तुहारे रामनरेसुर, सेवै राज छतीस कुली. ॥ ३ ॥
जे मीर मीया सीकदारत खोजा, खांन मुम्मिक तुरक तुवा ।
खांजादा मलिक जु मेर मुकदम, ज्वांन पठांण मुगल बवा ॥
जे जामलगाह बलोच हवसी, खेड खत्री जनु मेलमिली ।
दरवारि तुहारे रामनरेसुर, सेवै राज छतीस कुली. ॥ ४ ॥

कवित—राजकुली दरवारि, एक बीनती पठावै ।
इक उभा वोलगै इक बड सेवा आवै ॥
छाजे वंसि छतीस एक जी जी करि जंपै ।
मनि भावै सो करे एक थाप्या उथपै ॥
अलवर साहि आलम थपियौ, कहे जस कीरति भल.
दरबारि रांम डाहा तणौ, मोंड बंधी मागे महल. ॥ १ ॥

विचित्र देशोनुं वर्णन.

दिसि जिणि सूर उदै दरसायं, जिति लगन दीनि न्याणुं जायं ।
दु अविचल जित लग ध्रु तारी, तितलग कीरति राम तुहारी ॥ १ ॥
बडा पहाड जेथि भैवंका, लंकापरे तथि पडलंका ।
सौ मण दंत हस्ति मुख सारी, तितलग कीरति राम तुहारी. ॥ २ ॥
जित लग पुरुष पंगु रन पांने, समझै नहीं तेथि परि साने ।
अर्क तेज उतरे अवारी, तितलग कीरति राम तुहारी. ॥ ३ ॥

जित लग रूंख महातर जैसा, उन सेवंतां टलै अंदेसा ।
सो घर चंदन परउपगारी, तितलगिकीरति राम तुहारी. ॥ ४ ॥

साटिक—रामचंद्रो रामरूपस्य, रामरुषि मनोहरो ।
रो रवेश भये राम, संकरे देसांनरि गत ॥ ५ ॥

दोहा—किति समंदां कंठले, परभै कीयो प्रवेस ।
राम सदाहा रूपके, नरवै जपै नरेस. ॥ ६ ॥

छंद.

जिणि देस नरेस जपै गुण तोरो, जीव भखे पाषांण जरं ।
संपुर समंद वहंते सायर, टाघण साम्हे नीरति पैर ॥
जिणि देस में निख सकै नहि जाइ, घोडी दूधम थांण घुरै ।
तिणि देस नरेसुरराम तुहारी, कीरति कोडि किलोल करै ॥ १ ॥
जिणि देस अजाइश्र बात जपंता, बीछी मीढामांनि १ वसै;
जिणि देस अजियर उट अरोगे२ भाहर सदा लोक बसै ॥
जिणि देसि इसा गुण नारी जांण, भील गुंजाहल मांग३ भरै ।
तिणि देस नरेसुरराम तुहारी, कीरति कोटि किलोल करै. ॥२॥
जिणि देस सदा प्रति धेन सवारी, सत सवामण दूध श्रवै ।
जिणि देस पदमणि पीन पयोहर, खोले राखे काय खवै ॥
जिणि देस पिता धीया आपण जोइ, बिरहनि पंच भ्रतार वरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारी, कीरति कोटि किलौल करे. ॥३॥
जिणि देसि सलोभी मानव जाये, खाड गआं ले मौजि खयो ।
इम जाणि करे नर इसर बांह्या, भांमणि एसा मंत्र भयो ॥

---

१ मेंढा जीतना वींछु. २ उंट लेजावे एसे बडे अजगर.

हथावंत जीये दिसि मारे हाका, हेकपुरिषां देह हरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारि कीरति कोडि किलोल करे. ॥४॥
जिणि देस उभै मणा पितलि जोडै घाट अजाइब लोक घडै ।
जिणि देसि त्रिपंखीं लोहणि ताला, जोनि जितनीं काजि जडै ॥
जिणि देस पदमणि पीता पांणी पावस दीसै पुठि परै ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारी कीरति कोटि किलोल करे. ॥५॥
जिणि देस कलेस न आवे जीवा, इक बाहै इकइस लुणै ।
जिणि देस समुंद्री कांठल जाये, चंदावदनी लाल चुणै ॥
सोवंन जिणै दिसि सीधु साटै, मांनव कोय न भुख मरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारी कीरति कोटि किलोल करे. ॥६॥
जिणि देस दहुं जगाह कणा जीमणा, भोजन आयां सीर भिळे;
उणा देस कहे जगनाथ उडीसा, मांनव कोडि अनेक मिले ॥
समरंगणि ठाइ हयो मिल उपरि, साच पटंतर काज सरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारी कीरति कोडि किलोल करे. ॥७॥
जिणि देस महेसन मंड जुहारे जोति अगनि पाषाणा जलै ।
बुद्धि एह अचंभ विहुणै बालणि बारह मास असुट बलै ॥
परताप सकति न बुडे पांणी, चावल होम जिगंन जरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारि कीरति कोडि किलोल करे. ॥८॥
जिणि देस इसा किम जंगम वासे, कान वधारि बि हाथ करे ।
मुख आंखि न दीसे मुछां आगै, मीच घणां दिन जाय मरे ॥
फल फुल अहार करे नवि फेरो, जोग अभ्यासन विख जरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारि, कीरति कोडि किलोल करे. ॥९॥

जिणि देस उभै खटमास अंधारो सुर न दीसे पंथ सही ।
परवत्त अलंग महा बिहु पासे, वाट विचाले तेथि वही ॥
निसि द्यौस न दीसे राह चलंतो, धुनां दीपक हाथि धरे ।
तिणि देस नरेसुरराम तुहारि कीरति कोडि किलोल करे. ॥१०॥

जिणि देस मदोमत्त होई हसती, भाति अंजाइन बंनि भरे ।
नव निधि सिरोमणि तास निमंधि रोस भयंकरि रंग भरे ॥
हिब होइ जिये दिसि वाह हसी, झालणा देइ न मद्रि झरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारि कीरति कोडि किलोल करे ॥११॥

जिणि देसि बिह जणा जोडी जांमे, एक बिहु घर वास हुवे ।
सुखसेज सदा नृप पुर संपनि, साथ अवासे मांहि सुवे ।
जगदीस इसी किम कीधी जोडी आपण माहि न होइ अरे ।
जिणि देस नरेसुर राम तुहारि कीरति कोडि किलोल करे ॥१२॥

बंदि छोडानेवाला करमचंद चोपडा.

गढरोहो मंडियो सुभट सावंत रुकाणा ।
पत्रन छतीसे बंदि हुवा इक अकथ कहाणा ॥
ओसवाल भूपाल दाम दे बंदि छुडाइ ।
करणी करतब करन, वदे सहु कोइ वडाई ॥
समधर भणे ताल्हण सुतन, न्याइ बिहु पखि निरमला ।
चीतोड भिडं ते चोपडे, करमचंद चाढी कला ॥

नेतसी छाजहड.

पवन जदि न पव्वरं, बाव वागो उत्तरधर ।
धर मुरधर मांनवी, भइ भेभंत तासभर ॥
मात पुत परहरे बिमोह मृगनेनी छारे ।
उदर काजि आपने, देस परदेस संभारे ॥
खित्त खीन दीन व्यापी खुधा, नर नीसत सत छंडीया ।
तिण घोस साह जगमालके, नेतसीह नर थंभीया ॥

अन्नदाता धर्मसी.

दीपक दीदा दिसे, प्रथी पदरा परमांणे ।
कडलूनेर कडाहि सिपति साची सुरतांणे ॥
इकतीसे सोझति, इला असमै आधारी,
धर गुजर धरमसी, जुगति दे अंन जिवाडी ॥
खांटहड बिरद खाटे खरां, अचल गंग सुभ उचरे ।
अधमान तणिवंसि बाचिये, सु तायागी सुरतांणरे ॥

लाखोकों जीवानेवाला संघवी नरहरदास.

साहिनको साहि पातिसाहि जहा गाजी राजी ।
हैं के रावरेकुं सिरपाव ×× दीये हे ॥
जेतेक जिहांन मैं खवानी खांन सुलितान ।
करत बखांन सनमांन बहु दीये हे ।
कोटि जुग राज कीजे, नरहरदास भुवः ॥
स्वामीदास नंदके सरांहो हाथ हिये हे ।

सबहीको सूरि अभिलाख कवि सुंदर जु ॥
नोलखी के पाये केउ लाख जीव जीये हे ।

सुराणाकी उदारता.

सुराणा उगम लगै, अलवेसरि उदार ।
परउपगारी कारणे; उदया इण संसार ॥
उदया इण संसार महा दीसत उन्नत कर ।
खिदरखान दीयोमान राज काजे धुरिंधर ॥
ज दिन चणा नरेसर; रावराणा सत छंड्यो ।
रेल्हण आजूनंद; त दिन पुरिख न मनि मंड्यो ॥
नरसिंघ मोल्हातसो सर्यो करतब सवायो ।
बोइथ के चोखराज आनंद जगत जिवायो ॥
पूनाहल जंपक कुल कवल; करमसीह सचो कह्यो ।
बासठे समे बेरोजगढ़: सूराणे सत संग्रह्यो ॥

सोहिलशाहकों छंद.

कवियण कलत्र कहे सुण कंता, परहरि पीय परदेसे चिंत ।
दुरि दिसावर मम करि तकहु; सुइण सदाफल सोहिल मंगोहु ॥१॥
तुछ काम   ग मुदा बोले; ते नर सोहिल सरि किम तुले ?
त्यागि बार दीहे मुह मोडा, दूसम समै अंन देवें थोडा. ॥२॥
असमे थोडो अंन गर्व मनमांहि आंणे .
पंतिभेद जे करे लाहि लाहणि नही जाणे. ॥३॥

ढिल मंडली मेवात करे संघ मांहि हितमंता ।
मंगिण हारां बोसि; सरस अति घाले मंता. ॥
तहां रंग न रहे चोख कहि; सरस चराचि दस खाचि करि ।
संसार इसा नर अवतर्या, किम पुजे सोहिल सरि ॥

दानवीर छजमल बाफणा.

सुपरिसो सेणिकराइ जेम सुधंम निय ।
नंद मंद जिम बरखत; जाचिकजनां लछि बहु दिनिय ॥
सपुत भांण दलपति मनोहर; कहि गिरधर सोभाजगि लिनिय ।
बंदे आसकरण आचारिज; करणी अजब स करमण किंनिय ॥
उतपति ओयस थांन; साख बापणां संकज नर ।
सांगानेर मझारि; कियो जिन प्रासाद उच कर ॥
ओसवाल भुवाल साह भेरू धरि सुंदर ।
चोहथहरा सुचाइ, बंधव छजमल उनत कर ॥
प्रतिष्ठा करे श्री जिन तणी कहे धनो जी तब जीयो ।
त्यागियां तिलक ठाकुर तणे; करमचंद जगि जस लीयो ॥
आगे नरसिंघ हुवा; अंन दूरभखमै दीया ।
रतनसीह रंगीक, प्रगट परसाद ज कीया ॥
कुलवट येह अचार दांन पहु समाज दिजे ।
ओसवंस उदिवंत किति कहुखंडि भणिजे ॥
सिवराज घरे सजन भगति; कहि किसनां कीरतिभल ।
गढमल तणो गुण को निलो; ते छजमल्ल जगे भारमल ॥

जागड़-शाहा का महात्व.

सांगराण परणीयो; मांड बंधीयो मंडोवर ।
मंडोवर रे धणी; सेर नहीं दीनो सधर ॥
मिली कोडि मंगता, कोइ उर वोड न सके ।
महाजनको मोड; साह निति बारो अंके ॥
मेवाड धणी मंडोवरा, येता थया अनंगमा ।
जगडवे साह जिमाडीया; सउ लाख एकणि समा ॥
बेता हरो बदे सुदियालम; उपाडीये बिलसीये आथि ।
कासिब हरे कीयो कर मुकतो संचे नंद न लेगो साथि ॥

जहांगीर शाहकी महेमानी करनेवाला जगतशेठ झवेरी हीरानंद.

मुकरबखांनुं पुछिया नृप नूरजहांनी ।
कब चलां घर नंदके लेने महमांनी ? ॥
कछुक मंहतल किजिये; हे लोक नमेरा ।
कियो अखा घर देखिये हीरानंद केरा ॥
क्या मै नौसरखांनदी क्या लोकातांइ ? ।
मै सोदागर साहिदी मुझइ हे वडाइ ॥
बंदा आपणा जांणि के काजिये बडेरा ।
एक पियाला खुस करो खुसबुइ केरा. ॥
मैगल घणा उमाहिया जनू बदल काले ।
आपण सहिजां चलशे ते सद मतिवाले ॥

मुख अंधियारी मीलीया; गलि चोर बंधाले ।
दिढ गाढे बहु जीतखे; गढ कोटावाले ॥ २०
मुछ नछित्र मुछत्र, सीसकर चउर ढलं दे ।
साहिजादे संग उबरे; सब पायपुलंदे ॥
मुखमल अर जलबार दी पायंदाज बिछाया ।
जहांगीर से पातिसाहनुं ले धरि आया ॥ २७
धरीया हीरा पेस सुण्या दिठा नहुनेरा ।
हुणकया भाषां लाखते; कीमति अधिकेरा ॥
येक जीह केसे कहुं; गणती जो आया ।
अबर जवाहर कया सहुं; जो नजरि दिखाया ॥ ३० ॥
कही देखिये ढेरिया, सोने दी भारी ।
कही देखिये ढेरिया रूपे अधिकारी ॥
कही देखीये ढेरीयां; कोमांच लगाये ।
पेसकसी जहांगीरनुं, हीरानंद ल्याये. ॥ ३१ ॥
संबत् सोलहे सतसठे; साका अतिकीया ।
मिहमानी पतिसाहदी करिके जस लीया ॥ × × ×
चुंनि चुंनि चोखी चुंनी; परम पुरांखे पंना ।
कुंदनकु देने करि लाये धन तावकेनंना ॥
लाल लाल लाल लागी; कुतुब बस कुसांन ।
बिबधि बरण बने; बहुत बनांउके जान ॥
रुपके अनूप आछे; अबलाके आभारन ।
देखे न सुने न कोइ असे राजा राउके ॥

बाउन मतंग माते नंदजु उचित कीने ।
जरसेती जरि दीने, अंकुस जरावके ॥
दांन के विधानको बखांन हु लो कौ लू करो ।
हीरानिमे हीरादेत हीरानंद जैहरी ॥
पाइये न जेते जवाहर जगमांझ ढुढे ।
जे तो ढेर जोहरी जवाहरको लायो हे ॥
कमखी कोमांच मुखमल जरबाफ साफ ।
झरोखा लो महलग मगमें बिछायो हे ॥
जंपति जगन विधि आनंन वरणी जात ।
जहांगीर आये नंद आनंद सवायो हे ॥
करमी छिटकी काहुं कहुं उबरां उनकी ।
पेसकसी पेखंते पसीनां तन आयो हे ॥ ६ ॥

कोरपाल सोनपाल लोढा.

सगर भरथ जगि जगड जावड भये ।
पोमराइ सारंग सुजस नाम धरणी ॥
सेत्रुंजे संघ चलायो सुधन सुखेत वायो ।
संघ पद पायो कवि कोटि किति बरणी ॥
तांहनि कहाहि ठांम ठांम तुग भांन कहि ।
आनंद मंगल घरि घरि गावे घरणी ॥
वस्तुपाल तेजपाल जैसे रेखचंद नंद ।
कोरपाल सोनपाल कीनी भली करणी ॥ १

कहि [illegible] लोका; दुनीहूं दिखाइ देखा ।
लछि को प्रमांन जोपे एसो लाह लीजिये ॥
आंन संघपति कोउ संघ जोपे कीयो चाहे ।
कोरपाल सोनपाल को सो संघ कीजीये ॥
सबल राइ बिभार; निबल थापना चार ।
बाधा राइ बंदि छोर आरि उरसाजको ॥
अडेराय अवठंभ; खितपती रायखंभ ।
मंत्रीराय आरंभ; प्रगट सुभ साजको ॥
कबि कहि रुप भूप राइन मुकटमंनि
त्यागी राइ तिलक: बिरद गज बाजको ॥
हय गय हेमदांन; भांन नंदकी समांन ।
हिंदु सुरताणि सोनपाल रेखराजको. ॥४॥

सैन बर आसमके. पैज पर पासनके
निज दल रंजन. भंजन परदलको ॥
मदमतवारे; झिकरारे अति भारे भारे ।
कारे कारे बादरसे बास बसु जलके ॥
कबि कहि रुप नृप भुपतिनिके सिंगार ।
अति बडवार औरापति सम बलके ॥
रेखराजनंद कोरपाल सोनपाल चंद ।
हेतवंनि देत एसे हाथि निके हलके ॥

ठाकुरसी मेहता [श्रेष्टिगोत्र वैद्य साखा]

इलां तेगवरियांडनिति वैद्यबंसि आभरण ।
हुवे रिण तालधुर लग वठिलो ॥
फोजहा जमरी उपरे फोरवे; नाखियो ठाकुरे तुरी नीलो. ॥ १ ॥
लीयो आलंमसु ओभडे लोहडा; खांग मोटां सीरे साग खाले ।
खेग अमराहरो भेलियो खेरवे; किलम घडसेबिची वडो काले ॥२॥
वड दांन दीये मिलिया वडपात्रा; अरी हाथल रहचणो अबीह ।
ठाकुरसीह कहावे ठाकुर; सीह कहावे ठाकुरों ठाकुरसीह ॥ ३ ॥
जिणदामोत सुदिन दे जांणी; खगतलपे सिर दीये खल ।
बोलावे राजिंद तणा व्रद बोलावे जगि सरस बल. ॥ ४ ॥
सीमांहरो सुदिन सुरातन मौहतौ ददू बिधि निरभे मंण ।
जगि भूपाल लंकाल कह्यो जिणि वडोसु जोसी ब्राह्मण. ॥ ५ ॥
वकसी जिण गंग बभीषण लंका घटबीसवीयो न्याय घणो ।
ग्रहे चढे तिथि देत नणो गढ, नाइ बकसो जिणदास तणो. ॥६॥
गखे रह्या दुरग सहु रालस, हेम उतरे नही हीये ।
ठाकुरसी जिना सहु ठले, दिनहेकै परवाह दीये ॥ ७ ॥
जेसलमेर पयंपे जांनी, काले जिसे न आयो कोय ।
गढा गाहटण गिरद मेवासण धर गियो,
खडग जड वाजती अचल खेले ।
सीधरे हुकमी जिणदासरो सीधलो ठाकुरो आठवे अनड ठेले. १

कहर कांठलवां वेरहर कांपियां, जुडया अंमआल सोइ घातजांयो ।
आभि थांभा दीये वैदवंसी आभरया, आठ कुल बावनाहि हाथ आंयो. २
भीम्भीम रामरे लंकदल भांजियां, भीम डमघजरो थाट भंजे ।
पिसण पाधोरि वातणो कोइ पांतरो गिरसिखर हाथवां मारिगंजे ॥
पाडि भड देवडां, मेळ परताळीया पिसणातो सरस कुण थाइ धुजे ।
त्रिजड हय सीह अणवीह माहग, धकारो मारीयो मेह धुजे ॥
कळव भीरसहंन भारी भुज भीम सम, भरथीमल भारथ जोधन कीधु रसी ।
रठमठ करन कठिन गढ कोट गाढे, ढुकि ढोहि ढाहि देत तनकमे तुरसी ॥
जिनदासनंद जरजरी जर बकसत, बल्ह कवि बिरद कुरसी दर कुरसी ।
साहिनि मालिम सिकबंध निके सिरताज, साकरे सनाह सुन्यो टाकुरसी ॥

भाद्र गोत्र समदडिया साखाके वीर.

गुरु ककसूरि करी कीरपा, जैतसी सुत जग उगीयों ।
सगलों सिरे संघपति, यो पारसनाथ भल पूजियो ॥
तुरी चढीया तीन हजार, गज उगणीस मद झरतां ।
उँठों लदीजे भार सहस सात अरडाटा करतां ॥
सहस चार रथ जाण सहस दस गाडी साथे ।
नरनारी नही पार गीणती कुण लेवे हाथे ॥
भाद्र गोत्र उदयो भलो समुदो सम अथाहा ।
समदडिया कुल उजालीयों धर्मशी वड वहा ।

\+ \+ \+ \+

पडियो भयंकर काल महा विकराल भुजंग जिसो ॥
भू ब्रह्मांयड थइ एक, तब पुच्छे राय करवुं किसो ।
शाहा सिरे लक्ष्मी धरे इग्यनगरी शाहाटीकुवसे ॥
तेडाव्यो तीशावार जब, जातो काल डग डग हसे ।

\+ + + +

धारा नगरीके वैद मुहत्ता.

धाराधिप देहलने, पद मंत्री सिर थापे ।
शाहा मोटो सामन्त, जगत सगलो दुःख कापे ।
नव खंड नाम देशल कियों, सोनपाल सुत जायो सहु ॥
दुनियों राखण दुकालमें, वैद मुहत्तोनणां गुण केता कहु ।१।

जैन हत्थुडिया राठोड शाह रत्नसी.

साकर गढ सा पुरुष, खारदींवा खंतडा ।
पुथीयाल(ने) दानका माल अपहो आपे तडा ।
खेमशी लखीपाल लख ओपमा केम वखाणु ॥
नवखंड देश खेरडाबडा वड नाम परीयाणु ।
ओसवाल गोत थारो अचल वाचामे लखमी वसी ॥
वीरम सुत्तन किजे बहुत युग युग राज रत्नसी ।

शूरवीर संचेती.

थांन सुथीर रियाथंभ, मान आपै महीपति ।
दुनियों सेवत द्वार सदा चित्त चक्र व्रत है संचेति ॥

आथ हाथ उधमें करे उपकार जग केतही ।
पातशाहा पोषीजे, जुगत दीखावे जैतसही ॥
सरदर सेइया संघमें सिरे, जगइ जुग तारंलीलीलो ।
' महराज ' सिंह 'दाता' समुद ' आदू सुत उदयो इसो ॥१॥
\+ \+ \+ \+
सेवत दुवार बडे बडे भूपत, देख सभा सुरपति ही भूले ।
रहस धगाधग सोभीतद्वारं, जैसे वनमें केसर फूले ॥
संचेती कूलदीपक प्रगटयो, देख कविजन एसे बोले ।
सिंह 'मेहराज' के नन्द करंद, केहत कमीच सतगारूसोलो ॥

रणथंभोर के संचेतीयो का संघ ।

मारवाड मेवाड सिंध धरा सोरठ सारी ।
कस्मीर कागरू गवाड गीरनार गन्धारी, ॥
अलवर धरा आगरो छोड्यो न तीर्थ थान ।
पूर्व पश्चिम उत्तरदाक्षिन प्रथवी प्रगट्यो भान, ॥
नरलोककोइ पूज्या नहीं, सचेतीथारे सारखो ।
चंन्द्र भान नाम युग युग अचल, पहपलटे धनपारखो ॥

सोजत के वैद मुहता ।

रह्यो गढ सोजत बिंटी रायमल, कोट अयाखोले ' पतो ' कहै ।
मोटी रीत घरे मुहतोंरि, राज मुहतों गढ रहे ॥ + + + +
खीवर गढ है कीयाी खेतावती, अजमालौत रहे गढ ओर ।
रीत उजालया वस ' राजडो ' जगड तयाी रह्यो आलोर ॥ + +

सोजत अने सीमियाणी, सोनीगरा जुडता आया ।
आद जुगाद मुरधरतणा, मुहतो परमान सवाया ॥ + + +

वीर वैद मुहत्ता पाताजी को गीत.

ठाकुर पांचसो पांच भूतथी तरहे । संकेतन नित राखे ।
सहु साखीखो हुवो सीमयाणो । ' पातल ' मरू कीरती पाखे ॥

+ + + +

नाडी नाडी नित भुरजि भुरजि, थुडतो जाय अरियों थाट ।
हंस ' पतो ' बुगलो को लायो । देही दुरंग हुवो दह वाट ॥ + +
मोटाइ पीसण तुं हाल ' मुहत्ता ' मह कोइ छडेन फोभमभार ।
नारायण कन्हे ला नारायण, तु आयो बन्ध तलवार ॥
खमे न ताप त्हारो दल खल । सनमुख छडे पाखर शेर ।
दानी हाथ गयमल दुजा । सूरडा चमक्या देखी समसेर ॥

+ + + +

अहिरण रण, खेत हाथोडो अवध सास धमणि तप रोस सहई ।
आठि पोहर अथकित उभो धडदल रयण प्रडे घण घाई ॥
करीयो गेस कोप्यो दावानल, धडधड छैभड धाइ पडै ।
वैनाणी ' पातावत ' अरिबद्ध जडा उखेडत त्रिजड जडै ॥

सीवाणा का वैद मुहता राजसी.

गढ सीवाणो गाजियो, गाजियों ले तलवार ।
प्राण देइ पण राखियों, सुखी कीयो संसार ॥ + + + + +

धर्म्म हेते धन खरचियों, पोपाशाहा प्रमाव । + + +
वैदों ने वरदान । आगे ही अचावका तयो ।
तपिया तेरह स्नान । तपियों मुहतो तेजसी[3] ।। १ ।।
कोडो द्रव्य लुटावियों । होदा उपर हाथ ।
जो दीली को पातशाहा । राजा तो रूघनाथ[1] ।। २ ।।
ओसवाल उथागरगा । भोमा हंदी वाह ।
तन धन सघलो ते दीयो । राख्यो देश मेवाड ।। ३ ।।
लाख लखांरो निपजे । वड पीपल कि साख ।
नटीयों मुत्तो नैणसी । तावों देणा तलाक ।। ४ ।।
जगडू जग जीवाडीयों । दीनों दान प्रमाण ।
तेरा सो पन्नडोतरे । अन्न विघ अगो भांण ।। ५ ।।
सो सोनारो एक ठग । सो ठग ठाकुर एक ।
सो ठाकुर मेला हुवे । जद अकल मुत्सदी एक ।। ६ ।।
थेरू जैसाणे हुवो । आसकरण मेडते । भरी मेवाडमे शाहा भोमो ।।
कच्छरी धरतीमे अगडवो कहिजे । जिम जगमे टोपरेशाहा टामो ।।७।।

एक चारण अपने यजमान कि तारीफ.

वागो जब यह मांडियों । तब नीवतियो सब मेवाड ।
गोलारोठांरी खेंगाली । जदा हुवा धूधला पहाड ।।

इस पर एक जैन कविने कहा कि—

जगरूप जुग जिमाडीयों । निवतीया सब नव खण्ड ।
सिर तपिया वासंग तणा । काजलिया ब्रह्माण्ड ।।

---

१ जोधपुर नरेश. २ भंडारी ओसवाल. ३ आलोरा वदमुता. ४ जीमणवार.

इत्यादि ओसवाल ज्ञातिमें हजारों नहीं पर लाखों की संख्यामें वीर पुरुष हुवे है जिसमें संघि भंडारी मुहता मुनोयतादि के वीरोनेतो अनेक संग्राम में अपनि वीरताका परिचय दे देशका रक्षण कीया जैसे ओसवाल ज्ञाति संग्राममे शूरवीर है वैसे ही दानमें उदार चित रखते है केइ दफे भयंकर दुष्काळमे अर्बों खर्बब द्रव्य खरच कर देशके प्राण बचाये थे, कारण उन्होंमें धार्मिक संस्कार सरूसे ही एसे डाले जाते है कि वह परोपकार के लिये ओर तो क्या पर अपने प्यारे प्राण देने मे भी पीच्छे नहीं हटते है इसी लिये ही इस पवित्र ज्ञाति की उज्ज्वल कीर्ति विश्व व्यापि हो रही है यह ज्ञाति बृहत् रत्नाकर है उनसे जीतना इतिहास हमे मिला व भविष्य मे मिलेगा वह क्रमशः आगे के प्रकरणों मे दीया जावेगा ।

अन्तमे हम हमारे जैन जाति हितैषीयोंसे सादर निवेदन करते है कि इस पवित्र ज्ञातिमें अनेक महापुरुष हुवे है जिन के इतिहास संबन्धी आप और आपके प्यारे मंत्रों के पास कोइ भी लेख, ख्यातों, खुरशीनामा, पट्टा परवाना वगरह जो प्रस्तुतः किताब को मददकार हो वह कृपया हमारे पास भेजावे कि आगे के प्रकरणों मे उसे मुद्रित करवा दीये जावें इस किताब के लिये जितनी विशेष सामग्री मिलेगा उतना ही इस ज्ञाति का गोरव वडेगा इत्यालम्—

परिशिष्ट नं. २ पोरवाड ज्ञाति.

पोरवाड ज्ञाति—यह प्राग्वट ज्ञाति का अपभ्रंस है प्राग्वट ज्ञाति का मूल स्थान तो प्राग्वटपुर जो गंगा नदी के किनारे पर एक प्राचीन नगर था। वाल्मीक रामायण में इस नगर का उल्लेख मिलता है जबसे प्राग्वटपुर के लोग राजपुताने की तरफ आये तबसे वह प्राग्वट कहलाने लगे—जैसे गुर्जर—मालव वगरह ज्ञातियो है जहाँ यजमान जाते है वहां उन के याचक भी जावे यह एक स्वाभाविक बात है तदानुस्वार प्राग्वटपुर के लोगों के पीच्छे पीच्छे उनके गुरु ब्राह्मण भी राजपुताने में आ बसे। जब पद्मावती नगरी में जैनाचार्य स्वयंप्रभसूरिने जिन राजपुतादि कों उपदेश द्वारा जैन बनायें उस समय जो राजपुतों के गुरु प्राग्वट ब्राह्मण थे उन्होंने सूरिजी से अर्ज करी की हे प्रभो! हम और हमारे यजमानोंने आप की आज्ञानुस्वार जैनधर्म्म कों स्वीकार किया है तो हमारा कुछ नाम भी इस के साथ चिरस्थई रहना चाहिये इसपर सूरिजी महाराजने उन सब का 'प्राग्वट वंस' स्थापन किया उसी प्राग्वट वंस का अपभ्रंस 'पोरवाड' हुवा है पोरवाडों के रीतरिवाज खानदान आचारव्यवहार सब ओसवालों के सदृश्य है पोरवाडो कि कुलदेवी अंबिका है "जो सम्यक्त्व धारण कर ली थी" उसने पोरवाडो पर प्रसन्न हो के सात दुर्ग दीये और उन वरदानसूचक पोरवाडो में सात महा गुण प्रगट हुवे जिस विषय में—

सप्तदुर्ग प्रदानेन गुण सप्तक रोपणात्।
पुट सप्तक वंतोऽपि प्राग्वट ज्ञाति विश्रुता ॥ ६५ ॥

आद्यं प्रतिज्ञा निर्वाही, द्वितीय प्रकृतिः स्थिराः ।
तृतीय प्रौढ वचनं, चतुः प्रज्ञा प्रकर्षवान् ॥ ६६ ॥

पंचमं प्रपंचज्ञ, षष्टं प्रबल मानसम् ।
सप्तं प्रभुताकांक्षी, प्राग्वटे पुट सप्तकम् ॥६७॥ (विमलचरित्रम्)

(१) प्रतिज्ञा करना और उसको दृढता से पालना (२) प्रकृति के स्थिर अर्थात् धैर्यवन्त शान्तचित्त से कार्य करना (३) प्रौढ वचन--गांभीर्यता के साथ प्रीय और यथेष्ट वचन (४) बुद्धिमंता--दीर्घदर्शीता (५) प्रपंचज्ञ--सर्व कार्य करने में शक्तिवान् अर्थात् शाम दाम दंड भेदादि नीति कुशलता (६) मन कि मजबूती--बाहुबल अर्थात् शौर्य्यता के साथ कार्य्य करना (७) प्रभुताकांक्षी--प्रभुताप्राप्ती कि इच्छावाले अर्थात् महत्व के कार्य्य कर प्रभुता प्राप्त करना अतएव सात वरदान अम्बिका माताने दीये वैसे ही प्राग्वट ज्ञाति के वीरोने इस वरदानों को ठीक चरित्तार्थ कर बतलाये थे । जिस के उज्ज्वल दृष्टान्त आज भी इतिहास के उच्चासनपर अपना गौरव बतला रहा है, जैसे पोरवाडो कि संतानमें विक्रम सं. १०८ में जावडशा और भावडशा नाम के पोरवाड ज्ञाति के दानवीर दो रत्न पैदा हुवे जिन्होंने पवित्र तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय का जीर्णोद्धार करवाया था जिन का प्रशंसनिय जीवन जैन संसार में विख्यात है एसे बहुत से नररत्न इस पोरवाड ज्ञातिने पैदा किये जिस्मे विक्रमकी आठवी सदीमें पोरवाड वीर नीना व लेहरी जो पाटणाधिपति वनराज चावडके महामात्य व सैनापति पद पर रहे हुवे अनेक वीरताके कार्य्य कर उज्वल कीर्त्ति को प्राप्त की थी जिन्हों के कुटुम्ब में विमलशाहा

जैसे शूरवीर और महादानेश्वरी नररत्न पैदा हो कर केवल पोरवाड ज्ञाति कों ही नहीं पर जैन धर्म्म कों उन्नति के सिखर पर पहुंचादीया था। जिस विमलशाहा की कीर्ति के विषय जैन और जैनेतर लेखकोंने बडे बडे ग्रन्थ निर्माण कर कृतार्थ हुवे है जिस विमलशाहा की उदारता की तरफ हम देखते है तब उनके बनाये हुवे आबु और कुंभारियाजी के जैन मन्दिरों की शिल्पकला केवल भारत में ही नहीं पर युरोप तक प्रसिद्धि पा चुकी है। आगे हम विमलशाहा की वीरता की तरफ दृष्टिपात करते है तो हमारे आश्चर्य की सिमा तक नहीं रहती है। जिस ज्ञाति को शाक भाजी खानेवाले वाणियों के नाम से उपहास कर कायर बतलाते है पर उन अज्ञ लोगों को यह ज्ञात नहीं है कि शाक भाजी खानेवाले में कितनी वीरता रही हुई है जिस ज्ञाति के वीर पुरुषों कि वीरता का वीर चारित्र किस वीरतासे भूषित है उनका एक उदाहरण हम यहां पर बतला देना समुचित समझते हैं यथा—

" तद्भीत्याऽष्टादश शत ग्रामाधिप धारानृपो नष्ट्वा सिन्धु देश गतः तदानु शाकम्भरी, मरूस्थली, मेदपाट, जावलीपुरादि नृपति शतं अंबिका प्रसादात् साधयित्वा छत्रानेकपधारयत तेनैकदा राम नगराधिप द्वादश सुरत्राणाः श्रुताः अकस्मात् महा शैन्य मेलापनं कृत्वा सुभा एव वेष्टिता युद्धे भग्नाः किंकरा संजाता तदीयानि द्वादश तपत्राणि स्व शीर्षे परि धारितानि तच्चरित्रं तु ॥ "

अर्थात् विमलशाहा के भय से अठारासौ ग्राम का नाथ धारा-

धिप राजा भोज भाग के सिन्ध का सरणा लिया और शाकंभरी मरूस्थल मेवाड जालोरादि सौ राजाओं पर विजय करता हुवा अंबिका देवी की कृपा से विमलशाहा एक छत्रपति राजा कहलाने लगा, एक समय विमलशाहाने रामनगर के बारहा सुलतानों कि बात सुणा आपने एकदम शैन्या एकत्र कर एसा हुमला किया कि सुलतानों को पराजय कर अपना किंकर बना उन के बारहा छत्र छीन के अपने सिर पर धारण कर लिया, इत्यादि विमल कि वीरता केवल मनुष्यो के साथ ही नहीं थी पर देवतावों को भी अपना खडग बतलाया था इस विषय में एक प्राचीन कहवत है कि—

मांडी मुर कीरइ करइ । छंडीया मांस भ्राह ।
वीमलडी खंडउ काढ्ढिउ । नाठउ वाली नाहा ॥

अर्थात् विमलशाहा आबु पर जैन मन्दिर बना रहा था तब वहाँ का अधिष्ठायक वाली नाग देव दिन कों बना हुवा मन्दिर रात्री में गिरा देता था जब रात्री में विमलशाहा उस देव को पकडा, देवने मांस कि बलि मांगी, यह सुनते ही वीर विमलशाहाने अपनि कम्मरसे जलहलता खडग निकाला जिस्कों देखते ही देव प्राणों को ले के भाग गया और उपद्रव भी बन्ध कर दीया, इत्यादि विमलशाहा कि वीरता सुनते ही उन्ह के शत्रु कम्प उठते थे. इस विषय में किसी कविने एसा भी कहा है कि " रणि राउलि शूरा सदा देवी आंबावी प्रमाण । पोरवाड परगटमल्ल मरणो न मुके माण " जैसे ओसवाल वीरों के लिये ' अरडकमल्ल ' का खीताब है वैसे ही पोरवाडों में परगटमल्ल का विरूद है ॥

जैसे विमल की वीरता थी वैसे ही उदारता और परोपकारता भी थी जिसने देशसेवा समाजसेवा धर्म्मसेवादि में लखों लखों रूपये खरच किये थे जिस के लिये पाटण के भाटोंने अपना वंस परम्परा तक " विमल श्रीं सुप्रभातम् " अर्थात् प्रातःसमय विमलशाहा और उस कि भार्य श्रीदेवि का नाम अमर रखने का प्रस्ताव पास किया था पहिले जमाने में एसा रिवाज था कि जिसके लिये शुभ भावना प्रदर्शित करना हो वह उस के नाम के साथ ' सुप्रभातम् ' जोड दीया करते थे जैसे—

सुप्रभाति जिण सासणमांहि । सुप्रभाति गुणधर गुणराई ।
गच्छ चोरासी जे जे जति । सुप्रभात सगली महासती ॥
जे जे सकल सभा शृंगार । सुप्रभात सहु ही दातार ।
सुप्रभाति जे धर्म्मिराज । सुप्रभात सवि तीरथराज ॥
सुप्रभात गायण गुण गाणे । सुप्रभात कविराज वखाणे ।
विमल नरेसर श्री घर नारी । सुप्रभात श्री संघ मझारी + + +

और भी उपदेशमाल में इस प्रकार उल्लेख मिलते है ।

" अद्यापि विमलश्रीसुप्रभात मित्याशीर्वादं कथयति । कोर्थः । विमल मंत्री श्रीदेवी भार्या तयोर्यथा—सुप्रभातम भूतथा भवतामपि भवतु इत्यादि ॥

पोरवाड ज्ञाति में जैसे विमलशाहा कि कीर्ति है वैसे ही वस्तुपाल तेजपाल कि भी शौर्यता वीरता उदारता परोपकारता रूप कीर्ति जगत विख्यात है जिन वीरोंने अनेक संग्रामों में फते पाई और अनेक सुकृत

कार्य्य किये जिन के विषय में अनेक लेखकोने ग्रन्थ के ग्रन्थ निर्माण किये पर यहां पर तो एक नमूना के तौर पर थोडासा उल्लेख कर दीया जाता है यथा वस्तुपाल तेजपाल चारित्र से—

९९०४	देव भुवन कि माफिक नये जिन मन्दिर बनाये
२०३००	पुरांणे जिन मन्दिरो का जीर्णोद्धार करवाये
१२५०००	नये जिन बिम्ब बनाये जिस्मे खरचा १८ क्रोड का
३	बडे बडे ज्ञानभण्डार स्थापन करवाये
७००	शील्पकला के नमूने रूप दान्त के सिंहासन
६८८	धर्म्म साधन करने को पौषधशालाए
९०९	समवसरण के योग्य बहु मूल्य चंदरवा
१८९६००००००	शत्रुंजय पर खरचा कर मन्दिरादि बनाये
१८८००००००	गिरनार पर ” ”
१२८००००००	आबु के मन्दिरों में खरच हुवा
३०००००	सोनइयों का एक तोरण शत्रुंजय पर चढाया
३०००००	” ” ” गिरनार पर ”
३०००००	” ” ” आबु पर ”
२५००	घर देरासर कराये यह भक्ति का परिचय है
२९००	रथ यात्रा के लिये काष्ट के रथ बनाये
२४	” ” दान्त ” ”
१८०००००००	पुस्तक भण्डारो के लिये खरचकर पुस्तक लिखाये
७००	ब्राह्मणों के रहने के लिये सुन्दर मकान बनाये
७००	आंम जनता के लिये दानशालाए बनवाई

३००४	अष्णु मत्त के मन्दिर बनाये	यह वीर जैन होने पर भी अपनि मध्यस्थता का परिचय दीया है मुसलमानों के साथ सहिष्णुता करने के मसे मसजिदे करवाई थी।
७००	तापसो के लिये आश्रम बनाये	
६४	मुसलमानों के लिये मसजिदे	
८४	पके घाट बद्ध सरोवर	
४८४	साधारण घाट वाले तलाव	
४६४	रस्ता पर वावडिये बनाई	देशप्रति सेवाभाव का परिचय दीया है
४०००	मुसाफर लोगों के लिये भवन	
७००	पाणी के कुवें बनाये	
७००	पाणी पीने के लिये पौवां	
३६	वडे वडे मजबुत किले बनवाये	
५००	ब्राह्मणों को हमेशों रसोइये	
१०००	तापस सन्यासीयों को भोजन देना	
९०००	सन्यासी व तापसो के भोजनशाला	
२१	जैन आचार्यो को महोत्सवपूर्व पदार्पण	
२०००	तावावति नगरी में सोलइयों का सुकृत	

इन के सिवाय हमेशों जैन मुनियों को यथा उचित आहार वस्त्रादि का दान देना व उन के विहार में सहायता करना स्वामिवात्सल्य प्रभावना उज्जमणा संघपूजा संघ सहित तीर्थो कि यात्रा करना स्वाधर्म्मि भाइयों को सब प्रकार कि सहायता करना इत्यादि शुभ कार्य्य

में इन वीरोंने कितना द्रव्य व्यय किया होगा जिस कि गयाति करना मुश्किल है तथापि एक मारवाडी कविने एसा भी कहा है—

पंच अर्व जिन खर्व दीध दुर्बल आधारा
पंच अर्व जिन खर्व कीध जिन जिमखवारा
सत्याखवे कोड दीध पोरवाल कवहु न नटे
पुरियत पच्यासी क्रोड फूल तांबोलीहटे
चंदण सुर्चार कपुरमसी क्रोड बहुतर कपडा
देतांज दान वस्तुपाल तेजपाल करतब वडा ॥ १ ॥

इत्यादि जैसे वस्तुपाल तेजपाल उदार थे वैसे ही प्राक्रमि भूजबली भी थे इतनाही नहीं पर उनके सब कुटुम्बके हृदय उन वीरताके रंगसे रंगे हुवे थे जिन्होंने अनेक कठनाएँ का सामना कर गुर्जर भूमि का संरक्षण किया इन वीरों की कीर्ति के लिये बहुत ग्रन्थ बने है पर जिन्हो के समकालिन जैनोत्तर कवि सोमेश्वरने अपनि कीर्ति कौमुदी नाम काव्य में वस्तुपाल तेजपाल का खुब ही विस्तार से वर्णन किया है। वस्तुपाल तेजपाल को कितने विरूद मिले है जैसे (१) प्राग्वट ज्ञाति अलंकार (२) सरस्वती कण्ठाभरण (३) सचीव चूडामणि (४) कुर्चाल सरस्वती (५) धर्मपुत्र (६) लघू भोजराजा (७) खंडेरा (८) दातार चक्रवृति (९) बुद्धि अभयकुमार (१०) रूचि कंदर्प (११) चातुर्य चाणाक्य (१२) ज्ञाति वराहा (१३) ज्ञाति गोपाल (१४) सइयद वंस क्षयकाल (१५) सारपलारायमानमर्दन (१६) मज्जैन (१७) गांभीर (१८) धीर (१९) उदार) (२०) निर्विकार (२१) उत्तम जन माननिय (२२) सर्व जन श्लाघनिय (२३) शान्त (२४) ऋषिपुत्र (२५)

परनारी सहोदर इत्यादि इन वीरों का बुद्धिबल कार्य दक्षता संग्राम वीरता और राजतंत्र चलाने कि कुशलता विद्वानों से छीपी हुइ नहीं है इसी मुआफीक इस पोरवाड ज्ञाति में धनाशाहा (राणकपुर का मन्दिर बनानेवाला) और आशूशाहादि अनेक वीर हो गये है पोरवाड में गौत्रों कि संख्या—चोधरी काला धनगर रत्नावत धनोत मजागल डबकरा भादलिया कमलिया शेठिया उदीया भंमेड भूता फरकया भलवरीया मंडीवरिया मुतिया घाटिया गलियां भैसोत नवे परधा दानधरा मेहता खरडिया ईत्यादि यह पुराणो गोत्र है इस के सिवाय कितनेक नये नाम भी उद्भव हुवे हे वह व्यापार व पीता व ग्रामादि कारणो से समजना ।

आचार्य स्वयंप्रभसूरिने जो पद्मावती नगरी मे प्राग्वट वंस कि स्थापना की थी उन के साथ तो "पद्मावतीपोरवाड" का खीताब है और बाद आचार्य हरिभद्रसूरिने कितनेक लोगों को जैन बना प्राग्वट—पोरवाड ज्ञाति में सामिल कर दीये थे उन पोरवाडो कि तीन साखाए हुई (१) शुद्धा पोरवाड (२) सोरठीया पोरवाड और (३) कपोल पोरवाड बाद अनेक कारण पा के अलग अलग गौत्रो के नाम से पुकारे जाने लगे जो गोत्रो के इनकों नाम उपर लिखा है पोरवाडो में भी दशा वीसो का मुख्य दोय भेद है इस ज्ञातिमे अनेक नामी गामी पुरुष हुवे हैं जिन्हो का जितना इतिहास हम को मिला है और फिर मिलेगा वह सब आगे के प्रकरणों में दीया जावेगा यहां पर तो केवल ज्ञाति का परिचय कराया है इस ज्ञाति के अग्रेसरों को चाहिये कि वह अपनि ज्ञाति के इतिहास का संग्रह कर स्वयंमुद्रित करावे व हमारे

पास भेजे ताके इस मुक्ताफल कि माला के साथ उसे भी सामिल कर दीये जाय किमधिकम्—

परिशिष्ट नम्बर ३ (श्रीमाल ज्ञाति)

श्रीमाल ज्ञाति—श्रीमाल ज्ञाति का उत्पत्ति स्थान श्रीमाल नगर है और इस ज्ञाति के प्रतिबोधक आचार्य स्वयंप्रभसूरि जो भगवान् पार्श्वनाथ के पांचवे पाट्ट पर हुवे है इस ज्ञातिके ऐतिहासिक प्रमाणों के विषय में हम पहले ही लिख चुके है कि इस ज्ञाति का शृंखलाबद्ध इतिहास जैसा चाहिये वैसा नहीं मिलता है इतने पर भी हम सर्वथा हताश भी नहीं होते हैं। कारण सोधखोज करने पर एसे बहुत से प्रमाण मिल भी सक्ते है कि हमारी पट्टावलियों के प्रमाणों को स्थिर कर रहे हैं जिससे कतीपय प्रमाण यहां दे देना समुचित होगा।

(१) विमल प्रबन्ध और विमल चारित्र.

श्रीकार स्थापना पूर्व । श्रीमाल द्वापरान्तरैः ।
श्री-श्रीमाल इति ज्ञाति । स्थापना विहिताश्रियाः ॥

\+ \+ \+ \+

भेट तणि लषमि वावरी । श्री प्रासाद सुरंगउ करी ।
थापि मूरति महुर्त जोई । लषमि लखणवंति होई ॥
द्वापर माइ जे हुइ थापना । सहुना भय टल्या पापना ।
श्रीगौत्रजा श्रीमाली तणि । करइ चिंता प्रासाद भणि ॥

इन लेखों से श्रीमाल नगर की इतनी प्राचीनता सिद्ध होती है कि वह द्वापर के अन्त में बसा है और इसी नगर के नाम से 'श्रीमाल' ज्ञाति की उत्पत्ति हुई और श्रीमाल ज्ञाति की गौत्रज लक्ष्मीदेवी है।

(२) विमल चारित्र में एसा भी उल्लेख मिलता है कि उपकेशपुर कि स्थापना समय श्रीमाल नगर के बहुत से लोग आ कर उपकेशपुर में वास किया वह लोग बडे ही धनाढ्य--प्रतिष्ठित और बडे बडे व्यापारी थे इस लिये ही उपकेशपुर शीघ्रता से व्यापार का एक केन्द्र स्थान बन गया + + +

याचकों की आजीविका उन के यजमानो पर ही निर्भर है अतएव जहाँ यजमान आवे वह याचकों को भी जाना पडता है इस नियमानुस्वार श्रीमाल नगर के लोग आ कर उपकेशपुर में वास किया तब उन के याचक (ब्राह्मण) भी उन के पिच्छे पिच्छे उपकेशपुर में आ वसे। उन यजमानों पर ब्राह्मणों का कर इतना जौरदार था कि "पंच शतीश षोडशाधिकं" अर्थात् ५१६ टको का लाग दापा रूप देना था. इस जुलमी कर से जनता उस जमानामें बहुत दुःखी थी पर उन लोभानंदी ब्राह्मणों के जुलम से उस जमानामें छूटना कोइ सहज बात नहीं थी परन्तु हरेक कार्य्य की स्थिति भी हुवा करती है एक समय का जिक्र है कि जैन मंत्री ऊहड व्यापार निमित म्लेच्छ देशमें जा के आया था उस पर उन ब्राह्मणोंने यह ठेराव कर दीया कि ऊहड मंत्री म्लेच्छ देश में जा के आया है इस कारण इस के वहां क्रिया काण्ड कोइ भी ब्राह्मण न करावे कि जहां तक वह शुद्धि न करा लेवे

कारण शुद्धि में भी ब्राह्मणों के वडी भारी आमंद (पैदास) थी तब मंत्रीश्वर उन ब्राह्मणो से तंग हो अपने नगरवासी तमाम भाइयों को सुखी बनाने की नियत से अपनि द्रव्य सहायता से म्लेच्छ देश से एक बडी सैना बुलवा के उन प्रपंची ब्राह्मणों के पीच्छे लगाई तब वह ब्राह्मण तंग हो उपकेशपुर से भाग के श्रीमाल कि तरफ चले गये सैनाने भी उन का पीच्छा नहीं छोडा ब्राह्मण श्रीमाल नगर में घुस गये और म्लेच्छोने श्रीमाल नगर को घेर लिया. जब नगर के आग्रेसर लोगोंने म्लेच्छों को सैन्या लाने का कारण पुच्छा तब म्लेच्छोंने सब हाल के अन्तमें कहा कि यह ब्राह्मण लोग उपकेशपुर वासियों पर का कर छोड दे तो हम पीच्छे हट जावेंगे । इस पर वह नागरिक ब्राह्मणों से सम-जोता कर उपकेशपुर वासियों पर जो ब्राह्मणों का जुलमी टेक्ष था वह सदैव के लिये छोडा दीया । तब म्लेच्छ लोग अपनि सैना ले उपकेशपुर आ कर उहड मंत्री को सब हाल कह दीया और मंत्रे-श्वरने उपकेशपुर में उद्घोषणा करवा दी इस विषय में चारित्रकारने समराइच्च कथा का सार से अवतर्ण दीया है—

" तस्मात् उपकेश ज्ञातिनां गुरवों ब्राह्मणा नहि ।
उएस नगरं सर्व कररीण समृद्धि मत्ता ।
सर्वथा सर्व निर्मुक्त मुएस नगरं परम् ।
तत्प्रभृति संजातमिति लोको प्रवीणम् ॥ "

भारतीय अन्योन्य ज्ञातियों के गुरु ब्राह्मण है पर उपकेश ज्ञाति (ओसवाल ज्ञाति) के साथ ब्राह्मणों का कुच्छ भी संबन्ध नहीं है इस का खास कारण उपर लिखि कथा ही ठीक प्रतित होती है ।

इस लेख से यह सिद्ध होता है कि उपकेशपुर की स्थापना पूर्व श्रीमाल नगर बड़ी भारी जाहोजलाली पर था। उपकेशपुर का समय विक्रम पूर्व पांचवी शताब्दी के लगभग का है तो श्रीमालनगर इन से कितनाप्राचीन होना चाहिये वह पाठक स्वयं विचार करे।

(३) भीन्नमाल नगर के तलाव पर एक जैन मन्दिर का खंडहरो में प्राचीन शिलालेख मिला जिसकि अक्षारंस नकल "प्राचीन जैन लेख संग्रह दूसरा भाग लेकांक ४०२ में दी गइ जिसका आदि श्लोक यहाँ दे दीया जाता है—

ई० ॥ यः पुरात्र महास्थाने श्रीमाल स्वयमागताः ।
सदेव श्री महावीरो द्या (द्दा) सुख संपदं ॥ १ ॥ + + +

यह लेख वि. सं. १३३३ आश्विन शु० १४ का लिखा हुवा है इस समय के पूर्व हमारे आचार्यो की यह मान्यता थी कि भगवान् महावीर स्वयं श्रीमाल नगर में पधारे थे पर लेख के समय पूर्व कितना प्राचीनकाल से यह मान्यता चली आइ हो इस का निर्णय करने को इस समय हमारे पास कोइ साधन नहीं है पर यह अनुमान हो सक्ता है कि किसी प्राचीन ग्रन्थ व परम्परा से चली आई मान्यता को लेख के समय लिपीबद्ध कर ली होगा। खेर। तात्पर्य यह है कि अगर भगवान् महावीर के समय श्रीमालनगर अच्छी उन्नति पर हो तो हमारी पट्टावलियों के प्रमाणा से यह लेख भी सहमत्त हैं।

(४) महाजन वंस मुक्तावलि नामक पुस्तक में लिखा है कि भगवान् गौतमस्वामी श्रीमालनगर पधार के राजा श्रीमल्ल को

उपदेश द्वारा जैन बनाया, और उस की श्रीमाल ज्ञाति स्थापन करी इत्यादि इस्मे राजा व आचार्य के नाम हमारी पट्टावलियों से अतिरक्त है पर श्रीमाल नगर से श्रीमाल ज्ञाति कि उत्पत्ति का समय हमारी पट्टावलियों से मिलता भूलता ही है ।

(५) उपकेशगच्छ चारित्र, प्रभाविक चारित्र, प्रबन्धचिंतामणि, और तीर्थकल्पादि, प्राचीन व अर्वाचिन ग्रन्थों में श्रीमालनगर श्रीमालपुर श्रीमालक्षेत्र श्रीमालमहास्थानादि का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है इन ग्रन्थकारोंने श्रीमालनगर को इतना प्राचीन माना है कि जितना पट्टावलिकारोने माना हैं ।

(६) उपकेशगच्छ प्राचीन पट्टावलि में एसा भी उल्लेख मिलता है कि श्रीमालनगरके लोगों को राजा की तरफ से कई कठिनाइये उठानी पड़ती थी अन्त में वह लाचार हो श्रीमालनगर का त्याग कर चन्द्रावती नगरी बसाई व अन्य स्थानों का सरण लिया | शेष रहा हुए नगर की व्यवस्था भीमसेन राजाने कर नगर को आबाद किया वास्ते श्रीमाल का नाम भीन्नमाल हुवा वहां से भी बहुत से लोग उपकेशपुर में जा वसे तब भीन्नमाल की साधारण स्थिति रह गई थी इत्यादि इस हालत में हमारे ग्रन्थकारोने कहां पर प्राचीन नाम श्रीमाल कहां पर अर्वाचिन नाम भीन्नमाल का प्रयोग अपने ग्रन्थों में किये है यह प्रथा केवल इस नगर के लिये ही नहीं पर जाबलीपुर माडव्यपुर उपकेशपुर नागपुर शाकम्भरी आदि स्थानों के मूल नाम बदल के क्रमशः जालौर मंडौर ओशियों नागोर सांभर यह नाम प्रचलित होने के बाद भी कितनेक शिलालेख व ग्रंथकारोने मूल नामो का प्रयोग किया

और कितनेक लेखकोने प्रचलीत नामो का उल्लेख किया इसी माफीक श्रीमाल भीन्नमाल के विषय भी समझना चाहिये ।

(७) श्रीमालनगर के लिये श्रीमालपुरांण में बहुत विस्तार से उल्लेख मिलता हैं यद्यपि श्रीमालपुरांण इतना प्राचीन नहीं है कि जितना श्रीमालनगर है तथापि श्रीमालपुरांण की रचना के समय से पहिले श्रीमालनगर द्वापर के अन्त में वसने की मान्यता प्रचलित अवश्य थी वह कितने प्राचीन समय से थी इसका निर्णय साधन मिलने पर प्रकाशित किया जावेगा ।

(८) "श्रीमाल वाणियों के ज्ञातिभेद" नामका पुस्तक जो प्रो० मणिभाई बकोरभाई व्यास सुरतवालेने बनाई है प्रस्तुत पुस्तक में श्रीमालनगर व श्रीमालज्ञाति के विषय में लेखक महोदयने पुराणिक प्रमाण के साथ ऐतिहासिक प्रमाण द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि उपकेशपुर के पूर्व श्रीमालनगर अच्छी उन्नति पर था और श्रीमाल-नगर तूट के ही उपकेशपुर बसा है । जब उपकेशपुर का समय वि. सं. ४०० वर्ष पहिले का है तब श्रीमालनगर तो इस से प्राचीन होना स्वाभाविक ही है ।

इस विषय में हमारी सोधखोज फिर भी चालू हैं जैसे जैसे प्रमाण मिलते जावेंगे वैसे २ हम विद्वानों के सामने रखते जावेंगे सत्य को स्वीकार करना हमारा परम कर्त्तव्य है ।

श्रीमाल ज्ञाति के वीरोंने अपनि ज्ञाति की इतनीं गेहरीं उन्नति कर लि थी कि जिसके द्वारा ज्ञाति के बडे बडे नामी पुरुषों के नाम से, व व्यापारसे, व ग्रामके नामसे, और केइ धर्म्मकार्यों से,

अनेक साखा प्रतिसाख रूप जातियां प्रचलित हो गेई जैसे ओसवाल ज्ञाति में गौत्र व जातियों विस्तृत रूप है वैसे श्रीमाल ज्ञाति में भी गोत्र साखा अलग अलग है उनमें से कतिपय ज्ञातियों के नाम यहां दिये जाते है---

अंगरीप, आकोडुपड, उबरा, कुंचलीया, कटारीया, कहूधिया, काठ, कालेरा, कादइय, कुराडीक काल कुठारीया, कूकडा, कौडीया, कोकगढ, कंबोजीया, बगल, खारेड, खौर, खोचडीया, खौसडिया, गधउइधा, गलकरा, गप्पतागिया, गदइया, गीलाहला, गीदोंडीया, गुजरिया शुर्जर घूघरिया घेघरिया घोंघडिया चरड चंडि चुगाचडिया चंदेरिवाल, छकडिया, छालिया, झलकंट, जूंड, जूडिवाल, झांठ, झाम चूर, टांक, टांकलिय, टीगड, डहेराडागल, डुगरिया, ढोर, ढोढा, तवल ताडिया, तुरकिया, तुसर, दूसाज, धनालिया, धोयगा, धूपड, धाबिया तावी, नरट, दिक्षिणोद, नाचण, नांदरिचाल, निरहटिया, निरदम, निरहेरिया, परिमाल, पंचोसलिया, पडवाडा, पसेरण, पंचोभू, पंचासिया, पातागि, पापडगोता, पुरविया, फलोदीया, फाफू, फोफलिया, फूसपागा, बहापुरिया, बरडा, बादलिया, बंदूभी, बहाकटा, बवीसाज, बारीगोता, बहडा, बिमला, नायक, बिचड, बोहलिया, भईवाल, भांडिया, भालोदी, भूंवर, भंडारिया, भांडूका, भोया, महिमवाले, मोडरीया, मदूला, मेहतीयाणा, महकूला, मरहटी, मथूरिया, मसूरिया, मादलपुरी, मालवी, मारू, महटा, मांदोटीया, मुशल, मोघा, मुरारी, मुदडोया, राडीका, रांकीवाण, रहालीया, लोहारा, लडारू, सगरीव, लडवाला, साकीया, संबडनी सिंघुरा, सुधारा, साचटीया, सोहु, हाडीगण, हेडाउ, हिडोचा, बोहरा,

सांगरिया फलोहट इत्यादि ज्ञातियां ही श्रीमालों की आबादी व उन्नति बता रही है सामान्यता से इस ज्ञाति के दो भेद हैं (१) वीसाश्रीमाल (वृद्ध सज्जनिया) (२) दशाश्रीमाल (लघु सज्जनिया) इस ज्ञाति का रीत रिवाज खान पान शौर्य्यता वीरता उदारता ओसवालों की माफिक जगत् विख्यात है इस ज्ञाति के नररत्नोंने देशसेवा समाजसेवा धर्म्मसेवा आदि आदि पवित्र कार्य्य कर अपनी उज्ज्वल कीर्ति को अमर बनादी है उन अग्रेसर वीरों के कतीपय नाम—

जैसे सांडाशा, टाकाशा, गोपाशा, वागाशा, डुंगरशी, भीमशी, पुनशी, पेमाशा, भादाशा, नरसिंह, मेणपाल, राजपाल, उद्धाशा, भोजराज, नैणसी, खेतसी, धर्मसी, मीठाशा, टीलो वाणियो, सतीदास, झालाशा, हरखाशा, टोडरमल, भोलाशा, देपालशा, ताराचंद, रत्नसी, नरपाल, जगडूशा, पाल्हणसी, उदायन, आम्र, अरेपाल, भैरूशा, रामाशा भारमल, जगजीवन इत्यादि सैकड़ो हजारों प्रसिद्ध पुरुष हुवे हैं हमारी सोधखोज के अन्दर हम को जितना इतिहास मिला है वह हम आगे के प्रकरण में दे देगें और हम हमारे श्रीमाल ज्ञाति के अग्रेसर भाइयों से निवेदन करते है कि आप अपनि ज्ञाति के वीर पुरुषों का जीतना इतिहास मिले वह हमारे पास भेजने का प्रबन्ध करे कि उसे आगे के प्रकरणों में दे दिया जावे।

आचार्य्य स्वयंप्रभसूरि के बाद विक्रम की आठवी शताब्दी में हुवे आचार्य उदयप्रभसूरिने भी कितनेक लोगों को प्रतिबोध दे पूर्व श्रीमाल ज्ञाति में वृद्धि की थी। उदयप्रभसूरि के पहिले श्रीमाली

ज्ञाति वडी भारी उन्नति पर थी इस विषय में बहुत से प्रमाण उपलब्ध है। पाट्टण (अणहिलवाडा) की स्थापना के समय सेकडो श्रीमाल लोगों को चन्द्रावती व भीन्नमाल से आमन्त्रण पूर्वक बुलवा के पाट्टण में वसाये थे उन कि सन्तान आजपर्यन्त पाट्टण में निवास कर रही है विशेष श्रीमाल ज्ञाति का हाल आगे के प्रकरणों में लिखा जावेगा—

भविष्यके लिये शुभ सूचना.

जैन जातियों का इतिहास लिखने के इरादासे इस किताब का नाम " **जैन जाति महोदय** " रखा गया है। जैन जातियोंका प्रादुर्भाव होनेके पूर्व भगवान् महावीरके मोजुदा शासनमें चारो वर्ण विशाल संख्या अर्थात् ४० क्रोड जनता श्रद्धा पूर्वक जैन धर्म्मपालन कर रहीथी पर वह वर्णरुपी जंजिर में जकडी हुइ थी. उस जंजिरको आचार्य स्वयंप्रभसूरि व रत्नप्रभसूरिने एकदम तोड के मरूस्थल प्रान्तमें "महाजनसंघ" की स्थापनाकी उनकी शाखारूप (१) श्रीमाल (२) पोरवाड (३) ओसवाल ज्ञातियों है इन ज्ञातियोंका उत्पत्ति स्थान व समय और प्रतिबोधिक आचार्योंका इतिहास के साथ परिशिष्ट नं. १-२-३ मे प्रस्तुतः तीनों ज्ञातियों का किंचित् परिचय करवा दीया है किन्तु केइ कारणो कों लेकर इस पुस्तकको एकही साथमें सम्पूर्ण प्रकाशित नहीं करा सका. ईसपर हमारे पाठक वर्ग यह नहीं समझ ले कि इन ज्ञाति-

योंकी स्थापना करके ही जैनाचार्योंने अपना कार्य समाप्त कर दीया ? पर इसके लिये आगे के प्रकरणों को पढनेसे आपको भली भाती रोशन हो जायगा कि जैनाचार्यों ने " महाजनसंघ " की स्थापना समय से लेकर विक्रमकी सोलहवी शताब्दी तक अपना कार्य अर्थात् जैनेत्तर लोगोंको जैन बनाते ही रहे थे इतनाहीं नही बल्के इस कार्य को बडी तेजी के साथ चलाया था।

प्रस्तुतः खण्ड में भगवान् ऋषभदेवसे वीरात् ८४ वर्षों का इतिहास आप पढ चुके है आगे क्रमशः जिस जिस समयका इतिहास लिखा जावेगा उस उस समय के जैनाचार्योंने उत्तरोत्तर बनाइ हुई जैन जातियों व जैन जातियोंके दानीमानी " नररत्ना " वीर पुरुषोंकी करी हुई देश सेवा समाज सेवा और धर्म्मसेवादि प्रभावशाली आदर्श कार्यो के चित्रखांचके उन उन समयके इतिहासमे बतलाया जावेगा साथमें यह भी बतला दीया जावेगा कि किस विशाल भावनासे जैन जातियोंका " **महोदय** " हुवा अर्थात् उन्नतिके उच्च सिक्खरपर पहुँचीथी और किस किस संकुचित बिचारोंका जेहरीला विष फेलनेसे पतनका आरंभ हुवा क्रमशः वह जातियों अवनतिकी गेहरी खाड में कैसे जा गिरी. आज जो जैन जातियो का आस्तित्व और गौरव नाम मात्रका रह गया इतना ही नहीं पर एक समय जिन जातियों के गौरवका साम्राज्य सम्पूर्ण देशमे फेला हुवा था उन जातियोंपर आज असत्याक्षेपोंकी कैसी भरमार हो रही है ? उन अक्षेपोका निराकरण करना, व जिस कारणसे अधःपतन रूके और किस किस उपायें से

पुनः उन्नति कर सके ? वह उपाय असाध्य है वा साध्य है इत्यादि विषयोंका विस्तृत वर्णन आपको आगेके प्रकरणोंसे ठीक रोशन होगा.

वि. सं. १९८२ में मेरा चातुर्मास मेडतेरोड फलोदी था उस समय प्रस्तुतः पुस्तक लिखने के ईरादासे ५००० इतिहास द्वारा जैन जातिकी सेवामें यह निवेदन कीया गया था कि आपके पूर्वजोंके किये हुवे पवित्र कार्य जैसे देशसेवा समाजसेवा धर्म्मसेवादि आदर्श कार्योंका इतिहास जीतना आपके पास हो व आपके कुलगुरोके पास मिले उसको संग्रह कर आपकि ज्ञातिका गोरव—महत्वकि वृद्धि के लिये इस पुस्तकमें छपानेके लिये हमारे पास भेजवा दे कि उसे मुद्रित करवा दीया जाय ? पर अत्यान्त दुःखके साथ लिखना पडता है कि सिवाय १०–१२ सज्जनों के किसी प्रकारकी सामग्री नहीं मिली इसकों बेदरकारी कहो चाहे प्रमाद कहो. " अलवत, नवयुवकों की ओरसे उत्तेजन, व शीघ्रता की अभिलाषा अवश्य मिली है. "

हे प्रभु ! हमारी जैन जातिकी कुम्भकरणि निंद्रा कब दूर होगा । हमारी जैन जातिका इतिहास साहित्य के साधन ईतनी तो विशाल संख्यामे है कि उनकी बराबरी करनेवाला इतिहास किसी ज्ञातियोंके पास न होगा ? पर दुःख इस बातका है कि वह पडा भण्डारों में ही सड रहा है तथापि इतना तो हम दावा के साथ कह सक्ते है कि जैन जातियोमे स्यात ही कोई ज्ञाति व उनकी साखप्रतिसाख रूप उपँ जातियों होगा कि जिन्होंके पूर्वजोंने थोडा बहुत ही महत्ववाले आदर्श कार्य नहीं किये हों ? कारण आज स्वल्प सी सोधखोज करने पर जैन जातिका इतिहास लिखते समय इतने साधन मिले है कि उनको

शृंखलाबद्ध लिखा जावे तो एक बृहत् ग्रन्थ बन जावे जिसके अन्दर के थोडा से पुरांणो कवित छन्द और गीत इस प्रथम खण्ड मे नमूना के तौर पर दीये गये है वह केवल जैन जातिका गौरव ही नहीं पर घोर निंद्रामे सुती हुइ जैन जातिको ठीक—जागृत कर रहें है उठो वीरो ! ! आपकी जातिका ईतिहासके लिये आज जनता प्रतिक्षा कर रही है अर्थात् आप अपनि जातिका ईतिहास जनताके सामने रखनेको पैरोंपर खडे हो जाइये।

जातिके नवयुवक वीरो ! आज प्रत्येक जातिय नवयुवको के हृदयमे जाति गोरवनाकी वीजली भभक उठी है और वह अपनि अपनि ज्ञातिका इतिहास प्रकाशित करनेमे अपनां महत्व समजते है। तब क्या आप लोग केवल फेशनकी फितुरी अर्थात् मोजशोखमें ही मशगुल बने रहोंगें ?

आज हम जैन जातियो के पास क्या देखते है ?

जैन जातियोंके संस्कार सदैव के लिये सुन्दर है
जैन जातियोंकी उदारता अलौकीक है
जैन ज्ञातिका सद्ज्ञान सबसे उत्तम है
जैन जातिके पास लक्ष्मीकी विशालता है
जैन जातिकी परोपकारता प्रशंसनीय है
जैन जातियों का इतिहास बडाही महत्ववाला है

जैन जातियों को उपदेशदाताकीभी न्यूनता नहीं है

जैन जातिमें लिखे पढ़े नवयुवकों की भी विशालता है

फिर समझमे नही आता है कि जैन जाति अपना इतिहास लिखने मे या उन्नति क्षेत्रमें आगे पैर बढ़ानेसे पिच्छी क्यों हट रही है ?

मध्यान्ह के सूर्य्य का प्रकाश सब जगहा पर पडता है आशा है कि हमारे जैन नवयुवकों परभी इतिहासका प्रकाश अवश्य पडेगा और आगे के प्रकरण लिखनेमे हमे नवयुवकोंकि तरफसे विशेष सहायता मिलेगा ? बस ! ईस आशापरही इस चोथा प्रकरण को समाप्त कर देते है.

इति जैन जाति महोदय चोथा प्रकरण समाप्तम् ।

इति जैन जाति महोदय प्रथम खण्ड समाप्तम्

जैन जातिमहोदय।

[पञ्चम् प्रकरण]

श्रीयक्षदेवसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः

श्रीजैनजाति-महोदय.

[प्रकरण ५ पांचवां.]

(७) भगवान पार्श्वनाथ प्रभुके सातमें पट्ट पर आचार्य श्री यक्षदेवसूरि बडे ही प्रभावशाली हुए जिनका संक्षिप्त परिचय पाठकवर्ग तीसरे प्रकरणमें पढ चूके हैं कि आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरिजी के पास श्रीवीरधवल नामक एक उपाध्यायजी थे। उन्होंने राजगृह नगर के मिथ्यात्वी यक्षको प्रतिबोध देकर उस नगर के महान् संकटको दूर कर शान्ति का साम्राज्य स्थापन किया था। इतना ही नहीं परन्तु राजगृह नगर तथा आसपासके प्रदेशो में परिभ्रमण करके हजारों नहीं बल्कि लाखों भव्य जीवों को प्रतिबोध दे जैनधर्मी बनाये, इस शासन सेवा और परोपकार परायणता पर मुग्ध हो आचार्यश्री रत्नप्रभसूरीश्वरजीने अपने करकमलोंसे वासक्षेपके विधि विधानपूर्वक आपको योग्य समझके आचार्यपद पर नियुक्त कर यक्षदेवसूरि नाम रखा था जो अभी तक यक्षप्रतिबोध की स्मृति करा रहा है।

आचार्य श्री यक्षदेवसूरि महान् प्रभाविक, श्रुतज्ञान के समुद्र, स्वमत–परमत के सर्व शास्त्रों के पारगामी, लब्धिसंपन्न, अनेक चमत्कारीक विद्याओंसे विभूषित, सूर्यसम तेजस्वी, चंद्रकी भांति शीतल, मेरु समान निष्प्रकम्प, समुद्रवत् गंभीर, सिंह सदृश गर्जना मात्रसे वादिरूप हस्तियों के मदको चकचूर करनेमें चतुर, मिथ्यात्त्व, कुमति, व कुरुढीयों का उन्मूलन करनेमें कुशल और 'अहिंसा परमो धर्मः' का प्रचार करनेमें बडे ही प्रवीण थे इतना ही नहीं परन्तु आपके आज्ञावर्ति हजारों साधु–साध्वीयां सह इस भूमण्डल पर विहार कर चारों और जैन धर्मका झंडा फरकानेमें बडे ही समर्थ थे।

आपश्रीके पूर्वजोंने जो वाममार्गियोंके दुराचार रूपी किल्ले को निर्मूल कर सदाचार का साम्राज्य स्थापन किया था अर्थात् महाजन वंशकी स्थापना की थी उनका पोषण व वृद्धि करनेमें आप श्रीमान् बडे ही प्रयत्नशील थे; कारण जिन महापुरुषों के असीम परिश्रम द्वारा जिस संस्था का जन्म हुआ हो उनका रक्षण पोषण और वृद्धि करना उनके लिये एक स्वाभाविक बात थी। अर्थात् जैन धर्मका प्रचार करनेकी आग उन महापुरुषोंके हृदयमें ही नहीं पर नस २ और रोम २ में ठांस २ के भरी हुई थी।

आचार्य श्री कनकप्रभसूरि कई वरसोंसे उपकेशपुरकी तरफ विहार कर जनताके उपर उपकार कर रहे थे तब आचार्य श्री यक्षदेवसूरि कोरंटपुर, भीनमाल, चंद्रावती और पद्मावती वगैरह अर्बुदाचलके आसपासके प्रदेशमें विचरते हुए हजारों भवि-

जनों को प्रतिबोध दे पूर्वोक्त संस्था (महाजन संघ) में खूब वृद्धि कर रहे थे। अर्थात् वह समय ही ऐसा था कि उस जमानेमें जैनाचार्योंके हृदयमें धर्मप्रचार करनेकी वीजली चमक उठी थी। धर्मप्रचार करनेमें एक दूसरेसे आगे कदम बढानेमें अपना बडा भारी गौरव और आत्मोन्नति समझते थे।

आचार्य महाराजश्री कनकप्रभसूरिके कोरंटपुरकी तरफ पधारनेका हर्षोत्पादक समाचार सुन कोरंटपुर व उनके आसपासके प्रदेशमें आनंदमंगल छा गया और आगमनके समय श्रीसंघने बडा भारी प्रवेश महोत्सव कीया। आचार्यश्री पधारनेसे समाजमें धर्म जागृति और उत्साह विशेषतया द्रष्टिगोचर होने लगा। सूरिजी महाराजके प्रभावशाली व्याख्यानादि प्रयत्नसे जैनशासनकी दिन-प्रतिदिन उन्नति होने लगी। आचार्यश्री यक्षदेवसूरिने कोरंटपुरका हाल श्रवण कर अपने पूज्य पुरुषोंके दर्शनार्थ कोरंटपुर पधारे कि जहां आचार्यश्री कनकप्रभसूरि विराजते थे। उनके मुनिगण श्रीसंघ के साथ बहुत दूर तक आचार्यश्री को लेनेके लिये सामने गये और बड़े ही समारोहके साथ श्रीसंघने आचार्यश्री का प्रवेश महोत्सव कीया। आपके शुभागमनसे नगरमें चारों ओर आनंद छा गया। एक पाट पर बैठे हुए दोनों आचार्य सूर्य और चंद्रकी अपूर्व शोभाको धारण करने लगे। इस तरह दोनों आचार्यो का परस्पर सम्मेलन होनेसे श्रीसंघमें धर्मस्नेह का समुद्र ही उलट पड़ा हो ऐसा नजर आता था। परस्पर ज्ञानध्यान व कुशलक्षेमका समाचार पूछने के बाद अपने विहार दरम्यान धर्मोन्नति, ज्ञानप्रचार और

मिथ्यारूढीयों का निकन्दन कर नये बनाये हुए जैनोंकी संख्यामें वृद्धि आदि कार्यों की भेट होने लगी। अर्थात् एक–दूसरे के कार्यका अनुमोदन कर परस्पर उत्साह में वृद्धि करने लगे। धर्मस्नेह और धर्मोन्नति विषयक वार्तालाप श्रवण कर प्रत्येक मुनि के हृदयमें जैन धर्म प्रचार करने की इस कदर बिजली चमक उठती थी कि अपना सारा जीवन ही जैन धर्म प्रचारमें लगा देना यही वास्तवमें जीवनकी सफलता समझने लगे। बात भी ठीक है कि इसी भावनाने सारे विश्वमें अहिंसा धर्मका प्रचार किया, इसी भावनाने वर्ण या जातिकी जंजीरे तोडकर उच्च-नीचका भेद मिटाया, इसी भावनामें जनताकी इतस्ततः बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र कर 'महाजन संघ' की स्थापना की, इसी भावनानें जनतामें प्रेम–ऐक्यका बीजारोपण कर अंकुर प्रगटाया, इसी भावनाने भूमण्डलपर जैन धर्मका अद्वितीय झंडा फरकाया, इसी भावनानें जैनधर्मानुयायीयोंकी संख्या लाखोंकी तादादमें थी उनको करोड़ों की संख्या तक पहुंचा दिया. वही भावना आज हमारे श्रमण संघके हृदयमें विशेष रुप धारण कर प्रेरणा कर रही है। इत्यादि उस समयके परोपकार परायण जैनाचार्यों के उच्च आदर्शविचार लिखना हमारी लेखिनीके बहार है इतना ही नही परन्तु बुद्धि के अगम्य है ऐसा साफ २ कह देना अनुचित न होगा। हम दावेके साथ कह सक्ते हैं कि जबतक जैनाचार्यों के हृदय में ऐसी भावना पैदा न हो तबतक जैनधर्मका प्रचार और उन्नति होना बहुत मुश्किल है। जिन महानुभावोंने अनेकानेक कठीनाईयों

का सामना करते हुए उन दुराचारीयों के साम्राज्य में एक ' महाजन संघ ' संस्था की स्थापना कर स्वल्प कालमें उनको उन्नतावस्थापर पहुंचा दीया यह कोई साधारण बात नहीं है परन्तु धर्म-प्रचार के लिये प्यारे प्राणों को भी कुरबान करने को तैयार हो उनके लिये ऐसा कौनसा कार्य है जो उनसे न बन सके ! अर्थात् आत्मबल के सामने असाध्यकार्य भी साध्यरूप में परिणत हो जाता है । अस्तु—

यह तो आप पहिले ही पढ़ चूके हैं कि कोरंटपुर में दोनों आचार्यों के विराजनेसे जैनधर्म की चारों ओर दिनप्रतिदिन उन्नति बढती ही जा रहीथी । और आसपास के देश विदेशसे हजारों दर्शनार्थी सूरिजी महाराज की सेवा—भक्ति के लीये आ रहेथे । और अपने २ नगर की तरफ पधारने की विनंति भी कर रहे थे । उस समय उपकेशपुर के अग्रेसर लोगोंका भी आगमन हुआ था । वंदन—भक्तिके पश्चात् वृद्धाचार्यजीसे अर्ज करी कि हे करुणासिन्धो ! जैसे आप श्रीमान् अपने चरणकमलों से मरुभूमि को पवित्र करते हुए पधारे हैं और आपश्री को वहांका पूर्ण अनुभव भी है कि उस प्रान्तमें विद्वान् आचार्यों की कितनी आवश्यक्ता है, वास्ते आचार्य श्री यक्षदेवसूरि को मरूभूमि में विहार की आज्ञा फरमावें । वहांकी जनता आपश्री के पवित्र दर्शन की पूर्ण प्रतीक्षा कर रही है इत्यादि । इस पर आचार्यश्रीने विचार किया कि—बात ठीक है कि अव्वल तो यक्षदेवसूरिसे जनता परिचित है, और

यक्षदेव सूरिका उस जनताके उपर उपकार भी है अतः उसप्रान्त की भद्रिक जनता को दीर्घकाल पर्यंत उपदेशामृत के सिंचनसे वंचित रखना योग्य नहीं है . ऐसा विचार कर आचार्य श्री यक्षदेवसूरि को उपकेशपुर की ओर विहार कर जैनधर्मप्रचार करने की आज्ञा फरमा दी जिसको बडे हर्षके साथ यक्षदेवसूरिजीने शिरोधारण की।

आचार्य श्री कनकप्रभसूरि वयोवृद्ध होनेके कारण यक्षदेवसूरि और स्थानिक श्रीसंघने बहुत आग्रहपूर्वक विनंति करी कि हे भगवन् ! आपने इस भूमंडलपर विहार कर जनतापर बडा भारी उपकार किया है, साधु--साध्वीयों की संख्यामें भी आपने बहुत वृद्धि की है, इतनाही नहीं परन्तु भविजनों के कल्याण हेतु जिनमंदिरो में मूर्त्तियो प्रतिष्ठा, सद्ज्ञान प्रचारार्थ विद्यालयों की स्थापना आदि अनेक धार्मिक कार्य किये हैं। इस समय आपकी वृद्धावस्था है अतः कृपा कर आप यहीं पर ही अपना स्थायीवास निश्चित करें जिससे हमलोगों को भी सेवा का लाभ अनायाससे प्राप्त हो सके। और आप जैसे परम पुनित पुरुषों के दर्शन मात्रसे हमारा कल्यान होता रहेगा। इसपर आचार्यश्रीने फरमाया कि--आप लोगों की भक्ति भावनादि प्रशंसनीय है परन्तु हमको तो सिद्धाचल की यात्रा करना है कि जहांपर हमारे पूज्यगुरुवर्य्य श्रीरत्नप्रभसूरिने श्रीविमलाचल की आराधना करते हुए अपने इस नाशवान शरीरका त्याग किया और उसी पथ पर चलने की मेरी भावना है। फिर तो जैसी क्षेत्रस्पर्शना ! यह सुन श्री चतुर्विध

संघमें ग्लानि–उदासीनता छा गई और पुनः अर्ज करी कि ! हे भगवन् ! आप ऐसे वचन न फरमावें, कारण हम चाहते हैं कि आप श्रीमान् चिरकाल तक शासनोन्नति करते रहें।

दोनों आचार्य और श्रमणसंघ के पूर्ण परिश्रमद्वारा जैसे महाजनसंघ की संख्या में वृद्धि हो रही थी वैसे ही श्रमणसंघ–यति–साधु साध्वीयों में भी खूब वृद्धि हो रही थी। हजारों मुनि मतंगज इस भारतभूमि पर विहार कर मिथ्यात्व का नाश और सम्यक्त्व का उद्योत करते हुए चारों ओर जैनधर्म का झंडा फरका रहे थे। उस समय साध्वी समाज जनता को भारभूत या केवल संख्या में वृद्धि करने योग्य न था परन्तु उस विदुषी साध्वीयोंने महिला समाज पर इतना उपकार किया था कि जिसकी बदोलत महिलासमाज का आदर्श जीवन आज इतिहास के पृष्ठोंपर सुवर्णाक्षरोंसे अंकित दृष्टिगोचर होता है।

आचार्य श्री यक्षदेवसूरि कोरंटपुरसे विहार कर उपकेशपुर की ओर पधार रहे थे यह शुभ समाचार सुनते ही उस प्रान्त में मानों एक किस्म का नवजीवन यानि चैतन्य चमक उठा; कारण कि इस प्रान्तपर आपका बडा भारी उपकार था, जनता आपसे पूर्ण परिचित थी और आपका चिरकालसे पधारना होनेसे मोक्षाभिलाषी भवि जीवों का आपके प्रति विशेष अनुराग हो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? दिन–प्रतिदिन आपके विहार की खबरें आ रही थी, जब आप उपकेशपुर के नजदिक पधारे तब तो महाराजा उपलदेव, कुमार जयदेव, मंत्री ऊहड, तत्पुत्र तिलोकसिंह और नगर के

लोगोंने बडे ही उत्साहसे नगर को विविध वस्तुओंसे शृंगारकर सुंदर बनवाया. एवं महाराजा उपलदेवने हस्ती, अश्व, रथ और पैदल आदि चतुर्विध सैन्ययुक्त हो विविध वाद्यों के साथ बडे समारोहसे आचार्यश्री का नगरप्रवेशरुप महोत्सव किया । केवल राजाने ही नहीं परन्तु देवी सच्चायिकाने भी अपनी सहचरीयों को साथमे ले सूरिजी महाराज को वंदन—नमस्कारादि करके अच्छा स्वागत किया । आचार्यश्रीने संघके साथ श्री महावीर प्रभुकी यात्रा कर एक विशाल स्थानमें स्थिरता करी कि जहां सबलोग सूखपूर्वक बैठ सके । यह स्थान दूसरा कोई नहीं परन्तु वही लुणाद्रिगिरि था कि जहां आचार्यश्री रत्नप्रभसूरिने इन लोगो कों जैन बनाये थे सब लोग सूरिजी महाराज कों वन्दन नमस्कार कर अपने अपने उचित स्थानपर बेठ गये । तत्पश्चात् सुरीश्वरजी महाराजने मनोहर मंगलाचरण और मधुर ध्वनि के साथ अमृतमय देशना देना प्रारंभ किया । संसार की असारता, लक्ष्मी की चञ्चलता, शरीर की अनित्यता, कुटुम्ब की स्वार्थप्रीयता मनुष्य जन्मादि उत्तम सामग्री की दुर्लभ्यता और देवगुरु के निमित्त कारणसे सम्यक् ज्ञानदर्शन चारित्र कि प्राप्ति और आखिरमें अक्षय स्थान की महत्वता पर खुब विवेचन कर श्रोतागण के हृदय पट्टपर बडा भारी प्रभाव डाला । अन्तमें आचार्यश्रीने फरमाया सद्गृहस्थों ! एक समय यह था कि इस नगर को मैंने दुराचारीयों के केंद्रस्थान के रूपमें देखा था आज उसी नगर को सदाचारियों के स्वर्गतुल्य देख रहा हूँ यह परोपकार परायण स्वर्गस्थ आचार्यश्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी के

असीम परिश्रम का फल है । उपकारी पुरुषों के उपकारको सदैव स्मृतिपट पर याद रखना यह सबसे पहिला मनुष्यधर्म है कारण कि-कृतार्थपने को शास्त्रकारोंने मोक्षकी निसरणी बतलाई है । अगर कोई व्यक्ति प्रमादादि कारणों से अपनेपर किये हुए उपकारों को भूल जावे तो वह कृतघ्नी कहलाता है और कृतघ्नी के किये हुए दान, पुण्य, तप, संयमादि सुकृत कार्य सबके सब निष्फल बतलाये वास्ते मोक्षाभिलाषी पुरुषों को चाहिये कि अपने उपकारी महापुरुषों के उपकार को सदैव स्मरण में रखे इतना ही नहीं परन्तु उन के प्रति सदैव अंतःकरण पूर्वक भक्तिभाव बढाते रहें । इत्यादि, समय हो जाने से आपश्रीने यहाँपर ही अपना व्याख्यान समाप्त किया ।

सूरिजी महाराज के सुमधुर मनोहर लालित्यपूर्ण वाक्यों को श्रवण कर राजा-प्रजा एक ही आवाज से बोल उठे कि हे प्रभो ! आप श्रीमान का फरमाना अक्षरशः सत्य है स्वर्गस्थ आचार्यश्रीजी की असिम कृपा से ही हम दुराचार के जरीये नरक कूप में पडने से बच के आज पवित्र जैनधर्म का आराधन कर स्वर्ग-मोक्ष के अधिकारी बन रहे है । हे करुणासागर ! स्व० सूरिजी के साथ हम आपका भी उपकार कभी नहीं भूल सक्ते हैं । कारण कि हम को नरक के रस्ते पर से स्वर्ग की सडकपर लानेवाले दलाल तो आप ही है । हे प्रभो ! ऐसे उपकारी पुरुषों का बदला इस भवमें तो क्या परन्तु अन्य भवों में भी देने के लीये हम सर्वथा असमर्थ है । आप श्रीमानों का परमोपकार हमारे केवल हृदय में ही नहीं परन्तु प्रत्येक नसों मे और रोम २ में

भरा हुआ है। आपने केवल हमारे उपर ही नहीं परन्तु हमारी सन्तान परंपरा के उपर भी एक तरह का महान् उपकार किया है। हे प्रभो ! आप चिरकाल तक इस भारत भूमिपर विहार कर हमारे जैसे अज्ञान बाल जीवोंपर उपकार करते रहें। विशेष में यह चातुर्मास इस नगर में विराज हम को कृतार्थ करें। बस यही आप श्रीमान् के प्रति हमारी नम्र भावना है। और प्रभु प्रति प्रार्थना करते हैं कि आप जैसे सद्गुरु का भवोभव में लाभ हांसिल हो। तत्पश्चात् जयनाद के साथ सभा विसर्जन हुई। इस समय उपकेशपुर के कौने २ में और घर २ में आनंद की लहरें उठने लगी–सारा शहर हर्षोत्साह मे उमड उठा।

आचार्यश्री के विराजने से उपकेशपुर में बड़ा भारी उपकार हुआ जनता में धर्म जागृति और जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई अनेक जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा और बडी बडी विद्यालयों की स्थापना हुई जिस के जरिये संसार में सद्ज्ञान का प्रचार हुआ। उस समय आचार्यश्री का यह एक खास महा मंत्र ही था कि जहाँ जहाँ आप श्रीमान् पधारते थे वहाँ वहाँ नये जैन बनाना उनके सेवा-पूजा भक्ति के लिये जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा और ज्ञान प्रचार के लिये बडी बडी विद्यालयों की मजबूत नींवे डालनी इतना ही नहीं पर आपश्री के आज्ञावर्त्ति मुनिगण भी आप के सिद्धान्त का इस कदर अनुकरण करते थे जिस के फल स्वरूप में उपकेश पुर और उस के निकटवृत्ति ग्रामों में मिथ्यात्व, अज्ञान और अनेक कुरूढियां प्रायः नष्ट होगइ थी तथापि छोटे छोटे गांवडो में

अज्ञ जनता के भाद्रिक हृदय में चिरकाल से वे कुरूढियों घर कर बैठी हुई थी उनको भी निर्मूल करने को मुनिपुङ्गव कम्मर कस्स तय्यार हो गये इतना ही नहीं पर पूर्ण परिश्रम द्वारा आप श्रीमानोंने उस कार्य्य में सुन्दर सफलता भी प्राप्त की थी। बात भी ठीक है कि जिन महानुभावोंने परोपकार के लिये अपना जीवन ही अर्पण कर दिया है उन के लिये ऐसा कौनसा कार्य असाध्य है अर्थात् धर्म्म प्रचार के लिये अपने प्राण निच्छरावल करने को तय्यार है वे सब कुच्छ कार्य कर सक्ते हैं इस कहावत को हमारे मुनिवर्गने ठीक चरितार्थ कर बतलाया था।

एक समय का जिक्र है कि वयोवृद्ध महाराजा उपलदेवने श्रीसंघ के साथ मिल कर नम्रतापूर्वक सूरिजी को अरज करी कि हे प्रभो! श्रीसंघपर कृपा कर के यह चातुर्मास यहाँपर ही फरमावें। आपश्री के विराजने से बडा भारी उपकार हुआ और होगा। हे दयानिधि! आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरिजीने तो हमारेपर असीम उपकार किये हैं, अब हमारी वृद्धावस्था आगई है, मैं बिलकूल निवृत्तिपरायण होना चाहता हूं, अतः आप श्रीमान के विराजने से हमारी आशा पूरण होगी इत्यादि। इस विनंति को सूरिजी महाराज किस तरह नामंजूर कर सक्ते थे? आखीर उपलदेव राजा की विनंति स्वीकार कर वह चातुर्मास उपकेशपुर में ही किया। कईएक मुनिवर्गों को अन्यान्य क्षेत्रमें चातुर्मास करने की आज्ञा फरमा दी। तदनुसार वे मुनिजन भी यथायोग्य स्थानपर जाने को विहार कर गये। यहां महाराजा उपलदेव के कथनानुसार चातुर्मास में बडा

भारी उपकार हुआ खास कर के सद्ज्ञान का प्रचार प्रायः सारे प्रान्तो में फैल गया।

अन्त में चातुर्मास पूर्ण होने पर सूरिजी महाराज विहार की तैयारीयां करने लगे उस समय सञ्चायका देवी सूरिजीमहाराज को वंदन करने को आई, उसने सूरिजी के विहार की तैयारीयां देख पूछा कि भगवन् ! आप का विहार किस तरफ होगा ?

सूरिजीः-जिस क्षेत्र में लाभ होगा उस तरफ विहार होगा।

देवीः—अधिक लाभ तो सिन्ध प्रान्त में होगा ।

सूरिजीः—वहां ऐसा क्या लाभ है ?

देवीः—सिन्ध प्रान्त में पाखण्डियों का साम्राज्य बढ रहा है, हजारों लाखो प्राणीयों का बलीदान हो रहा है, व्यभिचार की भी न्यूनता नहीं है तथापि वहां की जनता भाद्रिक है, आप जैसे समर्थ आचार्य वहां पधारें तो बड़ा भारी लाभ होगा। आप के पूर्वजोंने अनेक कठिनाईयों को सहते हुवे भी इन क्षेत्रों को पवित्र बनाये हैं, आप जैसे विद्वानों को केवल इन्हीं प्रदेशों की जैन जनता का रक्षण करने में समय बिता देना मुनासिब नहीं है क्यों कि यहां तो अन्न साधारण मुनि भी रक्षण कर सकेंगे। अतः आप से मेरी अर्ज है कि आप सिन्ध प्रान्त की और बिहार करे, मुझे पूर्ण उमेद है कि आप के पूर्वजों की भांति आप भी इस कार्य में अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे।

सूरिजी महाराजने सचायिका देवी की विनति को सहर्ष

स्वीकार करली। बात भी ठीक है कि जिन के पूर्वजों से परोपकार वृत्ति चली आइ हो, जिन्होंने पहिले भी ऐसे कार्यो में अच्छी सफलता प्राप्त की हो, वह उन्नति क्षेत्र में अपने पैरों को आगे बढाते रहे इस में आश्चर्य ही क्या है ? बस, आचार्यश्रीने सिन्ध जैसे विकट प्रदेश में विहार करने का निश्चय कर अपने शिष्य समुदाय को बुला के कहा कि--प्यारे श्रमणगण ! आज तुमारी कसोटी का समय है, हमने सिन्ध भूमि में विहार करने का निश्चय किया है जहां अनेक प्रकार के उपसर्गों का सामना करना पडेगा, विकट तपश्चर्या करनी होगी, अनेक वादि-प्रतिवादीयों से शास्त्रार्थ करना होगा. जिस महानुभावों में पूर्वोक्त सर्व कार्यों की शक्ति हो वह हमारे साथ विहार करने को कमर कसके तैयार हो जावे।

सूरीजी महाराजके वचनों को सुनते ही मानों गिरिराजकी गुफाओंसे गर्जना करते हुए सिंह सन्तान मैदानमें आ खडे हुवे हो इसी भांति सेंकडो मुनिराज तैयार हो गये कि जैन धर्मके प्रचार के लीये हम हमारे प्यारे प्राणों का भी बलिदान देनेको तैयार हैं। आचार्यश्रीने उन मुनि पुङ्गवोंका ऐसा धर्माभिमान देख यह निश्चय किया कि मुझे इस कार्यमें अवश्य सफलता मिलेगी। इस इरादेसे उस श्रमण संघमेंसे-(साधु समुदायमेंसे) एक सौ मुनियों को साथ चलनेकी आज्ञा फरमा दी शेष मुनियोंके लिये उसी प्रान्त में परिभ्रमण कर उपदेश दे महाजनसंघमें वृद्धि करनेकी भी सुंदर व्यवस्था कर दी। तत्पश्चात् आचार्यश्रीने एकसौ विद्वान मुनिवरोंके साथ उपकेशपुरसे विहार कीया। राजा-प्रजादि बहुत दूर तक पहुंचाने को

गये जहां महाराजा उपलदेवने अर्ज की कि हे भगवन् ! यहांसे सिन्ध जानेका रास्ता बहुत ही विकट है अतः मेरी इच्छा है कि कुछ आदमी आपकी सेवार्थ आपके साथ भेजुं ! सूरिजीने कहा—महाराजा ! यद्यपि आपकी भावना उत्तम है परन्तु आप अच्छी तरह समझते होंगे कि—दूसरोंकी सहायता लेना मेरी समझमें एक कायरताकी निशानी है। अगर मंगलाचरणमें ही ऐसी कायरता के वश बन जाय तो आगे चलकर सफलता कैसे प्राप्त कर सकेंगे ? हे राजेन्द्र ! शेरोंके लिये सहायताकी आवश्यक्ता नहीं होती !

सूरिजी महाराजके वीरतापूर्ण वचन सून राजा-प्रजामें एक तरहका अलौकिक आनंद फैल गया। अन्तमें सूरिजीके विहारकी सफलता चाहते हुए नगरके लोग वंदन—नमस्कारादि कर नगरकी ओर वापस लौटे और इधर सूरिजी महाराज अपने विहारमें आगे बढने लगे.

सुरिजी महाराज सपरिवार आनंद पूर्वक क्रमशः विहार करते जा रहे थे। रास्तेमें जैन बसतीके अभाव अनेक प्रकारके उपसर्ग हो रहे थे उनको आप परोपकार के लिये सहर्ष सहन कर रहे थे। सन्मानके बदले पगपग अपमान और भक्तिके बदले कठीनाईयां का सामना करना पडता था। कभी कभी ठहरनेके लीये मकान, खानेको भोजन और पीनेको पानी भी नहीं मीलता था परन्तु जिन महानुभावोंने जैन धर्मके प्रचार निमित्त अपने प्यारे प्राणोंकी भी पर्वाह न रखी उनको क्यातो सुख और क्या दुःख ? सभी समयको एकसा ही मानते हैं। पंथीजन—मुसाफीरों का स्वभाव है कि वे चलते

समय रस्तेमें स्थित आम्रवृक्ष पर पत्थर फेंके जब आम्रवृक्ष भी अपने स्वभावानुसार अपनेपर पत्थर फेंकनेवाले को आम्रफल देता है। ठीक इसी माफिक सूरिजीके विहार दरमियान अज्ञानी जन अपने स्वभावनुसार अनेक तरहके कष्ट उपस्थित कर मुनिवरोंकी कसोटी करने लगे परन्तु सूरिजी महाराज बडे शान्त भावसे उन अज्ञानी जीवों को मधुर वचनसे धर्मबोध दे ऐसे शान्त करते थे कि उनको अपने कीये हुए दुष्कृत्यों पर पश्चात्ताप करना पडता था। सुवर्ण को जितना अधिक ताप दिया जाय उतना ही वह अधिक शुद्ध हो उसका मूल्य भी अधिक बढ जाता है। यही हाल हमारे विहारवासी मुनिपुङ्गवों का हो रहा था। इस विकट दशा को सहते हुए हमारे युथपति आचार्यश्रीने (सूरिजीने) सिन्ध प्रदेशमें पदार्पण कीया।

एक समयका जिक्र है कि मुनिमतंगो के साथ आचार्यश्री जंगलमें विहार करते जा रहेथे कि उसी समय कईएक घुडसवार बडे ही वेगके साथ पीछेसे आ रहा था। उनके हाथमें विद्युतकी भांति चमकता हुआ भाला और खन्धेपर रखा हुवा धनुष्यबाणसे उनकी क्रूर–रौद्र मूर्त्ति और निर्दयताके प्रचंड संतापसे भयभ्रांत बने हुए बिचारे मृगादिक वनचर प्राणी अपने प्राणकी रक्षा करनेकी गरजसे उन घुडसवारोंके आगे २ भाग रहे थे। उस क्रूर वृत्तिको देख आचार्यश्रीको उन निरपराधी मूक प्राणीयों पर वात्सल्पभाव प्रगट हुआ और अपने पाससे जाते हुए उन घुडसवारों को संबोधन कर शान्त भावमे बोले कि–महानुभावों! जरा ठहरो ठहरो!! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूं। तब मुख्य घुडसवारने अपना मुंह सू-

रिजीकी ओर मोडा, और आश्चर्यान्वित हो बोला कि-- आप क्या पूछना चाहते हो ? शीघ्र बोलो । आचार्यश्रीने कहा कि महानुभाव ! आप लोगोंकी मुखाकृतिसे यह सहज ही स्पष्ट होता है कि आप लोग अच्छे खानदान और कुलिन पुरुष मालुम पडते हो परन्तु यह समझमें नहीं आता कि आप लोगोंने निरापराध उन मूक वनचर पशुओंका पीछा क्यों पकड़ा है ? देखिये, आप लोगोंके हाथमें धनुष्य बाणादि शस्त्रों को देख बिचारे ये मुक प्राणि अपने प्राणकी रक्षाके लिये किस कदर भाग रहें है ! क्या इन निर्दोष जीवोंपर आपको वात्सल्यभाव प्रगट न होगा ?

सूरिजी महाराज का प्रभावशाली तपतेज, भव्यमुद्रा और वचन माधुर्यताने उन सवारोंपर ऐसा असर डाला कि वे मंत्रमुग्धकी तरह उनके सामने देखने लगे. और कुतुहलवश हो निम्नप्रकार सवाल पूछने लगे ।

घुडसवारः—आप कौन है ?

सूरिजीः—हम अहिंसाधर्मोपासक जैन साधु हैं ।

घुडसवारः—इस तरफ आप कहां पधार रहे हैं ?

सूरिजीः—हमारा कोई स्थान निश्चित नहीं है अतः इस दुनियामें परिभ्रमण करते फिरते हैं ।

घुडसवारः—आपका पेशा-धंधा क्या है ?

सूरिजीः—हमारा पेशा-धर्मोपदेश करनेका है ।

घुडसवारः—आपका धर्म कौनसा है ?

सूरिजीः—हमारा धर्म विश्वव्यापी-जैन धर्म है ।

शिष्य मंडली के साथ जंगल में विहार करते हुए श्री यक्षदेवसूरिजीने महाराजा कुमार कक्कवको शिकारार्थ अबोल हरिणोंकी पीछे पडा देख पुकाराकि "राजन् ! महानुभाव ! निरपराध जीवोंकी घातसे नर्काधिकारी क्यों बन रहोंहै ?

घुडसवारः—आपके धर्मका मुख्य सिद्धान्त क्या है ?

मूरिजीः—' अहिंसा परमो धर्मः '

घुडसवारः—आप अपने धर्मका उपदेश किसको सुनाते है ?

सूरिजीः—हमारे धर्ममें किसी प्रकारकी वाड़ाबन्धी नहीं है अतः जो कोइ भी व्यक्ति धर्म सुनना चाहे उनको हम बड़ी खुशीसे धर्म सुनाते है—और धर्मका रहस्य भी ठीक तौरपर समझाते है ।

घुडसवारः—क्या हम भी आपका धर्म सुन सक्ते है ?

मूरिजीः—बडी खुशीके साथ सुन सक्ते हो।

घुडसवारः—आप किस स्थानपर बैठके धर्म सुनावेंगें ?

सूरिजीः—अगर आप लोगोंको किसी प्रकारकी बाधा न हो तो हम यहां खडे २ ही धर्मबोध कर सक्ते है ।

घुडसवारः—फिर तो आपकी बडी भारी कृपा है ! अच्छा, हम लोग आपके सन्मुख खडे है कृपा कर हम को कुछ धर्मबोध दे कृतार्थ बनावें* ।

आचार्यश्रीकी उस घुडसवारके वार्त्तालापसे उसकी धर्मजिज्ञा-

*यद्यपि घुडसवारोंनें तो कुतूहल वशात् यह सब वार्त्तालाप किया था परन्तु ऐसे कुतूहलोंमें भी कभी २ धर्मकी प्राप्ति हो जाती है और आखीरको उस धर्म द्वारा नितान्त पापी जीव भी संसार पार हो जाते हैं। यह बात इस दृष्टान्तसे ठीक सिद्ध हो सक्ती है ।

साका अच्छा परिचय प्राप्त हुआ। साथ २ यह भी अनुमान कर लिया कि अपने साथ जो शख्श वार्तालाप कर रहा है वह कोई सामान्य मनुष्य नहीं है परन्तु कोई राजा–महाराजा होना मालूम होता है और उसकी धर्म जिज्ञासा लघुकर्मीपनेकी साक्षी दे रही है। क्यों कि जो मनुष्य हरदम दुराचारमें प्रवृत्त रहता है वह यदि एकाएक दुराचारसे मुंह मोड धर्मसुननेकी अभिलाषा व्यक्त करे तो समजना चाहिये कि उस दिनसे उसके हृदयने पलटा खाया है। अतः ऐसे मनुष्यों को धर्म सुनाना भविष्यमें बहुत फलदायक होगा। इस प्रकार विचार कर आचार्यश्रीने उन भाग्यशालीयोंको उपदेश देना शरु किया।

हे महानुभावो ! इस नाशवान संसारमें धर्म ही एक ऐसा कल्पवृक्ष है कि जिनकी सेवासे जीव इस भवमें और परभवमें राज्यपाट, धन-संपत्ति, सुखसौभाग्य, यशकीर्ति, मानप्रतिष्ठा और सर्व कार्योमें विजयसिद्धि प्राप्त कर सक्ता है। केवल इतना ही नहीं परन्तु स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति भी धर्म से ही होती है। जिन क्षुद्र प्राणीयोंने पूर्व भव में धर्म नहीं कीया हो और पापकर्ममें ही सदा अनुरक्त रह कर समय खो दीया हो उनकों इस भव में हीन, दीन, दुःखी, दुर्भागी, रोग, शोक, और पराधिनतादि अनेकशः दुखों का अनुभव करना पडता है और भवान्तर में उसे नरकगति के घोरातिघोर–दारूण दुःखों को सहन करना पडता है। इन पाप–पुन्यों का फल आज अपनी द्रष्टि के सन्मुख मौजुद है। इस हेतु रत्नचिंता-मणी–कल्पवृक्ष समान मिले हुए इस मनुष्य भव को सफल करना यही मनुष्य की बुद्धिमत्ता है अर्थात् प्रथम कर्त्तव्य है। यह

उपदेश सुन उस घुडसवारके हृदय में धर्म जागृति उत्पन्न हुई–जिज्ञासा वृत्तिने कुछ पूछने को चाहा ।

घुडसवारः—महात्माजी ! वह धर्म कौनसा है कि जिसके करने से सुख प्राप्ति हो !

सूरिजीः—भद्र ! वह धर्म ' अहिंसा परमोधर्मः ' है कि जिसका पालन करने से एक भव में तो क्या परन्तु भवोभव में जीव सुख, संपत्ति और सौभाग्यादि प्राप्त कर आनंद का भोक्ता बनता है ।

घुडसवारः—महात्माजी ! हिंसा और अहिंसा किसको कहते है ? कृपया स्पष्टतापूर्वक समझाइये ।

सूरिजीः—क्यों नहीं ? सुनो, " अन्यस्य दुखोत्पादनं हिंसा " यानि किसी भी जीव को दुःख उत्पन्न करना या मारना उनको हिंसा कहते है । कोइ भी प्राणी ऐसी हिंसा में प्रवृत्ति करता है तो उनको पाप लगता है । पाप का फल है कि वह नरकादि गति में जाकर अनंत दुःखों को सहे । इससे विपरीत अहिंसा का लक्षण है । यानि किसी भी जीव को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुंचाना और जहां तक बने उनका रक्षण करना उनको अहिंसा कहते हैं । अहिंसा धर्म को यथार्थ पालनेवाला प्राणी पुण्य के फल स्वरूप स्वर्ग सुखों के भोक्ता बनता है यावत् मोक्ष भी प्राप्त कर सक्ता है ।

घुडसवारः—महात्माजी ! हम लोग तो हमेशां शिकार कर अनेक वनचर प्राणीयों को मारते हैं और उनका मांस भी भक्षण करते हैं तो क्या हमको भी पाप के फलरूप नरकादि में जा कर उनका बदला चूकाना पडेगा ?

सूरिजीः—बेशक; प्राणियों की घात करनेवालों को अपने पाप का बदला तो अवश्य देना ही पडता है । भला, मैं आप से एक बात पूछता हूं कि आप निर्दोष बन किसी एक स्थान पर बैठे हो वहां यदि कोई दुष्ट–बदमास आके आप के शरीर में एक कांटा मात्र ही चीपका दे तो क्या आप को दुःख नहीं होगा ? उस दुष्टात्माको सख्त शिक्षा करने को क्या आप तैयार न होंगे ?

घुडसवारः—महाराज ! क्यों नहीं ? दुःख जरूर होगा और मेरी सत्ता चले तो मैं उसे प्राणदंड की शिक्षा करने से भी न चुकूंगा ।

सूरिजीः—भला, आपको तो जरा सा कांटा ही चिपकाया उसके दुःख से विवश हो आप गुस्से में आकर प्राणदंड देने को भी नहीं चुकते हैं तब बिचारे तृणपर ही अपना निर्वाह करनेवाले निर्दोष जीवों को मार कर उनका मांसभक्षण करना यह कैसा न्याय है ? क्या वह अपना बदला लिये विना ही आपको छोड देगा ? महानुभाव ! जीवों की परिस्थिति सदैव के लिये एकसी नहीं रहती हैं । कभी निर्बल, कभी सबल, कभी राजा तो कभी रंक इस तरह घूमती रहती है । जिस समय जिसका विशेष जोर होता है उस समय वह अपना बदला किसीन किसी तरह से

लेता ही है। इस कारण किसी भी निरापराधी जीव को तकलीफ नहीं पहुंचानी चाहिये। धर्मका यह मुख्य लक्षण है।

घुडसवारः—अगर ऐसाही हो तो उन जीवों को ईश्वरने पैदा ही क्यों किया?

सूरिजीः—तो क्या आप यह मानते हैं कि—दुनिया में जितने जीव उत्पन्न होते हैं वे सब शिकारी लोगों की उदरपूर्त्ति के लिये ही पैदा हुए हैं? नहीं नहीं, यह मान्यता केवल शास्त्र विरुद्ध ही नहीं परन्तु मनुष्य कर्त्तव्य से भी बहार है। अगर ख्याल किया जाय कि एक शेर मनुष्य का शिकार कर रहा है उस को यदि उपदेश दिया जाय कि मनुष्य भक्षण से महा पाप होता है तब वह यही कहेगा कि—यह मनुष्य जाति को तो मेरा शिकार के लिये ही इश्वरने पैदा की है। क्या इस जवाब को आप योग्य और मुनासिब समझेंगे?

घुडसवारः—नहीं, कभी नहीं.

सूरिजीः—तो फिर आपकी मान्यता मुनासिब—प्रमाणिक क्यों मानी जाय! महानुभाव! वास्तविक बात तो यह है कि—इश्वर न तो किसी भी जीव को पैदा करता है और न किसी को मारता है प्रत्युत सर्व जगत के जीव अपने २ शुभाशुभ कर्मानुसार उच्च व नीच योनि में उत्पन्न होते है और वहां पूर्व संचित कर्मानुसार ही सुख—दुःख भोगवते है। इस हेतु यदि आप अपना भला चाहते हो तो किसी प्राणी को कष्ट तक नहीं पहुंचाना चा-

हिये प्रत्युत यथाशक्ति रक्षण–पोषण करना बुद्धिमान मनुष्यों की फरज है। अपना प्राण अपने को जैसा प्यारा है उसी माफिक सभी जीवों को अपने अपने प्राण प्यारा है।

सर्व जगतके जीव अपना दीर्घायुष चाहते है; मरने को कोई भी जीव खुशी नहीं हैं। इस वास्ते उनकी इच्छाके प्रतिकुल उनको मारना महान् घोर पाप है। और पाप का फल नरक गति सिवाय दूसरा नहीं होता। देखीये, भगवान् श्रीकृष्णने क्या फरमाया है:—

यथा मम प्रियाः प्राणाः तथा तस्यापि देहिनः।
इति मत्वा प्रयत्नेन त्याज्यः प्राणिवधो बुधैः॥

हे युधिष्ठिर ! जैसा मेरा प्राण मुझे प्यारा है वैसे ही सर्व प्राणी मात्रको अपना प्राण प्यारा है। इस प्रकार समझ कर प्रयत्न पूर्वक बुद्धिमानों को जीवहिंसा का परित्याग करना चाहिये अर्थात् जीवोंकी रक्षा करो। कारण कि मरते हुए जीवोंकी रक्षा करना–बचाना इसके बराबर कोइ भी धर्म या दान नहीं है। जैसा किः—

यद् दद्यात् काञ्चनं मेरुं कृत्स्नं चापि वसुन्धराम्॥
सागरं रत्नपूर्णं वा न च तूल्यामहिंसया॥

अगर कोई दानीश्वर सुवर्णका मेरु, संपूर्णपृथ्वी और रत्नपूरित समुद्रका दान कर दे तथापि एक प्राणीके प्राणदानके

समान वह नहीं हो सक्ता अर्थात् प्राणदानके सामने पूर्वोक्त सर्वदान तुच्छवत् है। कारण जिस समय प्राण ही नष्ट हो रहे हो। उस समय सुवर्ण रत्नादि किस कामके ? इस लिये विद्वानों को चाहिये कि नरक जैसे घोर दुःखदायी गती को प्राप्त करानेवाली हिंसाका परित्याग कर प्रतिज्ञापूर्वक अहिंसा भगवतीकी आराधना द्वारा स्वर्ग–मोक्षके अनंत सुखोंके अधिकारी बनें !

आचार्यश्री का निष्पक्ष, निडर, हितकारी और मधुरतापूर्ण वचन श्रवण कर वह घुडसवार तो अपना दुष्कृत्य प्रति मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा। उनके भव्य चहेरे पर एक प्रकारकी ऐसी ग्लानि छा गई मानो जीवहिंसा प्रति संपूर्ण घृणा उत्पन्न हुई हो। वह एकाएक दीर्घ निःश्वास फेंक कर बोला कि–हे महात्मन ! आजपर्यन्त हमको जितने उपदेशक मिले हैं या हमने जिन २ महानुभावोंकी संगत की है वह सब हमारे समान शिकार करनेवाले और मांस मदिराका सेवन करनेवाले ही थे न किं आपके समान निस्पृही और परोपकारी थे। मैंने तो अपने सारे जीवनमें आप जैसे निःस्वार्थी, परोपकार परायण साधु पुरुष आज ही देखा और उपदेश भी आज ही सुना।

आचार्यश्रीने कहा–महानुभावो ! संगतकी असर प्रायः सभी मनुष्यों पर हुआ करती है। अतः अब 'गतं न शोचामि' इस नियमानुसार गत बातों का शोच–पश्चात्ताप करना छोड कर भविष्य का सुधार करना यह मनुष्यकी प्रथम फरज है। कारण

कि इस समय चिंतामणि रत्न समान मनुष्य जन्मादि उत्तम सामग्री आपको प्राप्त हुई है। अगर आप चाहे तो इस सुअवसरमें अनेक प्रकारसे पुण्य संचय कर सके हैं।

सवार:—महाराज ! हम धर्म–अधर्मसे अनभिज्ञ है। अतः आप ही बतलावे कि वास्तवमें सत्य धर्म कौनसा है ? किस धर्मकरणीसे जीवों का कल्याण होता है और धर्मका साधारण लक्षण क्या है कि जिसके जरीये हम धर्मके बारेमें कुछ जान सके ?

सूरिजी:—ऐसे तो संसारमें अनेक धर्म प्रचलित हैं। यदि तत्तद् धर्मानुयायीयोंको पूछा जाय तो वह अपने २ धर्मको ही श्रेष्ठ बतलावेंगे, परन्तु वास्तवमें वही धर्म श्रेष्ठ है जिनमें अहिंसा धर्मको अग्रस्थान मिला हो और वही धर्म जीवोंका कल्यान कर सक्ता है। कहा है कि.—

अहिंसा लक्षणो धर्मो, अधर्मः प्राणीनां वधः ॥
तस्माद्धर्मार्थिना वत्स ! कर्त्तव्या प्राणीनां दया ॥ १ ॥

अर्थात् धर्मका लक्षण अहिंसा और अधर्मका लक्षण प्राणीयोंकी हिंसा है। इस वास्ते धर्मकी अभिलाषावाले सज्जनोंको प्राणीयों के उपर दया रखनी चाहिये और आप जैसे सज्जनोंको तो आज ही से प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि—आजसे हम कभी भी निरपराधी प्राणीयोंकी हिंसा नहीं करेंगे—किसी भी जीव को कीसी तरहका कष्ट तक न पहुंचावेंगे।

सवार.—महात्माजी ! आपका कहना बहुत ही ठीक—वास्तविक है । हम लोगोंकी प्रार्थना है कि आप हमारे नगरमें पधारे और वहां आपका व्याख्यान पुनः सुननेकी हमलोग अभिलाषा रखतें हैं ।

सूरिजीः—आपका नगर यहांसे कितना दूर है ?

दूसरा सवारः—महात्माजी ! ये शिवनगरके महाराजा रुद्राट् के कुमार कक्व कुँवर है । शिवनगर यहांसे मात्र दो कोसके फासले पर है ।

आचार्यश्रीने सोचा कि मेरा अनुमान आखीर सत्य निकला कि यह एक बडा नगरका राजकुमार है। अगर यह इतना आग्रहसे विनति कर रहा है तो अपनेको भी उसकी विनति मान्य करनेमें लाभ ही होगा इस विचारसे सूरिजी महाराज आदि नगरकी और रवाना हुए । इधर राजा कुमार मंत्री आदि भी सूरिजीके साथ चलने लगे । क्रमशः चलते चलते नगरके निकटवर्त्ति एक सुंदर बगीचा आया जब सूरिजी महाराजने सुविधाका स्थान देख कर वहाँ पर ठहरनेका निर्णय किया । राजकुमार और मंत्रीने सूरिजीका मनोगत भाव समझकर वहांपर सब तरहका इंतजामके साथ सूरिजीको उतार कर अपनी राजधानीमें चले गये । और महाराजा रुद्राट् को सब हाल सुना दिये इस पर राजाने खुशी मनाते हुए दर्शन की अभिलाषा प्रगट की । इधर सूरिजी अपने शिष्य वर्गके साथ उस सुंदर रमणीय बगीचे की शितल छायामें अपना धर्मध्यानमें प्रवृत्त हुए ।

इधर यह बात सारे नगरमें फैल गई कि–कोई एक महात्मा आया है उनके साथ बहुत साधुओंकी जमात है और शहर के बाहिर बगीचे में ठहरे हुए है। आज महाराज कुमार शिकार खेलनेको पधारे थे उनको भ्रममें डाल कर शिकार करना छोडवा दिया है। उनकी आंतरेच्छा यह है कि– इस प्रदेशमें " अहिंसा परमोधर्मः " का जोरशोरसे प्रचार करना; परन्तु सब लोग सावधान रहना और जहां तक सुना गया है उस महात्माजी का कल व्याख्यान भी होगा इत्यादि विविध प्रकारकी बातें वहाँ के मठधारीयों और ब्राह्मणों के कांनो तक पहुंच गई। भिन्नमाल, पद्मावती और उपकेशपुरकी पुराणी बातें क्रमशः स्मृतिपटमें उतरने लगी इतना ही नहीं किन्तु दीर्घनिःश्वास पूर्वक कहने लगे कि– ऐसा न हो कि यहांपर भी इनलोगों का पगपसारा हो जाय ! इस बातकी नगरमें खूब ही हलचल मच गइ और मठोमें मोरचा बन्धी भी होने लगी।

दिनभर तो राजकार्यमें व्यतित हो जानेमें राजकुमार व मंत्रीने उन महात्माओंकी कुछ खबर तक भी न ली; परन्तु राजकार्यसे निवृत्त हुए बाद उनको यह बात एकाएक स्मृतिपटमें उतर आई और बडे ही पश्चात्ताप पूर्वक सोचने लगे कि–अहो अफसोस है कि मेरे आग्रह और विश्वास पर जो महात्मा यहां पधारे है उनके खानपान आदिकी व्यवस्था करने के लिये मैंने कुच्छ भी ख्याल न रखा–वे बिचारे भूखे प्यासे पडे होंगे, अहो ! मैंने यह कितना बूरा काम किया ! इत्यादि। राजकुमारकी यह पवित्र भावना मानों उनके कल्याण के लीये आमन्त्रण कर रही थी।

सुबह आवश्यकादि कार्योंसे निवृत्त हो बडे समारोहसे राजकर्मचारी गण और प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ राजा, राजकुमर, मंत्री वगैरह उस बगीचाकी ओर चले कि जहां महात्माजी ठेरे थे। राजा को जाते हुए देख कइ लोगोंने गतानुगति युक्तिको वश हो राजाका अनुकरण किया तो कइएक कुतुहलवश राजाके साथ हो चले, कइएकने सोचा कि अगर अपुन न जायंगे और राजा को मालुम पडेगी तो अपनी दुकानदारी ही उठ जायगी इस भयसे, तो कइएकने सोचा कि देखें, इन सेवडों—साधुओंकी क्या मान्यता है और कैसा उपदेश देते हैं ? इत्यादि विविध कारणों को आगे रख कर सारा नगरके लोगोंनें राजाका अनुसरण किया और अल्प समयमें राजा प्रजाके साथ उस बगीचेमें सूरिजीके सन्मुख आ उपस्थित हुआ। वंदन नमस्कार कर राजा अपने उचित स्थानपर बैठा और सभीको शांतिपूर्वक बैठ जानेका इशारा किया।

सर्वत्र शांतिका साम्राज्य छाया हुआ था उस समय राजकुमरने उठ कर सूरिजीसे नम्रतापूर्वक कहा कि हे प्रभो ! मैं आपका बडा ही अपराधि हूं क्योंकि मेरे ही आग्रहसे आप यहां तक तशरीफ लाये और मैंने आपकी तनीक भी खबर न ली! इस नगरमें कोई साधारण मुसाफिर भी भुखा—प्यासा नहीं रहता है और आप महात्मा हमारे महेमान—अतिथि होते हुए भी क्षुधा—पिपासा पिडित रात्री नीकाली, यह बडी अफसोसकी बात है. इस हेतु मैं आपसे क्षमा चाहता हूं।

सूरिजीने राजा और श्रोतृवर्ग तरफ हस्तवदन और शीतल

द्रष्टि से मुसकराते हुए बोले कि नरेन्द्र ! आप जरा भी दीलगीर न हो, आपकी तरफसे अपराध नहीं हुआ परन्तु मुनियोंके ठहरने लायक सुंदर मकानादिककी प्राप्ति होनेसे उलटा सत्कार हुआ है। देखीये ये सब मुनिलोग तपस्वी है इस लिये इनको भोजनकी आवश्यक्ता नहीं है । इतने पर भी आपके दीलमें किसी तरह का रंज होता हो तो आपको हम विश्वास दिलाते हैं कि-साधु लोग सदा क्षमाशील होते हैं अतः उनकी तकलीफकी संभावना करना यह व्यर्थ है। हे राजेन्द्र! आपकी धर्मभावना पर हमें खूब संतोष है । और अधिक हर्ष तो इस बातका है कि आप सज्जन धर्म श्रवण निमित्त यहांपर संमिलित हुए हैं । यह हमारा व्यापार है और इसी कार्यके लिये हम लोगोंने अपना सारा जीवन अर्पण कर दीया है । अपने कार्यसिद्धिके लीये अनेकों कठीनाइयों का सामना करते हुए हमलोग इससे भी विकट भूमिमें परिभ्रमण कर सक्ते हैं इत्यादि समाधानीके पश्चात् सूरिजी महाराजने अपना व्याख्यान प्रारंभ कियाः—

सुज्ञ श्रोता गण ! इस अपार यानि अनादि अनंत संसार में जीतने चराचर जीव है यह सब अपने २ पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मानुसार सुख-दुःख भोगव रहे है. शुभ कार्य करनेसे सुखकी प्राप्ति और अशुभ कार्य करनेसे दुःखकी प्राप्ति भवान्तरमें अवश्य होती है । इस मान्यतामें किसी शास्त्रके प्रमाणकी भी आवश्यक्ता नहीं है कारण कि आज चर्मचक्षुवाले मनुष्य भी उन शुभाशुभ

कर्मों का प्रतिबिंबरुप फल प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि—एक राजा, दूसरा रंक, एक सुखी दूसरा दुःखी, एक धनी दूसरा निर्धन, रोगी—निरोगी; ज्ञानी—अज्ञानी, बहुपुत्रीय—अबहुपुत्रीय; सद्गुणी—निर्गुणी, सुंदर रुपवान्—बदस्वरुप, बुद्धिमान्—निर्बुद्धि, यश—अपयश, कीर्त्ति—अपकीर्त्ति, विगेरे। एक का हुक्म हजारों मान्य करते हैं जब दूसरा हजारोंकी गुलामी उठाता है, एक पालखीमें बैठ सहेल करता है दूसरा उसे अपने खंधोपर उठा दुःखका अनुभव कर रहा है। यह सब पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म का फल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। प्यारे आत्मबन्धुओ! जो मनुष्य बबुल का बीज बोता है वह मनुष्य फल भी वैसा ही पावेगा, न कि आम्रफल. और जो मनुष्य आम्रवृक्ष का बीज बोता है उसको आम्रफलकी ही प्राप्ति होती है न कि बबुलकी। अर्थात् जैसा बीज बोवेगा वैसाही फल पावेगा। इस न्यायसे जो बुद्धिमान लोग मनुष्यभव धारण कर शुद्ध देव—गुरु और धर्मपर अटल श्रद्धा रखते है और सेवाभक्ति उपासना, सत्संग, पवित्र अहिंसाधर्मका प्रचार क्षमा, दया, शील, संतोष, ब्रह्मचर्य, दानपुन्य, प्रभुभजन, और परोपकारादि पुन्यकार्योंसे शुभ कर्मों का संचय करता हे उस जीवों को भवान्तरमें आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, आरोग्यपूर्ण शरीर, पूर्ण इन्द्रियोंकी प्राप्ति, दीर्घायुष्य, देव—गुरु—धर्मकी सेवा और अन्तमें स्वर्ग, एवं मोक्षकी प्राप्ति होती है जिससे पुनः जन्म मरण का फेरा ही मीट जाता है। जो अज्ञानी जीव इस अमूल्य मनुष्य जन्मको धारण कर जीवहिंसा करता है, असत्य बोलता है,

चोरी, मैथुन, ममत्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, परनिंदा और निर्दयता को धारण कर उसमें चकचूर रहता है, शिकार खेलता है, मांस–मदिरादि अभक्ष्य वस्तुओं भक्षण करता है, कुदेव, कुगुरु और कुधर्मकी उपासना करता है, एवं दुर्जनोंकी संगतमें रह कर अनेकविध पापकर्मोंसे अशुभ कर्मका संचय करता है वह भवान्तरमें घोरातिघोर नरक कुण्डमें जा चिरकाळ तक महान् भयंकर दुःखोंका अनुभव कर वहांसे फिर पशु आदि दुःखमय चौराशी लाख योनीयोंमें अरट मालकी तरह परिभ्रमण करता है। इस लीये बुद्धिमानों को स्वयं विचार करना चाहिये कि मैंने अनेक भवभ्रमण करते हुए वडी दुर्लभतासे यह मनुष्य देह पाया है तो अब मुझे क्या करना चाहिये और मैं क्या कर रहा हूं ? क्या मैंने अपनी जीन्दगीमें कुच्छ भी सुकृत पुन्यकार्य किया है ? या खाना–पीना, मौजमजा, भोगविलास, हांसी ठठ्ठा, खेलकुद और तृणभक्षी निर्दोष प्राणीयोंके प्राण लुंटनेमें सारी जीन्दगी व्यतित करी है ? मैं अपने साथ पूर्व भव से कितना पुन्य लेके आया हूं ? और इस भवमें कितना पुन्य संचय किया है या पाप संचय किया है ? जिन पाप कर्मों द्वारा धन, वैभव प्राप्त कर कुटुंब का पोषण कर रहा हूं परन्तु जब मैं यहांसे परभवकी और विदा हुंगा तब यह राजपाट, लक्ष्मी, पुत्र–कलत्र, पिता–माता, भाइ–बहिन आदि कुटुम्बवर्गमेंसे कोई मेरा साथ देगा ? या परभवमें मेरे पर दुःख गुजरेंगे उस समय कोई मेरा सहायक होगा ? या मैं अकेला ही दुःख सहन करुंगा ? इत्यादि विचार करना बहुत आवश्यक है। क्यों कि "बुद्धेः फलं

तत्त्व विचारणं च " बुद्धि का फल यही है कि मनुष्य को तत्त्व का विचार करना चाहिये। सज्जनों ! यह भी याद रखना चाहिये कि यह सुअवसर यदि हाथसे चला गया तो पुनः पुनः प्रार्थना करने पर भी मिलना मुश्किल है।

महानुभावो ! महाऋषियोंने जिस समय वर्णव्यवस्था की श्रृंखलना करी थी उस समय शौर्य—पुरुषार्थ द्वारा जनताकी अर्थात् सर्व चराचर प्राणीयोंकी सेवा—रक्षा करने का खास भार क्षत्रीयोंपर रख छोडा था। कारण कि उनको संपूर्ण विश्वास था कि यह क्षत्रीयजाति दया का दरिया व उच्च विचारज्ञ और अपने पराक्रम द्वारा जनताकी रक्षा—सेवा करने योग्य है परन्तु आज सत्संग और सदुपदेशके अभावसे उन वीरोंके हृदयनें भी पलटा खाया है—कुसंग मिथ्या उपदेशासे एसे खराब संस्कार पड गये कि वह अपने क्षत्रि धर्मको ही भूल बैठे है। जो लोग गरीब, अनाथ, और मूक प्राणीयोंके रक्षक कहलाते थे वेही लोग आज भक्षक बन गये हैं। जिस शौर्य और पुरुषार्थद्वारा क्षत्रिय लोग संपूर्ण विश्वका रक्षण करते थे आज वही लोग निरपराधी मूक प्राणीयों का खुनसे नदीयें बहा रहे हैं इत्यादि। इसमें केवल क्षत्रियों का ही दोष नहीं है परन्तु विशेष दोष उनके उपदेशकों का है, कारण जिन महर्षिओंने संपूर्ण जगतकी शांतिके लीये जिन्होंके हाथमें जपमाला दी थी कि वह निःस्वार्थ भावसे पूजा—पाठ, जप—जाप, स्मरणद्वारा सारे संसारमें शांतिका साम्राज्य विस्तारेंगे परन्तु उनपर कुदरत का कोप इस कदर हुआ कि वह स्वार्थ के कीचडमें फँसकर जप-

माला के स्थान उन क्रूर हाथोंमें तीक्ष्ण छूरा धारण कर निर्दय दैत्यकी माफीक विचारे मूक प्राणीयोंके कंठ पर छुरा चलानेमें अपना कर्तव्य समझने लगे। इतना ही नहीं परन्तु उस भयंकर पापकी पुष्टिके लिये नया विधि–विधान बनाके उस पापसे छूटकारा पानेका मिथ्या प्रयत्न भी किया है। अधिक दुःख तो इस बात का है कि क्षत्रीय लोग उनके हाथके कठपुतले बन गये इस हालतमें वह पाखंडि लोग प्राणीयोंके रक्तसे यज्ञ वेदीको रंग कर अपने नीच स्वार्थोंकी पूर्त्ति करते हुए धर्मके नामसे जनताको गहरी खाडमें धकेल दे इसमें आश्चर्य ही क्या है? अगर वह धर्मके ठेकेदार धर्मके नामपर अपने खुदके शरीरमेंसे एक बुंद रक्तकी निकाल कर अपने इष्टदेवकी पूजामें चढाते तो उसे मालुम होता कि प्राणीयोंकी अघोर हिंसा करनेमें धर्म है या महान् पाप है?

हे राजन्! शिकार खेलना, मांस भक्षण करना, मदिरादि का पान करना और व्यभिचार सेवना ये चारों अधर्म कार्य खास करके नरकमें लेजानेवाले हैं। यदि आप अपने आत्मा का इस भवमें और परभवमें कल्यान चाहते हो तो सबसे पहिले इनका त्याग करना चाहिये। कारण इन अधर्म कार्यों के होते हुए कोइ भी जीव धर्मका अधिकारी नहीं बन सक्ता हैं। आप नीतिज्ञ है आपमें विचार करनेकी शक्ति है. हृदय पर हाथ रख कर सोच सके हैं कि जहां तक लोकव्यवहार ही शुद्ध नही है वहां तक कोई भी मनुष्य धर्म समझने का अधिकारी कैसे हो सक्ता हैं क्यों कि धर्मकी भूमि शुद्धाचार है। पहले सदाचार रुपि भूमि

शुद्ध नहीं है तो उसमें धर्मरुपी बीज कैसे बोया जावे ? अगर ऐसी अशुद्ध भूमिमें बीज बो भी दीया जावे तो उसका फल क्या ? अतः मैं आप सब सज्जनों को खूब जोर देकर पूर्ण विश्वास के साथ कहता हूं कि इन चारों दुराचार को इसी समय प्रतिज्ञापूर्वक त्याग कर दें, इसी में ही आपका हित–सुख–कल्याण है।

आचार्यश्री के प्रभावशाली व्याख्यान की असर जनता के अन्तःकरणपर इस कदर हुई कि उन घृणित दुराचार से दुनियों का दिल एकदम हट गया। बस, फिर तो वीरों के लीये देरी ही क्या थी ? " कर्मे शूरा वह धर्मे शूरा " इस युक्ति को चरितार्थ करते हुए राजा–प्रजा प्रायः उपस्थित सर्व सज्जनों ने प्रतिज्ञापूर्वक हाथ जोड के कह दिया कि हे दयानिधि ! आज पर्यन्त हम अज्ञान अन्धकार में रह कर दुराचार का सेवन कर रहे थे परन्तु आज आपश्री के उपदेश रुपी सूर्य किरणोंने हमारे अन्तःकरणपर इस कदर का प्रकाश डाला है कि जिसके जरीये मिथ्या तिमिर–अज्ञान स्वयं नष्ट हो गया जिनकी बदौलत ही हम उन दुराचार से घृणित हो प्रतिज्ञापूर्वक आप श्रीमानों के समक्ष परित्याग करने को तैयार हुए है कि मांस, मदिरा, शिकार और व्यभिचार इन चारों कुव्यसनों का कभी सेवन नहीं करेंगे इतना ही नहीं परन्तु हमारी सन्तान भी इन दुर्व्यसनों का कभी स्पर्श तक न करेंगे। महाराज कुमार कक्वलों खडा हो कहने लगा कि मैं तो यहां तक कहता हूं कि मेरी राजसीमा में कोइ भी शख्स किसी भी प्राणी को मारेगा तो जीव के बदले अपने प्राणों का ही दंड देना पडेगा.

उपसंहार में आचार्यश्रीने फरमाया कि महानुभावो ! मैं आप सज्जनों को एकवार नहीं पर कोटीशःवार धन्यवाद देता हूं। मुझे यह विश्वास नहीं था कि चिरकाल से चली आइ कुरुढीयों को आप एक ही साथ में तिलांजली देदेंगे। परन्तु मोक्षाभिलाषुक जीवों के लीये ऐसा होना कोइ आश्चर्य की बात नहीं है। कारण सच्चे क्षत्रीय शूरवीरों का यह ही धर्म है कि सत्य बात समझ में आजाने के बाद असत्य—अहितकारी कोई भी रुढी हो परन्तु उसको उसीक्षण त्याग देते हैं। आज आप लोगोंने वही क्षत्रीय धर्म का यथार्थ पालन कर अपनी शूरवीरता का प्रत्यक्ष परिचय करवा दिया है। अन्त में मैं उमेद रखता हूं कि जिनवाणी—अर्थात् सत्योपदेश श्रवण करने में आप अपना उत्साह आगे बढाते रहेंगे कि जिसमें आपका कल्यान हो।

राजा, राजकुमार, मंत्री और नागरीक लोग आचार्यश्री का महान उपकार मानते हुए और शासन की प्रभावना करते हुए वंदन नमस्कार कर जयध्वनिपूर्वक विसर्जन हुए।

शिवनगर में एक तरफ आचार्यश्री और जैनधर्म की तारीफ हो रही थी तब दूसरी और कईएक पाखण्डी लोग गुप्त वातें कर रहे थे कि देखिये, ये सेवडाओंने—साधुओंने लोगो पर कैसा जादु डाला ! गडरीके प्रवाह की तरह एक के पीछे प्रायः सभी लोगोंने मांस—मदिरा और शिकार का त्याग कर दिया ! अबतों यज्ञ—यागादि में बलीं व पिंड दान मिलना ही मुश्केल होगा। अगर इस तरह

कुछ दिन और चलेगा तो सनातन धर्म का सर्व नाश नजीक ही मालुम पडता है। इस लिये अपने को भी इनके सामने कुछ प्रयत्न करना चाहिये। इत्यादि अपने मठों में और भी बिशेष मोरचा बन्धी करनी शरु कर दी।

राजा, मंत्री आदि बुद्धिमान लोग बडे ही हर्ष के साथ आत्मकल्यान के लीये खूब विचार कर रहे थे। इतना तो सबको विश्वास हो गया था कि यह महात्मा खास कर निर्लोभी सदाचारी परोपकारी और ज्ञानी है जो कि भूखे-प्यासे रहने पर भी निःस्वार्थ वृत्ति से अपने पर उपकार किया है। मंत्रीश्वरने कहाः— महाराज! आपका कहना सर्वथा सत्य है कारण कि अपने लोगों से उनको लेना-देना क्या है? तथापि केवल निःस्वार्थ भाव से इतना परिश्रम उठा के जनता पर उपकार कर रहे है। श्रेष्ट जनों का वचन है कि जो पारमार्थिक होते हैं वे ही संसारीक जीवोंपर करुणादृष्टि से उपकार करते हैं। महाराज कुमार कक्वने कहा कि-ये सब बात तो ठीक है परन्तु उनके खाने-पीने का क्या बंदोबस्त है? दरबारने कहा कि यह तो अपनी बडी भारी गलती हुई है। उसी समय मंत्रीश्वर को हुक्म फरमाया कि तुम जाओ और शीघ्र-सब से पहिले उनके खान-पान का सुंदर बंदोबस्त करो इस पर महाराज कुमार कक्व और मंत्रीश्वर चलकर आचार्य श्री के पास आये और अर्ज करी कि महात्माजी! आप भोजन अपने हाथ से पकावेंगे या तैयार भोजन करने को पधारेंगे? जैसी आज्ञा हो वैसा इंतेजाम करने को हम तैयार है।

प्रियवर ! आप लोग जैन मुनियों के आचार व्यवहार से अभी अनभिज्ञ है; कारण जैन मुनि न तो हाथों से रसोइ पकाते है और न उनके लीये बनाई हुइ रसोई उनको उपयोग में आती है; क्यों कि रसोई बनाने में जल, अग्नि, वनस्पति आदि की जरुरत पडती है और इन सब में जीव सत्ता है अर्थात् आत्मा है, अतः हम साधुओं के लीयें उनको हींसा या मर्दन करना तो दूर रहा परन्तु स्पर्श करने का भी अधिकार नहीं है--आज्ञा नहीं है। जब हम उन जीवों को स्वयं तकलीफ पहुंचाना नहीं चाहते है तो दूसरों से कैसे तकलीफ--दुख पहुंचा सक्ते है ? और हमारे ही निमित्त बीचारे निर्दोष जीवों की हींसा करके बनाया हुआ भोजन का हम कैसे उपयोग कर सक्ते है ? क्यों कि हम तो चराचर समस्त जीवों के रक्षक है न कि भक्षक !

मंत्रीश्वरने पृछा कि क्या आप जल, अग्नि और फल--फूलादि वनस्पति को अपने काम में नहीं लेते है ?

आचार्यश्रीः--नहीं, काम में लेना तो दूर रहा परन्तु स्पर्श तक भी नहीं करते हैं।

मंत्रीश्वरः--आप भोजन करते हो ? पाणी पीते हो ?

आचार्यश्रीः--हां, जिस रोज उपवासादि तपश्चर्या नहीं करते हैं उस रोज भोजन करते हैं और पानी भी पीते हैं।

मंत्रीश्वरः--तो फिर आपके लीये भोजन--पाणी कहां से आता हैं ? कारण आप स्वयं बनाते नहीं और आपके लिये बनाई आप के काम में आती नहीं है।

आचार्यश्रीः—गृहस्थ लोग अपने खाने–पीने के लीये रसोई बनाते हैं उनमें से–जब हमको भिक्षा की जरुरत होती है तब मधुकरी रुप से भिक्षा ग्रहण करते है–अर्थात् बहुत घरों से अल्प अल्प आहार ग्रहण करते हैं जिस से गृहस्थों को तकलीफ न पडे, हमारे निमित्त दूसरी वार भोजन बनाना भी न पडे और हम लोगों का गुजर–निर्वाह भी अच्छी तरह से हो जाय ।

मंत्रीश्वरः—भोजन तो आप पूर्वोक्त रीतिसे ग्रहण करते हैं परन्तु पानी तो आपको वही पीना पडता होगा कि जिसमें आप जीवसत्ता बतलाते हैं ?

आचार्यश्रीः—नहीं, हम कुवा, तलाव, नदी आदिका कच्चा जल नहीं पीते हैं मगर जो गृहस्थ लोगोंने अपने निजके लीये गरम जल बनाया हो उसको ले आते हैं और ठंडा करके पी लेते हैं ।

मंत्रीश्वरः—अगर आप की प्रथानुसार भोजन और जल न मिले तो फिर आप क्या करते हैं ? ।

आचार्यः—ऐसे समय में भी हम खुशी मानते हुए तप-वृद्धि करते हैं ।

इस वार्त्तालाप को सुनकर महाराज कुमार और मंत्रीश्वर आश्चर्यमुग्ध बन गये और उन के हृदय से आन्तर नाद निकला कि अहो ! आश्चर्य ! अहो जैनमुनि ! अहो जैनधर्म ! अहो जैनमुनिओं के मोक्ष मार्ग के कठिन नियम ! दुनिया में क्या कोई ऐसे कठिन नियम पालने वाले साधु होंगे ? एक चींटी और मकोडी तो

क्या परन्तु मट्टि जल, अग्नि, और वनस्पति—फलफूल को भी स्पर्श कर तन्निमित्तक हिंसा के भागी नहीं बनते हैं। यह उन जैन मुनियों के श्रेष्टतम करूणाभाव का अपूर्व परिचय है।

मन्त्रीश्वरने कहा महाराज कुमार ! कहां तो अपने मठपति लोभान्ध और कहां यह निस्पृही जैन महात्मा ? कहां तो अपने दुराचारियों का भोगविलास और व्यभिचार लीला ? और कहां इन परोपकारी महात्माओं की शान्ति और सदाचारवृत्ति ? इतना ही नहीं पर इन परम् तपस्वी साधु जनों को तो अपने शरीर तक की भी पर्वाह नहीं है। महाराज कुमार ! मैंने तो दृढ निश्चय कर लिया है कि ऐसे महात्माओं द्वारा ही जगत का उद्धार होगा इत्यादि। राजकुमारने भी अपनी सम्मति प्रदर्शित करते हुए कहा मन्त्रीश्वर ! आप का कहना सत्य है कि जो पुरुष अपना कल्याण करता है वही जगत का कल्याण कर सक्ता है। अस्तु।

पुनः मन्त्रीश्वरने अर्ज करी कि भगवान ! जैसे आप का आचार व्यवहार हो वैसा करावें इस में हम कुछ भी नहीं कह सक्ते पर हमारे नगर में पधार कर आप भूखे प्यासे न रहें। दरबार श्री कल के लिए भी बहुत पश्चाताप कर रहे हैं इस वास्ते हमारी भूल पर क्षमा प्रदान करें और आप नगर में पधार कर भिक्षा करावें। इस पर सूरीश्वरजी महाराजने फरमाया कि मन्त्रीश्वर आप की और दरबार की हमारे प्रति भक्ती है वह बहुत अच्छी बात है और ऐसा होना ही चाहिए। इतना ही नहीं पर जैसे हमारे प्रति आप की वात्सल्यता है वैसे ही सर्व जीवों प्रति रखना आप का परम

कर्तव्य है । आप के आग्रह को स्वीकार करने में हम को किसी प्रकार का इन्कार नहीं है पर हमारे कितनेक मुनियों को एक मास का कितनेक को दो मास का एवं तीन चार मास का प्रत्याख्यान है । आप जानते हो कि पूर्व संचित कर्म सिवाय तपस्या के नष्ट नहीं हो सक्ते है । तपश्चर्या से इन्द्रियों का दमन होता है, मन कबजे में रहता है, ब्रह्मचर्यव्रत सुखपूर्वक पल सक्ता है ध्यान मौन आसन समाधि आनन्द से बन सक्ते है इसी लिये ही पूर्व महर्षियोंने हजारों लाखों वर्षों तक घोर तपश्चर्या की थी और आज भी कर रहे हैं इत्यादि मोक्ष का मुख्य साधन तपश्चर्या ही है । हे मन्त्रीश्वर ! हम जैन साधु न तो मनवार करवाते है और न आग्रह की राह भी देखते है जिस रोज हम को भिक्षा करना हो उसी रोज हम स्वयं नगर में जा कर सदाचारी घरों से जहां कि मांस मदिरा का प्रचार न हो, ऋतु धर्म पाला जाता हो वैसे घरों से योग्य भिक्षा ला के इस शरीर का निर्वाह करने को भिक्षा कर लेते हैं वास्ते आप किसी प्रकार का अन्य विचार न करें हम आप की भक्ति से बहुत ही प्रसन्नचित्त हैं इत्यादि ।

मुनिवरों की प्रभावशाली तपश्चर्या का प्रभाव राजकुमार और मन्त्रीश्वर की अन्तरात्मा पर इस कदर हुआ कि वे आश्चर्य में मुग्ध बन गए और उन महात्माओं के आदर्श जीवन प्रति कोटीशः धन्यवाद देते हुए वन्दन नमस्कार कर वापस लोट गए और महाराज रूद्राट को सब हाल निवेदन किए । जिस को सुन कर दरबार साश्चर्य महात्माओं की कठीन तपश्चर्या का अनुमोदन

किया इतना ही नहीं पर राजा की मनोभावना रूपी बिजली आचार्यश्री के चरण कमलों की ओर इतनी तो झुक गई कि उन्होंने शेष दिन और रात्री एक योगी की भान्ति बिताई और सुबह होते ही अपने कुमर व मन्त्रीश्वर और राज अन्तेउर वगैरह सब परिवार सूरिजी के चरणों में बडे ही समारोह के साथ हाजर हुए । इधर नागरिक लोगों के झुण्ड के झुण्ड उधर मठपति और ब्राह्मण लोग भी बडे ही सज धज के उपस्थित हुए, वन्दन नमस्कार के पश्चात् सूरीश्वरजीने अपना व्याख्यान प्रारंभ किया. कारण पहिले दिन के व्याख्यान की सफलता से आपश्री का उत्साह खूब बढा हुआ था ।

श्रोतागण ! इस प्रवाहरूप अनादि संसार के अन्दर परिभ्रमण करते हुए चार गति रूप चक्र यानि नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, और देवगति जिस में पाप अधर्म दुराचार के जरिए जीवों को नरक गति में जाना पडता है जहां के दुःख कानों द्वारा श्रवण मात्र से त्रास छूट जाती है तो वहां जाके उन दुःखों का अनुभव करना तो कितना भयंकर है, वह आप स्वयं विचार कर सक्ते हैं और दान पुन्य धर्म सदाचारादि का सेवन करने से जीव मनुष्य गति या स्वर्ग में जा कर सुखों का अनुभव करते हैं उन सुखों का वर्णन करते हुए शास्त्रकारोंने फरमाया है कि स्वर्ग सुखों के अनन्तमें भाग भी यहां सुख नहीं है । साथ में यह भी याद रखना चाहिये कि पाप लोहे की बेडी के समान है तब पुन्य सोने की बेडी तुल्य है । जहां तक इन दोनों बेडियों का अन्त न हो वहां

तक संसार का अन्त नहीं है और संसार है सो सुख दुःख रूपी चक्र में भ्रमन करानेवाला है। जीव जहां तक तृष्णा की फांसी में फसा हुआ है पौद्गलिक सुखों में मग्न मान रहा है वहां तक मोक्ष दूर है। और सिवाय मोक्ष के सच्चे सुख और अखण्ड शांति नहीं मिलती है। इस वास्ते ज्ञानियोंने पुकार २ कर कहा है सच्चे सुखों के लिए पहिले सत्संग की जरूरत है कारण महात्माओं की सत्संग और शास्त्रों का श्रवण करने से ज्ञान का प्रकाश होता है वह स्वयं अपनी आत्मा को सच्चा स्वरूप समझा सक्ता है कि हे आत्मन्! यह संसार कारागृह है स्त्री पुत्रादि कुटुम्ब मुसाफिरखाना की माफिक आ मिला है न जाने यह कब और किस जगह जायगा और मैं कब और किस स्थान जाउंगा? जोवन पतङ्ग का रंग है, शरीर क्षणभंगुर है, लक्ष्मी हाथी के कान की माफिक चञ्चल है इतने पर भी मनुष्य के आयुष्य प्रदेश अञ्जली के नीर की सदृश हमेशां क्षय होता जा रहा है इस लिये प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह शुद्ध पवित्र सत्य सनातन धर्म की परीक्षा करे कि वह इस जन्म जरा मरण रोग शोकादि संसार से पार कर मोक्ष में ले जाने को समर्थ हो। संसार में सब वस्तु की परीक्षा की जाती है इसी माफिक धर्म की भी परीक्षा होती है। वास्ते बुद्धिमानों को चाहिए कि वह धर्म की परीक्षा करे जैसेः—

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निर्घषण छेदन ताप ताडनैः ॥
तथैव धर्मोविदुषां परीक्ष्यते, श्रुतेन शीलेन तपोदयागुणैः ॥ १ ॥

भावार्थ—कष, छेद–सुलाक, ताप, और ताड़न, एवं चार प्रकारसे स्वर्ण की परीक्षा की जाती है वैसे ही (१) श्रुत (ज्ञान-ध्यान) (२) शील ब्रह्मचर्य व खान पान रहन सहनादि सदाचार (३) तपश्चर्या–इच्छा का निरोध (४) दया सर्व प्राणियों प्रति वात्सल्यभाव अर्थात् जिस धर्म में पूर्वोक्त चारों प्रकार के परीक्षक गुण होते हैं वही धर्म जगत् का कल्यान करने में समर्थ समझना और उसी को ही स्वीकारकर आत्म कल्यान करना चाहिए।

महानुभावों! योंतो सब धर्मवाले अपने २ धर्म को अच्छा कहते हैं अहिंसा परमो धर्मः और ब्रह्मचर्य को मुख्य मानते हैं पर वह केवल नाम मात्र कहने का ही है न कि वरतन रूप, कारण अहिंसा धर्म बतलाते हुए भी यज्ञ होमादि के नाम से असंख्य निरापराधी प्राणियों के कोमल कण्ठपर तिक्षण छुरा चला देते है ऋतु दानादि के नाम से व्यभिचार के द्वार खोल रक्खे है इतना ही नहीं पर तद्विषय ग्रन्थ भी बना डाले और इश्वर के नाम की छाप ठोक दी गई कि उन का कोई उलंघन नहीं कर सके; पर बुद्धिमान विचार कर सक्ते हैं कि पूर्वोक्त दुराचार से सिवाय स्वार्थ के और क्या अर्थ निकल सक्ता है? धर्म परीक्षा के चार कारणों से उन पाखण्डियों के माना हुआ धर्म में न तो ज्ञानध्यान है न सदाचार ब्रह्मचर्य है और न तपश्चर्या दया या वात्सल्यता है फिर ऐसा व्यभिचारी धर्म दुनिया का क्या कल्याण कर सक्ता है वह आप स्वयं विचार कर सक्ते हैं।

सज्जनों! जैन धर्म शुद्ध सनातन प्राचिन सर्वोत्तम पवित्र

जनता का कल्याण करने में सदैव समर्थ है। ज्ञान ध्यान शील सदाचार तपश्चर्या और अहिंसा एवं धर्म परीक्षा के पूर्वोक्त चारों कारण इस पवित्र धर्म में मौजुद है। जैनधर्म के चौवीस अवतार (तीर्थङ्कर) पवित्र शुद्ध क्षत्रीय वंश में उत्पन्न हुए थे, उन्होंने अपने सच्चे उपदेश से जैन धर्म को सम्पूर्ण विश्व का धर्म बनाया था, कालान्तर जिस जिस प्रदेश में जैन उपदेशक नहीं पहूंच सके; उस २ प्रान्तमें स्वार्थप्रिय पाखण्डियोंने विचारे भद्रिक जीवों के नेत्रोंपर अज्ञान के पाटे बान्ध सदाचार से पतित बना के दुराचार की गहरी खाड में गिरा दिए और इसी दुराचारने दुनिया में त्राही त्राही मचा दी, यहां तक कि वह अपनी आखिरी हद तक पहूंच गया अब इस का भी तो उद्धार होना ही था आज सदुपदेशक महात्माओं के ज्ञान सूर्य का प्रकाश भारत के कौने २ में रोशन हो रहा है जिससे अधर्म के पैर उखड़ गए पाखण्डियों की पोप लीला खुल गई दुराचारियों के अखाड़े नष्ट हो गए यज्ञ जैसे निष्ठुर कर्म विध्वंस हो गए है व्यभिचार लीला से जनता घृणित हो गई वर्ण और जाति की जञ्जीरों टूट पड़ी है उच्च नीच के भेदभाव को भूल जनता एक सूत्र में संखलित हो रही है विश्व में अहिंसा धर्म की खूब गर्जना हो रही है आत्म कल्यान और परम शान्तिमय धर्म स्वीकार करने में न तो परम्परा बाधा डाल सक्ती है और न उन पाखण्डियों की तनिक भी दाक्षीण्यता रही है अर्थात् वीरों के धर्म को आज वीरपुरुष निडरतापूर्वक अंगीकार कर रहे हैं। अतःएव आप लोगों का परम कर्तव्य है

कि सत्यासत्य का निर्णयकर सब से पहिले आत्म कल्याण के लिए पवित्र धर्म को स्वीकारकर अहिंसा भगवती के उपासक बन उस का ही आराधन और प्रचार करें, यह मेरी हार्दिक भावना है।

आचार्यश्री के अमृतमय देशनारूपी भानु के प्रखर प्रकाश में पाखण्डी रूप तग तगते तारे एकदम लुप्त हो गए जिन पाखण्डियों के दिल में मिथ्या घमण्ड—अभिमान—मद था वह मानों भास्कर के प्रचण्ड प्रताप से हेम गल जाता है वैसे गल गया। सूरीश्वरजी महाराज के तप तेज और सद्ज्ञान के सामने पाखण्डियोंसे एक शब्द भी उच्चारण नहीं हुआ कारण पहिले दिन के मनोहर व्याख्यान से ही उन भद्रिक जनता के हृदय में सद्ज्ञान रूपी सूर्य प्रकाशित हो गया था अत्याचारियों के दुराचारपर घृणा आ चूकी थी सूरिजी महाराज की तरफ दुनिया का दिल आकर्षित हो आया था क्योंकि "पुरुष विश्वासस्य वचन विश्वासं" आचार्यश्री का कहन रहन सहन आचार विचार तप संयम निस्पृहीता और परोपकार परायणता पर राजा प्रजा मुग्ध बन चूकी थी फिर आज के व्याख्यान से तो लोगों की श्रद्धा और रूची इतनी बढ गई थी कि स्कन्धेपर के डोरे और गले की कण्ठियों तोड़ डालने को सब लोग बड़े ही आतुर थे।

महाराज रूद्राट्ने खड़े होकर नम्रता पूर्वक अर्ज करी कि हे प्रभो! आप श्रीमानों का कहना अक्षरशः सत्य है। हमारी आत्मा इस बात को ठीक कबूल कर रही है कि जैन धर्म क्षत्रियों

का धर्म है जैन धर्म सब धर्मों से प्राचिन और पवित्र धर्म है सदाचार और नीति पथ बतलाने में यह धर्म अद्वितीय है और आत्म कल्याण करने में तो इसकी बराबरी करनेवाला संसारभरमें कोइ भी धर्म नहीं है फिर भी अधिक हर्ष इस बात का है कि आप जैसे महान् तपस्वी गुरुवर्य अनेक प्रकार के संकट सहन करते हुए हमारे सद्भाग्योदय से यहां पधारकर सद्बोध दिया जिसके जरिए हम लोगों को सत्यासत्य हिताहित कृत्याकृत्य भक्ष्याभक्ष धर्माधर्म का ज्ञान हुआ इतना ही नहीं पर हम व खूबी समझ गए हैं कि आप जैसे परम योगीश्वरों के चरणकमलों की रज भी हमारे जैसे अधर्मियों का कल्याण करने में समर्थ है हम सब लोग आप श्रीमानों के उपदेशानुसार जैन धर्म स्वीकार करने को तैयार हैं अर्थात आप हमारे धर्मगुरु हैं; हम और हमारी भावी सन्तान आपके शिष्य उपासक हैं इस अभिरूची के कारण जैसे आचार्यश्री का सदुपदेश था वैसे ही उन पाखण्डियों का दुराचार भी था कारण दुनिया पहिले से ही उन दुशीलों से घृणा कर शान्तिमय धर्म की प्रतिक्षा कर रही थी वह शान्ति आज सूरीश्वरजी के चरणों में मिल रही है ।

इस सुअवसरपर उपकेशपुर की अधिष्टायिका सच्चायिका देवी अपनी सहचारिणी देवियों को साथ ले सूरीश्वरजी के दर्शनार्थे आई थी वह वन्दन नमस्कार के पश्चात् वहां की भद्रिक जनता सूरिजी के उपदेश की ओर झूकी हुई थी, यह देख देवी को बडा भारी आनन्द हुआ; कारण सूरिजी को इस प्रान्त में

विहार करवाने की दलाली सचायिकाने ही की थी। सचायिका देवीने सूरिजी से कहा " हे प्रभो ! यह मातूलादेवी शिवनगर की अधिष्टात्री है और प्रतिवर्ष में हजारों लाखों जीवों का बलीदान ले रही है आप इसको उपदेश दें। " यह कहते ही मातूला देवी-ने हाथ जोड़ के अर्ज कर दी कि भगवान् ! आप उपदेश की तकलीफ न उठावें आपका प्रभाव मेरे अन्तःकरण में पड़ चूका है। मैं आपश्री के सन्मुख प्रतिज्ञा करती हूं कि आज से मेरे नामपर किसी प्रकार की जीव हिंसा न होगी, इसपर सूरिजी महाराजने संतुष्ट हो देवी को वासक्षेप देकर जैन धर्मोपासिका बनाई। इसका प्रभाव राजअन्तेउर और महिला समाज पर भी बहुत अच्छा पडा। इधर राजा प्रजा बड़े ही आतुर हो रहे थे; सूरिजी महाराजने उनको पूर्व संचित मिथ्यात्व की आलोचना करवा के ऋद्धि सिद्धि संयुक्त महा मंत्र पूर्वक वासक्षेप के विधि विधान से उन सबको जैन धर्म की शिक्षा देकर जैनी बनाए, और संक्षेप से नित्य कर्म में आनेवाले नियम बतलाए, खानपान आचार की शुद्धी करवा दी, मांस मदिरा शिकार वैश्यागमन चोरी जूवा और परस्त्री गमनादि दुर्व्यसनों का सर्वथा त्याग करवा दिया और देवगुरु धर्म और शास्त्र का थोडे से में स्वरूप समझा दिया इत्यादि। देवी सचायिकाने नूतन जैन जनता को उत्साह वर्द्धक धन्यवाद दिया तत्पश्चात् सब लोग सूरीजी महाराज को वंदन नमस्कार कर जैन धर्म की जयध्वनी के साथ विसर्जन हुए।

आचार्यश्री और सचायिका देवी आपस में वार्तालाप कर

रहे थे जिसके अन्दर देवीने कहा भगवान् ! आपने अथाग परि-श्रम उठा के जैन धर्म का बड़ा भारी उद्योत किया सूरिजीने कहा देवी ! " इस उत्तम कार्य में निमित कारण तो खास आपका ही है " देवीने कहा प्रभो ! " आप और आपकी सन्तान इसी माफिक घूमते रहेंगे तो आपके पूर्वजों की माफिक आप भी प्रत्येक प्रान्त में जैनधर्म का खुब प्रचार कर सकोंगे " ।

आपश्रीने फरमाया कि बहुत खुसी की बात है हमारा तो जीवन ही इस पवित्र कार्य के लिए है इत्यादि, बाद देवीने वन्दन कर निज स्थान की और प्रस्थान किया ।

इधर शिवनगर में एक तरफ जैन धर्म की तारीफ–प्रशंसा हो रही है तब दूसरी और पाखण्डियोंने अपना वाडा बन्धी के लिए भर मार परिश्रम करना सुरु किया जो शुद्र लोग थे कि जिनको वह लोग धर्म श्रवण करने का भी अधिकार नहीं दीया इतना ही नहीं पर वे कुछ गिनती में भी नहीं थे पर आज उन-को भी मांस मदिरा और व्यभिचारादि की लालच बतला के पाखण्डि लोग अपने उपासक बना रखने की ठीक कोशीष कर रहे हैं बात भी ठीक है कि दुराचारियों का जोरजुल्म ऐसे अज्ञान लोगो पर ही चल सका हैं अगर आचार्यश्री चाहते तो उन ना-स्तिकों का दमन करवा सक्ते पर उन्होंने ऐसा करना उचित नहीं समझा कारण धर्म पालना या न पालना आत्म भावना पर निर्भर है न कि जोरजुल्मपर ।

आचार्यश्री का प्रतिदिन व्याख्यान होता रहा देवगुरु धर्म का स्वरूप तथा मुनि धर्म—गृहस्थ धर्म और साधारण आचार व्यवहार से उन नूतन श्रावकों में ऐसे तो संस्कार डाल दिये कि दिन ब दिन उनकी जैन धर्मपर श्रद्धा—रूचि बढती गई। कालान्तर आचार्यश्रीने वहां से विहार करने का विचार किया इस पर महाराज रूद्राटने अर्ज करी कि भगवान् ! यहां के लोग अभी नए है मिथ्यात्वी लोगों का चिरकाल से परिचय है न जाने आपके पधार जाने पर इन लोगों का फिर भी जोर बढ जावें वास्ते मेरी अर्ज तो यह है कि आप चतुर्मास भी यहां ही करें। इस पर आचायश्रीने फरमाया कि राजन ! मुनि तो हमेशां घुमते ही रहते हैं जैन धर्म की नींव मजबूत बनाने को खास दो बातों की आवश्यक्ता है ? (१) जैन मन्दिरों का निर्माण होना (२) जैनविद्यालय स्थापन कर जैनतत्व ज्ञान का प्रचार करना। ये दोनों कार्य आप लोगों के अधिकार के है। राजाने अर्ज करी कि हम इन दोनों कार्यो कों शीघ्रता से प्रारंभ करवा देंगे पर साथ में आपश्री के उपदेश की भी सम्पूर्ण जरूरत है। सूरिजी महाराजने इस बात को स्वीकार कर कितनेक मुनियों को शिवनगर में रख आपने आसपास में विहार किया जहां २ आप पधारे वहां २ जैनधर्म का खूब प्रचार किया जहां नए जैन बनाए वहां जैन मन्दिर और विद्यालय स्थापन करवा दीये और कहीं २ पर तो आप अपने साधुओं को वहां ठहरने की आज्ञा भी दे दी।

इधर महाराज रूद्राटने बडा भारी आलिशान जैन मन्दिर

तैयार करवाया और कई विद्यालय खोल दी कि जिनके अन्दर ज्ञान का प्रचार हो रहा था।

महाराज रूद्राट और श्री संघ के अत्याग्रह से आचार्यश्री यक्षदेवसूरि का चतुर्मास शिवनगर में हुआ जिस से श्री संघ में उत्साह की और भी वृद्धि हुई।

महाराज रूद्राट के बनाए हुए महावीर प्रभु के मन्दिर की प्रतिष्टा हुई विद्यालय के जरिए जैन तत्वज्ञानका भी खूब प्रचार हुआ आचार्य श्री के प्रभावशाळी उपदेश का यों तो सब लोगोंपर अच्छा असर हुआ पर विशेष प्रभाव महाराजा रूद्राट और राजकुमार कक्व पर हुआ कि जिन्होंने अपने राजकाज और संसार सबन्धी सर्व कार्योंका परित्याग कर सूरिजी महाराज के चरणोंकी सेवा करने को उपस्थित हो गए अर्थात् दिक्षा लेनेको तैयार होगए उनका अनुकरण करनेको कई नागरीक लोग भी मुक्ति रमणीकी वरमाला से ललचागए चतुर्मास के बाद शुभ मुहूर्तके अन्दर महाराज रूद्राटने अपने वड़े पुत्र शिवकुमारका राज्याभिषेक कर आप अपने लघु पुत्र कक्व और करीवन १५० नर नारियों के साथ आचार्य श्री यक्षदेव सूरिके पास मार्गशिर्ष शुक्ल पंचमी को वड़े ही समारोहके साथ जैन दिक्षा धारणकर ली। सिन्ध प्रदेशमें यह पहला पहली महोत्सव होनेसे जैन धर्मका बड़ा भारी उद्योत हुआ जनतापर जैन धर्मका बड़ा भारी प्रभाव पड़ा कारण उस जमानेमें सिंध प्रदेशका महाराजा रूद्राट एक

नामी राजा था उसके दिक्षा लेनेसे सम्पूर्ण सिन्ध प्रदेशमें जैन धर्मकी बडी भारी छाप पड गई थी।

शिवनगर के चतुर्मास से आचार्य श्री को बड़ा भारी लाभ हुआ आसपासमें अनेक मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा और अनेक विद्यालयोंकी स्थापना करवा के जैन धर्मका प्रचार किया।

आचार्य यक्षदेवसूरिने अपने शिष्य समुदाय के साथ सिन्ध भूमि में खूब ही परिभ्रमण किया फल स्वरूपमें थोड़े ही दिनोंमें आपने १००० साधु साध्वियोंको दिक्षा दी सेकडों जैन मन्दिर और विद्यालयों की स्थापना करवाई चारों और जैन धर्मका झण्डा फरका दिया।

मुनिगण में कक्व नामका मुनि जो महाराज रूद्राट का लघु पुत्र था उसने थोडे ही दिनों में ज्ञानाभ्यासकर स्व–परमत के अनेक शास्त्रोंका ज्ञान से पारगामी हो गया जैसे आप ज्ञान में उच्चकोटीका ज्ञानी थे वैसे जैन धर्मका प्रचार करने में भी बड़े ही वीर थे जिसमें भी अपनी मातृ भूमिका तो आपको इतना गौरव था कि मैं सबसे पहिले इस सिन्ध भूमिका ही उद्धार करूंगा अर्थात् सिन्ध प्रान्तको जैन धर्ममय बना दूंगा और आपने किया भी ऐसा ही।

एक समय का जिक्र है कि आचार्यश्रीने परम पवित्र तीर्थाधि-राज श्री सिद्धाचळजीके महात्म्यका व्याख्यान किया उसको श्रवण कर चतुर्विध श्रीसंघने अर्ज करी कि हे प्रभो! आप हमको उस पवित्र तीर्थकी यात्रा करवाके गर्भावाससे बहार निकालें इस बातको

सूरिजी महाराजने स्वीकार कर ली तत्पश्चात् यह उद्घोषणा प्रायः सिन्ध प्रान्त में हो गई और सूरीश्वरजीकी अध्यक्षता में करीबन १००० साधु साध्वी और करीबन एक लक्ष श्राद्धवर्ग उपस्थित हुए शिवनगर के महाराज शिवराजको संघपति पद अर्पण कर शुभ मुहुर्तके अन्दर संघ छरी पालता हुआ यात्रा करने को रवाना हो गया जिसके अन्दर सोना चान्दीके देरासर रत्नों की प्रतिमाए और हस्ती घोड़े रथ पैदल बाजा गाजा नकार निशान वगेरह बड़े आडम्बर था जिस भक्तिका प्रभाव अन्य लोगों पर भी काफी पड रहा था, ग्राम नगर और तीर्थोंकी यात्रा करता हुआ क्रमशः संघ श्रीशत्रुंजय पहूंचा और संघपति आदि लोगोंने मणि माणक मुक्ताफल तथा श्रीफल और स्वर्ण से तीर्थको वधाया और चतुर्विध संघ सूरिजी महाराजके साथ यात्रा कर अपने जीवनको सफल किया। बाद गिरनार वगेरह तीर्थोंकी यात्रा कर आनन्द मंगलसे श्री संघ वापस सिन्ध प्रदेश में पहूंच गया। इस यात्रासे जैन धर्मपर लोगों की श्रद्धा रूची और भी बढ गई। इत्यादि आचार्य श्री यक्षदेव सूरिने अपने जीवन में जैन शासनकी बड़ी भारी सेवा करी आचार्य श्री स्वयम्प्रभसूरि और रत्नप्रभसूरि के बनाए हुए महाजन संघका रक्षण पोषण और वृद्धि करी। सिन्ध जैसी विकट भूमिमें विहार कर सबसे पहिले लुप्त हुआ जैन धर्मका फिरसे आपश्रीने ही प्रचार किया, हजारो जैन मन्दिर और विद्यालयोंकी स्थापना करवाई और हजारों साधु साध्वीयों को दिक्षा दे श्रमण संघमें वृद्धिकरी इत्यादि आपश्रीका जैन शासनपर बडा भारी उपकार

हुआ है। आपने सिन्ध प्रान्तमें विहार कर जैन धर्मका बड़ा भारी झण्डा फरकाया था जब आप अपनी अन्तिमावस्था जानी तब चतुर्विध श्री संघकी समक्ष मुनि कक्वको आचार्य पद पर नियुक्त कर शासनका सब भार उनको सुप्रत कर आप कई मुनियों को साथ ले विहार करते हुए पवित्र सिद्धगिरीकी शीतल छायामें शेषायु निवृतिमें विताने लगें। अन्तमें पनरा दिन के अनसन और समाधि पूर्वक चैत्र कृष्ण अष्टमी को नाशमान शरीर का त्याग कर स्वर्गवास किया उस समय आपके उपासक साधु साध्वी श्रावक श्राविकाओंकी उपस्थिती बडी विशाल संख्यामेंथी उन्होने आपश्रीकी स्मृति के लिए सिद्धगिरीपर एक बड़ा भारी स्थंभभी कराया था। इति श्री पार्श्वनाथ प्रभुके सातवें पाटपर आचार्य श्री यक्षदेवसूरि महा प्रभाविक हुए।

(८) तत्पट्टे आचार्य श्री ककसूरिजी महाराज हुए आपश्रीका विशेष परिचय करवानेकी आवश्यक्ता नहीं है कारण पाठक स्वयं जान सके हैं कि आप एक राजकुमार तरुण सूर्यकी भान्ति चढती जुवानी में राज रमणिका त्याग कर आचार्य यक्ष-देवसूरि के पास अपने पिता और १५० नर नारियोके साथ दिक्षा लीथी आचार्यश्रीकी सेवाभक्ति कर अनेक विद्याओं और स्वपरमतका ज्ञान प्राप्त किया था। आप श्रीमान अपनी मातृ भूमि में चारों और विहार कर जैन धर्मका प्रचार किया कारण अपने ज्ञान सूर्यकी किरणोंसे मिथ्यान्धकारका नाश करने में आप बड़े ही विद्वान थे पाखण्डियों के दुराचार को समूल नष्टक-

रने में आप वादी चक्रवर्त्ति की पद्वीसे विभूषित थे जैन धर्मका झण्डा फरकानेमें आप अद्वितीय वीर थे शासन रथको चलानेमें मारवाड़ के वृषभ कहलाए जाते थे, आप के पुरुषार्थ और प्रयत्न से जैसे जैन जनता में वृद्धि हो रही थी वैसे ही साधु साध्वियों की संख्या भी बढ रही थी जो सिन्ध प्रान्त में बहुत वर्षों तक जैन धर्मकी प्राबल्यता रही वह आप के परिश्रमका ही फल है।

एक समय का जिक्र है कि आचार्य श्री कक्कसूरिजी रात्री में यह विचार कर रहे थे कि हमारे पूर्वजोंने नए २ प्रान्तों में जैन धर्म प्रचलित किया जैसे आचार्य श्री स्वयंप्रभसूरिने श्रीमाल व पद्मावती नगरी में महाजन संघ की स्थापना की आचार्य श्री रत्नप्रभसूरिने उपकेश पट्टन में महाजन संघ में वृद्धि की और हमारे गुरुवर्य आचार्यश्री यक्षदेवसूरिजीने सिन्ध प्रान्तमें जैन धर्म प्रचलित किया तो क्या मैं केवल पूर्वजों के बनाए हुए जैनों की रोटियों खा कर मेरा जीवन समाप्त कर दूंगा? क्या इसमें ही मेरे जीवन की सफलता होगी? इत्यादि विचारकर रहे थे इतने में एक आवाज हुई कि भो आचार्य! "आप कच्छ देश में विहार करो आप को बड़ा भारी लाभ होगा" इन वचनों को श्रवण कर आचार्यश्री एकदम चमक उठे इधर उधर देखा किसी को नहीं पाया। फिर सूरिजीने सोचा कि यह आदर्श प्रेरणा करनेवाला कोई न कोई हमारा सहायक ही है इतने में तो मातुला देवीने आकर अर्ज करी "प्रभो! आप कच्छ प्रान्त में विहार करें ताकि अपने पूर्वजों कि माफिक आप भी जैन धर्म का प्रचार

करने में भाग्यशाली बनें "। इस प्रेरणा को लेकर आचार्यश्रीने प्रातःकाल होते ही मुनिगण को आज्ञा फरमा दी कि हमने कच्छ देश की और विहार करने का निश्चय किया है वास्ते कठिन से कठिन तपश्चर्या करनेवाले और अनेक संकटों का सामना करने में समर्थ हो वह मुनि कम्मर कस तैयार हो जावें यह हुक्म मिलते ही अनेक मुनि बड़े उत्साह और वीरता से तैयार हो गए। क्यों न हो वीरों की सन्तान भी वीर ही हुआ करती है।

सिन्ध प्रान्त में रहकर विहार करनेवाले मुनियों के लिए आचार्यश्रीने सुन्दर व्यवस्था कर दी और आपने ढाईसो मुनि पुङ्गवों के साथ कच्छ भूमि की तरफ विहार कर दिया। जैन धर्म के प्रचारार्थ भ्रमण करते हुए महात्माओं को अनेक प्रकार के संकट परिसह हो रहे थे। भूख प्यास की तो वे लोग पर्वाह भी नहीं करते थे गिरी गुफा और जङ्गलों में रहना तो वे अपना आत्मीय गौरव समझते थे। चिन्ता फिक्र ग्लानि तो उनसे हजार कोस दूर रहा करती थी दूसरों की सहायता की अपेक्षा रखना वे अपना पतन ही समझते थे। स्वोत्साह और पुरुषार्थ को अपने मददगार बना रखे थे। घोर तपश्चर्या होनेपर भी उनके चेहरे पर दिव्य तेज झलक रहा था इस अवस्थामें हमारे युथपति आचार्यदेव अपने शिष्य समुदाय के साथ कच्छ प्रदेश की ओर विहार करते हुए क्रमशः कच्छ भूमिमें आपश्रीने पदार्पण किया।

एक समय का जिक्र है कि जङ्गल के अंदर विहार करते हुए मुनिवर्ग इधर उधर रास्ता भूल गए और आचार्यश्री केवल

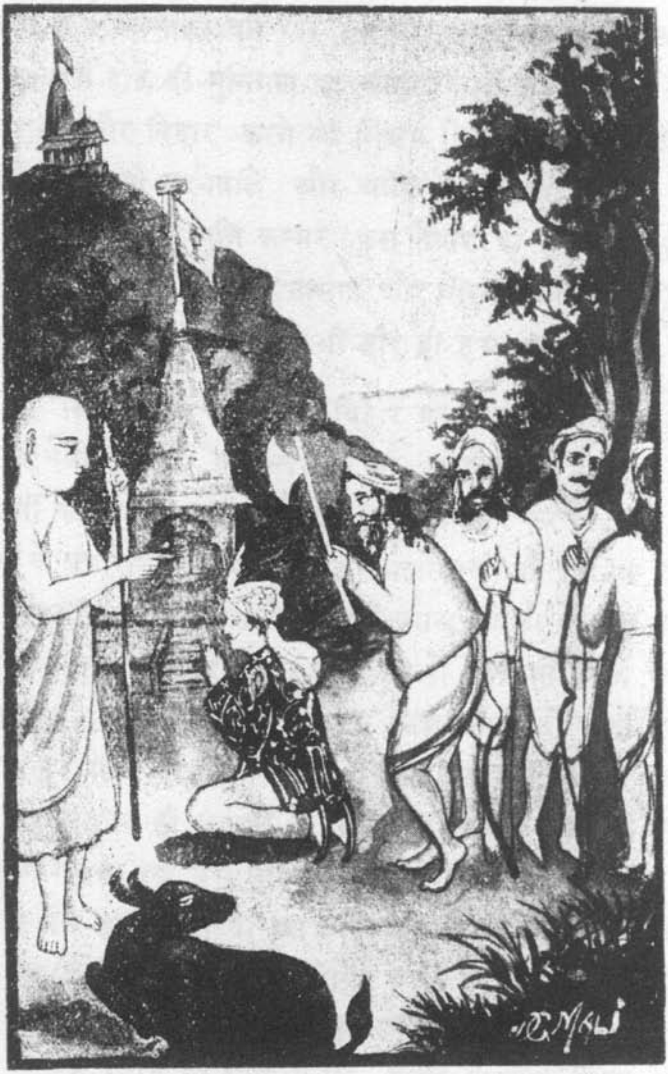

रास्ता भूले हुए आचार्य श्री कक्कसूरिजी देवीमन्दिर पर पहुंचे, जहां भीलों को अहिंसाधर्म का उपदेश दे, बली के लिये तैयार किये हुए राजकुमार और अनेक निरपराध प्राणियों को अभयदान दीलवाया ।

चार साधुओं के साथ एक महान् अटवीमें जा निकले जहां चारों ओर पहाड़ों की श्रेणियों आ गई है। दिशाएं अपनी भयङ्करता का इतना तो प्रभाव डाल रही थी कि मनुष्य तो क्या पर पशु पक्षी भी वहां ठहर नहीं सक्ते थे। इधर तरूण सूर्यने अपने प्रचण्ड प्रतापसे बिश्व को व्याकुल बना रहा था पर हमारे आचार्यश्री उस की पर्वाह नहीं करते हुए बडी खुसी के साथ अटवी का उल्लंघन कर रहे थे। उस भयङ्कर अटवी के अन्दर चलते हुए आपश्री क्या देख रहे हैं कि एक पर्वत के निकटवृर्त्ति देवी का मन्दिर है एक तरफ अनेक भैंसे बकरे बन्धे हुए हैं तब दूसरी ओर बहुत से जङ्गली आदमी खड़े हैं देवी के सामने एक महान् तेजस्वी तरूणावस्था में पदार्पण किया हुआ एक नवयुवक बैठा है जिसकी भव्याकृती होनेपर भी चहरे पर कुछ ग्लानि छाई हुई दृष्टीगोचर हो रही थी। उस तरूण के पास में ही एक निर्दय दैत्यमा आदमी अपने क्रूर हाथों में कुठार उठाया हुआ खडा है शायद् तरूण की ग्लानी का कारण यह ही हो कि उस कुठार द्वारा उस की बली चढाई जाय।

उस घृणित द्रश्य को देख आचार्यश्री को उस तरूणपर वात्सल्यताभाव हो आया अतएव सूरिजी महाराज एकदम चलकर के वहां गए और उन क्रूर वृतिवालों से कहने लगे कि महानुभावों! यह आप क्या कर रहे हैं? उन लोगोंने उत्तर दिया कि तुम को क्या जरूरत है, तुम अपने रास्ते जाओ। सूरिजीने कहा कि मैं आप के इस चरित्र को सुनना चाहता हूं कि आपने

इस सुकुमार के लिए यह क्या तजवीज कर रक्खी है ? एक मठपति बोला कि तुम नहीं जानते हो कि यह जगदम्बा महाकाली है, बारह वर्षों से इस की महापूजा होती है बतसि लक्षण संयुक्त पुरुष की बली देकर सम्पूर्ण विश्व की शान्ति की जाती है इस पर सूरिजी महाराजने सोचा कि अहो आश्चर्य ! यह कितना अज्ञान ! यह कितना पाखण्ड ! ! यह कितना दुराचार ! ! !

आचार्यः—जगदम्बा अर्थात् जगत् की माता क्या माता अपने बालकों का रक्षण करती है या भक्षण ?

जंगली:— तुम क्या समझते हो यह भक्षण नहीं है पर जिस की बलि दी जाती है, वह सदेह स्वर्ग में जाकर सदैव के लिये अमर बन जाता है ।

आचार्यः—तो क्या आप लोग सदैव के लिए अमर बनना नहीं चाहते हो ? कि इस नवयुवक को अमर बना रहे हो ।

जंगली:—देवी की कृपा इसपर ही हुई है ।

आचार्यः—क्या आप पर देवी की कृपा नहीं है ?

जंगली:—देवी की कृपा तो सम्पूर्ण विश्वपर है ।

आचार्यः—तो फिर एक इस तरूण का ही बली क्यों ?

जंगली:—बकवाद मत करो तुम तुमारे रास्ते जाओ ।

आचार्यः— भद्रो ! तुम इस निष्ठुर कर्म को त्याग दो, इस में देवी खुशी नहीं होगी परन्तु भवान्तरमें तुम को इस का बडा भारी बदला देना पडेगा ।

जंगली:—कह दिया कि तुम अपना रास्ता पकडो।

आचार्यः—लो हम यहां पास में ही खडे हैं देखें, तुम क्या करते हो?

जंगलीने युवकपर कुठार चलाना प्रारंभ किया पर सूरिजी महाराज के तप तेजसे न जानें उस का हाथ क्यों रुक गया कि अनेक प्रयत्न करने पर भी वह अपने हाथ को नीचा तक भी नहीं कर सका, इस अतिशय प्रभाव को देख सब लोग दिग्मुग्ध बन गए और आचार्यश्री के सामने देखने लगे कि यह क्या बलाय है। आचार्यश्रीने फरमाया कि भव्यों! देवी देवता हमेशां उत्तम पदार्थों के भोक्ता हैं न कि ऐसे घृणित पदार्थों के। यह तो किसी मांस भक्षी पाखण्डियोंने देवी देवताओं के नामसे कुप्रथा प्रचलित की है और इस में शान्ति नहीं पर एक महान् अशान्ति फैलती है इतना ही नहीं पर इस महान पाप का बदला नरक में देना पड़ता है वास्ते इस पाप कार्य का त्याग कर दो अगर तुम को देवी का ही क्षोभ हो तो लो देवी की जुम्मेवारी मैं अपने शिर-पर लेता हूं आप इन भैंसे बकरों और युवक को शीघ्र छोड़ दो कारण जैसे तुम को तुमारे प्राण प्यारे हैं वैसे इनको भी अपना जीवन वल्लभ है। जगत् में छोटे से छोटे और दुःखीसे दुःखी जीव सब जीवित रहना चाहते हैं मरना सब को प्रतिकुल है किसी जीव को तकलीफ देना भी नरक का कारण होता है तो ऐसी महान् घोर रूद्र हिंसा का तो पूछना ही क्या? मैं आप को ठीक हितकारी शिक्षा देता हुं कि आप अपना भला अर्थात् कल्यान

चाहते हैं तो इस पापमय हिंसा का त्याग करो। जंगली टीग २ नैत्रोंसे सूरिजी के सामने देखते हुए चुपचाप रहे कारण चिरकालसे पडी हुई कुरूढी का एकदम त्याग करना उन अज्ञानी लोगों के लिये यह एक बड़ी मुश्किल की बात थी तथापि सूरिजी महाराज का उनपर इतना प्रभाव पडा कि वे कुछ बोल नहीं सके।

आचार्यः—उस नवयुवक के सामने देखते हुए बोले कि महानुभव ! तुमारे चहरे पर से तो ज्ञात होता है कि तुम किसी उच्च खानदान के वीर हैं फिर समझ में नहीं आता है कि तुम इस निरापराधी मुक प्राणियों की त्रास को नजरों से कैसे देख रहे हो ? उस तरुणने सूरिजी महाराज के यह वचन सुनते ही बडी वीरता से उठकर उन भैंसे वकरों को एकदम छोड दिये और सूरिजी महाराज के चरणों में सिर झुका कर बोला कि भगवान ! आज हम को नया जन्म देनेवाले आप हमारे धर्मपिता हैं। आप के इस परमोपकार को मैं कभी नहीं भूल सकूंगा।

आचार्यः— महानुभाव ! इस में उपकार की क्या बात है यह तो हमारा परम् कर्तव्य है और इस के लिए ही हम हमारा जीवन अर्पण कर चूके हैं पर मुझे आश्चर्य इस बात का है कि इन पाखण्डियों के चक्रमें तुम कैसे फंस गए ?

नवयुवक—महाराज ये लोग स्वर्ग भेजने की शर्त पर हमको यहां पर लाए थे अगर आप श्रीमानों का इस समय पधारना न होता तो न जाने ये निर्दयी लोग मेरी क्या गती कर डालते। आपका

भला हो कि आपने मुझे जीवन संकटसे बचाया अब मेरा जीवन तो आपश्री के चरणों में है यह कहते ही उस तरुण के नैत्रोंसे आंसुओंकी धारा छूट गई।

आचार्य—महानुभाव ! घबराओ मत अगर आपको इस बात का अनुभव हो गया हो और अपने भाइयों को इस संकट से बचाना हो तो वीरता पूर्वक इस आसुरी नीच कुप्रथा को जडामूल से उखाड़ दो कि तुमारी तरह और किसी को दुःखी न होना पड़े।

युवक—महाराज ! आपका कहना सत्य है, और मैं प्रतिज्ञा पूर्वक आप के सामने कहता हु कि आप हमारे नगर में पधारे में थोडा ही दिनो में इन पाखण्डियों के पैर उखड दूंगा।

आचार्य—हे भद्र ! हम इतने ही नहीं पर हमारे साथ बहुत से साधु हैं किन्तु हम लोग रास्ता भूल करके इधर आए हैं और हमारे साधु न जानें किस तरफ गए होंगे ? कारण हम सब लोग इस भूमि की राहसे बिल्कुल अज्ञात हैं अगर यहां से कोई ग्राम नजदीक हो तो उसका रास्ता हमको बतला दिजिए।

युवक—पूज्यवर ! यहां से बारह कोस पर हमारी भद्रवती नगरी है अगर आप वहां पर पधार जावें तो हम लोग आपके लिए सब इंतजाम कर देंगे।

आचार्यजीने इस बातको स्वीकार करली तब वह नवयुवक आपश्री के साथ में हो गया और क्रमशः शायंकाल होते ही भ-

द्रवती नगरी पहुंच गए। नगरी के बाहर किसी योग्य स्थान (बगीचे) में आचार्यश्री ठहर गए।

आचार्यश्री के साथ जो नवयुवक था वह इस भद्रावती नगरी के महाराजा शिवदत्त का लघु पुत्र देवगुप्त था। आचार्यश्री को बगीचे में ठहरा करके सब इंतजाम कर वह अपने पिता के पास गया और अपनी गुजरी हुई तमाम गमकहानी आद्योपान्त कह सुनाई। राजाने उन मठपतियों की घातक वृति पर बहुत ही अफसोस किया और अपने पुत्र को जीवितदान देनेवाले आचार्य प्रति भक्तीभावसे प्रेरित हो देवगुप्त को साथ ले आचार्यश्री के चरणों में हाजर हुआ नमस्कार कर बोला " भगवान् ! आपने मेरे पर बड़ा भारी उपकार किया इसका बदला तो मैं किसी प्रकार से नहीं दे सक्ता हुं पर अब आपके भोजन के लिए फरमावें कि आप भोजन बनावेंगे या हम बनवा लावे. "।

आचार्य—न तो हम हाथसे रसोई बनाते हैं न हमारे लिए बनाई रसोई हमारे काम में आती है और हमको इस समय भोजन करना भी नहीं है। हम तमामो के तपश्चर्या है इधर सूर्य भी अस्त होने की तैयारी में है और सूर्यास्त होने के बाद हम लोग जलपान तक भी नहीं करते है।

देवगुप्त—भगवान् ! ऐसा तो न हो कि आप भूखे रहें और हम भोजन करे। अगर आप अन्न जल नहीं लें तो हम भी प्रतिज्ञा करते है कि हम भी न लेंगे बस देवगुप्तने भी उस रात्री

सूरिजी का अनुकरण किया अर्थात् अन्न जल नहीं लिया इसका नाम ही सच्ची भक्ती है। देवगुप्तने सूरिजीके अन्य साधुओंकी खबर करने को इधर उधर आदमी भेजे तो रात्री में ही खबर मिल गई थी कि नगरी से थोडे ही फासले पर एक पर्वत के पास सूर्यास्त हो जाने पर सूरिजी महाराजकी राह देखते हूवे सब साधु वहां ही ठहरे हैं. देवगुप्तने यह समाचार सूरिजी महाराज के कानों तक पहूंचा भी दिया, मुनि वर्ग तो अपने ध्यान में मग्न हो रहे थे।

इधर भद्रावती नगरी में उन पाखण्डियों की पापवृति के लिए जगह २ पर धिक्कार और आचार्यश्री के परोपकार परायणता के लिए धन्यवाद दिए जा रहे हैं।

सूर्योदय होने के पश्चात् इधर तो आचार्यश्रीने अपनी नित्य क्रियासे निवृति पाई. उधर राजा प्रजा बडे ही समारोह के साथ सूरिजी महाराज के दर्शनार्थी और देशना रुपी अमृतपान करने की अभिलाषा से असंख्य लोग उपस्थित हो गए। सूरिजी महाराजने भी धर्मलाभ के पश्चात् देशना देनी प्रारंभ की आचार्य कक्कसूरिजी महाराज बडे ही समयज्ञ थे आपने अपने प्रभावशाली व्याख्यान-द्वारा उन पाखण्डियोंकी घोर हिंसा और व्यभिचारसे घृणित जनता पर अहिंसा भगवती का इतना तो प्रभाव डाला कि राजा और प्रजा एकदम सूरिजी महाराज के झण्डेलीझण्डा के नीचे जैन धर्म का सरणा अर्थात् जैन धर्म स्वीकार करने को तैयार हो गए आचार्यश्रीने भी अपने वासक्षेपसे उनको पवित्र बना के जैन धर्म

की शिक्षा दिक्षा दे जैनी बना लिए इतना ही नहीं पर महाराज कुमार देवगुप्तने तो प्रतिज्ञापूर्वक कह दिया कि मैं तो सूरिजी महाराज के समीप दिक्षा ले कच्छ देश का उद्धार करूंगा।

जैसे दिन प्रतिदिन आचार्यश्री का व्याख्यान होता रहा वैसे जैन धर्म का प्रचार बढता गया तथा सदाचार का जोर बढता गया वैसे दुराचार के पैर उखडते गए जैन मन्दिर और जैन विद्यालयों की खूब मजबूत नीवें डाली जा रही थी कि भविष्य के लिये भी जनता में जैन धर्मकी सुदृढ श्रद्धा और ज्ञानका प्रचार होता रहे। आचार्यश्रीकी आज्ञानुसार कई मुनि आसपास के ग्रामों में उपदेश कर अहिंसा धर्म का प्रचार भी किया करते थे। कच्छ प्रदेशमें कई अर्सेसे जैन धर्मका नाम तक भी लुप्त सा हो गया था पर इस समय आचार्यश्री कक्कसूरिजीने फिर से जैन धर्म का बीज बो दिया इतना ही नहीं पर उसके सुन्दर अङ्कुर भी दिखाई देने लग गए थे। महाराज कुमार देवगुप्त और उनके सहचारी सैकडों नरनारी को सूरिजी महाराजने बड़े ही समारोहसे जैन दिक्षा दी और हजारों नहीं पर लाखों लोगों को जैन धर्मोपासक बनाए। राजा प्रजाका अत्याग्रह देख तथा भविष्य का लाभालाभ पर विचार कर आचार्यश्रीने वह चतुर्मास भद्रावती नगरी में ही किया। आपश्री के विराजने से वहां पर बडा भारी लाभ हुआ सद्ज्ञान के प्रचार द्वारा जनता की श्रद्धा जैन धर्मपर विशेष सुदृढ हो गई। आसपास के ग्रामो में भी सूरिजी महाराज का बहुत अच्छा प्रभाव पडा अर्थात् थोडे ही

दिनों में जैन धर्म एक नवपल्लव वृक्ष की भान्ति फलनें फूलने लग गया। चतुर्मास के पश्चात् आचार्य श्री कच्छ भूमि में विहार कर चारों ओर जैन धर्म का प्रचार कर रहे थे।

मुनि देवगुप्तने पहिले से ही प्रतिज्ञा की थी कि में दिक्षा ले कर सब से पहिले मेरी मातृभूमि का उद्धार करूंगा। इसी माफिक आपने धर्मध्वज हाथ में लेकर चारों ओर पाखण्डियों की पोप लीला यज्ञ होमादि में असंख्य प्राणियों की होती हुई घोर हिंसा और दुराचारियों की व्यभिचार वृति समूल नष्ट कर जहां तहां अहिंसा भगवती का ही प्रचार किया। जैन धर्म का खूब भण्डा फरकाया। आचार्य श्री कक्कसूरिजीने जैसे महान् परिश्रम उठाया था वैसे ही उन को महान् लाभ भी प्राप्त हुआ; कारण कच्छ भूमि में जैन धर्म का प्रचार किया सैकडो मुनियों को दिक्षा दी सैकड़ों जैन मन्दिरों की प्रतिष्टा और हजारों जैन विद्यालयों की स्थापन करवाई, लाखों लोगों को जैन धर्मोपासक बनाए इत्यादि। आपने अपने पूर्ण परिश्रम द्वारा अधोगती में जाती हुई जनता का उद्धार किया।

जिस समय मरूस्थल का श्रीसंघ सूरिजी महाराज का विनन्ती के लिए आया था उस समय कच्छ में तिर्थाधिराज श्री सिद्धगिरी की यात्रा निमित्त संघ की बडी भारी तैयारियां हो रही थी, पट्टावलीकारोंने इस संघ के लिए इतना वर्णन किया है सिन्ध और कच्छ के सिवाय मरूस्थलादि प्रान्तों के लाखों लोगों से मेदनी विभूषित हो रही थी हजारों हस्ती रथ अश्व वगेरह सवा-

रियों और सोना चान्दी के देरासर रत्नों की प्रतिमाएं तथा वाजित्रों से गगन गूंज उठा था करीबन् पांच हजार साधु साध्वी यात्रा निमित्त संघ में एकत्र हूए थे ।

शुभ मुहूर्त से महाराजा शिवदत्त के संघपतित्व में संघ रवाना हुआ क्रमशः तीर्थयात्रा करता हुआ सिद्धगिरि के दूर से दर्शन करते ही हीरा पन्ना और मुक्ताफल से तीर्थ पूजा की और सूरिजी महाराज के साथ भगवान् आदीश्वर की यात्रा कर सब लोगोंने अपने जीवन को पवित्र किया इस सुअवसर पर आचार्यश्रीने देवगुप्त मुनि को योग्य समझ श्री संघ के समक्ष सिद्धाचल की शीतल छाया में वासक्षेप के विधि विधान से आचार्य पद से विभूषित कर अपना भार आचार्य देवगुप्त सूरि को सुप्रत कर दीया। आचार्यश्री की समय सूचकता को देख श्रीसंघ में बडा ही हर्ष और आनन्द मङ्गल छा गया। सिद्धगिरी की यात्रा के पश्चात् आचार्य देवगुप्त सूरि की अध्यक्षता में सिंध और कच्छ का संघ तो वापिस लोट गया और आचार्य कक्कसूरि सौराष्ट्र लाट वगेरह में विहार कर मरूभूमि की ओर पधार गए। अर्बुदाचल की यात्रा कर चन्द्रावती शिवपुरी पद्मावती श्रीमालादि क्षेत्र को पावन करते हूए आप कोरण्टपुर पधारे वहां हजारों साधु साध्वियों आप की पहिले से ही प्रतीक्षा कर रहे थे राजा प्रजाने सूरिजी के नगर प्रवेश का बडा भारी महोत्सव किया कितनेक दिन वहां विराज के चिरकाल से देशना पिपासु भव्य जीवों को धर्मोपदेश से संतुष्ट किए ।

आचार्यश्री की अध्यक्षता में कोरंटपुर के श्रीसंघने एक विराट् सभा करने को आसपास में विहार करनेवाले साधु साध्वियों और अनेक ग्राम नगरों के श्रीसंघ को आग्रह पूर्वक आमन्त्रण भेजा इस पर प्रथम तो आचार्यश्री का चिरकाल से पधारना हुआ वास्ते उन के दर्शन का लाभ. दूसरा यह प्राचिन तीर्थरूप स्थान है भगवान् महावीर की मूर्ती का दर्शन. तीसरा श्रीसंघ एकत्र होगा उन का दर्शन. चोथा आचार्यश्री की अमृतमय देशना का लाभ और हजारों साधु साध्वियों के दर्शन. पांचवा धर्म और समाज सम्बन्धी अनेक सुधारे होंगे उन का लाभ इत्यादि कारणों को लेकर हजारों साधु साध्वियों और लाखों श्रावक श्राविकाओं एकदम एकत्र हो गए। देव गुरु और संघ यात्रा के पश्चात् सूरिजी महाराज के मुखार्विन्द की देशना की अभिलाषा होरही थी।

सूरीश्वरजी महाराजने चतुर्विध संघ के अन्दर खड़े हो अपनी वृद्ध वय होने पर भी बडी बुलन्द आवाज से धर्मदेशना देना प्रारंभ किया। आपश्रीने अपने व्याख्यान के अन्दर श्रमण संघ की तरफ इसारा कर फरमाया कि प्यारे श्रमण गण! आप जानते हो कि एक प्रान्त में भ्रमण करने की अपेक्षा देशोदेश में विहार करने से स्वपरात्मा का कितना कल्याण होता है वह मैं मेरे अनुभव से आप को बतला देना चाहता हूं कि आचार्य स्वयम्प्रभसूरिने श्रीमाल नगर और पद्मावती नगरी में हजारों नए जैन बनाए आचार्य श्री रत्नप्रभसूरिने उपकेशपुर में लाखों श्रावक

बनाए आचार्य श्री यज्ञदेवसूरिने सिन्ध जैसे देश को जैनमय बना दिया इतना ही नहीं पर मेरे जैसे पामर प्राणियों का उद्धार किया मेरे विहार के दरम्यान कच्छ जैसा पतित देश भी आज जैनधर्म का भली भान्ति आराधन कर स्वर्ग मोक्ष के अधिकारी बन रहे हैं अभीतक ऐसे प्रान्तो भी बहुत है कि जहां पूर्व जमाने में जैन धर्म का साम्राज्य वरत रहा था आज वहां जैन धर्म के नाम को भी नहीं जानते हैं उस प्रदेश में जैन मुनियों के विहार की बहुत जरूरत है। आशा है कि विद्वान मुनि कम्मर कस के तैयार हो जाएंगे। साथ में आपश्रीने फरमाया कि जैसे मुनिवर्ग का कर्तव्य है कि देशविदेश में विहार कर जैनधर्म का प्रचार करें, वैसे श्राद्ध वर्गका भी कर्तव्य है कि इस कार्य में पूर्णतया सहायक बने। नूतन श्रावकों के प्रति वात्सल्य भाव रक्खे, उन के साथ सब तरह का व्यवहार रक्खें, अपने २ ग्राम नगर में जैन विद्यालय और जैन मन्दिरों का निर्माण करवा के शासन की सेवा का लाभ हांसिल करें इत्यादि सूरीश्वरजी महाराज की देशना से श्रोताजन को यह सहज ही में खयाल हो आया कि आचार्यश्री के हृदय में ही नहीं पर नस २ और रोम २ में जैन धर्म का प्रचार करने की बिजली चमक उठी हैं।

आचार्य श्री के प्रभावशाली उपदेश की असर जनता पर इस कदर की हुई कि उन की नस २ में खून उबल उठा और जैन धर्म का प्रचार करना एक खास उन का कर्तव्य बन गया था. तदनुसार बहुत से मुनि पुङ्गवोंने हाथ जोड़ सूरिजी से अर्ज

करी कि भगवान् ! आप आज्ञा फरमावे उसी देश में हम विहार करने को तैयार है जैन धर्म का प्रचार के लिये कठनाइए और परिसह की हम को परवाह नहीं है पर हम हमारे प्राण देने को भी तय्यार है इत्यादि इसी माफिक श्री संघने भी आप श्रीमानों की आज्ञा को शिरोधार्य करने की भावना प्रदर्शित करी इस पर सूरिजी महाराज को बडा सन्तोष हुआ और यथायोग्य आज्ञा फरमा के श्री संघ को कृतार्थ किया. बाद जयध्वनी के साथ सभा विसर्जन हुई।

तदनन्तर कोरंटपुर श्री संघने सूरीश्वरजी महाराज को चतुर्मास की विनन्ती करी और लाभालाभ का कारण देख आचार्यश्रीने कोरंटपुर में चातुर्मास किया ।

आचार्यश्री के कोरंटपुर में विराजने से शासन प्रभावना, धर्म का उद्योत, जनता में जागृति, आदि अनेक सदूकार्य हुए। इतना ही नहीं पर आसपास के गांवों में भी अच्छा लाभ हुआ। बाद चतुर्मास के आपश्रीने मरूस्थल के अनेक ग्राम नगरों में विहार कर धर्म प्रचार बढाया। क्रमशः आपश्रीमानों का पधारना उपकेशपुर की तरफ हुआ। यह शुभ समाचार मिलते ही उस प्रान्त में मानों एक नई चैतन्यता प्रगट हो गई। उपकेशपुर के श्री संघने सूरिजी का बहुत उत्साह से स्वागत किया श्री संघके आग्रह से ५०० मुनियों के साथ वह चतुर्मास उपकेशपुर में ही विराज कर जनता परोपकार और जैन धर्म का प्रचार किया बाद आप की वय वृद्ध होने से आप कई अर्सेतक वहां ही विराजमान रहे। आपने दिव्य ज्ञानद्वारा अपना अन्तिम समय जान आलोचना पूर्वक अठारे

दिन का अनसन कर लुणाद्रि गिरी पर समाधि पूर्वक काल कर स्वर्गवास किया। आचार्यश्री के देहान्त से श्री संघ में बड़ा भारी शोक छा गया, आपश्री का अग्नि संस्कार हुआ था उस जगह आपश्री की स्मृति के लिए एक बडा भारी विशाल स्तुभ कराया जिस की सेवा भक्ती से जनता अपना कल्याण कर सके। इति श्रीपार्श्वनाथ आठवें पाट पर आचार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी महान् प्रभाविक आचार्य हुए।

(९) नौवें पाट आचार्य श्री देवगुप्तसूरिजी महाराज बड़े ही प्रभावशाली हुए। आपश्री के लिए विशेष परिचय कराने की आवश्यकता नहीं है कारण पाठक स्वयं पढ चूके है कि भद्रावती नगरी के महाराजा शिवदत्त के लघु पुत्र जिस की एक दिन देवी के सामने बली दी जा रही थी, उस को आचार्यश्री कक्कसूरिजी-ने बचा लिया था, जिस देवगुप्तने जैन दिक्षा ले प्रतिज्ञा पूर्वक कच्छ देश से कुप्रथाओं को देशनिकाल दे अपनी मातृभूमि का उद्धार किया, श्री सिद्धगिरी की शीतल छाया में चतुर्विध श्री संघ की विशाल संख्या के अन्दर आचार्य कक्कसूरिजीने अपने करकमलों से आचार्य पद अर्पण किया था वह ही देवगुप्तसूरि आज कच्छ और सिन्ध देश में हजारों मुनियों के साथ परिभ्रमण कर जैन धर्म का झण्डा फरका रहे हैं।

आचार्य देवगुप्तसूरि महाप्रभाविक बड़े ही विद्वान स्वपरमत के शास्त्रों के परमज्ञाता और अनेक चमत्कारी विद्याओंसे भूषित

थे आप की सहनशीलता की बराबरी, पृथ्वी भी नहीं कर सक्ती समुद्र इतना गंभीर होनेपर भी कभी कभी क्षोभ को प्राप्त हो जाता है पर आपश्री की गंभियेता एक अलौकिक ही थी। बड़े २ राजा महाराजा और विद्याधर ही नहीं पर आप श्रीमान् अनेक देवी देवताओंसे भी परिपूजित थे। जैसे आप शास्त्रार्थ में निपूण थे वैसे जैन धर्म का प्रचार करने में अद्वितीय वीर थे आप दूसरों की सहायता की उपेक्षा कर स्वयं आत्मबल पर अधिक विश्वास रखते थे जिस जिस समय आप अपने पूर्वजों के परोपकार पर विचार करते थे उस समय आप का दिल में यह ही भावना पैदा हुआ करती थी कि किसी न किसी प्रदेश में जाकर जैन धर्म का प्रचार किया जाय तब ही अपने जीवन की स्वार्थता समझी जाय. क्यों नहीं ? वीरों की सन्तान वीर ही हुआ करती है।

जिस समय आचार्य देव सिंध प्रान्त में विहार कर रहेथे उस समय का जिक्र है कि कुणाल (पंजाब) देशसे एक कर्माशाह नामका जैन व्यापारी सूरिजी महाराजके दर्शनार्थ आया और उसने आचार्यश्रीसे अर्ज करी कि भगवान् ! आजकल सिद्धपुत्र नामका एक धर्म प्रचारक पंजाब देशमें यज्ञादि धर्मका खूब जोर सोरसे प्रचार कर रहा है और वह थोड़े ही दिनों में यहां भी आनेवाला है आचार्यश्रीने फरमाया कि अगर ऐसा ही है तो अपने को भी उनका स्वागत करने को तैयार ही नहीं पर उनके सामने जाना अच्छा है। बस, अनेक विद्वान मुनिगण के साथ कम्मर कस तैयार हो गए। विहार करते हुए थोड़े ही दिनों में आपने पंजाब

देशमें पदार्पण कर दिया। सिद्धपुत्राचार्य तो पहिलेसेही "अहिंसा धर्म" का कट्टर विरोधी था फिर आचर्यश्रीका पधारना तो उससे सहन हो ही कैसे सके ?

इधर तो आचार्य देवगुप्तसूरि अहिंसा धर्मका प्रचार कर रहे हैं और उधर सिद्ध पुत्राचार्य यज्ञादि में असंख्य प्राणियों के बलीदानसे ही स्वर्ग मोक्ष और संसार की शान्ति बतला रहा था। क्रमशः स्वस्तिक नगरीमें दोनों आचार्यों का आगमन हुआ और शास्त्रार्थ का आन्दोलन होने लगा। बात भी ठीक है कि दोनों आचार्यों के दिलमें अपने २ धर्मका गौरव–घमण्ड था अतःएव शास्त्रार्थ होना जरूरी बात थी स्वस्तीक नगरी के महाराजा धर्मसेनकी राजसभा में शास्त्रार्थ होना निश्चय हुआ।

ठीक नियत समयपर दोनों आचार्य अपने शिष्य मण्डल के साथ राजसभा में आ पहूंचे। सत्यासत्य के निर्णय पिपासु लोगों से राजसभा खचाखच भरा गई। अच्छे २ विद्वानों को मध्यस्थ स्वीकारे जाने के पश्चात् दोनों आचार्यों के संवाद होना प्रारंभ हुआ। सिद्ध पुत्राचार्यने अपना मंगलाचरण में ही यज्ञ करना वेद सम्मत बतलाते हुए अनेक युक्तियोंसे अपने मंतव्य को सिद्ध किया तब आचार्य देवगुप्तसूरिने फरमाया कि "अहिंसा परमो धर्मः" एक विश्वका धर्म है पर हठ कदाग्रह के वशीभूत हो महाकाल की सहायतासें पर्वत जैसे पापात्माओंने यज्ञ जैसे निष्ठुर कर्म को प्रचलित कर दुनियामें अधर्म की नींव डाली जिसके अन्दर सम्मति देनेवाला वसुराजाने अधोगातिमें निवास किया। बाद यज्ञवालक्य

जैसे ने मातापिता के द्वेष के मारे नरमेध, अश्वमेध, गजमेधादि अनेक प्रकार के यज्ञ चला दिए और उनके अन्दर " असंख्य निरापराधि प्राणियों के खूनसे नदियाँ बहानेमें ही " स्वर्ग–मोक्ष माना; मांस मदिराभक्षी लोगोंने ऐसे अधर्म को अपनाया, अगर ऐसी घोर रौद्र हिंसा से ही जीवों को स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति हो जायगी तो फिर। नरक में कौन जावेगा ? महानुभावो ! जैसे अपना प्राण अपने को प्यारा है वैसे सब जीव अपने प्राणों को प्यारा समझते हैं। अगर स्वर्ग मोक्ष बतलानेवाले आप खुद यज्ञ में बली द्वारा स्वर्ग को प्राप्त करे तो उनको खबर पड़ जाय कि यज्ञ जैसा जगत् में कोई भी अधर्म नहीं है। इत्यादि शास्त्र और युक्तिद्वारा " अहिंसा परमो धर्मः " का जनता पर अच्छा प्रभाव डाला; और जैन तत्त्वज्ञान की ऐसी सुन्दर व्याख्या करी कि जनताका दील जैनधर्म की ओर झूक गया कारण यज्ञ की घोर हिंसासे पहिले से ही जनता घृणित हो रही थी फिर एक धर्मांचार्य नाम धरानेवाले हिंसा की पुष्टी करे उसको दुनिया कहां तक सहन कर सके !

सत्य को स्वीकार करना यह एक सचा धर्म है राजा और प्रजा की मनोभावना अहिंसा भगवती के चरणों में सहज ही में झुक गई थी इतना ही नहीं पर शास्त्रार्थ के अन्तमे सिद्ध पुत्राचार्य भी अहिंसा भगवती का उपासक बन अपने ५०० मुनियों के साथ आचार्य देवगुप्तसूरि के पास जैनादिक्षा को स्वीकार करली। आत्मार्थी विद्वानों कि यह ही तो एक खूबी है कि सत्य वस्तु समझमें आ जानेपर किसी प्रकार के बन्धन नहीं रखते हुए शीघ्र

सत्यके उपासक बन जाते है । विद्वानों के लिये हठ कदाग्रह नहीं हुआ करते है चाहे चिरकालसे अपनाइ हो पर यह असत्य मालुम होती हो तो उसको एकदम धीक्कारके साथ त्याग कर देते है यह ही हाल हमारे सिद्धपुत्राचार्य का हुआ कि उसने अहिंसा भगवती का सच्चा स्वरूप को समझ के पूर्व सेवित महान् पापका पश्चाताप करते हुए उसी सभा में खड़ा हो कहने लगा कि सज्जनो ! " अहिंसा परमो धर्मः " एक विश्वका धर्म है इस में किसी प्रकारका सन्देह नहीं है पर कितनेक स्वार्थप्रिय लोगोंने उनका स्वरूप ठीक नहीं समझकर घोर हिंसा को ही अहिंसा मान ली है खुद मेरा भी यह ही हाल हुआ परन्तु परमोपकारी महात्माओं कि कृपासे आज मैं ठीक तौरपर समझ गया हूं कि जैनधर्मने अहिंसा तत्व को बड़ी खूबीसे माना है और मैंने इस बात को ठीक सोच समझ करके ही जैनधर्म का सरण लिया है अतःएव आप भी इस पवित्र धर्म को स्वीकार कर आत्म कल्यान करें सत्य धर्म को स्वीकार करने में मान अपमान का खयाल करना यह एक आत्मा की निर्बलता है इत्यादि उपस्थित जनसमूह पर जैनधर्म का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और राजा प्रजा प्रायः सब लोगोंने पवित्र जैन धर्म को स्वीकार कर जैनधर्म की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई नगरभर में जैन धर्म की खूब प्रभावना और प्रशंसा होने लगी।

सिद्धपुत्र मुनि पहिले से ही अच्छे विद्वान थे बाद आचार्य देवगुप्तसूरि के पास जैन सिद्धान्त का अभ्यास कर आप एक उच्च कोटी के विद्वानों की पंक्ती में गिने जाने लगे। आचार्य देवगुप्तसूरिने

पंजाबदेश में विहार कर जैनधर्म का खूब प्रचार किया बहुत से मन्दिरों की प्रतिष्ठा और अनेक विद्यालयों की स्थापना करवाई हजारों भव्यों को जैनधर्म की दिक्षा दी लाखों लोगों को मिथ्या कुरूढियों से छुड़ा करके जैनधर्मोपासक बनाए और सिद्धपुत्र मुनि को योग्य समझ शुभ मुहूर्त और अच्छे दिनमें आचार्य पदसे विभूषित बनाए और उनकों पंजाब देशमें विहार करने की आज्ञा फरमाकर आप प्राचीन तीर्थोंकी यात्रा करनेके लिये हस्तिनापुर मथुरा शोरीपुरादि प्रदेशों में विहार करते हुए मरूभूमि की ओर पधार गए। यही तो उन आचार्यदेवों की कार्यकुशलता थी कि वे हर समय देशविदेश में घुमते रहते थे इसी कारणसे जैनधर्म का प्रचार दिन व दिन बढता गया।

आचार्यश्री देवगुप्तसूरिने कई अर्से तक मरूधर में विहार कर श्रमण संघ और श्राद्धवर्ग अर्थात् चतुर्विध संघ में अनेक भव्यों को दिक्षा दी कई मन्दिरों की प्रतिष्ठा और जैन विद्यालयों की स्थापना करवा के सद्ज्ञान का प्रचार किया उपकेशपुर, माडव्यपुर, रत्नपुर, मेदनीपुर, जंगीपुर, पालीकापुरी साकम्बरी हंसावली, खेडीपुर, कोरंटपुर भीन्नमाल, सत्यपुर, जाबलीपुर, चन्द्रावती, शिवपुरी, पद्मावती वगेरह स्थलों की स्पर्शना करते हुए अर्बुदाचलादि तीर्थ की यात्रा करते हुए श्री संघ के साथ श्री सिद्धगिरी की यात्रा कर अपनी अन्तिम अवस्था गिरीराज की शीतल छाया में निवृत्तिभावसे व्यतित की अन्त में सत्तावीस दिन के अनसन पूर्वक समाधिसे कालकर स्वर्ग सिधारे। इतिश्री

पार्श्वनाथ भगवान के नौवें पाटपर आचार्यश्री देवगुप्तसूरि बड़े ही प्रभाविक आचार्य हुए।

(१०) दशवें पट्टपर आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज बड़े ही प्रभाविक आचार्य हुए आप श्री चन्द्रपुरी नगरी के राजा कनकसेन के लघुपुत्र थे बाल्यवय में ही सिद्धार्थ नामक वेदान्ती आचार्य के पास दिक्षित हुए थे आप बाल ब्रह्मचारी और अनेक विद्याओं के ज्ञाता थे, सत्य के संशोधक थे, धर्म के जिज्ञासु थे, मोक्ष के अभिलाषी थे, ज्ञान के प्रेमी थे, सरस्वती और लक्ष्मी दोनों देवियों परस्पर स्पर्द्धा करती हुई सदैव आप को वरदाई थी जैन दिक्षा स्वीकार करने के बाद आचार्य देवगुप्तसूरि की सेवा भक्ती से स्याद्वाद सिद्धान्त में भी बड़े ही प्रवीण हो गए थे धर्म प्रचार करने में बड़े ही समर्थ थे पाखण्डियों के पैर उखाड़ने में आप अद्वितीय वीर थे। आपश्री की वचनलब्धी से मनुष्य तो क्या पर देवता भी मुग्ध बन जाते थे। जैसे आप तेजस्वी थे वैसे ही यशस्वी भी थे आपश्रीने पंचाल देशमें विहारकर अनेक भव्यात्माओं का उद्धार किया इतना ही नहीं पर जैन धर्म का बड़ा भारी झण्डा फरका दिया था। वादी लोग आपसे इतने घबराते थे कि सिंह गर्जना सुन हस्ती पलायन हो जाता है इस रीती से सिद्धसूरि का नाम सुनते ही वे कम्प उठते थे। अभिमानियों के मद गल जाते थे। आपश्रीने हजारों लोगों को दिक्षा दे श्रमण संघ में खूब वृद्धि की थी। सेकड़ों जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा और ज्ञानाभ्यास के लिए अनेक पाठशालाएं स्थापित करवाई थी

आपश्रीने ग्रन्थ निर्माण करने में भी कमी नहीं रक्खी थी इत्यादि सद्कार्यों से स्वपरात्मा का कल्याण कर अपना नाम इतिहास पट्टपर अमर बना दिया था.

पाठकवर्ग ! आप सज्जन इस बात को तो भली भान्ति समझ गए होंगे कि उस जमाने के जैनाचार्योंने जैन धर्म के प्रचार के लिए किस २ विकटभूमि अर्थात् देश विदेशमें विहार किया, कैसे २ संकट और परिश्रम उठाए, वादि प्रतिवादियों के साथ किस कदर शास्त्रार्थ कर " अहिंसा परमो धर्मः " का विजय डंका बजाया; जैन धर्म को विश्वव्यापी बनाने की उन महापुरुषों के हृदय में किस कदर विजली चमक उठी थी, कारण उस समय मरूस्थल, कच्छ सिन्ध सौराष्ट्रादि प्रान्तों में व्यभिचारी वाम मार्गियों का या यज्ञवादियों का साम्राज्य वरत रहा था। पंजाब प्रान्त में असंख्य निरापराधी मुक प्राणियों की रौद्र हिंसामय यज्ञादि का प्रचार करने में वेदान्ती लोग अपना प्राबल्य जमा रहे थे, अंग बंग मगध वगेरह प्रान्तों में बौध लोग अपने धर्म का प्रचार नदी के पूर की भान्ति बढा रहे थे, अगर उस विकट समयमें जैनाचार्य एक ही प्रान्त में रह कर अपने उपासकों को ही मंगलिक सुनाया करते तो उन के लिए वह समय निकट ही था कि संसारभरमें जैन धर्म का नाम निशान भी रहना मुश्किल हो जाता; पर जिन की नसो में जैन धर्म का खून बहता हो वे ऐसी दशा को गुप चुप बैठकर कैसे देख सके ? हरगिज नहीं, कारण अधर्म को हटाने के लिए पाखण्डियों का पराजय करने के लिए उन महात्माओं

के शरीर में जैन धर्म की पवित्रता की बड़ी भारी ताकत थी अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, निस्पृहीता, परोपकार परायणता, और स्याद्वादरूपी अनेक शस्त्रोंसे सजधज के सदैव तैयार रहते थे और उन्हीं शस्त्रोंद्वारा आप श्रीमानोंने पाखण्डियों का पराजय कर उनके मिथ्यात्व अज्ञान यज्ञ की घोर हिंसा और दुशीलरूपी किल्ले को समूल नष्टकर विश्व में जैन धर्म का खूब झण्डा फरका दिया अगर उन आचार्यों की सन्ताननें अपने पूर्वजों का अनुकरण कर प्रत्येक प्रान्त में विहार किया होता तो आज कितनीक प्रान्तों जैन धर्म विहिन न बन जाती तथापि आज उन प्रान्तों में पूर्व जमाने की जाहोजलाली के स्मृति चिन्हरूप जैन तीर्थ-मन्दिर और थोड़े बहुत प्रमाण में जैन धर्मोपासक अस्तित्वरूपमें दिखाई दे रहे हैं वह उन पूर्वाचार्यों की अनुग्रह-कृपा का सुन्दर फल है।

हमारे पूर्वाचार्योंकी यह भी एक सुन्दर पद्धतिथी कि वे देश विदेशमें विहार करते थे पर किसी प्रान्त को साधुविहिन नहीं रखते थे अर्थात् प्रत्येक प्रान्तमें योग्य पद्वी भूषित विद्वान मुनिवरों की अध्यक्षतामें हजारों मुनियों को विहार की आज्ञा फरमा दिया करते थे कि जैन जनता सदैव के लिए उन्नतिक्षेत्रमें अपने पैर आगे बढ़ाती रहे बात भी ठीक है कि जहां जैन मुनियों का सदैव विहार होता रहे वहां मिथ्यात्व अज्ञान और दुराचार को अवकाश ही नहीं मिलता है विद्वानों की अपेक्षा मध्यम कोटी के लोग सदैव अधिक होते हैं और उन का जीवन उपदेश पर निर्भर है जैसा २ उपदेश मिलता रहे वैसा २

२ संस्कार पड़ जाता है अतःएव प्रत्येक प्रान्तमें मुनि विहार की आवश्यकता उस समयमें भी स्वीकारी जाती थी.

आपने पूर्वजों की पद्धत्यानुसार आचार्य श्री सिद्धसूरिजी महाराजने पंजाब देशमें विहार करनेवाले मुनियों के लिए अच्छी व्यवस्था कर आपश्री ६०० मुनियों के साथ विहार कर हस्तीनापुर मथुरा, शोरीपुर वगेरह तीर्थों की यात्रा के पश्चात आप श्रीमानोंने अपने चरणकमलोंसे मरू भूमि को पवित्र बनाई और शासनाधीश भगवान् महावीरकी यात्रा के लिए उपकेशपुर की तरफ विहार किया। मरूस्थलमें यह शुभ समाचार सुनते ही मानों वसन्त के आगमनसे वनराजी नवपल्लव बनजाती है इसी भान्ति मरूस्थल की जैन जनतामें बड़े ही हर्षोत्साह की लहरें उठ रही थी. सूरिजीमहाराज क्रमशः विहार करते हुए उपकेशपुर पधारे श्री संघने आपश्री का बड़ा भारी स्वागत किया देवगुरु की यात्रा कर धर्म पिपासु लोगों को धर्मदेशना दी जिस का प्रभाव जैन जनता पर बहुत ही अच्छा पड़ा इधर उपकेश गच्छ कोरंटगच्छके साधु साध्वी झुंड के झुंड आपश्री के दर्शनार्थ आ रहे थे श्राद्धवर्ग की तो संख्या ही नहीं गिनी जाती थी मानों उपकेश-पुर एक यात्रा का पवित्रस्थान ही बन गया था ।

आप श्रीमानों के विराजनेसे उपकेशपुर और आसपास में अनेक सद्कार्यों द्वारा जैनधर्म का प्रचार, शासनोन्नति, और जैन जनतामें धर्म जागृति के साथ कई गुणाकत्साह बढ गया श्री संघ के अत्याग्रहसे आपश्री का चातुर्मास उपकेशपुरमें हुआ तब आसपास के

ग्रामनगरों की विनन्तीसे अन्योअन्य साधुओं को वहां चतुर्मासा करवा दिया । नए जैन बनाना वहां जैन मंदिरों और विद्यालयों की स्थापना करवाना तो आपश्री के पूर्वजोंसे ही एक चलित कार्य था और आपश्रीने भी उनका ही अनुकरण किया और आपश्रीने इस पवित्र कार्य में अच्छी सफलता भी प्राप्त की थी इनके सिवाय आपश्री का मधुर और रोचक उपदेश पान करते हुए बहुतसे नर नारियोंने संसार का त्याग कर आप के चरण कमलों में दिक्षा भी धारण की थी ।

चातुर्मास के पश्चात आचार्य श्री ने मरूभूमि के चारों ओर खूब परिभ्रमण किया और पाल्हीका नगरीमें एक विराट् सभा कीरी जिसमें हजारों साधु साध्वियों और लाखों श्रावक उपस्थित हुए आचार्यश्रीने पूर्वाचार्यों का परमोपकार महाजन संघ की महत्वता और देशोदेशमें विहार करने का लाभ खूब ही ओजस्वी भाषासे विवेचन कर सुनाया अन्तमें आचार्यश्रीने यह फरमाया कि इस समय जैनधर्म पर दृढ श्रद्धा के लिये जैन मन्दिरो को और तत्वज्ञान फैलाने को विद्यालयों की जरूरत है और जैन मुनियों कों देशोदेशमें विहार कर, जैनधर्म का प्रचार करने की भी आवश्यकता है अत एव चतुर्विध श्री संघ यथाशक्ती इन कार्यों के लिए प्रयत्नशील बने और इन पवित्र कार्यों के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर भाग्यशाली बनें । इत्यादि आचार्यश्री के उपदेश का असर जनता पर अच्छा पड़ा कि वह अपने अपने कर्तव्य कार्यपर कम्मर कस तैयार हो गए बड़ी खुसी की बात है कि उस जमानेमें अैसे आचार्यश्री धर्मप्रचार करनेमें कुशल

थे वैसे ही उनके आज्ञानुवृति चतुर्विध श्रीसंघ उनकी आज्ञा को सिरोद्धार करने को तय्यार रहते थे इसी एक दिलीसे वे मनोच्छित कार्य कर सक्ते थे ।

आचार्य श्री सिद्धसूरि मरुभूमिमें विहार करनेवाले मुनियों का उत्साह बढाते हुए योग्य विद्वान मुनियों को पद्विसे विभूषित बना उन की सुन्दर व्यवस्था करी और उन को अन्य प्रान्तों में विहार करने की आज्ञा दी बाद आप श्रीमानने पूर्वाचार्यों की स्मृति रूप कई स्थानों की यात्रा करते हुए अनेक साधु साध्वीयों और श्राद्ध वर्ग के साथ श्री सिद्धगिरि की यात्रा की सौराष्ट्रमें परिभ्रमण कर कच्छ की ओर पधारे वहां के विहार करनेवाले मुनिगण की सार संभार और सुन्दर व्यवस्था कर कुछ समय तक कच्छमें विहार किया पश्चात् आपने सिंध प्रान्तमें पदार्पण किया अर्थात् आपश्री बडे ही दूरदर्शी थे जैसे आप नए जैन बनाने का प्रयत्न करते थे वैसे ही पहिले बनाए हुए जैन और साधु साध्वियों की सारसंभार करना भी आप एक परमावश्यक कार्य समझते थे । इस लिए आपश्रीने कई असौतक सिन्धप्रान्तमें विहार कर अपने श्रमण संघ के किए हुए कार्यपर प्रसन्न चित्तसे धन्यवाद दिया और पारितोषिकरूपमें कई योग्य मुनिवरों को पद्वियों प्रदान की वहां का अच्छा इंतजाम कर आप विहार कर पंजाब देशमें पधार गए इस परिभ्रमण के दरम्यान आपने जैनशासन की अत्युत्तम सेवा की, यों तो आपने अपना जीवन ही धर्म प्रचारमें व्यतित कर दिया था। अन्तमें आप मुनिरत्न को अपने पद पर निर्युक्त कर लोहापुर नगरमें १९ दिन का अनसन कर समाधिपूर्वक

काल कर स्वर्गमें अवतीर्ण हुए। इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के दसवें पाट पर आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज महान् प्रभाविक आचार्य हुए।

भगवान् पार्श्वनाथ की सन्तानमें उपकेश गच्छकी स्थापना समयसे आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि, आचार्यश्री यक्षदेवसूरि, आचार्यश्री कक्कसूरि, आचार्यश्री देवगुप्तसूरि और आचार्यश्री सिद्धसूरि एवं पांच आचार्य महा प्रभाविक हुए और इन पांचाचार्यों के नामसे ही आज पर्यन्त उपकेशगच्छ अविछन्नपने चल रहा है।

(१) मरूस्थलमें आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि का नाम अमर है।

(२) मगधदेशमें ,, ,, यक्षदेवसूरि का नाम अचल है।

(३) सिन्धमें ,, ,, कक्कसूरि का नाम अक्षय है।

(४) कच्छप्रान्तमें ,, ,, देवगुप्तसूरि का नाम अटल है।

(५) पंजाबप्रान्तमें ,, ,, सिद्धसूरि का नाम अपार हैं।

इन महापुरुषों की बदोलत उन की सन्तानने पूर्वोक्त प्रान्तोंमें चिरकाल तक जैनधर्म को राष्ट्रीय धर्म बना रक्खा था, आज जो जैन जातियों जैनधर्म पालन कर स्वर्ग मोक्ष की अधिकारी बन रही है वह सब उन महान् प्रभावशाली आचार्यों के उपकार का ही सुन्दर फल है। अतःएव जैन जातियों का कर्तव्य है कि अपने पर महान् उपकार करनेवाले पूज्याचार्यों के प्रति सेवाभक्ती प्रदर्शित करते रहें।

(११) ग्यारवें पट्ट पर आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज महान् तपस्वी और बड़े भारी धर्म प्रचारक हुए। आप श्रीमान उपकेशपुर के राजा उपलदेव के वंश में एक बड़े भारी क्षत्रिय थे। किन्तु तारूण्य अवस्था में राज्यलक्ष्मी का परित्याग कर आपने सिद्धसूरीश्वरजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेने के पश्चात् आप आचार्य महाराज के साथ ही रहे। उन की विनयपूर्वक सेवा करते हुए आपने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया। आप स्व–परमत के विविध शास्त्रों के विषय में विशेषज्ञ थे। अध्ययन के साथ साथ आप तपस्या भी खूब करते थे। इस कारण कई राजा, महाराजा, देवी, देवता आदि सदैव आपकी सेवा में उपस्थित रहते थे। आकाश गमन आदि लब्धियों तथा चमत्कार प्रदर्शन में भी आप सिद्धहस्त थे। आचार्य सिद्धसूरीजी महाराज आपपर परम प्रसन्न रहते थे। ऐसे सुयोग्य को उत्तरदायत्व पूर्ण अधिकार देने की इच्छा आचार्य महाराज की हुई। फिर किस बात की देरी थी। आचार्य सिद्धसूरी महाराजने आपश्रीको वही पद दिया जो कि देना चाहिये था। उन्होंने अपने समक्ष आप को आचार्य पद पर विभूषित किया। उस समय आप का नाम रत्नप्रभसूरी रक्खा गया और विधि विधानपूर्वक वासक्षेप डाला गया।

आचार्य रत्नप्रभसूरी बड़े तपस्वी थे। आपने तपस्या का तांता लगा दिया। एक दो नहीं पूरे बारह वर्ष पर्यन्त तो आपने मास

क्षमण तप किया। छठ्ठ छठ्ठ के उपवास के पश्चात् पारणा करना आप का जीवनभर का प्रण था। इस तप के अतिरिक्त आपने दूसरे बड़े बड़े तप भी खूब किये। तपस्या के साथ साथ आपने ज्ञान का अभ्यास भी खूब किया। सामयिक साहित्य के आप धुरंधर विद्वान थे। आप कई राजसभाओं में जा कर शास्त्रों के तत्वों की विशद विवेचना करते थे। आप वादविवादियों के भ्रम को दूर करते थे। इस कारण स्याद्वाद धर्म के विजय का नकारा चारों दिशाओं में बजने लगा था। धर्म की जय पताका पूर्ण-रूप से फहराने लगी।

देशाटन करने की अभिरुचि आप में स्वाभाविक थी। भ्रमण करते हुए आपने देश के भिन्न २ प्रान्तों की यात्रा की। पंजाब सिन्ध, कच्छ सोरठ लाट और मरूस्थल आदि प्रान्तों में आपने पर्यटन करते हुए जैन धर्म का अपूर्व अभ्युदय किया। सच्चा ज्ञान बता कर मिथ्यात्व के अंधेरे कूए में से कई प्राणियों को बचाया। सच्चा उपदेश सुनाकर आपने कई भव्य जीवों का उद्धार किया। हजारों स्त्री पुरुषों को जैन धर्म की दीक्षा दी। इस कारण श्रमण संघ में आशातीत वृद्धि हुई। मिथ्यात्व अज्ञान, पाखण्ड और अंधश्रद्धा को दूर कर सम्यक्त्व, ज्ञान, प्रेम और शुद्ध श्रद्धा का प्रसार किया। अहिंसा परमोधर्म का विजयनाद सब प्रान्तोंमें सुनाया। कई विद्यालय स्थापित कराए तथा मन्दिरों की प्रतिष्ठा कराने में भी आप सदा अग्रसर रहते थे। उस समय में आचार्योंको विशेषतया चार प्रकार के कार्य करने पड़ते थे।

(१) राजाओं और महाराजाओं के दरबारों और सभाओं आदि में जा कर सद्ज्ञान का प्रचार कर जनता को अज्ञान पाखण्ड और मिथ्यात्व को दूर करना । (२) जैन मन्दिरों और विद्यालयों की प्रतिष्ठा कराना । (३) जगह जगह पर प्रतिबोध देकर नये जैनी बनाना । (४) श्रमण संघ में वृद्धि करना । उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त भी आपने अनेक कार्य सम्पादित किये तत्कालीन भारत में ठौर ठौर अहिंसा धर्म का झंडा फहराया था ।

एक वार आचार्य महाराज लोहाकोट नगर में विराजमान थे और व्याख्यान में तीर्थंकरों की वर्तमान चौविसी का वर्णन चल रहा था । जब तिर्थंकरों के निर्वाण स्थळ का प्रसग चल रहा था तो आचार्यश्रीने फरमाया कि बिस तीर्थंकरों का निर्वाण एक ही परम पवित्र भूमि पर हुआ । उस स्थल का नाम सम्मेतशिखिर गिरि है । यह भूमि पूजनीय एवम् वन्दनीय है । उस पवित्र भूमि का स्पर्श करने से पापी, अधर्मी और अवनत प्राणियों का उद्धार होता है । सचमुच वह बड़ा महाभागी है जो ऐसी अद्वितीय भूमि में जाकर अपने पापों से छुटकारा पाता है । पूर्व काल में कई राजा, महाराजा, और सेठ साहुकार चतुर्विध संघ के सहित जाकर यात्रा करते थे । संघ बहुत बड़े निकालते थे और अपने साधर्मी भाइयों को भी इस परम पुनीत यात्रा करने का सुअवसर देते थे ।

व्याख्यान में इस प्रकार का वर्णन सुनकर श्रोताओं के

मन में भी यात्रा करने की इच्छा उत्पन्न हुई । समाज की ओर से प्रमुख लोग व्याख्यान–सभा में खड़े होकर विनयपूर्वक आचार्य महाराज से प्रार्थना करने लगे कि भगवन् ! हम लोगों की अभिलाषा है कि हम आप की अध्यक्षता में इस तीर्थ की एक यात्रा शीघ्र करें । वह दिन कब आवेगा कि हम लोग उस भूमि पर पहुँच कर अपने मनोरथ को पूर्ण करने में समर्थ होंगे ?

आप को भी उस ओर विहार करना था । संघकी यह उत्कंठा देखकर आपने विनती शीघ्र स्वीकार कर ली । उधर नगर में प्रस्थान करने की तैयारियाँ होने लगीं । जमघट भी ठीक हुआ । आपके आज्ञावर्ती २००० साधु साध्वियाँ तथा कई लाख श्रावक श्राविकाएँ सम्मेतशिखर चलने के अभिप्राय से तैयार हुई । सब के मन में उत्साह था । यात्रा की आवश्यक सामग्री को जुटाने में सब संलग्न थे । हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे, बाजे, नक्कारे, पताकाएँ, मन्दिर, रत्न खचित प्रतिमाएँ एवं अर्चन चर्चन की सारी सामग्री व्यवस्थित रूप से यथा स्थान एकत्रित की गई । सर्व सम्मति से संघपति उसी नगर के भूपति सूर्यकरन का दक्ष सचिव प्रथुसेन निर्वाचित हुआ । वासक्षेप के विधि विधान द्वारा प्रथुसेन संघपति बनाया गया । तत्पश्चात् शुभ मुहूर्त में संघ सम्मेत शिखर की यात्रा के लिये रवाने हुआ ।

संघ चला । मार्ग में क्रम से हस्तिनापुर, सिंहपुर, वाराणसी, पावापुरी, चम्पापुरी, राजगृही और व्यवहारगिरि आदि

तीर्थों की यात्रा करने का अनुपम सौभाग्य प्राप्त हुआ। रास्ते में पूर्व विहारी साधु और साध्वियाँ तथा श्रावक गण सम्मिलित होते जाते थे। संघ का नगर नगर में स्वागत होता था। इस यात्रा में स्थावर तीर्थ के साथ साथ जंगम तीर्थों की यात्रा का भी लाभ मिला। संघ का विशाल समुदाय सुख पूर्वक चलता हुआ श्री सम्मेतशिखर पर्वत की रम्य छाया में आ पहुँचा। प्रातःकाल आचार्यश्रीने चतुर्विध संघ के सहित उँचे शिखिरपर पहुंच कर वीस तिर्थंकरों के चरणकमलों में वंदना कर संघ के समस्त यात्रियों के लिये भी यह शुभ दिन सदा के लिये चिरस्मरणीय बनाया। यह तीर्थ परम रमणीक मनोहर एवं सुन्दर लगा। इस उत्तम तीर्थ में सेवा, पूजा तथा भक्ति ही शुभ भावना का कृत्य यात्रियों के लिये पापपुञ्जहारी था।

वैसे तो आचार्य श्री रत्नप्रभसूरी तपस्वी थे ही तथापि वे इस अन्तिम अवस्था में उत्कृष्ट निवृत्ति की ही अभिलाषा रखते थे। इस तीर्थ की यात्रा करने से आपका चित्त इतना आह्लादित हुआ कि आप इस भूमि को छोड़ना नहीं चाहते थे। अन्त में अपनी अभिरुचि के अनुसार आपने निश्चय किया कि अपनी आयु का शेषकाल इस भव्य भूमि पर ही बिताउँगा।

पूर्ण निवृत होने के अभिप्रायसे रत्नप्रभसूरिजी महाराजने श्री संघ के समक्ष अपने जेष्ठ शिष्य धर्मसेन को आचार्य पदपर आरूढकर उनका नाम यक्षदेवसूरि रक्खा जो कि भूतपूर्व यक्षदेव-

सूरि की सुधि दिलाता था. जिन्होंनें कि भारत का बड़ा उपकार किया था।

कई दिन तक तो सारा संघ तीर्थ की यात्रा करता हुआ अक्षय लाभ उपार्जन करता रहा। बादमें यक्षदेवसूरि की अध्यक्षतामें संघ पीछा रवाना हुआ किन्तु रत्नप्रभसूरि वहीं पुनीत तीर्थराज की गहन गुफाओमें रह गये! वहीं आप ध्यान, समाधी और मौन अवस्थामें रहकर अपने जीवन को अनसनव्रतमें समाप्त कर स्वर्गलोक की ओर पधारे। आप श्री पार्श्वनाथ प्रभु के ग्यारवें पट्ट पर आचार्य हुए।

(१२) बारहवें पट्ट पर आचार्य श्री यक्षदेवसूरि बड़े प्रतापशाली हुए। आप लोहाकोट नगर के सचिव प्रथुसेन के होनहार सुपुत्र (धर्मसेन) थे। आपने तरुणवयमें क्रोड़ रूपैयों की सम्पदा एवं सोलह स्त्रियों को त्याग कर आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि के पास दीक्षा ली। आपका त्याग अनुकरणिय और तपस्या अलौकिक थी। आप लघुवय से ही पूरे बुद्धिवान थे। और दीक्षा लेने के पश्चात् आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि की संरक्षतामें आपने दस पूर्व का अध्ययन रुचिपूर्वक किया था। आप अपनी विचक्षण बुद्धि के कारण अपने पाठको शीघ्र सीख जाते थे। दूर दूर से लोग आपसे शंकाए निवृत करने के लिये आते थे। आप की व्याख्यानशैली तुली हुई और मनोहर थी। आप का उपदेश आबाल वृद्ध सब ही को रोचक प्रतीत होता था। यही कारण

था कि नर और नरेन्द्र, देव और देवेन्द्र, विद्याधर आदि आपका व्याख्यान सुनने को सदा लालायित रहते थे। आप की वाक्पटुता के कारण अहिंसा का प्रचार बहुत अधिक हुआ। आप बड़े निर्भीक वक्ता थे। आप गुणों के आगार और ज्ञान के भण्डार थे।

उपरोक्त गुणों के कारण ही आप को यकायक सम्मेत-शिखर तीर्थराज की पवित्र भूमिमें आचार्यपदवी मिली थी। आप आचार्य के छत्तीसों गुणों को प्राप्त करने में तथा शुद्ध पंचाचार को पालने का प्रबल प्रयत्न करने में संलग्न रहते थे और आप सदा इस बात का ध्यान रखते थे कि मेरे संघवाले भी इस प्रकार के गुणोंसे सम्पन्न हों। सब प्रान्तोंमें विचरण कर संघ को अमृतोपदेश का पान कराते थे। सारण वारण चोयण और परिचोयण ऐसी चार पद्धति की शिक्षा देनें में आप अनवरत परिश्रम करते थे। आप का प्रयत्न भी सफलीभूत होता था। जिन प्रान्तोंमें आप विचरते थे यज्ञयागादि वेदान्तियों, वाममार्गियों एवं नास्तिकों को समझा समझा कर सत्पथ पर चलने का सिद्धान्त सतर्क बताते थे। जिस प्रकार भानु के उदय होनेसे प्रगाढ़ तिमिर का नाश हो जाता है उसी प्रकार आपके संसर्ग से कई प्राणियों का भ्रम दूर हुआ। उधर पूर्व बङ्गालमें जहाँ कि आप अबतक नहीं पधारे थे बौद्धधर्म का विस्तृत प्रचार हो रहा था, आप को इस लिये पूर्व की ओर विहार कर अपने सुयोग्य शिष्यों के साथ बंगाल की ओर जाना पड़ा था। उस प्रान्त में बौद्धों के साथ

कई शास्त्रार्थकर आपने स्याद्वाद धर्म को विजय का टीका प्रदान किया। बौद्ध लोग जगह जगहपर पराजित हुए। पूर्व बंगाल में जो दूसरे साधु विहार करते थे उन्होंने भी आप को पूर्ण सहयोग किया क्योंकि वे वहाँ की वस्तुस्थिति से खूब परिचित थे।

पाठकगण! आप को पहिले बताया जा चुका है कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि से दीक्षा लेते समय विद्याधर रत्नचूड के पास जो नीलोपन्नामय चिन्तामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति थी, वही मूर्ति दर्शनार्थ रत्नचूड मुनिने अपने पास रख ली थी। आगे चलकर वही रत्नचूड मुनि रत्नप्रभसूरि हुए। प्रस्तुत: मूर्ति रत्नप्रभसूरि के पट्टपरम्परा से अब यक्षदेवसूरि के पास मोजूद थी। जिस समय यक्षदेवसूरि प्रतिमा के सम्मुख उपासना के लिए विराजते थे। उस समय सचाइका देवी और अन्य देवियाँ दर्शनार्थ उपस्थित होती थीं। एक बार सचाइका देविने आचार्यश्री से विनती की कि आप एक वार मरूस्थल की ओर विहार करिये। मरूस्थल में आप के पधारने की नितान्त आवश्यका है। आचार्यश्रीने देवीसे पूछा कि मरूस्थल में हमारे कई मुनि विहार कर रहे हैं। फिर मेरी वहाँ ऐसी क्या आवश्यक्ता है? देवीने उत्तर दिया कि आप का कार्य तो आपही कर सकेंगे दूसरा नहीं। आप एक वार मेरी प्रार्थना स्वीकार कर अवश्यमेव पधारिये। देवी का इतना आग्रह देखकर आपने मरुस्थल की ओर विहार करने का निर्णय कर लिया और थोड़े समयमें गमन भी कर दिया.

उधर मरूस्थल प्रान्त में उपकेशपुर के महाराव चेत्रसिंह

(खेतसी) को रात्रि में एक स्वप्न आया कि वह अपने छोटासा पुत्र को लिये हुए राजमहल में बैठा हुआ था। यकायक चारों ओर से अग्नि की ज्वालाएँ आती हुई दिखाई दीं। राजाने स्वप्न ही में खूब प्रयत्न किया पर अग्नि से बचने का कोई उपाय नहीं मिला। अन्तमें राजाने यह भी निश्चय कर लिया कि यदि मैं स्वयं अग्नि में जलकर भस्म हो जाउं तो कुछ परवाह नहीं किन्तु छोटासा बच्चा किसी प्रकार बच जाय। राजा की ऐसी भावना होते ही एक महात्मा सामने से आता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। उस महात्माने उन दोनों को जलती हुई आग से बचा लिया। इस के बाद राजा की आंख खुली तो उसको विस्मय हुआ कि यह क्या घटित हुआ। राजा विचारसागर में निमग्न हो गया। उसने अपने मंत्रि को भी यह वर्णन सुना दिया। रात्रि को राजाने अपने सपने की बात अपनी रानी को भी सुनाई। रानीने उत्तर दिया कि स्वप्न की बातें असार हैं। इस पर तो विचार करना भी व्यर्थ है। राजा भी तब अपनी स्वप्न की दशा पर ध्यान नहीं देने लगा।

आचार्यश्री यक्षदेवसूरि विहार करते हुए मरूस्थल प्रान्त में पधारे। जब यह समाचार लोगोंने सुना तो प्रान्तभर में आनन्द छा गया। फिरते फिरते आप एक दिन उपकेशपुर भी पहुँचे। सब संघने मिलकर आपका खूब स्वागत किया। आचार्य श्रीने पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी के मन्दिरों की यात्रा की। पश्चात् विशाल परिषद् में आपने धाराप्रवाह उपदेश सुनाना

आरम्भ किया। आपने फरमाया कि यह संसार नाशवान है इस पर लुभाना मूर्खता है। जन्म जरा और मृत्यु का असीम कष्ट इसी संसार में होता है। आवागमन के कारण जीव को इतना दुःख सहना पड़ता है कि जिसकी पूरी कल्पना तक नहीं की जा सकती। विषय और कषाय का यहाँ पूरा साम्राज्य है। मनुष्य तो क्या अमर नाम धरानेवाले देव दानवादि भी इस सांसारिक दावानल से पूरे दुःखी हैं। यदि कोई इस कष्ट से बचानेवाला है तो वह जैन मुनि ही है। दुःखी प्राणियों, "आओ! मैं तुम्हें वह उपाय बताऊं कि तुम इस सांसारिक अग्नि में जलने से बच जाओगे। मैं इस उष्ण उद्वेग भूमिसे लेजाकर तुम्हें ऐसी शीतल और सुखद स्थलपर पहुँचा दूँगा कि तुम्हारे सारे दुःख काफूर हो जावेंगे और इष्ट शांति अक्षय रूपसे प्राप्त होगी।" इत्यादि।

आपके भाषण का प्रभाव श्रोताओं के अन्तःकरण पर पड़ा। विशेष असर तो महाराव खेतसी पर पड़ा। उसे वह स्वप्न ही साक्षात् प्रतीत हुआ कि यदि मुझे सांसारिक अग्निके कष्टों से बचाने में यदि कोई समर्थ है तो यही मुनि हैं। वह राजा आचार्य श्री के मुखारविन्दसे उद्भाषित होते हुए प्रत्येक वाक्यपर पूरा ध्यान रखता था। राजाके पास बैठा हुआ लाखण कुँवर भी आचार्य श्री की ओर दृष्टिपात किए उत्सुकतासे उपदेश सुन रहा था। अपने पिता को उपदेश सुनने में तल्लीन देखकर कुँवर भी अधिक उत्कंठासे उपदेश सुधाका पान कर रहा था। राजाने सभामें खड़े होकर आचार्यश्री को सम्बोधन करते हुए अपने स्वप्न का हाल

सबके सामने कह सुनाया। राजाने कहा कि आप वही महात्मा स्वरूप हैं। मेरा स्वप्न तो एक प्रमाणमात्र है। आप मुझे बांह पकड़कर दुःखसे बचाइये।

आचार्यश्रीने उत्तर दिया "जहा सुखम्"। सभा यह वाक्य सुनकर मानो मंत्र मुग्ध हुई। कई लोगों की इच्छा हुई कि इस शुभ अवसरका सदुपयोग करना चाहिये। वे सोचने लगे कि आज हमारा परम सौभाग्य है कि ऐसे त्यागी वैरागी निर्लोभी महात्मा केवल परोपकार के लिये सच्चा उपदेश दे रहे हैं। लोग उत्कट आतुरता पूर्वक सांसारिक बंधनो को तोड़ना चाहते थे। महाराजा खेतसीने अपने जेष्ठ पुत्र जेतसी को राज्यका भार सौंप दिया। राजा खेतसीने अपने छोटे पुत्र लाखणसी और कई लोगों के सहित आचार्यश्री के पास आकर, करजोड़ सादर विनय की कि हमलोग दीक्षा लेना चाहते हैं। हमें आशा है आप अवश्य हम लोगों का उद्धार करेंगे जिस प्रकार कि एकस्वप्न में एक महात्माने आकर मुझे लाखण कुँवर सहित प्रज्वलित अग्नि की ज्वालाओं से बचाया था। आचार्यश्री तो यह चाहते ही थे। सब की प्रार्थना स्वीकारकर शुभ मुहूर्त में दीक्षा दे आचार्यश्रीने अपूर्व उपकार किया।

सच्चाइका देवी आचार्यश्री की सेवा करने में सदा प्रस्तुत रहती थी। देवीने आपसे कहा मरुस्थल में आपके पधारने से लाभ हुआ न? आपने उत्तर दिया, "अवश्य तुम्हारा कहना सत्य हुआ!" इसी कारण से रत्नप्रभसूरिने आपका नाम सच्चाइका

रक्खा है । आचार्यश्रीने मरुस्थल में पर्यटन कर प्राचीन तीर्थों की यात्रा करते हुए कई भव्य जीवों का ग्राम ग्राम में उपदेश देकर उद्धार किया । मन्दिर और विद्यालयों की प्रतिष्ठा कराने का भी आपने अनवरत उद्योग किया। अनेकों को दीक्षा दी और बड़े बड़े संघ निकलवाए ।

यों तो आपश्री के अनेक शिष्य थे परन्तु लावण्यमुनि की योग्यता कुछ और ही थी। ये और शिष्योंसे कई बातों में बढ़े चढ़े थे इनकी विशेष अभिरुचि शास्त्रों की ओर थी। सरस्वती की दयासे आपने स्वल्प समय में सारे आवश्यक शास्त्रों का अध्ययन कर लिया। प्रथम दूसरों के अनुभवों का अध्ययन किया पश्चात् अपने ज्ञान को भी स्थाई रूपमें दूसरों के लिये रख छोड़ने के परम पवित्र उद्देश्य से आपने ग्रंथ निर्माण करना भी आरम्भ किया। धैर्यता, गंभीरता, उदारता, समता, क्षमता, आदि गुणों के कारण आप सर्व प्रिय हो गये थे। इन गुणों के अतिरिक्त वाक्पटुता और भाषण माधुर्यता आपके व्याख्यान को बहुत सरस और श्रवणप्रिय बना देती थी। उन दिनों यक्षदेवसूरिजी के पास एक आप ही ऐसे सुयोग्य शिष्य थे जो आचार्य पदके लिये सर्व प्रकारसे योग्य जँचते थे। इन्हीं अलौकिक और उपयोगी गुणों के कारण यक्षदेवसूरिने उपकेश नगर में संघ के समक्ष वासक्षेप की विधि विधानसे आपको आचार्यपद पर सुशोभित किया । आचार्य बनाकर इनका नाम ककसूरी रक्खा । यक्षदेवसूरी संघकी बागडोर अपने सुयोग्य शिष्य को सौंप सिद्धगिरि की यात्रार्थ प्रस्थान करने लगे । वहाँ पहुँचकर परम निवृति

भाव में रत्त हो संलेखना (अन्तिम तपस्या) करते हुए अनसन कर स्वर्गधाम को सिधारे। ये श्री पार्श्वनाथ भगवान् के बारहवें पट्ट पर बड़े प्रतापी और जैन धर्म के बड़े प्रचारक आचार्य हुए।

(१३) तेरहवें पट्ट पर आचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज बड़े ही विद्वान् हुए। आप उपकेशपुर के भूपति के कनिष्ठ पुत्र थे। बाल्यावस्था में ही आपने पिता के साथ यक्षदेवसूरी के पास दीक्षा अंगीकार की थी। आप बालब्रह्मचारी उत्कट तपस्वी अनेक लब्धियाँ और चमत्कारी विद्याओं में पारंगत थे। साहित्य में भी आपकी आदर्श रुचि थी। आपने अपना अधिकाँश समय ज्ञान सम्पादन करने में बिताया था सरस्वती की आप पर विशेष कृपा थी। सारे स्व–परमत्त के शास्त्र आपके हस्तामलक थे। आपको प्रकाण्ड तत्ववेत्ता जानकर वादियों को सर्वदा अपना मूंह छिपाना पड़ता था तथा वे आपसे दूर ही रहते थे। आकाशगमन भी आप लब्धिद्वारा करते हुए शाश्वत एवम् अशाश्वत तीर्थों की यात्रा करते थे! विविध प्रान्तों में विचरण कर आप जैन धर्म का खूब प्रचार करते थे। आप तेजस्वी, तपस्वी और अलौकिक मनस्वी थे। अनेक नृपति गण आपकी मधुर और मृदु वाक्सुधा का पान करने को लालायित रहते थे। आप के धारा प्रवाह व्याख्यान के फल स्वरूप कई प्राणियों का पाप स्खलित होता था। आपके गुण अकथनीय हैं। आप की कमनीय कांति सब को अपनी ओर आकर्षित करती थी। जरावस्था में आप परम निवृत्ति मार्ग के पथिक थे। आबू और गिरनार की भीम-

काय और दुर्गम कन्दराओं में आप निस्तब्धता में ध्यान लगाते थे। आप एक आदर्श योगी थे। योगाभ्यास करने में आप तन्मय थे। योग की गहन क्रियाओं को सम्पादन करने के लिये आप के पास कई जैनेतर व्यक्ति आते तथा रहा करते थे।

एक बार उपकेशपुर नगर में स्वयंभू महावीर भगवान् के मन्दिर में अठ्ठाई महोत्सव हो रहा था। उस महोत्सव में कई वृद्ध और युवक पूजा किया करते थे। मूर्ती का प्रक्षालन करते समय युवकोंने अवलोकन किया कि मूर्ती के स्तनों पर दो गाँठें विद्यमान हैं। ये दो गाँठें नींबू के सदृश थीं। जब सच्चाइका देवी यह मूर्ति, गोदुग्ध और बेलु से बना रही थी तो मूर्ती सर्वांग-सुन्दर बनने के एक सप्ताह प्रथम मंत्रेश्वर से भूमि खोद कर निकाल ली गई थी। वे ही दो गाँठें रह गई थीं। नवयुवकों को रम्य मूर्ती में एक कसर अच्छी नहीं लगी। उन्होंने सोचा यह गाँठें अत्र मूर्त्ति पर रहना अश्रेयस्कर है। अंगलूणा करते समय यदि किसी की भावना क्षुद्र हो जायगी तो भारी हानि होने की संभावना है और आशातना का बुरा फल उठाना होगा सो अलग। इसकी अपेक्षा तो यह उचित होगा कि गाँठें तुड़वा दी जावें। नवयुवकोंने वृद्धजनों का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया और अनुरोध किया कि इन गाँठों का रहना भद्दा और हानिकर है। यदि ये गाँठें शीघ्र ही दूर नहीं की जायगी तो सम्भव है कि भविष्य में इस के फल बुरे आवेंगे ?। वृद्धोंने नवयुवकों से कहा कि यह गाँठ हानिकर नहीं है। स्वयं सच्चा-

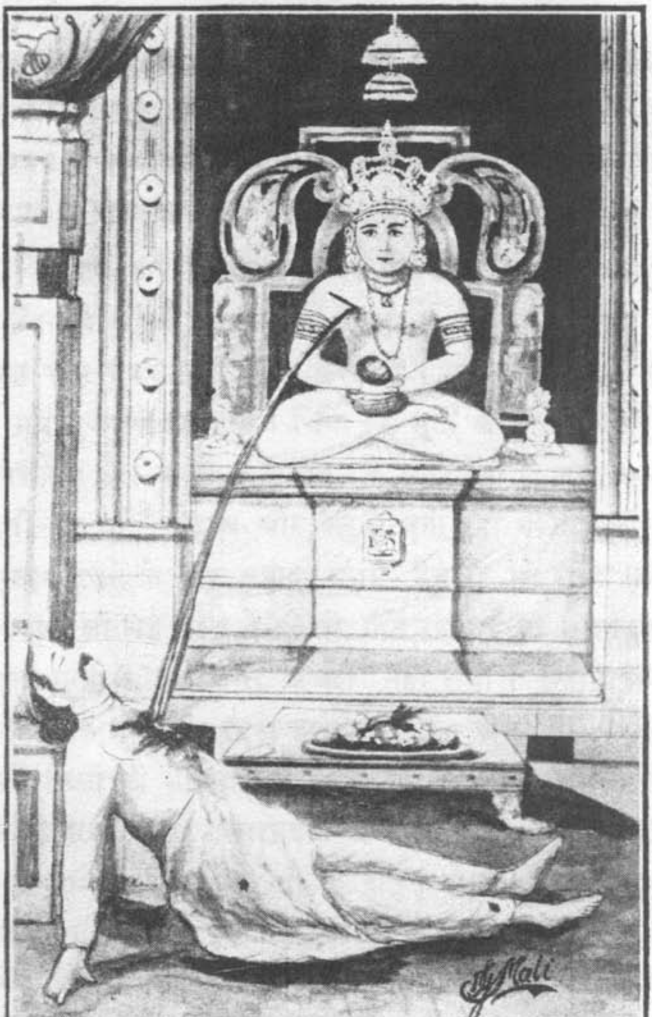

वृद्ध जनों की सलाहका अनादर कर, युवक वर्गकी आज्ञासे, देवी कृत प्रभुमूर्तिके उन्नत स्तन विभागमें कारीगरने टांकी लगातेही, वह धम से नीचे गीर गया, और खूनकी धारा उसके अंग पर गिरतेही कारीगर यमशरण पहोंच गया।

Lakshmi Art. Bombay. 8.

इका देवीने इस का निर्माण किया है तथा आचार्य श्री रत्नप्रभ-सूरिने इस मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करवाई है। यदि यह गाँठें अशुभ होतीं तो वे उस समय इसका निराकरण करने में स्वतंत्र थे किन्तु उन्होंने सोच समझ कर इन गाँठों को रहने दिया था। तुम कहीं आवेश में आ कर कुछ अनर्थ न कर डालना। एक बार तो युवकों ने वृद्धों की बात मान ली पर अन्त में धैर्य टूट ही गया। वे अपने आवेश को रोक न सके। जब वे पूजा करने आते थे तो उन्हें गाँठें खूब खटकने लगीं। संयोग से एक दिन सब वृद्ध लोग सामाजिक कार्य हित एकत्रित हो कर दूसरे स्थान को गये थे। नवयुवकों ने अपनी मन चाही करने का अवसर वही ठीक समझा। प्रचुर द्रव्य व्यय कर के एक सूत्रधार को उस कार्य के लिये बुलाया। उस लोभीने आकर मूर्ती के वक्षःस्थल पर टँकी लगाई। टँकी के लगते ही मूर्ती में से रक्तधारा प्रवाहित हुई। सूत्रधार भी बेहोश हो गिर पड़ा और गिरते हुए शोणित में लथपथ हो गया। रक्त गंभारा से परिप्लावित हो कर आगे बहने लगा। मूर्ती में से अविरल रक्त के फँवारे छूटने लगे। नवयुवकों की मंडली भयान्वित हो कर भाग गई। नगर भर में हाहाकार का कुहराम मच गया। वह दिन तो साक्षात् रुद्र रूप प्रकट करने लगा। दिशाओं भी डरावनी प्रतीत होने लगी। देवी के कोप से देश में खलभली मच गई। यह समाचार, जो पूरा रोमाञ्चकारी था, वृद्धजनों तक बात की बात में पहुँच गया। उन्होंने आ कर नवयुवकों को खूब उपालम्भ दिया। आशातना

होने के कारण ही यह अनर्थ उपस्थित हुआ था। सब इस चिन्ता में व्यस्त थे कि इसका प्रतिकार क्या किया जाय ? अन्त में दूसरा कोई उपाय न देख कर सब एकत्र हो उपाश्रय में मुनिराज के पास गये। वहाँ जा कर सब वृत्तान्त कह सुनाया। श्रावकोंने कहा कि युवक नादान थे। उन्होंने भूल की है। आप ही कुछ उपाय बताइए कि यह विघ्न किस प्रकार शांत हो सकता है। जैसा आप कहेंगे वैसा हम करेंगे। वहाँ स्थित मुनिराजोंने कहा कि निसन्देह यह आशातना अनर्थकारी है इसकी शांति कराना हमारे सामर्थ्य से परे है। इस की शांति कराने वाले आचार्य श्री कक्कसूरि जैसे महात्मा ही हैं। वृद्धजनोंने पूछा कि आचार्य श्री कहां विराजते हैं ? मुनिराजोंने उत्तर दिया, " आबू या गिरनार तीर्थ पर किसी कन्दरा में ध्यान लगाए हुए वे बैठे होंगे। " यह समाचार सुनते ही वे आकाशमार्ग द्वारा एक मुहूर्त में यहाँ पहुँच कर रक्त का प्रवाह रुकवा देंगें। अब विलम्ब करना उचित नहीं। सबने एक निमंत्रण लिख कर शीघ्र गामिनी सांढड़ी (उँटनी) पर एक आदमी को भेजा जो एक दिन ही में गिरनार गिरि की कन्दराओं के पास आ पहुँचा। उसने वन्दना करने के पश्चात् पत्र दिया। समाचार जान कर आचार्यश्री को शोक हुआ। आकाश गामिनि लब्धि के कारण वे तो एक मुहूर्त में ही उपकेशपुर नगर आ पहुँचे। वहाँ की दशा देख कर उनका दिल वेदना से विह्वल हो उठा। सच्चाइका देवी क्रोध से आगबबूला हो कर इतनी विक्षुब्ध हुई कि उसे

इतनी भी शुद्धि न रही कि आचार्यश्री पधार गये हैं। तब आचार्यश्रीने अष्टम तप आरम्भ किया। अष्टम तप के अन्तिम दिन की रात्रि के समय आचार्यश्री की सेवा में देवी उपस्थित हुई। फिर परस्पर इस प्रकार सँवाद हुआ।

आचार्य—"देवी होनहार हो चुका। अब प्रकोप करनेसे क्या लाभ है ? अब तो शांति करनाही तुम्हारा ध्येय होना चाहिये।"

देवीः—" स्वामिन्, सचमुच इस नगर के लोग बड़े अज्ञानी हैं। पूज्यपाद आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीने शुभ लग्नमें स्वयंभू प्रभु महावीर की मूर्ती की प्रतिष्ठा कराई। इसकी आशातना कर के युवकोंने बड़ाअनर्थ किया है। यदि वह प्रतिष्ठा अभंग रहती तो महाजन संघ का महोदय इसी प्रकार होता रहता जिस प्रकार की पिछले तीनसौ वर्षोंसे हो रहा है। आन, मान, मर्यादा सुख, सौभाग्य, गुण, गौरव, यश, वैभव, तप और तेज दिन ब दिन बढता जाता। इस समाज का उत्थान उत्कृष्ट रूपमें होता तथा संसारभरमें कोई अपर समाज ईससे बढ़ना तो क्या, पर बराबरी भी नहीं कर पाता। इस उच्छृंखलता के कारण अब तो इस जाति का विनाश ही होगा। इन के भले कार्योंमें सदा रोड़ा अटका करेगा। फूट और फजीहत का इन के घरोंमें साम्राज्य रहेगा। इन को सम्पूर्ण सफलता अबसे कभी नहीं मिलेगी। इन के कार्योंमें पदपद पर विघ्न बाधाएँ उपस्थित होंगी। इस आशातना के फल स्वरूप ये कई फिरकों में विभक्त

हो कर आपसमें ही श्वान की तरह कट कट कर मरेंगें और मिटेंगे। ये दर दर अपमानित भी होंगे।"

आचार्यः—" देवी इतना कोप करना ठीक नहीं। भवितव्यता ऐसी ही थी। भविष्यमें ज्ञानीने देखा होगा वैसा ही होगा। पर इस उपस्थित समस्या को हल करना अत्यावश्यक है। सब लोग तो बुरे हैं ही नहीं। कुछ लोगों के करतब के कारण सब कष्ट पावें यह अनुचित है। कुछ भी हो आखिर तो युवक नादान हैं। पूत कपूत भले ही हों पर माता कुमाता क्यों हो ?"

देवीः—" भगवन्! आप की आज्ञा को शिरोधार्य करती हुं पर इन पापात्माओं (आशातना करनेवाले) का मुख देखना मैं नहीं चाहती। ये लोग यदि यहाँ रहेंगे तो कदापि सुख उपलब्ध नहीं करेंगे।"

आचार्यः—" यदि यह संघ यहाँसे चला जायगा तो यह धन धान्यसे सम्पन्न देश, श्मशान तुल्य हो जायगा। यह नगर व्यापार का केन्द्र है। जब यह ऊजड़ हो जायगा तो सैकड़ों मन्दिरोंमें सेवा-पूजा कौन करेगा ? सोतो होगा ही पर आप की सेवा-पूजा उपासना भी तब कौन करेगा ? आवेशमें न आओ, जरा सोचो और विचार करो।"

देवीः—" हाँ मैं यह जानती हूँ कि आज जो उपकेशपुर स्वर्ग की बराबरी करता है तो वह इस महाजन संघ ही के कारण; पर इन लोगोंने भी आशातना जबरदस्त की है। खेर! यदि आप कहें तो मैं इन्हें क्षमा कर सकती हूँ। आप की आज्ञा मुझे सर्व प्रकारसे माननीय है।"

आचार्यः—" मेरी यह ही आज्ञा है कि इस उपद्रव की शांति शीघ्रातिशीघ्र होनी चाहिये । "

देवीः—" इस महान उपद्रव की शांति के निमित्त शांति-पूजा कराने की नितान्त आवश्यक्ता है । "

आचार्यः—" वैसे तो शांतिपूजा विभिन्न प्रकार की है पर इस अवसर पर कौनसी पूजा कराना उपयुक्त होगा ? वह पूजा ऐसी चुनिये जिस की सर्व सामग्री यहाँ उपलब्ध हो सक्ती हो । "

देवीः—" आचार्य श्री ! आप तो केवल वासक्षेप मात्र के विधिविधानसे भी शांति स्थापन करनेमें समर्थ हैं पर इस समय ऐसी शांतिपूजा कराने की आवश्यक्ता है कि जिसे जान कर और लोग भी ऐसे अवसरों पर शांतिपूजा विधिसहित कर लाभ उठा सकें ।

आचार्यः—" बिना शास्त्रों के आधार के मैं कोई नया विधान बनाना उचित नहीं समझता । श्रीसीमंधर स्वामीसे ही विधि पूछना उचित होगा । "

देवीः—" आप का यह परामर्श मुझे भी ठीक जचता है । "

आचार्यः—" तो अब विलम्ब करना उचित नहीं । "

देवीः—" तो मैं महाविदेह क्षेत्रमें जाती हूँ । "

आचार्यः—" जहाँ सुखम् । "

देवीने महाविदेह क्षेत्रमें जाकर भगवान् श्री सीमंधर-स्वामी को वंदना की एवं शांति पूजा का विधिविधान पूछा । और भगवान के फरमाया हुआ विधिविधान सब वृतान्त

ध्यानपूर्वक देवीने सुन लिया। वापस आकर उसने आचार्यश्री को सब बातें सुनाईं। देवीने कहा कि शांतिस्नात्र पूजा करानेवाले को तो प्रथम अष्टम तप करना चाहिये। स्नात्रियों को तीन दिन तक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत पालना चाहिये। सब मिलाकर अष्टादश स्नात्रियों की आवश्यक्ता होती है, जो मंत्राक्षरपूर्वक शांतिस्नात्र पूजा करावेंगे। घृत, दूध, दहीं, इक्षु और जल का पंचामृत बनाकर एक सो आठ कलश भरवाने चाहिये तथा श्रीफल, पुंगीफल, आदि शुभ पदार्थों का भी यथोचित आयोजन होना आवश्यक है। उपरोक्त विधि के विधानसे ही उपस्थित उपद्रव शांत होगा। देवीने सब बातें विस्तारपूर्वक सुना दीं तथा सुनाकर अपने स्थान को प्रस्थान कर गई। आचार्यश्रीने प्रातःकाल होते ही सब संघ को बुलाकर उपरोक्त उपाय विधिसहित सुना दिया। बात की बात में सब सामग्री एकत्रित हुई। श्री संघने आचार्यश्री को पूजा का अध्यक्ष बनाया। आपश्री की देखरेख में पूजा का कार्य आरम्भ किया गया। स्नात्रिय बनते समय पट्टावलीकारोंने अष्टादश *गौत्रों के नाम भी निरुपया

*गोत्रों का श्रेणी बन्धन कब और किस प्रकार से हुआ यह निश्चयात्मक रूपसे नहीं कहा जा सकता। किन्तु अनुमान होता है कि महावीरस्वामीने पूर्व बंगाल में जाति या वर्ण का बन्धन तोड दिया था तब सब जाति के मिश्रित जैनों के एक वर्ग ही की कई शाखाएं कहलाईं जिनसे पहिचान हो जाती थी। जैसे मठर गौत्र, वैशियाया गोत्र, सहल गोत्र, तंगियाया गोत्र, और तुंगल जादि गोत्र कहलाए हैं। इसी प्रकार मरुस्थल आदि प्रान्तो में आचार्य स्वयंप्रभसूरी, रत्नप्रभसूरीने महाजन संघ स्थापित किये। उनके गोत्र भी कारण पा पा कर इस प्रकार कहलाए —

श्रीमालनगर से आए हुए समुदाय को श्री श्रीमाल गोत्र।

किये । यथा–(१) तातेहड़ गोत्र (२) बाफणा गोत्र (३) कर्णाट गौत्र (४) वलहा गोत्र (५) मोरख गोत्र (६) कुलहट गोत्र (७) विरहट गोत्र (८) श्री श्रीमाल गोत्र (९) श्रेष्ठि गोत्र । इन नौ गोत्रों वाले स्नात्रिय प्रभु के दक्षिण की ओर पूजा सामग्री हाथ में लिये खड़े थे । (१) संचेती गोत्र (२) अदित्यनाग गोत्र (३) भूरिगोत्र (४) भाद्रगोत्र (५) चिंचटगोत्र (६) कुंभट गोत्र (७) कनौजिये गोत्र (८) डीडूगोत्र (९) लघुश्रेष्ठि गोत्र । इन नौ गोत्रोंवाले स्नात्रिय प्रभु के बांई ओर जल, पुष्प, फल, चन्दन, आदि पूजा की सामग्री लिये खड़े थे । (इन अठारह गोत्रों की शाखा प्रशाखा ४६८

कर्णाट से आए हुए समुदाय को कर्णाट गोत्र ।

कनौज से आए हुए समुदाय को कनौजिय गोत्र ।

भाद्रा से आए हुए समुदाय को भाद्रा गोत्र ।

डीडूनगर से आए हुए समुदाय को डिडू गोत्र ।

आदित्यनाग प्रसिद्ध पुरुष के नाम से आदित्यनाग गोत्र ।

महाराजा उपलदेव के समाज में एक श्रेष्ठ पुरुष होनेसे श्रेष्ठि गोत्र ।

सूचना करने वालों को संचेती गोत्र ।

इसी प्रकार सिन्ध, कच्छ पंजाब आदि के महाजन संघ व गोत्र में कहलाए । इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय में उपकेशपुर में व्यापार की खूब वृद्धि थी । इसी प्रकार भिन्न भिन्न प्रान्तों से लोग आकर वहां निवास करने लगे । जैन धर्म स्वीकार कर वे महाजन संघ में मिलते जाते थे ।

इत्यादि कारणों से अलग अलग गोत्रों का होना स्वाभाविक बात थी । और गृहस्थों के लग्न व्याह आदि में इन गोत्रों को निर्माण करने की आवश्यकता भी थी । इन गोत्रों के कारण महाजन संघ में किसी भी प्रकार की लघुता गुरुता का विचार उत्पन्न नहीं हुआ था । जिस तरह आज ओसवाल पोरवाल और श्रीमाल एक दूसरे को आपस में हटा समझते हैं ऐसी फूट तब न थी ।

जातियाँ के नाम चौथे प्रकरण में बताए गये हैं। किन्तु इन अठारह गोत्रों के अतिरिक्त और उस समय कितने गोत्र थे, इस का उल्लेख कहीं भी अब तक नहीं मिला है।)

जैसे जैसे मंत्राक्षर से अभिषेक होता गया तथा पूजा बनने लगी वैसे वैसे अनुपात से रक्तधारा बंद होती गई। पूजा सम्पूर्ण होते ही उपकेशपुर के घर घर में हर्ष ध्वनि उद्घोषित होने लगी। आचार्यश्री की अनुगृह कृपा से देवी का कोप भी मिट गया। संघने विनती की और आचार्यश्रीने स्वीकार कर चतुर्मास भी वहीं किया। यह समय मूल प्रतिष्ठा से ३०३ वर्ष पश्चात था अर्थात वीर सं. ३७३ या विक्रम पूर्व सं. ९७ की यह घटना थी।※

※ कितने ही लोग कहते हैं कि इस उपद्रव के कारण उपकेशपुर से सब महाजन चले गये और अन्य स्थानों में जा बसे। उस दिन से ओसवाल ओशियाँ में नहीं बसते हैं और कोई कोई इतना तक कहने की भी धृष्टता करता है कि ओसवाल रातभर भी वहां नहीं रह सकते हैं। यह बात बिल्कुल निराधार एवं प्रमाणरहित है। कारण यह कि न तो उस समय महाजन वंश का नाम ही ओसवाल था न उपकेशपुर का नाम ही ओशियाँ था। इतिहास से यह पता चलता है कि विक्रम की दशवीं ईग्यारवीं शताब्दि तक तो बडे बडे धनाढ्य महाजन (उपकेश वंशी) लोग उपकेशपुर ही में रहते थे और वह नगर व्यापार का एक बडा भारी केन्द्र था। जब से उपकेशपुर के पास का समुद्र दूर हो गया तब से ही व्यापार के अभाव बस्ती घटने लगी। लोग दूर दूर जाकर बस गये। उपकेशपुर के उजड़ने का दुसरा कारण यह भी था कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दि में कितने ही वर्ष तक निरन्तर अकाल पड़ने लगे। नगर की दशा बड़ी भयंकर हो गई। उन वर्षों में लोग उपकेशपुर त्याग त्यागकर अन्य प्रान्तों में जा बसे। इन कारणों से महाजनों की बसती कम हुई। पर ऐसा उल्लेख कहीं भी नहीं मिला कि लोग उपकेशपुर को यकायक एक साथ

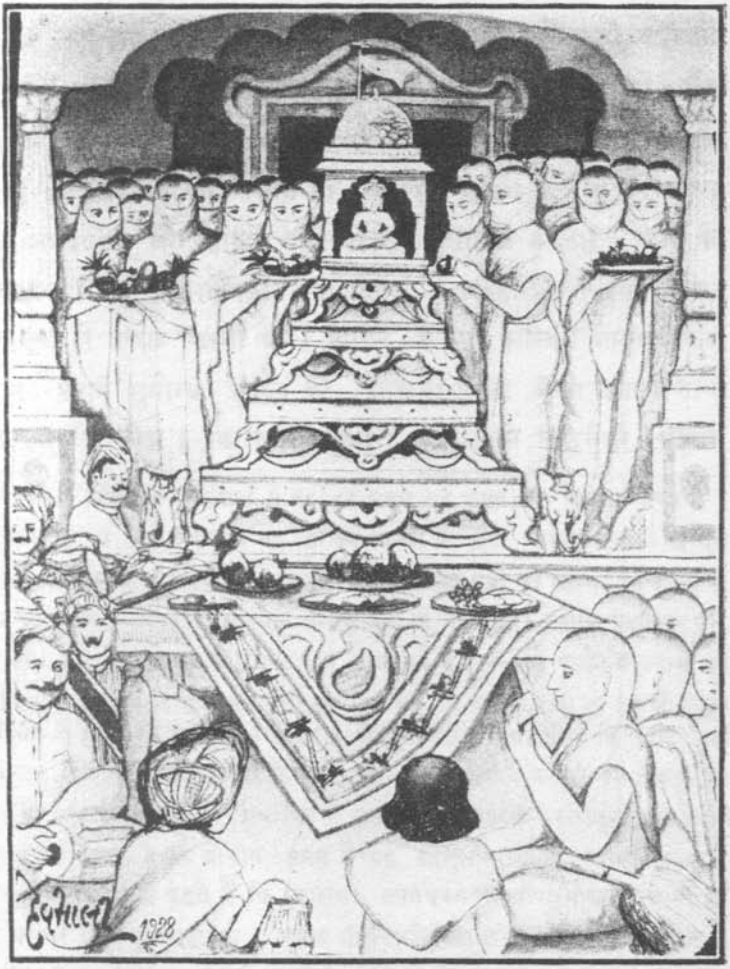

देवीने अपनी बनाई मूर्तिका ऐसा अपमान देख प्रकोपीत हो, रोगादी उपद्रव शरू कर दीये, आराधनासे देवीको संतुष्ट कर आचार्य श्री कक्कसूरिजीने देवीके अनुरोध अनुसार शांति स्नात्र पूजा कराके उपद्रवको शांति करवाई।

Lakshmi Art, Bombay, 8

आचार्य श्री कक्कसूरीजी महाराजने अपने परोपकारी जीवनमें अनेक भव्य आत्माओं का उद्धार किया। आपने सैकड़ों जैन मन्दिरों और विद्यालयों की प्रतिष्ठा कराई। आपने हजारों नरनारियों को जैन धर्म की दीक्षा दी। आपने विविध प्रान्तों में पर्यटन कर जनता को जैन शास्त्रों के तत्वों का सुधापान कराया। आप के आज्ञावर्ती साधु साध्वियाँ देश विदेश में विहारकर जैन धर्म का प्रचुरता से प्रचार करती थीं। आपने अपना अन्तिम समय निकट जान अपने सुयोग्य शिष्य को आचार्य पदवी देकर उनका नाम देवगुप्तसूरी रक्खा। आचार्य कक्कसूरी महाराजने सिद्धगिरि पवित्र

छोड चले। ओसवाल ओशियाँ में नहीं रह सकते यह कथन भी कपोलकल्पित है। इस किंवदंती का कारण शायद यह हो कि पहाडी के उपर पार्श्वनाथस्वामी का एक मन्दिर था जिसके बाहिर की ओर चबूतरे पर सचाइका देवी का मन्दिर था। पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर की सम्भाल सम्यक् प्रकारसे नहीं हुई। क्योंकि महाजन धीरे धीरे नगर छोड के चले गये थे। एसी दशा में सम्भव है। लोगोंने पार्श्वनाथ स्वामी की मूर्ती हटाकर उस जगह देवी की मूर्ती स्थापित कर यह बात फैलादी हो कि ओसवाल ओशियों में नहीं रह सकते हैं। अफवाह फैलानेवालोंने सोचा होगा कि यदि यहां ओसवाल रहेंगे तो शायद मन्दिर के लिये कुछ झगडा अवश्य करेंगे। इस समय जो देवी का मन्दिर ओशियाँ में स्थापित है उस को ध्यानपूर्वक अवलोकन करने से भी यही प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में यह मन्दिर पार्श्वनाथ स्वामी का था। पट्टावलीकार भी यही कहते हैं कि महाराजा उपलदेवने पहाडीपर पार्श्वनाथस्वामी का एक मन्दिर निर्माण कराया था। आज भी निम्नलिखित तीन प्रमाण सिद्ध करते हैं कि यह मन्दिर पार्श्वनाथ स्वामी का ही था (१) प्राचीन पट्टावलियों (२) पार्श्वनाथ स्वामी की प्राचीन मूर्ती (३) विक्रम की तेरहवीं शताब्दि में एक यात्रालु बाईने महावीर रथशाला के लिये बनाए हुए उपाश्रय के खंडहर.

तीर्थ की शीतल छाया में तपश्चर्याकर अनसन कर समाधिपूर्वक शरीर त्यागकर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया। श्री संघने आपश्री की स्मृति में वहाँ पर एक सुन्दर रमणीय और बड़ा विशाल स्तम्भ बनाया। इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के तेहरवें पट्टपर आचार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज बड़े ही विद्वान आचार्य हुए जिन का उज्ज्वल नाम इतिहास में अमर रहेगा। शेष आगे के प्रकरण में।

॥ इति शुभम् ॥

भगवान् महावीर स्वामी की वंश परम्परा का
(इतिहास)

द्वितीय प्रकरणमें आदि तिर्थंकर श्री ऋषभदेवसे लेकर अन्तिम तिर्थंकर महावीर प्रभु का जीवन संक्षिप्त तया लिखा जा चूका हैं। इस प्रकरणमें उसके बाद का इतिहास लिखा जायगा। भगवान् महावीर स्वामी के पीछे कितने आचार्य कब कब हुए और उन्होंने क्या क्या कार्य किये, इस का वृतान्त इस प्रकरण में विस्तारसे दिया जायगा।

भगवान् महावीर के ११ गणधर हुए। उनमें नौगणधर तो भगवान के जीवनकाल ही में राजगृह के व्यवहारगिरि तीर्थ-पर परमपद कों प्राप्त हो गये थे। भगवान् इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) को महावीरस्वामी के निर्वाण की रात्रि के अन्तिम कालमें कैवल्यज्ञान उत्पन्न हुआ था। शेष गणधर सौधर्मस्वामी जो भगवान् के पचम गणधर थे। सौधर्मस्वामी ही श्री महावीर के उत्तराधिकारी होने के कारण आचार्यपद पर सुशोभित हुए।

[१] प्रथम पट्ट पर आचार्य श्री सौधर्मस्वामी आरोहित हुए। आप का जन्मस्थान सन्निवेश कैल्लाग था। इनके पिता का नाम धार्मिल था जिन का गोत्र वैशंपायन ब्राह्मण था। आप का जन्म हरव्रायण गोत्र की माता भादिला की कूख से हुआ था। पिताने

अपने पुत्र का जन्मोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया । आप का सुभाग्य नाम सौधर्म रक्खा गया । बाल्यावस्था व्यतीत होने के पश्चात् आपने विद्याध्यनमें खूब प्रवृति रक्खी । आप अपने अध्ययनमें खूब तल्लीन रहते थे । वेद वेदांग के अध्ययन के अतिरिक्त वैद्यक, ज्योतिष, और नीति के शास्त्रोंसे भी पूर्ण विज्ञ थे । यज्ञ यगादि क्रियामें भी आप दक्ष थे । अध्यायन कार्यमें भी आप की गति थी । आप की शिक्षा प्रणाली इतनी अच्छी थी कि दूर दूरसे शिष्य आकर आपके पास अध्ययन करते थे । छात्रों की संख्या पांचसो के लगभग थी । जो कि सदा पास रहते थे । आप के मनमें एक संदेह था कि " पुरुषो वै पुरुषत्व मश्रुते. पशवः पशुत्वं " अर्थात् जिस योनिमें जीव इस समय है मरनेपर भी उसी योनिमें जन्म लेगा । इस शंका का आप समाधान कराना चाहते थे। यदि कोई ज्ञानी मिल जाय तो अपना भ्रम मिटा लूँ ऐसा आप का विचार था । संयोगसे एकबार मध्य पापापुरीमें सोमल ब्राह्मण के यहाँ एक बड़े यज्ञ का विधान हो रहा था । उधर भगवान महावीर स्वामी का समवसरण हो रहा था । इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति एवम व्यक्त नामक चार अध्यक्षोंने अपने संशय को दूर कर सपरिवार महावीरस्वामी के पास दीक्षा ली थी । उसी सिलसिलेमें सौधर्म नामक विप्र अपने शिष्यों को लेकर भगवान् महावीर प्रभु के पास आया । जब उस की शंकाओ का समाधान हो गया तो उसने भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार की। इस तरह वह क्रमशः एकादश अध्यापक अपने ४४०० छात्रों

सहित दीक्षित हो कर भगवान के शिष्य हुए। भगवानने इन्द्रसे लाए हुए वासक्षेपसे विधिपूर्वक एकादश अध्यापकों को गणधर पद पर आरोहित किया। इन्हींमें से सौधर्म एक गणधर थे। हेय ज्ञेय और उपादेय इन तीन शब्दोंसे ही सारे तत्वज्ञान की शिक्षा पा कर सौधर्मस्वामीने द्वादशांग की रचना की। इस रचना द्वारा किया हुआ असीम उपकार भूलने योग्य नहीं है। सारा संसार आज उन सिद्धान्तों का कायल है। आज जो संसारमें जैन-धर्म का जो अस्तित्व है वह प्रताप आपका ही है। आप के रचित शास्त्रों के कारण ही अनेक जीवोंने अपना व पराया आत्मोद्धार किया है तथा इस पंचम आरे के अन्ततक कई प्राणी अपनी आत्मजागृति करेंगे। यह सब आप का ही अनुग्रह है। आप बड़े धर्म धुरंधर आचार्य हुए आप चतुर्विध संघ के नायक थे तथा शासन को सुचारु रुपसे चला कर जैनधर्म को देदिप्यमान करनेमें आप पूर्ण समर्थ थे। आप ५० वर्ष पर्यन्त गृहस्थावस्थामें रहे तत् पश्चात् ३० वर्ष पर्यन्त महावीरस्वामी के पास रह कर उन की भली भांतिसे सेवा की। १२ वर्ष पर्यन्त आपने छद्मस्त अवस्थामें रह कर ८२ वर्ष की आयुमें केवल्यज्ञान की प्राप्ति की, जिस समय की गौतमस्वामी का निर्वाण हुआ था। आठ वर्ष तक कैवल्य अवस्था में रह कर संसार का उपकार करते हुए सौवर्ष की पूर्ण आयुमें वीरात् सं. २० में अपने पद पर जम्बुस्वामी को स्थापित कर आपने अक्षय सुखदायक परमपद को प्राप्त किया।

[२] दूसरे पट्टपर आचार्य जम्बूस्वामी बड़े प्रभावशाली

आचार्य हुए। आप का जन्म मगधदेश के अन्तर्गत राजगृहनगर के निवासी कश्यप गोत्रिय (उत्तम क्षत्रिय) छनवें क्रोड़ सुवर्ण मुद्रिकापति श्रेष्टि ऋषभदत्त की हरितन गोत्रिय भार्या धारणी के कुक्षसे हुआ था। जब ये गर्भमें थे तो इन की माता को जम्बू सुदर्शन वृक्ष का स्वप्न आया था। ये पंचम ब्रह्मदेवलोकसे चव के अवतीर्ण हुए थे। जब ये गर्भमें थे तो इन की माता को कई कई पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। ऋषभदत्तने बहुत हर्षोत्साहसे धारणी को इष्ट वस्तुएँ द्वारा मनोरथ पूर्ण किये। शुभ घड़ीमें आप का जन्म हुआ था। जन्मोत्सव बड़े धूमधामसे किया गया। स्वप्न के अनुकूल आप का नाम जम्बुकुमार रक्खा गया। आपने अपनी बाल्यावस्था खेलते कूदते बहुत प्रसन्नतापूर्वक बिताई। आपने शिक्षा ग्रहण करनेमें किसी भी प्रकार की कमी नहीं रक्खी। आप बहोतर कला विज्ञ थे। जब आप विद्या पढ़कर धुरंधर कोटि के विद्वान हुए तो मातापिताने इन्हीं के सदृश गुणोंवाली विदूषी रूपवती देवकन्या सदृश आठ कुलीन लड़कियोंसे आप का विवाह कराना उचित समझा।

इधर भगवान सौधर्माचार्य विचरते हुए राजगृह नगरी की ओर पधारे। आपने आकर गुणशिलोद्यान नामक रमणीक स्थानमें उपदेश सुनाना आरम्भ किया। नगर के सारे लोग सूरिराज का दर्शन करने को आतुरता से उद्यानमें आकर अपने जीवन को सफल बनाने लगे। ऋषभदत्त भी धारणी और जम्बुकुमार सहित सूरीश्वरजी की सेवामें दर्शनार्थ आ उपस्थित हुआ। आचार्यश्रीने

धर्मोपदेश करते हुए बडी खूबीसे प्रमाणित किया कि संसार असार एवं कष्टप्रद है तथा इस द्वंद को हरने का उपाय दीक्षा लेना है। इसीसे मुक्ति का मार्ग मिल सकता है। सचे उपदेश का प्रभाव भी खूब पड़ा। जम्बुकुमार के कोमल हृदय पर संसार की असारता अंकित हो गई। जम्बुकुंवरने विचार किया कि पूर्व पुन्योदय से ही इस मानव जीवन का आनन्द मुझे अनुभवित हुआ है। बड़े शोक की बात होगी यदि मैं इस अपूर्व अवसरसे किसी भी प्रकार का लाभ न उठाऊँ। बार बार मानवजीवन मिलना दुर्लभ है। अब देर कर के चुप रहना मेरे लिये ठीक नहीं ऐसा सोचकर उन्होंने निश्चय किया कि आचार्यश्री के पास ही दीक्षा ले लेनी चाहिये। इससे बढ़कर कल्याण की बात मेरे लिये क्या हो सकती है ? जम्बुकुमारने आचार्यश्री के पास जाकर अपने मनोगत विचार प्रकटित कर दिये। जम्बुकुमार इन्हीं विचारतरंगोमें गोता लगाता हुआ नगर को लौट रहा था कि एक बन्दूक की आवाज सुनाई दी। देखता क्या है कि एक गोली पास होकर सररररर निकल गई। कुंवर बालबाल बच गया। जम्बु कुंवरने विचार किया कि यदि मैं इस घटनासे पंचत्व को प्राप्त होता तो मेरे मनोरथ टूट जाते अब देर करना भारी भूल है। कौन कह सकता है कि मृत्यु कब आ जावे। उन्होंने सोचा क्षण भर भी व्यर्थ बिताना ठीक नहीं। इस समय मैं क्या कर सकता हूं यह सोचने कि देर थी कि तत्काल आत्मनिश्चय हुवा कि मैं आ जन्म ब्रह्मचारी रहूंगा। मन ही मन पूर्ण प्रतिज्ञा कर ली कि मैं सम्यक् प्रकार से

जीवन पर्यन्त शीलव्रत रक्खूंगा । धन्य ! धन्य ! जम्बुकुमार आतुरता से अपने माता पिता के पास पहुंचा और उसने अपने निश्चय की बात कह सुनाई और भिक्षा मांगी की मुझे आज्ञा दीजिये ताकि मैं दीक्षा ले कर अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने में शीघ्र समर्थ होऊं ।

ऋषभदत्त और धारणी कब चाहती थी कि ऐसा अद्वितीय पुत्र हम से दूर हो । पुत्रने प्रार्थना करने में किसी प्रकारकी भी कमी न रक्खी । वैराग्य के रंग में रंगा हुआ कुमार संसार में रहने के समय को भार समझने लगा । पिताने उत्तर दिया नादान कुमार इतने क्यों अधीर होते हो ? अभी तुम्हारी आयु ही क्या है ? हमने तुम्हारा विवाह रूपवती शीलगुण सम्पन्न आठ कन्याओं से कराना निश्चय कर लिया है । अब न करने से सांसारिक व्यवहार में ठीक नहीं लगती । यदि तुम्हें हमारी मान मर्यादा का तनिक भी विचार है तो विह्वल मत हो. बात मान ले । विवाह करने से आनाकानी मत कर, क्या तूं हमारी इतनी बात तक न मानेगा ? तूं एक आदर्श पुत्र है । हमारी बात मान करविवाह तो कर ले । जम्बुकुमार दुविधा में पड़ गया । आज्ञाकारी पुत्रने पिता की बात टालनी नहीं चाही । विवाह करने की हामी भर ली । पुत्र के ऐसे विनय व्यवहार से पिता माता बहुत उल्लासपूर्वक विवाह के लिये तैयारी करने लगे । सारी सामग्री बात की बात में एकत्रित हुई । कन्याओं के माता पिताने विवाह की तैयारी कराने के प्रथम अपनी आठों बालिकाओं कों बुला कर पूछा कि

जिस कुंवर के साथ तुम्हारा विवाह होने वाला है वह संसार से उदासीन है। वह एक न एक दिन संसार के बन्धनों को तोड़, राज्य सदृश लक्ष्मी और कामिनी को तिलांजली दे दीक्षा अवश्य ग्रहण करेगा ही। तथापि उसका पिता विवाह कराने पर उतारू है। वह बरजोरी अपने पुत्र को बाध्य कर विवाह के लिये तैयार करता है। तुम्हारी अनुमति इस विषय में क्या है, निसंकोचपूर्वक कहा मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी इच्छाओं के विरुद्ध मैं कुछ करूं।

पुत्रियोंने प्रत्युत्तर दिया की पिताजी ! निसंदेह हम अपना जीवन उस कुंवर पर समर्पित कर चुकी है। उसने हमारे हृदय में घर कर लिया है अतएव दूसरे पति के लिये हमारे मन में स्थान पाना असम्भव है। आप निसंकोच हमारा पाणी ग्रहण उस के साथ करवा दीजिये। पिताने पुत्रियां की बात ही मानना उचित समझ कर विवाह की खूब तैयारियां की। निर्विघ्नतया विवाह समाप्त हुआ। पिताने अपनी पुत्रियों को दहेज में इतना धन दिया कि सारे लोग उस की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। वह धन ९९ वें क्रोड़ सुनहैया था। विवाह के पश्चात् जम्बुकुमार रात्रि को महल में पधारे तो आठो स्त्रिएं सुन्दर वेश भूषन पहिन कर वचन चतुराई से अपनी ओर आकर्षित करती हुई जम्बुकुमार के पास आकर हावभाव दिखा कर अपने वश में करने का प्रयत्न करने लगी। पर भला उदासीन कुंवर पर इन बातों का क्या प्रभाव पडने का था।

उधर प्रभव नाम का चोरों का सरदार अपने साथ ५००

चोरों को लेकर उस नगर में आया। उसने विचार किया कि जम्बुकुमार को ९९ क्रोड़ सुनहैये दहेज में मिले हैं तो उन्हीं को जाकर किसी प्रकार चोर कर लाना चाहिये। इसी हेतु से वह जम्बुकुमार के महलो में उसी दिन चतुराई से गुप्त रूप से पहुंच गया। जाकर क्या देखता है कि धन का और किसी का भी ध्यान नहीं है। जम्बुकुंवर अपनी नवविवाहित स्त्रियों को समझाने में तन्मय है। और वह सुरसुन्दरियों अपने पति को संसारमें रखने के लिये अनेक हेतु दे रही थी। चोरने उन की बातें सुनी। कुंवर अपनी स्त्रियों को कह रहा था कि जिस सुख के लिये तुम मुझे लुभाने का प्रयत्न कर रही हो वह सुख वास्तव में तो दुःख है। यदि तुम्हें सचे सुख को प्राप्त करने की इच्छा है तो मेरा अनुकरण करो। स्त्रियोंने समझाए जाने पर कुंवर की बात मान ली और इस बात की सम्मति प्रकट की कि हम भी आठों आप के साथ ही साथ दीक्षा ग्रहण करेंगी। चोर विस्मित हुए। उन की समझ में नहीं आया कि यह कुंवर इस धन की ओर, जिस के लिये कि हम रात दिन हाय हाय करते हुए अपने प्राण तक संकट में डालते हैं, इन स्त्रियों की ओर, जिन के कि वशीभूत हो कर हम अनेकों निर्लज्ज काम कर डालते है, दृष्टि तक नहीं डालता। सचमुच यह कुंवर कदाचित पागल ही होगा। चोरोंने चाहा कि अपन तो अब इन का संवाद सुन चुके हैं यहां से रफ्फु चक्कर होना चाहिये पर देखिये शासन देवने क्या रचना रची। ज्यों ही चोर सुन हैयों की गठरियों सर पर धर कर टरकने लगे कि उन के पैर रुक गये। वे पत्थर मूर्ती की तरह फर्श पर अचल हो गये।

चोरों के होश गुम हो गये। वे प्रथम तो खूब डरे पर अन्त में और कोई उपाय न देख कर गिड़गिड़ाय कर कातर स्वर से कुंवर को सम्बोधन कर बोले कि आप को धन्य है।

कहाँ तो हम अधम कि धन को ही जीवन का ध्येय समझ कर रात दिन इस की ही प्राप्ति के लोभ में अपनी जिन्दगी को पशुओं से भी बदतर बिताते हुए मारे मारे फिरते हैं; जिस के कारण कि हम फटकारे जाते हैं और कहाँ आप से भाग्यशाली नर कि इस ऋद्धि को तृण समान तथा इन रूपवती स्त्रियों को नर्क प्रद समझ कर छोड़ने का साहस कर रहे हो। वास्तव में हम अति पामर हैं। हम अंधेरे कुए में हैं। हम अपने लिये अपने हाथ से खड्डा खोद रहे हैं। आप अहोभागी हैं। सब कुछ करने में आप पूरे समर्थ हैं. मैं आज आप से एक बात की याचना करता हूँ। आप हम पर अनुग्रह कर वह शीघ्र दीजिएगा। मैं आप को उसके बदले दो चीजें दूँगा। चोरने कहा अवसर्पिणी निद्रा और ताला तोड़ने की विद्या तो आप लीजिये और मुझे स्तम्भन विद्या दीजिये। जम्बुकुंवरने समझाया कि जिस चीज़ को तुम प्राप्त करने की इच्छा करते हो वास्तव में वह निःसार है। तुम्हारा भगीरथ प्रयत्न का फल कुछ भी नहीं होगा। यदि सचमुच तुम्हारी इच्छा हो कि हम ऐसी विद्या सीखें कि जिस से सदा सर्वदा सुख हो तो चलो सौधर्माचार्य के पास और दीक्षा लेकर अपने जीवन का कल्याण करो। इस प्रकार से

जम्बुकुंवरने ५०० चोरों को भी प्रतिबोध दे कर इस बात पर तत्पर कर दिया कि वे भी दीक्षा लेना चाहने लगे।

इस प्रकार कुंवर अपने माता पिता, और ८ स्त्रियों के ८ माता ८ पिता आदि को भी प्रतिबोध दे कर सब मिला कर ५२७ स्त्री पुरुषों के साथ बड़े समारोह के साथ सौधर्माचार्य से दीक्षा ग्रहण की। जम्बु मुनि अपने अध्ययन में दक्ष होने के लिये आचार्यश्री ही की सेवा में रहे। चौदह पूर्व और सकल शास्त्रों से पारंगत हो बीस वर्ष पर्यन्त छदमस्थ अवस्था में दीक्षा पाली। वीरात् सं. २० वर्ष आचार्य श्री सौधर्मस्वामीने अपने पद पर सुयोग्य जम्बुमुनि को आचार्य पद दे मुक्ति का मार्ग ग्रहण किया। इनके पीछे बाल ब्रह्मचारी जम्बु आचार्य को कैवल्यज्ञान और कैवल्यदर्शन उत्पन्न हुआ। आपने ४४ वर्ष पर्यन्त भारत भूमिपर विहार कर जैनधर्म का विजयी झंडा यत्र तत्र फहराया। अपने अमृतमय उपदेश से कई भव्यात्माओं का उद्धार किया। पश्चात् अपने पदपर प्रभवस्वामी का आधिपत्य कर वीरात् ६४ संवत् में आपने नाशवान संसार का त्याग कर मोक्षपद को प्राप्त किया।

[३] तीसरे पद पर आचार्य श्री प्रभवस्वामी बड़े भारी प्रभावशाली हुए। इनकी जीवनी रहस्यमयी थी। आपका जन्म विंध्याचल पर्वत का आधित्यकांतर्गत जयपुरनगर के कात्यायण गोत्रिय नरेश जयसेन के घर हुआ था। आपका लघु भाई विनय धर था। जिसका स्वभाव राजस था। छोटे भाई पर पिता विशेष

प्रसन्न रहता था। विनयधर भी चतुर और राजनीति विशारद था अतएव जयसेनने अपना उत्तराधिकारी विनयधर को ही बनाया। यह बात प्रभव को अनुचित प्रतीत हुई। प्रभव इस बात को सहन न कर सका। वह अपने भाई से असहयोग कर नगर के बाहिर चला गया। जाता जाता एक अटवी में पहुँच गया। वह क्या देखता है कि उस स्थानपर बहुत से तस्कर एकत्रित हैं। वह उनके पास गया और उन्हें अपना परिचय इस ढंग से दिया कि सारे दस्युगण चाहने लगे कि यदि यह रूठा राजकुमार हमारा नायक हो जाय तो हम निर्भय होकर चोरियों करेंगे। बना भी एसा ही कि प्रभव उस पल्ली के ४९९ चोरों का नायक बनकर उसने जनता को हर प्रकार से लूटना प्रारम्भ किया। देश भर में त्राहि त्राहि मच गई। उस देश के राजाने इन चोरों को पकड़ने का पूर्ण प्रयत्न किया पर एक भी चोर हाथ नहीं लगा। प्रभवने चोरों को ऐसी युक्तियों बता दी कि कोई उनका बाल भी बांका नहीं कर सकता था। प्रभव की प्रकृति बड़ी उग्र थी। जिस कार्य में वह हाथ डालता उसे सम्यक् प्रकार से सम्पादित करता था। एक वार में वह श्रेष्टि महल में गया और वहाँ जम्बु कुमार का उपदेश सुना। इस वृति को तिलांजलि दे उसने अपने ४९९ चोरों सहित सौधर्माचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की। उसने उग्र प्रवृत्ति के कारण शास्त्रों का ज्ञान बहुत शीघ्र प्राप्त कर लिया। उसका कार्य इतना श्रेष्ट हुआ कि वह अन्त में वीरात् ६४ संवत् में जम्बुमुनि के पीछे आचार्य पदपर आरूढ हुआ।

जिस प्रकार प्रभव संसार में लूटने खसोटने में शूरवीर था उसी भांति दीक्षित होने पर कर्म काटने में पूर्ण योद्धा थे। किसी ने ठीक ही तो कहा है, " कर्म शूरा ते धर्म शूरा "। प्रभव मुनि चौदह पूर्वज्ञानी और सकलशास्त्र पारंगत थे आपने जैन धर्म का खूब अभ्युदय किया। आपने अपने आज्ञावर्ती सहस्रों साधुओं का संगठन खूब किया। हजारों नरनारियों को दीक्षित कर आपने जैन शासन के उत्थान में पूरा हाथ बँटाया।

आपने अन्तिम अवस्था में श्रुतज्ञानद्वारा उपयोग लगा कर जानना चाहा कि आचार्यपद से किस को विभूषित करूँ पर कोई साधु दृष्टिगोचर नहीं हुआ तब आपने श्रावक वर्ग की ओर निरीक्षण किया तो कोई होनहार पुरुष नहीं जँचा। आपने आश्चर्य किया कि मेरे सम्मुख आज करोड़ों जैनी हैं क्या कोई भी आचार्य पद के योग्य नहीं है ? तो अब किया क्या जाय ? तब आपने जैनेतर लोगों की ओर दृष्टिपात किया तो आपने समस्या हल होने की सम्भावना अनुभव की। आपको ज्ञात हुआ कि राजगृह नगर का रहनेवाला यत्त गौत्रिय यजुर्वेदीय यज्ञारंभ करता हुआ शय्यंभव भट्ट इस पद के योग्य हो सकता है। इसके अतिरिक्त और कोई नहीं है। तब आपने अपने साधुओं को उस स्थान की ओर भेज कर यह संदेश भेजा कि वहां यज्ञ करनेवालों को जाकर बार बार कहो कि " अहो कष्टं महोकष्टं तत्वं न ज्ञायते परम् "। इस सूत्र को बार बार उच्चारण करो तथा वापस लौट आओ। आचार्य श्री की आज्ञानुसार मुनिगण उस शान्त स्थान

की ओर गये और शिय्य भव भट्ट के समक्ष जाकर उपरोक्त वाक्य की कई बार पुनरावृत्ति की। शिय्यं भव भट्टने विचार किया कि ये निरापेक्षी जैन मुनि असत्य नहीं बोलते। क्या मेरा श्रम सब व्यर्थ है ! क्या सचमुच मैं प्रतिकूल मार्ग का पथिक हूँ ? सत्यासत्य का निर्णय करने के हित वह अपने गुरु के पास खड्ग लेकर गया और पूछा कि आप सत्य सत्य सप्रमाण कहिये कि इस क्रियाकाण्ड का क्या फल है ? यदि तुमने संतोषप्रद उत्तर नहीं दिया तो इसी तलवार से तुम्हारी खबर लुँगा। गुरुने देखा कि अब असत्य कहने से जान जोखों में है तो सत्य हाल कह दिया कि वत्स ! इस यज्ञ के स्तम्भ के नीचे जैन तीर्थंकर शांतिनाथ स्वामी की मूर्ती है और इस मूर्ती के अतिशय से ही अपना यज्ञ का कार्य चल रहा है। अन्यथा अपना इतना प्रभाव कभी नहीं पड़ सकता था। यह समाचार सुनते ही शिय्यंभव भट्टने यज्ञ स्तंम्भ को हटा कर शांतिनाथ भगवान की मूर्ती निकाल कर दर्शन किये। दर्शन करते ही उसे प्रतिबोध हुआ। मिथ्या गुरु को त्याग कर आपने सम्यक् दर्शन का अवलम्बन लिया, यज्ञयागादि की निष्ठुर क्रियाओं से दूर होकर शुद्ध जैनधर्म के चारित्र को पालना आरम्भ किया। आपने प्रभव आचार्य के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर आपने गुरुकुल में रह चौदह पूर्व का अध्ययन एवं मनन किया।

आचार्य प्रभव सूरीने आचार्य पद का भार शिय्यंभव मुनि

को दे निर्वृति मार्ग पर चलते हुए व्यवहारगिरि पर्वतपर अनसन लेकर वीरात् ७५ सम्वत् को स्वयं स्वर्ग धाम पधारे।

[४] चौथे पट्ट पर शिय्यंभवसूरी बड़े ओजस्वी एवं निस्पृह हुए। जिस समय आपने यज्ञ आदि को त्याग कर प्रभव आचार्यश्री के पास दीक्षा ग्रहण की थी उस समय आपकी धर्म पत्नि गर्भवती थी। इस गर्भ से मनक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब यह बालक आठ वर्ष का हुआ तो सह पाठियों से प्रश्न पूछे जानेपर अपनी माता को आकर पूछने लगा कि मेरे पिताजी कहाँ हैं? माताने अपने पुत्र मनक को उत्तर दिया कि बेटा " तेरा पिता तो जैन साधु है, जब तू मेरे गर्भ में था तब उन्हों-ने एक जैनाचार्य के पास दीक्षा लेली थी। आज वे मुनि राजा महाराजाओं से पूजे जाते हैं। तेरे पिता अपनी योग्यता से वहाँ भी आज आचार्य पदपर सुशोभित हैं।"

जब पुत्रने यह बातें सुनी तो उस की भी इच्छा हुई कि एकवार चलकर देख तो आऊं कि वे आचार्य कैसे हैं? विचार करते करते उसने मिलने के लिये प्रस्थान करना निश्चय किया। उसने सोचा कि कदाचित माताजी मेरे प्रस्ताव से सहमत न हो अतएव बिना पूछे चुपचाप यहाँ से भग जाना ही ठीक है। 'मनक' अन्त में घरसे बाहिर निकल गया और शिय्यं भव आचार्य का समाचार पूछता पूछता चम्पानगर में पहुँच गया। नगर के द्वारपर यह बैठा था कि उसने आचार्यश्री को प्रवेश करते हुए देखा। उसने उन्हें जैन मुनि समझकर पूछा कि क्या आप को ज्ञात है कि मेरे

पिता शिय्यंभव, जो आज कल आप के आचार्य कहलाते हैं, इस नगर में हैं ? आचार्यश्रीने उत्तर दिया. " सो तो ठीक, पर तुम्हें उनसे अब क्या सरोकार है। क्या तुम्हें पिता के पास दीक्षा लेना है ? " मनकने उत्तर दिया. " जी हाँ, मेरी इच्छा है कि मैं भी दीक्षा लूं "। आचार्यश्रीने कहा कि यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा हो तो चलो मेरे साथ। मैं वही हूं। तुम्हें दीक्षा दूँगा। मनक की दीक्षा समारोह के साथ हुई। आचार्यश्रीने विचार किया कि इस मनक मुनि को कुछ अधिकार देना चाहिए क्योंकि श्रुतज्ञान के योग से ज्ञात हुआ कि इस की आयु स्वल्प है। आचार्यश्री जो शिक्षा प्रणाली से पूर्ण परिचित थे इस मुनि के पाठ्यक्रम की नई योजना करने लगे। पाठ्यक्रम बनाने के हेतु से पूर्वांग उद्धृत कर वैकाल के अन्दर दशाध्ययन सङ्कलितकर उसका नाम दसवैकालिक सूत्र नाम रख दिया और मनक मुनिने इस सूत्र का अध्ययन कर केवल अर्द्ध वर्ष में ही आराधिपद प्राप्त कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।

जिस समय मनक मुनि का देहान्त हुआ उस समय आचार्यश्री के आंखोंसे आंसुओं की झड़ी लग गई। इन प्रेमाश्रुओं से अन्य मुनियोंने उदासीनता समझकर आचार्यश्री से प्रश्न किया कि आप की इस दशा का क्या कारण है ? आचार्यश्रीने उत्तर दिया कि यह मेरा सांसारिक नाते से पुत्र और धार्मिक नाते से लघु शिष्य था। ऐसी छोटी उम्र में इसने चारित्र आराधनकर उच्च पद को प्राप्त किया है इसी का मुझे खेद नहीं—हर्ष है।

यशोभद्र आदि मुनियोंने पूछा, " भगवन् ! आपने यह बात हमें प्रथम क्यों नही प्रकाशित की। अन्यथा हम इस की वय्यावच का पूर्ण लाभ उठाते।" आचार्यश्रीने उत्तर दिया कि यदि यह नाना मैं पहिले बता देता तो कदाचित इस के अध्ययन में व ध्यान में कुछ खामी रह जाती। इसी कारण से मैंने तुम्हें यह बात नहीं कही। फिर आचार्यश्रीने विचार किया कि उस नूतन सूत्र दश वैकालिक को पुनः पूर्वांग तक संहारण करूँ। इसपर चतुर्विध संघने अनुरोध किया कि भगवन् ! इस पञ्चम काल में ऐसे सूत्र की नितान्त आवश्यक्ता है अतएव आप इस सूत्र को ऐसा ही रहने दीजिये ताकि अल्प बुद्धिवाले भी इस का आराधन कर अपना कल्याण करने में समर्थ होवें। आचार्यश्रीने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर वह सुत्र उसी रूप में रहने दिया। इसी सूत्र के प्रताप से आज साधु साध्वियाँ अपना कल्याण कर रही हैं और इस आरे के अन्त तक कई प्राणी अपना उद्धार करेंगे।

आचार्य श्री शिय्यंभवसूरी बड़े ही उपकारी हुए। धर्म का प्रचार आपने प्रबल प्रयत्न से किया। आचार्यश्री अपनी अंतिम अवस्था जान सुयोग्य यशोभद्रमुनि को आचार्य पद पर बिठाकर निवृति मार्ग के परमोपासक हो गये। आपने अपना जीवन इस प्रकार बिताया २८ वर्ष गृहवास, ११ वर्ष तक सामान्य साधु पद और शेष २३ वर्ष तक आचार्यपद सुशोभित कर ६२ वर्ष की आयुमें अनसन और समाधिपूर्वक कालकर वीरात् ९८ वर्षमें स्वर्ग गये।

[५] पञ्चम पट्टपर आचार्यश्री यशोभद्रसूरी प्रगाढ पण्डित

हुए। आप कुलसे तुंगीयान गोत्रिय बड़े शूरवीर थे। आपने शिय्यंभवसूरी के पास दीक्षा लेकर शास्त्रों का विधिपूर्वक अध्ययन किया था। अपने अनवरत परिश्रम से आपने चौदह पूर्व व अनेक विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया था। आप अपने विषय के विशेषज्ञ थे। धर्मप्रचार कर के आपने शासनपर असीम उपकार किया। आप बड़े वीर थे। आप ही के कारण बौद्धों का प्रचार कार्य बंद हुआ था। शास्त्रार्थ कर के बड़ी बड़ी परिषदों एवं सभाओं में आपने बौद्धों को पराजित किया था। आप के समय में जैन धर्म की विशेष ख्याति हुई। आप की अध्यक्षता में सहस्रों साधु साध्वियों पूर्वीय बंगाल उड़ीसा और कलिङ्ग प्रान्तों में विचरण कर अहिंसा धर्म का विस्तार करती थीं। आप के शिष्य वर्ग में कई धुरंधर विद्वान एवं शास्त्रज्ञ थे। इन में से सम्भूति विजय एवम् भद्रबाहु मुनि इन दो का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपने अपनी अंतिम अवस्था में सम्भूतिविजय मुनि को आचार्यपद और भद्रबाहु मुनि को मुनियों की संभाल का काम सौंपकर पूर्ण निवृति मार्ग पर रमण करना प्रारम्भ किया। आप २२ वर्ष गृहस्थावस्था, १४ वर्ष पर्यन्त मुनिपद एवं ५० वर्ष पर्यन्त युग प्रधान (आचार्यपद) स्थित रह ८६ वर्ष की आयु भोग अनशन समाधिपूर्वक जीवन समाप्त कर स्वर्ग सुख को प्राप्त किया।

[६] छट्टवें पट्टधर आचार्य सम्भूतिविजयसूरी बड़े प्रभावशाली हुए। आप मढर गोत्रिय पूज्य प्रभाविक थे। आचार्यश्री यशोभद्रसूरी के पास दीक्षा ग्रहणकर गुरु कृपासे चौदह पूर्वांग का

अभ्यास कर आपने शासन की बहुत सेवा की । चारों ओर जैन धर्म का झंडा फहराया । साधु साध्वियाँ की संख्या में भी आशातीत वृद्धि हुई । अनेक साधुओं के सहयोग से आपने शासन के अभ्युदय में खूब परिश्रम किया । कई प्रभावशाली कार्य करके जनता का उद्धार किया । आपने अपने अंतिम समय में आचार्यपद पर गुरूभाई भद्रबाहु मुनि को आरोहित किया । फिर आप एकान्तवास कर अध्यात्म योग की उपासना करने में यत्न करते हुए परम योगी बने । आपने अपना जीवन इस प्रकार बिताया, ४२ वर्ष गृहवास के पश्चात् यशोभद्रसूरी के पास दीक्षा ली, ४० वर्ष तक सामान्य मुनिपद और ८ वर्ष पर्यन्त युगप्रधान (आचार्य) पद पर रहकर शासनोन्नति कर ९० वर्ष की आयु भोगकर वीरात् १५६ संवत् में समाधिपूर्वक स्वर्गधाम में प्रविष्ट हुए ।

[७] सातवें पट्टपर आचार्य भद्रबाहुस्वामि महान् प्रभावशाली हुए । आप का जीवन मनन करने योग्य है । दक्षिण देश में श्री प्रतिष्टतपुर नगर में भद्रबाहु और वाराह मिहिर नामक दो सहोदर भाई रहते थे जो गरीब ब्राह्मण की संतान थे । जैनाचार्य यशोभद्रसूरी के पास उपदेश सुनकर उन दोनोंने वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा ली थी । यशोभद्रसूरीने सम्भूतिविजयसूरी को आचार्यपद दिया जिन्होंने भद्रबाहु को बाद में आचार्य बना दिया था । इसपर वाराहमिहिर अप्रसन्न एवं क्रुद्ध हो जैन साधु के वेश को त्याग कर अध्ययन किये हुए ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान से अपनी जीविका चलाने लगा । वह जैनाचार्यों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन करना भूलकर उल्टा उन की

निन्दा करने लगा कि मेरे पर सिंहलग्न का सूर्य तुष्टमान है। उसकी कृपा से मैं विमान पर बैठ कर ज्योतिषी मण्डल का निरीक्षण कर आया हूं। मैं अपनी आँखों सब ग्रह नक्षत्रों की गति देखी है अतएव इस विषय में मैं जितना कहता हूँ सब सत्य है। दूसरे ज्योतिष का झूठा ज्ञान रखते हैं। मेरा ज्ञान प्रत्यक्ष एवं दूसरों का परोक्ष है। इत्यादि बातों की विडम्बना कर उसने एक ज्योतिष ग्रंथ निर्माण किया जिस का नाम उसने ' वाराहि संहिता ' रक्खा। एक बार वाराहमिहिर प्रतिष्टनपुर नरेश की राजसभा में अपनी विद्या को चमत्कारी सिद्ध करने के हेतु गया। उसने कुछ प्रयोग कर लोगों को चकित किया तथा कुप्पे की तरह फूल कर जैन धर्म की निन्दा करने लगा। यह बात उपस्थित जैन समुदाय के लिये असंगत एवं असहनीय थी।

उन्होंने भद्रबाहु स्वामी को आमंत्रित कर बुलाया। बड़े समारोह के साथ भद्रबाहु स्वामी का नगर में प्रवेश हुआ। वाराहमिहिर तो नित्य राजसभा में जाया ही करता था और अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये खुशामद कर अपनी आन, कान और मर्यादा का न तो ध्यान रखता था न आत्माभिमान रखता था। इधर जैन साधु किसीकी भी परवाह नहीं करते थे। खरी बातें बताकर जैन मुनि अपना प्रभाव डालने का अमोघ कार्य करते थे। बात ही बात में वाराहमिहिरने राजसभा में विवाद के लिये एक प्रश्न किया कि आकाश से एक मत्स्य गिरने वाला है वह कितना भारी होगा? उसने स्वयं ही अपने को पंडित सिद्ध करने के लिये शेखी से उत्तर दे दिया कि उसका भार बावन पल होगा।

आचार्य भद्रबाहु स्वामीने उपयोग लगा कर देखा तो ज्ञात हुआ कि वह मत्स्य साढे इक्यावन पल का गिरेगा। जब से लोगोंने यह बात सुनी तो राजा के कानों तक भी पहुंचा दी। और लोग मन ही मन कहने लगे आज वाराहमिहिर की जांच हो जायगी। अन्त में जब मत्स्य गिरा तो तोलने पर विदित हुआ कि वह बात जो आचार्यश्रीने कही थी बावन तोला पाव रत्ती सिद्ध थी। मत्स्य पूरा साढे इक्यावन पल भारी था। इस से वाराह मिहिर का अपमान हुआ। वह क्रुद्ध कर जैन धर्म की और भी विशेष निन्दा करने लगा।

इन्हीं दिनों में राजा के एक पुत्र जन्मा। जन्मोत्सव मनाने के लिये एक भारी सभा हुई। चारों ओर हर्ष और उत्साह था। वाराहमिहिर एक कोने में बैठा लोगों की दृष्टि में हेय समझा जाता था। अन्त में वाराहमिहिरने राजा को उकसाने लिये कहा कि आप देख लीजिये जैनी लोग कितने अभिमानी और लापरवाह होते हैं कि ऐसी सभाओं में नहीं आते। देखिये भद्रबाहु मुनि आराम से अपने आश्रम में बैठा है, यहाँ तक आने में भी अपनी हतक समझता है। यह प्रसंग छेड़ कर उसने अपने मनकी बाफ निकालनी आरम्भ की।

राजाने आज्ञा दी कि जाओ और भद्रबाहु जैन मुनि को अवश्य बुलाओ। वैसे तो वे सच्चे हैं, आज हमारी सभा में आए क्यों नहीं ? भद्रबाहु सूरीने राजसभा में प्रवेश किया। राजाने

पूछा मुनिराज ! आज नगरके कोने कोने में आनंद मनाया जा रहा है ऐसे समय क्या आप उदासीन ही रहेंगे । कहिये इस उदासी-नता का कारण क्या है ? आचार्यश्रीने उत्तर दिया कि राजा, वास्तव में आप जो हर्ष मना रहे हैं वह अस्थायी एवं मिथ्या है। राजाने आवेशमें आकर कहा " आप समझ कर कहिये. आज शोक की कौनसी बात है ? " आचार्यश्रीने कहा राजन् ! आज तो शोक का दिन भले ही न हो पर शोक का दिन दूर भी नहीं है। आप का यह अभिनव पुत्र सात दिन के पश्चात् बिल्ली से मारा जायगा । राजाने विचार किया कि मैं ऐसा प्रबंध कर दूँगा कि मेरे महल में एक भी बिल्ली नहीं आ सकेगी । इतने पर कुंवर को एक कोटडी में बंद भी कर रक्खुँगा फिर मुझे किस बात का भय है ? राजाने प्रबंध भी पूरा किया । बिल्ली का कुँवर तक पहुँचना असम्भव कर दिया । राजाने सोचा की पहले बाराह मिहिरने जो बात कही है कि कुँअर १०० वर्ष तक जिन्दा रहेगा, यही बात सची होगी । जैन मुनिने जो बिल्ली का निमित्त बताया है इससे पुत्र की मृत्यु कैसे हो सकती है ? मैंने चोर को न मार चोर की मा को मारा है । बिल्ली ही नहीं तो मृत्यु भी नहीं । न होगा बांस न बजेगी बंसरी । सातवें दिन विशेष प्रबंध रक्खा गया । पर होन-हार कब टल सकती है । जिस कमरे में कुँअर बंद किया गया था उस कमरे के किंवाड़ के पीछे खातीने अर्गला के ऊपर लकड़ी की बिल्ली का आकार बनाया था ।

जब राजाने सातवें दिन के बीतते समय दरवाजा खोला तो

धमाका हुआ । अगली की लकड़ी की बिल्ली नवजात शिशु पर पड़ी और उसका कपाल फूट गया । कुँअर मर गया । राजाने कहा कि यह मेरी गलती थी कि मैंने पूरी जांच तक नहीं की । अहा ! जैन साधुने मुझे चिता भी दिया था पर मैं अभागा बेपरवाह रहा । जैनियों का निमित्त ज्ञान सच्चा एवं बाराह मिहिर का बिल्कुल झूठा है । बाराह मिहिरने मुझे पूरा धोखा दिया । संसार भरमें यह बात प्रसिद्ध हुई कि जैन साधु सच ही कहते हैं । बाराह मिहिर का ढोंग खुल गया । अपमानित होकर उसने तापस का वेष धारण कर लिया । वह तप करता हुआ मर करके व्यन्तर देव हुआ । पूर्व जन्म के द्वेष के संस्कार इस योनिमें भी बने रहे । उसने हरप्रकार से जैनों को सताने का प्रयत्न किया ।

लोगोंने जाकर आचार्य महाराज से निवेदन किया कि एक व्यन्तर देव जैनों को खूब दुःख दे रहा है तो भद्रबाहु स्वामीने "उवसग्गहरं" नाम का स्तोत्र बनाया और बताया कि इसके आराधन करने से सर्व प्रकार के विघ्न दूर होते हैं । इस प्रकार के कई उपकार आपने हमारे प्रति किये जिनको भूलना आपको आपकी कृतघ्न सिद्ध करना होगा । आपने शासनकी अच्छी सेवा की । कई प्राणियों को दीक्षा दे सत्पथ पर लगाया । जैन मन्दिरों और विद्यालयों की प्रतिष्ठा कराने में भी आपने कसर नहीं रक्खी । आपने ग्यारह अंगपर निर्युक्ति की रचना की । जो जो ग्रंथ रत्न आपने बनाये वे आजतक काम में आते हैं । उनके सिवाय भी बृहत्कल्प व्यवहार दशाश्रुत स्कंध, ओघनिर्युक्ति, पण्ड निर्युक्ति और भद्रबाहु संहितादि अनेक ग्रंथ बनाये थे ।

एक वार इस भारतभूमि के उत्तर विभाग पर भयंकर अकाल पड़ा। जो निरन्तर १२ वर्ष पर्यन्त रहा। संसार भर में त्राहि त्राहि सुनाई दी जाने लगी। सहस्रों प्राणी अन्न के अभाव से मृत्यु के गाल में जा बसे। ऐसी दशा में मुनियों का निर्वाह होना भी कठिन हो गया। अतएव भद्रबाहु स्वामीने ५०० शिष्यों सहित नेपाल की ओर विहार किया। इतिहास से पता चलता है कि आपने इसी दुष्काल में एक बार दक्षिण की ओर भी विहार किया था। या तो आप दक्षिण की ओर विचरण कर पीछे लौट कर नेपाल पधारे हों या नेपाल से लौट कर दक्षिण की यात्रा कर पुनः नेपाल पधारे हों। पर यह निश्चय है कि आप को मगध प्रान्त अवश्य त्यागना पड़ा था। कई मुनियोंने आसपास रह कर उस विकट समय को किसी तरह बिताया। जब सुकाल हुआ तो उस प्रान्त के सब मुनियोंने पाटलीपुत्र नगर में एक मुनि सम्मेलन किया। मुनियों का लक्ष्य सब से प्रथम शास्त्रों की ओर पहुँचा। इस विपत्ती काल में सब के सब शास्त्र कंठस्थ रहना कठिन था अतएव शास्त्र याद नहीं रहे तथापि आत्मार्थी मुनिगण किसी न किसी अंशतक थोड़ा थोड़ा ज्ञान स्मृति में अवश्य रखते थे। उस विस्तृत समुदाय में सबने मिलकर ग्यारह अङ्ग की शृङ्खला तो ठीक कर ली पर बाहरवाँ दृष्टि वाद अंग सम्पूर्ण किसी को भी याद नहीं था अतएव चतुर्विध संघने मिलकर परामर्श कर निश्चय किया कि नेपाल से आचार्य भद्रबाहु स्वामी को बुलाना चाहिये जो द्वादशांगी के पूर्ण ज्ञाता थे। यदि भद्रबाहु स्वामी प-

धार कर मुनियों को दृष्टिवाद अंग का अभ्यास करावेंगे तो यह अंग भी अस्तित्व रूप में रह सकेगा ।

दो मुनि इस हेतु नेपाल देश की ओर भेजे गये । उन्होंने जा कर भद्रबाहु स्वामी को संघ का संदेश सुना दिया । आचार्य श्रीने कहा कि मुझे इस समय अवकाश नहीं है । मैंने हाल ही में " प्राणायाम " महाध्यान का आरम्भ किया है । अतएव मैं आ नहीं सकता अन्यथा मुझे किसी भी प्रकार से इन्कार नहीं करना था । साधु लौट कर वापस मगध देश में आए । श्रीसंघने सम्मिलित हो कर निश्चय किया कि एक बार साधुओं को भेज कर यह भी पूछा लो कि जो व्यक्ति संघ की आज्ञा नहीं मानता है उस से संघ क्या प्रायश्चित करावे । साधुओंने नेपाल में जा-कर पूछा कि संघ की आज्ञा का उलंघन करनेवाला किस व्यव-हार के योग्य है ? आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामीने फरमाया कि वह व्यक्ति संघ में नहीं रहना चाहिये । वह संघ से च्युत समझा जाय । साधुओंने तब आप से कहा कि आपने भी संघ की आज्ञा अस्वीकार की है क्या आप भी इसी प्रायश्चित के भागी हैं ? आचार्यश्रीने कहा कि निसंदेह यह नियम सब के लिये एक है पर मैं वास्तव में संघ की आज्ञा का उलंघन नहीं कर रहा हूँ क्यों कि मैं तो ध्यानपूर्वक " प्राणायाम " का अभ्यास कर रहा हूँ अतएव अधिक विहार नहीं कर सकता । यदि पढ़नेवाले मुनि मेरे पास यहाँ आ जाय तो मैं उन्हें कुछ समय तक नित्य पढ़ा सकता हूँ । इतनेपर भी यदि संघ की आज्ञा हो तो मैं वहाँ विना

विलंब चलने को भी कटिबद्ध हूँ। मुनियोंने लौटकर पाटलीपुत्रमें आ कर सब वृतान्त कह सुनाया।

पाटलीपुत्रसे स्थूलीभद्र आदि ५०० मुनि अध्ययन के निमित्त नैपाल की और जाने को तैयार हुए। मुनि नैपालमें यथा समय पहुँच कर शास्त्रों का अध्ययन करनेमें जुटे। स्थूलभद्रने दशपूर्व का सार्थ अध्ययन किया तथा दूसरे मुनियोंने भी थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त किया।

जब आचार्यश्रीने " प्राणायाम " का अभ्यास पूर्ण कर लिया तो मगधदेश की ओर विहार किया। उस समय मगधदेश का राजा मौर्य कुल मुकुटमणी प्रजापालक स्वनाम धन्य सम्राट चंद्रगुप्त था जो आचार्यश्री का परम भक्त तथा जैनधर्म का उपासक था। उसने जैनधर्म का प्रचार करने में पूर्ण प्रवृति रक्खी ! चन्द्रगुप्त नरेश का विस्तृत वृत्तान्त आगे नरेशों के प्रकरणमें बताया जायगा। आचार्य भद्रबाहुसूरी अन्तिम श्रुतकेवली और बड़े ही धर्मप्रचारक थे जिन्हों का विस्तृत जीवन आप के चारित्रसें देखना चाहिये— आपने अपना अंतिम समय निकट जान अपने सुयोग्य मुनि स्थूलीभद्र को आचार्य पद अर्पित किया। आप ४५ वर्षतक गृहवास, १७ वर्ष तक सामान्य मुनिपद एवं १४ वर्ष तक युगप्रधान (आचार्य) रह कर इस प्रकार ७६ वर्ष का आयु भोग कर वीरात् १७० सम्वत् स्वर्ग को सिधारे।

[८] अष्टम पट्ट पर आचार्यश्री स्थूलीभद्रसूरी हुए। आपके पिता शकडाल जैन पाटलीपुत्र नृपति नंदनरेश के मंत्री थे। आपका सहोदर भाई श्रीयक कहजाता था। आप के सात बहिनें थी जिन का नाम सेणावेणारेखा आदि था। बाल्यावस्था बिताते ही तरुणावस्थामें कामान्ध हो स्थूलीभद्र एक रुपवती कोशा नामक वेश्या के प्रेम फाँसमें जकड गया। उस वेश्याने इन को ऐसा उल्लू बनाया कि स्थूलभिद्रने ऐयाशीमें साढे बारह क्रोड़ स्वर्णमुद्राएँ व्यय कर डालीं।

नंदराजा की सभामें एक वररुचि नाम का शीघ्र कवि आया करता था जो दैनिक १०८ काव्य की रचना कर राजाको प्रसन्न कर प्रचुर द्रव्य प्राप्त करता था। राजा के मंत्री शकडाल को विदित हुआ कि वररुचि की कविताएँ मौलिक नहीं होतीं उनमें छायावाद और अनुवाद तथा अनुकरण की बू होती थी। यह कवि अपने आप को शीघ्र कवि प्रसिद्ध कर वास्तवमें राजा को धोखा देता है। शकडालने सोचा कि मुझे उचित है कि मैं जिस राजा का नमक खाता हूँ उसे असली भेद बता दूँ। शकडालने वररुचि के आडम्बर का भेद राजा को बता दिया। राजाने मंत्री की बात पर विश्वास कर वररुचि को द्रव्य देना बंद कर दिया। इस कारण वररुचि मंत्रीसे पूर्ण द्वेष रखने लगा और ऐसे अवसर की ताकमें रहने लगा कि समय आनेपर मंत्री को भी कुछ हाथ दिखा दूँ।

मंत्री शकडाल के पुत्र श्रीयक का थोडे दिनों बाद विवाह

होने लगा। मंत्रीने राजा को भेट करने के लिये तरह तरह के शस्त्र और अस्त्र तैयार करवाए। वररुचि को यह बात नहीं भाई। उसने इस कार्यसे ही अपना मतलब सिद्ध करना चाहा। उसने राजा के पास जाकर कुछ नहीं कहा क्योंकि वह जानता था कि मैं शकडाल का द्वेषी हूँ अतएव राजा मेरी बात तो मानेगा नहीं। उस कविने एक युक्ति सोची। कुछ मिष्टान्न आदि का लोभ देकर नगर के बालकों को कहा कि क्यों तुम्हें मालूम नहीं है कि अपने नगर का मंत्री शकडाल अपने पुत्र श्रीयक जिस को तुम अच्छी तरह से पहिचानते हो इस नगर का राजा बनाना चाहता है। नंदराजा का वध करने के हेतु उसने कई अस्त्र शस्त्र तैयार करवाए है। अगर तुम अपने राजा के शुभचिन्तक या हितैषी हो तो घरघरमें यह बात फैला दो। मेरा नाम मत बताना नहीं तो शायद शकडाल मुझे भी राजा के साथ साथ मार डाले। उकसाए हुए छात्रोंने नगर के कोने कोनेमें यह अफवाह फैलादी। यह बात राजा के कानों तक पहुँची। राजा यह सुनकर शकडाल पर कुपित हो गया।

जब वररुचि को ज्ञात हुआ कि राजा क्रोधित हो गया है उसे अब किसी तरह का भान नहीं है, वह स्वयं राजा के पास जाकर कहने लगा कि आप गुप्तचर भेज कर शस्त्र अस्त्र का निरीक्षण भी करा लीजिये। केवल अफवाह का क्या भरोसा ? नौकर गुप्त तरहसे गये और सब शस्त्र अस्त्र देख आए। राजा को पूर्ण विश्वास हो गया कि शकडाल अवश्य मेरे प्राण लेने पर

उतारु है। बररुचि का भला हो कि मुझे सावधान कर दिया। शकडाल तो अंतमें कपटी ही निकला।

दूसरे दिन राजसभा भरी। राजाने शकडाल की और आंख उठा कर देखा तक नहीं। चतुर मंत्री संकेत मात्रसे समझ गया कि बात क्या है! सभा विसर्जन होते ही शकडालने अपने पुत्र श्रीयक को कहा कि कल मैं राजसभामें जाकर तलपुट नामक विष भक्षण करूँगा। उस समय तू मेरी गरदन तलवारसे उडा देना। पुत्रने कहा मेरेसे ऐसा होना असम्भव है। क्या पुत्र भी पिता का घात कर सकता है? शकडालने समझाया कि यदि ऐसी कोई परिस्थिति आन पड़े तो पिता का वध करना भी न्यायसंगत है। पिताने पुत्र को समझा कर बता दिया कि अब अपनी कुशल इसी बातमें है अन्यथा सारा का सारा कुटुम्ब राजा के हाथसे किसीन किसी दिन मारा जायगा। श्रीयक के समझमें सब बात आगई। दूसरे दिन जब राजा सभामें बैठा हुआ था तो शकडालने पहुँचते ही तालपुट नामक विष का गुप्तपने भक्षण किया। श्रीयकने तत्काल खड्ग निकाल निर्भीकतापूर्वक पिता की गरदन उडा दी।

राजाने आश्चर्यान्वित हो कर पूछा, कहो श्रीयक। पिता का वध क्यों किया? श्रीयकने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया कि ऐसे पिता के जीवित रहनेसे क्या लाभ जो अपने स्वामी की घात करने के लिये अवसर ताक रहा हो। मुझसे अपने पिता की नमक हरामी देखी नहीं जाती थी। राजा, श्रीयक को अपना रक्षक समझ अति प्रसन्न हो कर अभिवादन करते हुए कहने लगा कि

तुम अब मंत्रीपद को सुशोभित करो। श्रीयकने कहा कि मैंने मंत्रीपद के लोभसे पिता की हत्या नहीं की है। यदि आप को मंत्रीपद देना ही है तो मेरे ज्येष्ट बन्धु स्थूलीभद्र को दीजियेगा। वह वेश्या केश्या के यहाँ कई वर्षोंसे रहता है। राजाने स्थूलीभद्रको बुलाकर कहा कि तुम्हारे कनिष्ट भ्राता की नमकहलाली पर प्रसन्न हो कर मैं यह इच्छा करता हूँ कि तुम्हारे ही कुल का सचिव फिर मेरी रक्षामें सदा तत्पर रहे। स्थूलीभद्रने कहा कि मैं यकायक इस पद को स्वीकार करना नहीं चाहता कुछ विचार कर के आप को उत्तर दूँगा।

स्थूलीभद्रने अशोकोद्यानमें एकान्तमें बैठ कर विचार किया कि यह मंत्रीपद क्या मुझे सुखप्रद होगा ? उसने जान लिया कि कदापि नहीं. आज मेरा पिता इसी मंत्रीपद के कारण अकाल ही काल कवलित हुआ। मैं नहीं चाहता हूँ कि अपने आप यह आफत मोललूँ। यह संसार असार है। कोई भी किसी का नहीं। मंत्रीपद पर आरोहित होकर मैं सारे राज्य की झंझटों में फँस कर जितना परिश्रम करूँगा उतना श्रम यदि मैं अपना आत्मा के कल्यान में करूँ तो निःसंदेह मेरा उद्धार हो जाय। अब राजा को तो धर्मलाभ ही से अभिवादन दूंगा। यह निश्चय कर उसी स्थल पर आपने रत्नकम्मल का रजोहरण बनाया। पवित्र मुनि वेष धारण कर राजा के दरबार में जा कर धर्मलाभ कह सुनाया। जो सभा स्थूलीभद्र को मंत्री के रूप में देखने की प्रतीक्षा कर रही थी वही सभा साधु के वेश में स्थूलीभद्र को देख कर अ-

वाक् रह गई। सब ओर से धन्य ! धन्य ! की आवाज सुनाई दी। राजा और प्रजा इन के अपूर्व त्याग पर मुग्ध हो कर भूरि भूरि प्रशंसा करने लगी। स्थूलीभद्रने आचार्यश्री सम्भूति विजयसूरि के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की। आचार्यश्री के पास रह कर आपने ग्यारह अंगों का आराधन किया।

आचार्यश्री सम्भूतिविजयसूरि बड़े उग्र तपस्वी एवं प्रतिभाशाली मुनि थे। आपने उत्सर्ग मार्ग पर चल कर दुःसह परिसहों को सहन किया। एक बार चार मुनियोंने आचार्य श्री के पास आकर आज्ञा मांगी कि भगवन् हम चारों मुनि एकल प्रतिमाधारी पृथक् पृथक् स्थानों में चतुर्मास करना चाहते हैं। एक मुनि सिंह की गुफा में, तो दूसरा सर्प की बाँबी पर रहेगा। तीसरा स्मशान में तो चतुर्थ स्थूलीभद्र मुनि कोश्या वेश्या के यहाँ चतुर्मास करेगा। आचार्यश्री सम्भूतिविजयसूरिने श्रुतज्ञान के द्वारा उपयोग लगा कर देखा तो ज्ञात हुआ कि चारों को आज्ञा देना ही ठीक है। तीनों मुनियोंने तो कठिन उपसर्ग सहन करते हुए सफलता प्राप्त करी पर स्थूलीभद्रजीने बारह वर्ष से परिचित कोश्या वेश्या के हावभावों से मोहित न होते हुए उनको उपदेश दे दे कर शुद्ध आविका बनाई। चतुर्मास के बाद चारों मुनि गुरु के समीप आए। गुरुने सब को धन्यवाद दिया और स्थूलीभद्र मुनि को दुष्कर दुष्कर कारक की उपाधि से सम्बोधित किया। आचार्यश्रीने कहा कि धन्य है स्थूलीभद्र को जिस वेश्या के साथ बारह वर्ष पर्यन्त विलास किया उसका उद्धार कर दिया। इस दुष्कर कार्य

के करने में विरले ही समर्थ होते हैं। धन्य है इन्हें जिन्हों का मन अनुकूल परिसह से विचलित नहीं हुआ। स्थूलीभद्र का चारित्र आदर्श एवं अनुकरणीय था।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है कि उस समय देश में भयंकर दुष्काल था। स्थूलीभद्रने भीमकाय अटवी को पार कर भद्रबाहु स्वामि के पास जा दश पूर्व का सार्थ अभ्यास किया। भद्रबाहु स्वामि के साथ स्थूलीभद्र भी विहार करते पाटलीपुत्र नगर की ओर पधारे।

जब आप उद्यान में ठहरे थे तो स्थूलीभद्र मुनि के सात बहिनें (साध्वियों) वंदन करने के लिये बाग में आई। भद्रबाहु स्वामी को वंदन कर उन्होंने पूछा कि हमारे भाई स्थूलीभद्र मुनि कहाँ है? हम उनकों भी वंदना करना चाहती हैं। भद्रबाहु स्वामीने बताया कि स्थूलभद्र उसकोने के कमरे में बैठे हैं, तुम जाकर वंदना कर लो। साध्वियाँ को अपनी ओर आती हुई देख कर स्थूलीभद्रने अपना रूप परिवर्तन कर सिंह का स्वरूप धारण किया। सिंह देख कर साध्वियाँने सोचा कि भद्रबाहु मुनिने साधु दर्शन के निमित्त इस ओर भेजीं थीं या सिंह दर्शन के हित। उनके मन में यह भी संदेह हुआ शायद इस सिंहने इस कमरे में प्रवेश कर स्थूलीभद्र मुनि का भक्षण कर लिया हो। साध्वियाँने लौट कर सब वृतान्त आचार्यजी को सुनाया। जिन्होंने श्रुतज्ञानोपयोग से मालूम कर लिया कि स्थूलीभद्र को ज्ञा-

नाभिमान हो गया है। अब यह विशेष ज्ञान के अयोग्य है ऐसा आचार्यश्रीने जान लिया। आचार्यश्रीने साध्वियाँ को कहा कि अब जाकर स्थूलीभद्र के दर्शन कर लो। साध्वियोंने जाकर वन्दना की। थोड़ी देर बाद स्थूलीभद्र मुनि वाचना के हित भद्रबाहु स्वामी के पास आए। किन्तु भद्रबाहु स्वामीने पढ़ाना नहीं चाहा। साफ़ साफ़ इनकार करते हुए कारण भी बता दिया कि बस इतना ही ज्ञान तेरे लिये पर्याप्त है। स्थूलीभद्र का ज्ञानाभिमान काफूर हो गया। हाथ जोड़ कर आचार्यश्री से क्षमा याचने लगे। श्री संघने भी सिफारिश कि यह अपराध अक्षम्य नहीं है। तथापि अन्त में अपराध क्षमा कर आचार्यश्रीने स्थूलीभद्र को शेषचार पूर्व का ज्ञान मूल मात्र का कराया। अन्त में स्थूलभद्र को भद्रबाहु आचार्यने आचार्य पद अर्पण किया।

आचार्य स्थूलीभद्रसूरिः जैन धर्म का प्रचार करने में प्रबल उद्योग करते थे। आपके आचार का लोहा सारे विश्व में बजता था। उत्कट ज्ञानी तथा परिश्रमी आचार्यने शासन की उन्नति करने में किसी प्रकार की भी कमी नहीं रक्खी। आप सदा शासन के उत्थान के प्रयत्न में संलग्न रहते थे। इतने पर भी आप बड़े गंभीर थे। आप अपने मन को वश करने में संसार के लिये आज तक आदर्श रूप है। आप धीर एवं वीर थे। इन्द्रिय संयम करने में भी आपने कमाल कर दिखाया। आपने वेश्या के यहाँ चार मास पर्यन्त रहकर उस के मन पर ऐसा व्यवहारिक प्रभाव डाला कि उसने अपनी पापाचारी

जीविका वृत्ति को त्याग कर शुद्ध जैन धर्म को पाला। वही कोश्या जो वेश्या थी आप ही के प्रयत्न से श्राविका हुई। आपने अपना जीवन जिन शासन की सेवा करते हुए इस प्रकार बिताया । ३० वर्ष घर में रहकर २४ वर्ष तक मुनिपद पर रह कर प्रबल प्रयत्न करते हुई आचार्य पद प्राप्त किया । आप ४५ वर्ष पर्यन्त सूरिः पद पर रहे । अन्तमें ८९ वर्ष की आयु में अपना पद महागिरि मुनि को दे कर वीरात २१५ सम्वत स्वर्गवासी में हुए ।

[९] नौवें पद पर आचार्यश्री महागिरि प्रवीण शासक हुए । आपका जन्म मगध देश के अन्तर्गत कोलाग्र ग्राम के एलापत्य गोत्रिय ब्राह्मण रुद्रसोम की सुशील भार्या मनोरमा की कुक्षी से हुआ था । इनका पिता वेद वदोगे सर्व शास्त्रों में पारंगत था। आपके भाई का नाम सुहस्ती था । जब दोनों भाई शैशकावस्था को सुखपूर्वक बिता चुके तो इनके पिताने अध्ययन के निमित्त पाटलीपुत्र नगर में भेजा । उधर आचार्य स्थूलभिद्र सूरिः उपदेश देते देते पाटलीपुत्र के उद्यान में पधारे हुए थे । नगर के बाहिर घूमते हुए दोनो भाइयोंने आचार्य को देखा तो कूतुहल के हेतु से साथ हो गये । उद्यान में पहुंच कर उन्होंने क्या देखा कि सहस्रों स्त्री पुरुष देशनामृत का पान करने के हित चारों ओर से आ आकर अपने अपने स्थान पर बैठ रहे हैं । ये दोनों भाई भी भाषण सुनने के उद्देश्य सें एक ओर बैठ गये ।

आचार्यश्रीने धर्मलाभ सुनाकर व्याख्यान आरम्भ किया । आपने अपने मृदु भाषण से श्रोताओं के मन पर इस प्रकार प्रभाव

डाला कि सब मंत्र मुग्ध की नाई टकी टकी लगा कर आचार्यश्री की ओर देखते हुए सुखप्रद श्रुत सुधा का पान करने लगे। आपने अपने उपदेश में संसार की असारता सिद्ध की तथा आत्मा के उद्धार का सरल एवं शीघ्र उपाय बताया। इस उपदेश के फल स्वरूप महागिरि और सुहस्तीने संसार से वैरागी हो आचार्यश्री के पास दीक्षा लेना चाहा। दीक्षा लेने के बाद दोनों मुनि शास्त्रों का अध्ययन कर धुरंधर विद्वान कहलाये। आर्य महागिरि की बुद्धि तो विशेष चमत्कार प्रदर्शित और विशाल थी। इसी कारण से महागिरि कों शीघ्र ही आचार्यपद प्राप्त हो गया। आचार्य महागिरि सूरिः जिन शासन की बागडोर अपने हाथ में लेते ही उस के प्रचार में तत्पर हुए। आपने जैन शासन का खूब अभ्युदय किया। बाद आपने जिन कल्पी तुलना करने के निमित्त अपने बहुलं या बलस्सिहा आदि चार शिष्यो के साथ जंगल में प्रस्थान किया साधुओं की सार संभाल के निमित्त पीछे आर्य्य सुहस्ती मुनिराज को रख दिया। आचार्य महागिरि घोर तपस्वी एवं भिन्न भिन्न (अभिग्रह) प्रतिज्ञा द्वारा अपूर्व त्याग का अभ्यास कर रहे थे। आपने आसन समाधी और ध्यान मौन या अध्यात्म चिंतवन से जिन कल्पी की तुलना रूप मनोरथ कों सिद्ध करते हुए, कलिङ्ग देश के भूषण तुल्य कुमार गिरि तीर्थ पर आपने निवृति मार्ग का पूर्ण अवलम्बन लिया। अन्त में वीरात् २४५ सम्वत् में अनशन तथा समाधि पूर्वक स्वर्ग वास किया। आपके शिष्यो में बलिस्सह मुनि अपने परिवार सहित स्थिवर कल्पी में सम्मिलित हुए। इधर बाहुल मुनि अपने

साधुओं के साथ, जो जिनकल्पी की तुलना कर रहा था। पर वह तुलना आग्रहरूप नहीं थी। आप के स्वर्गधाम सिधारने के पश्चात् कितने ही वर्ष बाद आपस की ईर्षापूतिने उन सद्भाव की प्रवृतियों को कदाग्रह का स्थान दे दिया जिसका कटु परिणाम यह हुआ कि बाहुल की संतानने जिनकल्पी मार्ग का आग्रह किया तथा बाल्लिस्सह की सन्तानने स्थिवर कल्पी का अग्रह किया जिस के फल स्वरूप में आगें चलकर जिन शासन की दो शाखाएं हुई श्वेताम्बर तथा दिगम्बर जो आज तक भी विद्यमान् हैं। वह जिन शासन की तरक्की में रोड़ा रूप है।

[१०] दशवें पट्टपर आचार्य सुहस्ती सूरिः महान् प्रभावशाली हुए। जब से आचार्य महागिरिने आप को शासन का भार संभलाया तब से आचार्य सुहस्ती सूरिः जैन धर्म के प्रचार में संलग्न थे। एक वार मगध देश में दुष्काल के कारण कई लोग भूख के मारे अपने प्राणों को छोड रहे थे। देशभर में हाहाकार मचा हुआ था तथापि जैन श्रावक अपनी गुरु भक्ति में पूर्ण अटल रहे क्योंकि वे अपने धर्म पर पूरी श्रद्धा रखते थे। वे जानते थे कि चाहे जैन गुरु प्राण त्याग दें तथापि अनीति का या अशुद्ध आहार कदापि ग्रहण नहीं करेंगे। एक वार आचार्यश्री के दो शिष्य किसी श्रावक के यहां भोजन लाने के हित पधारे। गृहप्रवेश करने के बाद द्वारपर एक भिक्षुक आ निकला। वह भूख के मारे इतना व्याकुल था के उसकी ओर देखनेसे मालुम होताथा कि वह नर अस्थि–कंकाल मात्र है। हड्डियांकी गिन्ती कीजा सकती थी कारण कि उस भि-

चुके शरीरमें माँस आदि कुछभी अवशेष नही रहाथा । जब श्रावकने जैन मुनियोंको मोदक आदि मिष्टान्न दिये तो मुनि महाराज उपाश्रयकी ओर रवाना हुए । उस भिक्षुकने मुनिद्वयसे याचनाकी कि आप परोपकारी साधु हैं अपनी भिक्षाका कुछ अंश मुझे भी दीजियेगा । उभय मुनियोंने उत्तर दिया कि बिना गुरूकी आज्ञा के हम तुम्हें कुछभी नहीं देसकते । वह भिक्षुक इस आशा से कि कदाचित इनके गुरू कृपा कर मुझे कुछ प्रदान करेंगे; साधु युगल के पीछे पीछे हो लिया ।

उपाश्रय पर पहुँच कर युगल मुनियाँने गुरु महाराज को सब वृतान्त कह सुनाया । आचार्यश्रीने उपयोग लगा कर देखा तो मालूम हुआ कि इस प्राणी से कुछ शासन को लाभ होने की सम्भावना है तो आचार्यश्रीने उसका गोत्र, कुल आदि पूछ कर कुछ आवश्यक बातें जान लीं । आचार्यश्रीने भिक्षुक से पूछा कि यदि तूं दीक्षा ले ले तो हम तुझे इच्छित भोजन दे सकते हैं । उसने भी प्रसन्नता पूर्वक यह बात स्वीकार कर ली । उसने दीक्षा ग्रहण कर के जैन धर्म पालने का कार्य प्रारम्भ किया । कई दिन की इच्छाएँ पूर्ण हुईं । वह पेट भर खाने लगा । यहाँ तक कि उसने आवश्यक्ता से अधिक मात्रा में भोजन किया जिस के फल स्वरूप वह अति सार रोग का शिकार हुआ । जब यह मुनि रोगी हुआ तो आचार्य आदि मुनिवरोंने यथा योग्य वैयावच की ।

इस प्रकारकी सेवा से सन्तुष्ट हो कर उस भिक्षुकने जैनों

की व्यवस्था पर हृदय से कृतज्ञता प्रकट की। उसने सोचा कि जब मैं एक निराधार भिक्षुक था, दर दर पर दुर दुराया जाता था पर जब से मैं जैन मुनि हुआ हूँ सब मेरी बात सुनते हैं। आज यदि मैं बिमारी से ग्रस्त हूँ तो साक्षात् विश्व के हृदय सम्राट् आचार्य महाराज भी मेरी वैयावच्च करते हुए किसी भी प्रकार से मन में नहीं सकुचाते है। इस उच्चतर भावना से वह भिक्षुक उसी रात्रि मे वहाँ से काल कलवित हो कर भूपति कुनाल की रानी के गर्भ में उत्पन्न हुआ।

इस भव में राजा के घर जन्मने पर इसका नाम सम्प्रति रक्खा गया। सम्प्रति का पिता उज्जैनी नगरी में रहता था। यह राज उसे महाराज अशोकसे मिला हुआ था। अतएव सम्प्रति का शैशव काल भी उसी नगरी में बीता। राजकार्य योग्य शिक्षा पाने के बाद उज्जैनी का राजमुगुट महाराज संप्रति के उन्नत सिर पर शोभने लगा। एक वार आचार्यश्री सुहस्तीसूरिः विहार करते हुए उज्जैनी नगर में पधारे। उस समय उस उज्जैनी नगरी में महावीर स्वामी की जीवित प्रतिमा का महोत्सव हो रहा था तथा तत् सम्बन्धी रथयात्रा का जुलूस भी निकल रहा था। आचार्यश्री भी चतुर्विध संघ के जुलूस में साथ थे।

झरोखे में बैठे हुए महाराजा सम्प्रतिने बड़े ध्यान से आचार्यश्री को देखा। देख कर उसका दिल भर गया। महाराजा सम्प्रति खूब उहापोह किया जिस से उसी समय उसे जाति स्मरण ज्ञान हुआ। पूर्व भव की सारी बातें उसे दिखाई देने लगीं।

उसे भान हुआ कि मुझ भिक्षुक को जैन मुनि बन कर उच भावना के रूप में यह राजपुत्र का पद मिला है तो इन्हीं का प्रताप है। उसी समय राजा सम्प्रति नीचे आता है और आचार्यश्री के चरणों में मस्तक झूकाता है। राजाने आचार्यश्री से पूछा क्या आप मुझे पहिचानते हैं। आचार्यश्री ने उत्तर दिया कि आप को कौन नहीं पहिचानता ! आप नगर के स्वामी हैं। राजाने पूछा कि भगवन् मैं हूं कौन ? पूर्व भव का वृत्तान्त कुछ बताइए ताकि मेरी शंका का समाधान हो जावे। आचार्यश्रीने श्रुतज्ञान लगा कर देखा कि यह वही भिक्षुक है उसके पूर्वभव के सब हाल सुना दिया। राजाने जब आचार्य महाराज के मुख से सब वृत्तान्त जाना तो वह कहने लगा कि जिस धर्म के प्रताप से मैंने राज प्राप्त किया है वह सब राजऋद्धि आपको समर्पित है। आचार्यश्रीने कहा कि हमें राजऋद्धि की आवश्यक्ता नहीं है। हमारा तो यही आदेश एवं सलाह है कि जिस धर्म के प्रताप से यह विभव मिला है उसी धर्म के प्रचार में सब द्रव्य-व्यय करो। देश और विदेश में जैन धर्म का प्रचार करो। राजा सम्प्रतिने जिस प्रकार से जैनधर्मका अभ्युदय एवं प्रचार किया था उसका सारा वृतान्त पाठकों को नरेशों के वृतान्त का प्रकरण में विस्तृत मिलेगा।

आचार्य सुहस्ती सूरि राजा सम्प्रति के भक्ति के वश हो राज पिण्ड ग्रहण किया करते थे। क्यों कि राजा सम्प्रति बारह व्रतधारी महान् प्रभाविक श्रावक था। उसने बाहरवाँ व्रत को पालने के निमित्त मुनिराज से आग्रह किया। आचार्यश्री

ने बाहरवें व्रत का लाभ देने के निमित्त ही राजपिण्ड ग्रहण करना आरंभ किया था। (यह जिक्र आर्य महागिरि के मोजुद गी समय की है) जब यह बात आचार्यश्री महागिरि को विदित हुई तो उन्होंने आचार्य सुहस्ती सूरि को उपालम्भ दिया कि तुम गीतार्थी हो कर राजपिंड कैसे भोग रहे हो ? तब आचार्य सुहस्ती सूरिने नम्रता पूर्वक कहा कि यह राजा बारह व्रतधारी पक्का श्रावक तथा जिन शासन का प्रभाविक व्यक्ति है। यदि मुनि इसके यहां भोजन न लें तो इसके बाहरवें व्रत के पालन की क्या सुविधा हो सकती है। जो मुनि ऐसे श्रावक के यहां का शुद्ध आहार विधि-पूर्वक लेते हैं अनुचित नहीं करते। बस इससे ही दोनों आचार्यों के आपस में मन मुटाव हुआ, मतभेद का बीज बोया गया और आगे चल कर जैन मत के दो पक्ष श्वेताम्बर और दीगम्बर हुए। इस फूट से जिन शासन की बहुत हानि हुई और होती जा रही है। कलियुग का प्रभाव जिन शासन पर ऐसे ही अवसरों पर पडता है।

आचार्यश्री सुहस्ती सूरिने सम्प्रति नरेश की सहायता से जैन धर्म का आर्य और अनार्य देश में खूब प्रचार किया। उस समय में जगह जगह अनेको मन्दिर बनवाए गए थे। आचार्यश्रीने अपना सारा जीवन जैन शासन की सेवा में बिताते हुए अपने पट्ट पर आर्य्य सुस्थित और सुप्रतिबद्ध ऐसे दो आचार्यों को नि-युक्त कर पांच दिन के अनशन और समाधीपूर्वक आलोचना करके वीरात् २९१ सम्वत् में स्वर्गधाम सिधाए। सम्प्रति नरेशने आपकी यादगार में एक बडा स्तूप भी बनवाया।

[११] ग्यारहवें पट्ट पर आचार्य सुस्थित सूरि तथा आचार्य सुप्रतिबद्ध सूरि हुए। आप दोनों सहोदर भ्राताओंने चम्पानगरी में जन्म लिया था। दोनोंने आचार्यश्री सुहस्ती सूरि के देशना से वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा अंगीकार की। दोनोंने ज्ञानाध्ययन कर शासन के हितसाधन में अपने अमूल्य जीवन का समय बिताया था। आप दोनोंने विशेष कर कलिङ्ग देश ही में विहार किया था और वहां के प्रसिद्ध नरेश खारवेल को जो आपका परम भक्त था जैन धर्म को प्रचारित करने लिये खूब उपदेश दिया। सहस्रों जैन मन्दिरों और जैन विद्यालयों की प्रतिष्ठा कराई। कलिङ्ग के कुमार पर्वत को कलिंग शत्रुञ्जयावतार बनाया। आप श्रीमानोंने तीर्थ कुमारपर्वत पर क्रोड़वार सूरि मंत्र का जाप किया। अतएव आपकी सम्प्रदाय का नाम कोटिक प्रसिद्ध हुआ। दोनों आचार्योंने जिन शासन की उन्नति कर अपने पट्ट पर आर्य इन्द्रदिन्न को स्थापन्न कर कलिङ्ग शत्रुञ्जयावतार तीर्थ पर अनसन्न कर समाधी पूर्वक वीरात् ३२७ वर्षे स्वर्गसदन में निवास किया।

[१२] बाहरवें पट्ट पर आचार्यश्री इन्द्रदिन्न सूरि बड़े उपकारी हुए। आपका जन्म मथुरा निवासी कौशिक गौत्रिय सर्वहित विप्र के घर हुआ था। आपने ब्राह्मण वर्ण के अनुसार वेद वेदांगों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था। एक वार आचार्य सुस्थित सूरि का जब उस ओर पदार्पण हुआ तब वैराग्योपदेश सुनकर इन्द्रदिन्नने आचार्यश्री के पास दीक्षा ग्रहण की। मथुरानगरी में जो मिथ्यात्व का तिमिर अधिकांश में विद्यमान था वह अपनी

युक्ति संयुक्त तर्कों से समाधान कर आपने दूर किया । आप बड़े प्रतिभाशाली विद्वान् एवम् ओजस्वी वक्ता थे आपने जैन धर्म के प्रचार का कार्य अपने हाथ में ले सफलतया पूर्ण किया । इन्हीं गुणों के कारण आचार्यश्री सुस्थित सूरिने इन्द्रदिन्न मुनि को आचार्य पद पर आरोहित किया ।

आचार्यश्री इन्द्रदिन्न सूरीने जिनशासन की सेवा कर जैनों पर असीम उपकार किया आपने अनेक जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाकर मथुरानगर में भूरि भूरि प्रशंसा प्राप्त की। आपने प्रतिकूल वातावरण के होते हुए भी आशातीत सफलता प्राप्त की। रात दिन शासन के उत्थान कार्य में संलग्न रहने में आपकी स्वाभाविक रुचि थी। आपने हर प्रकार से जैन धर्म की बढ़ती की जिसका उपकार भूला नहीं जा सकता। आपने अपने अंतिम समय में आचार्य पदवी मुनि दिन्न को अर्पित कर तीन दिवस के अनशन एवं समाधी पूर्वक वीरात् सम्वत् ३७८ को स्वर्ग निकेतन में डेरा किया। महावीर स्वामी के बाहरवें पट्ट पर आचार्य श्री इन्द्रदिन्न सूरी बड़े प्रतिभाशाली युगप्रधान हुए। शेष आगे के प्रकरण में। अस्तु।

जैन इतिहास ।

आदि तिर्थंकर श्री ऋषभदेव प्रभु के शासन से नव में तिर्थंकर श्री सुविधिनाथ प्रभु के शासन पर्यन्त तो विश्वधर्म जैन ही था । सारे प्राणी दयाधर्म की शीतल छाया में अपनी आत्मा का उत्थान कर परम शांति प्राप्त करते थे । नव में तिर्थंकर सुविधिनाथ स्वामी के शासन विच्छेद होने पर जैन ब्राह्मणों के मन में मलिनता का प्रादुर्भाव हुआ । स्वार्थ के वशीभूत हो कर उन ब्राह्मणोंने अपने ग्रंथों में परिवर्तन करना शुरू किया । जो जैन ब्राह्मणों के काम को सुचारु रूप से सम्पादन कराने के हेतु से भगवान् ऋषभदेव स्वामी के आदेशानुसार भरत महाराजने ४ आर्य वेदों का निर्माण तो किया था पर जैन ब्राह्मणोंने उन्हें असली रूप में नहीं रक्खा ।

उपरोक्त वेदों को बनाने का परम पुनीत उद्देश्य तो यह था कि जैन ब्राह्मणलोग समाज को आचार, व्यवहार तथा संस्कार से सुधार कर सत्कार पावें, पर ब्राह्मणोंने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये पूर्व विरचित वेदों में बहुतसा परिवर्तन कर दिया । इन शास्त्रोंद्वारा जैन ब्राह्मणोंने समाज का असीम उपकार किया था । अतः वे सब विश्वासपात्र बन गये थे । इस विश्वासपात्रता के कारण मिले हुए अधिकार का उन्होंने बहुत बुरा उपयोग किया ।

ब्राह्मणों की इस अधम प्रवृति के कारण जनता का असीम उपकार होना रुक गया तथा झूठा भ्रम अधिक जोरों से फैलने लगा। अपनी बात को परिपुष्ट करने के हेतु से उन्होंने कई नये आचार विचार सम्बन्धी कर्मकाण्डों का विधान भी किया। धर्म केवल एक संप्रदाय विशेष का रह गया। स्वार्थमय सूत्रों की रचना निरन्तर बढ़ती रही।

आखिर लोगों की धैर्यता जाती रही। अपने को भरमाया हुआ समझ कर लोगोंने शांति का साम्राज्य स्थापित करना चाहा। "जहाँ चाह है वहाँ राह है" इस लोकोक्ति के अनुसार तिर्थंकर शीतलनाथ स्वामीने अंधश्रद्धा को दूर करने का खूब प्रयत्न किया और अन्त में पूरी सफलता प्राप्त भी की। जनता को पुनः जैनधर्म को अच्छी तरह से पालने का अवसर प्राप्त हुआ। ढोंगियों की पोल खुल गई तथा लोगों को सच्चा रस्ता फिर से मालूम हो गया। सब ओर सुख शांति का साम्राज्य स्थापित हो गया। किन्तु यह शांति चिरस्थाई नहीं रही। ज्योंही शीतलनाथ प्रभु का निर्वाण हुआ ब्राह्मणोंने पुनः उसी बुरे मार्ग का अनुसरण किया। ब्राह्मणों का आधिपत्य खूब बढ़ा। एवं श्रीयांसनाथ, वासपूज्य, विमलनाथ और अनंतनाथ भगवान् के शासन काल में धर्म का उद्योत और अन्तरकाल में ब्राह्मणों का जोर बढ़ता रहा। तत्पश्चात् भगवान धर्मनाथ स्वामी के शासन में फिर लोगोंने सुमार्ग का अनुसरण किया। किन्तु फिर मिथ्यात्वने जोर पकड़ा और स्वार्थियों की बन पड़ी। भोले लोग लूट-भटकाए गये।

किन्तु अन्त में मिथ्यात्वियों की पूर्ण पराजय हुई और सोलहवें तिर्थंकर श्री शान्तिनाथ स्वामी के शासनकाल में पूर्ण शान्ति स्थापित हो गई। किसी भी प्रकार का दूषित वातावरण नहीं रहा। यह शांति चिरकाल तक रही। दिन ब दिन धर्म की उन्नति होती रही और दशा यहाँतक अच्छी हुई कि बीसवें तिर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के शासनकाल में अहिंसा धर्म की पताका सारे विश्व में फहराने लगी। इस झंडे के नीचे रह कर मानव समाज प्रचुर सुख अनुभव कर उसे पूर्ण तरह से भोगने लगा।

मुनिसुव्रत स्वामीने भड़ूच में अश्वमेध यज्ञ बंध करा एक अश्व की रक्षा की थी अतः वह तीर्थ अश्वबोध नाम से कहलाने लगा तथा वह इसी नाम से आजतक विख्यात है। किन्तु यह उत्थान भी पराकाष्टा तक पहुँच कर फिर अवनत होने लगा। बीसवें और इकीसवें तिर्थंकर के शासन के अन्तःकाल में पुनः ब्राह्मणों का जोर बढ़ा। महाकाल की सहायता से पर्वत जैसे पापात्माओंने पशु बलि जैसे निष्ठुर यज्ञयागादि का प्रचुर प्रचार कर जनता को आमिषभोजी बनाया। मदिरा का भी प्रचार माँसभक्षण के साथ बढ़ा। मूक पशु यज्ञ की वेदियाँ पर मारे जाने लगे। पशुओं की हत्याओं से भूमि रक्त रंजित हो गई। शोणित का प्रवाह धरणी पर प्रवाहित होने लगा। रक्त की नदियाँ सब प्रान्तों में बहने लगी। नदियों के नाम भी रक्तानदी तथा चर्मानदी पड़ गये। इस समय जैन सम्राट रावणने इस हत्या को रोकने के लिये कई यज्ञों को रोका तथा यज्ञ कर्ताओं को

खूब दण्ड भी दिया। यही कारण था कि ब्राह्मणोंने रावण को राक्षस बताया तथा उसे अपमानित करने के सैकड़ों उपाय किये। रावण के वंश को भी उन्होंने राक्षस वंश ठहरा दिया, रावण तो जैनी था। रावण जैन धर्म के नियमों का पालन करने में किसी भी प्रकारकी त्रुटि नहीं करता था। रावण ने अष्टापद पर जिन-मन्दिर में नाटक किया था। उसने शांतिनाथ भगवान के मन्दिर में सहस्त्र विद्या सिद्ध की थी। वह नित्य जिन मन्दिर में आकर पूजा किया करता था। उस के समकालीन दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, वाली, सुग्रीव, पवन और हनुमान आदि बड़े बड़े जैनी सम्राट् हुए हैं जिन्होंने यज्ञ की हिंसा को उठाने का खूब प्रयत्न किया था। लोगों को हिंसा से घृणा होने लगी। यज्ञ की निर्दयी और निष्ठुर आधिक लिलाएँ दूर हुई। फिर एक बार अहिंसा धर्म का सार्वभौमिक प्रचार हुआ।

इकीसवें तिर्थंकर श्री नमिनाथ के शासन में जैन धर्म का खूब अभ्युदय हुआ। बड़े बड़े राजा और महाराजा जैन धर्म के उपासक थे। जिनालय जगह जगह पर मेदिनी को मण्डित कर रहे थे। गौड देश वासी एक आसाढ़ नामक सुश्रावकने एक देवता की सहायता से रावण निर्मापित अष्टापद तीर्थ की यात्रा करते हुए कई जिनालय बनवाए। मन्दिर बनवाने में उसने अपना सारा न्यायोपार्जित द्रव्य लगा दिया। उसने उन मन्दिरों में जिन जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराई थी उनमें से तीन मूर्त्तियाँ तो आज पर्यन्त विद्यमान हैं। उन मूर्त्तियों पर खुदा हुआ लेख इस बात

का सबूत दे रहा है कि इन मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा कराने वाला आशाढ़ नामक एक श्रावक था। इसी प्रकार चारों ओर उस समय जैन धर्म का अपूर्व अभ्युदय हो रहा था।

सूर्य के अस्त होने पर अंधकारका साम्राज्य हो ही जाता है इसी प्रकार सदुपदेश के अभाव में मिथ्यात्व का अधिकार हो जाता है। इसी सिद्धांतानुसार नामिनाथ स्वामी के पश्चात् भी ब्राह्मणों का थोड़ा बहुत जोर बढ़ा ही। अन्त में बाइसवें तीर्थंकर श्री नेमीनाथ का अवतार हुआ। आपके पिता का नाम समुद्र विजय था। श्री कृष्णचन्द्र वासुदेव जी के पुत्र थे अतएव नेमि-नाथ जी के भाई थे। जिस वंश के अन्दर ऐसे ऐसे महात्माओं ने जन्म लिया है वह वंश यदि उन महात्माओं का अनुयायी हो तो इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं। उस समय के जैन योद्धा समुद्रविजय, वासुदेव, श्रीकृष्णचन्द्र, बलभद्र, महावीर, कौरव, पाण्डव, और सांबप्रद्युम्न आदि ब्राह्मणों के हिंसामय कृत्यों का विरोध करते थे। यज्ञ की वेदी पर होने वाली हिंसा रोकी गई। सारे संसार में अहिंसा धर्म का प्रचार हुआ। क्या आर्य और क्या अनार्य सब मिलाकर सोलह हजार देशों में जैन धर्म की पताका फहराने लगी। तत् पश्चात् पार्श्वनाथ स्वामी का शासन प्रारम्भ हुआ। आप काशी नरेश अश्वसेन की रानी वामा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। आप की बुद्धि बाल्यावस्था ही में इतनी प्रखर थी कि आपने कमठ जैसे तापस की खूब खबर ली। उस तापस की धूनी में से जलते हुए नाग को निकाल कर नमस्कार

मंत्र सुनाकर धरणीन्द्र की पदवी देनेवाले आप ही थे। पार्श्व-नाथ स्वामी ने दीक्षा लेकर कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था। आपका धर्मचक्र विश्वव्यापी बन गया था।

बड़े बड़े राजा और महाराजा आपके चरण कमलों का स्पर्श कर अपने को अहोभागी समझते थे तथा आपकी सेवा में सदा निरत रहते थे। उग्रभोग इक्ष्वाकु राजा के कुल के तथा सेठ साहुकारों के १६००० मनुष्य पार्श्वनाथ स्वामी के पवित्र चरण कमलों में दीक्षान्वित हुए थे। आप के पास दीक्षित हुई ३८००० साध्वियाँ महिला समाज को सदुपदेश सुनाकर धर्म का उज्ज्वल मार्ग प्रदर्शित करतीं थी। जैन तीर्थंकरों में श्री पार्श्वनाथ स्वामी का नाम ही खूब प्रख्यात है। और यंत्र तथा मंत्र भी पार्श्वनाथ स्वामी के नाम से अधिक हैं। अर्वाचीन समय में भी अधिकतर जैनेतरों को पार्श्वनाथ स्वामी का ही परिचय है।

पार्श्वनाथ स्वामी ने विहार विशेषतया काशी, कौशल, अंग, बंग, कलिंग, पंचाल, जंगल और कोनाल आदि प्रान्तों में किया था। उपरोक्त प्रान्तों अंग, बंग, मगध और कलिंग देश में आपने विशेष उपदेश देकर जैन धर्म का खूब अभ्युदय किया था। इसका यह प्रमाण है कि कलिंग देश के अंतर्गत उदयगिरि पहाड़ी की हाँसीपुर गुफा में आपका जीवनचरित शिलालेख के रूप में अबतक भी विद्यमान है। यह पहाड़ भी कुमार तीर्थ के नाम से आजकल प्रख्यात है। आपकी शिष्य मण्डलीने भी उसी प्रान्त में अधिक विहार किया होगा ऐसा मालूम होता है।

पार्श्वनाथ स्वामी के निर्वाण के पश्चात् फिर ब्राह्मणों का थोड़ा थोड़ा मायाजाल फैलने लगा। पर बदा कुछ और ही था। पार्श्वनाथ स्वामी की परम्परा के साधु पेटतर्षि के शिष्य बुद्धकीर्तिने अपने नाम पर एक नया मत चलाया। इस मत का नाम उसने अपने नाम पर बुद्धधर्म रक्खा। उधर ब्राह्मणोंने हिंसामय यज्ञ आदि ज़ोर शोरसे प्रारम्भ किये थे अतएव इस बुद्धकीर्तिने अहिंसा का उपदेश दे लोगों को अपने मतमें एकत्रित करना आरम्भ किया। उसने इतना प्रयत्न किया कि अनेक जैन राजा भी बोद्धधर्म के अनुयायी हो गये। इस बोद्धों की उन्नति के समयमें बाल ब्रह्मचारी मुनि आचार्यश्री केशी श्रमणने बुलन्द आवाज़से बोद्धधर्म का सतर्क खण्डन किया। केशी श्रमणाचार्यने बोद्धधर्म अवलम्बन करनेवाले राजाओं को प्रतिबोध दे पुनः जैनी बनाया। इस तरहसे प्रतिबोधित नृपतिगण ये थेः—चेटक, प्रसाजित, सिद्धार्थ, उदाई, सन्तानीक, चन्द्रपाल और प्रदेशी आदि। इनके अतिरिक्त और छोटे छोटे नरेश भी जैनी हुए जिन की संख्या भी बहुत थी।

केशी श्रमणाचार्यने अपने आज्ञावर्ती मुनियों को देश परदेशमें भेज भेज कर बोद्धों के चंगुलसे अनेक प्राणियाँ को बचा कर जैनधर्मी बनाया। शिष्यों को अन्योन्य प्रान्तमें भेज कर आपने स्वयं अंग, बंग और मगध देशमें रह कर जैनधर्म की उन्नति करनेमें अटूट परिश्रम किया। तथापि प्रकृति एक महापुरुष की और कमी अनुभव करती थी। प्रतीक्षा एक ऐसे व्यक्ति की थी जो शांति का

साम्राज्य स्थापित कर धार्मिक क्षेत्रमें मची हुई भ्रांति को मिटा दे। उस समय की दशा भी विक्षिप्त थी। पारस्परिक प्रतिद्वंद्वता का जमाना द्वेष को फैला रहा था। एक ओर वेदान्ति लोग यज्ञ आदिमें पशुहत्या पर तुले हुए थे तो दूसरी ओर बुद्धलोग अहिंसा धर्म का उपदेश देते हुए भी मांसमदिरा के प्रयोगसे बचे हुए नहीं थे। तीसरी ओर जैनमुनि अहिंसा का उपदेश तो करते थे पर उनके गृहक्लेश और शिथिलता के कारण उपदेश का पूरा प्रभाव नहीं पड़ता था। केशी श्रमणाचार्यने जैन मुनियों को समझा बुझा कर तत्कालीन समय की दशा का विस्तृत वर्णन किया तथा उन्हें सचेत कर जैनधर्म का उत्थान करने के लिये उत्साहित किया।

ठीक आवश्यक्ता के समय भगवान् महावीर स्वामी का शासन प्रारम्भ हुआ। फिर किस बात की कमी थी। जगदुपकारक भगवान् महावीरने अपनी बुलन्द आवाजसे तथा दिव्य शक्तिद्वारा चारों ओर शान्ति फैलाई। आपने बाल्यावस्थासे ही तत्वज्ञानसे पूर्ण परिचय प्राप्त कर लिया था। आप का मुख्य ध्येय आत्मकल्याण करना था। अहिंसाधर्म का प्रचार करना ही आपका पवित्र उद्देश्य था। " सब जीवों के प्रति प्रेम रखना " यही आपके उपदेश का सार था। बस इसी मंत्र का सारे विश्व पर प्रभाव पड़ा। जाति के बन्धनों को तोड़ कर आपने उच्च और नीच का झगड़ा मिटा दिया। आत्मकल्याण की उज्ज्वल भावनासे प्रेरित हो १४००० मुनि एवम् ३६००० आर्याओंने आप के चरणों की शरण ली थी।

लाखों नहीं वरन् क्रोडों की संख्यामें जैनोपासक दृष्टिगोचर होने लगे । वेदान्तियों का समुदाय लुप्तसा हो गया । जैनधर्म के प्रतापरुपी सूर्य के आगे बोद्धों का समुदाय उडुगण की तरह फीका नजर आने लगा । थोड़े ही समयमें सारा भारत जैनधर्म की पताका के नीचे आ गया । विशाला का चेटक नरेश, राजगृही का श्रेणिक भूप, कौणिक भूपति, नौलच्छिक, नौमलिक, अठारगण राजा, सिन्धु सौवीर का महाराजा उदाई, उज्जेन का नृपति चण्डप्रद्योतन, दर्शनपुर नरेश दर्शनाभद्र, पावापुरी का नरपति हस्तपालराज, पोलासपुर का नरेन्द्र विजयसेन, काशी का धर्मशील सावत्थिक अदितशत्रु, सांकेतपुर का धर्मधुरन्धर धराधीश धर्मशाल, क्षत्रिकुण्ड का महाराजा नंदीवर्धन, कौसुम्बीपति उदाई, कापिलपुर का भूपति यमकेतु, श्वेताम्बर का नरेश प्रदेशी और कलिंग का अधिपति महाराज सुलोचन ये सब जैनधर्म के प्रचारमें पूर्णतया संलग्न थे ।

आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से लगा कर अंतिम तिर्थंकर महावीर प्रभु के शासनकाल तक चक्रवर्ती, वासुदेव प्रतिवासुदेव, बलदेव, मण्डलिक, महामण्डलिक आदि सब सदाशय एवं महापुरुष परम श्रद्धालु जैनधर्मावलम्बी थे । इन का ऐतिहासिक वर्णन यदि किसी को मालूम करना हो तो चाहिये कि कलिकाल सर्वज्ञ भगवान् हेमचन्द्राचार्य महाराज विरचित "त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित्र " नामक बृहद्ग्रन्थ को देखो । प्राचीन इतिहास सिवाय जैन ग्रंथो के और कहीं भी नहीं पाया जाता ।

भगवान् पार्श्वनाथ और महावीरस्वामी के इतिहास की सामग्री तो विस्तृत रूप में उपलब्ध हो चुकी है। इतना ही नहीं पर बावीसवें तिर्थंकर भगवान् नेमीनाथ स्वामी को भी ऐतिहासिक पुरुष मानने को अर्वाचीन इतिहासज्ञ तैयार हैं। ज्यों ज्यों अधिक खोज होगी त्यों त्यों जैन ग्रन्थों का विषय ऐतिहासिक प्रमाणित हो कर सार्वजनिक प्रकाश में आता रहेगा।

भगवान श्री महावीर स्वामी के पीछे का जो इतिहास उपलब्ध हुआ है उस में अधिकाँश पाटलीपुत्र नगर का ही वृतान्त वर्णित है। कारण इस प्रदेश में जितने नृपति हुए सब के सब ऐतिहासिक राजा हैं। अतएव यहाँपर पाटलीपुत्र के राजाओं से ही ऐतिहासिक वर्णन बताया जायगा किन्तु इस से पहिलेके श्रेणिक और कौणिक नरेश का थोड़ा हाल दिखा देना असंगत नहीं होगा।

यह वर्णन इस समय का है जब कि मगधदेश का राजमुकुट शैशुवंशिय महाराजा प्रभ्रजित के मस्तकपर शोभायमान था। राजा प्रभ्रजित के १०० पुत्र थे राजाने अपना राज्य श्रेष्ठ पुत्र को बिना परीक्षा किये न देने का विचार कर सब पुत्रों की कुशलता की परीक्षा लेनी चाही। इस परीक्षा में जो सर्वोपरी उत्तीर्ण होगा वही मेरा उत्तराधिकारी एवं राज्य का अधिकारी होगा, ऐसा राजा का आदेश एवं मन्तव्य था। अनेक प्रकार से परीक्षा करने से ज्ञात हुआ कि श्रेणिक कुमार राजा होने के लिए सर्व गुण युक्त है फिर राजाने दूरदर्शीता से सोचा कि यदि श्रेणिक यहीं पर रहेगा तो

न मालूम शेष पुत्रों में से कौन राज्य की लालसा से उपद्रव करें बैठे। इसी हेतु एक बार बगीचे में श्रेणिक का ऐसा अपमान किया गया कि श्रेणिककुमार देश छोड़ कर भाग गया। जब श्रेणिक देश से भग कर जा रहा था तो रास्ते में उसे बौद्ध भिक्षुओं से भेंट हुई श्रेणिक रात्रिके समय बौद्धों के मठ में ही ठहरा तथा उसने आपबीती सब को कह सुनाई।

बौद्धोंने श्रेणिक को कहा कि यदि तुम्हें राज्य प्राप्त करने की आंकाक्षा है तो भगवान् बौद्ध पर विश्वास रक्खो। बोद्धधर्म पर श्रद्धा रखने से तुम्हें अवश्य राज्य प्राप्त होगा पर उस दशा में तुम बोद्ध धर्म का प्रचार करोगे तथा इस धर्म को स्वयं भी स्वीकार करलोगे, ऐसी प्रतिज्ञा इस समय करो। श्रेणिकने यह बात स्वीकार करली। प्रातःकाल होते ही श्रेणिक वहाँ से चल पड़ा। चलते चलते वह बेनातट नगर में पहुँचा। वहाँ धनवहा सेठ की कन्या नन्दा से उस का विवाह हो गया। विवाह होने पर वह उसी नगर में रहने लगा। उधर प्रश्नजित राजा सख्त बीमार हुआ। वह मृत्युशय्या पर पड़ा पड़ा अपने पुत्र श्रेणिक की प्रतीक्षा कर रहा था। देवानन्द नामक सवार्थवाह ने आकर समाचार दिया कि श्रेणिक बेनावट नगर में रहता है। पिताने अपने अनुचरों को भेज कर श्रेणिक को बुलाया। नन्दा गर्भवती थी। पर श्रेणिकने अपने पिता की आज्ञा को टालना उचित नहीं समझा। श्रेणिक बड़ी सेना को ले कर राजगृह पहुचा। प्रश्नजितने सब के समक्ष श्रेणिक को राज्याभिषेक कर राजगृह (मगध)

कार्य उस के सुपुर्द कर दिया। प्रभजित नरेश नमस्कार मंत्र का आराधन करता हुआ देह त्याग स्वर्ग की ओर सिधारा।

श्रेणिक राजाने राजगद्दी पर बैठते ही बौद्ध भिक्षुकों को बुलाया तथा बौद्धधर्म स्वीकार कर उस के प्रचार का कार्य भी करने लगा। बौद्ध ग्रंथों में श्रेणिक का नाम बिम्बसार लिखा हुआ पाया जाता है। जैन ग्रंथों में भी श्रेणिक का दूसरा नाम बिम्बसार लिखा हुआ मिलता है। श्रेणिक राजा के कई रानियाँ थीं उन में से एक का नाम चेलना था। चेलना विशाला नरेश चेटक की पुत्री थी तथा जैनधर्म की परमोपासिका थी। राजा तो बौद्ध था तथा रानी जैन थी अतएव सदा धर्म विषयक वाद विवाद चलता रहता था। धर्म की अन्धश्रद्धा के वशीभूत हुए श्रेणिकने जैनधर्म के प्रचारक मुनियों पर कई दोषारोपण भी किये। वह सदा मुनियों के आचार पर आक्षेप भी किया करता था पर रानी चेलना भी किसी प्रकार कम नहीं थी। उसने बौद्ध भिक्षुकों को लम्बे हाथ लिया। पर अन्त में अनाथी मुनि के प्रतिबोध से श्रेणिक राजा की अभिरुचि जैनधर्म की ओर हुई। महावीर भगवानने इस अभिरुचि को परम श्रद्धा के रूप में पुष्ट कर दिया। कई देवता आ कर श्रेणिक के दर्शन को डिगाने लगे पर उन का प्रयत्न विफल हुआ।

फिर क्या देरी थी ? राजा श्रेणिकने अपने राज्य में ही नहीं पर भारत के बाहर अनार्य देशों में भी जैनधर्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया। महाराजा श्रेणिक के नंदा रानी के पुत्र

अभयकुमारने अनार्य देशके आर्द्रकपुर नगर के महाराजकुँमार आर्द्र के लिये भगवान् ऋषभदेव की मूर्ती भेजी थी। इस मूर्ती के दर्शन से आर्द्रकुमारने ज्ञान प्राप्त कर जैनधर्म की दीक्षा ले अनार्य देश में भी जैनधर्म का खूब प्रचार किया था। राजा श्रेणिक नित्य प्रति १०८ सोने के जो (अक्षत) बना कर प्रभु के आगे स्वस्तिक बना चौगति की फेरी से बचने की उज्ज्वल भावना किया करता था। यह नृपति जैनधर्म का प्रसिद्ध प्रचारक हुआ है। श्रेणिक नरेशने कलिङ्ग देश के अन्तर्गत कुमार एवं कुमारी पर्वत पर भगवान् ऋषभदेव स्वामी का विशाल रम्य मन्दिर बनवा उस में स्वर्ण मूर्ती की प्रतिष्ठा करवाई थी। इस के अतिरिक्त उसने उसी पर्वत पर जैन श्रमणोंके हित बड़ी बड़ी गुफाओं का निर्माण भी कराया था। इसी अपूर्व और अलौकिक भक्ति की उच्च भावना के कारण आगामी चौवीसी में श्रेणिक नृपति का जीव पद्मनाभ नामक प्रथम तिर्थंकर होगा।

महाराजा श्रेणिक बौद्ध अवस्था में शिकार करते समय अधोगति का आयुष्य बांध चुके थे अतः वे स्वयं तो दीक्षा नहीं ले सके किन्तु जो कोई दूसरा दीक्षा लेना चाहता था तो उसे वे रोकते नहीं थे वरन उसे सहयोग दे कर उस का उत्साह द्विगुणित करने में कभी नहीं चूकते थे। इस सुविधा को देख कर राजा श्रेणिक के पुत्र तथा प्रपुत्र जालीकुमार, मयाली, उद्याली, पुरुषसेन, महासेन, मेघकुमार, हल, विहल और नंदीसेन आदिने एवम् नन्दा, महान्दा और सुनन्दा आदि रानियोंने भगवान् महा-

वीर प्रभु के पास दीक्षा ली। इस प्रकार जैनधर्म का उत्थान श्रेणिक के शासनकाल में भी खूब हुआ।

महाराजा श्रेणिक के बाद मगध का राज्यमुकुट श्रेणिक से उतर कर उस के पुत्र कौणिक के सिरपर चमकने लगा। वह बड़ा ही वीर था। कौणिक राजाने अपनी राजधानी चम्पा नगरी में कायम की। बौद्ध ग्रंथों में कौणिक नरेश अजातशत्रु के नाम से प्रसिद्ध है। कहीं कहीं बौद्ध ग्रंथों में इस का नाम बौद्धधर्मी राजाओं की परिगणना में आता है। कदाचित् कौणिक पहिले थोड़े समय के लिये बौद्धधर्मी रहा हो पर यह सर्वथा सिद्ध है कि पीछे से वह अवश्य जैनी हो गया था। उसने जैन-धर्म की खूब उन्नति भी की। कौणिक नरेशने पूर्ण प्रयत्न कर के अनार्य देशों तक में जैनधर्म का प्रचार कराया था। महाराजा कौणिक का यह प्रण था कि जबलौं मुझे यह संवाद नहीं मिले कि महावीर स्वामी कहाँ विहार कर रहे हैं मैं भोजन नहीं करूंगा। महाराजा कौणिक बड़े शूरवीर एवं प्रबल साहसी थे। हार हस्ती के लिये वीर कौणिक नरेशने महाराजा चेटक से बारह वर्ष पर्य-न्त युद्ध कर अन्त में उसे पराजित कर विजय का डंका बजाया था। इतना ही नहीं पर उसने सारे भारत को अपने अधीन कर सम्राट की उपाधि प्राप्त की थी। जैन ग्रंथों में कौणिक नरेश का इतिहास बहुत विस्तार पूर्वक लिखा हुआ है।

महाराजा कौणिक के पीछे मगधराज्य की गद्दीपर उसका पुत्र उदाई सिंहासनारुढ़ हुआ। इसने अपनी राजधानी पाटली

पुत्र में रक्खी। वैसे तो मगध के सारे राजा जैनी हुए हैं पर इस-के शासन काल में जैनधर्म उन्नति की और अधिक प्रवाह से प्रगति करने लगा। " यथा राजा तथा प्रजा " लोकोक्ति के अनु-सार जनता भी जैनधर्म की अनुयायिनी बनी। दूसरी ओर वेदा-न्तियों और बोद्धों का ज़ोर भी बढ़ रहा था। तथापि जैनाचार्य साबित कदम थे। स्याद्वाद सिद्धान्त और अहिंसा परमोधर्म के आदर्श के आगे मिथ्यात्वियों की कुछ भी नहीं चलती थी। राजा उदाई तो राज्य की अपेक्षा धर्म का विशेष ध्यान रखा करता था। इसकी इस कद्र प्रवृति देख कर विधर्म्मियों के पेट में चूहे कूदने लगे। उन्होंने एक अधम्म निर्दय किसी आदमी को धार्मिक द्वेष में अंधे हो कर जैन मुनि के वेष में उदाई के पास भेजा। उस द्वेषीने जाकर छल से उदाई का वध कर शैशु वंश का ही अन्त कर दिया।

शैशु नाग वंशियों के पश्चात् मगध देश का राज्य नन्द वंश के हस्तगत हुआ। पाटलीपुत्र राजधानी में नंद वर्धन राजा सिंहासनारूढ़ हुआ। पहिले यह ब्राह्मण धर्मी था। कदा-चित इसीने षटयंत्र रच महाराज उदाई का वध कराया हो। इस नृपतिने वेदान्त मत का खूब प्रचार किया। वह जैन और बौद्ध मत का कट्टर विरोधी था। मरणोन्मुख होते हुए ब्राह्मण धर्म को इसी नरेशने जीवन प्रदान किया था। तथापि जैन और बौद्धों का ज़ोर कम नहीं हुआ। शायद पिछली अवस्था में जैन मुनियों के समागम से उसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया हो और जैन धर्म का

प्रचार किया हो ऐसा मालूम होता है। इतिहास से विदित होता है कि मगध की गद्दी पर नंदवंश के नौ राजाओंने राज्य किया है। वे नंदवंशी सब राजा जैनी थे इसका प्रमाण देखिये— Smith's Early History of India Page 114. में और डाक्टर शेषागिरिराव ए. ए. एण्ड ए आदि मगध के नंद राजाओं को जैन लिखते हैं क्योंकि जैनधर्मी होने से वे आदीश्वर भगवान् की मूर्ति को कलिङ्ग से अपनी राजधानी में ले गये थे। देखिये South India Jainism Vol. II Page 82.

महाराजा खारवेल के शिला लेख से स्पष्ट प्रकट होता है कि नंद वंशीय नृप जैनी थे। क्योंकि उन्होंने जैन मूर्ति को बरजोरी लेजा कर मगध देश में स्थापित की थी। इस से यही सिद्ध होता है कि यह घरोना जैनधर्मोपासक था। ये राजा सेवा तथा दर्शन आदि के लिये ही जैन मूर्ति ला लाकर मन्दिर बनवाते होंगे। जैन इतिहास वेत्ताओने तो विश्वासपूर्वक लिखा है कि नंदवंशीय राजा जैनी थे। तथा इतिहास से भी यही प्रकट होता है।

सूर्य उदय होकर मध्याह्न तक प्रज्वलित होकर जिस प्रकार संध्या के समय अस्त हो जाता है तदनुरूप इस पवित्र भूमिपर कई राज्य उदय होकर अस्त भी हो गये। इसी प्रकार की दशा पाटलीपुत्र नगर की हुई। नंद वंश के प्रताप का सूर्य अंतिम नरेश महा पद्मानंद के शासन के साथ ही साथ अस्त हो गया। और इसके स्थान पर मौर्य वंश का दिवाकर देदीप्यमान हुआ।

मौर्य वंश उदय होते ही उन्नति के सर्वोच्च सोपान पर बात की बात में पहुँच गया। नीतिनिपुण चाणक्य की सहायता से मौर्य कुल मुकुट महाराजा श्री चंद्रगुप्तने नंदवंश के पश्चात् मगध राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली। चन्द्रगुप्तने अपनी कार्य कुशलता और निर्भीक वीरता से इतनी सफलता प्राप्त की कि आप भारत सम्राट की पदवी से विभूषित हुए। इतिहास के काल में तो आप हीने सबसे पहिले सम्राट की उपाधि प्राप्त की थी।

महाराजा चंद्रगुप्तने ग्रीस के (युनानी) बादशाह सिकन्दर को तो इस प्रकार पराजित किया कि उसने जीवनभर भारत की ओर आँख उठाकर नहीं देखा। सिकन्दर का देहान्त ई. सं. ३२३ पूर्व हुआ। इसके पश्चात् सेल्यूकसने भारतपर चढाई की। पर वह भी विफल मनोरथ हुआ। उसने चन्द्रगुप्त से एक ऐसी लज्जास्पद संधि की कि काबुल कन्धीहार और हिरत तक का देश चन्द्रगुप्त को मिल गया। सेल्यूकसने चिर शान्ति स्थाई रखने के हेतु अपनी पुत्रि का विवाह भी चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया। चन्द्रगुप्तने अपने साम्राज्य का विस्तार भारत के बाहिर भी किया था। सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य शूरवीर एवं रणबांकुरा साहसी योद्धा था। यह राजनीति विशारद होने के कारण अपने साम्राज्य में सर्व प्रकार से शांति रखने में समर्थ था।

जैन ग्रंथकारोंने लिखा है कि सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य जैनी था। उसके गुरु अंतिम श्रुत केवली आचार्य भद्रबाहुस्वामी थे। चन्द्रगुप्तने जैनधर्म का खूब प्रचार किया था। उसने काबुल,

कन्धार, अर्बिस्तान, ग्रीस, मिश्र, आफ्रिका एवं अमेरिका तक में जैन धर्म का प्रचार तथा फैलाव किया। ब्राह्मणोंने इसें नीच जाति एवं शुद्राणी का पुत्र होना लिखा है। इस तरह उसे नीच बताने का कारण यही है कि वह जैनधर्मावलम्बी था। जैनधर्म के प्रचारक को इस तरह सम्बोन्धन करना ब्राह्मणों के लिये असाधारण बात नहीं थी। ब्राह्मणोंने कलिङ्ग देश के निवासियों को "वेदधर्म विनाशक" ही लिख डाला है। इतना लिख कर ही वे सन्तोष नहीं मान बैठे वरन् उन्होंने यह भी उल्लेख कर दिया कि कलिङ्ग प्रदेश अनार्य भूमि है तथा उस भूमि में रहनेवाला ब्राह्मण पतित हो जाता है। जब वे जैनधर्म के इतने कट्टर विरोधी थे तो चन्द्रगुप्त को हल्की जाति का लिख दिया तो इस में आश्चर्य की क्या बात थी ?

सम्राट चन्द्रगुप्त का सच्चा ऐतिहासिक वर्णन कई वर्षो तक गुप्त रहा। यही कारण था कि कई लोग चन्द्रगुप्त को जैनी मानने में संकोच किया करते थे। और कई तो साफ इन्कार करते थे कि चन्द्रगुप्त जैनी नहीं था। पर अब यूरोपीय और भारतीय पुरातत्वज्ञों की सोध और खोज से तथा ऐतिहासिक साधनों से सर्वथा सिद्ध तथा निश्चय हो चुका है कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैनी था। कतिपय विद्वानों की सम्मतियों का यहाँ लिखा जाना युक्तिसंगत होगा।

चन्द्रगुप्त के जैनी होने के विशद प्रमाण राय बहादुर डाक्टर नरसिंहाचार्यने अपने "श्रवण बेलगोल" नामक पुस्तक

में संग्रह किये हैं। वह पुस्तक अंगरेजी भाषा में लिखी गई है। जैन गजट आफिस, ८ अम्मन कुवेल स्ट्रीट, मद्रास के पते से मंगाने पर मिल सकती है। इस पुस्तक में चन्द्रगुप्त का जैनी होना प्रमाणित है। अशोक भी अपनी तरुण वय में जैनी माना गया है। इस प्रकार नंद वंश और चन्द्रगुप्त मौर्य का जैनी होना सिद्ध है। इन सब का वर्णन श्रवण वेलगोल के शिला लेखों. (Early faith of Ashok Jainism by Dr. Thomas South Indian Jainism Volume II page 39), राज तरंगिणी और आइन ई अकबरी में मिल सकता है। पाठकों को चाहिये कि उपरोक्त पुस्तकें मंगाकर इन बातों से जरूर जानकारी प्राप्त करें। आगे और भी देखिये भिन्न भिन्न विद्वानों का क्या मत है ?

डाक्टर ल्यूमन Vienna Oriental Journal VII 382 में श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी की दक्षिण की यात्रा को स्वीकार करते हैं।

डाक्टर हर्निले Indian Antiquary XXI 59, 60 में तथा डाक्टर टामस साहब अपनी पुस्तक Jainism of the Early Faith of Asoka page 23 में लिखते है—" चन्द्रगुप्त एक जैन समाज का योग्य व्यक्ति था जैन ग्रंथकारोंने एक स्वयं सिद्ध और सर्वत्र विख्यात बात का वर्णन करते उपरोक्त कथन को ही लिखा है जिस के लिये किसी भी प्रकार के अनुमान या प्रमाण देने की आवश्यक्ता नहीं ज्ञात होती। इस विषय में लेखों के प्रमाण बहुत प्राचीन हैं तथा साधारणतया संदेह रहित हैं। मैगस्थनीज (जो चन्द्रगुप्त

की सभा में विदेशी दूत था) के कथनों से भी यह बात झलकती है कि चन्द्रगुप्तने ब्राह्मणों के सिद्धान्तों के विपक्ष में श्रमणों (जैन मुनियों) के धर्मोपदेश को ही स्वीकार करता था। " टामस राव एक जगह और सिद्ध करते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र और पौत्र विन्दुसार और अशोक भी जैन धर्मावलम्बी ही थे। इस बात को पुष्ट करने के लिये साहबने जगह जगह मुद्राराक्षस, राजतरंगिणी और आइन ई अकबरी के प्रमाण दिये हैं।

श्रीयुत जायस वाल महोदय Journal of the Behar and Orissa Research Society Volume III में लिखते हैं—" प्राचीन जैन ग्रंथ और शिलालेख चन्द्रगुप्त मौर्य को जैन राजर्षि प्रमाणित करते हैं। मेरे अध्ययनने मुझे जैन ग्रंथों की ऐतिहासिक वार्ताओं का आदर करना अनिवार्य कर दिया है। कोई कारण नहीं कि हम जैनियों के इन कथनों को कि चन्द्रगुप्तने अपनी प्रौढ़ा अवस्था में राज्य को त्याग कर जैन दीक्षा ले मुनिवृत्ति में ही मृत्यु को प्राप्त हुए, न मानें इस बात को माननेवाला मैं ही पहला व्यक्ति नहीं हूँ।" मि. राईस भी जिन्होंने श्रवण बेलगोल के शिलालेखों का अध्ययन किया है पूर्ण रूप से अपनी राय इसी पक्ष में देते हैं।

डाक्टर स्मिथ अपनी Oxford History of India नामक पुस्तक के ७५, ७६ पृष्ठ में लिखते हैं " चन्द्रगुप्त मौर्य का घटना पूर्ण राज्य काल किस प्रकार समाप्त हुआ इस बात का उचित विवेचन एक मात्र जैन कथाओं से ही जाना जाता है। जैनियोंने सदैव उक्त मौर्य सम्राट को बिम्बसार (श्रेणिक) के सदृश जैन धर्मावलम्बी

माना है और उन के इस कथन को असत्य समझने के लिये कोई उपयुक्त कारण नहीं है। यह बात भी सर्वथा सत्य है कि शैशुनाग, नंद और मौर्य वंश के राजाओं के समय मगध देश में जैन धर्म का प्रचार प्रचुरता से था। चन्द्रगुप्तने यह राजगद्दी एक चतुर ब्राह्मण की सहायता से प्राप्त की थी। यह बात इस बात में बाधक नहीं होती कि चन्द्रगुप्त जैनी था। मुद्रा राक्षस नामक नाटक में एक जैन साधु का भी उल्लेख है। यह साधु नंद वंशीय एवम् पीछे से मौर्य वंशीय राजाओं के राक्षस मंत्री का खास मित्र था।"

Mr. H. L O, Garrett M. A; I. E. S. in his essey "Chandragupta Maurya" says—"Chandragupta, who was said to have been a Jain by religion, went on a pilgrimage to the South of India at the time of a great famine. There he is said to have starved himself to death. At any rate he ceased to reign about 298 B. "C.

इत्यादि बातों से यही सिद्ध होता है कि सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य एक जैनी राजा था। उसने अपने राज्य को त्याग कर जैन दीक्षा ली थी। दीक्षा लेकर उसने समाधि मरण प्राप्त किया था। और ज्यों ज्यों ऐतिहासिक खोज होती रहेगी त्यों त्यों प्रमाण भी विस्तृत संख्या में हस्तगत होते रहेंगे।

चन्द्रगुप्त के राज्य का उत्तराधिकारी उनका पुत्र बिन्दुसार हुआ। यह भी बड़ा पराक्रमी और नीतिज्ञ राजा था। यह जैन धर्म का उपासक एवम् प्रचारक भी था। इस के शासन काल में भी जैन धर्म उत्थान के उच्च शिखिर पर था। बौद्ध और

वेदान्तियों का जोर मिटता जा रहा था। उन के दिन घर नहीं थे। जो राजा का धर्म होता है वही प्रजा का होता है यह एक साधारण बात है। इसी नियमानुसार जैन धर्म का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया था। बिन्दुसार राजा शांति प्रिय एवं संतोषी था। इस का राज्य काल निर्विघ्नतया बीत रहा था। इस के शासन के समय ऐसी कोई भी महत्व की घटना नहीं घटित हुई जिस का कि इस जगह विशेष उल्लेख किया जाय।

राजा अपनी प्रजा को पुत्र तुल्य समझता था तथा प्रजा भी अपने राजा की पूर्ण भक्त थी। जैन धर्म का एक उद्देश्य शांति भी है जिस का कि साम्राज्य बिन्दुसार के समय में था। इसने कई यात्राएँ की। कुमारी कुमार तीर्थ पर तो यह राजा निवृत्त भाव से कई बार संलग्न रहता था। लोकोपकारी कार्यों में राजा की अधिक रुचि थी प्रजा के सुभीते के लिये जगह जगह कुए, तालाब और बगीचे बनाने में इसने विपुल सम्पत्ति व्यय की। अनेक विद्यालय एवं जिनालय इस के हाथ से प्रतिष्ठित हुए। कृषि, व्यापार और शिल्प की उन्नति के लिये ही बिन्दुसारने विशेष प्रयत्न किया था। इस प्रकार इसने अपना जीवन परम सुख से व्यतीत किया।

महाराजा बिन्दुसार के पश्चात् मगध देश का राज्य मुकुट अशोक के सर पर शोभित हुआ। अशोक भी अपने पिता व पितामह की तरह शूरवीर एवं प्रतापी योद्धा था। यह राजा भी जैनी ही था। महाराजा अशोक की तक्षशिला की प्रशस्तियों

और आज्ञाओं में भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की स्तुतियों पाई जाती हैं। डा० लार्ड कनिङ्ग होमने अपनी पुस्तकों में इस बात का उल्लेख किया है कि राजा अशोक पहले तो जैनी था पर बाद में उसने बौद्ध धर्म कब स्वीकार किया इस विषय में विद्वानों का यह मत है कि ई. स. २६२ पूर्व में अशोकने कलिङ्ग देश पर चढ़ाई की। उस युद्ध में कलिङ्ग के कई योद्धा जान से हाथ धो बैठे। यह देख कर अशोक का हृदय दया से द्रविभूत हो कर तिलमिला उठा। युद्ध की पापमयी रक्त रंजित लीला को देख कर सहसा उस का विचार परिवर्तित हो गया। कलिङ्ग देश को जीत कर जब वह मगध देश में आया तो उसने आत्म प्रेरणा से यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि जीवन पर्यन्त कभी भी मैं युद्ध नहीं करूंगा।

जिस समय अशोक यह प्रतिज्ञा कर रहा था एक बौद्ध भिक्षु भी राजा के पास पहुँच गया और राजा की ऐसी दशा देख कर उसने अहिंसा का महत्व बता उसे अपने पंथ में मूँड लिया। वह बौद्ध भिक्षु तो नहीं बना पर अहिंसा के प्रेम में ऐसा रंगा हुआ था कि उसने चट बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया। जैनों की अनुपस्थिति में यदि उसने इस मत को ग्रहण कर लिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। राजा अशोक ओजस्वी एवं पूर्ण मनस्वी था। उसने बौद्ध धर्म का प्रचार खूब जोरों से किया। देश की गली गली में बौद्ध धर्म का डंका बजने लगा तथा झुण्ड के झुण्ड आ कर बौद्ध धर्म की शरण ताकने लगे।

इस की धार्मिक आज्ञाओं के अध्ययन से पता पड़ता है कि वह भारत का सम्राट था। लोकोपकारी कार्यों को करना उसने अपना धार्मिक कर्त्तव्य ठहराया था। उसने ठौर ठौर सार्वजनिक मार्ग पर आवश्यकतानुसार कुए, तालाब, बाग, बगीचे, सड़कें और पथिकाश्रम बनवाए। बौद्ध श्रमणों के हित उसने जगह जगह संघाराम (मठ) बनवाए तथा बुद्ध की मूर्त्तियों का तो उसने तांता ही लगा दिया। पहाड़ों के अन्दर श्रमण समाज के हित गुफाएँ बनाने की भी उसने योजना तथा व्यवस्था की। बुद्धने तो केवल अपने मत का कलेवर (देह) मात्र ही तैयार किया था पर उस में जीवन प्रदान कर उसे जगाने का कार्य यदि किसीने प्रयत्न जी तोड़ कर के किया तो अशोकने किया। ठीक उसी तरह से जिस प्रकार इस के पिता और पितामह बिन्दुसार चन्द्रगुप्तने जैन धर्म का प्रचार किया था उसी प्रकार अशोकने बौद्ध धर्म का प्रचार किया। किन्तु अशोक में एक बात की बड़ी खूबी थी वह दूसरे वेदान्तियों या बौद्धों की तरह दूसरे धर्मवालों से जातीय शत्रुता न तो रखता था न रखनेवालों को पसंद करता था। दूसरे मतवालों की ओर तो वह देखता भी नहीं था पर जैनियों के प्रति तो उसे स्वाभाविक सहानुभूति थी। अशोकने अपनी शेष आयु धर्म प्रचार एवम् शांति से ही व्यतीत की। अशोक के पुत्रो में दो मुख्य थे-एक कुणाल और दूसरा वृहद्रथ (दशरथ)।

अशोकने कुणाल को उज्जैन भेज दिया था। वहाँ उसकी

सौतेली माने पट् यंत्र के प्रयोगसे उसे अन्धा कर दिया पर कृपालु अशोकने इतना होनेपर भी उसे उज्जैन में ही रक्खा । इधर पाटलीपुत्र में अशोक के पीछे उसका पुत्र बृहद्रथ सिंहासनारूढ हुआ । वह राजा निर्बल था अतएव मौर्यवंश का प्रताप फीका पड़ने लगा । राजा को निस्तेज देखकर उसके कपटी मंत्रीने साहस कर एक दिन बृहद्रथ को जानसे मारडाला ।

राजा बृहद्रथ की हत्या करनेवाला पुष्पमंत्री बृहस्पति के उपनाम से मगध देश की राजगद्दी पर अधिकार कर बैठा । बृहस्पति बहादुर एवं कार्य कुशल व्यक्ति था । यह ब्राह्मण धर्मी था अतएव उसने मरते हुए ब्राह्मण धर्म में फिरसे जान डाली । इसने चाहा कि अश्वमेध यज्ञ कर चक्रवर्ती की उपाधि उपार्जन करूँ पर महामेघ वहान चक्रवर्ती महाराजा खारवेलने मगध देश पर आक्रमण कर बृहस्पति के मदको मर्दन कर उसे इस प्रकारसे पराजित किया कि उसके पाससे सारा धन, जो वह कलिङ्ग देशमें डकैती करके लाया था, तथा पूर्व नंदराजा स्वर्णमय जिन मूर्त्ति जो कुमार गिरि तीर्थ से उठा लाया था, ले लिया । खारवेलने पूरा बदला ले लिया । खारवेल ने मगधसे वह धन और मूर्त्ति फिर जहाँ की तहाँ कलिङ्ग देशमें पहुँचा दी । अब मगध देश भी कलिङ्गदेश के अधिकार में आगया ।

उधर उज्जैन नगरी में महाराजा कुनाल का पुत्र सम्प्रति राज्य करने लगा । यह सम्प्रति राजा पूर्व भवमें एक भिक्षुक का जीव था । इस भिक्षुकने आचार्य श्री सुहस्तीसूरी के पास दीक्षा

ग्रहण की थी जिसका विस्तृत वर्णन पहिले लिखा जा चुका है। जब यह भिक्षुक जैनमुनि हो गया और रात्रि में अतिसार के रोगसे मर कर राजा कुनालके घर उत्पन्न हुआ यही सम्प्रति उज्जैन नगरी का राजा हुआ। उस समय आचार्य श्री सुहस्तीसूरी उज्जैन में भगवान महावीर स्वामी की रथयात्रा के महोत्सव पर आए थे। रथयात्रा की सवारी नगर के आम रास्तोंपर धूमधाम के निकल रही थी। आचार्य श्री के शिष्य भी इसी सवारी के साथ चल रहे थे।

पहुँचते पहुँचते सवारी राजमहलों के निकट पहुँची। झरोखे में बैठा हुआ सम्प्रति राजा टकटकी लगाकर आचार्यश्री की ओर निहारने लगा। न मालूम किस कारण से राजाका चित्त आचार्यश्री की ओर अधिक आकर्षित होने लगा। राजाने इस समस्या को हल करना चाहा। सोचते सोचते सहसा राजा को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। राजा को पिछले भव की सब बातें याद आई। राजाने सोचा एक दिन वह भी था कि मैं भिक्षुक होकर दाने दाने के लिये घर घर भटकता था। केवल पेट भरने के लिये ही मैंने इन आचार्यश्री के पास दीक्षा ली थी उस दीक्षा के ग्रहण करनेसे एक ही रात्रि में मेरा कल्याण हो गया। इसी दीक्षा के प्रज्जुवल प्रतापसे मैं इस कुल में राजा के घर उत्पन्न होकर आज राज-ऋद्धि भोग रहा हूँ। आज मैं सहस्त्रों दासों का स्वामी हूँ। यह सब आचार्य श्री ही का प्रताप है। इनकी कृपा बिना इतनी वि-

पुत्र सम्पत्ति का अधिकारी बनना मेरे लिये कठिन ही नहीं असम्भव भी था ।

इस विचार के आते ही राजा सम्प्रति झरोखेसे चल कर नीचे आया और आचार्यश्री के चरणकमलों को स्पर्श कर अपने आपको अहोभागी समझने लगा। उसने विधि पूर्वक वन्दना की और वह कहने लगा कि भगवन् मैं आपका एक शिष्य हूँ। आचार्यश्रीने श्रुतज्ञान के उपयोग से सब वृतान्त जान लिया। आचार्यश्री बोले, राजा तेरा कल्याण हो ! तू धर्मकार्य में निरत रह। धर्म ही से सब पदार्थ प्राप्त होते हैं। सम्प्रति राजा धर्मलाभ सुनकर निवेदन करने लगा कि आपही के अनुग्रहसे मैंने यह राज्य प्राप्त किया है अतएव यह राज्य अब आप स्वयं लेकर मुझे कृतार्थ कीजिये।

आचार्यश्रीने उत्तर दिया कि यह प्रताप मेरा नहीं किन्तु जैनधर्म का है। यह धर्म क्या रंक और क्या राजा सब का सदृश उपकार करता है। जिस धर्म के प्रभाव से आपने यह सम्पदा उपार्जित की है उसी धर्म की सेवा में यह व्यय करो। ऐसा करने से आप का भविष्य और भी अधिक उज्जवल होगा। हम तो निस्पृही जैन मुमुक्षु हैं। हमें इस राज्यऋद्धि से क्या सरोकार। यदि आप चाहें तो इसी राज्य की ऋद्धि के सद्व्यय से जैनधर्म का सारे विश्व में प्रचार कर सकते हैं। जैनधर्म के प्रसार से अनेक जीवों का कल्याण होना बहुत सम्भव है।

सूरीजी के उपदेश को मान हृदय में "यतो धर्मस्ततो जय" के सिद्धान्त के सार को ठान राजाने उसी समय रथयात्रा में सम्मिलित हो, यह उद्घोषणा करदी कि मेरे राज्य में आज से कोई व्यक्ति पशु एवं पक्षी का शिकार नहीं करे। माँस और मदिरा के भक्षक व पियक्कड़ मेरे राज्य में नहीं रहने पावेंगे। सम्प्रति नरेशने उसी दिन से लोक हितकारी परम पूनीत जैनधर्म का अवलम्बन ले रात दिन इसी के प्रचार का प्रबल प्रयत्न करने में संलग्न होने का निश्चय किया। जैन धर्मावलम्बी श्रावकों को हर प्रकार से सहायता देने की व्यवस्था की गई। जैन शास्त्रकारोंने तो यहाँ तक लिखा है कि सम्प्रति नृपने जैनधर्म का इतना प्रचार किया कि उसने सवाक्रोड पाषाण की प्रतिमाएं, ९५००० सर्व धात की प्रतिमाऐं तथा सवा लाख नये मन्दिर बनवाए। आपने इस के अतिरिक्त ६०००० पुराने मन्दिरों का जिर्णोद्धार कराया १७००० धर्मशालाऐं, एक लाख दानशालाऐं, अनेक कूए, तालाब, बाग और बगीचे, औषधालय और पथिकाश्रम बना कर प्रचुर द्रव्य का अनुकरणीय सदुपयोग किया। राजा सम्प्रतिने जो सिद्धाचलजी का विशाल संघ निकाला था उस में सोना चांदी के ५००० देहरासर, पन्ना माणिक आदि रत्नमणियों की अनेक प्रतिमाऐं तथा ५००० जैन मुनि थे। सब मिला कर उस संघ के ५ लाख यात्रि थे। उसने यह प्रतिज्ञा भी ले रक्खी थी कि नित्यप्रति कम से कम एक जिन मन्दिर बन कर सम्पूर्ण होने का समाचार सुन कर ही मैं भोजन किया करूंगा। इस से विदित

होता है कि सम्प्रति नरेश जैनधर्म के प्रचार में बहुत अधिक अभिरुचि रखता था ।

एक बार राजा सम्प्रतिने यह अभिलाषा श्री आचार्य सुहस्ती सूरी महाराज के पास प्रकट की कि मैं एक जैन सभा को एकत्रित करना चाहता हूँ । आचार्यश्रीने उत्तर दिया " जहा सुखम् " । राजा सम्प्रतिने इस सभा में दूर दूर से अनेक मुनिराजाओं को आमंत्रित किया । बड़े बड़े सेठ साहुकार भी पर्याप्त संख्या में निमंत्रित किये गये । सभा के अध्यक्ष सर्व सम्मति से आचार्य श्री सुहस्ती सूरीजी महाराज निर्वाचित हुए । सभा का जमघट खूब हुआ तथा सभापति के मुख से ज्ञान और विज्ञान के तत्वों से पूरित अभिभाषण सुनाया गया । इस भाषण में मुख्यतया तीन विषयों का विशद विवेचन किया गया था । १—महावीर स्वामी का शासन २—जैनधर्म की महत्ता ३—तात्कालीन समाज की धार्मिक प्रगति । सभासदों की ओर से राजा को धन्यवाद भी दिया गया ।

सभापति श्री सुहस्तिसूरीजीने एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव रक्खा कि यह सभा जिस उद्देश्य से एकत्रित हुई है उस को कार्यरूप में परिणित करने के लिये यह परमावश्यक समझती है कि जिस प्रकार मौर्यकुल मुकुटमणि सम्राट चन्द्रगुप्तने भारत से बाहिर विदेशों में जैनधर्म का प्रचार किया उसी तरह राजा सम्प्रति से भी आशा की जाती है कि विदेशों में जैनधर्म का प्रचार करने के हेतु उपदेशक भेज कर ऐसा वातावरण उत्पन्न करदे कि अनार्य

देश के निवासी साधुओं की ओर सहानुभूति प्रदर्शित करें तथा उन के आचार व्यवहार आदि में किसी भी प्रकार की बाधा न पहुँचाते हुए उपदेश सुनने की ओर अभिरुचि रक्खें। इस प्रकार से जैन मुनियों को विदेश में विहार करने का अवसर भी प्राप्त हो सकेगा।

यह प्रस्ताव जिस आशा से रक्खा गया था उसी तरह के उत्साह से सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ। राजा सम्प्रतिने भरी सभा में सब के समक्ष हाथ जोड़ कर यह प्रतिज्ञा की कि मैं उपास्थित चतुर्विध श्री संघ को विश्वास दिलाता हूँ कि मैं जैनधर्म के प्रचार के उद्योग में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रक्खूंगा तथा विदेश के प्रचार विभाग के लिये विशेष आर्थिक सहायता दूँगा। सभापति के भाषण का प्रभाव बहुत पड़ा और सारे जैन मुनि भी प्रचार के हित कमर कस कर तैयार होने का वचन देने लगे। इस प्रकार सभा अपने कार्य को सफलतापूर्वक सम्पादन कर " वीर भगवान की जय " की तुमूल ध्वनि से आकाश को गुँजाती हुई विसर्जित हुई।

इस सभा के पश्चात् राजा सम्प्रति सदा इसी विचार में व्यस्त रहता था कि जैनधर्म के प्रचारकों को प्रवास में भेजकर किस प्रकार शीघ्रातिशीघ्र प्रचार का कार्य किया जाय ? उस अनार्य क्षेत्र को मुनि विहार के योग्य करने के लिये उसने बहु संख्यक कार्यकर्त्ताओं को चारों दिशाओं में भेज दिया। इन बातों का उल्लेख पूर्वाचार्यों के रचित ग्रंथो में, जहाँ राजा सम्प्रति का जीवन

लिखा हुआ है, विस्तारपूर्वक उपलब्ध होता है। इन बातों का उल्लेख अनेक आचार्योंने भिन्न भिन्न ग्रंथो में ठौर ठौर किया है। उनमें से नीचे कुछ श्लोक उध्धृत कर पाठको कों मैं यह बताना चाहता हूँ कि राजा सम्प्रतिने अनार्य देशों में जैनधर्म को प्रसारित करने के क्या क्या उपाय किये ? आशा है पाठकगण इन श्लोकों का ध्यानपूर्वक पठन कर ऐतिहासिक बातों से पूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे।

प्रवर्तयामि साधूनां। सुविहार विधित्सया।
अन्धाद्यनार्यदेशेषु। यति वेषधारान् भटान् । १५८।

येन व्रत समाचारः। वासना वासितो जनः।
अनार्योप्यन्नदानादौ। साधूनां वर्तते सुखम् । १५९।

चिन्तयित्वेत्थमाकार्यानार्यानेवमभाषत।
भो यथा मद्भटायुष्मान् याचन्ते मामकं करम्। १६०।

तथा दद्यात तेऽप्यूचुः। कुर्म एवं ततोनृपः।
तुष्टस्तान् प्रेषयामास। स्वस्थानं स्वभटानपि। १६१।

सद्वतपस्वि समाचार। दक्षान् कृत्व यथाविधि।
प्राहिणोन्नृपतिस्तत्र। बहूंस्तद्वेषधारिणः । १६२।

ते च तत्र गतास्तेषां। वदन्त्येवं पुरःस्थिताः।
अस्माकमन्नपानादि। प्रदेयं विधिनामुना । १६३।

द्वि चत्वारि शता दोषैर्विशुद्धंयन्नवेषहि।
तथैव कल्पतेऽस्माकं वस्त्रपात्रादि किञ्चन । १६४।

आधाकर्मादयश्चामी । दोषा इत्थं भवन्ति भोः ।
तच्छुद्धमेव नः सर्वं । प्रदेय सर्वं देव हि । १६५ ।
न चातार्थे वयं भूयो भणिष्यामः किमप्यहो ।
स्वबुद्ध्यास्वत एवोचैर्यतध्वं स्वामि तुष्टये । १६६ ।
इत्यादिभिर्वचोभस्ते । तथा तैर्वासिताद्दृढम् ।
कालेन जज्ञिरेऽनार्यै। अप्यार्येभ्यो यथाधिकाः । १६७ ।
अन्येद्युश्च ततो राज्ञा । सूरयो भणितो यथा ।
साधवोऽन्ध्रादि देशेषु । किं न वो विहरन्त्यमी। १६८।
सूरिराह न ते साधु–समाचारं विजानते ।
राज्ञा चे दृश्यते तावत् । कीदृशी तत् प्रतिक्रिया।१६९।
ततो राजापरोधेन । सूरिभिः केऽपि साधवः ।
प्रेषिता तस्तेषु ते पूर्वं । वासनावासितत्त्वतः । १७० ।
साधूनामन्नपानादि । सर्वमेव यथोचितम् ।
नीत्या संपादयन्तिस्म । दर्शयन्तोऽति संभ्रमम् । १७१ ।
सूरीणामन्तिकेऽन्ये । द्युः साधव समुपागताः ।
उक्तवन्तो यथानार्य । नाममात्रेण केवलम् । १७२ ।
वस्त्रान्नपानदानादि । व्यवहारेण ते पुनः ।
आर्येभ्योऽभ्यधिका एव । प्रति भान्ति सदैव नः । १७३ ।
तस्मात् सम्प्रति राजेनाऽनार्यदेशा अपि प्रभोः ।
विहारे योग्यतां याता सर्वतोऽपितपस्विनाम् । १७४ ।

अत्वैवं साधु वचन । माचार्य सुहस्तिनः ।
भूयोऽपि प्रेषयामासुर । न्थान न्यॉस्तपस्विनः । १७५ ।
ततस्ते भद्रका जातः । साधूनां देशनाश्रुतेः ।
तत् प्रभृत्येव ते सर्वे । निशीथेऽपि यथोहितम् । १७६ ।
एवं सम्प्राति राजेन । यतिनां संप्रवर्तितः ।
विहारोऽनार्यदेशेषु । शासनोन्नतिमिच्छता । १७७ ।

" नवतत्वभाष्ये "

समणभउ भाविएसु तेसुं देसेसुएसणा इहिं ।
साहु सुहं विहारियां तेणते भद्या जाया।

(निशीथचूर्णि)

महाराजा सम्प्रतिने सुयोग्य पुरुषों को चुनकर उन्हें साधुओं के आचार और व्यवहार से परिचित किये । जब वे पूरी तरहसे जैन मुनि के कर्त्तव्य कर्म्मों को सीख गये तो राजाने उन्हें मुनियों का वेष भी पहिनवा दिया । इस तरह से अनार्य देश को मुनि-विहार के योग्य बनाने के हित ही इन नकली साधुओं को सम्प्रति नरेशने अनार्यदेश में भेज दिये । साथ कुछ योद्धाओं को भी भेज दिया ताकि वे आवश्यक्ता पड़ने पर सहायता पहुँचा सकें । मुनिवेषधारी पुरुषोंने आकर अनार्यदेश में जैन तत्वों का उपदेश दिया । उन्होंने लोगों को जैन मुनियों के आचार और व्यवहार की बातों का विशेष विवेचनसहित उपदेश दिया । इस प्रकार से प्रयत्न करने पर जैन मुनियों के मार्ग में आनेवाली अनेक बाधाएँ दूर होती रहीं ।

जब जैन मुनियों के विहार करने के योग्य अनार्यदेश हो गया तो सम्प्रति नरेशने आचार्य सुहस्ति सूरि और मुनियों से विनती की कि अब आप उस क्षेत्र में पधार कर अनार्यदेश के लोगों में जैन धर्म का प्रचार कीजिये। आचार्यश्री की आज्ञासे जैन साधुओं के झुंड के झुंड अनार्यदेश में जाने लगे। मुनि लोगों की अभिलाषा कई दिनों से पूर्ण हुई। वे बड़े जोरों से आगे इस प्रकार बढ़े कि जिस प्रकार एक व्यापारी अपने लाभ के लिये उत्सुकतापूर्वक दुखों की परवाह न करता हुआ बढ़ता है। कुछ मुनि अनार्यदेश से लौटकर आते थे और आचार्यश्री को वहाँ की सब बातें सुनाया करते थे। आए हुए साधुओंने कहा कि हे प्रभो! अनार्यदेश के लोग यहाँ के लोगों से भी अधिक श्रद्धा तथा भक्ति प्रकट करते हैं।

इस प्रयत्न से इतनी सफलता मिली कि अर्बिस्तान, अफगानिस्तान, तुर्कीस्तान, ईरान, युनान, मिश्र, तिब्बत, चीन, ब्रह्मा, आसाम, लङ्का, आफ्रिका और अमेरिका तक के प्रदेशों में जैन धर्म का प्रचार हो गया। उस समय जगह जगह पर कई मन्दिर निर्माण कराए गये। उस समय तक म० ईसा व महमूद पेगम्बर का तो जन्म तक भी नहीं हुआ था। क्या आर्य और क्या अनार्य सब लोग मूर्त्ति का पूजन किया करते थे। कारण यह था कि वेदान्तियों में भी मूर्त्ति पूजा का विधान था, महात्मा बुद्ध की विशेष मूर्त्तियों सम्राट् अशोक से स्थापित हुई। जैनी तो अनादि से मूर्त्ति पूजा करते आए हैं। अतएव सारा संसार मूर्त्ति

पूजक था। यूरोप में तो विक्रम की चौदहवीं शताब्दि में भी मूर्त्तिपूजा विद्यमान थी। आष्ट्रेलिया और अमेरिका में तो भूमि के खोदने पर अब भी कई मूर्त्तियों निकल रही हैं। वे निकली हुई सब मूर्त्तियों जैनों की हैं। मक्का में भी एक जैन मन्दिर विद्यमान था। पेगम्बर महमूद के जन्म के पश्चात् वे मूर्त्तियों मधुआ शेहर (मधुमति) में पहुँचाई गई थीं। इस से सिद्ध होता है कि सम्प्रति नरेशने अवश्य अनार्य देशों में जैन धर्म का प्रचुर प्रचार किया होगा। उसने जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा भी करवाई थी। राजा सम्प्रति के राज्य काल में जैन धर्म का प्रचार आर्य और अनार्य दोनों देशों में था।

उस समय सब जैनी मिलाकर चालीस क्रोड़ की संख्या में थे। क्यों न हों? जब शिशुनागवंशी नन्दवंशी और मौर्य चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और महाराजा सम्प्रति जैसे प्रतापशाली नृपतिगण जैन धर्म के प्रचार के हेतु कटिबद्ध थे। ऐसी दशा में चालीस क्रोड़ जैनों का होना किसी भी प्रकार से आश्चर्यजनक नहीं है। अर्वाचीन समय के इतिहासकार भी हमारी उस बात की पुष्टि करते हैं कि किसी समय जैनियों की संख्या चालीस क्रोड़ के लगभग थी। यथा—

" भारत में पहिले ४००००००००० जैन थे। इसी मत से निकलकर लोग अन्य मतों में प्रविष्ट होने लगे। इसी कारण से इनकी संख्या घट गई है। यह धर्म अतिप्राचीन है। इस धर्म के नियम सब उत्तम हैं जिनसे देश को असीम लाभ पहुँचा है। "

—बाबू कृष्णलाल बनर्जी।

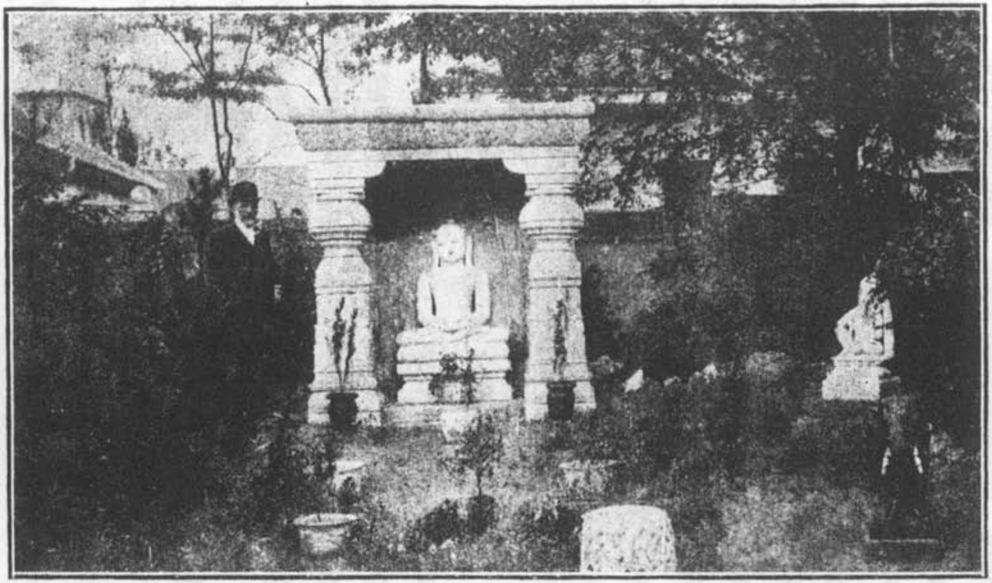

अष्ट्रियाके अन्तर्गत हंगरी प्रान्त के बुदापेस्त शहरमें एक अंग्रेज के बगेचेमें खोदकाम
करते समय प्राप्तहुई प्राचीन महावीर प्रभुकी मूर्ति ।

मौर्य मुकुटमणि त्रिखण्डभुक्ता महाराजा सम्प्रतिने जैन धर्म की बहुत उन्नति की। जैन इतिहासकारोंने इन्हें अनार्यदेश तक में जैन धर्म प्रचार करनेवाले अन्तिम राजर्षि की योग्य एवं उचित उपाधि दी है। सम्प्रति नरेश का इतिहास सुवर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। आप की धवल कीर्ति आज भी विश्वभर में व्यापक है। आप का नाम जैन साहित्य में सदा के लिये अमर है। जैन राजाओं में आप का आसन सर्वोच्च माना जाता है। सम्प्रति राजाने जो उपकार जैन समाजपर किया है वह भूला नहीं जा सकता। अन्त में राजा सम्प्रतिने पञ्चपरमेष्ठि नमस्कार महामंत्र का आराधन करते हुए समाधी मरण को प्राप्त किया।

सम्प्रति के देहान्त होनेपर उज्जैन की गद्दीपर बलमित्र और भानुमित्र आरोहित हुए। ये दोनों व्यक्ति सम्राट अशोक के सुपुत्र बृहद्रथ के चतुर मंत्री थे। यह उज्जैन ही के निवासी तथा जैन धर्मोपासक थे। राजा सम्प्रति के कोई पुत्र नहीं था अतएव जैनधर्म के श्रद्धालु और परम भक्त बलमित्र और भानुमित्र को जैन धर्म प्रचारक होने के कारण राज्य सिंहासन प्राप्त हुआ। वे युगल वीर राज्य प्रबंध करने में बड़े चतुर थे। इन्होंने राजा सम्प्रति के फैलाए हुए धर्म को उसी प्रकार रखने की खूब कोशिश की। इन्होंने अपनी प्रबल युक्तियों से बढ़ते हुए बौद्धधर्म को बढ़ने न दिया तथा जैनधर्म को खूब प्रकाशित किया।

बलमित्र और भानुमित्र के पश्चात् उज्जैन की गद्दीपर नभ-

वाहन नामक राजा बैठा। इसने भी जैनधर्म के प्रचार करनेमें अटूट परिश्रम किया। इसने जो मन्दिर बनवाए तथा श्री सिद्धाचलजी का बृहद् संघ निकाला उसका वर्णन जैनग्रंथो में विस्तार पूर्वक पाया जाता है। इसने भी जैन समाज को एक जगह एकत्रित करने के हेतुसे जैन सभा का विराट् आयोजन किया था। जैनधर्म के प्रचार के हेतु इसने कई संस्थाएं स्थापित की। इन संस्थाओं में स्वयंसेवक तथा वैतनिक कार्य कर्त्ताओंद्वारा जैनधर्म प्रचारका बहुत काम कराया गया। इस नरेशने खास उज्जैन नगरी में एक विशाल मन्दिर श्री ऋषभदेवस्वामी का बनवाया। इस भव्य भवन का नाम इसने नभप्रासाद रखा। इस तरह इसके द्वारा भी जैनधर्म का खूब प्रचार हुआ। शेष आगेके प्रकरणों में।

कलिङ्ग देशका इतिहास।

मगधदेश का निकटवर्ती प्रदेश कलिङ्ग भी जैनों का एक बड़ा केन्द्र था। इस देश का इतिहास बहुत प्राचीन है। भगवान आदि तिर्थंकर श्री ऋषभ-देव स्वामीने अपने १०० पुत्रों को जब अपना राज्य बाँटा था तो कलिङ्ग नामक एक पुत्र के हिस्से में यह प्रदेश आया था; उसके नाम के पीछे यह प्रदेश भी कलिङ्ग कहलाने लगा। चिरकाल तक इस प्रदेश का यही नाम चलता रहा। वेद, स्मृति, महाभारत, रामायण और पुराणों में भी इस देश का जहाँ तहाँ कलिङ्ग नाम से ही उल्लेख हुआ है। भगवान महावीर स्वामी के शासन तक इस का नाम कलिंग कहा जाता था। श्री पन्नवणा सूत्र में जहाँ साढ़े पचीस आर्य क्षेत्रों का उल्लेख है उन में से एक का नाम कलिङ्ग लिखा हुआ है। यथा—

" रायगिह मगह चंपा अंगा, तहतामलिति बंगाय।
कंचणपुरं कलिंगा बणारसी चेव कासीय। "

उस समय कलिंग की राजधानी कांचनपुर थी। इस देश पर कई राजाओं का अधिकार रहा है। तथा कई महर्षियोंने इस पवित्र भूमि पर विहार किया है तेवीसवें तिर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ प्रभुने भी अपने चरणकमलों से इस प्रदेश को पावन किया था।

तत् पश्चात् आप की शिष्य समुदाय का इस प्रान्त में विशेष विचरण हुआ था। महावीर प्रभुने भी इस प्रान्त को पधार कर पवित्र किया था। इस प्रान्त में कुमारगिरि (उदयगिरि) तथा कुमारी (खण्डगिरि) नामक दो पहाड़ियों है जिनपर कई जैन-मंदिर तथा श्रमण समाज के लिये कन्दाराऐं हैं इस कारण से यह देश जैनियों का परम पवित्र तीर्थ रहा है।

कलिंग, अंग, बंग और मगध में ये दोनों पहाड़ियों शत्रुंजय अवतार नाम से भी प्रसिद्ध थीं। अतएव इस तीर्थपर दूर दूर से कई संघ यात्रा करने के हित आया करते थे। ब्राह्मणोंने अपने ग्रंथों में कलिङ्ग वासियों को 'वेदधर्म विनाशक' बताया है। इस से मालूम होता है कि कलिंग निवासी सब एक ही धर्म के उपासक थे। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि वे सब के सब जैनी थे। ब्राह्मण लोग कहीं कहीं अपने ग्रंथों में बोद्धों को भी 'वेदधर्म विनाशक' की उपाधि से उल्लेख करते थे पर कलिंग में पहिले बोद्धों का नाम निशानतक नहीं था। महाराजा अशोकने कलिङ्ग देशपर ई. सं. २६२ पूर्व में आक्रमण किया था उसी के बाद कलिङ्ग देश में बोद्धों का प्रवेश हुआ था। इस के प्रथम ही ब्राह्मणोंने अपने आदित्य पुराण में यहाँ तक लिख दिया कि कलिङ्ग देश अनार्य लोगों के रहने की भूमि है। जो ब्राह्मण कलिङ्ग में प्रवेश करेगा वह पतित समझा जावेगा। यथा—

" गत्वैतान् काम तो देशात् कलिङ्गाश्च पतेत् द्विजः। "

यह भी बहुत सम्भव है कि शायद ब्राह्मणोंने " कलिङ्ग देश में पहुँच कर जैनधर्म स्वीकार कर लिया हो। इसी हेतु उन्होंने कलिङ्ग के प्रवेश का भी निषेध किया।

एक बार तो उस समय जैनों का पूरा साम्राज्य कलिङ्ग देश में हो गया पर आज वहाँ जैनियों का नाम निशान तक नहीं। इस का कारण सिवाय काल की कुटिलता के और क्या हो सकता है। तथापि दूरदर्शी जैनियोंने अपने धर्म के स्मृति के हित चिह्नरूप से कलिङ्ग देश में कुछ न कुछ तो कार्य अवश्य किया। वे सर्वथा वंचित नहीं रहे। इतिहास साफ साफ बताता है कि विक्रम की बाहरवीं शताब्दि तक तो कलिङ्ग देश में जैनियों की पूर्ण जाहोजलाली थी। इतना ही नहीं विक्रम की सोलहवीं शताब्दि में सूर्यवंशी महाराजा प्रतापरुद्र वहाँ का जैनी राजा था। उस समय तक तो जैनधर्म का अभ्युदय कलिङ्ग देश में हो रहा था। पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सर्वथा जैनधर्म यकायक कलिङ्ग में से कैसे चला गया। इस पर विद्वानों का मत है कि जैनों पर किसी विधर्मी राजा की निर्दयता से ऐसे अत्याचार हुए कि उन्हें कलिङ्ग देश का परित्यागन करना पड़ा। यदि इस प्रकार की कोई आपत्ति नहीं आती तो कदापि जैनी इस देश को नहीं छोड़ते।

केवल इसी देश में अत्याचार हुआ हो ऐसी बात नहीं है, विक्रम की आठवीं नौवी शताब्दि में महाराष्ट्र में भी जैनों को इसी

प्रकार की मुसीबत से सामना करना पड़ा क्योंकि विधर्म्मी नरेशों से जैनियों की उन्नति देखी नहीं जाती थी। वे तो जैनियों को दुःख पहुँचाना अपना धर्म समझते थे। कई जैन साधु शूली पर भी लटकादिये गये थे। वे जीते जी कोल्हू में पेरे गये। उन्हें जमीन में आधा गाड कर काग और कुत्तों से नुचवाया गया इसके कई प्रमाण भी उपस्थित हैं। "हालस्य महात्म्य" नामक ग्रंथ में, जो तामिली भाषा में है, उसके ६८ वें प्रकरण में इन अत्याचारों का रोमांचकारी विस्तृत वर्णन मौजूद है किन्तु जैनियों ने अपने राजत्व में किसी विधर्मी को नहीं सताया था यही जैनियों की विशेषता है। यह कम गौरव की बात नहीं है कि जैनी अपने शत्रु से बदला लेने का विचारतक नहीं करते थे। यदि जैनियों की नीति कुटिल होती तो क्या वे चन्द्रगुप्त मौर्य या सम्प्रति नरेश के राज्य में विधर्मियों को सताने से चूकते, कदापि नहीं। पर नहीं जैनी, किसी को सताना तो दूर रहा, दूसरे जीव के प्रति कभी असद् विचार तक नहीं करते।

जैन शास्त्रकारों का यह खास मन्तव्य है कि अपने प्रकाश द्वारा दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करना तथा सदुपदेश द्वारा भूले भटकों तथा भटकों को राह बताना चाहिये। सबके प्रति मैत्रिभाव रखना यह जैनियों का साधारण आचार है। जो थोड़ा भी जैनधर्म से परिचित होगा उपरोक्त बात का अवश्यमेव समर्थन करेगा। परन्तु विधर्म्मियों ने अपनी सत्ता के मद में जैनियों पर ऐसे ऐसे कष्टप्रद अत्याचार किये कि जिनका वर्णन याद आते ही

रोमाँच खड़े हो जाते हैं तथा हृदय थर थर काँपने लगता है। जिस मात्रा में जैनियों में दया का संचार था विधर्मी उसी मात्रा में निर्दयता का बर्ताव कर जैनियों को इस दया के लिये चिढ़ाते थे। पर जैनी इस भयावनी अवस्था में भी अपने न्यायपथसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। यही कारण है कि आजतक जैनी अपने पैरों पर खड़े हुए हैं और न्याय पथपर पूर्ण रूपसे आरूढ़ हैं। धर्म का प्रेम जैनियों की रगरग में रमा हुआ है जैनों के स्याद्वाद सिद्धान्तों का आज भी सारा संसार लोहा मानता है। स्याद्वाद के प्रचंड अस्त्रके सामने मिथ्यात्वियों का कुतर्क टिक नहीं सकता। स्याद्वाद की नीतिद्वारा आज जैनी सब विधर्म्मियोंका मुँह बंध कर सकने में समर्थ हैं। कलिङ्ग देशमें जैनियों का नाम निशानतक जो आज नहीं मिलता है इसका वास्तविक कारण यही है कि विधर्म्मियोंने जैनियों को दुःख दे दे कर वहाँसे तिरोहित किया। आधुनिक विद्वद्मंडली भी यही बात कहती है।

आज इस वैज्ञानिक युगमें प्रत्यक्ष बातों का ही प्रभाव अधिक पड़ता है। पुरातत्व की खोज और अनुसंधान से ऐतिहासिक सामग्री इतनी उपलब्ध हुई है कि जो हमारे संदेह को मिटाने के लिये पर्याप्त है। जिन प्रतापशाली महापुरुषों के नाम निशान भी हमें ज्ञात नहीं थे, उन्हीं का जीवन वृतान्त आज शिलालेखों, ताम्रपत्रों और सिक्कों में पाया जाता है। उस समय की राजनैतिक दशा, सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक प्रवृति का प्रमाणिक उल्लेख यत्र तत्र खोजों से मिला है। इन खोजोंद्वारा जितनी

सामग्री प्राप्त हुई है उन में महाराजा खारवेलका खुदा हुआ शिलालेख बहुत ही महत्व की वस्तु है।

खारवेल का यह महत्वपूर्ण शिलालेख खण्डगिरि उदयगिरि पहाड़ी की हस्ती गुफासे मिला है। इस लेख को सब से प्रथम पादरी स्टर्लिङ्ग ने ई. सन १८२० में देखा था। पर पादरी साहब उस लेख को साफ तौरसे नहीं पढ़ सके। इस के कई कारण थे। प्रथम तो वह लेख २००० वर्ष से भी अधिक पुराना होने के कारण जर्जर अवस्था में था। यह शिलालेख इतने वर्षोंतक सुरक्षित न रहने के कारण घिस भी गया था। कई अक्षर मिटने लग गये थे और कई अक्षर तो बिलकुल नष्ट भी हो चुके थे। इस पर भी लेख पालीभाषा से मिलता हुआ शास्त्रों की शैली से लिखा हुआ था। इस कारण पादरी साहब लेखका सार नहीं समझ सके। तथापि पादरी साहब भारतियों की तरह हताश नहीं हुए। वे इस लेखके पीछे चित्त लगाकर पड़ गये। उन्होंने इस शिलालेख के सम्बन्ध में अंगरेजी पत्रों में खासी चर्चा प्रारम्भ करदी। सारे पुरातत्वियों का ध्यान इस शिलालेख की ओर सहज ही में आकर्षित हो गया।

इस शिलालेख के विषय में कई तरह का पत्रव्यवहार पुरातत्वज्ञों के आपस में चला। अन्त में इस लेख को देखने की इच्छा से सबने मिलकर एक तिथि निश्चित की। उस तिथि पर इस शिलालेख को पढ़ने के लिये सैंकड़ों यूरोपियन एकत्रित हुए। कई तरह

से प्रयत्न कर के उन्होंने उसका मतलब जानना चाहा पर वे अन्त में असफल हुए। इतने पर भी उन्होंने प्रयत्न जारी रक्खा। इस शिलालेख के कई फोटू लिये गये। कागज लगा लगा कर कई चित्र लिये गये। यह शिलालेख चित्र के रूप में समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुआ। इस शिलालेख पर कई पुस्तकें निकलीं। इस प्रयत्न में विशेष भाग निम्न लिखित यूरोपियनोंने लिया डॉ. टामस, मेजर कीट्ट, जनरल कनिंग हाम, प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सटेंट, डॉ. स्मिथ, बिहार गवर्नर सर एडवर्ड आदि आदि।

जब इसका पूरा पता नहीं चला तो इस खोज के आन्दोलन को भारत सरकारने अपने हाथ में ले लिया। यह शिलालेख यहाँ से इङ्गलेण्ड भेजा गया। वहाँ के वैज्ञानिकोंने उसकी विचित्र तरह से फोटू ली। भारतीय पुरातत्त्वज्ञ भी नींद नहीं ले रहे थे। इन्होंने भी कम प्रयत्न नहीं किया। महाशय जायसवाल, मिस्टर राखलदास बनर्जी, श्रीयुत भगवानदास इन्दर्जी और अन्त में सफलता प्राप्त करनेवाले श्रीमान केशवलाल हर्षदराय ध्रुव थे। श्री० केशवलालने अविरल प्रयत्न से इस लेख का पता बताया। तबसे सन १९१७ अर्थात् सौवर्ष के प्रयत्न से अन्त में यह निश्चित हुआ कि यह शिलालेख कलिंगाधिपति महामेघवहान चक्रवर्ती जैन सम्राट महाराजा खारवेल का है।

सचमुच बडे शोक की बात है कि जिस धर्म से यह शिला-लेख सम्बन्ध रखता है, जिस धर्म की महत्ता को बतानेवाला यह

लेख है, जिस धर्म के गौरव के प्रदर्शन करनेवाला यह शिलालेख है उस जैन धर्मवालोंने आज तक कुछ भी नहीं किया। जिस महत्व पूर्ण विषय की ओर ध्यान देने की अत्यंत आवश्यक्ता थी वह विषय उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया। क्या वास्तव में जैनियोंने इस विषय की ओर आंख उठाकर देखा तक नहीं ? क्या कृतज्ञता प्रकट करना वे भूल ही गये ? जहाँ चन्द्रगुप्त और सम्प्रति राजा के लिये जैन ग्रंथकारोंने पोथे के पोथे लिख डाले वहाँ क्या श्वेताम्बर और क्या दिगम्बर किसी भी आचार्यने इस नरेश के चारित्र की ओर प्राय: कलम तक नहीं उठाई कि जिसके आधार से आज हम जनता के सामने खारवेल का कुछ वर्णन रख सकें। क्या यह बात कम लज्जास्पद है ?

उधर आज जैनेतर देशी और विदेशी पुरातत्वज्ञ तथा इतिहास प्रेमियोंने साहित्य संसार में प्रस्तुत लेख के सम्बन्ध में धूम मचादी है। उन्होंने इसके लिये हजारों रुपैयों को खर्चा। अनेक तरह से परिश्रम कर पता लगाया। पर जैनी इतने बेपरवाह निकले कि उन्हें इस बात का भान तक नहीं। आज अधिकाँश जैनी ऐसे हैं जिन्होंने कान से खारवेल का नाम तक नहीं सुना है। कई अज्ञानी तो यहाँ तक कह गुजरते हैं कि गई गुजरी बातों के लिये इतनी सरपच्ची तथा मगजमारी करना व्यर्थ है। बलिहारी इनकी बुद्धि की। वे कहते हैं इस लेख से जैनियों को मुक्ति थोड़े ही मिल जायगी। इसे सुनें तो क्या और पढ़े तो क्या ? और न पढे तो क्या होना हवाना ! अर्वाचीन समय में हमें अपने धर्म का कितना गौरव रह गया है इस बात की जांच ऐसी लचर दलीलों से अपने आप हो जाती है। जिस

धर्म का इतिहास नहीं उस धर्म में ज्ञान नहीं। क्या यह मर्म कभी भूला जा सकता है ? कदापि नहीं।

सज्जनों ! सत्य जानिये। महाराज खारवेल का लेख जो अति प्राचीन है तथा प्रत्यक्ष प्रमाण भूत है जैन धर्म के सिद्धान्तों को पुष्ट करता है। यह जैन धर्म पर अपूर्व प्रभाव डालता है। यह लेख भारत के इतिहास के लिये भी प्रचुर प्रमाण देता है। कई बार लोग यह आक्षेप किया करते हैं कि जिस प्रकार बौद्ध और वेदान्त मत राजाओं से सहायता प्राप्त करता था तथा अपनाया जाता था उसी प्रकार जैन धर्म किसी राजा की सहायता नहीं पाता था न यह अपनाया जाता था या जैन धर्म सारे राष्ट्र का धर्म नहीं था, उनको इस शिलालेख से पूरा उत्तर प्रत्यक्षरूप से मिल जाता है और उन के बोलने का अवसर नहीं प्राप्त हो सकता।

भगवान महावीर के अहिंसा धर्म के प्रचारकों में शिलालेख सब से प्रथम खारवेल का ही नाम उपस्थित करते हैं। महाराजा खारवेल कट्टर जैनी था। उसने जैन धर्म का प्रचुरता से प्रचार किया। इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि आप चैत्रवंशी थे। आपके पूर्वजों को महामेघवहान की उपाधि मिली हुई थी। आपके पिता का नाम वुद्धराज तथा पितामह का नाम खेमराज था। महाराजा खारवेल का जन्म १९७ ई. पूर्व सनमें हुआ। पंद्रह वर्ष तक आपने बालवय आनंदपूर्वक बिताते हुए आवश्यक विद्याध्ययन भी कर लिया तथा नौ वर्ष तक युवराज रह कर राज का प्रबंध आपने किया था।

इस प्रकार २४ वर्षकी आयु में आपका राज्याभिषेक हुआ। १३ वर्ष पर्यन्त आपने कलिंगाधिपति रह कर सुचारु रूप से शासन किया। अन्तमें अपने राज्य कालमें दक्षिण से लेकर उत्तर लौं राज्य का विस्तार कर आपने सम्राट् की उपाधि भी प्राप्त की थी आपने अपना जीवन धार्मिक कार्य करते हुए बिताया। अन्त में आपने समाधि मरण द्वारा उच्च गति प्राप्त की। ऐसा शिलालेख से मालूम होता है।

यह शिलालेख कालिंग देश, जिसे अब सब उड़ीसा कह कर पुकारते हैं, के खण्डगिरि (कुमार पर्वत) की हस्ती नाम्नी गुफा से मिला था। यह शिला लेख १५ फुट के लगभग लम्बा तथा ५ फीट से अधिक चौड़ा है।

यह शिलालेख १७ पंक्ति में लिखा हुआ है। इस शिलालेख की भाषा पाली भाषा से मिलती है। यह शिलालेख कई व्यक्तियों के हाथ से खुदवाया हुआ है। पूरे सौ वर्ष के परिश्रम के पश्चात् इस का समय समय पर संशोधन भी किया है। अन्तिम संशोधन पुरातत्त्वज्ञ पं. सुखलालजीने किया है। पाठकों के अवलोकनार्थ हम उस लेख की नकल यहाँ पर दे के साथ में उन का हिन्दी अनुवाद भी सरल भाषा में पंक्ति वार दे देते हैं आशा है कि इसे मननपूर्वक पढ़ कर अपने धर्म के गौरव को भली भाँति से समझेंगे।

कलिङ्गाधिपति महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल के प्राचीन शिलालेख की

" नकल "

(श्रीमान् पं. सुखलालजी द्वारा संशोधित)

विशेष ज्ञातव्य—असल लेख में जिन मुख्य शब्दों के लिये पहले स्थान छोड़ दिया गया था, उन शब्दों को यहाँ बड़े टाइप में छपवाया है। विराम चिह्नों के लिये भी स्थान रिक्त हैं। वह खड़ी पाई से बतलाए गये हैं। गले हुए अक्षर कोष्ट बद्ध हैं। और उड़े हुए अक्षरों की जगह बिन्दियों से भरी गई है।

[प्राकृत का मूल पाठ]

(पंक्ति १ ली)—नमो अराहंतानं [।] नमो सवसिधानं [।] ऐरेन महाराजेन माहामेघवाहनेन चेतिराज वसवधनेन पसथ-सुभलखनेन चतुरंतलुठितगुनोपहितेन कलिंगाधिपतिना **सिरि खारवेलेन** १

संस्कृतच्छाया।

१ नमोऽर्हद्भ्यः [।] नमः सर्वसिद्धेभ्यः [।] **ऐलेन** महाराजेन **महामेघवाहनेन चेदिराज** वंशवर्धनेन प्रशस्तशुभलक्षणेन चतुरन्त-लुठितगुणोपहितेन कलिङ्गाधिपतिना **श्री खारवेलेन**

(पंक्ति २ री)–पंदरसवसानि सिरि–कडार–सरीरवता कीडिता कुमारकीडिका [।] ततो लेखरूपगणना–ववहार–विधि–विसारदेन सवविजावदातेन नववसानि योवरजं पसासितं [।] संपुण–चतु–वीसति–वसो तदानि वधमान–सेसयो वेनाभिविजयो ततिये २.

(पंक्ति ३ री)–कलिंगराजवंस–पुरिसयुगे माहारजाभिसेचनं पापुनाति [।] अभिसितमतो च पधमे वसे वात–विहत–गोपुर–पाकार–निवेसनं पटिसंखारयति [।] कलिंगनगरि [ि] खबीर–इसि–ताल–तडाग–पाडि यो च बंधापयति [।] सवुयान-पटिसंठपनं च ३.

(पंक्ति ४ थी)–कारयति [॥] पनतीसाहि सतसहसेहि पकतियो च रंजयति [।] दुतिये च वसे अचितयिता सातकंणि

२ पञ्चदशवर्षाणि श्रीकडारशरीरवता क्रीडिताः कुमारक्रीडाः [।] ततो लेख्यरूपगणनाव्यवहारविधि विशारदेन सर्वविद्यावदातेन नववर्षाणि यौवराज्यं प्रशासितम् [।] सम्पूर्ण चतुर्विंशतिवर्षस्तदानीं वर्धमानशैशवो वेनाभिविजयस्तृतीये

३ कलिङ्गराजवंश–पुरुष–युगे महाराज्याभिषेचनं प्राप्नोति [।] अभिषिक्तमात्रश्च प्रथमे वर्षे वातविहतं गोपुर–प्राकार–निवेशनं प्रतिसंस्कारयति [।] कलिङ्गनगर्याम् खिबीरर्षि* तल्ल–तडाग–पालिश्च बन्धयति [।] सर्वोद्यानप्रतिसंस्थापनञ्च

४ कारयति [॥] पञ्चत्रिंशद्भिः शतसहस्रैः× प्रकृतीश्च रञ्जयति [।] द्वितीये च

* ऋषि–खिबीरस्य तल्ल–तडागस्य

× पञ्चत्रिंशच्छत–सहस्रैः प्रकृतीः परिच्छिद्य परिगणय्य इत्येतदर्थे तृतीया ।

पछिमदिसं हय–गज–नर–रध–बहुलं दंडं पठापयति [।] कन्हवेंनां गताय च सेनाय वितासितं मुसिकनगरं [।] ततिये पुन वसे ४.

(पंक्ति ५ वी)–गंधव–वेदबुधो दंप–नत–गीतवादित संदसनाहि उसव–समाज कारापनाहि च कीडापयति नगरिं [।] तथा चवुथे वसे विजाधराधिवासं अहत–पुवं कालिंग पुवराज–निवेसितं........वितध–मकुटसबिलमढिते च निखित–छत– ५.

(पंक्ति ६ ठी)–भिंगारे हित–रतन–सापतेये सवरठिक भोजके पादे वंदापयति [।] पंचमे च दानी वसे नंदराज–ति–वस–सत–ओघाटितं तनसुलिय–वाटा पनाडिं नगरं पवेस [य] ति [।] सो........भिसितो च राजसुय [ं] संदसा–यंतो सव–कर–वणं ६.

वर्षे अचिन्तयित्वा शातकर्णिं पश्चिमदेश× हय–गज–नर–रथ–बहुलं दण्डं प्रस्थापयति [।] कृष्णवेणां गतया च सेनया वित्रासितं मूषिकनगरम् [।] तृतीये पुनर्वर्षे

५ गान्धर्ववेदबुधो दम्प*–नृत्त–गीतवादित्र–सन्दर्शनैरुत्सव–समाज–कारणैश्च क्रीड-यति नगरीम् [।] तथा चतुर्थे वर्षे विद्याधराधिवासम् अहतपूर्वं कालिङ्ग–पूर्वराजनिवेशितं ....वितथ–मकुटान् सार्धितबिल्मांश्च निक्षिप्त–छत्र–

६ भृङ्गारान् हृत–रत्न–स्वापतेयान् सर्वराष्ट्रिक भोजकान् पादावभिवादयते [।] पञ्चमे चेदानीं वर्षे नन्दराजस्य त्रि–शत–वर्षे अवघट्टितां तनसुलियवाटात् प्रणालीं नगरं प्रवेशयति [।] सो (ऽपि च वर्षे षष्ठे) ऽभिषिक्तश्च, राजसूयं सन्दर्शयन सव–कर–पणम्

× दिक्शब्दः पालीप्राकृते विदेशार्थोऽपि ।

* दम्प=डफ इति भाषायाम् ?

(पंक्ति ७ वीं[७])--अनुगह-अनेकानि सतसहसानि विसजति पोरं जानपदं [।] सतमं च वसं पसासतो वजि-रघरव [ ] ति-धुसित-घरिनीस [-मतुकपद]-पुंना [ति ? कुमार]....... ....[।] अठमे च वसे महता+ सेना........-गोरधगिरिं ७.

(पंक्ति ८ वीं[८])-घातापयिता राजगहं उपपीडापयति [।] एतिनं च कंमापदान-संनादेन संवित-सेन-वाहनो विपमुंचितु मधुरं अपयातो यवनराज डिमित.................. [मो ?] यछति [वि]........पलव.. ८.

(पंक्ति ९ वीं[९])-कपरुखे हय-गज-रथ-सह-यंते सवघरा-वास-परिवसने स-अगिणठिया [।] सव-गहनं च कारयितुं बम्हणानं जातिं परिहारं ददाति [।] अरहतो...........व....न ....गिय ९.

---

७ अनुग्रहाननेकान् शतसहस्रं विसृजति पौराय जानपदाय [।] सप्तमं च वर्षं प्रशासतो वज्रगृहवती घुषिता गृहिणी [सन्-मातृकपदं प्राप्नोति ?] [कुमारं]......... [।] अष्टमे च वर्षे महता× सेना......गोरथ गिरिं

८ घातयित्वा राजगृहमुपपीडयति [।] एतेषां च कर्मावदान-संनादेन संवीत-सैन्य-वाहनो विप्रमोक्तुं मथुरामपयातो यवनराजः डिमित............[मो ?] × यच्छति [वि] ....पल्लव...

९ कल्पवृक्षान् हयगजरथान् सयन्तृन् सर्वगृहावास-परिवसनानि साग्निष्ठिकानि [।] सर्वग्रहणं च कारयितुं ब्राह्मणानां जातिं परिहारं ददाति [।] अर्हतः.........व....... न...गिया [?]

× महता=महात्मा ? सेनाग्रः सप्तमवर्षस्य-पदस्य विशेषणं वा ।

+ नवमे वर्षे इत्येतस्य मूलपाठो नष्टोऽस्तार्हताक्षरेषु ।

(पंक्ति १० वीं)....[क] . f . मान [ति]* रा [ज]–संनिवासं महाविजयं पासादं कारयति अठतिसाय सतसहसेहि [।] दसमे च वसे दंड–संधी–साम–मयो भरध–वस–पठानं महि–जयनं...ति कारापयति..........[निरितय] उयातानं च मनिरतना [नि] उपलभते [।] १०.

(पंक्ति ११ वीं)...........मंडं च अवराजनिवेसितं पीथुड–गदभ–नंगलेन कासयति [f] जनस दंभावनं च तेरस–वस–सतिक [ं]–तु भिदति तमरदेह–संघातं [।] बारसमे च वसे...हस ...के. ज. सवसेहि वितासयति उतरापथ–राजानो....

(पंक्ति १२ वीं)...........मगधानं च विपुलं भयं जनेतो हथी सुगंगीय [ं] पाययति [।] मागधं च राजानं बहसतिमितं पादे वंदापयति [।] नंदराज–नीतं च कालिंगजिनं संनिवेसं........ गह–रतनान पडिहारेहि अंगमागध–वसुं च नेयाति [।] १२.

१०...[क] . f . मानति [?] राजसन्निवासं महाविजयं प्रासादं कारयति अष्टत्रिंशता शतसहस्रैः [।] दशमे च वर्षे दण्डसन्धि–साममयो भारतवर्ष-प्रस्थानं महीजयनं...ति कारयति.........[निरस्या ?] उद्यातानां च मणिरत्नानि उपलभते [।]

११...×..... मण्डं च अपराजनिवेशितं पृथुल–गर्दभ–लाङ्गलेन कर्षयति जिनस्य दम्भापनं त्रयोदशवर्ष–शतिकं तु भिनत्ति तामर–देहसंघातम् [।] द्वादशे च वर्षे...–........भिः वित्रासयति उत्तरापथराजान्

१२...........मगधानाम् विपुलं भयं जनयन् हस्तिनः सुगाङ्गेय प्राययति [।] मागधञ्च राजानं बृहस्पतिमित्रं पादावभिवादयते [।] नन्दराजनीतञ्च कालिङ्गजिन–सन्निवेशं.........गृहरत्नानां प्रतिहारैराङ्ग–मागध–वसूनि च नाययति [।]

* ' मानवी ' भी पढ़ा जा सकता है।

× एकादशे वर्षे इत्येतस्य मूलपाठो नष्टो गलितशिलायाम् ।

(पंक्ति १३ वीँ)............तु [ ] जठरसिखिल–बरानि सिहरानि नीवेसयति सत–वेसिकनं परिहारेन [।] अभुतमछरियं च हथि–नावन परीपुरं सव–देन हय–हथी–रतना [मा] निकं पंडराजा चेदानि अनेकानि मुतमणिरतनानि अहरापयति इध सतो

(पंक्ति १४ वीँ)............सिनो वसीकरोति [।] तेरसमे च वसे सुपवत–विजयचक–कुमारीपवते अरहिते [य ?]* प-खीण-संसितेहि कायनिसीदीयाय याप–ञावकेहि राजभितिनि चिनवतानि वसासितानि [।] पूजाय रत–उवास–खारवेल–सिरिना जीवदेह–सिरिका परिखिता [।]

(पंक्ति १५ वीँ)......[सु] कतिसमणसुविहितानं (नुं–?) च सत–दिसानं [नुं ?] ञानिनं तपसि–इसिनं संघियनं [नुं ?]

१३........तुं जठरोल्लिखितानि वराणि शिखराणि निवेशयति शतवैशिकानां परिहारेण [।] अद्भुतमाश्चर्यञ्च हस्तिनावां पारिपूरम् सर्वदेयं हय–हस्ति–रत्न–माणि-क्यं पाण्ड्यराजात् चेदानीमनेकानि मुक्तामणिरत्नानि आहारयति इह शकः [।]

१४............सिनो वशीकरोति [।] त्रयोदशे च वर्षे सुप्रवृत्त–विजयचक्रे कुमारी–पर्वतेऽर्हिते प्रक्षीण+–संसृतिभ्यः कायिकनिषीद्यां यापज्ञापकेभ्यः राज–भृतीश्ची-र्णव्रताः [एव ?] शासिताः [।] पूजायां रतोपासेन खारवेलेन श्रीमता जीव देह–श्रीकता परीक्षिता [।]

१५............सुकृत–श्रमणानां सुविहितानां शतदिशानां तपस्विऋषिणां

---

* पंक्तिके नीचे ' य ' ऐसा एक अक्षर मालुम होता है ।

\+ अप–क्षीण इति वा ।

[;] अरहत–निसीदिया समीपे पभारे वराकर–समुथपिताहि अनेक–योजनाहिताहि प. सि. ओ....सिलाहि सिंहपथ–रानिसि–[.] धुडाय निसयानि १५.

(पंक्ति १६ वीं)...............घंटालको× चतरे च वेडू-रियगभे थंभे पतिठापयति [,] पान–तरिया सत सहसेहि [।] मुरिय–काल वोछिंनं च चोयठिअंग–सतिकं तुरियं उपादयति [।] खेमराजा स वढराजा स भिखुराजा धमराजा पसंतो सुनंतो अनुभवंतो कलाणानि १६.

(पंक्ति १७ वीं)........गुण–विसेस–कुसलो सव–पास-डपूजको सव–देवायतनसंकारकारको [अ] पतिहत चकिवाहि-निबलो चकधुरो गुतचको पवत–चको राजसि–वस–कुलविनिश्रितो महा–विजयो राजा खारवेल–सिरि १७.

सङ्घिनां [।] अर्हन्निषीद्याः समीपे प्राग्भारे वराकरसमुत्थापिताभिरनेकयोजनाहृताभिः ....शिलाभिः सिंहप्रस्थीयायै राज्ञ्यै सिन्धुडायै निश्रयाणि

१६.........घण्टालक्षः [?], चतुरश्च च वैडूर्यगर्भान् स्तम्भान प्रतिष्ठापयति [,] पञ्चसप्तशतसहस्रैः [।] मौर्य कालव्यवच्छिन्नञ्च चतुःषष्टिकाङ्गसप्तिकं तुरीयमुत्पाद-यति [।] क्षेमराजः स वर्द्धराजः स भिक्षुराजो धर्मराजः पश्यन् शृण्वन्ननुभवन् कल्याणानि

१७.........गुण–विशेष–कुशलः सर्व–पाषण्डपूजकः सर्व–देवायतनसंस्कारकारकः [अ] प्रतिहत चक्रि–वाहिनि–बलः चक्रधुरो गुप्तचक्रः प्रवृत्त–चक्रो राजर्षिवंश–कुलवि-निःसृतो महाविजयो राजा खारवेलश्रीः

× अथवा–घंटालीण्ह.

शिलालेख का भाषानुवाद ।

(श्रीमान पं. सुखलालजी का ' गुजराती भाषानुवाद ' से)

(१) अरिहन्तों को नमस्कार, सिद्धों को नमस्कार, ऐर (ऐल) महाराजा महामेघवाहन (नरेन्द्र) चेदिराजवंशवर्धन, प्रशस्त, शुभ लक्षण युक्त, चतुरन्त व्यापि गुण युक्त कलिङ्गाधिपति श्री खारवेलने

(२) पन्द्रह वर्ष पर्यन्त श्री कडार (गौर वर्ण युक्त) शारीरिक स्वरूपवालेने बाल्यावस्था की क्रीडाएं की । इस के पीछे लेख्य (सरकारी फरियादनामा आदि) रूप (टंकशाल) गणित (राज्य की आय व्यय तथा हिसाब) व्यवहार (नियमोपनियम) और विधि (धर्मशास्त्र आदि) विषयों में विशारद हो सर्व विद्यावदात (सर्व विद्याओं में प्रबुद्ध) ऐसे (उन्होंने) नौ वर्ष पर्यन्त युवराज पद पर रह कर शासन का कार्य किया । उस समय पूर्ण चौबीस वर्ष की आयु में जो कि बालवयसे वर्द्धमान और जो अभिविजय में वेन (राज) है ऐसे वह तीसरे

(३) पुरुष युग में (तीसरी पुश्त में) कलिंग के राज्यवंश में राज्याभिषेक पाए । अभिषेक होने के पश्चात् प्रथम वर्ष में प्रबल वायु उपद्रव से टूटे हुए दरवाजे वाले किले का जिर्णोद्धार कराया । राजधानी कलिङ्ग नगर में ऋषि खिबीर के तलाव और किनारे बंधवाए । सब बगीचों की मरम्मत

(४) करवाई। पैंतीस लाख प्रकृति (प्रजा) का रञ्जन किया। दूसरे वर्ष में सातंकर्णि (सातंकर्णि) की किञ्चित् भी परवाह न कर के पश्चिम दिशा में चढ़ाई करने को घोड़े, हाथी, रथ और पैदल सहित बड़ी सेना भेजी। कन्हवेनों (कृष्णवेणा) नदी पर पहुँची हुई सेना से मुसिकभूषिका नगर को त्रास पहुँचाया। और तीसरे वर्ष में गंधर्व वेद के पंडित ऐसे (उन्होंने) दंप (डफ ?) नृत्य, गीत, वादित्र के संदर्शन (तमाशे) आदि से उत्सव समाज (नाटक, कुश्ती आदि) करवा कर नगर को खेलाया; और चौथे वर्ष में विद्याधराधिवासे को केगिस को कलिङ्ग के पूर्ववर्ती राजाओंने बनवाया था और जो पहिले कभी भी पड़ा नहीं था। अर्हत पूर्व का अर्थ नया चढ़ा कर यह भी होता है............जिस के मुकुट व्यर्थ हो गये हैं। जिन के कवच बख्तर आदि काट कर दो टुकड़े कर दिये गये हैं, जिन के छत्र काट कर उड़ा दिये गये हैं

(६) और जिन के भृङ्गार (राजकीय चिह्न, सोने चांदी के लोटे झारी) फेंक दिये गये हैं, जिन के रत्न और स्वापतेय (धन) छीन लिया गया है ऐसे सब राष्ट्रीय भोजकों को अपने चरणों में झुकाया, अब पांचवे वर्ष में नन्दराज्य के एक सौ और तीसरे वर्ष (संवत्) में खुदी हुई नहर को तनसुलिय के रस्ते राजधानी के अन्दर ले आए। अभिषेक से छटवें वर्ष राजसूय यज्ञ के उजवने हुए। महसूल के सब रुपये

(७) माफ किये. वैसे ही अनेक लाखों अनुग्रहों पौर

जनपद को बक्सी किये। सातवें वर्ष में राज्य करते आप की महारानी वज्रधरवाली धूषिता (Demetrios) ने मातृपद को प्राप्त किया (१) (कुमार ?)........आठवें वर्ष में महा + + + सेना........गोरथगिरि

(८) को तोड़ कर के राजगृह (नगर) को घेर लिया जिसके कार्यों से अवदाव (वीर कथाओं का संनाद से युनानी राजा (यवन राजा) डिमित (अपनी सेना और छकड़े एकत्र कर मथुरा में छोड़ के पीछा लौट गया .... नौवें वर्ष में (वह श्री खारवेलने) दिये हैं........ पल्लव पूर्ण

(९) कल्पवृत्तो! अश्व हस्ती रथों (उनको) चलाने वालों के साथ वैसे ही मकानों और शालाओं अग्निकुण्डों के साथ यह सब स्वीकार करने के लिये ब्राह्मणों को जागीरें भी दीं अर्हत का.......

(१०) राजभवन रूप महाविजय (नामका) प्रासाद उसने अड़तीस लाख (पण) से बनवाया। दसवें वर्ष में दंड, संधी साम प्रधान (उसने) भूमि विजय करने के लिये भारत वर्ष में प्रस्थान किया........जिन्हों के ऊपर (आपने) चढ़ाई करी उन से मणिरत्न वगैरह प्राप्त किये।

(११)........(ग्यारहवें वर्ष में) (किसी) बुरराजाने. बनवाया मेड (मण्डिलाबाजार) को बड़े गदहों से हलसे खुदवा

दिया, लोगों को धोखाबाज़ीसे ठगनेवाले ११३ वर्ष के तमर का देहसंधान को तोड़ दिया। बारहवें वर्ष में........री उत्तरापथमें राजाओं को बहुत दुःख दिया।

(१२)........और मगध वासियों को बड़ा भारी भय उत्पन्न करते हुए हस्तियों को सुगंग (प्रासाद) तक ले गया और मगधाधिपति बृहस्पति को अपने चरणों में झुकाया। तथा राजा-नंद द्वास ले गई कलिंग जिन मूर्त्ति को........और गृहरत्नों को लेकर प्रतिहारोंद्वारा अंग मगध का धन ले आया।

(१३)........अन्दर से लिखा हुआ (खुदे हुए) सुन्दर शिखरों को बनवाया और साथ में सौ कारीगरों को जागीरें दीं अद्भुत और आश्चर्य (हो ऐसी रीतिसे) हाथियों के भरे हुए जहाज़ नज़राना हो। हस्ती रत्न माणिक्य, पाण्ड्यराजके यहाँ से इस समय अनेक मोती मानिक रत्न लूट करके लाए ऐसे वह सक्त (लायक महाराजा)

(१४)........सब को वश किये। तेरहवें वर्ष में पवित्र कुमारी पर्वतके ऊपर जहाँ (जैन धर्म का) विजय धर्म चक्र सुप्र-वृत्तमान है। प्रक्षीण संसृति (जन्म मरणों को नष्ट किये) काय निषीदी (स्तूप) ऊपर (रहनेवाले) पांपें को बतानेवाले (पाप ज्ञापकों) के लिये व्रत पूरे हो गये पश्चात् मिलनेवाले राज (चि भूतियाँ कायम कर दी। (शासनो बन्ध दिये) पूजा में रक्त उपा-सक खारवेलने जीव और शरीर की—श्री की परीक्षा करली (जीव और शरीर परीक्षा कर ली है)

(१५)........सुकृति श्रमणे सुविहित शत दिशाओं के ज्ञानी—तपस्वी ऋषि संघ के लोगों को........अरिहन्त के निषीदीका पास पहाड़ के ऊपर उम्दा खानों के अन्दर से निकाल के लाए हुये--अनेक योजनोंसे लाए हुए....सिंह प्रस्थवाली रानी सिन्धुलाके लिये निःश्रय........

(१६)........घंटा संयुक्त ('') वैडुर्य रत्नवाले चार स्तम्भ स्थापित किये। पचहत्तर लाख के व्ययसे मौर्यकाल में उच्छेदित हुए हुए चौसठ (चौसठ अध्यायवाले) अंग सप्तिको का चौथा भाग पुनः तैयार करवाया। यह खेमराज वृद्धराज भिक्षुराज धर्मराज कल्यान को देखते और अनुभव करते

(१७)...... छ गुण विशेष कुशल सर्व पंथो का आदर करनेवाला सर्व (प्रकारके) मन्दिरों की मरम्मत कर वानेवाला अस्खलित रथ और सेनावाला चक्र (राज्य) के धुरा (नेता) गुप्त (रक्षित) चक्रवाला प्रवृतचक्रवाला राजर्षि वंश विनिःसृत राजा खारवेल

यूरोपीय और भारतीय पुरातत्वज्ञों से केवल खारवेल का ही शिलालेख उपलब्ध नहीं हुआ है वरन् दूसरे अनेक लाभ हमें उनकी खोजों से हुए हैं। उदयगिरि और खण्डगिरि की हस्ति गुफा के अतिरिक्त अनन्त गुफा, रानीगुफा, सर्पगुफा, व्याघ्रगुफा, शतधरगुफा, शतचक्रगुफा, हाँसीगुफा और नव मुनि गुफा का भी साथ साथ पता लगा है। किंवदन्ति से ज्ञात होता है कि इस पर्वत श्रेणि में सब मिलाकर ७५२ गुफाएँ थीं जिन में से

कई तो टूट फूट कर नष्ट हो गई। पर इस समय भी अनेक छोटी छोटी गुफाएँ विद्यमान हैं। इनमें जैन साधु तथा बौद्ध भिक्षु निवास किया करते थे। इस से इस बात का पता लगता है कि प्राचीन समय में कई मुनि पहाड़ों की कन्दराओं में निवास करते थे। तथा वे एकान्त स्थान में निस्तब्धता के साम्राज्य में अपना आत्महित साधन करने में तत्पर रहते थे।

बाबू मनमोहन गङ्गोली बंगाल निवासीने इन गुफाओं की पूरी तरह से खोजना करी तथा इस अनुसंधान का वर्णन एक पुस्तक में लिखा है जो बंगला भाषा में छपकर प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है कि इन गुफाओं का निर्माण ई. स.. के पूर्व की तीसरी और चौथी सदी में हुआ है। कई गुफाओं तो इस से भी पहले की बनी मालूम होती हैं। कई कई गुफाओं दुमञ्जली हैं। इन में से कई तो नष्ट हो गई हैं तथापि भारत की प्राचीन शिल्पविद्या का प्रदर्शन कराने में समर्थ हैं। गुफाओं की दिवारों पर चौवीसों तिर्थंकरों की मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं तथा उनके नीचे उनके चिह्न भी खुदे हुए हैं।

हस्तिगुफा में महाराजा खारवेल का शिलालेख खुदा हुआ है। मांचीपुर गुफा में श्री पार्श्वनाथ स्वामी का सम्पूर्ण जीवन चारित्र खुदा हुआ है। गणेशगुफा में भी खोज करने पर पार्श्वनाथ स्वामी का कुछ कुछ जीवन वृतान्त खुदा हुआ मिला है। रानी गुफा की खोज से मालूम हुआ है कि एक शिलालेख में, जो

रानी गुफा का खुदाया हुआ है, खारवेल को चक्रवर्ती लिखा है। एक गुफा के शिलालेख में यह बात खुदी हुई पाइ गई है कि वहां पर जैन मुनि शुभचन्द्र और कूलचन्द्र रहते थे। यह लेख विक्रम की दसवीं सदी का है। एक गुफा में महाराजा उद्योतन केसरी के समय का लेख है। इस के अलावा भी कलिङ्ग की प्राचीनता और गुफाओं का वर्णन, मुनि जिनविजयजी की प्रकाशित की हुई "प्राचीन जैन लेख संग्रह" नामक पुस्तक के प्रथम भाग के विस्तृत उपोद्‌घात के पठन से मालूम हो सकता है।

कलिङ्गाधिपति महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल के शिलालेखने आज युरोपीय और भारतीय पुरातत्वज्ञों के कार्य में चहल पहल तथा धूम मचा दी है। लगभग एक सदी के कठिन परिश्रम के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया है कि कलिङ्गाधिपति चक्रवर्ती महाराजा खारवेल जैन सम्राट था और उसने जैन धर्म का खूब प्रचार भी किया था। यह ध्वनि जब कतिपय सोए हुए जैनियों के (व्यक्तियों के) कानों में पड़ी तब उन विद्वानोंने भी अपनी नींद त्याग दी। उन्होंने अपने बंद भण्डारों के ताले खोले। पत्रों को ऊथल पुथल करना प्रारम्भ किया तो अहोभाग्य से कुछ पत्रे ऐसे भी मिल गये कि जिन में खारवेल के शिलालेख मे सम्बन्ध रखनेवाली बातें मिलती थी।

विक्रम की दूसरी शताब्दि में विख्यात आचार्य श्री स्कंदल सूरीजी के शिष्य आचार्य श्री हेमवंतसूरीने संक्षेप में एक स्थविरा-

वली नामक पुस्तक लिखी थी उस में उन्होंने प्रकट किया है कि मगध[1] का राजा नंद, कलिङ्ग का राजा भिक्षुराज[2] तथा कुमार नामक युगल[3] पर्वत था इस स्थविरावली में:—

१ मगध का राजा वही नंदराज है जिसका उल्लेख खारवेल के शिलालेख में हुआ है। उस में इस बात का भी उल्लेख है कि नंदराजा कलिंग देश से जिनमूर्त्ति तथा मणि रत्न आदि ले गया था।

२ कलिंग का राजा वही भिक्षुराज बताया गया है जिस का वर्णन खारवेल के शिलालेख में आया है। उस में इस बात का भी जिक्र है कि भिक्षुराजने भारत विजय कर मगध पर चढ़ाई की थी और जो मूर्त्ति तथा मणि रत्न नंदराजा ले गया था वे वापस ले आया। वह जिनमूर्त्ति पीछी कलिङ्ग में पहुँच गई।

३ कुमार पर्वत (जो आजकल खण्डगिरि कहलाता है) का उल्लेख शिलालेख के कुमार पर्वत से मिलता है। यह वही पहाड़ी है जिस के पठार पर एक विराट् साधु सम्मेलन हुआ था। सैकडों मीलों से जैन साधु तथा ऋषि इस पवित्र पर्वत पर एकत्रित हुए थे।

---

१ जयभद्दो मु.ण पवरो। तप्पय सोहं करोपरो जाओ।
अहुपभगो मगहे। रज्जं कुणइ तया भइलोहो। ६।

२ सु[illegible] मु[illegible]डमुहे। भज्ज दुन्नेवि ते नमंसामि।
भिक्खु[illegible] [illegible] क[illegible]ङ्गा। द्विवेण सम्मणि जिह्र। १०।

३ जिण [illegible] कम्म जो कासी जस्स संथनमकासी।
कु[illegible] रि[illegible] मुहत्थी। तं अज्ज मह गरि वंदे। १२।

जैन लेखकोंने महाराजा खारवेल का इतिहास कलिंगपति महाराजा सुलोचन से प्रारम्भ किया है। परन्तु इतिहासकारोंने प्रारम्भ में कलिंग के एक सुरथ नाम राजा का उल्लेख किया है। कदाचित् सुलोचन का ही दूसरा नाम सुरथ हो। कारण इन दोनों के समय में अन्तर नहीं है।

भगवान महावीर स्वामी के समय में कलिङ्ग देश की राजधानी कञ्चनपुर में था और महाराजा सुलोचन राज्य करता था। सुलोचन नरेश की कन्या का विवाह वैशाला के महाराजा चेटक के पुत्र शोभनराय से हुआ था। जिस समय महाराजा चेटक और कौणिक में परस्पर युद्ध छिड़ा तो कौणिक नृपति ने वैशाला नगरी का विध्वंस कर दिया और चेटक राजा समाधी मरण से स्वर्गधाम को सिधाया! अतः शोभनराय अपने श्वसुर महाराजा सुलोचन के यहाँ चला गया। सुलोचन राजा अपुत्र था अतएव उसने अपना सारा साम्राज्य शोभनराय के हस्तगत कर दिया। सुलोचन नृपने इस वृद्ध अवस्था में निवृति मार्ग का अवलम्बन कर कुमारगिरि तीर्थ पर समाधी मरण प्राप्त किया। वीरात् १८ वें वर्ष में शोभनराय कलिङ्ग की गद्दी पर उपरोक्त कारण से बैठा। यह चेत (चैत्र) वंशीय कुलीन राजा था। यह जैन धर्मावलम्बी था। इसने कुमारी पर्वत पर अनेक मन्दिर बनवाए। इसने अपने राज्य का भी खूब विस्तार किया तथा प्रजा की आवश्यक्ताओं को उचित रूप से पूर्ण कर शान्तिपूर्वक राज्य किया।

महाराजा शोभनराय की पांचवी पीढी में वीरात् १४९ वर्ष में चण्डराय नामका कलिङ्ग का राजा हुआ था। उस समय मगध

प्रान्त का राजा नन्द था। नन्द नरेशने कलिङ्ग देश पर चढ़ाई की। आक्रमण करके वह मणियाँ, माणिक आदि बटोर कर मगध में ले जाता था। कुमारगिरि पर्वत पर जो मगधाधीश श्रेणिक का बनवाया हुआ उत्तङ्ग जिनालय था उसमें स्वर्णमय भगवान ऋषभदेवकी मूर्त्ति स्थापित की हुई थी। नन्द नरेश इस मूर्त्ति को भी उठा कर ले आया था। इस समय के पश्चात् खारवेल से पहले ऐसा कोई कलिङ्ग में राजा नहीं हुआ जो मगध के राजा से अपना बदला ले। यदि सबल राजा कलिङ्ग पर हुआ होता तो इससे पहिले मूर्त्ति को अवश्य वापस ले आता।

शोभनराय की आठवीं पेढी में खेमराज नामक राजा कलिङ्ग देश का अधिकारी हुआ। इस समय मगध की गद्दी पर अशोक राज्य करता था। अशोक नृपने भारतकी विजय करते हुए ई. स. २६२ वर्ष पूर्व में कलिङ्ग प्रान्तपर धावा बोल दिया। उस समय भी कलिङ्ग राजाओं की वीरता की धाक चहुं ओर फैली हुई थी। कलिङ्ग देश को अपने अधीन करना अशोक के लिये सरल नहीं था। दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। अशोककी असंख्य सेना के आगे कलिङ्ग की सेना ने मस्तक नहीं झुकाया। दोनों ओर के वीर पूरी तरह से भड़े हुए थे। रक्त की नदियाँ बहने लगी। कलिङ्ग वालोंने खूब प्रयत्न किया पर अन्त में अशोक की ही विजय हुई। कलिंग देश पर अशोक का अधिकार होते ही बोद्ध धर्म इस प्रान्त में चमकने लगा। अशोक बोद्ध धर्म के प्रचार करने में मशगूल था अतएव जैन

धर्म की जगह धीरे धीरे बोद्ध धर्म लेने लगा। ब्राह्मण धर्मवाले कलिङ्ग को अनार्य देश कहते थे इस कारण अशोक के आने के पहिले कलिङ्ग वासी सब जैन धर्मावलम्बी थे।

तत् पश्चात् खेमराज का पुत्र बुद्धराज कलिङ्ग देश में तख्त-नशीन हुआ। यह बड़ा वीर और पराक्रमी योद्धा था। इसने कलिङ्ग देश को जकडनेवाली जंजीरों को तोड़ कर इसे स्वतंत्र किया पर मगध का बदला तो यह भी न ले सका। वैसे तो कलिङ्ग नरेश सब के सब जैनी ही थे पर बुद्धराजने जैन धर्मका खूब प्रचार किया। अपने राज्य के अन्तर्गत कुमारगिरि पर्वत पर उसने बहुत से जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया। नये जिन मन्दिरों के अतिरिक्त उसने जैन श्रमणों के लिये कई गुफाएँ भी बनवाई। क्योंकि उस समय इनकी नितान्त आवश्यक्ता थी।

महाराजा बुद्धराजने बड़ी योग्यता से राज्य सम्पादन किया। किसी भी प्रकार के विघ्न बिना शान्ति पूर्वक राज्य सम्पादन करने में यह बड़ा दक्ष था। अन्त में इसने अपना राज्याधिकार अपने योग्य पुत्र भिक्षुराज को प्रदान कर दिया, राज्य छोड़ कर बुद्धरायने अपनी शेष आयु बड़ी शान्ति से कुमार गिरि के पवित्र तीर्थ पर निवृत्ति मार्ग से बिता कर समाधिमरण को प्राप्त कर स्वर्गधाम सिधाया।

ई. स. १७३ पूर्व महाराजा भिक्षुराज सिंहासनारुढ हुआ। यह चेत (चैत) वंशीय कुलीन वीर नृप था। आपके पूर्वजों से ही वंश में महामेघवाहन की उपाधी उपार्जित की हुई थी। इनका दूसरा नाम खारवेल भी था।

महाराजा खारवेल बड़ा ही पराक्रमी राजा था। वह केवल जैन धर्म का उपासक ही नहीं वरन् अद्वितीय प्रचारक भी था। वह अपनी प्रजा को अपने पुत्र की नाईं पालता था। सार्वजनिक कामों में खारवेल बड़ी अभिरुचि रखता था। इसने अनेक कूए, तालाव, पथिकाश्रम, औषधालय, बाग और बगीचे बनाए थे। कलिङ्ग देश में जल के कष्ट को मिटाने के लिये मगध देश से नहर मंगाने में भी खारवेल ने प्रचुर द्रव्य व्यय किया। पुराने कोट, किले, मन्दिर, गुफाएँ और महलों का जीर्णोद्धार कराने में भी खारवेल ने खूब धन लगाया था। दक्षिण से लेकर उत्तर तक विजय करते हुए उसने अन्त में मगध पर चढ़ाई की। उस समय मगध के सिंहासन पर महा बलवान् पुष्प मंत्री (बृहस्पति) आरोहित था। उसने अश्वमेध यज्ञ कर चक्रवर्त्ती राजा बनने की तैयारी की थी। पर खारवेल के आक्रमण से उसका मद चूर्ण हो गया। मगध देश की दशा दयनीय हो गई। यवन राजा डिमित आक्रमण करने के लिये आया था पर खारवेलकी वीरता सुनकर मथुरा से ही वापस लौट गया। खारवेल ने मगध से बहुत सा द्रव्य लूट कर कलिङ्ग में एकत्रित किया। उसने धन भी लूटा और वहाँ के राजा पुष्प मंत्री को अपने कदमों में झुकाया। जो मूर्त्ति नंदराजा कलिङ्ग से ले गया था वह मूर्त्ति खारवेल वापस ले आया। इसके अतिरिक्त कुमार पर्वत पर प्राचीन समय में श्रेणिक नृप द्वारा निर्माणित ऋषभदेव भगवान के भव्य मन्दिर का जीर्णोद्धार भी इसनें कराया। इसी मन्दिर में वह मूर्त्ति आचार्य श्री सुस्थितसूरी के करकमलों से प्रतिष्ठित कराई गई। इस कुमार कुमारी पर्वत पर

अनेक महात्माओंने अनशन द्वारा आत्मकल्याण करते हुए देह त्याग किया, इससे इस पर्वत का नाम शत्रुञ्जावतार प्रख्यात हुआ।

सचमुच खारवेल नृपति को जैन धर्मके प्रचार की उत्कट लगन थी। वह चाहता ही नहीं किन्तु हार्दिक प्रयत्न भी करता था कि सारे संसार में जैन धर्म का प्रचार हो। उसकी यह उच्च अभिलाषा थी कि जैन धर्म का देदीप्यमान झंडा सारे संसार भरमें फहरे। किन्तु कार्यक्षेत्र सरल भी नहीं था क्योंकि भगवान महावीर स्वामी कथित आगम भी लोप हो रहे थे जिस का तत्कालीन कारण दुष्काल का होना था अनेक मुनिराज दृष्टिवाद जैसे अगाध आगमों को विस्मृति द्वारा दुनियां से दूर कर रहे थे। ऐसे आपत्ति के समय में आवश्यक्ता भी इस बात की थी कि कोई महा पुरुष आगमों के उद्धार का कार्य अपने हाथ में ले। खारवेल नरेशने इस प्रकार साहित्य की दुःखद दशा देखकर पूर्ण दूरदर्शिता से काम लिया। विस्मृति के गहरे गर्तमें गए हुए आगमों का अनुसंधान करना किसी एक व्यक्ति के लिये अशक्य था इसी हेतु खारवेल ने एक विराट सम्मेलन करने का नियन्त्रण किया। इस सभा में प्रतिनिधियों को बुलाने के लिये संदेश दूर और समीप के सब प्रान्तों और देशों में भेजा गया। लोगोंने भी इस सभा के कार्य को सफल बनाने के हेतु पूर्ण सहयोग दिया।

इस सभा में जिनकल्पी की तुलना करनेवाले आचार्य बलिस्सह बोधलिङ्ग देवाचार्य धर्मसेनाचार्य आदि २०० मुनि एवम् स्थिरकल्पी आचार्य सुस्थि सूरी सुप्रतिबद्ध सूरी उमास्वाती आचार्य श्यामाचार्य

आदि ३०० मुनि और पइयिा आदि ७०० आर्यिकाएँ, कई राजा, महाराजा, सेठ तथा साहुकार आदि अनेक लोग विपुल संख्या में उपस्थित थे। इस प्रकार का जमघट होनेके कई कारण थे। प्रथम तो कुमार गिरि की तीर्थ यात्रा, द्वितीय मुनिराजों के दर्शन, तृतीय स्वधर्मियों का समागम तथा चतुर्थ जिन शासन की सेवा, इस प्रकार के एक पंथ दो नहीं किन्तु चार काम सिद्ध न करनेवाला कौन अभागा होगा ? स्वागत समिति की ओरसे मन खोल कर स्वागत किया गया। खारवेल नरेशने अतिथियों की सेवा करने में किसी भी प्रकारकी त्रुटि नहीं रक्खी। इस सभा के सभापति आचार्य श्री सुस्थि सूरी चुने गये। आप इस पद के सर्वथा योग्य थे। निश्चित समय पर सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। सब से पहले नियमानुसार मङ्गलाचरण किया गया। इसके पश्चात् सभापतिने अपनी ओरसे महत्व पूर्ण भाषण देना आरम्भ किया। प्रथम तो आपने महावीर भगवान के शासन की महत्ता सिद्ध की। आपने अपनी वाक्पटुता से सारे श्रोताओं का मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया। आपने उस समय दुष्काल का विकराल हाल तथा जैन धर्मावलम्बियों की घटती, आगमोंकी बरबादी, धर्म प्रचारक मुनिगणों की कमी, प्रचार कार्य को हाथ में लेनेकी आवश्यक्ता आदि सामयिक विषयों पर जोरदार भाषण दिया। श्रोता टकटकी लगाकर सभापति की ओर निहारते थे। व्याख्यान का आशातीत असर हुआ।

भाषण होने के पश्चात् खारवेल नरेश ने आचार्यश्री को नमस्कार किया तथा निवेदन किया कि आप जैसे

आचार्य ही जिन शासन के आधार स्तम्भ हैं। आपकी आज्ञानुसार कार्य करने के लिये हम सब तैयार हैं। आपके कहने का अर्थ सब की समझ में आ गया है। इस कलियुग में जिन शासन के दो ही आधार स्तम्भ हैं–जिनागम और जिनमन्दिर। जिनागम का उद्धार मुनि लोगों से तथा जिन मन्दिरों का उद्धार श्रावक वर्ग से होता है। किन्तु दोनों का पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध है, एक की सहायता दूसरे को करनी चाहिये। मुनिराजों को चाहिये कि जिन शासन की तरक्की करने के हेतु तैयार हो जावें देश विदेश में घूम घूम कर महावीर स्वामी के अहिंसा के उपदेश को फैलाने के लिये मुनिराजों को कमर कस कर तैयार हो जाना चाहिये। ये बातें सब सभासदों को नीकी लगीं इस लिये बिना आक्षेप या विरोध के सबने इन्हें मानली। इस के पश्चात् सभा निर्विघ्नतया बिसर्जित हुई। इस सभा के प्रस्ताव केवल कागजी घोड़े ही नहीं थे वरन् वे शीघ्र कार्यरूपमें परिणत किये गये। उसी शान्त तथा पवित्र स्थल में मुनिराजोंने एकत्रित हो भूले हुए शास्त्रों को फिरसे याद किया तथा ताड़पत्रों, भोजपत्रों आदि पत्तों तथा वृक्षों के वलकल पर उन्हें लिखना आरम्भ किया। कई मुनिगण प्रचार के हित विदेशों में भी भेजे गये थे। खारवेल नृपने जैन धर्म के प्रचार में पूरा प्रयत्न किया। जिन मन्दिरों मे मेदिनि मंडित हो गई तथा पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया गया। इस के अतिरिक्त जैनागम लिखाने में भी प्रचुर द्रव्य व्यय किया गया। जैन धर्म का प्रचार भारत में ही नहीं किन्तु भारत के बाहर भी चारों दिशाओं में करवाया गया।

जैन धर्मावलम्बियों की हर प्रकार से सहायता की जाती थी। एक बार आचार्यश्री सुस्थिसूरी खारवेल नरेश को सम्प्रति नरेशका वर्णन सुना रहे थे तब राजा के हृदय में महाराज संप्रति के प्रति बहुत धर्म स्नेह उत्पन्न हुआ। आपकी उत्कट इच्छा हुई कि मैं भी सम्प्रति नरेश की नाई विदेशों में तथा अनार्य देशो में सुभटों को भेज कर मुनिविहार के योग्य क्षेत्र बनवा कर जैन धर्म का विशेष प्रचार करवाऊँ। पर उसकी अभिलाषाएं मनकी मन में रह गई। होनहार कुछ और ही बदा था। धर्मप्रेमी खारवेल इस संसार को त्याग कर सुर सुन्दरियों के बीच जा विराजमान हुआ। उस समय खारवेल की आयु केवल ३७ वर्षकी थी। इसने राजगद्दी पर बैठ कर केवल १३ वर्ष पर्यन्त ही राज कार्य किया। अन्तिम अवस्था में उसने कुमार गिरि तीर्थ की यात्रा की, मुनिगणों के चरण कमलों का स्पर्श किया, पञ्चपरमेष्टि नमस्कार मंत्र का आराधन किया तथा पूर्ण निवृति भावना से देहत्याग किया।

महाराजा खारवेल के पश्चात कलिङ्गाधिपति उसका पुत्र विक्रमराय हुआ। यह भी अपने पिताकी तरह एक वीर व्यक्ति था। अपने पिता द्वारा प्रारम्भ किये हुए अनेक कार्यों को इसने अपने हाथ में लिया और उन्हें परिश्रम पूर्वक पूरा किया। विक्रमराय, धीर, वीर और गम्भीर था। इस की प्रकृति शान्त थी इस कारण राज्यभर में किसी भी प्रकार का कलह और क्रांति नहीं होती थी। इस प्रकार इसने योग्यता पूर्वक राज्य करते हुए जैन धर्म का प्रचार भी किया था।

विक्रमराय के पश्चात् गद्दी का अधिकारी उस का पुत्र बहु-वराय हुआ। इसने भी अपने पिता और पितामह की भांति सम्यक्प्रकार से शासन किया तथा जैनधर्म के प्रचार में अपने अमूल्य समय शक्ति और द्रव्य को लगाया। इस के आगे का इतिहास दूसरे प्रकरणों में लिखा जायगा।

विक्रम से दो सदियों पूर्व के शिलालेख तथा विक्रम की दूसरी सदी के लिखित जैन इतिहास में समय के अतिरिक्त बहुतसी दूसरी बातें मिलती हैं जो इस प्रकार हैं:—

महाराजा खारवेल के शिलालेख से	जैनाचार्योंद्वारा लिखित इतिहास में
कलिङ्ग के राजा खेमराज बुद्धराज और खारवेल (भिक्षुराज)	कलिंगपति महाराजा खेमराज बुद्धराज और खारवेल।
खण्डगिरि उदयगिरि पर जैन मन्दिर, जैन गुफाऐं।	कुमार कुमारी पर्वतपर जैनमन्दिर जैन गुफाऐं।
मगध का नंदराजा कुमार पर्वतपर से स्वर्णमय जिनमूर्त्ति ले गया।	मगध का नंदराजा कुमारपर्वतपर से स्वर्णमय जैनमूर्त्ति ले गया।
महाराजा खारवेल मगध से जिनमूर्त्ति वापस कलिङ्ग में ले आया।	महाराजा खारवेल मगध से जिनमूर्त्ति वापस कलिंग में ले आया।
महाराजा खारवेलने कुमार पर्वतपर एक सभा की थी।	महाराजा खारवेलने कुमार पर्वतपर एक सभा की थी।

महाराजा खारवेलने विस्मृत होते आगमों को फिरसे लिखाया ।	महाराजा खारवेलने जैनागमों को ताड़पत्रों आदिपर लिखाया ।
महाराजा खारवेलने जनहित कूए, तालाब, बाग, बगीचे कराए तथा वह मगध से नहर लाया ।	महाराजा खारवेलने जनता के हितार्थ अनेक शुभ कार्य किये ।

महाराजा खारवेल के शिलालेख से तीन या चार सौ वर्ष पश्चात् लिखे हुए जैनाचार्य के इतिहास की सत्यता की प्रमाणिकता ऊपर के कोष्टकों से साफ मालूम होती है । इस लिये जैनाचार्यों के लिखे हुए अन्य इतिहास पर हम विशेष विश्वास कर सकते हैं। अब रही बात समय की सो तो इतिहासकारोंने भी अब तक समय निश्चित नहीं किया है। आशा है कि ज्यों ज्यों अनुसंधान किया जायगा त्यों त्यों इस विषय की सत्यता भी प्रकट होकर प्रमाणिक होती जायगी।

जैन श्वेताम्बर समुदाय में लगभग ४५० वर्षों से एक स्थानकवासी नामक फिरका पृथक् निकला है। इस मत वालों का कहना है कि मूर्त्ति पूजा प्राचीन काल में नहीं थी यह अर्वाचीन समय में ही प्रचारित की गई है। इस विषय के लिये वाद विवाद ४५० वर्षों से चल रहा है। इस वाद विवाद की ओट में हमारी अनेक शक्तियाँ क्या शारीरिक और क्या मानसिक व्यर्थ नष्ट हो रही हैं।

किन्तु महाराजा खारवेल के शिलालेख से यह समस्या शीघ्र ही हल हो जाती है क्योंकि इस शिलालेख में साफ साफ

लिखा हुआ है कि मगध नरेश नंदराजा कलिङ्ग देश से भगवान् ऋषभदेव की स्वर्णमय मूर्त्ति ले गया था जिसे खारवेल वापस ले आया। इस स्थल पर यह बात विचार करने योग्य है कि जिस मन्दिर से नंदराजा मूर्त्ति ले गया होगा वह मन्दिर नंदराजा से प्रथम का बना हुआ था यह स्वयंसिद्ध है। यह मन्दिर कितना पुराना था इस विषय में मालूम हुआ है कि उस समय वह मन्दिर विशेष पुराना नहीं था कारण कि वह मन्दिर श्रेणिक नरेश से बनवाया हुआ था। इधर नंदराजा और श्रेणिक राजा के समय में अधिक अन्तर न होने से यह बात सत्य होगी ऐसी सम्भावना हो सक्ती है।

दूसरी बात यह है कि श्रेणिक राजाने जिस मन्दिर को बनवाया होगा वह दूसरे मन्दिर को देखकर ही बनवाया होगा। इससे सर्वथा सिद्ध होता है कि श्रेणिक राजा के समय से भी प्राचीन मन्दिर उपस्थित थे। श्रेणिक राजा भगवान महावीर के समय में हुआ था और वह भगवान का पूर्ण भक्त भी था। यदि जिन मूर्त्ति बनाना जिन धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध होता तो अवश्य अन्यान्य पाखण्ड मतों के साथ मूर्त्ति पूजाका भी कहीं खंडनात्मक विवरण होता पर ऐसा किसी भी शास्त्र में नहीं है। अतएव मूर्ति पूजा भगवान को भी मान्य थी ऐसा मानना पड़ेगा। कुमार पर्वत की गुफाओं में चौबीस तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ खारवेल के समय के पहले की अबतक भी विद्यमान हैं। मूर्त्ति मानना या मूर्त्ति न मानना यह दूसरी बात है पर सत्य का खून करना यह सर्वथा अन्याय है।

सज्जनों ! मन्दिर और मूर्त्तियों ने जैन इतिहास पर खूब प्रकाश डाला है और इनसे जैन धर्म का गौरव बढ़ा है तथा इससे यह भी प्रकट होता है कि पूर्व जमाने में जैन धर्म भारत के कोने कोने ही नहीं पर यूरोप तक किस प्रकार देदिप्यमान था। क्या हमारे स्थानकवासी भाई इन बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं करेंगे कि जैनधर्म में मूर्त्ति का मानना कितने प्राचीन समय से है तथा मूर्त्ति पूजना आत्मकल्याण के लिये कितना आवश्यक निमित्त है। इतिहास और जैनशास्त्रों के अध्ययन से यही सिद्ध होता है कि मूर्त्तिपूजा करना आत्मार्थियों का सबसे पहला कर्त्तव्य है।

जैन जातियों का महोदय।

भगवान महावीर स्वामीसे लेकर महाराज सम्प्राति एवं प्रसिद्ध नरेश खारवेल के शासनकाल पर्यन्त जैनधर्म का प्रचार भारत के कोने कोने में था। ऐसा कोई भी प्रान्त नहीं था कि जहाँ के लोग जैनधर्म को धारण कर उच्च गति के अधिकारी न होते हों। पाठकों को ज्ञात होगा कि प्रातः स्मरणीय जैनाचार्य स्वयंप्रभसूरी तथा पूज्यपाद आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीने जिस महाजन वंश को स्थापित किया था वह भी दिन ब दिन उन्नति की ओर निरन्तर अग्रसर हो रहा था। इतना ही नहीं पर इतिहास साफ साफ सिद्ध कर रहा

है कि भारतमें ही नहीं किन्तु भारत के बाहिर भी प्रवासमें जैनधर्म का प्रचार आठों दिशाओंमें था। उस समय इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया गया था कि कोई देश ऐसा न रहने पावे कि जहाँ के लोग परम पुनीत जैनधर्म की छत्रछायामें सुख और शांतिपूर्वक अपने जीवन को व्यतीत न करें। उपर्युक्त कथन कपोल कल्पित नहीं हैं बल्कि ऐतिहासिक सत्य है।

१ आर्द्रकुमार नामक राजपुत्रने महाराजा श्रेणिक के सुपुत्र अभयकुमार के पूर्ण प्रयत्नसे दीक्षा ग्रहण कर प्रबल उत्कण्ठासे भारतके बाहर अनार्य देशों में अनवरत परिश्रम कर के जैनधर्म का प्रचार बहुत जोरोंसे किया था।

२ यूरोप के मध्यमें आए हुए आष्ट्रिया-हंगेरी नामक प्रान्तमें भूकम्प के कारण जो भूमिपर एकाएक परिवर्तन हुए थे उन को ध्यानपूर्वक अन्वेषण की दृष्टि से अवलोकन करते हुए कई प्राचीन पदार्थ प्राप्त हुए एवं बुडापेस्ट नगरमें एक अंग्रेज के बगीचे के खोदने के कार्य के अन्दर भूमिसे भगवान महावीर स्वामी की एक मूर्त्ति हस्तगत हुई है जो बहुत ही प्राचीन है। इससे मानना पड़ता है कि यूरोप के मध्यस्थलमें भी जैनोपासकों की अच्छी बस्ती थी तथा वे आत्मकल्याण के उज्वल उद्देश से भगवान की मूर्त्ति के दर्शन तथा पूजन कर अपने जीवन को सफल बनाकर आत्मोन्नति के ध्येय को सिद्ध करनेमें सतत संलग्न थे। इन्हीं कारणोंसे वे लोग जैनमन्दिरों का निर्माण कराते थे तथा उनमें भव्य मूर्त्तियों का अर्चन करते थे।

३ इस्लाम धर्म के संस्थापक पैगम्बर महमूद के पूर्व मक्कामें भी जैन मन्दिर विद्यमान था। किन्तु काल की कुटिलतासे जब जैनी लोग उस देशमें न रहे तो ' महुवा ' (मधुमति) के दूरदर्शी श्रावक मक्केसे वहाँ स्थित मूर्त्तियाँ ले आए तथा अपने नगरमें उन्हें प्रतिष्ठित कर ली जो आज पर्यन्त भी विद्यमान हैं। इससे सिद्ध होता है कि ऐशिया के ऐसे ऐसे रेगीस्तानोंमें भी जैनधर्म के व्रतधारी श्रावकों का वास था। यह क्षेत्र दुर्लभ था तथापि प्रयत्न करनेवाले तो वहाँ भी प्रचार हेतु पहुँच गये थे; तो कोई कारण नहीं दिखता कि वे अन्य सुलभ प्रान्तोंमें न गये हों।

४ महाराजा सम्प्रति के चरित्र से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इनके प्रयत्लसे कई सुभट अनार्य देशोंमें साधु के वेषमें इस कारण भेजे गये थे कि वहाँ जाकर इष्ट क्षेत्र को साधुओं के विहार योग्य बना दें और इस कार्यमें पूर्ण सफलता भी उन्हें मिली। कई साधु अनार्य देशोंमें गये और वहाँ के लोगों की जैनधर्म पर श्रद्धा उत्पन्न करानेमें समर्थ हुए।

उपर्युक्त वर्णनसे मालूम होता है कि अनार्य देशोंमें भी जैनियों की घनी बस्ती थी। वहाँ के लोग भी जैन धर्म का पालन कर अपने मानव जीवन को सफल करते थे। ऐसी दशामें जब कि दूर दूर के देशोंमें जैनधर्मावलम्बी विद्यमान थे तो यह स्वाभाविक ही है कि भारत के कोने कोने में जैनधर्म की ज्योति जागृत हुई हो। इस बात को स्वीकार करते किसी भी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता।

१ [नेपाल प्रान्त]—जब भारत के पूर्वमें भीषण दुष्काल पड़ा था तो आचार्य भद्रबाहुसूरिने अपने पांचसौ शिष्यों सहित नेपालमें विहार किया था इनके अतिरिक्त और भी कई साधु इस प्रदेशमें विचरण करते थे। इससे सिद्ध होता है कि इस समय जैनों की घनी बस्ती उस प्रान्तमें होगी। इतने मुनिराजों का निर्वाह व्रतपूर्वक बिना जैनजाति के लोगों के होना अशक्य था। इस पर भी जिस प्रान्तमें भद्रबाहुसूरि जैसे चमत्कारी और उत्कट प्रभावशाली आचार्य विहार करते रहे उस प्रान्त में जिन शासन की इस प्रकार की बढ़ती हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु इस बात को जानने का कुछ भी साधन नहीं है कि भद्रबाहुसूरि के पश्चात् जैनधर्म किस प्रकार नेपाल में न रहा। हाँ, खोज करने पर केवल इतना प्रकट होता है कि विक्रम की दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दियों में नेपाल प्रदेश में जैनधर्म का प्रचार था। नेपाल के व्यापारी इस ओर आते और यहां से बहुत सा माल ले जाते थे इस प्रकार परस्पर विचार विनिमयका साधन बना हुआ था।

२ (अङ्ग बङ्ग और मगध प्रान्त) प्रातः स्मरणीय भगवान महावीरस्वामी एवं उनके शिष्य प्रशिष्यों का विहार प्रायः इसी प्रान्त में हुआ था। महाराजा श्रेणिक, कौणिक, उदाई, नौ नंदनृप, मौर्य सम्राट, चन्द्रगुप्त तथा सम्प्रति नरेश के राज्यकाल में तो जैनधर्म ही राष्ट्रधर्म था। उस समय जैनधर्म का प्रवेश प्रत्येक घर में हो चुका था। अहिंसा की पताका सतत भारत भूमि पर

फहरा रही थी। यहां तक कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी पर्य-न्त भी जैनधर्मावलम्बियों का इस प्रान्त में खासा जमघट था। अब से लगभग दो और तीन शताब्दियाँ पहले 'सारक' नामक जाति के लोग इस प्रान्त में जैनधर्मोपासक थे। पर अन्त में वह दशा न रही। जैन धर्म के प्रचारकों एवं उपदेशकों का नितान्त अभाव था। इसी कारण धीरे धीरे लोग पुनीत जैनधर्म को त्याग कर अन्य मतावलम्बी होते रहे। बात यहां तक हुई कि वहाँ जैनधर्मोपासक न रहे। आज जो इस प्रान्त में थोड़े बहुत जैनी दिखाई देते हैं वे यहां के निवासी नहीं है। इन में से प्रायः सब मारवाड़ प्रान्त से व्यापारार्थ गये हुए हैं। ये जैनी अब बंग आदि प्रान्तों में व्यापार करते हैं। वहां के व्यापार में भी जैनियों का अब विशेष हाथ है।

२ (कलिङ्ग प्रदेश) महाराज अशोक के राज्यकाल के पहले क्या राजा और क्या प्रजा सब लोग जैनधर्मोपासक थे। कलिङ्गपति महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेलने जैनधर्म की उन्नति करने के हित प्रबल प्रयत्न किया था। उससे इस घोर परिश्रम के परिणाम स्वरूप जैन धर्म का प्रचार इस प्रान्त के बाहिर भी खूब हुआ था तो वहाँ के वातावरण का तो क्या कहना ? इसके पश्चात् विक्रम की दसवीं शताब्दी तक तो इस प्रान्त के अन्तर्गत आई हुई कुमारगिरि की कन्दराओं में जैन श्रमण निवास करते थे। इस बात को प्रमाणित करनेवाले शुभचन्द्र और कुलचन्द्र मुनियों के शिलालेख पर्याप्त हैं। इसके आगे

विक्रम की पद्रहवीं शताब्दी में इस प्रदेश में जैन राजा प्रतापरुद्र का शासन था। उस समय भी जैनधर्म का प्रचुरता से प्रचार हो रहा था। किन्तु सदा एक सी दशा प्रायः किसी की भी नहीं रहती। अब तो कलिङ्ग प्रदेश में केवल इने गिने जैन दृष्टिगोचर होते हैं जो वहाँ व्यापार के लिये रहते हैं। दिनों का फेर इसे कहते है कि जहाँ एक दिन जिधर देखो उधर जैनी ही जैनी दिखाई देते थे वहां आज खोजने पर भी कठिनाई से दिखाई देते हैं। अहा! काल तेरी भी विचित्र लीला है!

४ (पञ्जाब प्रान्त) इतिहास देखने से विदित होता है कि विक्रम पूर्व की तीसरी शताब्दी में जैनाचार्य देवगुप्तसूरीजी ने पञ्जाब में पधार कर वहाँ इस धर्म की नींव दृढ की थी और उनके पट्टधर आचार्यश्री सिद्धसूरीजीने इस परम पवित्र लोक हितकारी उपकारी जैनधर्म का जी–जान से प्रचार किया था। आपकी उच्च अभिलाषा थी कि पञ्जाब जैसे प्रान्त में जो प्रचार का उत्तम क्षेत्र है खूब जोरों से प्रचार कार्य किया जाय। इस कार्य के सम्पादन करने में सूरीजीने प्रगाढ परिश्रम किया। जैन धर्म पञ्जाब में सर्वोच्च पद प्राप्त कर गया। ऐसा कौनसा कार्य है जो प्रयत्न और परिश्रम करने से सिद्ध नहीं होता? वास्तव में सूरीजी को इस प्रचार कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। वंशावलियों को देखने से मालूम हुआ कि विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में पंजाब से एक बड़ा भारी संघ सिद्धगिरि कि यात्रा के लिये आया था। इस विशाल आयोजन से विदित होता है कि उस

समय पञ्जाब में जैनियों की घनी बस्ती थी। यह धर्म पञ्जाब में निरन्तर पाला गया। आज जो जैनी इस प्रान्त में दृष्टिगोचर होते हैं उनमें से अधिकाँश मारवाड़ ही से गये हुए लोग हैं।

अब से थोड़े समय पहले पञ्जाब में जैनियों की विस्तृत बस्ती थी। आज जो जैनधर्म का अस्तित्व पञ्जाब प्रान्त में पाया जाता है यह वास्तव में जैनाचार्य श्री देवगुप्तसूरीजी एवं सिद्धसूरी जीके परिश्रम का ही परिणाम है। यह उन्हीं की कृपा का फल है कि आजलाँ जैनधर्म की पताका पञ्जाब में फहराती रही है।

५ (सिन्ध प्रान्त।) विक्रम के पूर्व की तीसरी शताब्दी में आचार्य श्री यक्षदेवसूरीने सिन्ध प्रान्त में प्रचार का झंडा रोपा और वहाँ के लोगों को विपुल संख्या में जैनी बनाया। आपश्री की व्यवस्था से जैनधर्म की नींव इस प्रान्त में पड़ी तथा इनके पश्चात् आचार्य श्री कक्वसूरीजीने उस नींव को दृढ किया। बहुत परिश्रम के पश्चात् सिन्ध प्रान्तमें सर्वत्र जैनी ही जैनी दृष्टिगोचर होने लगे। सिन्ध प्रान्त के कोने कोने में जैनधर्म का उपदेश सुनाया गया तथा झुँड के झुँड जैनी जिनशासन की शीतल छाया में शान्ति पूर्वक रहते हुए अपनी आत्मा का उत्थान करने लगे। बाद में इन के शिष्य समुदायने भी इस प्रान्त में विचरण किया तथा जैनधर्मावलम्बियों की संख्या निरन्तर वृद्धिगत होती रही। उपकेश गच्छ चरित्र से विदित हुआ है कि विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में आचार्य श्री कक्वसूरी के समय पर्यन्त केवल एक उ-

१५

पकेश गच्छोपासकों की देखरेख में ५०० जैन मन्दिर विद्यमान थे, इससे अनुमान हो सकता है कि उन मन्दिरों के उपासक भी बड़ी विशाल संख्या में थे।

उस समय के पश्चात् अत्याचारी यवनोंने जैनियों को बहुत सताया और उन्हें इसी कारण से इस प्रान्त को परित्याग करना पड़ा। वे आसपास के प्रान्तों में यवनों के अत्याचारों से ऊब कर जा बसे। इस प्रान्त में विक्रम की चौदहवीं शताब्दी तक तो जैनियों की गहरी आबादी थी। इस का प्रमाण यह है कि वंशावलियों में लिखा हुआ पाया गया है कि सिन्ध निवासी महान् धनी लुणाशाह नामक सेठ अपने कुटुम्ब और अन्य लोगों के साथ मरुधर प्रान्त में आया था। जिस प्रान्त में ऐसे ऐसे धनी और मानी सेठ रहते थे आज उस प्रान्त में केवल मारवाड़ और गुजरात से गये हुए कतिपय लोग जैन ही पाये जाते हैं। इस का वास्तविक कारण यह था कि जैनधर्म के उपदेशकों का पूरा अभाव था। आम तौर से जनता सरल परिणाम वाली होती है जब कोई सत्य मार्ग बतानेवाला नहीं होता है तो यह स्वभाविक ही है कि वह भटक कर अन्य रास्ते का अवलम्बन करले। इस प्रकार से सिन्ध के खास जैनी आज नाम को भी नहीं रहे। किसी ने सच कहा है कि Misfortunes never come single यानि आफतें कभी अकेली नहीं आतीं। जो दशा बङ्गाल तथा कलिङ्ग आदि के जैनियों की हुई थी वही दशा इस प्रान्त के जैनी लोगों की हुई।

६ [कच्छ प्रान्त] विक्रम के पूर्व की तीसरी शताब्दी में जैनाचार्य श्री कक्कसूरीजी महाराजने इस प्रान्त में पदार्पण कर जैनधर्म का प्रचार प्रारम्भ किया था। कक्कसूरी महाराजने कच्छ निवासियों पर बड़ा भारी उपकार किया। उन्हें जैनधर्म के परम-पवित्र कल्याणकारी मार्ग का पथिक बनाने वाले जैनाचार्य श्री कक्कसूरी ही थे। इन के पीछे इन के पट्टधर शिष्योंने भी प्रचार का कार्य इस प्रान्त में जारी रखा। इन में आचार्य श्री देवगुप्तसूरीजी ही मुख्य प्रचारक थे। कच्छ के कोने कोने में जैनधर्म का दिव्य संदेश सुनाया गया था। लोगोंने इस धर्म को अपनाया भी खूब। इन के शिष्य तथा प्रशिष्यों और परम्परागत् शिष्योंने भी इसी प्रान्त में विहार किया था। इतिहास देखने से विदित होता है कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी तक तो इस प्रान्त में जगडूशाह जैसे दानवीर जैनी हो चुके हैं। ऐसे ऐसे नररत्नोंने इस प्रान्त में जन्म ले जैनधर्म को पालन कर खूब यश कमाया। वैसी जाहोजलाली इस प्रान्त की अब न रही पर जैनधर्म की कुछ न कुछ प्रवृत्ति तो इस प्रान्त में अब लों विद्यमान रही है। समय समय पर कई मारवाड़ी भी मारवाड़ से यहाँ आ बसे। यहाँ यतिलोग भी गहरा संख्या में रहते थे। विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी तक तो मारवाड़ से कुलगुरु जाकर अपने श्रावकों की वंशावली लिख आया करते थे जो कि अबतक भी विद्यमान है।

७ [सौराष्ट्र (सोरठ) प्रान्त।] इस प्रान्तमें प्राचीन कालसे ही जैनधर्म प्रचलित है। इस प्रान्तमें दो बड़े प्रसिद्ध

तीर्थराज हैं जिनको जैनियों का बच्चा बच्चा तक जानता है। उनके परम पुनीत नाम शत्रुञ्जय और गिरनार तीर्थ हैं। इस प्रान्त की वल्लभी नगरी के प्रसिद्ध नरेश शिलादित्य के राज्यकालमें जैनधर्म इस प्रान्त के कोने कोनेमें फैल गया था तथा इस की दशा बहुत उन्नत थी। आचार्य श्री देवर्द्धि गणिने वल्लभी नगरीमें एक विराट सम्मेलन का आयोजन किया था तथा आगमों को पुस्तकरूपमें लिखाने का आवश्यक एवं समयोचित कार्य किया था। ऐसे ऐसे परोपकारी महात्माओं ही का हमारे पर परम अनुग्रह है कि जिन की महनत का हम लाभ उठाते हुए अर्वाचीन आगमान्तर्गत साहित्य देखते हैं।

पंचासर का राजवंश जैनधर्म्मोपासक था तथा पाटण के चांवडा वंशी भी चिरकाल से जैनी थे। महाराजा सिद्धराज जयसिंह तो आचार्य हेमचन्द्रसूरी के परम भक्त थे। महाराजा कुमारपाल तो अर्हन् धर्म्मोपासक ही नहीं वरन् बड़ा परिश्रमी और जैनधर्म प्रचारक था। इसने जैनधर्म की उन्नति के हित अपना सर्वस्व तक अर्पण कर दिया था। इसके बनाए हुए अनेक जिन मन्दिर तथा शिलालेख बृहत् संख्या में अबतक प्रस्तुत हैं। इन मन्दिरों पर की ध्वजाएँ आज तक कुमारपाल की कमनीय कीर्ति को बतला रही हैं तथा अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करती हैं कि यदि किसी के पास धन हो तो वह उसका इस प्रकार सदुपयोग करे जिस के द्वारा कि अनेक भव्य जीवों का आत्म कल्याण हो। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी तक तो जैनधर्म

सौराष्ट्र प्रान्त को देदीप्यमान कर रहा था। भीनमाल के नरेश महरगुल के अत्याचार से उत्पीडित हुए मारवाड़ निवासी विक्रम की छट्ठी शताब्दी में गुजरात में आ बसे थे। पाटण की स्थापना से लेकर विक्रम की तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी पर्यन्त तो मारवाड़ प्रान्त से अनेक महाजन संघके सद्गृहस्थ विपुल संख्या में जा जा कर गुजरात में निवास करने लगे थे। आज जो सूरत, भरुच, बडौदा, खम्भात, भावनगर और अहमदाबाद आदि नगरों में जैन ओसवाल. पोरवाल तथा श्रीमाल घनी संख्या में बसते हैं ये सब के सब मारवाड़ ही से गये हुए हैं। अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये उन्हें मारवाड़ छोड़ कर वहाँ बसना पड़ा। विक्रम की सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी तक तो मारवाड़ से कुलगुरु गुजरात में जा कर अपने श्रावकों की वंशावली लिख आया करते थे। उन वंशावलियों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि मारवाड़ से जो जैनी गुजरात की ओर गये थे उन की संख्या बहुत थी। इस अर्वाचीन काल में जो जैनधर्म का अभ्युदय गुजरात प्रान्त में विशेष दिखाई देता है उस का वास्तविक कारण यही है।

८ [महाराष्ट्र प्रदेश] भारत के दक्षिण के खानदेश, करणाटक, तैलङ्ग आदि प्रान्तों में भी प्राचीन समय में जैनधर्म प्रचलित था। जिस समय भारत के पूर्वीय भाग में अकाल का दोरदौरा था तो आचार्य भद्रबाहु स्वामीने अपने सहस्रों मुनियों के साथ दक्षिण के प्रान्तों में ही विहार किया था। आपने उस समय दक्षिण के तीर्थों की यात्रा भी की थी यह बात उस समय के

ग्रन्थोंद्वारा आधुनिक इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं। इस से तो सिद्ध होता है कि महाराष्ट्र प्रान्त में भद्रबाहु स्वामी के प्रथम से ही जैनधर्म प्रचलित था। यह जैनियों का बड़ा क्षेत्र था इसी लिये उस विकटावस्था में सहसा सहस्रों मुनियों के साथ आपने विहार किया था। भद्रबाहु स्वामी से प्रथम कितने ही समय से वहाँ जैन-धर्म प्रचलित था इस का एक स्थान पर प्रमाण भी मिलता है वह यह है कि पार्श्वनाथ पट्टावली में ऐसा उल्लेख हुआ है कि केशी श्रमणाचार्य (महावीरस्वामी से पूर्व) के आज्ञावर्ती लौहित्याचार्यने महाराष्ट्र की ओर विहार किया था तथा उन के शिष्य प्रशिष्य भी चिरकाल तक उसी प्रान्त में विचरण करते थे।

उपर्युक्त वृतान्त से विदित होता है कि भद्रबाहु स्वामीने इस क्षेत्र को उपयुक्त समझ कर ही इस ओर यकायक पदार्पण किया होगा। आपने दक्षिण की यात्रा के पश्चात् ही नेपाल की ओर विहार किया होगा। महाराजा अमोघवर्ष के राज्य काल तक तो इस प्रान्त में जैन धर्म खूब जाहोजलाली में था। इस के पश्चात् बीजलदेव के शासन पर्यन्त तो जैन धर्म इस प्रान्त में राष्ट्रधर्म के रूप में रहा। क्योंकि राष्ट्रकूटवंश, पाण्ड्य वंश, चोल वंश, कलचूरी वंश तथा कलव्र वंश इत्यादि के सब राजा केवल जैन धर्मोपासक ही नहीं वरन् बड़े भारी प्रचारक थे। ये बातें शिलालेखों से प्रकट हुई हैं। किन्तु आज पर्यन्त वह दशा नहीं रही अब से बहुत पहले लगभग विक्रम की बारहवीं शताब्दी में बासवादत्त ने इस प्रान्त में लिङ्गायत मत की नींव डाली; उस दिन से जैनियों की संख्या निर-

न्तर घटती रहीं। ऐसे अनेक घृणित और निष्ठुर उपाय किये गए कि जिनका वर्णन करते लेखनी काँपती है—सहस्रों जैन मुनि कत्ल किये गये केवल इसी कारण कि वे जैन धर्मोपासक थे। अत्याचार की कोई सीमा न थी। जैनियों को इस इस तरह के बिना कारण दण्ड दिये गये कि उन्हें विवश होकर अपना धर्म परिवर्तन करना पड़ा। यही सिद्धान्त चला Might is right जिसकी लाठी उसकी भैंस, जो अपने जैनधर्म पर पक्के रहे उन्हें अपना प्राण परित्यागन करना पड़ा। इसके फल स्वरूप उस प्रान्त में जैनियों की आबादी शीघ्र ही लुप्त हो गई। किन्तु आज भी गये गुजरे जमाने में महाराष्ट्र प्रान्त में जहाँ तहाँ जैन तीर्थ एवं जैन गुफाएँ विपुल संख्या में विद्यमान हैं। इस से स्पष्ट प्रकट होता है कि जैनियों का अतीत तो अति उज्वल एवं उत्तम था। अर्वाचीन काल में तो इने गिने जैनी इस प्रान्त में दृष्टिगोचर होते हैं इनके सिवाय सब मारवाड़ तथा गुजरात प्रान्त से गये हुए हैं। जिस प्रान्त में प्रचुरता से जैनी पाए जाते थे वहाँ आज केवल आ कर बसे हुए जैनी मात्र प्रायः दिखाई देते हैं।

६ [अवन्ती प्रदेश।] इस प्रान्तः की राजधानी उज्जैन में जिस समय त्रिखण्डभुक्ता महाराजा सम्प्रति राज्य कर रहा था उस समय इस प्रान्त में जैन धर्म का अविच्छन्न साम्राज्य प्रसारित था। आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकरजीने महाराजा विक्रम को प्रतिबोध देकर जैनी बनाया था; उसने भी जैनधर्म का खूब प्रचार किया था। उसने जी जान से प्रयत्न करके अपने साम्राज्य में जैनधर्म को खूब प्रसारित होने दिया। इसके अतिरिक्त राजा भोज

के समय में भी जैन धर्म प्रचुरता से प्रचारित था । माण्डवगढ़ के पेथड नामक महामंत्री के तथा संग्राम सोनी के समय तक भी जैन धर्म का उचित प्रचार जारी था और बुन्देलखण्ड के राजा भी प्राय: जैनधर्मोपासक ही थे । अर्थात् विक्रमकी सोलहवीं शताब्दी तक तो जैन धर्म इस मालवा प्रान्त में उन्नत अवस्था में था किन्तु आज जो यहाँ के जैनी हैं वे तो मारवाड़ से गये हुए ही हैं । इस प्रांत में अवंती, मक्शी और माण्डवगढ़ नगर में अति प्राचीन तीर्थ आजलों विद्यमान हैं ।

१० [मध्यप्रान्त] इस प्रान्त में जैनधर्म प्राचीन समय से प्रचलित है । शौरीपुर, मथुरा, हस्तिनापुर आदि तीर्थ बड़े प्राचीन हैं। यह प्रान्त आजकल के कहलाए जानेवाले मध्यप्रान्त (Central Provinces) से भिन्न है । आचार्यश्री स्कन्धिल सूरीजीने मथुरा नगरी में एक बृहत् साधु सम्मेलन किया था तथा आगमों को पुस्तक के रूप में लिखाने का प्रस्ताव पास करा बहुत सा इस विषय सम्बन्धी कार्य भी किया था। हम बड़े कृतघ्न कहलावेंगे यदि उनके इस असीम उपकार को भूल जाय । आज पर्यन्त इसी प्रयत्न के परिणाम स्वरूप माथुर वाचना लोक प्रसिद्ध है । क्यों न हो ? कोई भी किया हुआ सद् प्रयत्न कभी विफल नहीं हो सकता । इस प्रान्त में समय समय पर बड़े दानवीर नररत्नों का अवतरण हुआ है । विक्रम की नौवीं शताब्दी में ग्वालियर के नृपति आम जैनधर्म उपासक ही नहीं वरन परम प्रभावशाली तथा उत्कट ओजस्वी प्रचारक भी था । इनकी संतान राज कोठारी के नाम से आज लों जैन जाति में प्र-

ख्यात है। इस प्रान्त में भी मारवाड़ से गये हुए कई व्यापारी मौजूद हैं।

११ वें [मेवाड़ (मेदपाट) प्रान्त] इस प्रान्त में भी जैन धर्म प्राचीन समय से प्रचलित था तथा चित्रकूट के पंवार वंशी नृप भी जैनी ही थे। इस प्रान्त में श्री केसरियानाथजी महाराज का धाम अति प्राचीन एवं प्रख्यात है। चित्तोड़ के राणा भी जैन धर्म का उचित आदर करते थे। इनके वंश में आज तक इस धर्म को उच्च स्थान मिलता आया है। राव रिड़मलजी तथा योधाजी के समय में बहुत से मारवाड़ निवासी जैन लोग, मेवाड़ में जा बसे थे। उन लोगों का सम्बन्ध कई वर्षों तक मारवाड़ से रहा है। श्री सिद्धगिरि के अन्तिम उद्धारक स्वनाम धन्य कर्माशाहने इसी प्रान्त में जन्म लिया थी। धन्यधरा मेवाड़!

१२ [मारवाड़ प्रान्त] यह प्रान्त जैन जातियों का उत्पत्ति-स्थान है। आचार्य स्वयंप्रभसूरी तथा आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीने इस प्रान्त में पदार्पण कर वाममार्गियों के अत्याचार रूपी गढ़ों पर आक्रमण कर उन्हें दूर किया तथा महाजन वंश की स्थापना की थी उस समय से चिरकाल तक तो इस प्रान्त में जैन धर्म राष्ट्र धर्म के रूप में रहा तथा उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर इस की पताका फहराने लगी। किन्तु विक्रम की छठी शताब्दी में यहाँ के निवासी राज्य कष्ट से दुःखी हो इस प्रान्त को छोड़ कर आसपास के अन्य प्रान्तों में जा कर वास करने लगे। यह सिलसिला अब तक भी जारी है।

यद्यपि उस तरह का राज्य कष्ट इस समय नहीं है तथापि जीविका निर्वाह का प्रश्न यहाँ के निवासियों के लिये दिनप्रतिदिन जटिल हो रहा है अतएव इस समस्या को हल करने के उद्देश से यहाँ के कई लोग दूसरे प्रान्तों में जाकर बस रहे हैं तथा मारवाड़ियों का अधिकांश व्यापारी वर्ग मारवाड़ के बाहिर जा कुछ उपार्जन कर वापस अपने प्रान्त में आजाता है। इतना होने पर भी जैनियों की ¼ आबादी तो केवल इस एक प्रान्त में ही है। सब जैनी इस समय १२ लाख के लगभग है; उनमें से ३ लाख जैनी इस समय मारवाड़ में विद्यमान हैं। इस भूमि में अनेक नररत्नोंने जन्म ले जैनधर्म की खूब सेवा की है। जैन धर्म की उन्नति के लिये तन, मन और धन को अर्पण करने वाले इस प्रान्त में अनेक नररत्न उत्पन्न हो चुके हैं। उपर्युक्त आचार्यों के समय से आज तक जैनधर्म अविच्छिन्न रूप से चला आ रहा है।

१३ [जैन जातियों का महोदय-(उपसंहार)] जैन जातियों के जन्म समय से लेकर ३०३ वर्ष तक तो दिनप्रतिदिन जैनियों का हर प्रकार से महोदय ही होता रहा। जो जाति प्रारम्भ में लाखों की संख्या में थी वही जाति मध्यकाल में क्रोड़ों की संख्या तक पहुंच गई। यदि उसी क्रम से महोदय होता रहता तो आज न मालूम जैन जातियों किस उच्च पदपर दृष्टिगोचर होता किन्तु किसीने सच कहा है कि होनहार ही बलवान है। ठीक वैसा ही हुआ। जब से उपकेशपुर मे स्वयंभू महावीर स्वामी की मूर्त्ति की आशातना हुई है तब मे इस जाति की खैर

नहीं रही है । जैन जातियों की उन्नति के मार्ग में रोड़ा अटक गया है । ह्रास अपने चरम सीमा तक होने लगा। बीच बीच में दशा सुधारने के लिये तथा जैन जातियों की अभिवृद्धि के लिये अनेक जैनाचार्योंनें उपाय और प्रयत्न किये। समय समय पर अनेक राजाओं और राजपुतों आदि को इतर धर्म से प्रतिबोध दे दे कर जैन जातियों में मिलाते गये इस से जैन जातियों की संख्या चिरकाल तक अधिक बनीं रही तथापि पूर्व की भान्ती उस दशा का सुधार नहीं हुआ। इतने में तो जैन समाज में अनेक मत्त मतान्तरों का प्रादुर्भाव हुआ और वह रही सही जैन जातियों अनेक विभागों में विभाजित हो अपनी अमूल्य शक्तियों और उच्चादर्श से भी हाथ धो बैठी इससे ही कई लोगों को यह कहने का समय मिलगया कि जैनाचार्योंने यह बुरा किया कि राजपूत जैसे वीर बहादुर वर्ण को तोड़ जैन जातियों बना उनकों कायर और कमजोर बना दिया। वास्तव यह कहना कितना भ्रमनपूर्वक है वह हम आगे छट्ठे प्रकरण में विस्तारपूर्वक बतलावेंगें।

एक तरफ तो पूर्वोक्त कारणों से जैन जातियों का ह्रास होना प्रारम्भ हुआ था दूसरी ओर ऐसे ऐसे असाध्य रोग लगने शरू हुए कि जो जैन जातियों के खून को जाँक बनकर निरन्तर चूस रहे हैं। ऐसी ऐसी नाशकारी प्रथाओंने जैन जातियों में घर कर दिया कि उन बाधा कर्ता रूढियाँ के कारण जैनजातियाँ अपना विकास तक नहीं कर सकी है। ये रूढियाँ नित्य नई नई बनकर कैसी कैसी आफत उपस्थित कर रही है वह हम आगे

चलकर छट्ठे प्रकरण में सविस्तृत बतादेंगे कि जैन जातियाँ के महोदय में कितना विघ्न करनेवाली है। अगर जाति अग्रेसर अपने संगठन द्वारा उन बाधा कारक कुप्रथाओं को आज दूरकर दें तो कलही जैन जातियों का पुनः महोदय होने में किसी प्रकार की शंका नहीं रहे है। शासनदेव से प्रार्थना है कि वह सब को सद्बुद्धि प्रदान करे। शम्

जैन जातियों ?

जैनाचार्य श्री स्वयंप्रभसूरि और आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि आदि आचार्योंने " महाजनसंघ " की स्थापना की कालान्तर उन संघ से नगर के नामपर तीन साखाए हुइ (१) उपकेश (ओसवाल) वंश (२) प्राग्वाट (पोरवाड) वंश (३) श्रीमाल-वंश. इनका इतिहास तीसरे प्रकरण में आप पढ़ चूके है । बाद उपकेश वंश में सब से पहले १८ गौत्र हुए उन मूल गोत्रों से ४९८ जातिये बन गई उनके नाम मात्र आप चोथा प्रकरण में पढ़ ही आये है पर वह मूल गौत्र से किस कारण किस समय किस ग्राम से और इनका आदि पुरुष कौन ? तथा इन मूल गोत्र और साखा प्रतिसाखा के सिवाय भी जैनाचार्योंने अनेक राजपुतादि को प्रतिबोध दे देकर जैन महाजनसंघ में मिलाते गये उन जातियों की संख्या १४४४ से भी अधिक थी उन सब का इतिहास लिखना ग्रन्थ बडा होने के भय से शेष बाकी रहजाता है कारण इस प्रथम खण्ड में भगवान् वीर प्रभु से ४०० वर्षों तक का इतिहास लिखा गया है शेष दूसरा खण्ड में लिखा जावेगा निम्नलिखित जैन जातियों से कितनीक जातियों का इतिहास तो हमने संग्रह किया है तथापि जैन जातियों के प्रत्येक

व्यक्ति को चाहिये कि यह अपनी अपनी जाति का इतिहास मुद्रित करावे या हमारे पास भेजे कि इस ऐतिहासिक ग्रन्थ के साथ जोड़ दिया जाय ।

लुणावत, सिन्धुड़ा, चरड़, कांकरिया, सोनी, कस्तुरिया, बोहरा, अच्छुपत्ता, पारणिया, वरसांखि, सुँघड़, संडासिया, करणा, तुता, लेरक्खा, लुंग, चंडालिया, भाखरिया, गरिया, टींबाणी, काजलिया, रांणोत, काग, गुरुड़ धाड़ावत, चापड़ा, सालेचा, बागरेचा, सोनी, कुँकमचोपड़ा, धूपिया, कुकडा, गणधर-चोपड़ा, जावलिया, वटवटा, सफलाबोहरा, कोठारी, भल, भला, नक्षत्र, घीया, खजानची, कांकरेचा, कुबेरिया, पटवा, लेहरिया, चौहाना, हुँड, वागमार, फलोदीया, हरसौरा, तोला, साचा, पीछोलिया, पीपला, बोहरा, नागोरी, हथुडिया, छप्पनिया, रात-ड़िया, पितलिया, गौड, मंडोवरा, माला, वीतरागा, कीड़ेचा, गुँदेचा, गोगलिया, वागाणी, छाजेड़, नक्खा, चावा, राखेचा, पुंगलिया, पावेचा, धामाणी, (उपकेशगच्छ वंशावलियों से)

माडोत, सुधेचा, धूवगोत्ता, रातड़िया, बोत्थरा,—वच्छावत, मुकीम, फोफलिया, कोठारी, कोटड़िया, धाड़िवाल, धाकड़, नागगोता, नागशेठिया, धरकट, खीवसरा, माथुरा, सोनेचा, मक्‍-वांण, फितुरिया, खाविया, सुखिया, संकलेचा, डागलिया, पांडु-

गोता, पोसालिया, साहाचेती, नागण, खीमाणदिया, वढेरा, जोगणेचा, सोनाणा, जाड़ेचा, चिपड़ा, कपुरिया, निंबाड़ा, बाकुलिया, (कोरंटगच्छीय वंशावलि से)

महालाणी, नौलखा, भुतेड़िया, पीपाड़ा, हीरण, गोगेड, शिशोदिया, रूणीवाल, वैगाणी, हिंगड़, लिंगा, रायसोनी, भामड़, भावक, छजलाणी, छळांणी, घोड़वत, हीराउ, केलाणी, गोखरू, चौधरी, राजबोहरा, छोरीया, सामड़ा, श्रीश्रीमाल, दूधड़, लोढ़ा सूरिया, मिहा, जोघड़, नक्षत्र, नाहार, जड़िया, (तपागच्छीय महात्माओंकि वंशावलीयोंसे)

गुंगलिया, भण्डारी, चुतर, धारोला, कांकरेचा, बोहरा, दुधेड़िया, वरडिया, बांठीया, चामड़, कवाड़, राजगन्धी, वैद्यगान्धी शाहा, हरखावत, सराफ, लुंकड़, बुरड़, सिंघी, मुनोयत, गोलिया, ओसतवाल, विनायकिया, मीन्नी, खांटेड, सोलंकी, खटेल, आंचलिया, गोठी, डफारिया, गुजराणी, वंब, गंग पगारिया, गीरिया, गेहलड़ा, सांढ, सीयाल, सालेचा, पुनमिया, ढड्ढा, श्रीपति, तेलेरा, कावड़िया, सुराणा, संखला, भणवट, भिटड़िया डोसी, धोखा, खाबिया गंग, बंग, दुधेडिया कटोतिया, कटारिया, आभाणी, आभड़ कोचेटा, टाटिया, गडवाणी, दरड़ा, पात्रेल, देवड़ा, बुबकिया, लुणिया, मठा, मिटाड़िया इत्यादि, जैन जातियों एक महान् रत्नागर है।

प्रारम्भमें हमारा मनोगतभाव जैन जातियों का महोदय लिखने का था पर जैसे जैसे इतिहास की सामग्री मिलती गई वैसे वैसे उसमें अभिवृद्धि होती गई। केवल जैन जातियों की उत्पत्ति के इतिहाससे यह ग्रन्थ बृहद् हो गया इससे शेष इतिहास दूसरे खण्डमे लिखने की अनिवार्य आवश्यक्ता होना स्वाभाविक बात है पाठकवर्ग कुच्छ समय के लिये धैर्य रक्खे जहाँतक बन सकेगा तो दूसरा खण्ड भी जल्दी ही तय्यार होगा। श्रीरस्तु कल्याणमस्तु।

इति जैन जाति महोदय
पांचवा प्रकरण समाप्तम्।

जैन जातिमहोदय ।

[षष्टं प्रकरण]

श्री देवगुप्तसूरीश्वर पादपद्मेभ्यो नमः

श्री जैन जाति महोदय.

प्रकरण छट्ठा.

जैन समाजकी वर्तमान दशापर उद्भावित प्रश्नोत्तर.

आजकल विचार स्वातंत्र्यका साम्राज्य है, अतः जिस ओर द्रष्टिपात होता है उसी ओर अर्थात् सर्वत्र समाज, जातियाँ और धर्मके नामसे आक्षेपों तथा समालोचनाओंकी वृष्टि दीख पडती है। वास्तवमें समालोचना संसारमें बुरी बला नहीं है; प्रत्युत समाज तथा जाति की बुराईओं को निकालनेवाली, मार्गोपदेशिका, एवं उन्नत-दायिनी है। जिस समाज में जितने निःस्वार्थ तथा निष्पक्षपात आलोचक है, उतना ही उसके लिये अधिक लाभदायी है। किन्तु अनुभवने इससे प्रतिकूल ही भान कराया. वर्तमानमें कुत्सित भाव-नाओं को आगे रखकर आलोचक आक्षेपपुञ्जसे कुलोचना किया

करते हैं जिससे समाज को लाभ के बदले अधिकाधिक हानी पहुं-चती जाती है और क्लेशके कारण समाज अस्तव्यस्त हो गया है।

वर्तमानकालिक जैन समाजकी परिस्थीति की तरफ उपलक द्रष्टिपात मात्रसे नजर दौडाते हुए, जमाने हालका स्वतंत्र विचारक वर्ग, हमारे परमोपकारी प्रातःस्मरणीय पूर्वाचार्योंकी तरफ असत्य आक्षेपोंकी वर्षा करते हुए इस प्रकार प्रश्न परंपरा उपस्थित करतें है कि:—

(१) श्री रत्नप्रभसूरि आदि आचार्योंने क्षत्रियोंसे जैन जातियां बनाकर बहुत ही बूरा कीया, यदि ऐसा न हुआ होता तो जैन धर्मकी विश्वव्यापकता आजकलकी भांति जैन जाति जैसे संकुचित क्षेत्र में न रह जाती अर्थात् कूपमण्डूकता के भोग न बन जाती?

(२) श्रीमान् रत्नप्रभसूरिजी आदि आचार्योंने क्षत्रिय जैसे बहादूर—वीर वर्णको तोडकर अनेक जातियों व समुदाय में विभक्त कर दीया; और उस समाजको कायर—कमजोर बनाकर के उसकी सामुदायिक शक्तिको चकनाचूर कर दिया?

(३) जैन जातियां बनजानेसे ही क्षत्रिय वर्गने जैन धर्मसे किनारा लेलिया?

(४) जैन जातियां बनानेसे ही जैन धर्म राजसत्ता विहीन हो गया, तदुपरांत जातियां, फिरके, गच्छ और समुदाय आदिमें पृथक् २ परिणत होजानेसे, जैन जैसे सत्य और सन्मार्ग दर्शक धर्मका गौरव नितान्त ही लुप्त प्राय: सा हो गया?

(५) जैन जातियोंका एक ही धर्म होने पर भी जहां रोटी व्यवहार है वहां उनके साथ बेटीव्यवहार न होनेकी संकीर्णता का एक मात्र कारण जैनों का जाति बन्धन ही है ?

उपर्युक्त प्रश्नावलीका प्रस्फोट करनेके पूर्व उन विचारज्ञ महानुभावों को उस कालकी परिस्थिति पट पर विहार करने के लिये हम अवश्य अनुरोध करेंगे। समाजोद्धारक महान् पुरुषोंने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको द्रष्टिपथमें रखकर, समाजोन्नतिके लक्षबिन्दु को पार करनेके उद्देश्य मात्रसे ही समयोचित फेरफार किया था। मनुष्य मात्र को प्रश्न करते समय उस कालकी परिस्थितिका सम्यक् अध्ययन, अभ्यास और विचार विमर्श करके ही कहना उचित है कि किस महान् उद्देशसे पूर्वाचार्योंने यह कार्य प्रारम्भ किया था। उस समय इस वास्तविक फेरफार की कितनी आवश्यक्ता थी, परिवर्तन का उस वख्त क्या स्वरूप था, कालके प्रभावसे उसकी असली सूरतमें क्या २ विकृतियां हो गयी, आजकी जैन ज्ञातियोंकी यह दशा असली है या परिवर्तनका ढांचा है? इन बातोंके संपूर्ण अभ्यासित हुए सिवाय उपर्युक्त प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मेरी समजमें इतिहास इन उलझनोंकी गुत्थी सुलझानेमें ज्ञानदीपक है। किन्तु खेद का विषय है कि आजके इतिहास युगके जमानेमें हमारी समाज पृथक् पथपर ही जा रही है। उनको अपनी जातिकी उत्पत्ति, उनके उद्देश और गौरवकी तरफ ख्याल करने तककी तनिक भी फुर्सत नहीं है। जैन जातियोंके अगुआ नेताओं को तथा होनहार नवयुवकों को न तो इति-

हाससे इतना प्रेम है और न तो इन बातोंकी अन्वेषणाकी ओर अपना लक्ष दोडाते है । फिर भी आप समाजके सुधारक बनकर विचार स्वतंत्रता में टांग फसाकर, प्राचीन और ऐतिहासिक बातोंके विरोधी बनकर स्वयं शंकाशील हो अन्य भद्रिक जनताको अपनी पार्टी में मीलाकर, हठधर्मीसे अपनाही कपोलकल्पित मत अथवा पक्ष स्थापित करनेको उद्यत हो जाते है। क्या इससे समाज–सुधार हो गया अथवा हो जायगा ?

प्रिय वर ! विचार स्वतंत्रता केवल आज से ही नहीं अपि तु अनादि काल से चली आई है । संसार में जितने मतमतांतर नजर आते हैं, यदि गहरी दृष्टि से विचार किया जाय तो सब विचार स्वतंत्रता नहीं, पर स्वच्छंदता से ही उत्पन्न हुवे प्रतीत होते हैं। हम विचार स्वतंत्रताके विरोधी नहिं हैं, किन्तु आजकल कितने ही महानुभाव स्वतंत्रता के बजाय स्वच्छंदी बन कर सुधार के बदले समाजकी अधोगति में धकेल रहे हैं । ऐसे सज्जनों को अपने संकुचित हृदय को विशाल बना कर, हमारे निम्नाङ्कित विचारों को ध्यान पूर्वक पढे व सुने और उसमें से जितना सत्य प्रतीत हो उतना ही " क्षिरमिवाम्बु मध्यात् " हंसवत् ग्रहण करने को, हम सविनय प्रार्थना के साथ अनुरोध करते है कि–पूर्वाचार्यो के प्रति जो अभाव–मेल है, उस को उन के उपकार नीर से धो कर, भक्ति भाव से स्वच्छ करदें और हृदयकालुष्य को हटा दें । यही हमारे समाज का और अपना सर्वोत्कृष्ट उद्धार और कल्याण मार्ग है ।

विश्व का प्रवाह और वर्णव्यवस्था.

आदि तीर्थंकर भगवान् श्रीऋषभदेव जो कि इस अवसर्पिणी कालापेक्षा जैनधर्म और जगत् में नीति मार्ग प्रचारक आदि पुरुष है, उन्होंने क्लेश पीडित, अविद्या अंधकार परावृत युगल मनुष्यों के उद्धार निमित्त असी (क्षत्रिय-धर्म) मसी (वैश्य-धर्म) कसी (कृषक-धर्म) अर्थात् कला कौशल्य, हुन्नर, व्यापार उद्योग, आदि नीति मार्ग बतलाया कि जिस से संसार अपना जीवन नीति, धर्म और सुखमय व्यतीत कर सकें। यह नीति मार्ग चिरकाल तक एकधारावच्छिन्न चलता रहा और उत्तरोत्तर संसार की उन्नत्ति होती रही, चारों और शांति का साम्राज्य था। किन्तु यह बात कुदरत से सहन न हुई और " कालो याति चक्र नेमी क्रमेण " यह नियमानुसार कालचक्रने पलटा खाया और काल की विकरालता से उस नीति मार्ग में विश्रृंखलता का प्रादुर्भाव हुआ। शांति और कर्तव्य परायणता भाग गये, अशांति राक्षसीने अपना साम्राज्य जमाना शरु कर दीया। जिस प्रकार आगकी किञ्चित् मात्र चिनगारी शनैः २ दावानल का रुप धारण कर लेती है, उस तरह समाज में अशांतिने भी क्रमशः अपना एकाधिपत्य जमा लिया। पर, किसी भी कार्य से पूर्ण घृणा न हो जाय, तब तक उसका सुधार होना असंभव है यह ही हाल हमारे भारतवर्ष का हो रहा था, चारों ओर जनता का चित्कार आर्तनाद कर्णगोचर होता था, प्राणि मात्र अशांति से त्रासित हो सुधार की प्रतिज्ञा कर रहा था; किन्तु, सुधार करना किसी साधारण

मनुष्य का काम न था, इस के लिये तो एक दिव्य–शक्ति की परमावश्यकता थी।

प्रकृति का यह एक अटल नियम है कि जब शुक्लपक्ष का चन्द्र अपनी उन्नत्ति करता हुआ परमसीमा तक पहुँच जाता है तब कृष्णपक्ष का आरम्भ होता है, और जब कृष्णपक्ष आखिरी हद को प्राप्त कर लेता है, तब पुनः शुक्ल पक्षका प्रादुर्भाव हुआ करता है। यह ही दशा भारत की भी हुयी। भारत उस समय उन्नत्ति के उच्च शिखर पर पहुँच कर, अवनति के गहरे खड्डे में जा गिरा था, किन्तु इस का भी तो उद्धार होना ही था। ठीक उसी समय हमारे पूज्य पूर्व महर्षिपुरुषों की (जिन का लक्ष स्व कल्याण के साथ पर कल्याणका भी था) शितल द्रष्टि त्रासित संसार के उपर पड़ी–फिर तो देर ही क्या थी ? उन्होंने अंधकार कीचड़ में डूबे हुये समाज–उद्धार के लिये अनेक उपाय सोचे और आखीरी निश्चय किया कि संसार में शान्ति बनी रहे, अतः चार मुख्य–आवश्यक साधनों का आयोजन होना चाहिये। (१) सद्ज्ञान, (२) उत्कृष्ट पुरूषार्थ (शौर्य), (३) पर्याप्त द्रव्य, (४) सेवाभाव। इन चारोंमें से एक के भी न होने से कार्य में सफलता होनी दुःसाध्य ही नहिं किन्तु असम्भव है। क्यों कि सद्ज्ञान–श्रेष्ट बुद्धि से सद्–असद्, नित्य–अनित्य, सार–असार आदि वस्तुओं का वास्तविक स्वरुपका ज्ञान होता रहेगा, उत्कृष्ट पुरुषार्थ या शौर्य से राष्ट्र व समाज का संरक्षण होता रहेगा और दिन ब दिन क्रान्ति होगी। पर्याप्त द्रव्य द्वारा देश व समा-

ज की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी, और सेवाभाव से उपरोक्त तीनों साधनों को उन के कार्य क्षेत्र में सहायता और सफलता मीला करेगी। इसी में ही संसार का परम कल्याण है।

बस ! उन सुधारकोंने स्वकीय विचारों को कार्यरूप में परिणत कर के " यथा गुणा स्तथैव नामा " इस उक्ति को चरितार्थ कर के जन समुदाय को चार विभागों में विभाजित कर दिया।

(१) सद्ज्ञान द्वारा जनता की सेवा करनेवाला जन समूह ब्राह्मण वर्ण कहलाने लगा (अर्थात् ब्रह्म—परां विद्यां—दार्शनिक विचारधारां जानातीति ब्राह्मणः)

(२) उत्कृष्ट पुरुषार्थ याने शौर्य द्वारा समाज की सहायता करनेवाला (अपने नाम को चारितार्थ करता हुआ क्षतान्-पीडान्, त्रायते-रक्षति इति क्षत्रियः) समुदाय क्षत्रिय वर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(३) द्रव्यार्जन याने पर्याप्त द्रव्य द्वारा संसार का सहायक वर्ग (गोति—रक्षति धनान् इति गुप्तः) गुप्त अर्थात् वैश्य कहलाया।

(४) सेवाभाव याने अवकाश आदि से जनता की सेवा करनेवाला जन समुह शूद्र कहलाया क्यों कि जिसे पढने पढाने तथा सिखने सिखाने से विद्या और कला कौशल नहीं आया और जिस के अन्दर सेवाभाव जागृत पाया उनको इस समूह में मीलाया।

उपर्युक्त चारों वर्णोंकी स्थापना अपनी २ कार्य प्रणालीका के अनुसार, किसीकी हकुमतसे नहीं, प्रत्युत सेवाभावको ही लक्षमें रख करके हुयी थी। उस जमानेमें सेवाकी ही किम्मत बढ़ चढ़कर समझी जाती थी, उसीका यह प्रबल उदाहरण है। प्रकृतिका एक यह भी अटल सिद्धान्त है कि कामके साथ २ यदि हरएक व्यक्ति को कुछ पुरस्कार मिलता रहे तो वह अधिक उत्साह के साथ अपने कार्यमें दत्तचित्त रहता है। यह व्यवहार–कुशलता हमारे पूर्वाचार्योंमें कम न थी। उन्होंने वर्ण विभाग के साथ २ ही योग्य सामग्रीयाँ प्रदान कर दी थी। यह विभूति उन उन वर्णोंको अनुकूल भी थी। ब्राह्मणोंको मान, क्षत्रियोंको ऐश्वर्य, वैश्योंको विलासता और शूद्रोंको निश्चिन्तता इत्यादि। यहां तक कि ब्राह्मणोंके समान किसीको मान नहीं क्यों कि तीनों ही वर्ण उनके साथ आदर सत्कार से पेश आते थे। क्षत्रियोंके बराबर ऐश्वर्य नहीं क्यों कि उनके ही हाथमें राजतंत्र दे रखा था। वैश्यों के बराबर विलास नहीं कारण कि लक्ष्मीदेवीकी कृपा उनपर असीम थी। शूद्रोंके समान निश्चिन्तता नहीं क्यों कि शारीरिक परिश्रमके सिवाय उनको अणु मात्र भी चिन्ता का शिकार कभी भी न होना पड़ता था।

तीनोंही वर्ण, ब्राह्मणोंके अधिकारमें रखते समय एक यह भी शर्त थी कि, ब्राह्मण वर्ग सदैव ऐश्वर्य और विलासता से दूर रहे यानि विरक्त रहे। स्वार्थ लोलुपतावश धनोपार्जन न करे और धनका संग्रह भी न करें। यदि समाजमें कुछ न्यूनाधिक करनेका

काम पडजावें तो क्षत्रियों द्वारा करावें, न कि स्वयं स्वतंत्रता पूर्वक करने लग जाय । वर्ण व्यवस्था का उस समय एक यह भी नियम था कि नीचे वर्णवाले उपरके वर्णका कार्य न कर सकें और न ऊंचे वर्णवाले भी नीचें वर्णवालोंका काम करें । अगर जो कर लेवें तो शिक्षाके पात्र समजा जाता था । यदि ऊंचे वर्णवाला नीचे वर्णका काम करने लग जाय तो उस वर्णसे पतित मानकर जिस वर्णका काम कीया हो उस वर्णमें समजा जावें । कालान्तर उनकी सन्तानको भी यह ही कार्य करना पडे और उसी समुहमें उनकी गणना की जावें । इस प्रकार वर्णशृंखला और उनके नियमादि बन जानेमें चारों वर्ण अपने २ कर्ममें रत हो गये । इस सुधार–सुव्यवस्थासे जगत्में चारों ओर शान्तिदेवीका साम्राज्य स्थापित हो गया और दुष्ट अशान्ति दुम दबाकर भाग निकली । हरएक समाज अपने उचित कार्योंमें लगजानेसे भारतके गौरवका सितारा एक वख्त फिर भी चमकने लगा ।

प्रिय पाठक ! उपर्युक्त बातोंसे आपको सम्यकृतया विदित हो गया है कि तीनों वर्ण (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) अर्थात् सारा जगत् ही ब्राह्मणों के सत्ताधिनथे, और तीनों समाज उनकी आज्ञा का पालन वडेही सत्कार ओर इज्जतके साथ कीया करते थे । ब्राह्मणोंने जब तक निस्वार्थ भावसे, निष्पक्षपात शासन तीनों वर्ण–संसारके उपर चलाया, तब तक शान्ति और सुखका साम्राज्य अस्खलित भावसे चलता रहा । संसारमें जैसे दिन–रात, पाप–पुन्य, शीत–ताप, धूप–छाया, चन्द्र–सूर्य और तेज-अन्धकार आदि युगल, घटमा-

लकी तरह एक के बाद दूसरा चक्कर लगाया ही करते हैं उसी तरह शान्ति और अशान्ति, सुख और दुःख भी समयानुकूल अपने २ स्वामित्व जमा लेते है। भारतकी असीम-चिरकालीन शान्तिका भी यही हाल हुआ कि ब्राह्मणदेवोंकी कपालीमें, कालकी क्रूरता, कुदरतके प्रकोप अथवा भवितव्यताकी विकृतिसे, स्वार्थान्धता का कीडा आ घुसा अहिंसापरमोधर्मः से पतित हो मिथ्याधर्मका उपदेश देना प्रारंभ कर दिया, स्वार्थ लोलुपता की लिप्सा उनकों खुब सताने लगी। स्वार्थ कीडेनें विप्रवर्योंकी निष्पक्षपातिता, साधुता, कर्मण्यशीलता, सहिष्णुता और परोपकारिता आदिसद्गुणों का भक्षण कर लिया और ऐश्वर्यके साथ विलासताकी पिपासा बढ़ती ही चली, धन और संपत्तिकी तृष्णा पेदा हुयी, वैभव और स्वार्थका समुद्र उलट आया। फिरतो कहना ही क्या था ? संसारभरके सत्ताकी वाग्-डोर तो उनके ही हस्तगत थी, क्षत्रिय लोग तो ब्राह्मण समाजके कठपुतले थे ।। और खिलौनेकी तरह जिधर नचावे उधर नाचते थे। वैश्य वर्ग ब्राह्मणोंकी निरंकुशता और जुल्मी सत्तासे त्राहि २ पुकार रहे थे। बेचारे शूद्रोंकी तो किसीमें गणना भी न थी, घासफूँसकी तरह समजे जाते थे। तीनों वर्ण पर मनमाना अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया, वर्णश्रृंखला छिन्नभिन्न हो गयी, धर्म कर्ममें शिथिलता पड गयी-न्यायान्यायका विचार भी न रहा, हिंसामय यज्ञ यागादि धर्म प्ररूपणा शरु हो गयी, वर्णशंकर जातियाँ पैदा होने लगी और उनके लिये मनमाना पक्षपात युक्त इन्साफ देना ब्राह्मणोंनें आरम्भ कर दीया। इतना ही नहीं, किन्तु ऐसे २ ग्रन्थ भी बना डालें कि जीसमें कपोलकल्पित स्वार्थमय, हिंसायुक्त विधिविधान रच दिये,

यज्ञ यागादिकी प्रवृत्ति शरु करा दी और उससें असंख्य अबोल प्राणीयों के बलिदानमें ही पुन्यका ठेका दे दीया। अतिरीक्त इसके केइओनें तो ऋतुदानादि में महापुन्य बतलाना शरु कर दीया। कइ एक व्यभिचारीयोंने वाम मार्ग (उलटा मार्ग) जैसे व्यभिचारी मतोंकी स्थापना कर दी। ब्राह्मण लोग अच्छी तरह समजते थे और उनको पूर्णतया शंका भी थी कि इन ग्रन्थों को सर्व लोग, सर्व कालमें स्यात् ही मानें इसलिये उन्होने उस पर छाप ठोक दी कि यह सब शास्त्र–ग्रन्थ ईश्वर–प्रणीत है। इन शास्त्रों को न माननेवाला "नास्तिको वेद निन्दकः" नास्तिक होगा और उसकी स्वर्गमें गति न रहेगी अर्थात् नर्कमें जाना पडेगा। इत्यादि। ब्राह्मणोंका अत्याचार यहांतक बढ़ गया कि चारों ओर हाहाकार मचने लगा, अशान्तिकी भट्ठियाँ चोतरफ धधकने लगी। भयभीत त्रासग्रस्त जनता एक ऐसे दिव्य महापुरुषकी प्रतीक्षा कर रही थी कि जिनकी कृपासे अशान्ति अन्धकारका नाश हो कर शान्ति प्रकाश हमारें मानसों को प्रकाशित कर दें।

"परिवर्तनशील संसारे मृतः को वा न जायते" समय परिवर्तनशील है। रात्रिके घोर अंधकारके बाद सूर्योदय हुआ ही करता है। संसारके अज्ञान तिमिरका नाश होना ही था, अज्ञानान्धकारकी परिसीमा भी हो चुकी थी। ठिक उसी समय भगवान् महावीर देवने अपने देदिप्यमान तेजस्वी स्वरुपकी रश्मि-राशिसे, दिव्य अहिंसा प्रधान शासनद्वारा अज्ञानान्धकारपटको हटा कर ज्ञानसूर्य का प्रकाश संसारके कौने २ में फैला दिया।

अशान्ति आपदाएँ पलायन कर गयी; " **अहिंसा परमो धर्मः** " का झुंडा रोप कर भगवान् महावीरदेवने ब्राह्मणों के असुराक्षसी अत्याचार और घोर हिंसामय यज्ञ यागादि क्रियाके विधि विधान को समूल उन्मूलित कर दिये। अपनी देशव्यापी बुलन्द आवाजसे वर्ण, जाति, उपजातिरूप बन्धनोंको तोडफोड के फेंक दिये। कारागृहसे छुटा हुआ कैदी जैसे स्वतंत्रता का दम लेता है, ठीक उसी प्रकार जनताने भी अत्याचार-अधर्म मुक्त हो प्रभु महावीरके धर्मपरायणताका झन्डाकी शरण ली। शान्तिका श्वासोच्छ्वास लिया। उंच नीचके भेद चोरोंकी तरह भाग गये। हृदयमें समभावकी तरङ्ग उमंगे उठने लगी, " **आत्मवत् सर्व भूतेषु** " का मंत्रोच्चार चारों ओर कर्णगोचर होने लगा, भ्रातृभाव और स्नेहका समुद्र उछलने लगा। लोग भूले हुए रास्तेको छोड धर्म पथपर आ गये। महावीर प्रभु के धर्मध्वज शरणागत समूहका नाम " **श्री संघ** " रखा गया इस समुहकी थोडे ही समयमें इतनी वृद्धि हो गयी कि लोग हजारों नहीं, लाखों नहीं, बल्कि करोडोंकी संख्यामें एकत्रित हो गये। बडे२ राजा महाराजाओंने भी इसीका ही आश्रय लिया। इसका कारण यह था कि जनता ब्राह्मणोंके मनमाने असभ्य अत्याचारसे व्यथित हो सद्धर्म और शान्तिकी पिपासु हो रही थी यह चिरशान्ति भगवान् महावीरके श्री चरणोंमें मीली। यज्ञ-यागादिकी घोर हिंसा और वर्ण जाति बन्धनको श्री महावीरने प्रथम नष्ट किया, तदनन्तर महात्मा बुद्धने भी अनुकरण किया और उन्होने भी अपने संघकी स्थापना की।

विक्रम पूर्व दूसरी शताब्दी में महामेघवाहन चक्रवर्ति राजा खारवेल हुआ, जिसके अस्तित्व समयका एक परमोपयोगी श्रद्धापात्र शिलालेख उडीसाकी हस्ती गुफासे, पाश्चिमात्य विद्वानोंके परिश्रमसे उपलब्ध हुआ है, जिसमें "वेनराजा" का उल्लेख "वधमान-सेसयो वेनाभि विजयो तेतिये" (वर्धमान शैशवो वेनाभि विजय स्तृतीये) मीलता है । उसी वेन राजा को वर्ण व जाति न मानने से "पद्मपुराण" में जैन बतलाया है । शायद राजा वेनने भगवान महावीर के उपदेशानुसार वर्ण व जाति का बहिष्कार किया हो, और यह बात ब्राह्मणों को असह्य लगने के कारण, जैसे कि मौर्य—चन्द्रगुप्त आदि राजा को जैन धर्म पालने के कारण हलके वर्णका ब्राह्मणोंनें चित्रित कर दीया है, वैसे ही उसको भी जैन लिख दिया हो तो वस्तुतः यह बात सम्भव हो सक्ती है । राजा वेन भगवान् महावीरस्वामी के समकालीन हुआ है यह बात इतिहास सिद्ध है । इस लेख से हमारे प्रस्तुत विषय पर अच्छा प्रकाश पडता है, कि सब से प्रथम ही श्री महावीरदेवने वर्ण व जाति के बन्धनों को तोडा, और राजा वेन उन अग्रसरोंमें से एक था—अर्थात् प्रथम प्रधान कार्य कर्ता था । यह सुधार घटना का प्रादुर्भाव प्रायः कर के पूर्व बंगाल—खास करके मगध देश में हुआ—बाद ही में चारों ओर फैल गया । पर मरूभूमि जैसे वाममार्गिओं के साम्राज्य में यह हवा तो ३०—४० वर्षों के बाद ही पहूंची और उस को पहुंचाने वाले पूर्वोक्ताचार्य स्वयंप्रभसूरि और रत्नप्रभसूरि ही थे,

कि जिन्होंने वाममार्गी जैसे व्यभिचारी मत से और वर्ण जाति आदि बन्धनों से जर्जरित हुये शक्ति तंतुओं को एकत्रित कर के "महाजन संघ" की स्थापना करते हुये जगदोपकार किया। लंबी चौडी बातें हांकनेवालों को यह भी ख्याल में रखना चाहिये कि उस समय उन व्यभिचारियों के वज्र समान किल्ला तोडना कोई साधारण कार्य न था। उन समर्थ आचार्योंने अपने अपूर्व आत्मबल से अर्थात् अथाग परिश्रम करके इस विषम कार्य में अमूल्य सफलता प्राप्त की, और नर्कके मार्ग जाते हुये प्राणीयों को उपदेश द्वारा खींच कर, स्वर्ग मोक्ष के सीधे पथपर ले आये. और अनेक अधर्म-ग्रसित आत्माओं का कालुष्यको सुन्दर सद्धर्मोपदेश से धो-कर उद्धार किया। आपकी तरफ से इस के ही परितोषिक स्वरुप उपरोक्त प्रश्नावली में झलकता हुआ सन्मान (!) मील रहा है। महान् पुरुषों के उपकारों को भूल जाना भी पापकार्य माना गया है, तो फिर उन के उपर दोषारोपण करने से तो क्या सिद्धि प्राप्त होगी, इस का तो पाठक गण ही स्वयं विचार करें।

प्रिय पाठकगण! जरा हृदयक्षेत्र को विशाल करके उपर्युक्त घटना को सद्ज्ञान द्वारा सोचिये, कि उस परिस्थिति में यह फेरफार समयोचित था या नहीं? जनता किस कद्र अपनी शक्तियों को अनेक विभागों में विभक्त करके अत्याचारियों के धधकते हुये अग्निकुंड में अपनी बलि चढा रही थी ब्राह्मणों के दुराचारों से भारतवर्ष का वह अमोघ शौर्य किस तरह निस्तेज हो रहा था। ब्रह्मदेवोंने अपना राक्षसी अभिमान और विलासता

को पोषण करने के लिये तीनों वर्णों को अपने पैर तले कैसे और किस हद तक दबा रक्खे थे। इन बातों का आप जरा अपने ज्ञान चक्षुओं द्वारा अवलोकन किजिये ? हृदयतुला पर यथेष्ट और यथार्थ तोलिये ? कि किस परिश्रम द्वारा जैनाचार्योंने उन पृथक् २ विभागों में छिन्न भिन्न बिखरे हुये शक्ति तंतुओं को एकत्रित करके "महाजन संघ" की स्थापना की होगी ? क्या उनको स्वप्न में भी यह कल्पना होगी कि जिस जनता को वर्ण व जातिरूपी कारागृह से आज हम मुक्त करके दिव्य शक्तिमय संघ में सम्मिलित कर रहे हैं वह संघ ही कालान्तर में स्वार्थवशता के वशीभूत हो कर जाति, उपजाति रूप बंधनों से वन्दीभूत हो जायगा ? अपनी २ शक्तियों के टुकडे २ कर देगा ? उत्तम भावनाओं से संकलित किया हुआ यह संघ कालान्तर में अपनी हृदय विशालता को संकुचित कर के एक ही धर्मोपासक एकात्मभावी संघ रोटी बेटी व्यवहार तोड कर अपने विशाल क्षेत्र को अस्तव्यस्त कर देंगे ? ऐसे भयंकर दूषित विचारोंने क्या पूर्वाचार्यों के सरल उपकारी हृदय को कभी स्पर्श भी किया होगा ? अपि तु कभी भी नहीं। उस काल के इतिहास से अब आपको यह तो अच्छी तरह विदित हो गया होगा, कि वर्ण तथा जाति के अनुचित बंधनो को तोडने की प्रथा का प्रारम्भ पूर्व प्रदेशो में भगवान् महावीर और मरूभूमि आदि स्थलों में आचार्य श्री स्वयंप्रभसूरि और रत्नप्रभसूरिने किया था। उन्होंने इस कार्य में सम्पूर्ण सफलता प्राप्त कर जगदूद्धार किया था। आज कल के जैन संसारने उन्ही

की दया विभूति से जैन कहलाने का सौभाग्य प्राप्त किया है। आगे चल कर आप अपने अनौचित्य पूर्ण तथा अदूरदर्शता मिश्रित प्रश्नों का यथोचित उत्तर भी सुन लीजिये और हृदय की शंकासंतति को भी सद्ज्ञान द्वारा दूर कर दीजिये।

प्रश्न—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि आदिने क्षत्रियोंसे जैन जातियां बनाकर बहुत ही बूरा किया, यदि ऐसा न हुवा होता तो जैन धर्मका विश्वव्यापित्व आजकलकी जैन जाति जैसे संकुचित क्षेत्रमात्रमेंही सीमित न रहजाता।

उत्तर—विदित हो कि आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि आदिने क्षत्रिय मात्र को ही नहीं बल्कि तीनों वर्णोंको एकत्रित करके ही "संघ" की स्थापना की थी। उन्होंने आजकलकी जैन जातियां बनाई भी न थीं। किन्तु प्रभाविक, शक्तिशाली, समभावी, उंच नीचके भेद रहित उच्च आदर्शयुक्त "महाजनसंघ" के नामसे समुदायिक बलको एकत्रित किया था। वर्ण व जाति बंधनोंसे मुक्त कर उनके विभक्त शक्ति तन्तुओंको एकत्रित कर "महाजनसंघ" रूपी प्रबल रस्सामें गुन्थित कर, धर्मपतित संसारको एकात्मभावी बनाकर उन्नतिके उच्च शिखर चढ़ाये थे। रत्नप्रभसूरिजीने अज्ञानान्धकाररूपी शत्रुको समूल नष्ट किया, जिनसे जैन धर्म तथा संसार का सूर्योदय हुआ। उस संघ के अन्दर भरी हुयी दिव्यशक्ति-विद्युतने सतेज होकर स्वकीय कल्याण के साथ संसारका कल्याण किया। इतना ही नहीं, पर सर्वोत्तम जैन धर्म जो कि संकुचित क्षेत्रमात्र में ही रह गया था, उसको विश्वव्यापी बनानेका दरवाजा

खोल दिया था कि सर्व साधारण जनता जैन धर्म को स्वीकार कर आत्मकल्याण कर सके। न कि पूर्वाचार्योंने धर्म का ठेका किसी एक व्यक्ती जाती व वर्ण को ही दे रखा था कि जिस का दोष पूर्वाचार्यों पर लगाया जाय ?

जरा ज्ञान लोचन से आलोचना कीजीए कि उस जमाना की भद्रिक जनता उन व्यभिचारी कुगुरु पाखण्डियों की माया जाल में फंस कर तथा वर्णशंकर जातियों में विभक्त हो क्लेश कदाग्रह उच्च नीच का भेदभाव अर्थात् अभिमान के वशीभूत हो अपने शक्ती तन्तूओं को किस कदर नष्ट कर रही थी। यज्ञादि में हजारों लाखों निरपराधि प्राणियों के बलीदान से अधर्म को अपनी चरम सीमा तक पहूंचा दिया था। मांस मदिरादि दुर्व्यसन से तो मानो नरक का दरवाजा ही खोल रक्खा था। व्यभिचार सेवन में तो उन पाखण्डियोंने स्वर्ग और मोक्ष ही बतला दिया, इतना नहीं पर उन पाखण्डियों के जोर जुलम से चारों और भृष्टाचार की भट्ठीयों धधक रही थी जनता में अशान्ति और त्राहि त्राहि मच रही थी।

ठीक उसी समय आचार्यश्रीने अपने आत्मबल और पूर्ण परिश्रम अर्थात् अनेक कठनाइयों का सामना करते हुए अपने सदुपदेश द्वारा उन भद्रिक जनता को प्रतिबोधदे उन के अज्ञान मिथ्यात्व उच्च नीच के भेदभाव और मिथ्या अभिमान को समूल नष्ट कर समभावी बना एक सूत्र में गुंथित कर महाजन संघ की

स्थापना कर उन पर विधि विधान के साथ ऐसा प्रभावशाली वासक्षेप डाला कि वह सदाचार के जरिये स्वर्ग और मोक्ष के अधिकार बन गये, जिस के फल स्वरूप आज पर्यन्त उनकी परम्परा सन्तान आचार्यश्री दर्शित शुद्ध मार्ग का ठीक अनुकरण कर रही है। इतना ही नहीं पर उन महाजन संघ के नररत्नवीरोंने देश, समाज, और धर्मकी अत्युत्तम सेवाएं कर अपने नाम से इतिहास पट्ट अलंकृत किया, जिस के यशोगान के मधुर स्वर आज भी प्रतिध्वनित हो रहे हैं। इतना ही नहीं पर महाजन संघ की देश सेवा को आज अच्छे अच्छे विद्वान, अर्थात् ऐतिहासज्ञ सज्जन मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं और महाजन संघ की देश सेवा का जो प्रभाव जन समूह पर पडा है, वह सब आचार्यश्री का अनुग्रह—कृपा का ही मधुर फल है। महाजन संघ के नररत्न दानेश्वरों के बनाए हुए हजारों आलीशान मंदिर, लाखों मूर्त्तियों, अनेक कुए, तलाव, वावडियों मुसाफिर खाने, और दुष्कालादि विकटावस्था में क्रोडों द्रव्य व्यय कर अन्न पीडित देश भाइयों के प्राण बचाए. इत्यादि यह सब प्रत्यक्ष प्रमाण किसी से छिपा नहीं है। क्या यह आचार्यश्री की पूर्ण कृपा का उत्तम फल नहीं है ?

यदि आचार्यश्रीने वह उपकार नहीं किया होता तो क्या वह दुराचार सेवित वर्ग जैन धर्म स्वीकार कर पूर्वोक्त सद्कार्य कर अनन्त पून्योपार्जन से स्वर्ग मोक्ष के अधिकारी बन सकते ? इतना ही नहीं पर उन मिथ्यात्व सेवित महानुभावों तथा उन की परम्परा सन्तान की न जाने क्या गती (दशा) होती ?

आप सज्जन बखूबी सोच सकते हो कि आज जो जैनधर्म स्वल्प मात्र अर्थात् जैन जातियों में ही जैन धर्म रह गया, जिस का दोष क्या हम हमारे परमोपकारी जैनाचार्य पर लगा सके हैं ? अपि तु कभी नहीं। कारण आचार्यश्री रत्नप्रभसूरिने न तो आज की भान्ति अलग अलग जातियों बनाई थी और न किसी जातियों को धर्म का ठेका भी दिया था कि अमुक जातियों के सिवाय, कोई भी जैन धर्म को पालन ही नही कर सके।

वास्तव में आचार्यश्रीने तो भिन्न २ वर्ण व जातियों में विभक्त हो जनता अपने अमूल्य शक्तियों और जीवन नष्ट कर रही थी, उन को अधर्म से मुक्त कर समभावी बना के महाजन संघ की स्थापना कर उन का दिन प्रतिदिन रक्षण पोषण कर वृद्धि करी थी। हम तो आज भी छाती ठोक दावे के साथ कह सके हैं कि जैन धर्म का द्वार प्राणीमात्र के लिए खुला है, किसी भी वर्ण जाति के भेद भाव विना कोइ भी भव्यात्मा जैन धर्म को स्वीकार कर आत्मकल्याण कर सके हैं, और हम उन के सहायक हैं।

जो जैन धर्म जातियों मात्र में ही रह गया, उन का कारण हमारे पूर्वाचार्य नहीं, पर खास तौर पर हम ही है कारणः—

(१) हमारे आचार्योंने उच्च नीच के अभिमान को हटाया था, हमने उन को पुनः धारण कर लिया, जिस का ही यह कटुक फल है कि जैन धर्म जैन जातियों में रह गया।

(२) हमारे आचार्योंने महाजन संघ की स्थापना कर विशाल भावना से उस का चिरकाल पोषण और वृद्धि करी थी। आज हमारी संकुचित भावनाने उन संघ को तोड फोड कर टुकडे २ कर दिए, और वह भिन्न २ जातियों में विभक्त हो क्लेश कदाग्रह का घर बन कर हमारी अल्प संख्या में बडा भारी सहायक हुवा है।

(३) हमारे पूर्वाचार्यों की दीर्घदृष्टीने हमारा महोदय किया आज हमारी अदूरदर्शीताने हमारा अधःपतन किया।

(४) हमारे आचार्यों की परोपकार परायणताने विश्व को अपना बना लिया था, आज हमारी स्वार्थवृत्तिने हमारा सत्यानाश कर डाला। अर्थात् एक देवगुरु के उपासकों में उच्च नीच का भेद भाव पैदा किया है तो एक हमारी स्वार्थवृत्तिने ही किया न की पूर्वाचार्यने।

(५) हमारे आचार्योंने भिन्न २ मत–पंथ के मनुष्यों को एकत्र कर उनके आपसी संबन्ध जोड आपस में प्रेम ऐक्यता की वृद्धि कर जैन बनाए। आज हम एक ही धर्म पालने वाले एक दूसरों के साथ संबन्ध तोड के उनको आपसे भिन्न समझने लगे इत्यादि अनेक कारणों से हमारी अल्प संख्या रह गई और फीर भी होती जा रही है अर्थात् जाति मात्र में धर्म रह जाने के खास कारण हम ही हैं न कि पूर्वाचार्य। बल्कि पूर्वाचार्यों ने तो हमपर बड़ा भारी उपकार किया कि आज हम जैन कहलाने में भाग्यशाली बने हैं।

(२) प्रश्न—श्रीमान् रत्नप्रभसूरीजी आदि आचार्यों ने क्षत्रिय जैसे बहादुर वीर वर्ण को तोड कर अनेक जातियों व समुदाय में विभक्त कर दिया और उस समाज को कायर कमजोर बना कर के उस की सामुदायिक शक्ती को चकनाचूर कर दिया ?

उत्तर—आप पहिले प्रश्न के उत्तर मैं पढ चूके है कि आचार्यश्रीने न तो किसी वर्ण को तोडा और न उन्होने भिन्न भिन्न जाति ही बनाई थी। उन महर्षियोंने तो भिन्न २ जाति वर्ण में विभक्त जनता को समभावी बनाके महाजन संघ की स्थापना कर उनकी संगठन शक्ती को महान् बलवान् बनाई थी, भिन्न २ जातियों बना के उनकी शक्ति को चकचूर कर देने का दोष आचार्यश्री पर लगाने के पहिले उनके इतिहास को पढ लेना बहुत जरूरी बात है; कारण एक महान् उपकारी महात्मा पर असत्याक्षेप कर वज्रपाप से बच जावें।

वास्तव में आचार्यश्रीने दुराचार सेवित जनता पर दया भाव लाकर के उनके खान पान आचार व्यवहार शुद्ध कर " महाजन संघ " रूपी एक संस्था स्थापित की थी। तत्पश्चात् उस संस्था के लोग श्रीमालनगर से अन्यत्र जाकर निवास करने से लोग उनको 'श्रीमाल' कहने लग गए। इसी माफिक उपकेशपुर से अन्यत्र जाने से वह 'उपकेश' (ओसवाल) वंश कहाने लगे, और प्राग्वट नगर से " प्राग्वट ' (पोरवाड) वंश प्रसिद्ध हुए। कालान्तर पूर्वोक्त वंशो से एकेक कारण पाकर भिन्न

भिन्न गोत्र और जातियों बन गइ, जैसे—कइ तो ग्राम के नाम से, कई व्यापार करने से, कई प्रसिद्ध पुरुषों के नाम से, कई धर्म कार्यो से, कई राज कार्यों से, कई हांसी ठठ्ठा कूतुहल से; इत्यादि एक ही संस्था से अनेक जातियों बन गई कि जिनकी गणना करना मुश्किल है पर इन जातियों बन जाने में भी एक गुप्त रहस्य रहा हुआ है वह यह है कि एक प्रान्त में स्थापित हुई संस्थाने अपने तनधन मान प्रतिष्टा की इतनी उन्नति करली कि वह अनेक शाखा प्रति शाखा रूप मे विस्तार पाती हुई वटवृक्ष की भांति भारत के चारो और पसर गई इतना ही नहीं बल्कि अपने भूजबल से देश का रक्षण किया और अपनी उदारता से हजारों लाखों क्रोडो द्रव्य खर्च कर देश समाज और धर्म्म की उन्नति करी। क्या वह कम महत्व की बात है ? यह सब हमारे पूर्वाचार्यो की उपदेश कुशलता और कार्य पटुता तथा परोपकार-परायणता का सुन्दर फल है अगर संघ संस्था स्थापन करने से ही जैन जातियों में कायरता व कमजोरी आगई मान लि जावे तो उन जातियों की इतनी उन्नति होना स्वप्न में भी कल्पना नहीं हो सक्ती। यह तो हमे दावा के साथ कहना पडता है कि उस जमाना में न तो जैन धर्मोपासक कायर थे और न कमजोर थे पर उस समय जैन जातियो के हुंकार मात्र से भूमि कम्प उठती थी। राजतंत्र और व्यापार प्रायः जैन जातियों के ही हस्तगत था. जैन जातियों को कायर—कमजोर कहनेवाले सज्जनों को अपक्ष पात दृष्टि से उस जमाना के इतिहास को पढना चाहिये। देखिये—

(१) उपकेशपुर नगर का महाराज उपलदेवने जैन धर्म स्वीकार करने के बाद उनके अठाइस उत्तराधिकारियोंने जैन धर्म पालन करते हुवे भी वडी वीरता से राजतंत्र चलाया। उनकी बेटी व्यवहार तो चिरकाल तक राजपुतों (क्षत्रिय) के साथ ही रहा था जिन्होंने अपने भुजबल से देशका रक्षण कर जनता की वडी भारी उन्नति की थी. इतना ही नहीं पर उन जैन वीरोने अनेक युद्धक्षेत्र में अपनी वीरता का विजय झुंडा भी फरकाया था. उन की संतान आज श्रेष्टिगोत्र और वैदमुता के नाम से शूर-वीरो में मशहुर है इस जाति के नररत्न वीरोंने चिरकाल तक जागीरियों व दीवानपद और फोजमुसफ आदि राज कर्मचार्य व धर्म सेवा में ही अपनी जीवनयात्रा पूर्ण करी थी। मुत्ताजी लाल सिंहजी करणसिंहजी सवाइसिंहजी पृथ्वीसिंहजी हरनाथजी चतुरभुजजी जगमालजी और सुलतानसिंहजी आदि बडे नामी हुवे है—वीकानेर व मेडता के प्रसिद्ध वैदमुतों की वीरता से मुग्ध हो राजामहाराजाओंने उनको कई ग्राम और पैरों में सोना बक्सीस किया था वह आज पर्यन्त वैदमुतों की महत्वता बतला रहा है। जोधपुर के वैदमुत्ता पाताजी और जैतसिंहजी का यश आज भी जिवीत है सोजत के वैदमुत्ता सतीदासजी की सत्यता और स्वामि धर्मिपना प्रसिद्ध है। खेरवा के मुत्ता सबलदासजी की सिंहगर्जना से दुश्मन पलायन हो जाते थे। सिवाणा के वैद मुत्ता ठाकुरसिंहजी और नरनारायण की प्रचण्ड वीरता से मुस-लमान लोग कम्प उठते थे जालोर के वैदमुत्ता तेजसिंह की तीक्षण

तलवारने पठान जैसे अजय लोगों का इस कदर पराजय किया था की उस समय के वीर रसपोषक भाटों के वहियों उनवीर पुरुषों की वीर काव्यों से भरी पडी है जैसे

वैदोंने वरदान । आगेइ सचिया तणो ।
खपिया तेरहखान । तपियों मुत्तो तेजसी ॥ १ ॥

इत्यादि अनेक वीरोंने वीरता का परिचय दे इतिहास पट्टको अलंकृत किया—जैसे वह लोग वीर थे वैसे उदार भी थे जिन्होंने लाखों क्रोडों द्रव्य पुन्य कार्योंमें व्यय कर अपनी उज्वल कीर्ति को विश्वव्यापी वना दी थी. एक समय इस एक वैदमुता जातिके एक लक्ष घरोंसे भारतभूमि विभूषित थी यहाँपर वैदमुता जातिका किंचित् परिचय करवाया है वैसे ओसवाल कोम में हजारों जाति के असंख्य नरपुङ्गवोंने अपनी वीरता व उदारता से देश सेवा कर अपना नाम अमर वना दिया था । क्या जैन जातियों के लिये कायर—कमजोर कहनेका कोई व्यक्ति साहस कर सक्ता है। अपितु कभी नहीं ।

(२) वि० सं० ६८४ सिन्धपतिराव गोशलभाटी को आचार्य देवगुप्तसूरिने प्रतिबोध दे जैन बनाया बाद उनकी १९ पीढी तक उनका बेटी व्यवहार राजपूतों के साथ रहा. इनकी परम्परा संतानों में इतने वीर हुए कि जिनकी सिंह गर्जनासे अजय्य मुसलमान बादशाह भी कम्प उठते थे । आदूशाह, मारंगशाह,

नरसिंह और लुणाशाह विगेरे बडे ही नामी हुए और जिनकी संतान आज लुणावत के नामसे मशहुर है।

(३) वि० सं० १०३९ नाडोलाधिप राव लाखणजी के लघु बन्धव राव दुद्धाजी को आचार्य यशोभद्रसूरिने प्रतिबोध दे जैन बनाया. बाद माता आसापुरीका काम करनेसे उनकी जाति भण्डारि हुई उनके १४ पीढी तक तो बेटी व्यवहार राजपूतों के साथ ही रहा था, जिन भण्डारि जाति कि वीरता के लिये यहाँ पर विशेष लिखने की आवश्यक्ता और अवकाश नहीं है. कारण इनकी वीरता जगत्प्रसिद्ध है तथापि एक उदाहरण यहाँपर लिख देना अनुचित न होगा। जो कि महाराजा अजीतसिंहजीके राजत्वकालमें अहमदाबाद मुसलमानोंकि दांडोंमे चला गया था. इस पर ७०० घुडसवारों के साथ भण्डारी रत्नसिंहजी को अहमदाबाद विजय करनेको भेजे। भण्डारीजीने वहाँ जाकर अपनी कार्यकुशलता युद्धचातुर्यता और भूजबलसे युद्धक्षेत्रमें मुगलोंके ऐसे तो दान्त खट्टे कर दिये कि उनको रणभूमिसे प्राण लेकर भागना पडा और भण्डारीजीने अहमदाबाद स्वाधीन कर जोधपुर नरेश का विजयडंका बजवा दिया। क्या जैन जातियों कायर—कमजोर थी?

(४) जैसे भण्डारियोंकी वीरता अलौकीक थी वैसे सिंधियोंकी वीरतासे दिल्लिकी बादशाहायत भी कम्प उठती थी. सोजत और जोधपुरके सिंधियो की वीरताको लिखी जाय तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ बन जाय. हालहीमे सिंधीजी इन्द्राराजजी फतेराजजी

और बच्छराजजी मारवाडका इतिहासमे बडे ही मशहुर है. क्या जैन जातियें कायर थी ?

(५) मुनोयत—जोधपुर के महाराजा रायमलजीके संतान मोहनजीने विक्रम की चौदहवी शताब्दीमें जैन धर्म स्वीकार किया जबसे उनकी संतान मुनोयत जाति के नामसे मशहुर हुई—इस जातिकि वीरता कुच्छ अलौकिक ही है जैसलमेर कीसनगढ और जोधपुरके मुनोयतोंकी वीरताका वीर चारित्र सुनतेही कायरो के निर्बल हृदय में शौर्य का संचार हुवे विगर कभी नहीं रहता है इस जातिकी वीरताके लिये एक उदाहरण भी काफी होगा जो कि मुनोयत वीर नैणसी और सुन्दरदास यह दोनो वीर जोधपुर राजाके दीवान और फोजमुशाफ थे जब दरबारने औरंगाबाद पर चडाई कीथी उस समय दोनो वीर साथमे थे और युद्धक्षेत्रमे अपनी वीरता का पूर्ण परिचय भी दीया था; पर कितनेक लोग द्वेष ईर्षाके मारे दरबारको कुच्छ और ही सोचादि कि दरबार उन दोनो वीरो से नाराज हो उन पर एक लक्ष मुद्रिकाए का दंड कर दिया इसपर वह निर्दोष वीर युगल निडरतासे कह दिया कि—

लाख लखारां संपजे । अरु वड पीपल की साख.
नटिया मुत्ता नैणसी । तांबो देण तलाक ॥ १ ॥
लेसो पीपल लाख । लाख लखारा लावसी,
तांबो देण तलाक । नटिया सुन्दर नैणसी ॥ २ ॥

इन वीर वाक्योपर मुग्ध हो दरबारने उनको दंडसे मुक्त

कर पुनः अपना लिया. ऐसे तो इस जातिमें अनेक वीर हो गये पर हालहीमे मेहताजी विजयसिंहजीका जीवन पढिये कि वह आद्योपान्त वीरताका रंगसे ही रंगा हुआ है।

इनके सिवाय संचेती बाफणा करणावट समदडिया गद-इया पारख चोपडा चोरडिया लोढा सुराणा हथुडीया राठोड सिसोदीया परमार चौहान सोलंखी बोथरा तातेड वडभूरा आदि हजारों जातियों के असंख्य नरवीरोंकी वीरताका चरित्र लिखा जावे तो एक महाभारत सदृश ग्रन्थ बनजावे.

जब हम गुजरातके जैन वीरोंकी तरफ दृष्टिपात करते है तब तो हमारे आश्चर्यकी सिमा तक भी नहीं रहती है। कारण गुजरातके राजतंत्र चिरकाल तक जैनजातियोंने बडी वीरतासे चलाया. इतना ही नहीं पर उनने वहां का राज किया कहदिया जाय तो भी अतिशययुक्ति न होगा—वीर काकव पातक, नानीग, लेहरी, विमलशाहा, उदाई, पेथड, मुंजाल, संतु महेता, बाहड मंत्री और वस्तुपाल तेजपाल इत्यादि इनकि अलौकिक वीरता इतिहासके पृष्टो पर आज भी वीरगर्जना कर रही है। फिर भी क्या जैन जातिये कायर और कमजोर थी ?

जैन धर्म केवल जैन जातियों का ही नहीं था पर पूर्व जमाना में इस पवित्र धर्म के उपासक बडे बडे राजा महाराजा जैसे राजा प्रश्नजीत, चेटक, उदाई, अनंगपाल, चन्द्रपाल, चण्ड. प्रद्योतन, श्रेणक, कोणक, चन्द्रगुप्त. आशोक, बिन्दुसार, कनाल,

महाराजा संप्रति, महामेघवाहन चक्रवृति, महाराजा खारवेल, धूवसेन, सल्यादित्य, वनराज चावडा, महाराजा आम, अमोघवर्ष, धर्मपाल, देवसेन और कुमारपालादि सैंकडो राजाओंने अपने जैन धर्म का बडी योग्यता से रक्षण पोषण कर उन को उन्नत बनाया था और आज जो जैन जातियों जैन धर्म पालन कर रही है वह भी प्रायः सब क्षत्रिय वंश मे ही पैदा हुई है और इन जातियों के पूर्वजोने भारत का राजतंत्र बडी कुशलता से चलाकर राजपूत्त होने का परिचय भी दिया था।

भारत का राजतंत्र जहाँतक जैन जातियों के हस्तगत रहा था यहाँतक भारत के चारो और शान्ति का साम्राज्य वरत रहा था और लक्ष्मीदेवी की पूर्ण कृपा से देश में दालिद्रता का नाम निशांन तक भी नहीं था अर्थात् देश तन धन से बडा सम्रद्धिशाली था यह सब जैनों की कार्यकुशलता सिन्धीकुशलता और रणकुशलता का उज्ज्वल दृष्टान्त है तत्पश्चात् जैसे जैसे जैन जातियों से राजतंत्र छीन्ना गया वैसे वैसे देश में अशान्ति फैलती गई क्रमशः आज भारत विदेशियों की बेडीयों में जकडा हुवा पराधिनता का दम ले रहा है साथ मे दालिद्रताने अपना पग पेसारा करना सरू कर दिया।

जैन जातियों ज्यां ज्यां राज कार्यो से पृथक होती गई त्यां त्यां उन लोगोंने व्यापार क्षेत्र में अपने पैर बढाते गये। जल थल रास्ते देशविदेश मे खुब व्यापार कर उन लोगोंने लाखो क्रोडो क्हीं पर अर्बो खर्बो रूपैये पैदा किये। यह कहना भी अतिशय-

युक्ति न होगा कि उस समय भारत का व्यापार प्रायः जैन जातियों के ही हस्तगत माना जाता था. व्यापार के जरिये उन लोगोंने अपनी व देश की खुब उन्नति करली थी. बात भी ठीक है कि व्यापार एक देशोन्नति का मुख्य कारण है जिस देश मै व्यापार की उन्नति है वह देश धन धान्यादि से सदैव हरावरा रहता है भारत सदैव से व्यापार प्रधान देश है फिर भी जैनो की व्यापार कुशलता सत्यता और प्रमाणिकताने तो उस मे केइ गुणावृद्धि करदी इतना ही नहीं पर जैन जातियोंने व्यापार द्वारा भारत में लक्ष्मी की इतनी तो रेलछेल कर दी और अन्योन्य देशों की लक्ष्मी भी भारत पर मोहित हो अपनी वरमाला भारत के कण्ठ में पहरा के--भारत को ही अपना निवास स्थान बना लिया, जैन जातियोंने जैसे राजतंत्र चला के देश सेवा कर सौभाग्य प्राप्त किया था वैसे ही वैपार की उन्नति कर देश सेवा का यश प्राप्त करने में भाग्यशाली बनी थी।

जैन जातियोंने व्यापार में असंख्य द्रव्योपार्जन कर केवल मोजमजहा मे ही नहीं उडा दिया था. साथमे लक्ष्मी की चञ्चलता भी उन से छीपी हुइ नहीं थी. न्यायोपार्जित द्रव्य को स्वपर कल्याण कार्यों में व्यय करने की भावना उन लोगों की सदैव रहा करती थी यही तो उन दूरदर्शी महाजनो की महाजनता और बुद्धिमन्ता है । और उन लोगोने किया भी ऐसा कि शत्रुँजय, गिरनार आबु तारंगा कुलपाक अंतरीक्ष मक्सी कुम्बरिया और राणकपुरादि पवित्र स्थानोंपर लाखो क्रोडो अर्बों और खर्बों रूपये

खर्च कर धर्म के स्थंभरूप दिव्य जिनालयों की प्रतिष्ठा करवाई जिस से धर्म सेवा के साथ उन्होंने भारत की सील्पकला को भी जावित प्रधान करने का शोभाग्य प्राप्त किया। जैसे उन को धर्म सेवा से प्रेम था वैसे ही वह देश और देश भाई की सेवा करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे और इसी कर्त्तव्यपरायणता का परिचय देते हुवे असंख्य द्रव्य व्यय कर हीन, दीन दुःखियों का दुःख निवारणार्थ अनेक कुँवे तलाव वावडियों मुसाफरखाने दानशालाओ औषधशालाओ पाणीकी पौं और बडे बडे काल दुष्कालो में अन्न पीडित देशभाइओं को अन्न प्रदान कर उन का आशार्वाद संपादन किया था इतना ही नहीं पर मुशलमानो के जुल्मी राज में कर टेक्स के लिये साधारण जनता को अनेक वार बन्धीवान कर लेते थे उस विकटावस्था में भी जैनोंने असंख्य द्रव्य से उन देशभाईयों को प्राणदान देकर अपना कर्त्तव्य अदा किया. जिस दानेश्वरो मे जगडुशाहा जावडशाहा देशलशाहा गोशलशाहा समराशाहा श्यामाशाहा भैशाशाहा भैरूशाहा रामाशाहा सांढशाहा खेमादेदांणी सारंगशाहा ठाकरशी नरनारायण विमलाशाहा और वस्तुपाल तेजपाल विशेष प्रसिद्ध है उन दानेश्वरो के मधुर यशोगान आज भी कर्णगोचर हो रहा है अगर जैन जातियो कायर कमजोर होती तो यह शोभाग्य प्राप्त कर सक्ती ?

अगर जैन जातियों कायर कमजोर होती तो विक्रम पूर्व ४०० वर्ष से विक्रम की सोलहवी शताब्दी तक क्षत्रियादि वीरपुरुष जैन धर्म को ग्रहन कर ओसवाल ज्ञाति में कदापि सामिल

नहीं मिलते, जैन जातियों मे क्या तो राजकर्मचारी क्या व्यापारी सभी वीरता धैर्यता सत्याता और शौर्यता कि कसोटी पर कसे हुवे थे उन के हाथ नपुंसको कि भांति अस्त्र शस्त्र विहिन कभी भी नहीं रहते थे वह अपने तन धन जन और धर्म का रक्षण स्वयं ही आत्मशक्ति और भूजबल से ही किया करते थे न की दूसरो की अपेक्षा रखते थे फिर समझ मे नहीं आता है कि जैन जातियों को कायर कमजोर बतला कर हमारे परम पूजनिय पूर्वाचार्यों का अनादार क्यों किया जाता है ?

जैन धर्म का अहिंसा तत्व जितना उच्च कोटिका है उतना ही यह विशाल है पर उन को समझने के लिये इतनी बुद्धि होना परमावश्यक है। जैन मुनियों के लिये सर्व चराचर प्राणियोंकी रक्षा करना उन का अहिंसाव्रत है तब गृहस्थों के लिये अहिंसाव्रत की मर्यादा रखी गई है अर्थात् वह किसी निरापराधि जीवों को तकलीफ न पहुँचावे पर अन्यायि दुराचारी और अंपराधि को दंड देना व संग्राम में उनका सामना करना और प्राणदंड देना गृहस्थों के अहिंसाव्रत का बाधक नहीं समझा गया है कारण अनेक राजा महाराजा जैन धर्म का अहिंसाव्रत पालन करते हुए भी रणभूमि में अनेक अपराधियों को प्राणदंड दिया है जिन से उन के अहिंसा व्रत को किसी प्रकार कि बाधा नहीं पहूँची थी अतएव जैन जातियों कायर कमजोर नहीं प्रत्युत शूरवीर है जैन धर्म का खास सिद्धान्त पुरुषार्थ प्रधान है आत्मशक्तियों को विकाश में लाने के लिये क्रियाकाण्ड उन के साधन है

आत्मशक्तियों का विकाश होना ही वीरता है और इस के लिये जैन जातियों का सदैव प्रयत्न होता रहता है फिर जैन जातियों को कायर कमजोर बतलाना यह अज्ञान नहीं तो और क्या है ?

जैन धर्म के सब तीर्थंकर पवित्र क्षत्रिय जैसे विशुद्ध वीर-वंश में अवतार धारण किया और उन्होंने दुनियों की कायरता और कमजोरियों को समूल नष्ट करने को वीरता का ही उपदेश दिया इतना ही नहीं वल्कि उन्होंने वीरता में ही मोक्ष बतलाया था. तदानुसार उन की परम्परा संतान में अनेक आचार्य हुए उन सबने विक्रम की सोलहवीं शताब्दी तक तो एक ही धारा-वाही वीरता का ही उपदेश दिया तत्पश्चात् कलिकाल कि क्रुरता से केइ मतमतान्तरों का प्रादुर्भाव हुवा और कितनेक अनभिज्ञ लोग जैन धर्म के अहिंसा तत्वकी विशालता को पूर्णतया नहीं समझ के बिचारे भद्रिक लोगों को केवल दयापालो दयापालो का उपदेश दे उन वीर जातियों के हृदय से वीरता निकाल ऐसा तो संस्कार डाल दिया कि वह लोग अपने तन धन और धर्म के रक्षणार्थ अस्त्र शस्त्र रखते थे और काम पडने पर दुश्मनों का दमन करते थे वह विध्वा के चुडियों कि भांति तोड फोड के फेंक दिये । और अपने आचार व्यवहार मे भी इतना परावर्तन कर-दिया जिन से दुनियों को यह कहने का अवकाश मिल गया कि जैन जातियों कायर कमजोर और उन का आचार व्यवहार अने-क दोषो से दोषित है अर्थात् गन्धीला है इस अनुचित दया का यह फल हुवा कि उस समय से नया जैन बनना बिलकुल ही

बन्ध हो गया और स्वच्छन्दता का उपदेश के जरिये जैन जातियों में अनेक क्लेश कदाग्रह पैदा होने से कुसम्पने अपना सुब जोर जमा लिया आज जितना कुसम्प जैन जातियों में है उतना शायद ही किसी अन्य जाति में होगा ?

बडी खुशी की बात है कि वीरता के विरोधियों के अनुयायियों को भी आज जमाना की हवा लगने से उन्होंने केइ स्थानों पर गुरुकुलवासादि संस्थाओं स्थापन कर समाजमें वीर पैदा करने कि आशा से शारीरिक व मानसिक विकास के साथ कसरत और शस्त्र विद्या का अभ्यास करवा के अपने पूर्वजो की भूलमें सुधारा करने का प्रयत्न कर रहे है अगर साथ ही में जो आचार व्यवहार और इष्ट में परावर्तन हुवा था उस को भी सुधार लिया जाय तो जो उन्नति सो वर्ष में नहीं कर सके वह केवल दश वर्षो में ही हो सकेगा और जैन जाति पर कायरता व गन्धीला आचार का लांछन लागा है वह भी दूर जावेंगा।

वास्तव में न तो जैन जातियों कायर है न कमजोर है न उन का आचार व्यवहार गन्धीला है प्रत्युत्त जैन जातियों बडी शूरवीर और सदाचारी है जिस की साबुती के लिये प्रश्न का उत्तर कि आदि से अन्त तक विस्तृत संख्या में प्रमाण लिख दिये गये है।

(३) तीसरे प्रश्न में जो क्षत्रियोंने जैन धर्म से किनार कर लिया इत्यादि परन्तु खास कर के तो इन का कारण उपर लिख दिया है कि जब से जैन जातियों पर अनुचित दया का प्रभाव पडा और

सदाचार में परावर्तन हुवा उसी रोज से क्षत्रियोंने जैनधर्म से किनारा ले लिया अर्थात् नये जैन होना बन्ध हो गये और दूसरा यह भी कारण है कि अन्य धर्म में खाना पीना रहन सेहन भोगविलास की स्वच्छंदता है अर्थात् सब तरह की छुट है और जैन धर्म का मुख्य सिद्धान्त वैराग्यभाव पर निर्भर है यहा इन्द्रियों कें गुलाम नहीं बनना है पर इन्द्रियों कों दमन करना पडता है विषयभोग विलास से विरक्त रहना पडता है इर्षा द्वेष अभिमान क्रोध लोभादि आन्तरिक वैरियो पर विजय करना है संसार से सदैव निवृति अर्थात् संसार में रहते हुवे भी जल कमल कि माफीक निर्लेप रहना पडता है इत्यादि जैन धर्म का कष्टमय जीवन संसार लुब्ध जीवों से पालन होना मुश्किल ही नहीं पर दुःसाद्य है इसी कारण से क्षत्रिये लोगोने जैन धर्म से किनारा लिया है न कि जैन धर्म का तत्वज्ञान को समझ के । जैन धर्म का सिद्धान्त इतना तो उच्च कोटि का है कि जिसको अवलोकन--अध्ययन करनेवाले असंख्य पूर्वीय और पश्चत्य विद्वान मुक्त कण्ठ से जैन धर्म के सिद्धान्तो की प्रशंसा कर रहे है ।

इतना होने पर भी हमारे जैनाचार्य जैन धर्म का तत्वज्ञान समझाने के लिये आज भी मैदान में कुद पडे तो पूर्ण विश्वास है कि वह जैन धर्म का खुब प्रचार कर सके जैसे कि पूर्वाचार्योंने किया था कारण आज गुण गृहाही और तत्व निर्णय युग में सत्य को ग्रहन करनेवालों कि संख्या दिन ब दिन बढती जा रही है । पर हमारा दुर्भाग्य है कि आज हमारे आचार्यों को व मुनि पुङ्गवों

के गृह क्लेश और आपुस कि विरोधता के कारण फुर्सतही कहा है कि वह अपने जैन धर्म के तत्वज्ञान को आम पब्लिक में जैनेत्तर भाइयों को समझा के उन के अन्तःकरण को जैन धर्म की और झुका दे।

हम मे अविनय अभक्ति न होजा वास्ते हम नम्रतापूर्वक और दुःख के साथ कहते है कि आज कितनेक आचार्य या मुनि महाराजोने गुर्जर प्रान्त को तो अपनि विलायत ही बना रखी है विशेषतः अहमदाबाद सुरत पाटण बडोदरा और पालीताणा को ही पसंद किया जाता है गुजरात में सेंकडो मुनि विचरने पर भी गामडो में उपदेश के अभाव सेंकडो नहीं पर हजारों जैन जैन धर्म से पतित हो जैनेतर समाज में चले गये और जा रहे है। पर उन की परवाह किस को है फिर भी अपने बचाव के लिये यह कह दिया जाता है कि हम क्या करे उन्ह के कर्मो की गति है उन के भाग्य में ऐसा ही लिखा है बस यह ही वाक्य मार-वाड मेवाड मालवादि प्रान्तों के लिये समझ लिया जाय कि जहां मुनि विहार के अभाव से धर्म की नास्ति होती जा रही है असं-ख्य द्रव्य से बनाये हुवे जिनालयों कि आशातना हो रही है अन्य धर्मियों के उपदेशक उन पर अपना प्रभाव डाल रहे है जो जैन धर्म के परमोपासक भक्त थे वह ही आज जैन धर्म के दुश्मन बनते जा रहे है इत्यादि क्या इन सब बातें का दोष हम हमारे पूर्वाचार्यो पर लगा सक्ते है ? नहीं कभी नहीं।

तीसरा यह भी एक कारण है कि पूर्व जमाना में जैनेत्तर

लोग जैन धर्म को स्वीकार करते थे तब उन को सब तरह कि सहायता दि जाति थी उन के साथ रोटी बेटी व्यवहार बडी खुशी के साथ किया जाता था और उन को अपना स्वधर्मि भाई समझ बडा आदर सत्कार किया जाता था इस वात्सल्यता को देख अन्य लोग जैन धर्म कों बडी शीघ्रता से स्वीकार किया करते थे आज हमारी जैन समाज का कलुषीत हृदय इतना तो संकुचित हो गया है कि आज हमारे मन्दिरों और उपाश्रयों के दरवाजे पर स्वयं बोर्ड लगाया जाता हुवा है कि जैनेत्तर लोगों को मन्दिर उपाश्रय में पग देने का भी अधिकार नहीं है अगर कोई जैन तत्त्वज्ञान कि ओर आकर्षित हो जैन धर्म स्वीकार कर ले तो उन के साथ रोटी बेटी व्यवहार की तो आशा ही क्या ? जैनेत्तरो के लिये तो दूर रहा पर खास जैन धर्म पालने वालि जातियों जो कि अपने स्वधर्मि भाई है पूर्व जमाना में किसी साधारण कारण से उन के साथ बेटी व्यवहार बन्ध हो गया था और वह अल्प संख्या में रह जाने से बेटी व्यवहार से तंग हो जैन धर्म को छोड रहा है पर उच्चता के ठेकेदारों में उन स्वधर्मि भाईयों के साथ बेटी व्यवहार करने कि उदारता कहां है चाहे वह धर्म से पतित हो जा तो परवहा किस को है। फिर भी वडी बडी डिंगें हांकते है कि जैन जातिये बनाने से क्षत्रियोंने जैन धर्म से किनार ले लिया परन्तु यह दोष आप की संकीर्णता का है या पूर्वाचार्यों का ? भलो क्षत्रिय तो दूर रहा पर ओसवाल, पोरवाड, श्रीमाल, वगैरह तो एक ही खान के रत्न है पर उन के साथ रोटी व्यवहार होने पर भी बेटी व्यवहार क्यों नहीं किया

जाता है इसी दुःख के कारण तो गुजरात में केइ छोटी छोटी जातियें जैन धर्म का परित्याग कर अन्य धर्म को स्वीकार कर लिया और उन की ही संतान आज जैन धर्म से कट्टर शत्रुता रख अनेक प्रकार से नुकशान पहुंचा रही है । प्रियवर ! क्षत्रियोंने जैन धर्म से किनार ले लिया इस का कारण पूर्वाचार्यों कि संघ संस्था नहीं किन्तु जैन समाज कि हृदय संकीर्णता ही है ।

(४) जैन जातियें बनाने से जैन धर्म राज सत्ता विहिन हो गया तदुपरान्त जातिये गच्छ फिरके आदि में अलग २ पड जाने से जैन धर्म जैसा सत्य और सन्मार्ग दर्शक धर्म का गौरव प्रायः लुप्तसा हो गया ?

उत्तर—अब आप को याद दीलाना न होगा कि पूर्वाचार्योंने अलग २ जातिये नहीं बनाई किन्तु अलग अलग वर्ण जातियों में विभाजित जनता को एकत्र कर ' महाजन संघ ' कि स्थापना की थी अगर थोडी देर के लिये मान भी लिया जाय कि जातियें बनाने से ही जैन धर्म राज सत्ता विहिन हो गया तो क्या आप यह बतला सकते हो कि राज सत्ता संयुक्त धर्म में फिरके जातिये और समुदायों का अभाव है ? क्या राजसत्ता धर्म में क्लेश कदाग्रह कुसम्प नहीं है ? अर्थात् क्या वहाँ शान्ति का साम्राज्य दृष्टिगोचर हो रहा है ? अगर ऐसा न हो तो यह दोष हमारे पूर्वाचार्यों पर क्यो ? यह तो जमाना कि हवा है वह सब के लिये एक सारखी होती है ।

सत्य और सन्मार्ग दर्शक जैन धर्म प्रायः लुप्त सा हो जाने का कारण हमारे पूर्वाचार्य और उन का संघ संगठन कार्य कभी नहीं हो सक्ता है कारण उन्होंने तो सेंकडो कठनाइयों का सामना कर के भी मरणोन्मुख गया हुवा जैन धर्म का उद्धार कर । जीवित प्रदान किया । अगर सत्य कहा जाय तो वह सब दोष अपना ही है और इस दोष का कारण अपनी बेपरवाही–कमजोरी, प्रमाद और हृदय कि संकीर्णता है कि आज सत्य जैन धर्म सिवाय उपाश्रय के किसी विद्वानों के कानो तक पहुंचाने का तनक भी कष्ट नहीं उठाया अगर जैन धर्म के प्रचारक आज भी कम्मर कस कर तय्यार हो जाय तो जैन धर्म को फिर से राष्ट्री धर्म अर्थात् विश्वव्यापि धर्म बना सक्ते है पर लम्बी चौडी बाते हाकनेवालो के अन्दर इतनी हिमत और पुरुषार्थ कहाँ है ?

फिरके गच्छ और समुदाये अलग २ होने का कारण जैन जातिये नहीं पर साधारण क्रियाकाण्ड है तथापि उन सबका तत्व ज्ञान एक ही है राज सत्ता विहिन होने का कारण भी जैन जातियें नहीं पर इन का खास कारण तो हमारे आचार्यो देव का उपाश्रय ही है कि वह अपने उपाश्रय के बहार जा के जैन तत्वज्ञान–फिलासफी का प्रचार करना चिरकाल में बंध कर रखा है इतना ही नहीं पर बडे बडे राजा महाराजो और अनेक विद्वान् राज कर्मचारी वगैरह जैन धर्म का तत्वज्ञान समझने कि जिज्ञासा करने पर भी उन कों समझावे कोन ? कारण कितनेक तो मुनि खुद भी तत्वज्ञान से अनभिज्ञ है और कितने को कि पीच्छे इतनी

यादि व्याधि और उपाधि लगी हुई है कि वह अपने बन्धन के पडदे से बहार तक भी नहीं निकल सके है और कितनेक अपने मानपूजा और गृह कलेश रूपी किचडमें फसे हुवे पडे है तब दूसरी तरफ शुष्क ज्ञानी और बाह्य क्रिया काण्डमें धर्म समझने-वालो का परिभ्रमन विशेष संख्या में हो रहा है, उन की क्रिया प्रवृति रेहन शेहन का असर जैनो पर कितना ही प्रभाव क्यो न पडा हो पर जैनेत्तर लोगोंने तो उन की क्रिया प्रवृति पर यह नि-र्णय कर लिया कि जैन धर्म का सिद्धान्त शायद यह ही होगा कि मैले कुचिले रहना स्नान नहीं करना, वनस्पत्यादि का त्याग करना, मन्दिर मूर्त्ति पूजना में पाप मानना. घरो से या बजार से धोवा धावा का पाणी ला कर पीना और किसी राजा राणी कि कथा को राग रागणियो दोहा ढाल चोपाइ से गा के सुना देना इत्यादि बातो कों ही जैन धर्म के तत्त्व समझ रखा है क्या इस भ्रम पूर्ण मंतव्य का समूल नष्ट करने के लिये किसी भी आचार्यने पब्लिक में या राजा महाराजाओ कि सभा में जा कर अपना सर्वोत्तम जैन धर्म का तत्वज्ञान कों समझनें का प्रयत्न किया है जैसे कि पूर्वाचार्योंने अपना स्मपूर्ण जीवन हीं इस पवित्र कार्यों में पूर्ण कर दिया था.

जरा आंख उठा कर देखिये पूर्वाचार्योंने महाजन संघ कि स्थापना समय से ले कर विक्रम कि तेरहवी शताब्दी तक तो जैन धर्म को एक राष्ट्रीय धर्म बना रखा था बाद गच्छ और मतो का भेद से जैसे जैसे संकीर्णता का जोर बढता गया वैसे वैसे जैन

धर्म राजसत्ता विहिन बनता गया। इसमें जैन जातिये बनाने वाले आचार्यों का दोष नहीं है, दोष है जैन समाज की संकुचित धृति का अगर उस को आज ही हटादि जाय तो फिर भी जैन समाज की जाहुजलाली हो सकती है।

(५) प्रश्न—जैन जातियो का एक ही धर्म होने पर भी जहाँ रोटी व्यवहार है वहाँ उन के साथ बेटी व्यवहार न होने की संकीर्णता का खास कारण जैन जातियो का बांध न हीं है ?

उत्तर—क्या आप को पूर्ण विश्वास है कि इस कुप्रथा कों आचार्यश्रीने ही चलाई थी. कि तुम एक धर्मोपासक होते हुए भी आपस में रोटी व्यवहार हो वहाँ बेटी व्यवहार न करना ? अगर ऐसा न हो तो यह मिथ्या दोष उन महान् उपकारी पुरुषों पर क्यो ? वास्तव में तो आचार्य रत्नप्रभसूरिजीने क्षत्रिय ब्राह्मण और वैश्यो का भिन्न २ व्यवहार और उच्च नीचता के भेद भाव कों मीटा के उन सबका रोटी बेटी व्यवहार सामिल कर 'महाजन संघ' कि स्थापना करी थी और उन का आपस में यह एक व्यवहार चिरकाल तक स्थाई रूप में रहा भी था. कालान्तर उन एक ही संस्था की तीन साखा रूप तीन टुकडे हो गये जैसे उपकेशवंश, श्रीमालवंश और प्रागवटवंश। यह केवल नगर के नाम से वंश कहलाया था नकी इनका व्यवहार प्रथक् २ था इतना ही नहीं पर उन के बाद सेंकडो वर्ष तक मांस मदिरादि कुव्यसन सेवी राजपुत्तादि को प्रतिबोध दे दे कर उनका खानपान आचार व्यवहार शुद्ध बना के पूर्वोक्त महाजन संघ और उन की साखाओ में

सामिला मिलाते गये और उन के साथ रोटी बेटी व्यवहार भी खुला दील से करते गये। इस हृदय विशालता के कारण ही हमारे पूर्वाचार्य और समाज अग्रेसरोने समाजोन्नति में अच्छी सफलता प्राप्त की थी जो कि सरू से लाखो कि तादाद में थे वह क्रोडों की संख्या तक पहुंच गये।

शिलालेखों से पत्ता मिलता है कि विक्रम की इग्यारवी शताब्दी तक तो ओसवाल पोरवाड और श्रीमालो के आपसमे बेटी व्यवहार था और वंशावलियों तो विक्रम की सोलहवी शताब्दी तक पुकार कर रही है इस वात्सल्यता से ही जैन जातियों का महोदय हुवा था और इसमे मुख्य कारण हमारे पूर्वाचार्य और समाज नेताओ कि हृदय विशालता ही थी.

कालान्तर उन जाति अग्रेसरो के मस्तकमें ईर्षा–मत्सरता का एक जबर्जस्त किडा आ घूसा. जिस के जरिये प्रत्येक साखा के अग्रेसरों के हृदय मे अभिमान पैदा होने लगा। ऐश्वर्यता और ठकुराईरूपी मद ने उन्ह को चारों और से घेर लिया. इसका फल स्वरूपमें एक साखा के नेताओं के साथ दूसरी साखा के अग्रेसरो का वैमानस्य हुवा तब एकने कहा कि तुम पोरवाड हो दूसराने कहा तुम श्रीमाल हो तीसराने कहा तुम ओसवाल हो इस क्षुद्रवृति की भयंकरता यहाँ तक बढ गई कि ओसवालोने पोरवाड को कह दिया कि हम तुमको बेटी नहीं देगें. पोरवाडोने श्रीमालो को कह दिया की हम तुम को कन्या नहीं देगें इत्यादि फिर तो था ही क्या जिस २ प्रान्तोमे जिन २ साखाओ कि प्रबल्यताथी

उन २ अभिमानियोंने अपनि सत्ता का इस कदर दुरूपयोग करना सरू कर दिया कि जो अपने स्वधर्मियों के साथ चिरकाल से रोटी बेटी व्यवहार चला आया था. जिसको बन्ध करने में ही अपना गौरव समझ लिया. इतना ही नहीं बल्कि जिन आचार्यश्रीने प्रथक २ वर्णो–जातियों मे विभाजित जनता को एक भावी बना के उनका आपस में संबन्ध जोड दिया था और वह चिरकाल से आज प्रथक् प्रथक् बन गया और एक दूसरों को आपस मे भिन्न समझने लग गये । इस कुसम्प के जन्मदाता सरू से तो समाज के अभिमानी अग्रेसर ही थे बाद मे तो यह चेपी रोग देश, प्रान्त, ग्राम और घरघरमे फेल गया और दो चार पीढियें वितजानेपर तो उनके ऐसे संस्कार दृढ हो गये कि हम आपसमे कभी एक थे ही नहीं अर्थात हम सदैव से अलग ही थे यह भिन्नता यहाँ तक पहुँच गई कि एक दूसरों से घृणा तक भी करने लग गये तथापि हमारे आचार्यो कि कार्यकुशलता से उनके रोटी व्यवहार एक ही रहा इस का मतलब यह होना चाहिये कि उन आचार्योंने यह सोचा होगा कि आज इनके आपस मे वैमानस्य है तथापि अगर रोटी व्यवहार सामिल रहेगा तो कभी फिरसे विशाल भावना आनेसे तुटा हुवा कन्या व्यवहार पुनः चलु हो जायगा ? शायद उन महर्षियों के अत्युतम विचार इस समय प्रेरणा कर रहा हो तो ताजुब नहीं है ।

एक महाजन संघरूपी संस्था तुट कर तीन विभाग में विभाजित हो गई और उन तीन टुकडो से आगे चलकर अनेक

खण्ड खण्ड हो गये और वह ग्राम वगेरेह के नाम से अलग २ जातियों के रूप मे परणित हो एक दूसरो को प्रथक् २ समझने लग गये । उस जमाना मे रोटी बेटी व्यवहार बन्ध कर देना तो मानो एक बच्चो का खेला सदृश हो गया था इतना ही नहीं पर एक ही जाति में जैसे मुत्सद्दी लोग व्यापारियों को कन्या देने में संकीर्णता बतलाते हुवे अभिमान के हाथीपर चढ गये थे और भी दशा–बीसा–पंचा अढायादि इतने तो टुकडे हो गये थे कि जिस की संख्या देख हृदय भेदा जाता है.

इतना होनेपर भी उस समय जैनो कि तादाद क्रोडो कि संख्या मे थी और प्रत्येक जथ्थामें लाखो क्रोडो कि संख्या होनेसे उनको वह अनुचित कार्य भी इतना असह्य नहीं हुवा कि जीतना आज है ।

इस कुप्रथाने न्याति जाति में ऐसे तो सजड संस्कार डाल दिया कि एक जाति का मनुष्य किसी दूसरी जाति कि कन्या के साथ विवाह कर ले तो उस को जाति बहिष्कृत के सिवाय कोइ दूसरा दंड भि नहीं दिया जाता था जिसका एक उदाहरण यहाँपर बतला देना अनुचित न होगा ? यह उदाहरण उस समय का है कि जिस समय स्वस्वजातिमे कन्या व्यवहार होने की कुप्रथा अपनी प्रबल्यता को खुब जमा रही थी, अर्थात् विक्रम की चौदहवी शताब्दी की यह जिक्र है । कि ओसवाल ज्ञातिके आर्यगोत्रिमें एक बडा ही धनाढ्य और धर्मज्ञ लुणाशाह नाम का महाजन था उसने पूर्व संस्कार प्रेरित एक महेश्वरी कन्या से विवाहा कर लिया. इस-

पर ओसवाल ज्ञाति के अग्रेसरोंने लुणाशाहा को न्याति बहार कर दिया, ठीक उसी समय नागोर से श्रीमान सारंगशाहा चोरडियाने निजद्रव्य से अपने संघपतित्वमे एक बड़ा भारी और समृद्धशाली संघ निकाला वह क्रमशः चलते हुवे एक गूढ नगर के किनारे बडी विशाल और मनोहर बावडि तथा सुन्दर गुलजार बगेचा को देख अर्थात् सर्व प्रकारसे सुविधा समझकर उसे रात के लिये वहाँ ही निवासकर दिया. बावडि और बगेचा कि अत्युत्तम भव्यता देख संघपतिने नागरिको कों पुच्छनेसे पत्ता मिला कि यह बावडि व बगेचा थाकित पंथी–मुसाफरो के विश्रामार्थ इसी नगरमे रहनेवाला लुणाशाहा नाम के साहुकारने निज द्रव्यसे बनवा के अनंत पुन्योपार्जन किया है यह सुनते ही संघपति खुश हो लुणाशाहासे मिलने कि गरजसे आमन्त्रण भेजा उन दानेश्वरी को अपने पास बुलवाया और धन्यवाद के साथ उनका बडा भारी आदर सत्कार किया। लुणाशाहा भी संघपति का धर्म स्नेहसे आकर्षित हो अपनि तरफसे भोजन का आमंत्रण किया कुच्छ देर तो आपसमें मनुहारो हुई आखिरमे लुणाशाहा का अति आग्रह देख संघपतिकों लुणाशाहा का स्वामिवात्सल्य को स्वीकार करनाही पडा। लुणाशाहाने भोजन कि इतनी तो अलौकिक तय्यारिये करवाई कि उन सबको लिखना लेखनीके बहार है भोजन समय श्री संघके लिये स्वर्ण और रूपा के थाल कटोरियों इतनी तो निकाली कि जिसको देख संघपति आदि आश्चर्य में डुब गये और विचार करने लगे कि ९००

थाल अनेक कटोरियो केवल सोना की है और रुपे के थाल लोटो कि तो गणती भी नहीं है तो इस के घरमें अन्य द्रव्य तो कितना होगी क्या लक्ष्मीदेवीने अपनि वरमाला लुणाशाहा के गलेमे डाल इसको ही वर पसंद किया है अस्तु। भोजनकि पुरसगारी होने के पश्चात संघपतिने अपने साथ भोजन करने के लिये लुणाशाहा को आमंत्रण किया। इसपर सत्यवादी लुणाशाहाने साफ कह दिया कि मैं आपके साथ भोजन नही कर सक्ता हुं संघपतिने उसका कारण पुच्छा। लुणाशाहाने विगर संकोच कह दिया कि मैं महेश्वरी कन्याके साथ विवाह किया इस कारणसे जातिने मुझे जाति बहिष्कृत कि सजा दि है इत्यादि यह सुनते ही संघपति के क्षुधापिपासित हृदयमें बडा ही दुःख पैदा हुवा और सोचने लगा की ओहो आश्चर्य यह कितना दुःख का विषय है कि एक साधारण कारण को लेकर ऐसा नररत्न का अपमान कर देना भविष्यमे कितना दुःखदाई होगा कहां तो अदूरदर्शी लोगो कि उच्छ्रंखलता और कहाँ लुणाशाहा कि धैर्यता गांभिर्यता संघपतिने भोजन भी नहीं किया और जाति अग्रेसरों को बुलवा के मधुर वचनो से समजाया कि महेश्वरी कोइ हलकी जाति नहीं है ओसवाल महेश्वरी एकही खानके रत्न है उनका आचार व्यवहार, खानपान अपने सदृश ही है और उनके साथ अपना भोजन व्यवहार आमतौरपर खुला है फिर समाजमें नहीं आता है कि पूर्व संस्कारो से प्रेरित हो लुणाशाहाने महेश्वरी कन्यासे विवाह कर लिया तो इसमे इतना कोनसा बूरा हो गया कि जिसको जाति

से बहार कर दिया ? मेरा ख्यालसे तो आप सज्जनो को ऐसा अनुचित कार्य करना ठीक नहीं था पर खेर अब भी इसका सुधार हो जाना बहुत जरूरी है और भविष्य में इसके फल भी अच्छा होगा इत्यादि संघपति के कहनेका असर उन जाति अग्रेसरोपर हुवा तो सही पर उनने अपना हटकों साफ तौर से नहीं छोडा इस लिये संघपतिने अपनि कन्या की सादी लुणाशाहा के साथ कर दि इस विशाळ भावनाने उन जाति नेताओ पर इतना असर किया कि वह संघपति के हुकम को सिरोद्धार कर लुणाशाहा के साथ जातिव्यवहार खुला कर दिया इस रीति से संघपतिने अपने हृदय कि विशालता उदारता से लुणाशाहा के महत्व में और भी वृद्धि कर उनको साथ ले आप गिरिराजकी यात्रा के लिये संघ के साथ प्रस्थान कर दिया।

इस उदाहरणसे आपको भली भांति रोशन हो गया होगा कि इस अनुचित बरतनने साधारण बात पर समाजमें किस कदर क्लेश कदाग्रह फेला दिया था कहाँ तो लुणाशाहा जैसे को न्याति बहिष्कृति करनेवालो कि संकीर्णता और कहाँ. जाति हितैषी—दूरदर्शी संघपति कि हृदय विशालता कि जिन्होंने निज कन्या दे कर संघमे शान्ति स्थापन की।

क्या कोई व्यक्ति यह कहन का साहस कर सके है कि एक धर्मपालन करनेवालि जैन जातियों में जहा रोटी व्यवहार है वहां बेटी व्यवहार न होने का कारण जैन जातियों व पूर्वाचार्य है ? अपितु

हरगीज नहीं । इन सब दोषों का कारण तो हमारी जैन समाज का संकुचित हृदय और संकीर्ण वृत्ति ही है कि जिसके जरिये जैन समाज दिनप्रतिदिन अधोगति को पहुँच रहा है ।

सज्जनों ! वर्तमान जैन समाज कि पतनदशा देख अदूरदर्शी लोगोंने आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि आदि पूर्वाचार्यों पर मिथ्या दोष लगा के अपनि आत्मा को कृतघ्नीता का वज्रपापसे अधोगति मे डालने का प्रयत्न किया है उन महानुभावो पर हमे अनुकम्पा अर्थात् दया आ रही है इसी कारण उन अनुचित प्रश्नों का समुचित उत्तर इस निबन्ध द्वारा दिया गया है । जिस को आद्योपान्त खुब ध्यान पूर्वक पठन पाठन करने से आपको ठीक तौर पर रोशन हो जायगा कि—

(१) न तो आचार्य रत्नप्रभसूरिने अलग २ जातिये बनाई थी जैसे कि आज दृष्टिगोचर हो रही है ।

(२) न आचार्यश्रीने जो महाजन संघ स्थापन कीया था, उनको कायर और कमजोर बनाया था ।

(३) न आचार्यश्रीने जैन धर्मको राजसत्ता विहिन ही बनाया.

(४) न आचार्यश्रीने गच्छ फिरके समुदाये बनाई थी.

(५) न आचार्यश्रीने कहा था कि तुम एक धर्मपालन करते हुए भी कन्याव्यवहार करने मे संकीर्णता को धारण कर लेना.

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि आदि पूर्वाचार्योंने जो कुच्छ किया वह ठीक सोच समजके जैन धर्मकि उन्नति के लिये ही किया था और इस उत्तम कार्य कि उस समय बडी भारी आवश्यक्ता भी थी. और जहाँ तक उन महर्षियों के निर्देश किये पथ पर जैन समाज चलता रहा वहां तक जैन समाज कि दिन व दिन बडी भारी उन्नति भी होती रही थी इतना ही नहीं पर जैन जातियों भारत में सब जातियो से अनेकगुणा चढवढके जहुजलाली भोगव रही थी. जबसे आचार्यश्री प्रदर्शितपथ से प्रथक् हो मन घटित मार्ग पर पैर रखना प्रारंभ किया था. उसी दिन से एक पिच्छे एक एवं अनेक कुरुढियोंने जैन समाज पर अपना साम्राज्य जमालीया जिसके जरिये उन्नति के उच्च सिक्खपर पहुंची हुई जैन जातियों क्रमशः आज अवनीतिकी गेहरी खाडमे जा गिरी है उन कुरूढि- यों को हम आगे के प्रबन्धमे ठीक विस्तारसे बतलाने का प्रयत्न करेगें। अगर उन हानीकारक कुरुढियों को जैन समाज आज ही जलाञ्जली दे दे तो कलही आप देख लिजिये जैन जातियों का उज्वल सतारा फिर भी पूर्वकी भांति चमकने लग जावे इत्यालम्.

ॐ शान्ति ३ ॥

जैन जातियों का महोदय के पश्चात्
" पतन दशा का कारण "

पूज्याराध्य प्रातःस्मरणीय जैनाचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरादि पूर्वाचार्योपर कितनेक अनभिज्ञ लोग जो असत्याक्षेपरूप प्रश्न किया करते है जिस का समुचित उत्तर इसी प्रकरण की आदि में मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराजने बडी योग्यता से दे दिया है कि आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरने जैन जातियों को कायर कमजोरादि नही बनाई। प्रत्युतः आप श्रीमानोंने अपनी अमृतमय देशनाद्वारा बार बार उपदेश दे उनकों नैतिक्ष धर्मिक्ष सदाचारी परोपकारी शूरवीर धीर गांभिर विनय विवेक उदारचितादि अनेक सद्गुण और तन धन से समृद्धशाली बनाई अर्थात् उनका " महोदय " किया था इतना ही नहीं पर जैन जातियों को क्रोडों कि संख्यामें वृद्धि कर उनको उन्नति के उच्चे शिखरपर पहुँचा दी थी. परन्तु यह बात कुदरतसे सहन न हुई काल की क्रूरता से जैन अग्रेसर और धनाढ्यों के हृदय में संकीर्णता का प्रादुर्भाव हुआ जिससे हमारे पूर्वाचार्यों कि विशाल भावनारूपी क्षेत्र कों संकुचित बना दीया। अग्रेसरो का सतामद धनाढ्यो का धनमद ने उनको अभिमानरूपी हस्तीपर आरूढ कर दीया। जिसकी बदोलत समाज शृंखलना तुटी—समभावी एक देवगुरू के उपासकों मे उच्च नीच के अनेक भेदभाव पैदा

हुआ जिस कारण समुदायिक शक्ति के टुकडे टुकडे हो अनेक विभागमे विभाजित हो गये वाद्य बन्धीरूप क्षयरोग की भयंकरतासे समाज संगठन और समाज संख्या मृत्यु के मुहमे जा पडी। अन्यलोगोंने ज्यां ज्यों कुरूढियों कों निकालते गये त्यां त्यां जैन अग्रेसरोंने उनपर दयाभाव लाकर अपनी समाजमें बडा ही आदरसे स्थान देते गये। धनाढ्य लोगोंने उन कुरूढियों का ठीक पालन पोषणकर उनके पैर खुब मजबुत जमा दिया उन कुप्रथाओंने हमारी समाजपर इतना तो भयंकर प्रभाव डाला कि जिसको छीन्न भिन्नकर तथा कायर कमजोर और क्लेश कदाग्रह का घर बना दीया, हमारी जन संख्यापर भी उसने खुब छापा मारा, कि वह दिन प्रतिदिन कम होती गई इतना ही नहीं पर हमारी पतित दशा का मुख्य कारण ही वह कुरूढिय है हमारा अज्ञान है कि हम हमारा दोष को नहीं देखते है पर वह दोष हमारे महान् उपकारी पूर्वाचार्यपर लगाने को तय्यार हो जाते है पर असल यह दोष उन संकुचित विचारवाले अभिमानी अग्रेसरो का है कारण जो समाज की दुर्दशा करनेवाली कुरूढिये सब से पहले अग्रेसर और धनाढ्यों के घरों मे ही जन्म धारण किया था वास्ते उनके स्वाल के बहार तो न होगा? पर आज उन धनाढ्यो के घरोंसे चलाई हुइ कुप्रथाओ धीरे धीरे साधारण जनता को भी अपने पैरो के तले दबा दीया अर्थात् सर्वत्र फैली हुई है। वास्ते शायद् हमारे अग्रेसर व धनाढ्यो कों विस्मृती हो गई हो तो हम याद दीलाने का प्रयत्न भी करेंगें कि समाज को कायर कमजोर बना के

अधःपतन पूर्वाचार्योने किया है ? कि हमारे संकीर्ण विचारधारक अभिमानी अग्रेसर और धनाड्योंने किया है ?

समाज की उन्नति करना समाज के अग्रेसर और धनाड्यो के हाथ मे है और पूर्व जमाना में उन समाज शुभचिंतकोने ही तन मन और धनसे समाज की उन्नति करी थी. आज भी ऐसे नररत्नो का अभाव नहीं है पर वह स्वल्प संख्यामें मिलते है। तथापि आज हमारे समाज अग्रेसर और धनाड्य वीर अपने तन धन और मन को समाज सेवामें लगा रहे है अनेक विद्यालयों औषधालयों अनाथालयों विधवाश्रम कन्याशाला गुरुकुल और पांजरापालों वगैरह उनकी मदद से ही चल रही है और इस शुभ-कार्योमे वह अपना अमूल्य समय भी दीया करते है इत्यादि उन अग्रेसरों का तो समाज सदैव अन्तःकरणपूर्वक उपकार समझते है और हम उनका पूज्यभावसे सत्कार करते है। और भविष्य के लिये आशा भी रक्खते है कि आप श्रीमान् समाज की और विशेष लक्ष रक्खते रहे कारण समाज का उद्धार करना आप के ही हाथ मे है।

पर हमारी समाज में ऐसे नेता और धनाड्यो कि भी कमती नहीं है कि वह पुरांणी हानिकारक रूढियों के गुलाम बन हमारी उन्नती में अनेक प्रकार के रोडे डाल देते है फिर भी तुर्रा यह कि पुच्छनेपर उन रूढियो को आप खराब बतलाते है पर जब अपने घरपर काम पडता है तब जान बुझकर धग् धग् कि आग मे कुद पडने को सबसे पहले आप तय्यार हो जाते है आज हम

जो कुच्छ लिखेगें वह उन अग्रेसर व धनाढ्यो के लिये कि जिन्होंने जान बुझ के कुरूढियों को अपने गलेमे बन्ध रक्खी हैं जिस की काली करतुतो से आज समाज का अधःपत्तन हो रहा है ।

(१) बाल लग्न और अनमेल विवाह ।

हमारी समाज में बाल विवाह का नामनिशान भी नहीं था. हमारे नीति और धर्मशास्त्र पुकार २ कर कह रहा है कि शरीर में सुत्ते हुए नौ अंग जागृत न हो जा वहाँ तक लड़का विवाह का अधिकारी नहीं है अर्थात् जन्म से आठ वर्ष तक तो बाल क्रिडा यानि हसना खेलना शरीर स्वास्थ्य को बढाना बाद उन बालको कों कुछ होसला आ जावे तब विद्याध्ययन करवाना प्रारंभ करे वह आठ वर्ष तक पढाई करे कि स्त्री व पुरुष अपनी अपनी कलाओ में खुब प्रवीण हो जा फिर भोगाभिलाषी हो जा तब ही उन की सादी कि जाती थी पर उस समय लडके और लडकिये सब लिखे पढे होते थे वास्ते उन के माता पिताओं को यह अधिकार नहीं था कि वे उन के प्रतिकुल सादिये कर जन्मभर की कैद में डाल देते ! उन की सादि या तो स्वयंवर द्वारा होती थी या उन के रूप गुण बल उम्मर और धर्म की समानता पर ही कि जाती थी इसी कारण दाम्पति जीवन सुख शान्ति और धर्ममय गुजरता था और उन की संतान भी शूरवीर धीर प्रतिज्ञा पालक सदाचारी उच्च संस्कारी गुणग्राही साहसीक निर्भिक चा-

रित्रशील नैतिक धर्मिष्ठ और परोपकार परायणादि अनेक सद्-गुण संपन्न हुआ करती थी. वह भी अपने अमूल्य पुरुषार्थ द्वारा देशसेवा राजसेवा समाजसेवा और धर्म सेवा कर अपने जीवन को आदर्श बनाते थे और स्व पर कल्याण करने में समर्थ होते थे इत्यादि इसी सद् वरतन से हमारी समाज का ' महोदय ' हुआ था.

जब से काल चक्रने पलटा खाया ।
धनाढ्यों के हृदय में अभिमान छाया ।
बराबरी के घर की ओर दिल ललचाया ।
बाल बच्चों के हित को स्वार्थने खाया ।
मुसलमानोंने अत्याचार मचाया ।
बाल विवाहने अपना पैर जमाया ।

पवित्र भारतभूमि में एकसमय मुस्लमानों का जोर जुल्म अपनी चरम सीमा तक पहूंच गया था। इतना ही नहीं पर वे विषयान्ध हो उच्च कुलीन स्वरूपवान, बालाओं पर जबरन् अत्याचार करने का भी दु:साहस किया करते थे, उस हालत में वे आर्य लोग अपनी अंगजाओं के सतीत्व धर्म की रक्षा के लिये छोटी २ बालिकाओं का लग्न (विवाह) कर दिया करते थे पर उस जमाने में उन को यह ख्याल स्वप्न में भी नहीं था कि आज हम एक महान कारण को ले कर इस प्रथा को जन्म देते है; वह भविष्य में कारण मिट जाने पर भी पिछले लोग केवल लकीर के फकीर बन कर के इस कुप्रथा को अपने गले बांध लेंगे और जिस के

जरिए वह कुरूढी इतना भयंकर रूप धारण कर भारत को गारत बना देगी अर्थात् देश का सर्व सत्यानाश कर देगी इस बात की हमारे पूर्वजों को कल्पना मात्र भी नहीं थी वह आज हमारे समाज के नेताओंने कर के बतला दी ।

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि समाज का भविष्य समाज के नेता और धनाढ्यों पर निर्भर है, यदि वे चाहें तो समाज को उन्नति के उच्च शिखर पर पहूंचा दे और चाहें तो अवनिती के गहरे गड्ढे में भी गिरा दे, कारण साधारण जनता तो उनके हाथ की कठ पुतलियें है; ज्यों वे नचावें वैसे ही नाचने को तैयार हैं अगर वह ऐसा न करें तो उन सताधीसों के सामने उन का जीना भी मुश्किल हो जाय ।

जब भारत में मुसलमानों का जोर जुल्म मिट गया अंग्रेजो का राजसे भारत में शांति का साम्राज्य स्थापित हो गया, अगर हमारे समाज नेता और धनाढ्य लोग इस बाल विवाहरूपी प्रथा को जड़ामूलसे नष्ट करनी चाहते तो वे आसानीसे कर सके पर उन्होंने ऐसा नहीं किया । इतना ही नहीं पर आप श्रीमानोंने तो उन कुरूढियों को अपनी तरफसे खूब सहायता दे करके उनके पैर सुदृढ कर दिए, उसका हि फल है कि आज हम जितने बाल लग्न धनाढ्यों के घरोंमें देखते हैं उतना साधारण जनताके घरों में नहीं है, यह कहना भी अतिशय युक्ति न होगा कि; कितनेक धनाढ्यों के तो गर्भमें रहे हुए बालिकाओं और बच्चों के सगपण

हो जाते हैं एक शेठजी दूसरे लक्ष्मीपतिजी को कहते है कि अगर आपके लड़का जन्मे और हमारे लड़की हो तो अपने सगपण सही है। और दो दो चार चार वर्षों के बालकों के सगपन करना तो हमारे धनाढयों के लिये साधारणसी बात है, अक्सर कर देखा जाता हैं तो उन धनाढयों के घरों में ८-१० वर्ष का लड़का लड़की तो शायद् ही विगर सगपण किया हुआ मिलेगा ? छोटे २ बालकों का सगपण करने मे भी शेठजीने कुछ न कुछ तो फायदा अवश्य सोचा होगा, कारण विगर फायदे महाजन लोग कोई भी कार्य नहीं करते हैं।

(१) छोटे बालकों का सगपण करनेके बाद लड़का कम-जोर हो, और लड़की ताकतवर हो जाय, या दिखने में लड़का पतले शरीरका और छोटा दीखता हो और लड़की खूब मजबूत शरीरवाली हो और बड़ी दिखाई देती हो तबभी अपनी इज्जत रखने के लिये शेठजी को विवाह करना ही पड़ता है; बाद चाहे इज्जत रहे या न रहे इसकी धनाढयों को क्या पर्वाह है।

(२) लड़का या लड़की बिमारी या रोगसे कई अंगोपाङ्ग विहीन हो जाय तो भी उसका विवाह करना ही पड़ता है, फिर जिन्दगीभर दुःख की दिवार सामने क्यों न रहजा।

(३) सगपण होनेके बाद सैकड़ो नहीं पर हजारों रुपैयोंके गहने कपड़े कराने पड़ते हैं, उनको लड़कियों खोदे घस जाय भागे टूटे और सैकड़ों रूपये का व्याज का नुकशान हो तो पर्वाह नहीं, पर पीछे स्यात् बराबरी का घर मिले या न मिले।

(४) कुंवारा सगपण लम्बे समय तक रहने में अक्सर कर देखा जाता है कि आपसमें किसीन किसी प्रकारका रंज पैदा हुए विगर नहीं रहता है जिस में औरतों का तो कहना ही क्या थोडीसी चीज वस्तु के लिए आपसमें खटरास पड़जाता है। इत्यादि छोटे २ ढींगले ढींगलियों का सगपण करने में बहुत नुकशान है फिर समझमें नहीं आता है कि धनाढय लोगोंने इस कुप्रथा को अपने हृदयमें क्यों स्थान दे रखा है। क्या बालकपणे बड़े हो जाने पर उनकों सगपण नहीं मिलेगा ?

दर असल यह सगपण बालकों का नहीं होता है पर उन देश घातक धनाढयों का संबन्ध होता है, कारण उन धनान्धों को जितनी अपने बराबरी के घरकी अभिलाषा है; उतनी अपने बाल-बच्चों के जीवन की नहीं है चाहे उनका अपक वीर्य क्षय हो करके अपने जीवन से हाथ धो बैठें। चाहे उनका शारिरीक या मानसिक बल निस्तेज हो जाय चाहे उनकी भविष्य सन्तान कमजोर तो क्या पर निर्वंश हो जाय तथापि हमारे धनाढयों को उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है; इतनाही नहीं पर कितनेक रूढी के गुलाम अपने दुषित आचरणा का बचाव के लिए अपवाद समय के एक दो श्लोको कों आगे रख देते हैं।

अष्ट वर्षा भवेद् गौरी। नव वर्षा च रोहिणी॥
दशवर्षा भवेत्कन्या। ततः उर्द्ध रजस्वला॥
माता चैव पिता तस्या। ज्येष्ठ भ्राता तथैव च॥
त्रयस्ते नरकं यांति। दृष्ट्वा कन्या रजस्वलाम्॥

बस ! बालविवाह के हिमायतीदारों का यह एक अमोघ शास्त्र है और इसी श्लोक को आगे रक्ख कर वह कह देते हैं कि बड़ी कन्या घर में रखने से नर्क में जाना पड़ता है, परन्तु इस पर बुद्धिपूर्वक विचार कौन करे ? इतिहासों के पृष्ठों को देखे कौन ? कि इन श्लोकों का जन्म किस कारण किस समय हुआ; उस समय इन की किस कारण आवश्यकता थी ?

मुसलमानों की विषयान्धता के जुल्म से कन्याधर्म की रक्षा के लिए, विक्रम की सोलहवी शताब्दी में पंडित काशीनाथ भट्टाचार्यने अपने शीघ्रबोध में यह श्लोक दिया है; कारण 'आपत्ति काले मर्यादा नास्ती' उस आफतकाल में पूर्व मर्यादा का लोप किया था पर यह सदैव के लिए नहीं था आज वह आफत ही नहीं है तो फिर उन श्लोकों को आगे कर, बाल विवाह जैसे देश घातक रिवाज के हिमायतदार बनना यह कितना अज्ञान है।

भले पूर्व जमाने में जब स्वयम्बर के अन्दर कन्या अपने वर को स्वयं पसन्द कर लेती थी, या जहां स्वयम्बर नहीं होता था वहां भी अपने योग वर को जो उम्मर, रूप, गुण, बल, विगेरह को देख कर के पसन्द करती थी तो क्या यह कार्य ८–१० वर्ष की बालिकाएं कर लेती थी ?

शीघ्रबोध ऐसा कोइ प्राचिन आगम, शास्त्र, वेद, पुराण श्रुति, स्मृति या नीतिशास्त्र नहीं है कि जिस पर विश्वास किया जाय, प्राचिन शास्त्र और नीति तो खास जोर देकर पुकार रहा है

कि सोलह वर्ष की कन्या से कम उम्मरवाली की सादी नहीं करना चाहिए कारण कि आठ वर्ष बाल क्रीडा और आठ वर्ष तक ज्ञानाभ्यास (शिक्षा) करने पर ही उन की सादी करना अच्छा है।

नीति और संस्कार शास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि वर कन्या जब अपनी जुम्मेदारी (कर्तव्य) को समझने लग जाय, तब ही उनका विवाह करना चाहिए। इनके सिवाय कम उम्मरवाली कन्या कों वर्तमान कानून भी ऐसी कम उम्मर वाली लडकियों को साबालिग नहीं मानता है; कानून में १२ वर्ष की पत्नी के साथ यदि उस का पति उस की मर्जी से संभोग करे तो भी १० वर्ष की सजा और जुरमान का स्पष्ट फरमान है। देखो "मारवाड ताजीरात" दफा ३७५–३७६ और 'फोजदारी जाब्ता' दफा ५६५ इत्यादि। धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, संस्कार विधि, और राज्य कानून जिस बाल विवाह रूपी कुप्रथा को खूब जोर शोर से धिक्कार रहे हैं; फिर समझ में नहीं आता है कि समाज के नेता और धनाढ्यों के नेत्रोंसे अज्ञान पडल दूर क्यों नहीं होते हैं।

इस बाल लग्नने अपने सहायक रूप अनमेल विवाह की भी प्रथा को खडी की है, और उस के आभारी भी हमारे धनाढ्य ही है धनाढ्यों की सादियों प्रायः ऐसी देखी जाती है कि दस वर्ष का वर और बारह वर्ष की कन्या। कुदरत जब कन्या से पुरुष की उम्मर ५–७ साल अधिक चाहा रही है, पर हमारी समाज के लक्ष्मीपतियोंने तो कुदरत को ही ठोकर मार देते है।

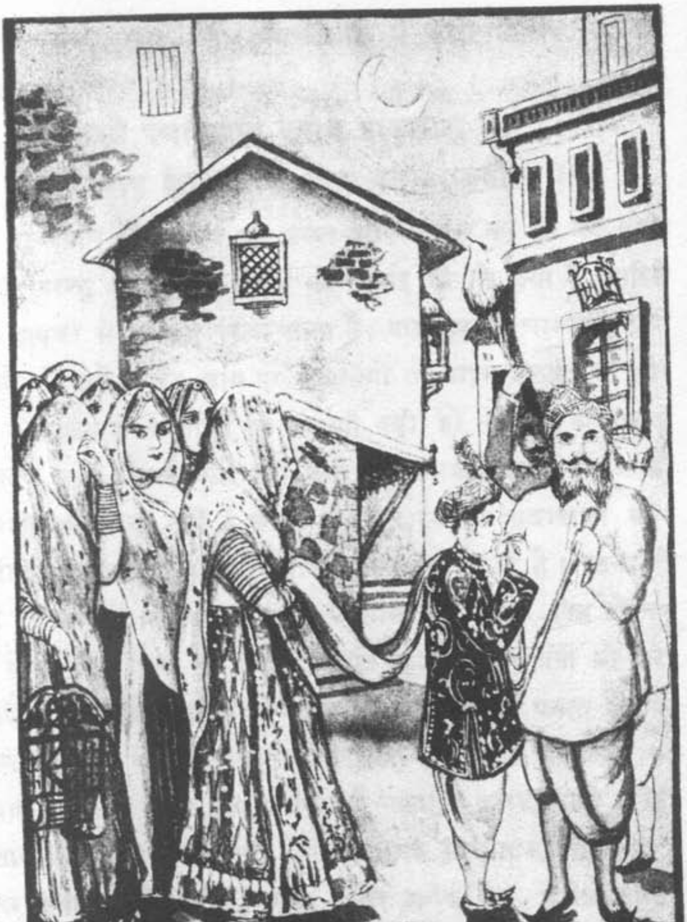

धनपति शेठ की १४ वर्ष की कन्या ललिता और लक्ष्मीपति शेठ का १० वर्ष का कुँवर विनोदीलाल की नमूनादार वर–वधु की जोडी को देख पूंजिपतियों की अजब अकलपर दुनिया तालीयां दे दे कर हांसी उडा रही है ।

चरक, सुश्रुत, आदि वैद्यक शास्त्र में आरोग्यसाधन के लिये फरमाते हैं कि—

अथास्मै पंचविंशति वर्षाय षोडशाय वर्षा।

पत्निमाव हेत धर्मार्थ काम प्रजामाप्यतीति ॥

अर्थात् सोलह वर्ष की कन्या और पच्चीस वर्ष का वर होना चाहिए परन्तु हमको ऐसे शास्त्रों की पर्वाह भी तो क्या है, पहिले बड़ी लड़की से सगपण किया जाता है; बाद कुंवरजी चारपाईके पागे जितने ही क्यों न रह जाय पर शेठानियों तो अपने शेठजी को बार बार तंग कियाही करती हैं कि बीनणी बड़ी हो गई है अब लाल (लड़के) का विवाह क्यों नहीं करते हो, कारण औरतों को जितनी हिताहित की परवा नहीं है उतनी गीतगान रंगराग गाजाबाजा और छोटी वधु (बीनणी) की अभिलाषा अधिक रहा करती है। इतना ही नहीं पर घर में वहु आजाय तो मैं सास बन जाऊं फिर तो वहु मेरे घरके काम किया करे, और निवृति के समय पग चंपी भी करे, आखिर शेठजी को लाचार हो करके विवाह करना ही पड़ता है। पर अपने बालबच्चो के शरीर या उनके भविष्य के लिए अंस मात्र भी विचार नहीं करते हैं कि अपक्व वीर्य की नष्टता के कारण यातो अपनी सन्तान ही निर्वंश हो जायगी। शायद् उनके सन्तान हो वह कैसी ? कायर कमजोर, विवेकहीन, कुरूप, और अनेक रोग ग्रसित होगी; इस लिए ही तो शास्त्रकारोंने फरमाया है कि--

" ऊन षोडश वर्षायाम् । प्राप्तः पंच विंशतिम् ;

यद्याधत्ते पुमान् गर्भ । कुक्षिस्थः सविपद्यते ॥

जातो वा न चिरंजीवे,--जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रिय ।
तस्मादत्यन्त बालायं, गर्भाधिनं न कारयेत ॥

अर्थात् सोलह वर्षसे कम कन्या और पचवीस वर्षसे कम पुरुष, यदि सम्भोग करेंगे तो अव्वलतो उनके गर्भोत्पत्ति होगी ही नहीं, यदि गर्भ रह जायगा तो वह पूरा न हो करके उसका पतन हो जायगा और कदाचित अवधि समाप्त करके जन्म धारण भी करले तो जिन्दा नहीं रहता है दुनिया में इसी प्रकार हजारों सन्तान (बाल बालिकाएँ) मरगए और मरते जा रहे हैं क्या वह बाल लग्न का कटुक फल नहीं है ? यदि जीवित भी रह जाय तो अल्पायु में मृत्यु का सरण ले लेता है अगर विशेष जीवित रहे तो भी अनेक रोगोंसे ग्रसित हीन दीन दुःखी हो करके कष्टमय जीवनयात्रा पूर्ण कर मृत्यु का शिकार बनजाता है ।

इस अनमेल विवाहने हमारा कहांतक सत्यानाश किया यह लिखते समय हमारे हाथ थरथर कम्पने लग जाते हैं, लेखिनी टूट पड़ती है, हृदयसे खूनकी बून्दे बह निकलती है । जिस समाज में क्रोडों की संख्या थी; वह लाखों में आ रही है कारण सुयोग्य विवाहसे हमारे एक ही पिताके दस २ और वीस २ सन्तान उत्पन्न होती थी जिनकी हुंकार मात्रसे ही धरतीकम्प उठती थी और जिन्हों ने अपना पवित्र जीवन देश सेवा, समाज सेवा, धर्म सेवा और राज सेवामें लगाकर पवित्र उज्वल और अमर बनाया था । और उन्ही वीर पुङ्गवों के किए हुए पुन्य कार्यों की बदोलत ही आज हमारी

समाज का गौरव चारों ओर गर्जना कर रहा है, जबसे हमारे धनाढ्यों और समाज नेताओंने बालविवाह और अनमेल विवाह जैसी कुप्रथा को समाज में स्थान दिया तबसे ही हमारा अधःपतन होना प्रारंभ हुआ; आज वह अपनी आखिरी हद तक पहूंच गया है इस बाल लग्न और अनमेल विवाहने तो हमारी समाज वृद्धि के दरवाजे ही बंध कर दिए हैं इतना ही नहीं पर जो आज हमारी जन संख्या की कमी हो रही है उसका कारण भी यह कुप्रथा ही है। देखिए जिनके घर में एकाद अर्द्ध मृत्यु सन्तान पैदा होती है वह अपनी उदरपूर्ति के लिए भी हजारों दुष्कृत्य कर पेट भरती है इस हालत में उनसे हम समाज सेवा की आशा ही क्यों रखें ?

इस बाललग्न और अनमेल विवाह से एक और भी रोग पैदा हुआ है वह यह है कि इन दोनों कारणों से समाजमें विधवाओं की संख्या भी खूब बढती जा रही है। लोग अपनी मूर्खता की ओर तो ख्याल नहीं करते हैं कि विधवावृद्धि के लिए हमने कैसे दरवाजे खोल रक्खे हैं बालविवाह से कच्चे वीर्य का क्षय होनेसे होनहार युवक मृत्यु को प्राप्त हो जाते है और अनमेल विवाह तो इसमें खूब वृद्धि कर रहा है। पहिले के जमाने में चालीस पचास वर्ष का मनुष्य मर जाता था तो एक ग्राम में ही नहीं परन्तु सारे मण्डल (प्रान्त) में हा ! हा ! कार मच जाता था आज उगती जवानी अर्थात् वीस पचीस वर्ष का आदमी मर जाता है तो १२ दिनों के बाद उस को कोई याद भी नहीं करता है। और उसके पीछे बिचारी बालविधवा

की तो मट्टी ऐसी पलीत होती है कि उसको इस लोक और परलोक में कहीं भी स्थान नहीं मिलता है जिस का हाल हम आगे लिखेंगे।

बाललग्न और अनमेल विवाहसे, हमारी समाजमें बालमृत्यु का इतना तो भयंकर रोग फैला है कि दूसरी किसी समाज में इतनी भयंकर बालमृत्यु न तो देखी है और न सुनी है, और हमारी समाजमें जो कुछ जन संख्या घट रही है उसमे विशेष कारण बालमृत्यु का ही है और बालमृत्यु का मुख्य कारण बाललग्न और अनमेल विवाह है। फिर हम शूर वीर धीर पुष्ट निरोग और दिर्घायु सन्तान की आशा रखे क्या यह हमारी आशा आकाश कुसुमवत् नहीं है ?

बालविवाह और अनमेल लग्नने हमारे देश की उत्तम विद्या और हुन्नर को भी जलाञ्जली दे दी है कारण जिस समय विद्याभ्यास और हुन्नरोद्योग सिखाने का है उस समय तो उनके माता पिता उनके पीछे एक बड़ा भारी जबर्जस्त रोग लगा देते हैं जैसे शेर का पींजरे के आगे बकरे को बांध दिया फिर उसको कितना ही माल खिलाया जाय पर उस का तो जीव ही जानता है इस माफिक हमारे समाज के होनहार नवयुवकों की बाललग्न और अनमेल विवाहसे बहुत २ बुरी दशा हो रही है महात्मा मनुजी ने कहा है कि " चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाऽद्यं गुरौ द्विजा: "

अर्थात् सौ वर्ष का आयुष्य हो तो चतुर्थ भाग अर्थात् २५ वर्ष तक तो गुरुकुलवासमें रह कर के विद्याभ्यास करना चाहिए यानि २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करता हुआ विद्याभ्यास करे।

पर आज तो हमारे २१ वर्षवाले २–३ अल्पमृत्यु सन्तान के पिता बन बैठते हैं उन को विद्या और ब्रह्मचर्य की क्या पर्वाह है इत्यादि।

यह सब दोष हम हमारे समाजनेता और श्रीमन्तो के सिवाय किस को दें ! क्यों कि धनवान अपनी धनमदता और बडाई के अहंकार में अन्ध बन सुशिक्षीत और सभ्य समाज की सत्यशिक्षा व सलाह की अंशमात्र भी पर्वाह नहीं करते हैं देशनेता और मुनि महाराजों के हितोपदेश पर लात मार बालविवाह और अनमेल लग्न जो अनर्थ कारक होने पर भी उन को खूब जोर शोरसे बढा रहे है। पर याद रखिए कि आप की इस मदान्धता और उच्छृंखलता के कारण ही 'शारदा बिल' का आविर्भाव हुआ है।

आजकल बाललग्न और अनमेल विवाहने भारतमें त्राहि २ मचा दी हैं इस दुष्ट प्रथाने आंखों के सामने दुःख क्लेश अशान्ति और ताण्डव नृत्य की परिकाष्टा बतला दी है। वीरप्रसूता रत्नगर्भा भारत का गौरव मट्टी में मिला दिया है स्वर्गीय पुष्पोद्यान दुर्गन्धमय वायू मंडल से दूषित हो रहा है। बडे २ रंगमहल स्मशान भूमि की दुखमय शय्या बन रही हैं होनहार नवयुवक वर्ग का अधःपतन हो रहा है, नवयुवक निस्तेज होते जा रहे हैं तरुण युवतियों अपने रूप लावण्य को बलीदान कर रही है नेत्रों की ज्योती कम पड जानेसे नवयुवक वर्ग अपने नाक और नेत्रोंपर पत्थर (चश्मे) की लालटेन को लगा रहे हैं कालेज और दफ्तरों में जानेसे दम व क्षय की शिकायतें होने लगती है आशा और उत्साह की जगह उन के निस्तेज हृदय पर निराशा और दुश्चिन्ताओंने आक्रमण कर लिया है

विचारशक्ती और मनोबल तो कबसे ही रफूचक्कर हो गया है। थोडेसे परिश्रमसे शिरमें दर्द होने लग जाता है केवल उदरपूर्ति करना तो उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य ही बनचूका है। युवक युवतियों अपनी अल्पायुषमें ही हीन दीन निर्बल सन्तान के मात पिता बन उनके पोषण की चिन्ता में चकचूर हो रहे है; एक झोके में ही शरीर की क्रान्ति और चेहरे का तेज उड जाता है। हाय ! अफसोस ! ! कितने दुःख का विषय है ! ! ! कि वसन्त ऋतु में फलने फूलने के दिन होते है, वहां पत्ते भी झडते जा रहे हैं; यह कितना दुःख। जिन नवयुवकों की तरफ देश व समाज बडी २ आशाए कर रही है, कि वे देश व समाज का उद्धार करेगें वे ही नवयुवक आज अनेक प्रकार के गुप्त रोगों से पीडित हो जाहिर खबरे और इश्तिहारो पर आशा रख प्रमेह, उपदंश, सोजाक, प्रदर नाताकत और कमजोरी की दवा के लिए सेकडों रूपये बरबाद करने में ही अपने जीवन की सफलता समझते हैं; हिन्द के लाल होनेवाले सपूत आज अमानुषिक अत्याचार और अप्रकृतिक कृत्यों से संतप्त हो अपने जीवनसे हाथ धो रहे हैं देश व समाज द्रोही लोगों की प्रबल प्रेरणासे बिचारे ऊगते पोदें बालविवाह रूपी अग्निकुण्ड में कुद पडते हैं अर्थात् अपना अपक्व वीर्यका बलीदान कर अल्पायुमें ही अपने पीच्छे कोमलावस्था की बालाओं को सदैव के लिए वैधव्य पना देकर के यमलोकमें प्रस्थान कर जाते हैं। इतना ही नहीं पर बाल विधवाओं की पहिलेसे जो क्रोडों की संख्या मोजुद है उसमे भी वह हित्यारे लोग दिन व दिन वृद्धि करते जा रहे हैं अफसोस !

अफसोस ! । आज विधवाओं के आर्तनादसे व रण्डवाओं के करुणाक्रन्दसे और अकाल मृत्युसे स्वर्गीय पुष्पोद्यान आनन्द कानन रूपी भारत गारत होता जा रहा है जिन नवयुवक और नवयुवतियों को देशोद्धार के लिए अपने पूर्वजों का अनुकरण करना था। आज वे ही घर २ के गुलाम बन रहे हैं हाय ! अफसोस । । जिस देशमें सीता दमयन्ती सुलसा मनोरमा और अंजना जैसी वीरप्रसूता देवीयोंने जन्म लिया उसी देशमें आज सरे बजार वेश्यावृत्ति हो रही है यह कितना लज्जाजनक आश्चर्यकारी परिवर्तन है यह परिवर्तन क्यों ? इसके जन्मदाता कौन ? इसकी वृद्धि करनेवाले सहायक कौन ? यह अपराध किस के शिर मडा जाय ? यदि मैं भूल नहीं करता हूं तो विश्वासपूर्वक दृढतासे कह सक्ता हूं कि जो समाज के कर्ता धर्ता भाग्यविधाता सदाचार के ठेकेदार बन बैठे है धर्म कर्मरूपी सबक के पट्टे जिन्होंने अपने नामपर ही समझ रक्खे हैं जो सभा और पंचायतियों बैठकें लम्बी चौडी व्यर्थ गप्पें हांका करते हैं जिन्होंने बालविवाह और अनमेल विवाह करना करवाना और इस कुप्रथा को उत्तेजना देना अपना कर्तव्यकार्य मान रक्खा है ऐसे अग्रेसर और—धनाढ्य माता पिता ही इन सब बातों के जुम्मेवार अर्थात् उत्तरदाता हैं ।

इस बाल लग्नरूपी कुप्रथा के लिए हमने हमारे विचार आप श्रीमानों की सेवामें निवेदन किए हैं कदाच आप को यह कटुक दवारूपी हमारे वचन अरूचिकारक होगा पर आप जरा आंख उठा-

कर देखिए अच्छे २ विद्वान डाक्टर लोगों का बाल लग्न के विषयमें क्या मत हैं उन को भी पढ लीजिए :—

(१) डा० डीयूडवी स्मिथ प्रीन्सीपल कलकत्ता कालेज का कथन है कि " बालविवाह की रीति अत्यंत अनुचित है क्यों कि इससे शारीरिक और आत्मिकबल जाता रहता है और मन की उमंग पलायन हो जाती है "

(२) डा० न्युमिन कृष्णाबोस का कथन है कि " शारीरिक बल नष्ट होने के जितने कारण हैं उनमें सबसे महान कारण न्यून अवस्था का विवाह है यही मस्तक के बल की उन्नति का रोकनेवाला है "

(३) मिसेज पी. जी फिफसिन लेडी डाक्टर बॉम्बे का कहना है कि " हिन्दूओं की स्त्रियों में रूधिरविकार तथा चर्म दूषणादि बीमारियाँ अधिक होने का कारण बालविवाह ही है क्यों कि सन्तान शीघ्र उत्पन्न होती है फिर उनको दूध पिलाना पडता है. जब कि उन की रगें द्रढ होने नहीं पाती, जिससे माता नाना प्रकार के रोगों में फस जाती है "

(४) डा० मानकरण शारदा, बी. एस. सी., एम. बी. बी. एस. अजमेर की सम्मति है कि " बालविवाह जैसी निकम्मी अनर्थकारक रीतिसे न केवल हमारी शारीरिक और मानसिक उन्नति में बाधा पहुंचती है, न केवल हमविदेशीयों की नजर में ही गिरते है, प्रत्युत एक हृदय को हिलादेनेवाला दारुण द्रश्य निरन्तर आंखो के

सामने उपस्थित करता है। यह दृश्य उन घोर विलाप करनेवाली बालविधवाओं का है कि जिन की संख्या ही बतला देवेगी कि यदि यह कुप्रथा प्रचलित नहीं होती तो कितनी अनजान बालिका में इसी घोर दुःखसे बचती और भारतमें कीतने दुःख की कमी होती"

(५) डा. महेन्द्रलाल सरकार एम. डी. कहते है कि "बाल्यावस्था का विवाह अत्यन्त बुरा है इससे जीवन की उन्नति की बहार भूट जाती है और शारीरिक उन्नति का द्वार बंद हो जाता है ×× मेरी डाक्टरी के ३० वर्ष का अनुभवसे कह सकता हुं कि २५ फी सदी स्त्रियें बाल विवाह के हेतु मरती है और २५ फी सदी पुरुष ऐसे हो जाते हैं कि जीन को रोग घेरे ही रहते है"

(६) डा. एम. जी. चक्रवर्ती एम. डी, की राय है कि "कन्याओं का विवाह १६ वर्ष की आयु के पहले कभी नहीं होना चाहिये। बालिकाओं को पूर्ण युवती होने तक विवाह से विरक्त रखना, बचपनमें विवाह करने की अपेक्षा अच्छा है"

(७) डा. फेअरर एम. डी. सी. एस, आई. "मेरी रायमें बालिकाओं का विवाह कमसे कम १६ वर्ष की उम्मरमें होना चाहिये, साधारणतया यदि यह उम्मर १८ से २० वर्ष तक की रखी जाय तो और भी उत्तम हो। यह कोई कारण नहिं कि सिर्फ रजस्वला होने पर ही कमजोर बालिकाओं का भी विवाह कर दिया जाय। विज्ञान, साधारणज्ञान और अनुभव यह बात बतलाता है कि अप्राप्त—वयस्का जननी को कमजोर और अधूरी सन्तान ही

होगी । ये सब बातें मैं स्वास्थ्य, नैतिक, सामाजिक और गार्ह-स्थिक लाभों की दृष्टिसे हीं करता हुं "

(८) डा. जोसेफ युवर्ट एम. डी. "हिन्दुस्तान की स्त्रियों को १६ वर्ष की आयु होने के पश्चात ही विवाह करने के लिये उत्साहित करना चाहिये । यदि विवाह १८ या १९ वर्ष की आयु तक किया जाय तो अत्युत्तम हो । "

(९) डा० मेलाराम सैनी बी. ए. एम. बी. (लन्दन) "बालविवाह विषधारी सर्प है इसीने भारत के होनहार बच्चों को निगल ही लिया है । उनमें वीर्य नहिं रहा, बुद्धिबल भी मिट गया है । उनके चहेरे को देखने से यह ज्ञान नहीं होता कि ये किसी धार्मिक पुरुष की सन्तान हैं । इसी बाल विवाह के कारण ही हम भारतवासीयों की तन्दुरस्ती ३०–४० वर्ष के भीतर ही खराब हो जाती है इस लिये लडकी का विवाह १६ वर्षसे पहेले और लडके का २० वर्ष से पूर्व किसी दशामें नहीं होना चाहिये । "

(१०) आयुर्वेदाचार्य प्रो. चतुरसेन शास्त्री देहली. "पशु-पक्षी तंदुरस्त और सबल दिखते है–पूर्णायु प्राप्त करते है, कभी रोगी नहिं होते । पशु–पक्षी बच्चेको जन्म देते ही चलने फिरने योग्य हो जाती है–चिडियां अण्डे देकर फूदक कर दूसरी डाल पर जा बैठती है । कंकर पत्थर तक पचा देती है–उन को रोगी होने की और दवा लेने की जरुर ही नहिं पडती । परन्तु मनुष्य समाज में स्त्री पुरुष दोनों ही रोगी और कमजोर, अपनी रक्षा के हजार उपाय करने परभी अकालमें मरजाते है । अनेक रोगों का एक मात्र कारण यह बालविवाह–व्यभिचार की प्रवृत्ति है । "

(११) डा० चन्द्रकुमार दे. एम. डी. बालिकाओं का विवाह की आयु कमसे कम १४ साल की होनी ही चाहिये. "

(१२) डा० नोरमन चेवर्स एम. डी. "भारतवर्ष में प्रायः एक ही उम्मर में बालिकायें पूर्ण योवन प्राप्त करती है, और वह उम्मर १७ या १८ वर्ष मानी गई है। यदि एकदम स्वस्थ सन्तान पैदा करना हो तो लडकीयों का विवाह १८ वर्ष की आयु के पहले नहीं होना चाहिये खास कारण में कमसे कम १६ वर्षमें विवाह किया जा सकता है "

(१३) श्रीयुत् चांदकरणजी शारदा. बी. ए. एल. एल. बी. "भावी सन्तान के शुभचिन्तक हैं तो भारत वर्ष की जड को खोखली करनेवाली बालविवाह जैसी कुप्रथा को मटिया मेट कर दों और याद रखो कि " शीघ्र परणा—शीघ्र मरणा. "

(१४) न्यायमूर्ति रावबहादूर जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे. सी. आई. ई. " विधवाओं की वर्धाद अवस्था ही समाज और जाति की उन्नति में बाधारुप है—यह कापड शिशुविवाहसे ही होता है। विवाह की आयु बढा देनी चाहिए—यह आयु जितनी अधिक की जा सकें उतना ही देश और समाज को लाभ होगा "

(१५) बाबु नरेन्द्रनाथ सेन " शास्त्रों की आज्ञा है कि स्त्री का १६ वर्ष पूर्व और पुरुष का २५ वर्ष पूर्व विवाह नहीं करना चाहिये शास्त्रों को पढना छोडनेसे बहुत सी कुरुढीयों घूस गई है। अब धर्म ही ऐसा कुकृत्य करने को रोकते है तो विना संकोच बाल विवाहादि को बन्दकर देना चाहिए "

(१६) दीवान नरेन्द्रनाथजी " शिशुविवाह बन्द करने से ही देश का उद्धार हो सकेगा "

(१७) देशभक्त शेठ जमनालालजी बजाज " लडके की शादी १८ साल पहेले और लडकी की शादी १४ वर्ष पहले करनी नहिं चाहिये । छोटी उम्रमें विवाह कुदरत और आरोग्य के नियमोंसे खिलाफ है । "

(१८) ओनरेबल जस्टिस सर एस. सुब्रह्मन्य एयर " समजदार व्यक्ति नहिं पूछ सकता कि बाल विवाहसे कीतनी हानी है ? सभी लोग जानते है कि अल्पवयस्क बच्चों के माता पिता हो जानेसे देश को कितना भयानक नुकशान है—उनकी निर्बल संतानोंसे देश कया आशा कर सकता है ? क्या ऐसे विवाहो के लिये हमारा धर्म आज्ञा देता हैं ? नहीं कदापि नहीं "

(१९) रायबहादूर हीरालालजी बी. ए. एम. आर. ए. एस. " बाल–वृद्ध और बेजोड विवाहोंसे देश की बडी हानीयाँ हुई है । अतः जब तक इन कुप्रथाओं का सत्यानाश न होगा तब तक देशोन्नति और समाजोन्नति की आशा करना " मृगजलवत् है "

देश के माननीय नेताओं के मत इस बाल विवाह के विषय में इस प्रकार है.

(२०) महात्मा गांधीजी कहते है कि " ऐसी लडकीए को, जो कि गोदमें बैठने लायक पुत्री के समान है, पत्नी बना लेना धर्म नहिं—यह तो अधर्म की पराकाष्टा है । मैं तो भारत के हरएक

युवकसे चाहता हुं कि १६ वर्षसे कम उम्मर की लडकी के साथ विवाह न करने का निश्चय करलें। मुजे यह कल्पना ही नहिं होती कि १९ वर्ष की लडकी विधवा हों। धन के या कीसी दूसरे लाल-चसे माता पिता किसी लडकी का विवाह उस की स्वीकृति सिवाय करदेवें तो मैं उस लडकी को विवाहित हुई मानता नहीं हुं। ”

(२१) श्री दयाराम गीदुमल बी. ए. एल. एल. बी. आई. सी एस. ज्युडीशीयल कमीश्नर सिन्धः—हमारे पतन का एक मात्र कारण है कि हम अपने बच्चों का विवाह अल्पआयुमें ही कर देते है और उस का परिणाम होता है कि गरीब पत्नियों के कारण उनका शारीरिक ह्रास हो जाता है और वे बराबर बीमार रहने के कारण गृहस्थ के सर्व सुखोंसे वंचित रहते हैं। ”

(२२) राय बहादूर चौधरी दीवानचंद्र सैनी बी. ए. एल. एल. बी. “ वर वधु यौवनावस्था को प्राप्त कर जब तक विवाह का उद्देश्य को न जान लें तब तक उन का गुड्डे गुड्डियों की तरह विवाह कर देना सर्वथा निन्दनीय और देश को गारत करता है। ”

(२३) राय बहादूर आर. एस. मधोलकर. बी. ए. एल. एल. बी. “ बच्चों का विवाह कम उम्र में करना बहुत बुरा है इसी से बालक बालिका दोनों की बहुत अधिक हानी है। स्वास्थ्य खराब हो जाता है। ऐसे विवाहों से अधिक हानी बालिकाओं को ही उठानी पडती है और स्त्री उन्नति एक बार ही

रुक जाती है भारत में बाल विधवाओं होने का और बच्चों के मरने का एक मात्र प्रधान कारण बाल विवाह है "

इन के सिवाय भी सेकडों विद्वानों का अभिप्राय है पर ग्रन्थ बढ जाने के भय से यहां पर हम पूर्वोक्त प्रमाण देना उचित समझा है कारण समझदारों के लिए तो इसारा भी काफी होता है पर दुख का विषय है कि धर्मशास्त्र और महान् पुरुषों की आज्ञा को ठोकर मार कर के भी जो सुकुमार बालक अभी डींगला डिंगलियों के खेल खेलते हैं, भले बुरे का जिन को ज्ञान तक भी नहीं हैं, धोती पहिनने का जिन को तमीज नहीं, विवाह क्या बला है वह भी समझते नहीं है ऐसे अबोध बच्चों को गृहस्थाश्रमरूपी रथ के जोत दिए जाते हैं। यह कैसा भीषण और हृदय विदारक अत्याचार ? जो माता पिता अपने बालक का पसीना गिरना भी देख नहीं सक्ते हैं, वे ही आज जरासी वाह ! वाह !! के लिए ऐसा अनर्थ करने में नहीं हिचकते हैं। वास्तव में ऐसे माता पिता समझो पापकर्मोदय से ही मिलते हैं कि जिनकी काली करतूतों का नमूना रूप कोष्टक अंक रख करके हमारी वक्तव्यता को समाप्त करते हैं।

भारत में १५ वर्ष से कम उम्मरवाली भिन्न २ आयु की बाल पत्नियों की संख्या इस प्रकार है:—

० से १	वर्ष के अन्दर की आयुवाली			१३२९२
१ ,, २	,,		,,	१७७२३
२ ,, ३	,,		,,	४९७८७
३ ,, ४	,,		,,	८७५०८
४ ,, ५	,,		,,	१३४१०५
५ ,, १०	,,		,,	२२१९७७८
१० ,, १५	,,		,,	१००८७०२४
कुल संख्या				१२६०९२१७

भारत में कुल बाल पत्नियों एक क्रोड, छब्बीस लाख, नव हजार, और दो सो सतरा हैं; अर्थात् प्राय: सवा क्रोड से अधिक हैं। यह कितना भीषण कांड है? यदि बाल विवाह की रूढी नहीं रोकी गई तो दिन ब दिन बाल विधवाओं की बढती संख्या देश की क्या स्थिति कर देगी यह विचारणीय विषय है। आशा है कि समाज कि पतन दशा का खास कारण बाल लग्न अनमेल विवाह है हमारे समाज अग्रेसर, व धनाढ्य वीर इन को रोक समाज का आशीर्वाद प्राप्त कर अनंत पुन्योपार्जन अवश्य करेंगे। शुभं।

(२) वृद्ध विवाह का प्रचार.

जैन जातियों में वृद्धाविवाह की वासना तक भी नहीं थी कारण वृद्धावस्थामें जैन लोग केवल आत्मकल्यान की पवित्र भावना रखते हुए स्वपत्नि का भी त्याग कर, धर्म कार्य में ही अपना जीवन सफल बनाते थे जब युवकावस्थामें भी जैनलोग ब्रह्मचर्य व्रत के लिये अमुक दिनों की मर्यादा रखते हैं फिर तो वृद्ध वय का तो कहना ही क्या ? विषय कषाय से निवृति होना तो जैनों का परम कर्तव्य ही है जिसमें भी वृद्धवय के लिए तो शास्त्रकार खूब जोर देकर फरमाते हैं कि उन को सर्वथा प्रकारसे ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना चाहिए और इसी ब्रह्मचर्य के तप तेज और पुन्य प्रभाव से ही 'जैन जातियों' का महोदय हुआ था ।

कालान्तर धनवानों के मस्तक में विषयवासन का कीड़ा आ घुसा जिसने ब्रह्मचर्य के महत्व को भुला दिया जिसके फल स्वरूपमें अहिंसा परमोधर्मः यानि दया के हिमायतदारोंने जैन कौममें वृद्ध विवाहरूपी रोग फैलाया। जबसे इस महारोग ने समाज में पग पसारा किया तब से ही समाज की बुरी दशा का मंगलाचरण हुआ आज क्रमसः समाज अधोगती को जा रहा है बात भी ठीक है कि जिस समाज में कीड़ीमकोडी की तनोजान से रक्षा की जाती है उसी समाज में सेकडों हत्याकाण्ड हो, हजारों गर्भपात हो, अनेक बाल विधवाए दुराशीष देती हो, असंख्य गुप्त

पुत्री तुल्य चौदह वर्ष की कन्या से विवाहित हो बुढ्ढे वरराजा शयनगृह में प्रेम संपादन करने को नूतन पत्निको अपनी ओर खींच रहा है। बालिका धनवाल विभूषित पति से उदासिन हो बूरे भविष्यपर आंसु गिरा रही है।

पापाचार होते हो, वह देश या जाति रसातलमें चली जाय इसमें आश्चर्य ही क्या ?

जैसे बाल विवाह का सौभाग्य धनाढ्यों को मिल रहा है वैसे ही वृद्ध विवाह के प्रचार का यश भी उन दौलतमंद भाग्यशालियों को ही आभारी है । धन मनुष्य को कैसे२ नाच नचाया करता है कैसे २ कुकर्मों में प्रवृत्ति कर देता है उस का उदाहरण का चित्र आपके सामने मोजूद है, धनाढय अपनी कात्सित वासनाओं को पूर्ण करने में कैसे जी जानसे लगे हुए हैं अपनी कु इच्छा को पूर्ण करने के लिये तो उन्होंने कन्याव्यापार का बजार खूब गर्म कर दिया अर्थात् सौ डिग्री तक पहूंचा दिया ९–१० वर्ष की कन्याओं को ४०–५० हजार से खरीदनेवाले धनाढय कसाई व्यापारी तैयार ही मिलते हैं । धन के बलसे, दो चार स्त्रियों का जीवन नष्ट कर दिया हो फिर भी कितनी उम्मर क्यों न हो, श्वेतबाल मृत्यु का संदेश भले ही देते हो, जर्जरित शरीरमें चलने फिरने की भी शक्ती नहीं हो तब भी बालोंपर खिजाब लगाकर इन्द्रियों के गुलाम नरपिशाच अपनी भोगेच्छा पूर्ण करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते है । उनके दुष्ट हृदयमें ऐसे सद्विचार कहांसे आवे कि मैं सन्यासाश्रमी बनने के समय गृहस्थाश्रमी कैसे बनता हुं ? जिनअबोध बालिकाओं पर हम आशा तन्तुओं का पुल बांध रहे हैं जिन को हम भोग की सामग्री बना रहे हैं वे वस्तुतः पत्नि कहलाई जा सकी है या पुत्री ? प्रकृतिक नियमानुसार सत्य दृष्टिसे देखा जाय तो वह बालापुत्री समान ही है उसके साथ

पिता के बराबर उम्मरवाले अधमनर का संबन्ध जोड देना क्या यह अधम और व्यभिचार नहीं है पुत्री गमन के पापसे नरक समझनेवालों को क्या इस अकृत्य कार्यमें उसी पाप का अनुभव नहीं करना पडेगा ? परन्तु उन विषयवासना वशीभूत हुए नर-पिशाचों को परभव के दुःखों की परवाह ही क्या है चाहे पचास और साठ वर्षों की उम्मर हो जाय तब भी उन की लग्नपिपासा नहीं मिटती हैं वे तो धन का लोभ देकर गरीब मातापिता की दस बारह वर्ष की निरापराध निर्दोष बालिका की गर्दन पर छुरा चला ही देते हैं उनको रूपयों पैसों की तो पर्वाह ही नहीं है, गरीब मा बाप अपनी प्रिय सन्तान को उनकी पिशाचवृति पोषन करने के लिए वृद्ध कसाइयों के हाथ बेच देते हैं पराधिन बालिकाएँ अपनी मानसिक व्याथा को मातापिता और बन्धु बान्धवो के आगे नहीं रख सकी उन बिचारी को तो दुष्ट मातापिता के सामने शिर झूका कर उनकी आज्ञा को माननाही पडता है। इतनाही नहीं पर अपने आ जन्म सुखों को तिलाञ्जली दे करके भारत की सभ्यता का पालन करना ही पडता है वे अबोध ललनाएं अपना सर्वस्व स्वाहा करके माता-पिता की लाज रखें और दुष्ट बुड्ढे खुराट उनकी तनीक भी पर्वाह न करें उनकी भावी इच्छाओं पर पर्वत सा बोझ डालकर समूल नष्ट करदे यह कितना हृदयभेदी अन्याय है और धन के लोभी मातापिता—अपनी प्यारी कन्याओं को मुडदों के हाथमें समर्पण करते हुए वह राक्षस पिता यह विचार नहीं करते हैं कि इनकी

दुराशीषसे हमारा कुल और समाज नष्ट हो जायगा। पर इस हालत में बालिका के सुख सौभाग्य का विचार कौन करे? वे तो इतनेसे सन्तोष मानलेते हैं कि वृद्ध होनेसे क्या हुआ पैसे बहुत हैं बेटी को रोटीका तो दुःख नहीं है। पीछे चाहे शेष बनजाय, वह स्त्रियाँ दुराचार सेवन करें, गर्भपात करें, और दोनों पक्ष को कलङ्कित भले ही कर दें। उसकी परवाह किसको है? सौभाग्यवश अभी तक तो जैनत्वके अंश उन लड़कियों में है जिससे ऐसी विधवाओं की संख्या बहुत कम ही है किन्तु जमाना पुकारता है कि अगर समाज नहीं चेतेगा तो यह पापी रोग बहुत जल्दी फैल जायगा।

१२–१४ वर्ष के लड़के के साथ अगर जो ४९–५० वर्ष की वृद्धा स्त्रीका विवाह किया जायतो उस लड़को को कितना त्रास होगा उसी तरह १२–१४ वर्ष की कन्या का ४९–९० वर्ष के बुड्ढेके साथ आसुरी हस्तमिलाप करानेसे उस कन्याके हृदयमें दुःख दावानल प्रज्वलित नहीं होगा? जरा बुद्धिपूर्वक निष्पक्ष विचार करने की आवश्यकता है कि कन्या के दुःख की पर्वाह नहीं करने-वाला अर्थात् बालिका को बेचने वाला और खरीदनेवाला दोनो ही भयंकर पाप राशी को बान्ध समाज और धर्मका द्रोह करते हैं किन्तु उससे अधिक दोषतो इस पैशाचिक विवाहमें शामिल होनेवाले उत्तेजना देनेवालों का ही है। चाहे वे न्यातके आगेवान हो, पंच हो, पटेल हो, चौधरी हो किन्तु वे तो उस कन्या को खरीदनार और बेचनेवाले अधम्मनरोसे भी क्रूर अधम्य हैं। कारण उन पेटपोषकों कि सहायतासे ही यह दुष्ट रोग अपनी चरम सीमातक पहुंचा है।

कसाई के घरसे बकरा छुड़ानेवाले अहिंसा प्रिय जैन " कन्या बलीसे बालिका को छुड़वानेका प्रयत्न कदापि नभी करें किन्तु इस आसुरी उत्सवमें हर्षित मुखसे शामिल होवे, अनुमोदन करें, उतेजनादेवें और मालमलिदा उड़ावें क्या यह कमशर्म की बात हैं ? यदि पशुदया जितनी भी मनुष्य दया की तरफ लक्ष होता तो क्या वे कन्या होम जैसी दुष्ट क्रियामें शामिल हो सके ? अरे ! उस स्थल का पानी भी उनकों तो खुन बराबर नजरआना चाहिए ? परन्तु क्या करे खानाने खराब करदिया स्वार्थने सत्यानाश करदीया ।

एक वृद्ध अमीरने बन ठन से सजधज करके बालोंपर खिजाब लगा करके घुघराले काले बाल बनाए, बढिया इत्र तेल फुलेल और वस्त्र धारण करके नूतन बालकन्यासे विवाह किया और उस बालिका को अपने बादशाही महलके अन्दर, लक्ष्मी की अपूर्व सौन्दर्य छटासे सजे हुए एक कमरेमें सुवर्ण सिंहासन पर बिराजमान करी साथ २ उसके समीपही बहू मूल्य जवाहरात, हीरा, पन्ना, माणिक मोती रत्न आदि की बिछायत करदी और अपनी विविध प्रकार की एश्वर्यता=लक्ष्मी आदि के प्रलोभनसे उसको रंजित आल्हादित करनेका प्रयत्न करने लगा । किन्तु उस कन्याने साहसपूर्वक कह दिया कि आप के पास कदाच कुबेर के जितनी भी लक्ष्मी क्यों न हो, किन्तु मुझे स्पष्टरूपसे कहना पडेगा कि एक साधारण पर्णकुटीमें, जिसकी जंघामें बाण लगा हो, रक्त की धारा बह रही हो ऐसे वीरयुवक के वक्षःस्थलपर माथा लगाकर पड़ा रहने में जो

प्रसन्नता आनन्द और सुख मिले उसका तो मुझे यह लक्ष्मी मंदिरमें भयंकर दुष्काल ही मालुम होता है।

प्रेमका पन्थ मृणाल के तार से भी कौमल है वहां सूई जितना भी छिद्र नहीं। जहां प्रेमकी खामी है वैसे लग्न को दु-नियां भले ही विवाह मानले किन्तु यह शरीर लग्न है। उसमें हृदय लग्न प्रेम लग्न की बू तक भी नहीं है, जहां हृदय लग्न की खामी है वहां पर कैसे २ भवाड़े अनाचार होते हैं यह समाजसे छिपा नहीं है। अगर समाज नेता अपनी समाज को उन्नत बनाना चाहते है तो सबसे पहिले इस वृद्ध विवाह रूपी कुप्रथा को समाज से बिल्कुल मिटा दें और इसके मिटाने का एक ही कारण है कि वह ऐसे अनुचित कार्यमें शामिल न रहे। और जिन अद्धम नरों के वहाँ ऐसा अयोग्य कार्य होता हो वहां न्याति जाति के पंच तो क्या परएक बच्चा भी जाकरके खड़ा न रहे इत्यादि पर माल मिष्टान उड़ानेवाले क्षुद्र पंचो को यह बात मंजूर कैसे होगी। अरे! स्वार्थिय पंचो एक दो दिनके पेट के लिए तुम निर्दोष बाला कों जन्म कैदमें क्यों डालते हो दिन ब दिन विधवाओं कि संख्या बढाके पापाचारसे देश कि घात क्यों करवाते है। याद रखिए अब वह जमाना बहुत निकट आ रहा है कि वे लड़कियों अब तुमारी शर्म नहीं रखेगी वे खुले मैदानमें कह देंगी कि यह बुड्ढा वर मेरे बापकी बराबरी का हमको नहीं चाहिए। मैं हरगिज इसके पीछे नहीं जाऊंगी। फिर तुमारा और बुड्ढवर का क्या मान रहेगा इससे तो बहतर है कि पहिले से ही समाज चेत जावे और इस कुरुढी का मुंह काला करके योग वर को कन्या दे उनके अन्तःकरण का आशीर्वाद सम्पादन करें।

कन्या विक्रयरूपी क्रूर व्यापार।

'कन्या विक्रय' ऐसा अद्धम शब्द जैन समाजने अपनें कानों तक भी नहीं सुना था कि कन्या विक्रय किस बलायका नाम है, तो समाजमें कन्या विक्रय को स्थान मिलना तो सर्वथा असंभव है। अहिंसा प्रिय जैन समाज मैं कन्या विक्रय तो दूर रहा पर कन्या के वरके वहां का पानी पीने में भी कन्या के मातापिता महान् पाप समझते थें अगर कोई अद्धम नर ऐसा कर भी लेता तो उसकी इज्जत बहुत कम दर्जे समझी जाती थी। न्याति जाति सम्बन्धी कोई भी उच्च कार्य उनके वहां नहीं होता था और इज्जतदार आदमी उनके साथ संबन्ध करनेमें भी हिचकते थे, पर जबसे हमारे वृद्ध धनाढ्यो के बुड्ढे खूंसरों के हृदयमें विषयाग्निने भयंकर रूप धारण किया उन्होंने कोमलवयकी बालाओं के मात पिता का दुष्ट मन को अपनी लक्ष्मी से आकर्षित किया, तबसे समाजमें कन्या विक्रय रूप दुष्ट व्यापारने जन्म लिया।

जैसे बाल अनमेल और वृद्ध विवाह की शरुआत का काला तिलक अपनी निष्ठुर कपालपर लगाने का यस प्राप्त किया वैसे ही कन्या विक्रयरूप अद्धम व्यापार का सोभाग्य भी हमारे धनाढ्यो का ही आभारी है।

जैन जाति महोदय.

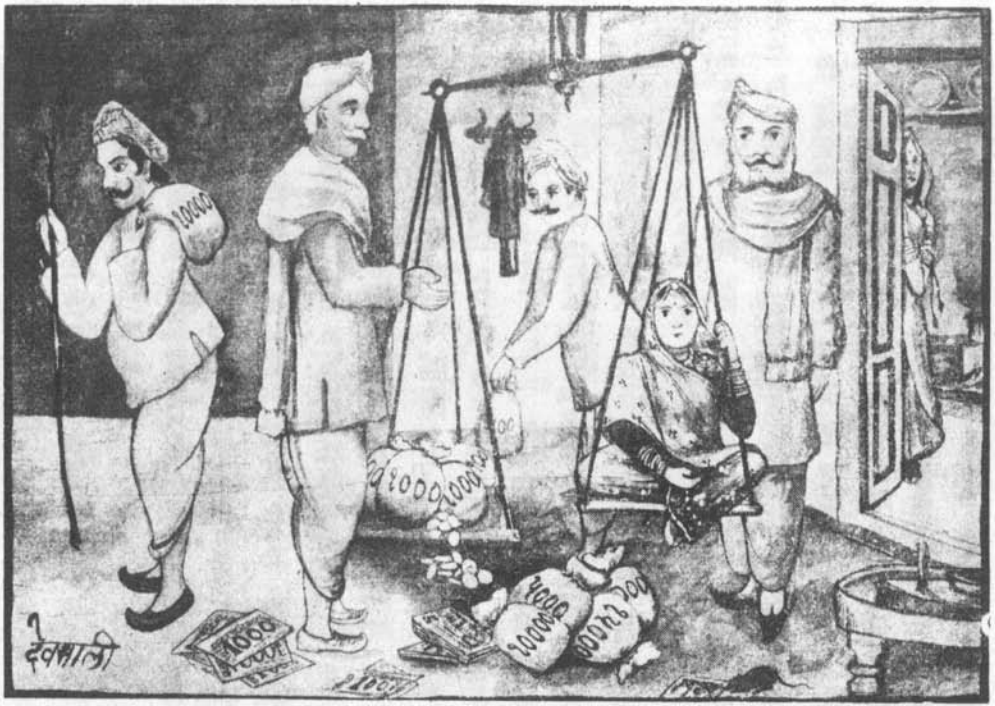

बुंड्ढलालने अपनी ६० वर्ष की उम्मरमें अपनी अधर्म विषयपिपासा पूर्ण करने को पचास रूपैये तोले के भाव से लोभानंद की कन्या के साथ सगपण कीया। सोदा नक्की करवा के दलालभाई दश हजार ले कर रफुचक्कर हुआ। हाय अधर्म!

जैन शास्त्रो में तो ऐसे अधम नरकगामी कार्य को स्थान क्यों मिले, पर जैन जातियों के न्याति कानून कायदो में भी इस दुष्ट व्यापार को किसी भी जगह अर्थात् अपवाद में भी स्थान नहीं दिया था, इतना नहीं पर इतर जातियों में जो ' चौरासी ने चुढ़ो ' की कहावत थी पर जैन संसार तो उसको भी सच्चे दिलसे धिक्कारता था, परन्तु कालकी विकाल गतीसे जमाने ने पलटा खाया कि आज वही जैन संसार उस दुष्ट रिवाज का ठेकेदार बन बैठा है। क्या यह एक शरमकी बात नहीं है ?

जैनों के सिवाय जैनेतर शास्त्रोंमें भी कन्याविक्रय को खूब ही धिकारा है जैसे " स्व सुतानं चयोभुक्ते स भुक्ते पृथ्वीमलम् "। अर्थात् कन्याविक्रय के धनको खाते हैं, वे महा पापी घोर नरक में जाते हैं इतना ही नहीं पर वह अन्न भी अपवित्र है, वह खाने से बुद्धि विध्वंस हो जाती है फिर सुनिए—

कन्या वित्तेन जीवन्ती । ये नरा पाप मोहिता ।
ते नरा नरकं यान्ति । यावद्भूत संप्लवम् ॥

अर्थात्:—जो कन्या के द्रव्यसे जीवन पोषण करता है वह मनुष्य पाप में मोहित हो करके नरक में निवास करता है कहां तक ? कि जब तक पृथ्वीमण्डल रहता है वहां तक नरक और नरक जैसे दुःखों से नहीं छूटते है ।

कन्या के घर का पाणी को हराम समझनेवाले आज नीतिकारों की आज्ञा को ठोकर मार कर थेलियों की थेलियों हजम करने को

अधम्मनर जगह जगह तैयार मिलते हैं। अगर हमारे श्रीमन्त वर्ग चालीस पचास हजार रूपये देकर अपनी जर्जरीत वृद्धावस्थामें विषय वासना के वस न होतें तो कन्या विक्रय जैसा यह अद्धम व्यापार इतनी हद तक कभी नहीं पहूंचता पर उनको इतना संतोष कहां है ? परभव का डर कहां है ? लोगों की लज्जा कहां है ? बाल ललनाओंकी दया कहां है ?

वह तो कन्या को तुल में बैठा कर के उससे कई गुनी धन की थैलियां गुपचुप दे देते हैं, इतना ही नहीं पर हजारों रूपये तो पापी दलाल ही उडा जाते हैं; इसी कारण से आजकल लडकियों के पांच दस हजार रूपये लेणा तो साधारण बात समझी गई है। इस पापाचारके लिये कन्या का जन्म तो मानों एक दर्शनिक हुण्डी है, जैसे किसान लोग पीक पाक पर मौज मजा करते है, वैसे ही वह नीच अद्धम माता पिता उन लडकियों के जन्मसे ही मौज मजा उडाया करते है धनकी थैलीयों और नोटोंके थोकडीयों के लोभ में अन्ध हो अपने खून से पैदा हुई प्यारी बालिकाओं को वृद्ध नर पिशाचों के हाथ बेचने वाले माता पिता मानों कसाइयों से भी क्रूर कर्मी और घातक है ऐसे जीवित बालिकाओं का मांस बेचनेवाले राक्षस माता पिता को देख कर क्रूर से क्रूर कर्म करनेवाले भी एकदम कम्प उठते है। ऐसे जीवित मांस को बेचनवाले माता पिता से भी उस को खरीदने वाले बुड्ढे खुरांट अधिक नीच दिखाई देते हैं, कारण वे धन की थैलियों आगे रख कर के उन अद्धम मातपिता के मन को ललचा देते हैं; और अकल

के अन्धे हृदय के फूटे वे मात पिता धन के गुलाम बन कर के अपनी सन्तान को तमाम उम्मर के लिए दुखी बना कर के उनके जीवन को नष्ट कर देते है। उस नीच कार्य के सहायक दलाल, माल मिष्टान्न उडाने वाले पंच चौधरी भी कम पाप के भागी नहीं है; इतना ही नहीं पर स्मृतिकार पाराशर ऋषीने तो उस ग्राम और उस कुल को भी घातिक बतलाया है। जैसे—

कन्या विक्रयिणोयेषां। देशे ग्रामे कुले तथा।
पतन्ते पितरस्तेषां। ग्रामिणो ब्रह्म घातिनः॥

अर्थात् जिस ग्राम व कुल में कन्या विक्रय होता है वहां के पितर अधोगती में जाते हैं और उस ग्राम के निवासी ब्रह्म घातिक होते हैं। अरे! ब्रह्म घातिको जरा आंख उठा कर के देखो महात्मा मनुने क्या कहा है—

क्रया क्रिता च या कन्या। पत्नी सा न विद्यीयते।
तस्यं जात सुतर्दत्तम्। पितृ पिण्ड न लभ्यते॥

जिस कन्या से मुल्य दे कर के विवाह किया जाता है वह विधिवत् स्त्री नहीं मानी जाती है और उस के सन्तान के हाथ से पितृ पिण्डादि धर्मकार्य सफल नहीं होता है।

इस कन्याविक्रय रूपी पापाचारने केवल हमारी इज्जत को ही नष्ट नहीं किया है पर इस अद्धम व्यापारने तो हमारी दलिद्रावस्था करने में भी कमी नहीं रखी है, जो जाति कुबेर के नाम से पुकारी जाती थी वही आज निर्धन हो रही है चाहे लडकियों खरीदनेवाले

गिनती के धनवान हो; पर उन के धन का किस रास्ते में व्यय होता है लडकियों रूप दर्शनिक हुण्डी बटाने के तीसरे वर्ष ही देखिए, वह कैसी कंगालियत हालत में दिखते हैं ? जो जातियों बडे प्राणी से लगा कर सुक्ष्म जन्तुओ की दया कर रही थी आज वह ही जाती अपने बाल बच्चों को किस निर्दयता से लिलाम कर दुःख के दरियाव में डाल रही है इस दुष्टाचरण से हमारे नैतिक, शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, आध्यात्मिक और धार्मिक विषय का पतन हो रहा है । बुद्धि विध्वंस होने से हमको कृत्याकृत्यका खयाल तक भी नहीं रहता है, स्वोदरपूर्ति के लिये पापाचार के गुलाम बन कर के निन्दीत कार्य करने में हम तनिक भी नहीं हिचकते हैं, कन्या जैसी प्रिय वस्तु उन बुड्ढे खंजरों के हाथ बेचने में हमें शर्म नहीं आती है । शास्त्रकार नीतिकार और दुनिया हमें कितने ही बूरे शब्दोंमें पुकारें, उस की हमें पर्वाह नहीं है, पर कन्याओं के पांच पचीस या पचास हजार लेकर हम हमारा कर्ज चुकावे, देवाला मिटावें एक दो जीमणवार कर के न्यात या पंचों को जीमा के उन रक्त संसक्त हाथों से मूछोंपर ताव लगाते हुए शिरे बजार फिरे, पंचो की जाजमपर बैठ कर के जाति सुधार की लम्बी २ गप्पें हांके । पर हम को कहनेवाला कौन है ?

बद किस्मत है हमारे साधारण स्थितीवालों की, कि उन के पास इतना द्रव्य नहीं है कि कन्या के लिलाम में हमारे श्रीमन्तों के बराबर बोली बोल के, अर्थात् इतने रूपैये देकर के विवाह कर सके इसी कारण से सैकडे पैंतीस नवयुवकों को तो आ जन्म

कुंवारा ही रहना पड़ता है; वे मर कर के पितर हो नगर के चारों ओर प्रादक्षिण किया करते हैं; कारण कुदरत के नियम से मानों १०० लड़के पैदा हो तब १०० कन्याए जन्म लेती है, अगर पुरुष दूसरी, तीसरी, चौथीबार विवाह न करता हो तो कन्या विक्रय को अवकाश तक न मिले; कारण सौ लड़के और सौ लड़कियों पैदा होती है जैसे लड़कों को सादी की गर्ज होती है वैसेही लड़कियों के लिये ही समझना पर उन सौ लड़कियोंसे ३५ कन्याओं को तो दूसरी तीसरी बार विवाह करनेवाले लिलाम की माफिक कम ज्यादा किंमत दे कर के हड़प लेते हैं; उन के बदले ३५ नवयुवक आ जन्म तक कुंवारे रह जाते है। इस का फल यह होता है कि ३९ वृद्ध विवाहवालों के पीछे दो चार व दश वर्षमें वे विधवा हो कर के समाज की संख्या कम करती है, तब इधर ३९ कुंवारे मर कर के संख्या घटाते हैं अर्थात् २०० की पुरुषों में ७० संख्या कम हो जाती है।

कन्याविक्रय के तेज बजार में साधारण आदमी अपनी जंगम, और स्थावर सब मिलाकिअत लिलाम कर दें तो भी उन का विवाह होना (घर मण्डना) मुश्किल है; कदाचित् घरहाठ वगैरह होम देने पर घर मंडभी जाय तो उन को अपनी उदरपूर्ती करना मुश्किल हो जाता है। उस दुःख के मारे ही उस को अर्द्धमृतक तुल्य जीवनयात्रा सम्पूर्ण करनी पड़ती है।

एक तरफ तो समाज में कुंवारे हैं, वे अपना द्रव्य पास-वानों, रण्डियों, और वैश्याओं को खिला रहे हैं; तब दूसरी तरफ

जो बड़े घरों की विधवा अपना द्रव्य अनेक कुरास्ते लगा रही है तथापि अभीतक हमारी समाजमें ऐसी दुशिलीनियों बहुत कम है किन्तु एक भी ऐसी दुःशीलनी होनेपर हमारी समाज इस कलङ्कसे सर्वथा बच नहीं सक्ती। अगर इस कार्य को हमारी सध्वीवर्ग हिम्मत-पूर्वक हाथमें लें तो एक विधवा समाज को तो क्या पर सम्पूर्ण स्त्री समाज को वे आशानीसे सुधार सक्ती हैं, परन्तु दुःख का विषय है कि उन को भी आपसी क्लेश से, इतना अवकाश कहां है कि वे इस पवित्र कार्यमें हाथ डालें ! इस वख्त तो यह कन्या-विक्रयरूपी चेपी रोग समाजमें इतना तो फैल गया है कि करण, करावण, और अनुमोदनसे शायद ही कोई श्रावक, श्राविका, साधु और साध्वी बची हो। यद्यपि साधु साध्वी और कितनेक धर्मप्रिय श्रावक (सद्गृहस्थ) इस पापाचार को स्पर्श नहीं करते हैं. पर वे कन्याविक्रयवालों के वहां का भोजन नहीं छोड़ते हैं.

इस लिये उनको भी इस पापके भागी बनना पडते है, अगर चालीस पचास हजार रूपये लेनेवालेने स्वामिवात्सल्य किया हो तो चतुर्विध श्री संघ उनको धन्यवाद देकर मिष्टान से उदर को तृप्त बना लेते हैं, इतना ही नहीं पर दो चार हजार रूपये खर्चकर छोटासा संघ निकाला हो तो चतुर्विध संघ उसे संघपति के नामसे भूषित कर लम्बी २ पत्रिकाएं छपाकर मुल्क मशहूर कर दें और उपधान करवा दिया हो तो बडे महोत्सवपूर्वक उनके गलेमें माला तक भी अर्पण कर दी जाती है। क्या कोई व्यक्ति यह कहने का साहस कर सक्ता है कि चतुर्विध संघसे मुख्यतया इस वज्रपाप के करण, करावण और अनुमोदनसे कोई बचा होगा।

जैसे कन्याविक्रय का बजार तेज हो रहा है, वैसे ही वर विक्रय का भी चेपी रोग हमारी समाजमें कम नहीं है। वर पिता कन्या की उम्मर रूप गुणादि की ओर लक्ष नहीं देते हैं, पर उनको तो अपनी इज्जत बढाने के लिए डोरे के रूपयों की ओर ध्यान लगा रहता है; कन्या चाहे काणी, कुबडी, कुरूपी, क्लेशप्रिय, अशिक्षीत, और छोटी बडी हो उनकी तनिक भी पर्वाह नहीं है; पर रूपयों की गठडी खुलाना उन्होंने अपना ध्येय बना रक्खा है फिर लड़के की सब आयू क्लेशमें व्यतित हो, दम्पति सुखसे हाथ धो बैठें, लज्जा व शर्म को छोड घर २ झांकता फिरे, वेश्यादि रंडियों के चरणों में अपना अमूल्य वीर्य और मुश्किलसे कमाया द्रव्य अर्पण कर दे उस की परवाह नही ? हाय स्वार्थ ! हाय अज्ञान !! हाय अफसोस !!! जो दूरदर्शी महाजन कहलाते थे वह आज कितने अदूरदर्शी बन अपना सर्वस्व किस हालतमें खो देने को तैयार हुए हैं।

एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक अंग्रेज विद्वान चार्ल्स डारविनने कहा है—

" Man sees with scrupulous care the charecter and pedigree of his horse, cattle, and dogs, before he matches them but when he comes to his own marraige he rarely or never takes such care "

सच भी है कि मनुष्य अपने गाय, बैल, घोडों और कुत्तों का जोडा लगाने के समय तो उनके कद, नसल और बल आदि गुणों के लिए बडी सावधानीसे विचारपूर्वक काम लेते हैं किन्तु

अपने पुत्रों के लिए विवाह का समय उपस्थित होता है तब वे स्वार्थ के वशीभूत हो सब विचार भूल जाते हैं। क्या यह कम शोचनीय दशा है? शेठजी को हजार दो हजार रूपये डोरे के मिल जाते हैं तो वे फूले नहीं समाते है परन्तु यह खयाल नहीं है कि इस कुमेल विवाह का क्या फल होगा ? इससे हमारी इज्जत बढेगी या सतावीस पीढीयोंमें एकत्र की हुई इज्जत एक ही दिन में नष्ट हो जायगी ? इतना भी विचार नहीं करना क्या यह मनुष्यत्व है ? कन्याविक्रय करना यह एक विगर इज्जत का महान् पाप है अलबत, वरकन्या का सुयोग्य सगपन हो वहां इज्जत का साधारण डोरा लेना देना एक महत्व की बात है पर डोरे के लोभ से या बराबरी का घर देखकर कुजोडा कर देना इसमें जितना कन्याविक्रय का पाप है उतना ही वरविक्रय का पाप समझा जाता है।

साधारण स्थितीवाले को तो इस वरविक्रय में भी मरण है, और वह अपने हाथों से मरते हैं कारण साधारण घर के सुयोग्य वर को कन्या न देकर, धनाढ्यों को बडे २ डोरे देकर अपनी इज्जत बढाने की कोशीष करते हैं। फल स्वरूप में उन धनाढ्यों की मर्जी के मुताबिक हाजरी भरने पर उनकी इच्छा तृप्त करने को विशेष द्रव्य खर्चने पर भी उन साधारण आदमियों की इज्जत रखना तो उन भाग्यविधाता धनवानों के हाथ में ही है। अगर ऐसी दो—तीन कन्याएं हो तो उस साधारण को तो नया जन्म लेना पडे। इत्यादि

इन कन्या विक्रय—वर विक्रयरूप कुप्रथाओंने हमारे समाकी क्या दुर्दशा करदी है और न जाने भविष्य में क्या करेगा ? क्या

हमारे पूज्य नेता लोग इस ओर आंख उठा कर देखने की कृपा करेंगे ? मुझे तो पूर्ण आशा है कि समाजनेता और धनाढ्य वीर जैसे इन कुरूढियों को चला कर के समाज का अधःपतन किया है, वैसे ही वे कम्मर कस कर तैयार हो जावे तो समाज की डूबती हुई नाव को बचा लें, और जैसे कुप्रथाओं से कालिमा का टीका हांसिल किया है वह दूर कर समाजोद्धारक यशतिलकको प्राप्त कर सके ? हम भी देखते हैं कि वे समाज अग्रेसर, और धनाढ्य लोग कबतक जागृत हो; क्या उजाला करते हैं ?

(४) विधवाओं की अनाथ दशा ।

जैन समाज में पूर्वोक्त बाल लग्न, अनमेल और वृद्ध विवाह तथा कन्या विक्रय का नामो निशान तक भी नहीं था तो विधवाओं का तो होना प्रायः असंभवसा ही था; कदाचित् स्वल्प मात्र में था तो भी उनका जीवन साध्वी जीवन के रूप में ऐसे पवित्र और उत्तम रीती से गुजरता था कि वह उस अवस्था में अपना आत्मकल्याण कर के स्वर्ग—मोक्ष की अधिकारिणी बन जाती थी पर आज पूर्वोक्त कारणों से अर्थात् बाललग्न वृद्धविवाह और कन्या विक्रय से विधवाओं की संख्या दिन ब दिन बढती जा रही है। इस की बरमाला भी हमारे साहूकार श्रीमानों के शुभ कण्ठ को ही शोभित कर रही है, धनमद की अन्धता से अचिरकाल की विषयवास-

ना के वशीभूत हो वृद्धवय में आप धनाढ्य ही लग्न करते है और दो चार साल के बाद संसार यात्रा पूर्ण कर बीचारी अनाथ नव युवती विधवा को रोती—आक्रन्द करती को छोड, आप अपने दुष्कर्मों का फल चुकाने को रवाना हो जाते है।

विधवा वृद्धि में दूसरा कारण बाल विवाह का है वह भी आप श्रीमानों की कृपा का ही फल है, वह पहिले नम्बर में ही बतला दिया है, तीसरा अनमेल विवाह भी धनाढ्यों के घरों से प्रचलित हुआ है, चौथे धनवानों को धन की पिपासा भी कम नहीं है, वे अपने छोटे २ बालबच्चों की सादी कर शीघ्र ही प्रदेश में धन कमाने के लिए भेज देते है; कारण की उनकी सादी के खर्चा से धन की थैलियां कम हो गई थी वह उन्ही से वसूल की जाती है क्यों कि महाजनों के घरों में तो पाई २ का हिसाब है पर शेठजी यह नही सोचते है कि पहिले से इस बालक का स्वास्थ्य कैसा है फिर हम किस प्रदेश में भेजते है और वहां की आब हवा इस को अनुकुल होगी या प्रतिकुल ? वहां जाने से मर्द बनेगा या नपुंसक ? बंबइ जैसे क्षेत्रों में जाने पर भी उन लोभान्धो को न तो अपने शरीर की पर्वाह है न खान पान, रहन सहन, हवा पाणी की दरकार रखते है, उनको तो रातदिन भजकलदारम् २ के ही स्वप्न आया करते है. बम्बई जैसे शहरों में लाखो आदमी रहते हैं परन्तु जितने मरण हमारे मारवाडियों में होते हैं उतने दूसरों में नहीं होते इसका खास कारण तो उनकी असावधानी और बेदरकारी है. जिसके करीब संग्रहणी या क्षय के दुष्ट पंजे में जकड जाते है और वे रोग

असाध्य हो जाते है फिर दवाई वगैरह के हजारों रूपये खर्च करने पर भी सेंकडा ८० आदमी अपनी जीवन यात्रा वहीं समाप्त कर के काल के शिकार बनकर युवक वय में पदार्पण करनेवाली बाल ललनाओं के सौभाग्य को सदैव के लिए अस्त कर यमद्वार पहुंच जाते है। पश्चात् उन बाल विधवाओं का क्या हाल होता है वह समाज से छिपा हुआ नहीं है। इत्यादि कारणों से विधवाओं की संख्या बढती जा रही है, और उन कारणों को पैदा करनेवाले प्रायः हमारे समाजनेता और धनवान ही हैं। अगर वे चाहें तो उन सब कारणों को एक दिन में ही नहीं पर एक घंटे में भी मिटा सके हैं पर समाज का इतना दुःख हैं किस को ? विधवाओं प्रति वात्सल्यता है किसके दिल में? अपने बाल बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा करे कौन ?

सरकार प्रजा को जागृत करने की गर्ज से बाल विधवाओं का असीम प्रमाण वस्तीपत्रकद्वारा प्रति दस वर्ष आप के सामने रख दीया करती है पर उसको देखे कौन ? उसकी पर्वाह है किसको ? देखिए भारत में चौदह क्रोड स्त्रीओ में करीबन तीन क्रोड (२,६९,३५,८२८,) विधवाए हैं, चार सधवा के पीछे १ विधवा की गिनति केवल भारत में ही है; पर यहां पर भी याद रखना चाहिए कि चौदह क्रोड महिलाओं की संख्या तो सम्पूर्ण भारत की हैं और जो तीन क्रोड विधवाए हैं वे उच्च जातियों की है कि जिन जातियों में पुनर्लग्न अभी तक नहीं है। अगर उच्च जातियों की सधवाओं की संख्या लगाई जावे तो आधे से अधिक विधवाएं हैं, अर्थात् सधवाओं से विधवाएं अधिक है; हाय अफसोस ! हाय दुःख ! ! पर यह कहें किसके आगे। जरा निम्नअंकीत अंकोकों तो देखिये।

(१) पचीस वर्ष के अंदर की विधवाएं—१५३७६४४

(२) पनरा वर्ष से कम उमरवाली—३३२४७२

(३) दस वर्ष से भी कम ,, ,, —१०२२९३

(४) पांच ,, ,, ,, ,, ,, —१९१३६

(५) एक ,, ,, ,, ,, ,, — ६०० है

जवानी के आविर्भाव के साथ ही विधवा हो जाना कितन दुःख है पर यहां तो विवाह किस चिडीयों का खेत है। एसी अबोध बालाओं की तो क्या पर अभी तक पांच वर्ष की भी नहीं हुई और जो माता के स्तन का दूध पान कर रही है उन को भी विधवा का 'इल्काब' मिल जाता है यह भारत के सिवाय और उब जाती के अन्दर कहीं भी नहीं मिलेगा। यह कितना अत्याचार! कितना भीषण काण्ड!! यह कितनी भयानक अनाथ दशा!!!

जिस अभागे देश में बालविधवाओं की संख्या सवा क्रोड से भी अधिक हो, एकेक दो दो वर्ष की दूधमुहीं बालपत्नियों की संख्या पनरह हज़ार, व सतरह हजार की हो उस देश के दुर्भाग्य के लिए तो पूछना ही क्या है. ऐसे भयानक बाल विवाह आदि कु-प्रथाओं से स्त्री समाज को या तो अकाल मृत्यु का ग्रास बनना पडे, या असमय में विधवा वेष को धारण करना पडे, इस के सिवाय तिसरा रास्ता क्या हो सक्ता है ?

इतनी बडी विधवा पल्टन पृथ्वीपट्टपर सिवाय हिन्दुस्थान के दूसरी जगह नहीं पाई जाती हैं। इस दारुण व्याधि की जहां तक

चिकित्सा न हो वहां तक चाहे कितनी ही धुमें पाडें, लेख लिखें, भाषण दिया करें पर देशका उद्धार होना सर्वथा असंभव है।

जैन विधवाओं की संख्या जैन वस्ती के प्रमाण से बहुत अधिक है, कारण जैन समाज में बाल लग्न, वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय का रोग अधिक फैला हुआ है इनके सिवाय जैन समाज स्वास्थ्य रक्षण का तो न जाने प्रत्याख्यान ही कर बैठा हो इन्ही कारणों से सब से अधिक विधवायें जैन समाजमें हैं और आज भी पूर्वोक्त कारणों से बढती जा रही है, अगर हमारी समाज के धनाढ्य लोगों को पांजरापोल के ढोर बकरे, और कबूतरों के रक्षण का प्रेम है, उतना समाजोद्धार का प्रेम हो तो वे लगातार बढती हुई विधवा संख्या को एकदम रोक सके और जो समाज में विधवाएं हैं उनके लिए हुन्नरोद्योग और ज्ञानाभ्यासादि संस्था खोल धर्मकार्य में लगा दें तो भी समाज का कुछ भला हो सक्ता है। आप जानते हैं कि दुराचार और गुप्त अत्याचारों से आजदेश भस्मीभूत हो रहा है, प्रसिद्ध पत्रों द्वारा मालूम होता है कि एक वर्ष में ४२०५८० केस तो कोर्टों में केवल व्यभिचार के ही होते हैं; और जो गुप्त व्यभिचार होते है वे इन से पृथक् समझना चाहिए। क्या अब भी हमारे समाज नेताओं की कुंभकर्णीय नींद्रा दूर न होगी ? भला ! क्या इस दुराचार द्वारा होती हुई घोर हिंसा और महान् पाप को सुन कर हमारे दयाप्रेमी जैन समाज का हृदय एकदम नहीं फट् जावेगा ? अरे ! कितनीक बिचारी गरीब अनाथ विधवाएं उदरपूर्ती के लिये सैकडों नहीं पर हजारों

की संख्या में अपने पवित्र पतिवृता धर्म को, व अमूल्य शील रत्न को तिलाञ्जली देकर दुःशील वृत्ति को स्वीकार कर रही हैं, इतना ही नहीं पर अपने सत्य धर्म से पतित हो विधर्मियों का सरण लेती है। क्या यह शर्म की बात नहीं है? आज हमारी समाज के धनाढ्य वीर! विवाह सादियों ओसर मोसर कारानुकता कोरट कचेरीयों फेन्सी पोषाकादि फजुल खरच में चार दिनों की वाहवाह के लिए अपनी गाढी कमाई के लाखों क्रोड़ों रूपये व्यय कर रहे हैं; पर अपने स्वधर्मि भाइयों की और कितना लक्ष है कि वह किस दुःखके मारे धर्म से पतित होते जा रहे है समाज नेतोंको जरा समय की ओर ध्यान देना भी बहुत जरूरी है। शास्त्रकारोंने सात क्षेत्र को बराबर बतलाए है पर जिस समय जिस क्षेत्रमें अधिक आवश्यक्ता हो, उस का अधिक पोषण करना चाहिए। तो क्या अन्योन्य धर्म कार्य के साथ श्रावक श्राविका क्षेत्र की आवश्यक्ता नहीं है? अगर पूर्वोक्त कार्यों को गौण रखें और आवश्यक कार्यों को मुख्यतया समझके, उनके लिए प्रयत्न क्यों नहीं किया जाता है? एक तरफ तो हमारा नौवाड़ विशुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत लोप होता जा रहा है दूसरी तरफ जो कानों में सुनने से भी पाप माना जाता है, वैसे पुनर्लग्न का आन्दोलन मच रहा है, इस हालत में भी हम माल-मिष्टान्न उड़ाने में और गाजे बाजे बजानें में हमारी उन्नति समझ रहे हैं? यह कहांतक उन्नति है?

समाज हितैषी मुनि महाराज, व अच्छे अच्छे विद्वान् नेता, और पत्र सम्पादक अपनी नेक सलाह से पत्रों के कालम के कालम भर कर के पुकार कर रहे हैं, कि जहांतक समाज से बाल

विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह, और कन्या विक्रय रूपी महा पाप दूर न हो वहां तक विधवाओं की बढती संख्या कभी बंध नहीं होगी, और विधवाओं के जीवन को धार्मिक जीवन न बनाया जाय तो दुराचार का जन्म भी रुकना असंभव है और जहां तक यह घोर पाप न रुके वहां तक समाजोन्नति की आशा रखनी आकाश कुसुमवत् है।

मर्दुम सुमारी के पृष्ठों को जरा आंख उठा कर देखिए जो बालिका पहिली मर्दुम सुमारी में कन्या लिखी गई थी वह ही दश वर्ष बाद मर्दुम सुमारी में विधवा लिखी जा रही है यह कितना हृदय विदारक दृश्य है ? दुःख की परिसीमा है ! इसी कारण से भारत के चारों ओर आज विधवा विवाह का गुलशोर मच रहा है। हा ! अफसोस ! ! जिस भारत की हिन्दु ललनाएं अपने विशुद्ध ब्रह्मचर्य के रक्षणार्थ रणभूमि में शत्रुओं का सामना कर अपनी वीरता का परिचय दिया करती थी, अपने शील की रक्षा के लिए प्रज्वलित अग्नि की भट्टियों में कूद पडती थी; अर्थात् जीवित देह को जलाकर सतियां हो जाती थी, आज उसी देश में उन्हीं वीराङ्गनाओं की सन्तान पुनर्लग्न की आवश्यकता समझ रही है, यह कैसा आश्चर्य-जनक परिवर्तन ? जैन नेताओं यह नीच प्रकृती आपकी समाज का भी शिकार करना चाहती है, वायुमंडल बडी शीघ्रता से आप पर भी आक्रमण करना चाहता है। यदि आप इस दुष्ट प्रथा से बचना चाहे तो शीघ्रता से जागृत हो जाईए. बाल विवाह, कन्या विक्रय, वृद्ध विवाह जैसी कुरूढियों को जडमूल से उखाड दें; वरना आप

का ब्रह्मचर्य व्रत आप के सामने ही ध्वंस हो जायगा। जिस कारण से दुनिया में आपकी विशेषता समझी जाती है वह गौरव मिटी में मिल जायगा। अभी तक तो समय है, आप सचेत हो जावें तो आप की विशेषता और गौरव वैसे का तैसा बना है। भविष्य के लिए उस की रक्षा करना आप ही के हाथ में है। अस्तु॥

समाज में व्यर्थ खर्चा.

पूर्व जमाने में हमारे पूर्वज बड़े २ लक्ष्मीपात्र होने पर भी, वे खूब दीर्घदृष्टि से साधारण जन समुह का निर्वाह के लिए ऐसा तो साधारण खर्च रखते थे कि जिस से धनाढ्य और साधारण सब का अच्छी तरह से गुजारा हो जाता था; जिस में भी न्याति जाति के नियम तो इतने सरल और सादे बनाए थे कि प्रत्येक माङ्गलिक कार्यों में लापसी का भोजन तथा देशी कपड़ों की पौषाकों और प्राय: चांदी के जेवर, दागिनों में ही अपना महत्व समझते थे, इस में एक गुढ रहस्य भी था वह यह था कि देशी कपड़ों की पौषाक और साधारण गहनों से न तो विषय वासना को अवकाश मिलता था, न चोरी का भय रहा करता था और न उन पर डाकू लोग आक्रमण करते थे। इतना ही नहीं पर स्वदारा सन्तोष या पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत पालने में भी वह पोषाक परम सहायक समझी जाती थी और उनके ब्रह्मचर्य व सदाचारका तेज तप सब संसार पर पड़ता था।

जब से हमारे धनाढ्य लोगों के कुटील हृदय में अभिमान का प्रादुर्भाव हुआ तबसे वे फाजुल अधिक खर्च से ही अपनी विशेष इज्जत समझने लगे। हमारे पूर्वज अधिक द्रव्य शुभ क्षेत्र में लगा कर के आत्मकल्याण करते थे तब आधुनिक हमारे लक्ष्मीपतिजी उन सुकृतों को तो बिल्कुल भूल बैठे हैं जो कुछ करते हैं तो मान, बडाई, इर्षा, देखादेखी केवल नाम्वरी के लिए करते हैं, बात भी ठीक है कि आज फाजूल खर्चा इतना बढ गया है कि शुभ क्षेत्र व सुकृत कार्य उन को याद भी कहांसे आवे। धनाढ्योंने अपनी मान बडाई के मारे, समाज में इतना फिजूल खर्चा बढा दिया है कि साधारण जनता को तो अपना गृहस्थाश्रम निभाना ही मुश्किल हो गया है।

लग्न सादी की ओर देखते हैं कि पूर्व जमाने में वे लोग बडे २ धनी होने पर भी लापसी वगैरह माङ्गलिक भोजन से कामचला लेते थे, पर आज घर के पैसे हो चाहे कर्जदार हो अपनी इज्जत बढाने को प्रदेशी खाण्ड (मोरस) जो गायों के रक्त और हड्डियों से साफ की जाती है और असंख्य जीव मिश्रीत विदेशी मेंदे से घेवर जलेबी जो अभक्ष मानी जाती है आदि पकान बनाने में ही अपनी इज्जत समझ ली है, चाहे इस से अहिंसा धर्म कलङ्कित हो, चाहे असंख्य जीवों की हिंसा के भागी बने, चाहे उन के देखादेखी साधारण जनता को उस अकृत्य कार्य के लिए मरना पडे, पर हमारे धनाढ्यों को इन बातों की क्या परवाह है।

पूर्व जमाने में अच्छे घराणे में एक विवाह का जितना खर्च होता था उतना खर्च तो आज हमारे एक बन्दोले में हो जाता है यह कितना परिवर्तन! जब पोषाक की ओर दृष्टिपात किया जाता है तो पूर्व जमाने में साधारण कपडों से काम चलाते थे। आज असंख्य जन्तुओं की हिंसा से बने हुए रेशम और अनेक जीवों की चर्बी से बने हुए विदेशी वस्त्र अधिक पसन्द किए जाते हैं, पूर्व जमाने में बडे २ धनाढ्य लोग चार सो पांच सो रूपयों के कपडों से तमाम उम्मर निकालते थे, जब आज एकेक घाघरे पर हजार दो हजार रूपये लगाये जाते हैं इतना ही नहीं बल्कि एक विवाह में कपडे की सिलाई जीतनी दर्जियों को दी जाति है उतने खर्च से पहिले धनाढ्यों के वहां विवाह हो जाता था।

अब आप आज की पोषाक की तरफ देखिए कि जिन बारीक कपडों से उन औरतों के अंगोपाङ्ग जैसे के तैसे दिखाई दे रहे हैं, क्या यह निर्लज्जता का वेश नहीं है लम्बे २ घूंघट निकालने वाली औरतों के सिर के बाल तो मनुष्य चलते फिरते भी गिन सकते हैं, फिर भी हमारे धनाढ्योंने इस पोषाक में अपनी इज्जत समझ रखी है इस में केवल स्त्री समाज ही दोषित नहीं है पर यह सब दोष धनाढय पुरुषों का है कि वे स्वयं ही धोतीएँ ऐसी पहनते है कि स्नान करते समय तो एक दफे नग्न फिरने वालों को भी लज्जा आए विगर नहीं रहती है। बडी शर्म की

बात है कि फिर वे अपनी बहन बेटियों और माताओं के सामने स्नान किया करते हैं। जब पुरुष ही ऐसे निर्लज्ज बन जाते हैं, तब स्त्रियों का तो कहना ही क्या है? इसी दुष्ट कुप्रथाने नौवाड विशुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने वाली समाज में व्यभिचार का दावानल प्रज्वलित किया है। आज देशभर में खादी प्रचार की बडी भारी धामधूम चल रही है पर इस के साथ जैन समाज का कितना संबन्ध है? यदि किसी व्यक्तीने खादी धारण करली भी हो तो उस की हांसी मजाक उडाई जाती है, कारण जिन लक्षाधिपतियों के घरों में रेशमी घाघरे, काञ्चलियों उस पर भी कोर किनारी, फूल, गोखरू, जरी मलमा सतारा लगाया जाता है, वहां बिचारी खादी की क्या किम्मत है? अरे! देशद्रोही, समाजद्रोही धनाढयों एक तरफ तो तुमारे स्वधर्मी भाई अन्न पीडित हो कर के पवित्र धर्म से पतित बनते जा रहे हैं, दूसरी तरफ तुमारी विधवा बहनों की बुरी दशा हो रही है, तीसरी ओर तुमारे बाल बच्चे अज्ञान में सड रहे हैं, इस हालत में भी तुम व्यर्थ खर्च से अपनी इज्जत समझते हो मौजमजा उडाते हो क्या यह शर्म की बात नहीं है? पर याद रखिए धनाढयो! तुमारा यह चटका मटका चार दिनों का ही है, कारण आप फजुल खर्च आय (पैदास) पर करते हैं और आय का कारण व्यापार है वह आप के हाथों से खुसता जा रहा है, जो आपने पहिले से खर्चा बढा रक्खा है, अगर पैदास कम होगी तो भी लकीर के फकीर बन कर के आप को तो उस रास्ते पर मरना ही पडेगा

उस समय आप की इज्जत कैसे रहेगी ? आप की क्या हालत होगी ? जरा नैत्र बन्ध कर इस को भी सोचिए ।

मृत्यु के पीछे जीमनवार (औसर) करना या जीमना शास्त्रकारोंने महा पाप और मिथ्यात्व बतालाया है तथापि हमारे धनाढय लोगोंने इतर जातियों के देखादेखी उस महा अधर्म को भी समाज में स्थान देकर उस के पैर खूब मजबूत बना दिए कि मृतक मनुष्य के कुटुम्बियों पर एक किस्म का काला टेक्स लगा दिया है, चाहे उन की स्थिति हो चाहे न हो पर उन सतार्धीश पंचो की राक्षसी आज्ञारूप तलवार के नीचे उन विचारे गरीबों को तो शिर झुकाना ही पडता है फिर चाहे वह अपनी हाट, हवेली माल जंगम स्थावर स्टेट लिलाम करें, चाहे ऋण (कर्जा) निकाले इतना ही नहीं पर देवद्रव्य से कर्जा देकर के भी नुक्ता करवा कर पक्व तो माल मिष्टान उड़ाने में ही अपनी महत्वता समझते हैं । अरे हत्यारो ! अरे राक्षसो ! ! तुमारे एक दिन के मिष्टान के लिए बिचारे उन गरीबों का कितना रक्त भस्म होता होगा, इसी फिजुल खर्च के कारण बिचारे साधारण लोग अपने बाल बच्चों को छोड कर दिशावर जाते हैं, वहां झूठबोलना, चोरियों करना, स्वामि द्रोहीपना, तथा धोखाबाजी करना । और कहीं भी पैसा न मिले तो अपनी लडकियों का भी लिलाम करना पडता है अर्थात् पूर्वोक्त अत्याचार सिर्फ फिजूल खर्चेने ही सिखाए हैं ।

पूर्व जमाने में हमारे पूर्वजोंने न्याति जाति में ऐसी शृँख-

व्यवस्थाए रच दी थी कि समाज में कितना ही वैमनस्य हो जाय, परन्तु उनको अदालतों का मुंह देखने की आवश्यकता नहीं रहती थी कारण वे अग्रेसर लोग न्यायपूर्वक घर के घर में ही समझा देते थे, इतना ही नहीं पर इतर जातियों का इन्साफ भी हमारी समाज द्वारा ही हुआ करता था.

आज हम अदालतों की तरफ नजर करते हैं तो जहां तहां विशेष कर हमारे जैनी भाई ही दृष्टीगोचर होते हैं, जिस समाज में टंटा फीसाद कर अदालतों के मुंह देखने में ही महान् पाप समझा गया था आज वही समाज हलफ उठा करके सत्यासत्य गवाहियों दे रही है; साधारण ममुली बातों के लिए हमारे धनाढ्य वीर हजारों लाखों रूपये बरबाद कर देते हैं साल भर में सो पचास रूपये शुभ कार्य में खर्चना तो शेठजी को मुश्किल हो जाता है तब वकील बारिष्टरों को रात्री में गुप चुप हजारों लाखों मिल जाते हैं। "क्षमा वीरस्य भूषणम्" महावीर प्रभु के इस सिद्धांत को भूल कर के आज समभाव, सामायिक, और प्रभुपूजा करनेवाले एक ही देवगुरु के उपासक तो क्या पर एक पिता की सन्तान एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए झूठी गवाहियों देने में तनिक भी नहीं हिचकते हैं; हजारों लाखों रूपैये धूंवे की भान्ति उडा देते हैं इन धनाढ्योंने इस शंक्रान्तरूपी (चेपी) रोगको आज साधारण जनता में भी यहां तक फैला दिया है कि शायद ही ऐसा आदमी बचा होगा कि जिसने अपना नाम कोर्ट—कचहरी में न

लिखाया हो इतना ही नहीं पर अब तो हमारे षट्काय प्रतिपालक मुनिराजों के चरण कमल भी अदालतों को पवित्र बना रहे हैं।

अगर हमारे समाज नेता इस और लक्ष देकर पूर्व की भान्ति आपस के झगडे पंचायतियों द्वारा न्यायपूर्वक निपट लें, तो समाज के प्रतिवर्ष हजारों लाखों रूपये व्यर्थ जाते हुए रूक जाय, अगर उन धनवानों के घरों में धन रखने के लिये जगह न हो तो समाज के ऐसे २ कई क्षेत्र है कि जिन को द्रव्य की पूर्ण आवश्यकता है; वहां लगाकर के पुन्य हांसिल करें।

अगर कोइ सवाल करेगा कि धनाढ्यों के देखा देखी साधारण आदमी पूर्वोक्त खर्च क्यों करते है क्या कोइ उनसे जबरन् करवाता है ? उत्तर में कहना पडता है कि वे धनाढ्यों के बराबर खर्चा करने में खुश नहीं है, पर ऐसा नहीं करने पर धनाढ्य उनकी इज्जत को हल्की समझ कर के उनके लडके लड-कियां के सगपन में बाधा डालते हैं इस भय के मारे उन साधारण मनुष्यों को भी देखादेखी मरना पडता है।

अगर आज भी हमारे धनाढ्य वर्तमान जमाने में जैन समाज की गिरी हालत, उनकी आय व्यय और व्यापार की हालत पर गहरी दृष्टि से विचार कर साधारण मनुष्यों पर वात्सल्यता भाव लाकर पूर्वोक्त विवाह सादी काज करीयावर गहने कपडे, बन्दोले, बेण्डबाजे आदि २ कार्यों में पहिले अपने घरों से फिजुल खर्चे को हटा करके पूर्व की माफिक साधारण

खर्च से काम लिया जाय तो अपनी भावी सन्तान और साधारण समाज का सुखपूर्वक निर्वाह होता रहे, और इसका यश भी उन्हीं धनाढ्यों को मिलेगा कि पहिले पहेल अपने घरों से यह पूर्वोक्त कार्य प्रारंभ करें।

अगर आपको एकेक विवाह में दश २ वीस २ और पचास २ हजार का खर्च करने का व्यसन पड गया हो, एकेक मौसर में दश २ वीस २ हजार व्यय करने की आदत पड गई हो तो आप उसी द्रव्य को समाज सुधार के लिए अनाथ विधवाओं और आप के स्वधर्मी भाईयों के लिए विद्यालय हुन्नरोद्योग शालाएं स्थापित करवा कर; अनन्त पुन्योपार्जन करे ताकि इस भव और पर भव में आपका कल्यान हो शासनदेव हमारे धनाढ्यों को सद्बुद्धि प्रदान करें कि वे पूर्व जमाने के उत्तम विचारों पर खयाल कर, अपनी चंचल लक्ष्मी को समाज हित में लगा कर के भाग्यशाली बनें।

(६) समाज में साधारण जनता की दुर्दशा.

पूर्व जमाने में हमारे समाजनेता साधारण जन और गरीब वर्ग की और विशेष लक्ष दिया करते थे, और उनकी स्थिति सुधारने का प्रयत्न सबसे पहिले करते थे कारण धनाढ्य लोग समाज में बहुत कम हुआ करते हैं अगर गरीब वर्ग की उपेक्षा

की जाय तो समाज की संख्या अंगूलियों पर गिनें जितनी रह जाती है, अतःएव साधारण जन का रक्षण पोषण करना अग्रेसरों का परम कर्तव्य है । आज जमाना कुछ अजब ढङ्ग का दिखाई देता है, जो लोग गरीबों के रक्षक थे वे ही आज उनके भक्षक बन बैठे है जो लोग साधारण जनता की उन्नति में अपना गौरव समझते थे; वे ही आज उन को अवनती की गहरी खाड में गिराने में ही अपना महत्व समझ रहे हैं । अगर साधारण गरीब वर्ग को अधोगति में पहुंचाने का शोभाग्य कहा जाय तो हमारे श्रीमानों के ही हिस्से में सोभित होगा कारण जितनी कुरूढियों प्रचलित हुई है, वे सब धनाढयों के वहां से ही हूई है; विचारे साधारण आदमी तो उनके पीछे २ मरते है । पैसे की हालत तो उन विचारों की पहिले से ही तङ्गी होती है फिर ऊपर से काज किरीयावर रूपी व्यर्थ खर्च की चाबूक उडते है अपनी उदरपूर्ति के लिए तो वे रातदिन पच रहे है इधर उधर भटकने पर भी कुटुम्ब का पोषण होना मुश्किल हो गया है । अपने बालबचों को अपठित रख कर, अपने गृह खर्च निर्वाहने के लिए उनको कोमल वय में भी धनाढयों की गुलामी करने को दिशावर भेजने पडते है । इत्यादि । आज जितनी जैन समाज में साधारण वर्ग की बुरी दशा है, उतनी शायद ही किसी समाज में होगी ।

हमारे जाति अग्रेसर पंच धनाढय लोग सभा सोसाइटियों और कमेटियों में एकत्र हो के लेटफार्म पर खडे होकर लम्बे २ भाषण देते है ' समाजसुधारकरो ' फिजुल खर्च कम करो ' स्व-

धर्मी भाइयों को हर तरह से सहायता करो, विधवाओं के लिए हुन्नरोद्योग शाला और बालबच्चों के लिए विद्यालय खोल दो' इत्यादि। तालियों के गिड गिडाहट के साथ रजिष्टर में प्रस्ताव पास कर लेते है पर उसका फल क्या हुआ? किसीने उन प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणीत किया है? सिंह क्षणभर के लिए गुफा से निकल गर्जना कर दिया करते हैं, पर गुफा में जापडने पर छ मास तक पडा ही रहता है यह ही हालत हमारे समाजनेताओंकी है।

हमारे आचार्य देव और मुनि महाराज भी अपने उपाश्रय में ऊंचे पाटेपर बैठ कर के स्वधर्मीयों की सहायतार्थ महाराज कुमारपाल जगडुशाह खेमादेदाणी और वस्तुपाल तेजपाल की उदारता और स्वधर्मी भाइयों की सहायता का लम्बा चौडा व्याख्यान सुना देते है, और श्राद्धवर्ग जी महाराज! तेहत वाणी!! करके सुन लेते है पर उनपर अमल करे कौन? अगर करे तो भी विप्रीत रूपमें कारण समाज अग्रेसर और धनाढ्यों के मगज में तो यह कीडा घुसा हुआ है कि अगर साधारण जनता की उन्नति हो जायगी तो अपनी पंचपंचायतीया रूप नादीरशाही चलनी बडी मुश्किल होगी; वास्ते इनको तो अपने पैरों के तले ही रखना अच्छा है। आप अनेक प्रकार के अयोग्य अन्याय करें न्याति जाति के कानून कायदे तौड दें अनमेल और वृद्धविवाह करले तो भी कुछ नहीं, कारण सत्ता तो उनके हाथमें है उनको कहनेवाला कौन अगर यह ही कार्य साधारण जनताने करलिया हो तो उनके लिए जमीन आसमान एक करदेते है, इन पंच पटेलों की ऐसी

बुरी आदतें पड़ गई है कि साधारण जनका लाभ करना तो दूर रहा पर वे अपनी हिम्मतपर भुजबलपर अगर कुछ उन्नति करना चाहें तो भी उनके उन्नति क्षेत्रमें ऐसे रोड़े डाल देते हैं कि उनको दूसरीवार ऐसे कार्योंमें साहस करना भी मुश्किल हो जाता है; अर्थात् न्याति जाति या राजद्वारा उनके पैर तोड़ दिए जाते हैं कारण उनके पास सत्ता और धन है कि उनकी तरफमें बोलने-वाले गवाहियो देनेवाले भी बहुत मिलते है उस हालत में बिचारी साधारण जनता की बुरी दशा यहाँतक होती है कि वह विचारे निर्दोष होनेपर भी उनको दण्ड के भागी बनादेते हैं।

अगर जनाहितार्थ पाठशाला हुन्नरशाला औषधालय चलता हो तो अग्रेसर लोग अपने धरके क्लेश कुसम्प को लाकरके उन संस्थाओंपर डालदेंगे, और कुछ स्वार्थ देकर अलग २ धडापार्टियों बना करके अनेक प्रकारसे नुक्शान पहूंचाने की कोशीष किया करते हैं; और इनको अपना परम कर्तव्य भी समझ रखा है।

पूर्वोक्त कारणों से ही हमारे साधारण वर्ग की दुर्दशा हो रही है और इसी कारण से बहुतसे लोग धर्मसे पतित होते आ रहे हैं, और जैन संख्या कम होनेका भी खास कारण यही है कि हमारी समाज में साधारण और गरीब वर्ग को किसी प्रका-रकी सहायता नहीं मिलती है उनका शारिरीक और मानसिक बल दिन बदिन ह्रास होता जा रहा है भविष्यमें न जानें इसका क्या फल होगा ?

आज हम इसाइयों, मुसलमानों, पारसियों, और आर्य

समाजियों को देख रहे हैं कि वे अपने सहयोगियों को किस कदर सहायता दे रहे हैं उनके सुखमें सुखी दुःखमें दुःखी होना तो खास अपना ध्येय ही बना रक्खा है इसी कारण से वे लोग संख्या में व्यापार में हुन्नरोद्योगमें आगे बढते जा रहे हैं।

क्या हमारे समाज अग्रेसर धनाढ्य नेता अपने पूर्वजों की समाज सेवाको तो शायद् भूल बैठे होंगें पर इतर समाजों से भी इस नसियत को सीखेंगे, धारण करेंगे ? और अपने स्वधर्मि भाइयों की सहायताके लिए आज ही कम्मर कसकर तैयार हो जाएंगे ?

हमारी समाज के पास अभीतक द्रव्य बहुत है बुद्धिबल है व्यापार भी उनके हाथमें हैं अगर वे चाहें तो अपनी समाज के साधारण वर्ग को सहायता देकर अपने समान बना सके हैं कारण उनको द्रव्यके जरिए विद्या हुन्नर व्यापार आदि कार्यों में लगा सके हैं।

सज्जनो ! समाज जीवित रहेगा तो सैकड़ो मंदिर बना सकेगा हजारों जिर्णोद्धार करा सकेगा उपधान, उज्जमना, वरघोडा, और पट्टी महोत्सव करा सकेगा। अगर समाज ही नष्ट हो गया तो जैसे पूर्व और महाराष्ट्रीय आदि प्रदेशों में सैकडों जैन मंदिर शिवालय बनगए हैं, हजारों मूर्तियों पैरो तलें कुचली जा रही है; वैसे ही आपके क्रौड़ो लाखों रूपैये लगाकर बनाए हुए मंदिरों की एक दिन वही दशा होगी। अगर आपके हृदयमें जैनमन्दिर, मूर्तियों की पूर्ण श्रद्धा हो, जैन शासनको जीवित रखना हो; जैन-

धर्म की उन्नति चाहते हो तो अन्यान्य धर्म कार्यो के साथ सबसे पहिले अपनी समाज को सुधारो। उन्नति पथपर ले जाओ और स्वाधर्मी भाइयों को सहायता दे करके अपने बराबरी के बनालो इसमें ही आपका कल्याण है।

(७) बालरक्षण और माताओंका कर्तव्य।

प्रत्येक ज्ञाति न्याति और समाज के हानि वृद्धि का आधार उनके बाल बच्चों के पालन पोषण—स्वास्थ्य और दीर्घायुः पर है इसीलिये ही शास्त्रकारोंनें तद्विषय खुब विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है पर आज उस उत्तम शिक्षाके अभाव हमारी माताए अपने बालबच्चो के पालन पोषण से बिलकुल अनभिज्ञ है और इस कारणसे ही संसारभरके बालमरणमें हमारी समाज पहले नम्बरमें मशहूर है। बालमृत्यु के कारणसे हमारी संख्या दिन व दिन कम होती जा रही है।

हमारी समाजमें बाललग्न अनमेल विवाह का काफी प्रचार है इसी कारणसे बाल ललनाएँ अनियमत समय रजस्वला हो गर्भ धारण कर बालकों कि माता बनने को तय्यार हो बेठती है पर गर्भाचर्यसे ज्ञात न होनेसे उनको यह भांन नहीं है कि गर्भवंती औरतो को किस रीतीसे रहना चाहिये किस रीतीसे गर्भका पालन करना चाहिये ? हमारे शास्त्रकारोंने फरमाया है कि गर्भवंती महिलाओं को न अति गर्मभोजन न अति शीत—रूक्ष—

स्नग्ध—कटूक आम्ल—खाटा—मीटा चरकादि व अल्प और अति भोजन नही करना चाहिए केवल शीघ्र पाचन करनेवाला सात्वीक भोजन जो कि गर्भको पथ्यकारी हो उसीका ही सेवन करना लाभदाथि है गर्भवंती ओरतो को अति कठनाइयों का काम भी वर्जनिय है पर रखसी अपठित सासुओं उन विचारी पराधीन गर्भवंतीसे सात आठ ओर नौ नौ मास तक पीसना पोवना दलना खण्डना पानीलाना वीलोनाकरना और रसोइ वगैरह सब घरके काम लिया करती है जिससे अव्वलतो उस गर्भका पतन ही हो जाता है कदाच् अपने आयुष्यवलसे बचजावे तों वह इतना कमजोर होता है कि संसारमे कुच्छ करने काबिल नहीं रहता है। गर्भवंती स्त्रियों को केदखाना के मार्फाक एकही स्थानमें रहना भी उचित नहीं है परन्तु वह अच्छी आवहाव कि जगहामे रहै और थोडी बहुत मैदान में गुमती भी रहै तांके उनका स्वास्थ्य अच्छा रहै। गर्भवंती को गर्भ हो वहांतक पति शय्याका भी त्याग करना चाहिये अर्थात् विषयभोगसे सर्वता बचना जरूरी है पर कितनेक अज्ञ दाम्पति विषय भोग की दुष्ट वासना के वशीभूत हो उस नियम को उल्लंघन कर कामक्रीडा मे रती मानते है इत्यादि पूर्वोक्त कारणो से उनकी संतान सत्वहीन कानी कुबडी लुली लंगडी कुरूप जनमसे रोगी कायर कमजोर निस्तेज और अल्पायुःवाली होती है इस लिये गर्भवंत्ती ओरतो को हमेशों आनंदमंगल और शान्तिमें रहना चाहिये उनके पास अगर कोइ बात करे वो भी सदाचार सद्चारित्र और बीरता की करनी अच्छी है

कारण सुख दुःख शोक संताप हर्ष उत्साहा आदि जैसेबाते गर्भवन्तीके सामने कि जाती है वैसा ही गर्भ के जीवपर असार हो जाता है अर्थात् गर्भ के जीवन उसी समयसे निर्माण हुआ करता है। वास्ते गर्भवंती और उन के सहचार्यों कों चाहिये कि गर्भ का भलीभांति पालन कर अपनी संतान की नीव कों सुदृढ बनावे।

हमारे धनाढ्य लोग गर्भ के रहते ही मंगलोत्सव हर्ष वधाइये और घेवर वगैरह में सेंकडो हजारो रुपैये व्यय कर देते है पर उन के घरोंमे गर्भवंती के दयाजनक हाल देखा जावे तो हृदय फट जाता है और इसी कारण से प्रायः धनाढ्यो के एक दो तीन पीढी मे गोदपुत्र की खोज करनी पडती है।

अब हम प्रसूत समय कि तरफ दृष्टिपात करते हैं तो वह समय गर्भ और गर्भवंती कि मृत्यु की कसोटी का है इसपर भी अपठित दाइयों उन के जीवन को इस कदर नष्ट कर देती है कि दीर्घायुः हो तोही वह गर्भ जीवित रह सके साथमें गर्भवंति के लिये मकान तो मानो एक कारागृह ही है कि जहाँ हवा का प्रवेश तक नहीं उसमें ही वस्त्र देखा जावे तो दुर्गन्धी से भभक उठे है प्रसूत समय जो फाटे हुए वस्त्र काममे लिये जाते है वह न जाने कितने अरसे के होते है कि मैल और दुर्गन्ध शरीर के लगते ही रोग पैदा हो जाते है इसी अत्याचार के कारण हमारी समाज में सेंकडे वीस ओरते सुवारोगसे खत्म हो जाति है तब सेकडे पैतीस बच्चे नौमास नरकमे रह कर स्वर्गमें चले जाते है यह कैसा भिषण हत्याकरण

कि सेंकडे पचबन जीवों का संहार। आज पृथ्वीपट्ट पर देखा जावे तो यह संहार हमारी समाज के सिवाय आप को कहाँ भी नहीं मिलेगा।

आगे चलकर गर्भ प्रसूता माता के भोजन कि और देखिये जो पुराणे जमाना में ताक्तवर माताओ को बलीष्ट भोजन दिया जाता था वह ही भोजन आज हमारी कमजोर नवयुवतियों को दिया जाता है कि जिस के अन्दर उस भोजन पचाने कि सक्ति न होने से वह उल्टी बैमार पड जाती हैं कारण जिस सासु व दादी सासुने गोलीभर घृत खाया था वह समजती है कि बहु भी इतना खाजाय तो अच्छा पर उन को यह ख्याल कहाँ है कि मेरे शरीर मे कितनी ताकत थी मैं कीस अवस्थामें प्रसूत प्रारंभ किया था। खेर।

अब बालपोषण का हाल भी सुन लिजिये। अव्वलतो बाल माताओं के स्तनोंमे दुध कम होनेसे बच्चों को पुरी खुराक नहीं मिलती है जब वह रुदन करता हैं तो उस को अफीम दे दिया जाता है कि उन के शक्ति तन्तुओ का प्रारंभसे ही वह भक्षण कर लेते है आगे उन बच्चा के संस्कार के लिये जैसे उन की मातापिता ओर कुटुम्बियों का रहन शहेन खानपान भाषा विचार होगा वह उस अबोध बालक के कोमल जीवनपर संस्कार पड जायगा फिर उस को सेंकडो उपाय करो पर वह संस्कार किसी हालतमे नहीं बदलते है जैसे कि—अमेरिकामे एक माता अपने ढाई साल के बालक को लेकर के एक धर्मगुरु के पास उपस्थित हुई और

सलाह मांगी कि इस बालक का भविष्य उच्च जीवन के निमित्त कैसी शिक्षा दी जाय ? महात्माने कहा "माता ! इस का आधा शिक्षा समय तो व्यतित हो गया" माता आश्चर्यमुग्ध हो चिन्तामें पड़ गई पर महात्माके तात्पर्य को न समझ सकी और निश्चय कर लिया कि मेरे बालक की आयुष्य अधिक नहीं है, महात्माने समझाया कि मेरे कहने का भावार्थ यह नहीं है; पर बालक जन्मते ही शिक्षण लेना प्रारंभ कर देता है जो जो भला बुरा उस को दृष्टिगत होता है वह गृहण कर लेता है। माता, पिता, कुटुम्ब परिवार के देखे हुए रहन सहन को वह कभी नहीं भूल सकता है, कोरे साफ कागज पर लिखा हुआ हर्फ मिटा कर यदि फिर से उसी कागज पर लिखना चाहेंगे तो पहिले जैसा साफ नहीं लिखा जायगा; उसी माफिक बालक के निर्मल हृदय पर पड़ी हुई छाप निकाल कर नये संस्कार आरोपित करना मुश्किल है। इस कारणसे ही मैंने कहा था कि जो शिक्षण ढाई सालमें इस बालकने प्राप्त कर लिया है, उस का बदलना असंभव है, इसीसे इस की आधी पढाई हो चूकी में मान रहा हूं।

बच्चों को अपनी माता के दूध के बदले विलायती डिब्बों का दूध पिलाया जाता है दुषित दूध की क्या दशा होती है यह भी सुन लिजीए:—

जोधपुर नरेश महाराज यसवन्तसिंह बादशाहा शाहजहां की आज्ञासे हिन्दु धर्मद्रोही औरङ्गजेबसे लड़ने को गए। अपने पास सैना

न रहने के कारण वे अपनी राजधानी को लोट आए। इन की महारानी शिसोदिया राजकुमारी को जब मालूम हुआ कि पतिदेव समरांगण में पीठ दीखाके युद्ध छोड़ कर भाग आए हैं तब उसने कहा, मैं कायर पति का मुह देखना नहीं चाहती; ऐसा कह कर के किले के फाटक बन्द करवा दिए। कारण पूछने पर उत्तर दिया कि "यदि विजय प्राप्त कर आजाएगें तो मैं उन की आरती उतारूंगी, यदि देवगती को प्राप्त हुए तो मैं भी सती हो जाऊंगी, पर कायर पति की पत्नि कहलाना राजपूतानी को पसन्द नहीं" उस समय महाराजा की माता भी वहां मौजूद थी, उसने आत्मग्लानी लाकर दबे हुए स्वरसे कहा कि "बेटा! उसमें तेरा अपराध नहीं है, तूं जब बालक था, तब तेरे रोने पर बान्दीने तुझे चुप करने के लिए, अपने स्तन का दूध पिला दिया था, मैंने उसी समय तुझे ऊंधा लटका कर तेरे मुंहसे वह दुध निकाल दिया था तब भी मैं डरती थी कि बान्दी का दूध तुझे असर नहीं कर देवें। बेटा! आज वही हुआ, आज तुझे वही दूध युद्ध से भगा लाया, यदि तेने मेरा ही लगातार दूध पिया होता तो आज यह दिन मुझे देखना नहीं पड़ता।" इस पर जरा ध्यान लगाके सोचना चाहिए।

अब हमारे मातापिता कि ओर से उन बाल बच्चों को किस प्रकार की शिक्षा मिलती है बच्चा को टाइमसर खुराक न मिलनेपर वह रोने लगता है। तब माता कहती है कि "नेना सुजा बागड़ बोले थांने खाजासी या लेजासी" यह डरपोक के पाठ तो सरूसे ही

सुनाये जाते है इसी कारणसे लोगो मे कहवत चल पडी है कि " चार चौर चौरासी वाणिया एके एकने इकवीस इकवीस को तारिया " आगे बचा कुच्छ तोतली भाषा बोलना सिखता है तब उसके मातापिता कहता है कि क्यो बेटा तेरे बहु काली लावे या गौरी उत्तरमे बेटा कहता है कि ' गोली ' पिताजी हाँसी मे कहते है कि तेरीमांकी........उल्लूके पठ्ठा " इसपर लडका दोहराता हुआ कहते है कि तेरी मांकी........उल्लूके पठ्ठा " माता कहती है कि तेरे बाप की मुच्छे खांचले " तब बेटा अपने " बाप की दाढी पकड जेर करदेते है फिरतों मांबाप और लडका खुशीके मारे फूले ही नहीं समाते है मातापिताके आचरण का असर लडको पर इस कदरका पड जाते है कि फिर लाखों उपाय करने पर भी नहीं मिटता है कारण लडका तो फोटुग्राफ का कांच है मातापिता या कुटम्बियों का जैसा का तैसा आचरण उस बचो के हृदयमे उतर जाता है पुनः जैसे कोरे कागजपर जी चाहे जैसे अक्षर लिखलो फिर उसको मीटाके दूसरे साफ अक्षर लिखना चाहेतो मुश्किल ही नहीं पर दुःसाध्य है देखिये हमारे बालबालिकाओ कों चोरी करना चीलम बीडी सीगरेट भांग गंजा पीना किसने सिखाया ? व्यभिचार की गालिये किसने सिखाई ? लडकियों को गोबर लाना खराब गीत गाना ढोल पर मैदानमे नाचना किसने सिखाया ? क्या कोइ इनके लिये स्कूल है कि जिसमे सीखी ? इन सब बातों के लिये उनका घर ही स्कूल है और मातापिता उनके शिक्षक है इतना ही नहीं पर मुल्ला पीर फकीर योगी सन्यासी आदि के दोरा मादलीया कुमंत्र

और गलेमे फूल राखडी दोरा बन्धके सबे गुरुकी श्रद्धा उडादी और कब्र मसजीद भेरू भवानी खेलाजी खेतलाजी हडबुजी आदि आदि देवों के संस्कार डाल हमारे वीतराग जैसे देवोंसे अश्रद्धा करवाने का खास कारण हमारे मातापिताही है नाटक सीनामा और रंडिये के खेल तमास से व्यभिचारी बनानेवाले भी दूसरा नहिं पर बच्चोंके जन्मगुरु ही है जैसे दुर्व्यसन के संस्कार डाले जाते है वैसे सदाचार और धर्म के संस्कार बहुत कम डाले जाते है कारण न तो उनको मन्दिर उपाश्रय सदैव ले जाया करते है न गुरु महाराज का सत्संग करवाया करते है इस कारण न तो उनके अन्दर विनय विवेक सद्विचार देवगुरु व मातापिताओ प्रति सेवा भक्ति सुश्रुषा के संस्कार होते है । शरूसे पडे हुए बुरे संस्कार दूसरो को तो क्या पर उनके मातापिताओ को ही कितने दुःखदायी होते है वह उनकी आत्माही जानते है कबी कबी तो पुकारे किया करते है क्या करे छोरे मानते नहीं है दुःख दियाकरते है अब क्या करे ? यह किसके फल है ? यह बूरे बीज किसने बोये ?

आगे उन माता और बालको के स्वास्थ्य कि ओर देखा जावें तो हृदय फाटके टुकडे टुकडे हो जाते है कहाँ वीर समाज की जिनके हुँकार मात्रसे भूमिकम्प उठती थी कहाँ आज निर्बल संतान कि वह स्वयं अपनाही रक्षण नहीं कर सके ?

उनके धर्म संस्कार कि ओर तो, देखा जाय तो केवल नाम मात्र के जैन रह गये है न आत्मज्ञान न आचार व्यवहार न क्रिया

कारण इतनाही नहींपर अगर कोइ अंक लिखाम पुत्र-लक्ष्मी वगेरह बतानेवाले ढूंगी पाखण्डि आगया हो तो सबसे पहले वह उनका स्वागत करने को तय्यार हो जायगा। कारण उनके संस्कार ही ऐसे पडे हुए है इत्यादि यह सब दोष हम कीस को दे? इस विषयमे एक पाश्चात्य तत्त्ववेता विद्वान स्माईल्सने कहा है कि—

" House is the first and most important school of character. It is there that every human being receives his best moral training or his words."

अर्थात् घर एक चारित्र की प्रथम और पूर्ण जरूरत की स्कूल है मनुष्य अच्छासे अच्छा नैतिक्ष शिक्षण या बुरासेबुरा शिक्षण वहाँसे ही प्राप्त कर सक्ता है।

जब गृहशिक्षण का आधार विदूषी महिलाओं पर है अगर माताओं अच्छी शिक्षित हो तो अपने बाल बच्चोंको सुन्दर शिक्षा देकर उनकों उच्चकोटी के संस्कारी बना सक्ती है इसलिये उसी विद्वानने फिर भी स्त्री शिक्षाके लिये प्रजाकिय आवश्यक्ता बतलाते हुए कहा है कि—

" If the moral character of a people mainly depends upon the education of the home then the education of woman is to be regardes as a mother of national important"

अर्थात् अगर मनुष्य का नैतिक चारित्र मुख्यतया गृहशिक्षण पर आधार रखता हो तो स्त्रीशिक्षण प्रजाकीय आवश्यक्तायुक्त वस्तु है।

समाज सुधारके टेकेदारों कों इस सुवाक्यपर लक्ष देणा चाहिये कि माता अशिक्षक होनेपर हजार उपाय क्यो न किया जाय पर उनकी संतान का सुधारा होना मुश्किल नहीं पर सर्वेता असंभव ही है—

आजकल हमारी अशिक्षत माताओं अपने संतान का पालन पोषण करने में भी सरमाती है कारण उनके हाथो मे सोने क बाजुबंध और बंगड तथा रेशमी पौषाक और साबुसे रगडा हुआ शरीर का गमंड है जिससे अन्योन्य काम कि माफीक यह भी एक काम नोकरो के सुपर्द कर देती है अगर अपनी संतान का पालन करने में ही उनको शरम आती हो तो वह माता बने ही क्यो ?

जब निज संतान पालन का ही यह हाल है तों दूसरे कामों की तो हम आशा ही क्यो रखे ? उन अपठित माताओ की तरफ से उन बालबच्चों को आशीर्वाद किस कदर से मिलता है वह तो उनके घरके तथा आसपास रहनेवाले पाडौसी ही जानते है कि एक दिनमे सेंकडो दुराशीष रूपी गालिये की वरसात हुआ करती है । उन बालबच्चों की मारपीट कि तरफ तो देखा ही नहीं जाता है कि वह किस कदर मारपीट करती है कितनेक बालक तो बिचारे अंगउपांग को भी खो बेठते है इत्यादि बालरक्षणकी दुर्दशा कहां तक लिखी जाया कारण इस बातको हमारी समाज के आबाल वृद्ध सब लोग अच्छी तरह से जानते है ।

आज हमारी समाजमें महा भयंकर बाल मरण और सुवा

मरणने त्राही त्राही मचा दि है जितना बाल मरण जैन समाजमे है उतना स्यात् किसी कोममे न होगा ? हमारी दिन ब दिन संख्या कम होने का भी मुख्य यह ही कारण है अतएव इस कारण को शीघ्रतासे न रोका जाया तो भय है कि हमारी समाज कि क्या दशा होगा ।

इस महा भयंकर कुप्रथा को रोकने का खास उपाय तो यह है कि सबसे पहले कन्याओ कों अच्छी शिक्षा दि जाय उनके सुन्दर संस्कार डाला जाय उनको गृह कार्यमे दक्ष बनाई जाय माताओं कि बुरी चाले. जैसे व्यभिचार वृद्धक गाल गीत से दूर रक्खी जाय, उन को पूर्ण समज आजाने पर ही उसके रूप गुण बल और धर्म की तुलना करके ही उनका विवाह किया जाय बाल रक्षणादि शिक्षा पहलेसे ही दी जाय उनके गुणागुण का अच्छी तरहसे ख्याल कीया जाय इत्यादि कार्योंमे कन्या समाज सुशिक्षित बननेसे ही समाज का सुधार हो सकेगा घटती हुई जैन संख्या भी रूक सकेगी । बाल मरण जैसा भयंकर रोग कि चिकित्सा हो सकेगा । और जैन समाज फिर से उन्नति की आशा रख सकेगा। शासनदेव हमारे धनाढय और समाज अग्रेसरो कों सद्बुद्धि दे कि वह इस पवित्र कार्यमे प्रयत्नशील बने ।

(८) दम्पति जीवन और गृहस्थाश्रम.

पति पत्नी के विवाहसे दम्पति जीवन की शरूआत होती है और वह जीवन पर्यन्त रहती है इस लिये पूर्व जमाने मे उनके माता पिता संबन्ध करने के पहला खुब दीर्घ दृष्टि से विचार कर पूर्ण योग्यतासे ही अपनी संतान का संबन्ध किया करते थे पर आजकाल प्रायः देखा जाता है कि गृहस्थाश्रम के स्थंभरूप दाम्पति के संबन्ध जोडनेमें इतना तो परावर्तन हो गया है कि मानव धर्म रूपी संस्कार की महत्वता प्रायः अभाव सी ही दीख पडती है। इतना ही नहीं पर इस महत्व पूर्ण कार्य को तो एक बच्चों का खेल ही समझ लिया है जैसे बच्चा रमत गमतमे ढींगले ढंगली का विवाह करते है इसी माफीक हमारे मातापिताओने ही उन बालको का अनुकरण करना सरू कर दिया है यह कितना दुःखका विषय है जिस संबन्ध पर अपने संतान का जीवन रचा जाता है उनकी इतनी लापरवाह ? पर आप देखिये शास्त्रकारोंने लग्न दो प्रकार के फरमाए है. (१) देह लग्न (२) प्रेम स्नेह लग्न। पूर्व जमाने में स्वयंवरादि से स्नेह लग्न के साथ देह लग्न किया जाता था इतना ही नहीं पर उन लडके लडकियो कों गृहस्थाश्रम रूपी संसार रथ के धोरी बनाने के पहिले चार बातें मुख्यतया देखी जाती थी और आज भी प्रेम स्नेह और सुखमय जीवन के लिए उन चार बातों की परमावश्यकता है इस लिए मात पिताओं का सब से पहिला कर्तव्य है कि अपनी सन्तान का लग्न संबन्ध करने के पहिले (१)

समान कुल और सदाचार (२) उम्मर और आरोग्य शरीर (३) सद्चारित्र और समान धर्म (४) जीवन निर्वाह के योग्य आय। इन चार बातोंकी अवश्य तुलना करें। मगर आजकल स्वार्थप्रिय माता पिता इन बातों पर ध्यान नहीं देते हैं प्रेम स्नेह लग्न तो दूर रहा पर देह लग्न की भी पर्वाह नहीं करते है जिसका ही फल है कि आज दम्पति जीवन अशान्तिमय क्लेश कदाग्रह का घर बन गया है। जो स्त्रियों गृह देवियों अर्द्धाङ्गनाएँ सहचारीणियों और धर्मपत्नियों समझी जाति थी आज वही स्त्री वर्ग काम क्रिडा का भुवन, भोग विलास की सामग्री, बच्चे पैदा करनेकी मशीन, रसोई बनानेवाली भटियारिण, गृह कार्य करनेवाली दो पैसों की दासी ए पैरों की जूती और गुलाम समझी जा रही है। इत्यादि स्त्री समाज पर आज जो अत्याचार गुजर रहा है, वह पूर्वोक्त अज्ञानता का ही फल है वास्तवमें स्त्री केवल मोजमजा के लिये कठपुतली नहीं है पर उनकी सहायतासे गृहस्थाश्रम और धर्म सुचारूरूपमें चलता रहे जिसके जरिये इस लोकमें सुख शान्ति और परलोक में दोनों का कल्याण हो.

कुलीन स्त्रियो के लिये नीतिशास्त्रकारोंने बहुत ही अच्छा फरमाया है.

कार्येषु मंत्री, करणेषु दासी। भोज्येषु माता, शयनेषु रंभा।
धर्मेषु सहाया, क्षमया धरित्री। षट्गुण युक्तात्विह धर्मपत्नी॥

अर्थात् गृह राज्य चलानेमें मंत्री के माफिक सलाह दें काम

करनेमें दासी के माफीक पतिदेवकी सेवा करे। भोजनके समय माता सदृश अप्रतिम स्नेह रक्खे शयन घरमें रंभाकी भांति हाव भाव माधूर्य सौंदर्य से पतिका दीलको रंजन करे। धर्म कार्यमें सदैव सहायक बन उत्तेजन दें। और पृथ्वी की माफीक क्षमा गुनको धारण कर सुख और दुःख को सामान गीने इन षट्गुणों संयुक्त हैं। वह ही स्त्री कुलीन और धर्मपत्नी कहला सक्ती है पूर्व जमानेमें स्त्री शिक्षा पर अधिक लक्ष दिया जाता था और जन्म से ही उन बालाओं के कोमल हृदयमें ऐसे ही संस्कार डाल दिये जाते थे कि पूर्वोक्त गुणों से वह महिलाओं देवियो के रूपमे अपना जीवन और गृह को स्वर्ग बना देती थी.

जबसे स्त्री शिक्षण की तरफ हमारी समाज का दुर्लक्ष हुआ उनको अपठित रखने में समाज अपना गौरव समझने लगा और कितनेक अकल के दुश्मनों ने तो यहांतक निश्चय करलिया है कि एक घरमें दो कलम चलना बहुत बुरा है ईसका फल यह हुआ कि अपठित महिला समाज विनय, विवेक, चातुर्य, पतिसेवा, बालरक्षण और गृहकार्य से क्रमशः हाथ धो बेठी है अब कितने ही उपदेश दो पर जब उनके संस्कार ही ऐसे पड़ गए है कि वह उपदेश असर नहीं करता है जो स्त्रियों पतीके कार्यमें सलाह देती थी आज वह अपने पति के कार्य में अनेक विघ्न डालना अपना कर्तव्य समझ लिया है गृहकार्य में जो दासी के माफिक काम करनेवाली मानी जाती थी आज वह शेठानियां बन विचारे पति-देव को ही दास नहीं बनावें तो मेहरबानी समझी जाती है अगर

कार्य करेंगे तो भी कैसा कि जिस कार्य में पतियों को सेंकड़ों रूपैये दूसरों को देने पड़ते हैं उस कार्य की तो पर्वाह भी नहीं है और गोबरखाने जैसे इज्जत विहीन तुच्छ कार्य किया करती हैं भोजन समय माता की भांति वात्सल्यता तो दूर रही पर सुखसे एक ग्रास लेना भी विचारे पतिको मुश्किल हो जाता है। कारण भोजन समय ऐसे पुराणों को छोड़ देगी कि आज तो यह वस्तु नहीं है इतने दिन हो गए आप सुनते ही नहीं तो कल रसोई कैसे बनाई जायगी। भोजन की तरफ देखिए ऋतु अनुकूल प्रतिकुल का तो उन अज्ञान औरतों को भान ही नहीं है कि कौनसी ऋतु में कौनसा भोजन पथ्यापथ्य होता है जब भोजन की सामग्री आटादाल मुशाला कई अर्से का कि जिसके अन्दर असंख्य अदर्श जीव पैदा हुए हो और ऐसे प्रतिकुल या जीव मिश्रीत भोजन करने मे अनेक प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं बालमृत्यु की अधिकता का यह एक विशेष कारण है। शयनगृहमें जो महिला रंभा कहलाती थी आज वही राक्षसाणियां बन बैठी है दिनभरमें किया हुआ परिश्रम रात्री दो घंटा पत्नी के प्रेमसे दूर किया जाता था पठित औरतों अपने पति को रंजन कर उसके खून को बढाती थी आज वेही औरतें पति शयनगृह में आते ही कलह पुराण खोल बैठती है कि आज तो सासुजीने ऐसा कहा एवं देराणी, जेठाणी, नणन्द आदि दिनभर की कर्मकथा इस कदर छोड़ देती है कि विचारे पतिका खून और भी भस्म हो जाता है अगर पतिके पहिले पत्नी सो जावे तो उसरोज पतिका भाग्य समझना। रूप

यौवन लावण्य शृंगार नृत्य और पतिरंजन तो उन रंभाओ के साथ ही गया । आजके पतियों के हृदय देखे जाय तो कोलसे हो रहे हैं जो महिलाएं धर्म की सहायक बतलाई जाती थी आज वे औरतें धर्मतत्व को तो भूल बैठी है कितनीक मंदिर जाती है प्रतिक्रमण करती है पर उनको यह ज्ञान नहीं है कि इन क्रियाओंका क्या मतलब है केवल तोते वाला पाठ रटलिया करती हैं यह धर्म नहीं परएक किस्मका व्यसन है पतिके धर्मकार्य मे सहायता के बदले अनेक विघ्न उपस्थित करदेती हैं अतिथी सत्कार करना तो दूर रहा पर बाबा योगी भोपा भखड़ा मुल्लों फकीरों और गुसाइयों के डोरे मादलिये छुमंत्रादि में ही सब कुछ समझ रक्खा है जिन महिलाओं में पृथ्वी सदृश सहनशीलता=क्षमा बतलाई है वह तो सीता सावत्री दमयन्ति और अंजनाके साथ ही गई जरा सा कहा सुना तो विचारे पतिकी तो मानों कम्बख्ती आई, एकेक के बदले मैदान में अनेक सुनादिये जाते हैं अगर इज्जत रखने को पति चुप रह जाय तो अच्छा नहीं तो और भी बेइज्जत की जाती है इत्यादि ।

एक समय भारत अपने सती स्त्रीसमाज के लिए दूसरे देशों की अपेक्षा अपना मस्तिष्क उन्नत रखता था. उन के गुणानुवाद स्वर्ग की सुरांगनाएं गाया करती थी आज उस स्त्रीसमाज का इतना पतन क्यों हो गया ? आज वे मूर्खों की पंक्ती में क्यों गिनी जाती हैं आज वे नीची दृष्टि से क्यों देखी जा रही है ? ' मधर इंडिया ' Mother India जैसी नीच पुस्तकोंद्वारा उन

पर व्यभिचार जैसे दोष क्यों लगाए जाते हैं ? इन सब प्रश्नों का एक उत्तर हमारे भारतीय पुरुष वर्ग है कि उन्होंने अज्ञानता से कहो चाहे स्वार्थवृत्ति से कहो पर जब से स्त्रीशिक्षा की तरफ उपेक्षा कर उन को अपठित रख दी और उन के संस्कार भी ऐसे डाल दिए कि पूर्वोक्त सर्व अवगुन होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उन बिचारियों के लिए धर्म के तो मानों द्वार ही बन्ध कर दिए गये है बात भी ठीक है कि अपठितों के लिए धर्म तत्व का ज्ञान हो भी कहां से ? स्त्री समाज के पतनने केवल स्त्री समाज की ही दुर्दशा नहीं की है, परन्तु अखिल भारत का पतन हो चूका है अब भी हम दावे के साथ कह सक्ते हैं कि हमारी माताओं मे उन्ही सतियों का खून मौजुद है पर वह दोषित रूप में है अगर सद्ज्ञानरूपी अग्नि मे उस को शुद्ध किया जाय तो वह दिन हमारे लिए तैयार है कि वीर वीराङ्गना भारत का पुनः उद्धार कर सके पर हमारे पुरुष वर्ग में इतनी उदारता कहां है कि वह स्त्री समाज को आर्य पद्धति मे शिक्षा देकर के उन को वीराङ्गनाएं बनावें।

स्त्री शिक्षा के अभाव उनकी लग्न पद्धति का भी पतन हो गया जो स्वयम्वर या रूप गुण उम्मर आदि की परिक्षा पूर्वक लग्न किया जाता था आज उन बिचारियों को चूं करने का भी अधिकार नहीं है चाहे वर रोगी हो, निरोगी हो सदाचारी हो दुराचारी हो स्वरूपवान हो कुरूपवान हो, उम्मर में बराबर हो या न्यूनाधिक हो स्वधर्मी हो विधर्मी हो प्रकृति का शोम हो या

क्रूर हो जिस के साथ जिन्दगी तक का सम्बन्ध जोडा जाता है उन को पूर्वोक्त बातों देखने का अधिकार नहीं यह कितना अन्याय है ? माता पिताने जिस के साथ बान्ध दी उस के साथ जाना पडता है अगर इस में हा, ना, करे तो वह निर्लज्जों की गिनती में गिनी जाती है इसी कारण से आज दम्पति जीवन की दुर्दशा हो रही है दम्पति जैसी दुनिया में कोई वस्तु नहीं है पर आज दम्पति में न प्रेम है, न स्नेह है, न श्रद्धा है न विनय विवेक है प्रत्युत जहां देखो वहां द्वेष इर्षा क्लेश कदाग्रह ही पाया जाता है यह कैसा संसार ! यह कैसा शान्तिमय जीवन ! यह कैसा धर्ममय जीवन ! इन सब का कारण स्त्री शिक्षा का अभाव और माता पिताओं की स्वच्छन्दता और स्वार्थप्रियता ही है कि जिन्होंने संसारभर को क्लेश की भट्ठी में होम दिया है।

वर्ष बिगडा मास बिगडा, दिन बिगडा घडीघडी ।
वीर्य बिगडा सन्तान बिगडा, जीवन बिगडा रडीरडी॥?॥
रीत बिगडा रिवाज बिगडा, दम्पति बिगडा लडी लडी;
गृह बिगडा धर्म बिगडा, दुनिया बिगडी खडी खडी ॥ १ ॥

जिस स्त्री समाज के लिए आज उपेक्षा की जाती है वह स्त्री समाज संसार का अर्द्धाङ्ग है क्या आधा अंग तोड कर के फेंक देने से संसार सु चारू रूप से चल सका है ? हरगिज नहीं जिस स्त्री को आज हम पैरों की जूती समझ कर उस का अनादर करते है वही स्त्री गृह लता है अर्थात् कल्पलता है जो कार्य पुरुष

नहीं कर सके हैं वह कार्य की समाज बडी आशानी से कर सक्ती है पठित स्त्रियों आय व्यय के हिसाबपर गृह खर्चा अर्थात् उस की सुव्यवस्था से घर को हरा भरा रखती है पतीदेव की सेवा कर उस के दिल को पसन्द और शरीर के स्वास्थ्य को अच्छा रख सक्ती है वीर सन्तान को जन्म दे कर उन का अच्छी तरह पालन पोषण कर कुटुम्ब वृक्ष को खूब फलीभूत बना सक्ती है पतिदेव को गृह चिन्ता से दूर कर सक्ती है साधु अतिथियों और महमानों का यथाविधी सत्कार कर शोभा को बढा सक्ती है गृह-कार्य से निवृति पाकर पति के धर्म कार्य में मदद पहूंचा सक्ती है पति के माता पिता की सेवा सुश्रुषा कर उन का शुभाशीर्वाद प्राप्त कर सक्ती है इत्यादि । पर यह कब बन सक्ता है कि पुरुषों की भान्ति स्त्रियों को भी उन की आवश्यकतानुसार शिक्षा दी जाय उन के अंदर बचपन से ही सुन्दर संस्कार डाले जाय तब ही वे कुलीन महिलाएं कल्पलता कहला सक्ती है उन का ही दम्पति जीवन शान्ति पूर्वक गुजर सका है ।

आज स्वार्थप्रिय पुरुषोंने यह सोच रक्खा है कि लड़कों को पढाना तो ठीक है कारण वे तमाम उम्मर कमा कर लाएंगे और सेवा चाकरी भी करेंगे पर लड़कियों को पढाने से क्या फायदा है कारण वे तो कल पराए घर अर्थात् अपने सुसराल जायगी । पर उन अदूरदर्शी लोगोंने यह नहीं सोचा कि जैसे *आप अपठित कन्या को सासरे भेजेंगे वैसे आप के वहां भी तो*

अपठित बहू आवेगी वह आप के घर की कैसी व्यवस्था करेगी आप की सन्तान के कैसे संस्कार डालेगी ?

इन अदूरदर्शी विचारों से ही स्त्री समाज अपठित रह गई जिस के फल स्वरूप आज स्त्री समाजने अपने कर्तव्य और धर्म का उल्लंघन किया जिस के जरिये—

निर्बलता—जब तक हमारे घरों में गौधन का पालन पोषण था वहांतक घर का काम पीसना पोवना खाएड़ना दलना आदि कार्य एक किस्म की कसरत थी और उन से शरीर स्वास्थ्य अच्छा रहने से विदेशी दवाइयों की भी आवश्यकता नहीं रहती थी। पर जब से स्त्री समाज स्वछन्दचारिणी हो गृहकार्य छोड़ा तब से वह इतनी निर्बल बन गई कि अपने बाल बच्चों का लालन पालन भी मजुरों के शिर जा पड़ा है और आप बिमारी से फुरस्त नहीं पाती है।

निर्लज्जता—आज स्त्री समाज फैसन की फीतूरी में इतनी तो मशगूल बन गई है कि उनके बारीक कपड़ों की पोषाक से मानों लज्जा धर्म को तो तिलाञ्जली दे रक्खी है उनके अंगोपाङ्ग दूर से ही जलक रहे हैं दूसरे उनके गालगीत मानों वेश्याओं को भी लज्जित कर रहे हैं। क्या यह कुलिन स्त्रीयों के लिये निर्लज्ज-ताकी बात नहीं है ?

निर्दयता—स्त्री समाज को यह खबर नहीं है कि किस खूनका पानी करनेसे पैसे पैदा होते हैं पर वहतो विचारे पतियों-

पर हुक्म चलाया ही करती है " अमुक कपड़ा कोर किनारी लाओ अमुक गहना कराओ " पर यह खबर नहीं है कि हमारा पति सुखी है या दुःखी इस वर्ष में पैदास है या नहीं विदेश में जा कर के वहां किन मुसिबतों से पैसा पैदा करते हैं ?

बालपोषण—आज कल की अपढित औरतो बालपोषण की रीति तो बिल्कुल ही भूल बैठी है उन के स्वास्थ्य आरोग्यता की तो उन को पर्वाह ही नहीं है कहां तो समय पर खान पान कहां आब हवा कहां उन के शुद्ध वस्त्र कपड़े सास बहू के झगड़ा और मार बच्चोंपर पड़ती है पती पत्नी के क्लेश और मार बच्चोंपर पड़ती है इतना ही नहीं पर वे अपठित माताएं उन बच्चों का अनुचित प्यार कर के ऐसे खराब संस्कार डाल देती है कि वे जन्म भर के लिए नहीं मिट सके हैं, इस कारण से वह सन्तान कायर कमजोर डरपोक हुआ करती हैं ।

हुन्नर—हुन्नरकला से तो हमारी महिला समाज हाथ ही धो बेठी हैं अपने पहिनने के कपड़े तक भी मजूरी से सिलाये जाते हैं इतना ही नहीं पर बालबच्चों के अंगरखा टोपी बनाना हो तो भी दर्जी की जरूरत पड़ती हैं तो दूसरे कामों के लिए तो कहना ही क्या सिर्फ साबन की बटियों से शरीर धोने का हुन्नर उन के हाथ रहा है ।

जैसे स्त्री समाज में अनेक रोग प्रवेश हुए हैं वैसे पुरुषों में भी कम नहीं है वे भी फैसन के गुलाम बन अनेक फजूल खर्चा

और निर्लज्ज बच्चों में अपनी मुश्किल से पैदा की हुई लक्ष्मी बर-बाद कर देते हैं इतना ही नहीं पर उन व्यभिचारी पुरुषों के लिए आज भारत में पांचलाख वैश्याएं खूब मौजमजा उड़ा रही हैं यह किस के ऊपर ? अगर पुरुष पत्नीव्रत पालन करते हो तो भारत जैसे सुशील सदाचारी देश में वैश्याओं का नाम निशान भी रह सक्ता ? नहीं, यह पांच लक्ष तो मैदान में खुली वैश्यावृति करनेवाली वैश्याएं हैं पर गुप्त वैश्याओं की तो गिनती ही नहीं हैं कि वे व्यभिचारियों का द्रव्य किस कदर हड़प करती हैं क्या यह अपठित अशिक्षा का फल नहीं है ?

हमारे अग्रेसर लोग स्त्रियों के पुनर्विवाह में तो महान् अधर्म और पाप बतलाते हैं और उस को रोकने के लिए तनतोड़ परिश्रम कर रहे हैं वह ठीक हैं पर पुरुषों का पुनर्लग्न एकवार दोवार तीन-वार हो जाता है अगर सच कहा जाय तो संसार में विधवाओं के पुनर्लग्न का आन्दोलन ही पुरुष पुनर्लग्नने मचाया है । कारण पुरुषोंने पुनर्लग्न करके विधवा संख्या बढाई और उनके दुराचार गर्भापातने पुनर्लग्न को पैदा किया है अगर जैसे स्त्री एक दफे अपना हृदय पुरुष को दे देती है अर्थात् वह पतिव्रत धर्म पालती है इसी माफिक पुरुष पत्नी धर्म पाले तो न तो पुनर्लग्न को स्थान मिले और न दुराचार को अवकाश मिले परन्तु पुरुष तो स्त्री होते हुए भी वैश्याओं के द्वार की रेती चाटने को घर २ भटकते फिरें और स्त्रीओं को शिक्षा दे कि तुम पतिव्रत धर्म पाला करो

यह कहां तक पालन हो सकेगा, कारण जैसा पती का कर्तव्य है वैसा पत्नी का भी हो सक्ता है इसी कारण से व्यभिचारी सन्तान पैदा होती है और समाज से ब्रह्मचर्य व्रत दिन ब दिन नष्ट होता जा रहा है कि जिस पर हमारी समाज का जीवन था गौरव था और महत्वता थी।

दम्पति धर्म केवल एक पती से या अकेली पत्नी से नहीं सुधरता है परस्पर दोनो की प्रसन्नता, कुशलता एक दूसरे की सहानुभूती और आपस के प्रेम होने से दम्पति जीवन सुखमय बनता है जब पुरुष के सरीर में बिमारी होती है तब स्त्री दिलो जान से उसकी सेवा करती है वह ही बिमारी स्त्री को होती है तब पुरुष उसकी खबर तक भी नहीं लेता है क्या यह पुरुषों की निर्दयता नहीं है इसी से ही दम्पति जीवन क्लेशमय बन जाता है।

आजकल कितनेक विचार स्वतंत्रता में नहीं पर विचार स्वछंदता में टांग फसा कर स्त्रियों को यहां तक स्वतंत्र बनानी चाहते हैं कि यूरोपीयन लेडियों की पोषाक पहिना कर अपने साथ में सडकोंपर लिए फिरना और वह उनकी मर्जी के माफिक वर्ताव रक्खे। जैसे कि यूरोप में मीम साहब का वर्ताव है पर पुरुष उसमें दखल कर उनकी स्वतन्त्रता का खून न करे। बस, इसमें ही स्त्री जाति की उन्नति समझ ली है। परन्तु उन स्वछन्दवर्गों को पहिले यूरोप के स्वछन्दचारिणीयों का इतिहास पढ लेना चाहिए. कि इस स्त्री स्वछन्दताने पाश्चात्य देशो

में व्यभिचार की कितनी धामधूम मचा दी है 'मधर इंडिया' के उत्तर में (Father India) फाधर इंडिया नाम की पुस्तक प्रकाशित हो चूकी है जिसको पढने से ज्ञात होता है कि जिस व्यभिचार की हमारे देश में स्वप्न में भी कल्पना नहीं हैं जिसको कानों में सुनने से ही हम महापाप समझते है वह ही घोर पाप आज स्वच्छन्दता के कारण यूरोप में हो रहा है उस रास्ते चलने पर वही पाप हमारे देश को भस्मीभूत न कर दे ? इसपर खूब गहरी दृष्टि से विचार करना चाहिए ।

हम दम्पति जीवन सुखी बनाने में गृहस्थाश्रम सुचारू रूप चलाने में उनके सन्तान का स्वास्थ्य अच्छा रखने में और वीर सन्तान पैदा करने में स्त्रियों को इतनी शिक्षीत बनानी चाहते हैं कि वह लिख पढ के भले बुरे कृत्याकृत्य को समझ कर सदाचारके रास्तेपर चलती हुई अपने धर्मपर पूर्ण श्रद्धा संपन्न बन जावे, कला-कौसल्य सीख के अपना सब गृह कार्य दूसरों की विगर सहायता चला सके, सुंदर संस्कारों के कारण अपने पती की सेवा कर पति व्रत धर्म को दृढता के साथ पालन कर सके, अपने सास सुसरादि वृद्ध जनों का विनय वेयावच्च सेवा सुश्रुषा कर उनका हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त कर सके, अपनी सन्तान का सुन्दर लालन पालन पोषण कर उनके हृदय में सरू से अच्छे संस्कार डाल उनको सदाचारी नीतिज्ञ और वीर बनावें ।

समाज अग्रेसरों को चाहिए कि अपने बालबच्चों को पहिले

से ही ऐसे शिक्षीत बनावें जो पूर्वोक्त सब बातें सरू से ही सिखाई जाय, बाद जब उनका विवाह सबन्ध किया जाय तो खूब दीर्घ दृष्टि से विचार कर वरकन्या के गुण रूप उम्मर धर्म की समानता पहिले देखें कि वह अपना जीवन सुखपूर्वक निर्वाहती हुई आपको सदैव आशीर्वाद दिया करें इसमें ही आपका भला है।

(६) शुद्धि और संगठन.

एक समय वह था कि हमारे पूज्याराध्य आचार्य देव और समाज नेता शुद्धि और संगठ्ठन के कार्यों में दत्तचित हो समाज संख्या नदी के पूर की भान्ति बढाने में अपना तन, मन और धन अर्पण कर जैन जनता की संख्या चालीस क्रोड तक पहूंचा दी थी; आज उन्ही आचार्य और नेताओं की सन्तान शुद्धि और संगठ्ठन से हजारों कोश दूर भागी जा रही है जिसके फल स्वरूप जैन जनता की वस्ती प्रमाण मृत्यु के मुंह में जा पडा है; अर्थात अन्तिम श्वासोश्वास ले रहा है। अगर इस असाध्य रोग की चिकित्सा शीघ्रता से न की जाय तो वह दिन नजदीक है कि संसार में जैनों का नाम शेष रह जायगा।

इस हालत में भी हमारे आचार्य व समाज नेता आज कुंभकर्णीय घोर निद्रा में ही सो रहे हैं। अरे! कुंभकर्णी निद्रा तो केवल छ मास की बतलाइ जाती है, पर हमारे समाज अग्रे-

सरों ने तो कई वर्षो के वर्ष इस निद्रा में ही पूरे कर दिये गए हैं; अलबत कभी–कभी आंखे टमकारा करते हैं और साधारण जन प्रेरणा करने पर कहते हैं कि हम सब जानते है। जैसे किसी सेठ के घर चोर आए, और धनमाल बांध ले जाने की तैयारी हो गई; बिचारी शेठानी बार २ कहती है कि शेठजी चोर माल ले जाएंगे पर शेठजी उत्तर में एक ही बात कहा करते हैं कि मैं सब जनता हूं। क्या ऐसे जानकारों को विद्वान वर्ग सिवाय मूर्खो के कोइ उपाधि देंगे ? यही हाल हमारे समाजनेताओं का हो रहा है।

आज हमारी मुट्ठि भर समाज भी दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है, इसाई, मुसलमान, और आर्यसमाजी हमारी समाज को हडपने के लिये मुंह फाड तैयार बैठे हैं और हमारे समाजनेताओं की लापर्वाही और अनेक प्रकार के अनुचित्त व्यवहारों से दुःखी हो हमारे भाई धर्म से पतित होने की तैयारी कर रहे है।

महाराज उत्पलदेव, चन्द्रगुप्त, सम्प्रति और महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारबेल के समय जैन जनता चालीस क्रोड होना इतिहास सिद्ध कर रहा है, बाद हमारे आचार्यों के मतभेद रूपी संक्रान्ती जैन समाज की जन्म राशीपर न जाने किसपाए पर आ बेठी कि उस रोज से जैन संसार का ह्रास होता गया क्रमशः महाराजा अमोघवर्ष, वनराज चावडा, और आमराज के राज्यत्व काल में कुमारील भट्ट और शङ्कराचार्य जैसे वादियों के ओरजुल्म के सामने भी टक्कर खाती हुई बीस क्रोड जैन जनता अपने पैरोपर खडी थी। तत्पश्चात संक्रान्तीने भयंकर

रूप धारण किया इधर पाणी के बुदबुदों की भान्ति ' गच्छ-मत व पन्थों ' का प्रादुर्भाव होने लगा, जो शक्ती सामाजिक कार्यों में काम ली जाती थी उसका ही दुरूपयोग समाज पतन में होने लगा, क्रमशः परमार्हत् महाराज कुमारपाल के शासन तक जैनों की संख्या बारह क्रोड की रह गई तथापि हमारे आचार्यों का गृहक्लेश शान्त नहीं हुआ पर दिन व दिन बढता ही गया जनता गच्छमतों में विभक्त हो अपनी शक्ती संगठन के तन्तुओं का दुरूपयोग करने में ही अपना गौरव समझने लगी। आचार्य महाराज भी एक दूसरे का पग उखाडने में और अपनी वाडा बन्धी जमाने में इतने तो मशगुल बन गए कि उनको जैन जनता की संख्या के विषय में मानों मौनव्रत ही धारण कर लिया हो। कारण उनको जैन जनता की संख्या से प्रयोजन ही क्या था! उनकों तो अपनी वाडाबन्धी बढानी थी इस भयंकर दशा का फल यह हुआ कि सम्राट बादशाह अकबर के समय शासन सम्राट जगद्गुरु भट्टारक आचार्य विजयहीरसूरि के झंडे ली प्रयत्न और महा परिश्रम करनेपर भी एक क्रोड की संख्या में जैन जनता अस्तित्व रूप में रही।

आचार्य विजय हीरसूरिके समय तक तो जैसे जैनों की संख्या कम हुआ करती थी वैसे ही जैनाचार्य राजपुतादि जातियों को प्रतिबोध देकर नए जैन भी बनाया करते थे, इस कारण से जैनों की वस्ती एक क्रोडतक की रह गई थी पर श्रीविजयहीरसूरि

के बाद तो नए जैन बनाने का कार्य बिल्कुल ही बंध होगया था, इधर मत मतान्तर भी विशेष रूप में फैल गए और आपसी क्लेश कदाग्रहने तो इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि शान्ति का नाम निशानतक भी नहीं रहा। इधर समाज में संकुचितताने भी इतना जोर बढा दिया कि जिन जैन जातियों के साथ प्राचीन समय से बेटी रोटी व्यवहार था वहां बेटी व्यवहार भी बन्द कर दिया जिस से बहुतसी जातियों धर्म से पतित हो अन्य धर्म में चली गई इत्यादि कारणों से जैन जनता की संख्या दिन ब दिन कम होती गई।

इस समय अंग्रेजो के शासनकाल में इस्वीसन् १८८१ की पहिली मर्दुमसुमारी में जैन जनता की संख्या मात्र पनरा लक्ष (१५०००००) की रह गई।

अब जरा हृदयचक्षु खोल कर हिसाब लगाइए कि—

(१) सम्राट् सम्प्रतिराजा से वनराज चावडा तक करीबन् एक हजार वर्षो के अंदर चालीस क्रोड के बीस क्रोड जैनी रह गए।

(२) महाराज वनराज चावडे से कुमारपाल राजा के राज्य तक चारसो वर्षो में बीस क्रोड के बारह क्रोड जैन संख्या रह गई।

(३) महाराज कुमारपाल से बादशाह अकबरतक ४०० चारसौ वर्षो में बारह क्रोड से घटकर एक क्रोड ही जैन रह गए।

(४) बादशाह अकबर से अंग्रेजी पहिली मर्दुम सुमारी तक करीब चारसौ वर्षोमें एक क्रोडसे पंद्रह लाख (१५०००००) जैन जनता रह गई आगे दश २ वर्षों की गिनती में भी देखिए.

ई० स० १८८१ में जैन जनता की संख्या १५०००००
ई० स० १८९१ ,, ,, ,, ,, १४,१६,६३८
ई० स० १९०१ ,, ,, ,, ,, १३,३४,१४०
ई० स० १९११ ,, ,, ,, ,, १२,४८,१८२
ई० स० १९२१ ,, ,, ,, ,, ११,७८,५९६

इस हिसाब को देख कर के किस जैन के हृदय में दुःख दावानल नहीं भभक उठेगा ? हा ! यह कैसा संहार ! हाय यह कैसा पतन ! ! हाय यह कैसा घात ! ! ! जैनों, इस हिसाब को देख कर अपने नैत्रों से दो बून्द खून की बहाने के सिवाय तुमारे पास कुछ रहा है कि तुम इस घटती हुई संख्या के लिए कुछ प्रयत्न कर सको ? हम विश्वास पूर्वक कह सके है कि भारत में तो क्या पर पृथ्वी पट्टपर ऐसी कोई भी जाति या धर्म नहीं होगा कि जिस की बुरी दशा जैनियों के माफिक हुई हो । मर्दुम सुमारी के कोष्टक से स्पष्ट हो जाता है कि एक जैन जातियों के सिवाय सब जातियों संख्या में बढती गई और उन्नति करती गई है ।

हां ! जैन प्रतिवर्ष हजारों, लाखों, और क्रोडों रूपये खर्च-कर धर्मोन्नति किया करते हैं और जैन समाचार पत्रों के कालम के कालम भर देते हैं कि अमुक शेठजीने उपधान उजमणा किया नए मंदिरों की प्रतिष्ठा या पुराणों के जिर्णोद्धार कराए । अमुक शेठजीने मेले को आमन्त्रण दिया, अमुकने संघ निकाला, स्वामीवात्सल्य किया । साथ में अपने २ गुरुदेवों के भी यशोगान गाए जाते हैं । यद्यपि यह धर्म कार्य आदरणिय है पर जब समाज ही रसातल को

जा रही है तो फिर इस उन्नति का फल कितना और कहां तक ? अगर साथ में यह भी प्रकाशित करवाते कि हमारे इतने आचार्यों की अध्यक्षता में दस वर्षों के अन्दर ७५००० जैन कम हुए यह उन के कर्मों की गति है हमने तो १० वर्षों के अन्दर चालीस स्वामीवात्सल्यों में खूब लड्डु उडाए, और मौजमजा किया करते रहेंगे।

समाज के अग्रेसरों ! जरा आंख खोल कर के देखो, विद्वान लोग आप की हांसी करते हुए अपना क्या अभिप्राय प्रगट करते हैं ?

" Jains continue to decrease this community alone of all in the province decreased and there seems no dying out. "

अर्थात्—जैन इ० स० १८८१ की साल से घटते ही गए हैं, देशभर में यह एक ही जाति घटी है इस में शंका नही कि यह जाति मृत्यु की तरफ जा रही है।

मर्दुम सुमारी से यह पत्ता मिलता है कि इ० स० १८८१ में हिन्दूस्थान की आबादी, करीब २५ क्रोड थी, वह बढती बढती इ० स० १९२१ में बतीस क्रोड से अधिक बढ गई । तब जैन संख्या इ० स० १८८१ में पनरह लाख थी, वह इ० स० १९२१ में बारह लाख से ही कम रह गई। हिसाब लगाए कि ४० वर्ष में हिन्दूस्थान में सात क्रोड जनता बढ गई, तब जैन चालीस वर्ष में तीन लाख से अधिक घट गए। क्या पंचम काल का असर केवल जैन जातियों पर ही पड गया ? यह दोष तो

हम कब दे सके हैं कि पुरुषार्थ करने पर भी निष्फल निवडे तब, " भवितव्यता " कह सके हैं पर हम खुद हमारी जन संख्या कम करने के सैकडों कारण बगल में ले बैठे हैं, फिर पांचवें आरे का नाम लेकर जनता कों हतोत्साही क्यों बनावे ? क्या यह महा पाप नही है ?

पूर्वाचार्य अनेक परिसह, संकट, और कठिनाइयों का सामना करते हुए देश विदेश में परिभ्रमण कर आम पब्लिक और राजा महाराजाओं की सभा में व्याख्यान दे कर जैन तत्व-ज्ञान और आचार ज्ञान से उन महानुभावों के चित कों पवित्र जैन धर्म की ओर आकर्षित कर उन को जैन धर्म की शिक्षा दिक्षा देकर जैन संख्या में वृद्धि करते थे, उन के पास महावीर प्रभु के उपदेश के सिवाय और कोई सैना नहीं थी, पर उन के हृदय में जैनधर्म की विजली जरूर थी कि वे जहां जाते वहां ही जैनधर्म का झण्डा फरकाया करते थे, इसी से ही जैन जातियों का महोदय हुआ, जैन जनता की संख्या में वृद्धि हुई जैन धर्म का डङ्का चारों ओर गर्जना करता था आज हमारे जैनाचार्यों की लापर्वाही कहो चाहे सुखशैलीयापना कहो कि वह जरासा भी कष्ट सहन नहीं करते हैं । एक देश को छोड कर दूसरे देश में आने के लिए इतने घबराते हैं कि न जाने वहां हमारे मन इच्छित सुख मिलेंगे या नहीं, इतना ही नहीं पर एक उपाश्रय से दूसरे उपाश्रय में जाने में ही बडा भारी संकोच रखते हैं, तो उन से यह आशा रखना ही व्यर्थ है कि वे राजा महाराजाओं की सभा

या पब्लिक में व्याख्यान दें ; अगर कभी कोई पब्लिक में व्याख्यान देते भी है तो वह कैसा कि जनरञ्जन उपदेश न कि जैन तत्वज्ञान । यह कहना भी अतिशय युक्त न होगा कि हमारे कितनेक मुनिवर खुद भी तत्वज्ञान से अनभिज्ञ है तो वे दूसरों को क्या समझावें और कितनेक तो ऐसे दिखीत हैं कि जिन को बात करने की भी तमीज नहीं है ऐसे लोगों से समाजोन्नति की क्या आशा रखें ? पूज्य मुनिवरों ! आप जैसे त्यागी वैरागी निस्पृही लोग भी जनता के उद्धार कि अपेक्षा कर केवल स्वकल्याण में ही मौन धारण कर लोगें तो जगत् कल्याण कौन करेंगे ।

कितनेक नामांकित पद्वी विभूषित है वे दूसरों का निकन्दन और अपने जीवन की सुघटनाएं लिखानेमें समय बिता रहे हैं. इसी कारण से अर्थात् मुनि विहार और सदुपदेश के अभाव से जो लोग वंश परम्परा से जैन धर्म पालते आए थे, जिनके पूर्वजोंने जैन मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई थी आज वे ही जैन धर्म के कट्टर दुश्मन बनकर उन मंदिरों को तोड़ने के लिए तैयार हो गए हैं। यह दोष किस का ? क्या हमारे जैनाचार्य देशोदेश में विहार करते तो आज बंगाल में ' सराक ' जाति के लोग जैन श्रावक थे, वे विधर्मी हो जाते ? मध्यप्रान्त में ' कलार ' जाति जैन थी वह अजैन बन जाती ? तैलंग और महाराष्ट्रीय में लंगायत लोग जैन थे गुजरातमें छीपा और पट्टीदार प्राय: सब जैन थे कपोल, मांढ, नागर, अग्रवाल परमार, गोरा, डीशावल नागावल आदि अनेक जातियों पूर्व जमाने में जैन धर्मोपासक थी और उन के पूर्वजों के बनाए हुए मंदिरों के

शिलालेख आज भी संख्याबद्ध मिलते हैं; पर उन लोगोंने जैन धर्म क्यों छोड़ा ? क्या जैन धर्म का कममहत्व समझकर छोड़ा था. नहीं ! नही ! ! उन को हमारे गुरूदेवों का सदुपदेश नहीं मिला, गुरूदेवों के दर्शन तक भी नहीं हूए, और उनका सत्संग नहीं रहा जैन जातियोंमें संकुचितता के कारण उनके साथ रोटी बेटी का व्यवहार नहीं रहा; इस हालतमें जैन धर्म को छोड़कर शिव ब्राह्मण आदि इतर धर्म का अवलम्बन लीया और इसी कारण से जैन संख्या कम हो गई । खेर ! गई सो गई, पर आज भी चारों ओर से पुकारों आया करती है कि हमारी प्रान्तमें मुनि विहार की अत्यावश्यकता है पर उन पुकारों को कौन सुनें ? इस बात की दरकार किस को है ? चाहे जैन धर्म, जैन जातियों रसातलमें क्यों न चली जाय ! पर हम को तो हमारे पसन्द किए देश, गांव, और उपाश्रय में ही रहना है ।

मैं तो आज भी दावे के साथ कह सक्ता हूं कि पूर्वाचार्यों की भान्ति हमारीं समाज के विद्वान आचार्य और मुनिवर्ग कम्मर कस करके प्रत्येक प्रान्तमें घूमकर जैन तत्वज्ञान का प्रचार करें, और पूर्वाचार्यों की माफिक शुद्धि और संगठ्ठन के पीछे लग जावें तो थोड़े ही समयमें चारों ओर जैनधर्म का प्रचार हो जाय; जैन संख्या घट रही है वह भी रुककर अन्य कौम की माफिक जैन जनता की संख्यामें भी वृद्धि होने लग जाय । क्या हमारे समाजनेता और पूज्याचार्य देवों के हृदयमें यह भावना पुनः जन्मधारणकर अपनी तरूणावस्था का परिचय करावेगा ?

(१०) जाति न्याति और संघ शृंखलना.

हमारे पूर्वजोंने अपनी व्यवहार कुशलतासे संघ संगठनरूपी एक बड़ा भारी अमेद्य किल्ला बनाया और उसके अंदर हमारे धर्म और जातियों को इस प्रकार सुरक्षित रक्खी थी कि जहां अज्ञान, अन्याय, अनीति, फूट, कुसम्प और दुराचाररूपी चोरों का किसी हालतमें प्रवेश नहीं हो सक्ता था हमारे संघ संगठनने बडे २ राजा महाराजाओं पर भी अपना प्रभाव डाला था और अन्य जातियो भी पूज्यद्रष्टिसे सत्कार किया करती थी; इतना ही नहींपर तीर्थंकर भगवान भी उस संघ को आदर की नजरसे देखते थे अर्थात् संघ संगठन कोई साधारण बात नहीं है पर एक दिव्य चमत्कारिक सक्ती पुंज है कि जिसके जरिए इन्सान मन इच्छित कार्य कर सक्ता है ।

जब से हमारी समाजमें मान ईर्षा ठकुराईने जन्म धारण किया, तब से हमारे संघ संगठनरूपी किल्ले की दिवारें कमजोर पडने लगी पर स्वछन्दचारी स्वार्थीय आगेवानों और धनाढयोंने तो उस मजबूत किल्ले की दिवारो को तोड फोड के उन के पत्थर तक भी इधर उधर फैंक दिए पर उन की काली करतूतों का फल क्या हुआ कि जिस संघ की अवाज राज्य मान्य थी; आज वही संघ राज्य कर्मचारियों की ठोकरें खा रहा है अपने भुजबल पर सर्व कार्य करनेवाले स्वतंत्र संघ को दूसरों की दयापर जीने का समय आ पहूंचा

है। हमारे पवित्र धर्म और तीर्थस्थानों का रक्षण हम हमारी संगठन शक्ती द्वारा किया करते थे, उस समय किसी की ताकत नहीं थी कि वह हमारे सामने आंख उठाकर देख सके; पर आज हमारी संघ शक्ती के टुकड़े २ हो जानेसे हमारे धर्म और तीर्थों का पग २ पर अपमान, आशातना और उन पवित्र स्थानोंपर अयोग्य अमानुषी हुमले हो रहे हैं और हम टकटकी नजर लगाकर देख रहे हैं; क्या हमारी फूटने हम को जीवित हालत में भी मुर्दे नहीं बना दिए है ?

हमारे आचार्य देव जगत्पूज्य और विश्वोपकारी थे, उन्होंने अपने उज्वल चारित्र और उपदेशसे भारतमें "अहिंसा परमो धर्मः" का प्रचार और जनता में शान्ति का साम्राज्य स्थापन किया, आज उछृंखल लोग उन ऋषियों का उपहास करते हुए अश्लील भाषा और अयोग्य शब्दोंमें लेखोंद्वारा अपनी द्वेषाग्नि प्रगट कर रहे हैं इतना ही नहीं पर बंगाल आदि देशोंमे तो हम नास्तिक और म्लेछ के नामसे पुकारे जाते हैं पर आज हमारे नसोंमें हमारे पूर्वजों का खून नहीं है वह गौरव नहीं है, वह हिम्मत नहीं है कि हम उन लोगों को मुंहतोड़ उत्तर दें।

जिन जातियों में हमारा मान महत्व था, हमारी एक ही आवाज वे लोग शिरोधार्य करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे, आज वे ही जातियों हमारा अपमान या सामना करने को पग पग पर तैयार है। क्या यह हमारी आपसी फूट मत्सरता का कटुक फल नहीं है ?

इतर जातियों जिन को हम अज्ञान, अपठित और मूर्ख

समझते थे, वे तो आज कुसम्प का मुंह कालाकर आपसमें प्रेम--स्नेह ऐक्यता और संगठनमें कटीबद्ध हो रही है, जब हम महाजन लिखे पढे बडे समजदार ज्ञानी और दुनियाभर की अकल के ठेकेदार होने-पर भी हमारे गृहमें, ग्राममें, देशमें, न्याति जातिमें, आचार्यादि पद्वी धारियोंमें साधु साध्वियोंमें, संघमें, धर्ममें, गच्छमें, मतमें, और क्रिया-कारडमें अर्थात् जहां देखा जाय वहाँ फूट और कुसम्प का साम्राज्य छा रहा है। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ हो कि इतर जातियों का निकला हुआ कुसम्प, अज्ञान मूर्खता तो हमने खरीद ली हो और हमारा निकला हुआ प्रेम ऐक्यता संगठन आदि सद्विचारों को उन लोगोंने अपनी समाजमें स्थान दे दिया हो !

एक समय वह था कि हमारे पूर्वजोंने अपनी संगठन शक्तीद्वारा समाज के तन धन और मनमें दिन व दिन वृद्धिकर उस को उन्नति के उच्च शिखरपर पहूंचा दी थी। आज उसी संगठन बलद्वारा हमारे इसाई, मुसलमान, पारसी, और आर्यसमाजी लोग हमारे सामने पूर्व की तरफ बडी तेजी के साथ बढते जा रहे हैं। उनकी एकता की तरफ देखिए कि वे किसी जाति व किसी देश का क्यों न हो पर उस को विना भेदभाव के अपनी समाजमें स्थान देकर किसी भी मनुष्य को एकत्र कर लेते हैं। और वे अपने धर्म के लिए प्यारे प्राण देने में तनीक भी नहीं चूकते हैं और अपने सहयोगियों को तन, मन, और धन से सहायता देने को हरसमय तैयार रहते हैं इत्यादि। जो कि पूर्वजमाने में हमारे पूर्वजों का यह एक खास

ध्येय था, जिस को हमने खो दिया है और इतर जातियोंने उस को बड़े ही आदरसे स्वीकार कर लिया है ।

आज हमारे अग्रेसरों और धनाढ्योंमें वह भावना नहीं रही है कि हम हमारे स्वधर्मी भाइयों को सुख दुःख में साथ दें, इनकी उन्नति में अपनी उन्नति समझें; और इनके साथ वात्सल्यभाव रख टूटी हुई संघ शृंखला को फिरसे मजबूत बनावें । अरे ! स्वयं ऐसी बुद्धि उत्पन्न न हो तो दूसरों के देखा देखी तो अवश्य अनुकरण करना चाहिए जैसा कि आप के पूर्वजोंकी संगठन शक्ति के देखादेखी अन्य लोग अपनि उन्नति कर रहे हैं। पर अभिमान गजारूढ सत्तान्धों को ऐसे सद्विचार आवे कहांसे ? आज एक ही जैन नाम धराते हुए स्वधर्मी जैन बंधुओं को कष्टमें सहायता देना तो दूर रहा पर और भी संकटो में न डाले तो भी उन की मेहरबानी समझी जाती है.

विचारभिन्नता यह एक स्वाभाविक विषय है पर उस को विरुद्ध के स्वरूपमें लेजाना यह एक मानसिक दुर्बलता है । वितराग जैसे समभावी धर्म मिलनेपर भी साधारण क्रियाकाण्ड या मंतव्य की विचार भिन्नता जो कि आपसमें मध्यस्थवृत्ति हितयुक्त तत्वज्ञान द्वारा समजौता करने के बदले वैर विरोध क्लेश कदाग्रह के बीजारोपण कर चिरकाल अशान्ति फैला कर के समाज संगठन को छिन्न भिन्न कर देना यही तो हमारी दुर्दशा का मुख्य कारण है ।

महाजन जैसी होसियार बुद्धिमान चतुर कार्यकुशल और इज्जतदार कौमने दूसरों के विकट प्रश्नों की समस्या और उन के

क्लेश विषवाद को समझाने के लिए कितनी ही नाम्वरी प्राप्त की हो पर जहां तक अपने घर के कलह दावानल को शान्त करने की उनमें योग्यता नहीं है या वे पर्वाह नहीं रखते हो तो उन की समझदारी की कितनी किम्मत हो सक्ती है ? अगर हमारे समाज के नेता और धनाढ्य वर्ग " अपना सो सचा " इस अभिमान को तिलाञ्जली देकर " सचा सो अपना " इस नीति का अवलम्बन करें तो वितराग धर्मोपासक लिखी पढी कौम का उद्धार करना कोई बड़ी मुशिबत का काम नहीं है; पर हमारे आचार्यदेव मुनिवर्ग और संघनायकों की ऐसी उदार भावना कब होगी और हम समाजोन्नति कब देखेंगे ?

सज्जनों ! पत्ते (गंजीफा) खेलना तो बहुत ही बुरा है, परन्तु पत्तों का खेल हम को कैसा अपूर्व उपदेश दे रहा है ? एकता के प्रभाव का स्वरूप उस निर्जीव वस्तुने अपने को किस कदर समझाया है कि दो तीन चार यावत् दस तक के पत्तों को ' गुलाम ' सर कर लेता है पर राणी साहिबा के आगमन के साथ ही गुलाम को भागना पड़ता है और जब तक बादशाह की सवारी तसरीफ नहीं लाती है वहां तक रानी अपना स्वामित्व जमाए रखती है। जब बादशाह की द्रष्टि पड़ती है तो राणी साहिबा फौरन परदे में जा घुस जाती है। बादशाह राजराजेश्वर होता है वह अपने राज्य को अच्छा या बुरा किसी भी तरह चलाने में स्वाधिन है, पर एक पत्ता ऐसा है कि बादशाह के मजबुत सिंहासन को भी एक ' हुंकार ' में डिगमिगा देता है। वह कौनसा पत्ता है ? " एक्का " अर्थात् संगठन।

एकता का फल देखा ? संगठन से आज अंग्रेज लोग हजारों कोस दूर बैठे हुए भी भारतपर साम्राज्य चला रहे हैं और अपने मनमानी व्यवस्था कर रहे हैं तब एक ही धर्मपालनेवाले मुठ्ठीभर जैन समाज के संगठन की कैसी दुर्दशा हो रही है। क्या हमारे समाज अग्रेसर सज्जन अभी भी अपनी घोर निद्रा को दूर कर अभिमान को तिलाञ्जली दे अपनी समाज का संगठन कर सुचारू रूपमें उस की व्यवस्था कर रखया करेंगे ?

(११) जैन समाज की वीरता—

जैनधर्म के नेता वीर, जैनधर्म के उपासक वीर, जैनधर्म का उपदेशमय वीरता का, इतना ही नहीं पर जैनोंने आत्मकल्याण और मोक्ष भी वीरता में बतलाया है एक समय वह था कि जैन-समाज के नररत्न वीरों की वीरता से संसार कम्प उठता था जिस समाज के वीरों की वीरता के लिए आज भी अच्छे २ एतिहासिक सज्जन मधुर स्वर से गुणानुवाद गा रहे हैं किन्तु आज उसी समाज के लिए चारों ओर से पुकारे हो रही है कि भारत में कायर और कमजोर कोम के लिए कहा जाय तो सब से पहिला नम्बर जैन समाज का है इस का कारण बाललग्न वृद्धविवाह और कन्याविक्रयादि हम उपर लिख आए हैं हमारी समाज के संस्कार ही ऐसे पड़ गए हैं कि जन्मते बालक से लेकर वृद्धों तक के शरीर पर

हजार दो हजार का जेवर मिल जायगा पर उन के शरीर स्वास्थ्य के लिए देखा जाय तो न व्यायामशाला, न कसरतशाला, न खान पान कि शुद्धता और न आबहवा की पर्वाह है जन्म से ही ऐसे कायरता के पाठ पढाए जाते हैं कि " बाबू सो जा बागड़ बोले " अगर अधिक रोने लग जाय तो अफीम (विष) दे दिया जाता है कि वह बच्चों के खून को भी भक्षण कर जाता है उन के पालन पोषण में ऐसी कुरीतियों सिखाई जाती है कि वह लडके ४—५ वर्ष के होते ही उन की माता कों इस कदर तकलीफे दिया करते है कि माता उन से घबरा जाती है तब पढाई के नामपर बंधीखाने में डाल देते हैं भला ! चार पांच वर्ष का बालक पढाई में क्या समझ सक्ता हैं, फिर मास्टरों की धमकी रूप चिन्ता उस के शरीर के बंधते हूए शक्ती तन्तुओं और ज्ञान तन्तुओं को भस्म कर देती है फिर तो उम्मर भर के लिए चाहे कायर कहो या नपुन्सक कहो।

अगर जैन समाज अपनी सन्तान को वीर बनाना चाहाती हों तो उन के लिए एक ऐसी शाला खोली जाय कि जन्म से आठ वर्ष तक टाइम सर उस में हांसी खुसी खेल कूद कर शरीर को हृष्ट पुष्ट बनावें और वीरता के संस्कार डाले जावे जो कि पहिले जमाने में हमारी माताओं के प्रत्येक गृह में ये शालाएं थी आठ वर्षों के पश्चात् उस को ठीक हौंसला आ जा तब उस से पढाई करवाई जाय तो चार पांच वर्ष का लडका स्कूल में जा कर १२ वर्षों तक इतनी पढाई नहीं कर सकेगा जितनी की आठ वर्ष की आयू में भर्ती किया हुआ लडका ४ वर्षों में कर सकेगा। और

वे तमाम उम्मर भर वीर कहलाते हुए अपने तन, धन, धर्म, तीर्थों का रक्षण स्वयं बडी वीरता से कर सकेंगे। क्या हमारे समाज नेता अपनी कायरता के कलङ्क को दूर करने के लिए इस तरफ जरासा भी लक्ष देंगे?

(१२) जैन समाज का दयातत्त्व--

अन्योन्य मतावलम्बियों की अपेक्षा जैन शास्त्रकारोंने अहिंसा भगवती को इतना तो उच्चासन दिया है कि जिसका आदर्श तत्त्व और विशाल व्याख्या से विश्व मोहित हो रहा है आज हमारी जैन समाज अपनी संकीर्णता को लेकर उस विशाल अहिंसा का अर्थ इतना तो संकुचित कर दिया है कि वनस्पति और वायूकाय की दया पालन में जितना उन का प्रेम है उतना मनुष्य दया के लिए नहीं दिखाई देता है आज गायों बकरों और कबुतरों के लिए जितनी संस्थाओं खोल उन के लिए जो द्रव्य व्यय किया जाता है कि उतनी हमारे दुःखी स्वधर्मियों के लिए उदारता नहीं है पशुओं के लिए हमारी समाज में अनेक संस्थाओं हैं पर धर्म से पतित होनेवाले स्वधर्मी भाइयों के लिए एक भी ऐसी संस्था नहीं है कि जिस के अन्दर हमारे पांच पचीस भाई धंधा रूजगार कर अपना गुजारा कर सके यह कितना अफसोस!! धनाढ्य लोग तो अपने धनमद में ही चकचूर हो कर मोज सोख के अन्दर आनन्द की

लहरों उडा रहे है उन को दुःखी स्वधर्मी भाइयों की दया किसनी है उस का अनुमान पाठक स्वयं कर सके हैं फिर भी समाज उन्नति के लिए बड़ी बडी बूमें ठोक रहे हैं समझ में नहीं आता हैं कि वे समाजोन्नति किस को कहते है ? क्या स्वधर्मि भाइयों कि दशा सुधारे बिगर समाजोन्नति हो सकेगा ? सच्चा दया का तत्त्व तो इस मे ही समाया हुआ है कि वह सबसे पहला स्वाधार्मि भाइयों की ओर लक्ष दे ?

(१३) जैन समाज का व्यापार—

एक जमाना वह था कि दुनिया भर का व्यापार हमारे ही हाथ में था हमारी समाज इस के लिए मगरूर भी थी पर आज हमारे हाथ में क्या रहा है ? कहा जाय तो सट्टा, कमीशन दलाली और इधर से लाकर उधर वेचना अगर कुछ कारखानें और मिलें हमारे व्यापारियों के हाथ में हैं भी सही पर उन का जैन साधारण वर्ग को लाभ कितना ? हमारे निराधार भाइयों को न तो उस में नौकरी मिलती है न कोई काम सिखाए जाते हैं. फिर उन के लिए तो होना ही न होना बराबर है उन का लाभ तो अन्य लोग ही उठा रहे हैं कि जहां सैंकडो हजारों नौकर हैं और लाखों रूपये उनको दिए जाते हैं एक तरफ इसाई पारसी और आर्यसमाजी लोग अपने भाइयों के लिए हजारों लाखों क्रोडों द्रव्य व्यय कर उन के लिए हुन्नरोद्योग व व्यापार के कारखानें खोल उन को

सहायता दे रहे हैं इतना ही नहीं पर द्रव्य सहायता से अपनी समाज की वृद्धि कर रहे हैं कि लाखों क्रोडो आदमियों को अपने धर्म में मिला लिए हैं तब हमारी समाज की वह दशा है कि अपनी उदरपूर्ति के लिए अन्य धर्मियों का सरणा लेना पडे, इतना ही नहीं बल्कि धर्म से भी हाथ धो बैठने का समय आ पहुंचा है धर्म के नामपर हजारों लाखों रूपैये खर्चनेवाले धनाढ्य वीर जरा इस तरफ भी लक्ष देंगे ?

(१४) जैन समाज की वृद्दि हानि—

जैन जातियों की जन्म तिथी से लगा कर विक्रम की सोलहवीं शताब्दी तक तो जैन संस्था में वृद्धि हानि दोनों प्रकार से होती आई थी पर बाद तो वृद्धि का दर्वाजा बिल्कुल बंध हो गया यहांतक कि अगर कोई मनुष्य जैन धर्म स्वीकार करले तो भी उस के साथ जाति व्यवहार नहीं किया जाता हैं और आज भी वह दर्वाजा बंध है दूसरी तरफ हानि का दर्वाजा हमेशां के लिए खुला है जैसे कि (१) जन्म की अपेक्षा मृत्यु ज्यादा होती है (२) शरीर स्वास्थ्य के अभाव बाल मृत्यु सब से अधिक होती है (३) दिन प्रति दिन विधवाओं की संख्या बढना और उन का मृत्यु होना (४) कन्याविक्रय के कारण बहुत से सुयोग्य वर कुंवारे रह जाते हैं (५) रंडवे पुरुषों की मृत्यु (६) इसाई आर्यसमाजी हडफ लेते हैं। (७) राज तंत्र और व्यापार हमारे हाथों

से चला गया। (८) फजुल खर्चेने हमपर इतना हमला किया है कि उस घाटे के मारे हम ऊंचे नहीं आ सके हैं इत्यादि हानि के दर्वाजे हमारे वास्ते सदैव खुले हैं तब ही तो चालीस क्रोड की तादाद आज बारह लाख में आ रही है भविष्य के लिए न जाने जैन समाज के भाग्य में क्या लिखा हुआ है क्या हमारे समाज अग्रेसर इस हानि को देख थोडा बहुत प्रयत्न कर इस भयंकर घाटे से समाज को बचा लेंगे।

(१५) जैन समाज की एकता और फूट—

एक समय वह था कि जैन समाजका प्रेम स्नेह एकता संसारभर में मशहूर था अन्य लोग भी उसका अनुकरण किया करते थे इसी एकता के जरिए जैन समाज तन मन और धनसे समृद्धशाली थी पर जबसे हमारे एकता की श्रृंखलना छिन्नाभिन्न हो गई और फूटने अपना पग पसार किया क्रमशः उस फूटके उग्र प्रचण्ड प्रभावसे हमारे घरमें, वास में, गांव में, नगर में, जाति न्याति में, पंच पंचायतीमें, संघ में, साधु साध्वियों में आचार्य पन्यासों में कान्फ्रेन्समें, सभा महासभामें, मण्डलमें, लायब्रेरी में, स्कूल में, मन्दिर उपाश्रयों में, बाप बेटेमें पति पत्नीमें इत्यादि जहां देखो वहां फूट ही फूट दिखाई दे रही है फिर हमारी समाज का अधःपतन क्यों न हो ? क्या कोई ऐसा महा पुरुष समाज में है कि इस भयंकर फूट रूपी भट्ठी से समाज को बचा सके ?

(१६) जैनसमाज का विद्यापर प्रेम —

एक जमाना वह था कि जैन समाज विद्या का ठेकेदार था और संसारभर का लिखना पढना हिसाब किताब उनके ही हाथ में समझा जाताथा. इसी विद्याके जरिए जैन समाज को पब्लिक तो क्या पर राजा महाराजा आदर की दृष्टीसे देखते थे आज जैन संसार पुराणे ढांचे में ही अपना गौरव मान बैठा है एक तरफ विश्वमें विद्या की बड़ी भारी धामधूम मच रही है छोटी बड़ी जातियोंने गहरा लाभ उठाया और उठाती जा रही है तब हमारी समाज का विद्याकी ओर कितना दुर्लक्ष है ! धनाढय लोग अपना द्रव्य किस और पाणी की तरह बहा रहे हैं उनके बाल बच्चोंको वे कैसा विद्याभ्यास करवाते हैं जिसमें भी मारवाड़ जैसे प्रदेश के लिए तो पूछना ही क्या ? जिस समाज का जीवन निर्वाह ही विद्यापर है उस समाजमें नतो कोई (University) युनिवरसीटी है न कोई कोलेज है कि जहां पर उच्च पढाई वा शिक्षा प्राप्त कर सके। केवल बंबई में विद्याका साधनरूप महावीर जैन विद्यालय नामक एक संस्था है पर उसके पैर उखाड़ने का कितना प्रयत्न हो रहा है अब रही छोटी बड़ी संस्थाएं जिनके हाल भी बड़े शोचनिय है कारण उपदेशको के क्षणिक उपदेश के लिहाजसे कई संस्थाएं स्थापन हो जाती है चन्दा भी हो जाता हे पर वह दो चार मास या एक दो साल के अन्दर अपना जीवन समाप्त कर- देती है अगर पैसेके जौरसे चले तो उनकी देखरेख करनेवाला

कौन अगर कोई विद्याप्रेमी अपनी अमूल्य टाईम खर्च कर देखरेख करे तो भी हमारे आगेवान लोग अपने घरके या न्याति जातिके ऐसे झगड़े लाकरके डाल देते हैं कि मतभेद विचारभेद से उन संस्थाओं को अनेक रोग लगा देते हैं कि स्यात् ही वह अपनी आयुष्य को आगे बढा सके ।

(१७) शिक्षाप्रणाली:—

अब हमारी शिक्षा प्रणाली को भी देखिए कि जैनसमाजमें व्यापारके अधिक संस्कार हैं और व्यापार में ही उन्होंने अपनी उन्नति की थी और आज भी जैनसमाज का विशेष भाग व्यापार पर ही आधार रखता है। आजकी शिक्षामें साधारण व्यापार की भी शिक्षा नहीं है बल्कि उच्चसे उच्च पढाई करने पर भी उनको नोकरी की जगह देखनी पड़ेगी धर्मसंस्कार का तो इतना पतन हो चूका है कि उनके हृदय में सरूसे ही मिथ्या संस्कार डाल दिए जाते है फिर चाहे कुल मर्यादा से जैन क्रिया करे पर तत्वज्ञान में तो वह पृथक् ही जा रहा है । हां गुरुकुलादि कितनेक संस्थाओं में धर्म शिक्षण दीया भी जाता है पर वह बहुत कम, अब हम शिक्षकों की ओर विचार करते हैं तो साधारण जनता तो अपनी आजीविका निर्वाहनार्थ अधिक पढाई करा नही सके है और धनाढय लोगोंके लड़के २—४ वर्ष पढाई करते हैं बाद उनकी सादीकर दिशावर भेज दिए जाते हैं इत्यादि कारणोंसे जितना द्रव्य हम विद्या के लिए खर्च

करते हैं उतना लाभ हमें नहीं मिलता है और दिन ब दिन हमारे हाथसे व्यापार चला जा रहा है और समाज में नौकरी की याचना करनेवालों की संख्या बढती जा रही है। इसपर आप सोच सके हैं कि हमारी समाज को उच विद्या का कितना प्रेम है और किस ढंग पर हमारी पढाई हो रही है और अर्द्ध दग्ध पढाईवालों की धर्मपर कितनी श्रद्धा है और भविष्य में इसका क्या फल होगा ?। हमारे समाज अग्रेसरों को चाहिए कि आठ वर्ष तक तो अपने सन्तान को किसी प्रकार की चिन्ता फिक्र में न डाले पर उसके स्वास्थ्य की रक्षा करे बाद आठ वर्षतक गुरुकुल वास में रखकर उनको धर्म संस्कार के साथ उच्च पढाई करावें वह पढाई कब हो सके कि गुरुकुलादि संस्थामें भेज के अपने लड़के को भूल ही जाय तब, वह लड़का वीर विद्यावान बन सके। पर हमारे शेठजी को इतना सन्तोष कहां है उनको तो बारह वर्ष में ही लड़के की सादीकर बहु घर लानी है।

(१८) हमारी समाज में स्वामिवात्सल्य–

हमारे शास्त्रकारोने अन्योन्य धर्मक्रिया के साथ स्वामिवात्सल्यको सबसे उच्च स्थान दिया है और उसका तात्वीक रहस्य भी यहांतक बतलाया है कि स्वामिवात्सल्यसे तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन कर सके पर आज उसका अर्थ कुछ और ही हो रहा है नाम्बरी के लिए हमारे धनाढ्य वीर स्वामिवात्सल्य के नामसे फी-

उसे चावल डालदेते हैं परद्रव्य सहायता के अभाव हमारे स्वधर्मी भाई और विधवा बहनो अनेक प्रकार के संकट सहन कर रही हैं और लाचार हो धर्मसे भी पतित बन रही हैं उनकी ओर हमारे धनाढ्यों की तनिक भी पर्वाह नहीं है कि इनको भी वात्सल्यता दिखाई जाय दर असल सच्चा स्वामिवात्सल्य वह ही है कि दुःख पीडित अपने भाइयों को व्यापार रुजगारमें लगाकर उनका उद्धार करें अगर स्वधर्मी वात्सल्यता से सच्चा प्रेम हो तो हमारे अग्रेसर व धनाढ्य यह बतलावें कि हमने हमारी जिन्दगीमें इतने भाइयों पर उपकार किया ? में तो आज भी दावे के साथ कह सक्ता हूं कि अगर एकेक धनाढ्य दो दो चार २ भाईयों को सहायता दे तो हमारी समाज में दुःख दारिद्रता का नाम निशान तक भी न रहे पर ऐसे सद्कार्यों की पर्वाह है किसको ? वहतो एक दिन माल मिष्ठान बनाके चाहे भांग ठंडाई का नशा जमानेवालों क्यो न हो परन्तु आप तो भोजन करवाने में ही कर्तव्य समझ लिया है फिर वे स्वामिवात्सल्य जीमनेवाले उसरोज धर्मशाला में धर्म क्रिया करे चाहे वे अनेक प्रकार के अत्याचार करे स्वामिवात्सल्य करनेवाले को तो तीर्थंकर नामबंध हो गया। महरबानों ! यह स्वामिवात्सल्य नहीं पर एक किस्म की नाम्वरी कहो चाहे न्याति जीमणवार है जरा आंख उठा कर देखिये आज अन्य जातियों अपने भाइयों को किस कदर सहायता देकर अपने धर्म की कैसी उन्नति कर रहे हैं क्या वस पाठका आप भी कभी अनुकरण करेंगे ?

(१६) जैन मन्दिर और नई प्रतिष्ठाएं—

जैन मंदिर सास्वता और असास्वता अनादिकाल के हैं और उन मंदिरों की सेवा पूजा भक्ती कर अनादिकालसे भव्यात्मा अपना कल्याण करते आए हैं जितनी संख्या में सेवा पूजा करनेवाले होते हैं उतनी ही संख्या में मन्दिर बनाए जाते हैं एक समय वह था कि क्रोड़ों की संख्या में जैन समाज और उनपर लक्ष्मीदेवी की पूर्ण कृपा, तथा दृढ श्रद्धा से सेवा पूजा उपासना और सार संभाल करनेवाले थे। उस समय हजारों नहीं पर लाखों की संख्या में जैन मन्दिर होना स्वाभाविक बात है पर आज काल की कुटिल गतिसे जैन समाज के पास न तो वह विद्याबल है, न वह संख्याबल है न वह लक्ष्मीबल है और न वह श्रद्धाबल रहा है तथापि जैन संख्या के प्रमाणमें जैन मन्दिर कम नहीं है यहां तक कि उन मंदिरों की रक्षा करना आज बड़ा ही मुश्किल हो रहा है।

देश यात्रा करनेवालों के ख्याल से यह बात बाहर न होगा कि बड़े २ आलिसान कितनेक जैन मन्दिरों में शिवलिङ्ग व अन्य देवी देवता आ घूंसे हैं और कितनेक जैन मन्दिरों को तोड़फोड़ के उन पर मस्जिदें बनादी गई है और बहुत से जैन मन्दिर जिर्णावस्था भोग रहे हैं इस हालत में भी हमारे धनाभिमानी दानेश्वरी लोग पहिले के मन्दिर होते हुए भी उनको अनावश्यक समझ मात्र अपनी नाम्वरी के लिये नये मन्दिर बनाने में ही अपने धर्म की उन्नति

समझ रहे हैं पर उन अदूरदर्शी लोगों को यह ख्याल नहीं आता है कि पहिले मन्दिर बनाये जाय या मंदिर की पूजा करनेवाले बनाए जाय ? अगर मन्दिर पूजनेवालों की संख्या बढ जायगी तो वे स्वयं अपने कल्याण के लिए हजारों मन्दिर बना लेंगे पर मन्दिर पूजकोंकी ही संख्या कम होती जायगी तो उन मन्दिर को कौन पूजेंगे ? क्या पहि-लेके माफिक उनकी आशातना नहीं होगी ? अब हम मन्दिरों के काम के लिए देखते है कि आज पचीस क्रौड़ हिन्दुओं के मन्दिरोंमें जितने काम करनेवाले कारीगर नहीं मिलते हैं तब मुठ्ठीभर जैन कौम के लिए जहां देखो वहां प्राचिन मजबूत काम तौड़ा तोड़ा कर नए फैसन के कमजोर काम में हजारों लाखों रूपैये पाणी की तरह बहा रहे हैं कारण जैन कौम को धर्म के नामसे रुपयों की तो किसी हालतमें भी कमी नहीं है, आठ आनों की एक बही और एक रसीद बुक ले कर दोचार नौकर आदमी टीप कराने को निकल जाते है खाना खुराक गाडीभाड़ा और तनखा बाद करने पर अगर बिचमें किसी का हाथ न पडे तो एक हिस्से के रूपये मन्दिरजी तक पहुंच सक्ते हैं आगे प्रतिष्ठाकी तरफ देखिए तो पूर्व जमाने में सुविहित आचार्य प्रतिष्ठा करावाया करते थे और बहुत से पुराणे मन्दिरों के शिलालेख भी एसेही मिलते हैं परन्तु आज अपने दुष्टाचरण से लक्ष्मी और सन्तान से दुःखी होते हुए श्रावक को कितनेक लोग शंका डाल देते हैं कि तुमारे गांव में मन्दिर मूर्ति ठीक नहीं है इसकी फिरसे शीघ्र प्रतिष्ठा करावें कि गांव की अच्छी आबादी होगी। बस दुःख पीडित वाणियों को इतना कहना ही चाहिए वे हजारों लाखों पर

हाथ धर ही देते हैं जिसमें भी गोडवाड़ जैसी अज्ञान जनता के लिए तो पूछना ही क्या ? जिस गांममें लाखों रूपैये खर्च के पुन: प्रतिष्ठा करवाई पर उस मन्दिर को पूजनेवाले कितने श्रावक निकलेंगे ? आखिर तो वह पूजारियों के विश्वास पर मन्दिर छोड़ना पड़ता है, चाहे वे भक्ती करें चाहे आशातना। अगर कोइ आंख उठा कर देखे कि उन अधम पूजारियोंने जैन मन्दिर मूर्तियों की कहां तक आशातना करी और कर रहे है और उन आशातनाओं से ही जैन समाज का पतन हुआ और होता जा रहा है। क्या हमारे धर्मप्रेमी इन पूजारियों की आशातना मिटाने का प्रबन्ध कर समाज को इस पाप से बचा सकेगा ?

हमारे सज्जनों को जितनी बोली बोलने का शोख है उतना मन्दिरजी की आशातना मिटाने का लक्ष नहीं है अगर पहिले से ही आशातना तरफ लक्ष दिया जाय तो आशातनारूपी क्षय रोग को स्थान ही क्यों मिले ? जिस ग्राममें प्रतिष्ठा के जीमणवार में हजारों रूपैये व्यय किए जाते हैं उन शेठजीके बालबच्चों की शिक्षा के लिए न तो स्कूल है न जैन शिक्षा देनेवाला कोई मास्टर है न लड़कियों के लिए कोई कन्याशाला है न नवयुवकों के लिये लायब्रेरी है अगर कहीं पर होगा भी तो वह नाममात्र या बोर्ड देखने को, उनका फल कितना ? हम नए मंदिर और प्रतिष्ठा के विरोधी नहीं हैं पर समय को देखना चाहिये, समाज को देखना चाहिए भविष्य का विचार करना चाहिए कि आज अपने शिर पर मन्दिरों के जिर्णोद्धार ज्ञानोद्धार समाजोद्धार की कितनी जोखमदारी है ? अतएव

जहां दर्शन का साधन न हो वहां वस्तीके प्रमाण में मन्दिर या जिर्णोद्धार की अनिवार्य आवश्यकता है पर उनसें भी पूजारी बनाने की अत्यावश्यकता है और समाज अग्रेसर और धनाढ्य दानवीरों को उस तरफ अधिक लक्ष देना चाहिए.

(२०) जैन मूर्तियों–

जैन मन्दिरों के साथ जैन मूर्तियों का घनिष्ट सम्बन्ध है जहां मन्दिरोंकी बाहुल्यता हो वहां मूर्तियोंकी विशालता होना स्वभाविक बात है हमारे आचार्य देव जहां जहां विहार करते थे वहां नए जैनी बनाकर के उनके सेवा भक्ती उपासना के लिए जैन मन्दिर मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करवाया करते थे और वार वार उपदेश द्वारा उनका पोषण भीं किया करते थे इसी कारणसे उन लोगों की जैन धर्म पर श्रद्धा दृढ रहा करती थी बाद चिरकाल तक हमारे मुनियों के विहार व उपदेश के अभाव भी जैन मन्दिरों के जरिये उन लोगों की जैन धर्म पर अटल श्रद्धा बनी रही थी पर हमारे मुनियों की लापर्वाही तो यहां तक हो गई थी कि उन लोगों की तरफ आंख उठा करके कभी देखा भी नहीं उनकी उपेक्षा का फल यह हुआ कि अन्य लोगों की संगत संस्कार और अत्याचार से आखिर लाचार हो उनकों जैन धर्म त्यागना पडा इधर काल की क्रूरता से केई ग्राम नगर बिलकुल उजड़ यानि जंगल हो गए इत्यादि कारणों से जैन मूर्त्तिपूजकों की संख्या कम होती गई और वे मूर्त्तियों आस-

पास के जैन बस्तीवाले गांवों में एकत्रित करते गये और मुसलमानों के अत्याचार के भयसे उन मूर्त्तियों को भूमिगृह में भी स्थान दिया तथापि आज जैन वस्ती के प्रमाणमें मूर्तियों इतनी अधिक हैं कि जिनकी सेवा पूजा होना भी मुश्किल हो गया। इतने पर भी दुःखका विषय यह है कि जो मूर्त्तियां श्री संघके कल्याण के लिए थी। आज वही हठीले वाणियों की सम्पति रूपमें परिणित हो गई है। एक ग्राममें चाहें मूर्त्तियों की सेवा पुजा भी न होती हो अनेक आशातनाएं होती हो पर दूसरे मन्दिर के लिए एक सर्व धातू की प्रतिमा देने में वे इतने हिचकते है कि न जाने उनकी सम्पति ही जाती हो इस स्वछन्दता के कारण हजारों मूर्त्तियों की आशातना होते हुए भी नई अञ्जनसिलाकाए करानी पडती है और केई लोग तो ऐसे व्यापार ले बैठे हैं कि बिल्कुल नॅई मूर्तियों पर प्राचिन समय के सिलालेख खुदा कर बडी बडी किम्मत लेकर बिचारे भद्रिक लोगों को फंसा देते है जब पुर्व बंगाल और महाराष्ट्रीय देशोंमें देखा जाय तो संख्याबद्ध प्राचीन जैन मूर्तियों की अत्यन्त बुरी हालतसे आशातना हो रही है अतएव श्री संघको चाहिए कि पुराणी रूढियों के बंधन को छोड दें अगर जहां अधिक मूर्तियां हो और दूसरे गांव या मन्दिर में मूर्तियों की जरूरत हो तो विना सङ्कोच बडी खुसी के साथ प्रतिमाजी देकर उनकी सेवा पुजामें निमीत्त कारण बन लाभ उठावे.

(२१) जैन मंदिर मूर्तियों पर समाज की श्रद्धा.

एक जमाना वह था कि हमारे चतुर्विध संघ की श्री जैन मन्दिर मूर्तियों पर इतनी अटल श्रद्धा थी कि जैन मंदिरों के लिये प्यारे प्राण निछरावल करनेमें भी वह लोग अपना गौरव समझते थे। कारण वे उन मन्दिरों के जरिए अपने आत्मकल्याण किया करते थे। मुनियों के लिये तो उन की न्युनाधिक क्रियापर जनता की श्रद्धामें हानि वृद्धि भी हो सकती है पर मन्दिर मूर्त्तिपर तो जितनी श्रद्धाभाव निक्षेपद्वति तीर्थंकरोंपर होती है उतनी ही उन की मूर्तियोंपर रहती है; कारण जैसे तीर्थंकरदेव भव्यजीवों के कल्याणमें निमित्त कारण है वैसे ही उन की मूर्ती भी निमित्त कारण है। इस दृढ श्रद्धा के कारण ही जैन समाज की सदैव निर्मल भावना रहती थी, सच्चे सुख का मार्ग एक धर्म को ही समझते थे। पापकर्म उन से दूर रहता था, अन्याय अनीति और अत्याचार उनसे दूर भागता था, परभवसे हमेशां डरते थे, यथावकाश मन्दिरजी में जाकर सेवा, पूजा, भक्ति, ध्यान, जपादिसे आत्मकल्याण किया करते थे। जबसे हमारी समाजमें मन्दिर मूर्ती मानने में मतभेद पड़ा तबसे एक वर्ग (स्थानकवासी) जिनके पूर्वजोंने सैंकड़ों मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई थी वेही उनसे खिलाफ बन गए फिर भी जैसे २ उन को सद्ज्ञान मिलता गया वैसे २ वे पुनः मूर्ती-पूजा के उपासक बनते गए, पर कितनेक लोग समझने पर भी आज तक लकीर के फकीर बन बैठे हैं तब दूसरी तरफ स्वतंत्र विचार

और सुधारक के नामपर एक ऐसा वर्ग तैयार हुआ है कि वह मन्दिर मूर्तियों को मोक्ष का कारण जरुर मानते हैं। सेवा पूजा भक्ती उपासना करते हैं और उन की द्रढ श्रद्धा भी है पर वे कहते हैं कि केवल आडम्बर और धामधूममें ही हजारों लाखों रूपैये लगा देना और दूसरी तरफ समाज के जरुरी अंग (कार्य) निर्बल पडते जा रहे हैं अगर उसपर लक्ष नहीं दिया जायगा तो भविष्यमें इन मन्दिर मूर्तियों की रक्षा ही कौन करेंगे ? इत्यादि। तब पुराणे विचारवाले उन को नास्तिक के नामसे सम्बोधन करते हैं पर मन्दिरों की निष्पत् मन्दिरों के पूजारी बढाने को सब स्वीकार करते हैं दूसरी एक यह भी बात है कि श्रद्धा रहना ज्ञान और संस्कार के आधिन है आज हमारी समाजने इस बातों के लिए बिल्कुल मौनव्रत ले रक्खा है केवल कुल परम्परा श्रद्धा कहांतक टिक सक्ती है इसपर खूब गहरी द्रष्टीसे विचार करना चाहिये।

आगे हम जैन मन्दिरों के पूजा की तरफ देखते हैं तो पूर्वजमाने में खुद जैनलोग ही पूजन करते थे, कारण जितनी भक्ती और आशातना का ख्याल जैनों को रहता है उतना नौकरों को कभी नहीं रहता है कारण श्रावक तो आत्मकल्याण के लिए पूजा करते हैं तब नौकर अपनी उदरपूर्ति के लिए करते हैं। मेरे ख्यालसे तो जैन समाज की पतन दशा का मुख्य कारण जैन मन्दिरों की आशातना ही है। जैसे पूजा का हाल है वैसा ही देवद्रव्य का हाल है। इस विषयमें अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं कारण गांव गांवमें इस बात की त्रुटियों नजर आती है और इन को मिटाने का मनोरथ सब कोई किया करते हैं पर जब तक यह पाप न मिटे वहां तक जैन कौम की उन्नति

होना मुश्किल है जरा अपने भाई दिगम्बरियों की तरफ देखिए उनके ५-१० घर होनेपर भी मन्दिरजी की पूजा पक्षाल के लिए अमुक दिन अमुक पूजारी नियत हुआ हो उस को उस दिन पूजा करनी ही पड़ती है पर हमारे श्वेताम्बर समाजमें तो चाहे गांवमें दोसौ चारसौ घर होंगे तो भी उन को इतनी फुर्सत नही है कि वे पूजारियों के बिगर ही आप स्वयं पूजा पक्षाल करलें। हां! यदि पूजारी है तो पूर्व जमाना की माफिक काजा कचरा निकालें, बरतन चिराग, आरती, दीपक आदि माँज के साफ रक्खें इत्यादि बाहर का काम पूजारीसे लेना चाहिये। मगर सेवापूजा पक्षाल तो श्रावक लोग अपने हाथोंसे ही करें तब ही यह आशातना मिट सके और जैन समाज सब तरहसे सुखी हो, अपना जीवन आनन्दमंगल सहित पवित्र बना सके। उमेद है कि हमारे समाज अग्रेसरों का ध्यान इस तरफ शीघ्र ही आकर्षित हो इस कार्यमें सुधारा कर समाज को सुखी बनावेंगे ?

(२२) जैनाचार्य और मुनिवर्ग।

पूर्व जमाने में आचार्यपद उन्ही महापुरुषों को अर्पण किया जाता था कि जिन के अन्दर उतनी योग्यता हो, बात भी ठीक है कि आचार्यपद कोइ बच्चों का खेल नहीं है कि हरेक को दे दिया जाय, प्रत्युत आचार्यपद लेना एक सम्पूर्ण समाज की जुम्मेवारी अपने शिर उठानी है न कि केवल संघपर हकुमत

चलाने को था सुख साहिबी भोगने को और गाजे बाजेसे सत्कार पाने को आचार्य पद्वी दी जाती है। जो मुनि आचार्यपद पर आरूढ होते हैं, तब उनके ध्येय बदल जाते हैं। कारण मुनिपद में तो स्वकल्यान की ही जुम्मेवारी थी; पर आचार्य होनेपर तो चतुर्विध संघ की जुम्मेवारी आपश्री के शिरपर आ पड़ती है। जैसे राजा के दिवान पर राज की जुम्मेवारी और शेठजी की दुकान का भार मुनिम पर आ पड़ता है, और उन के लाभालाभ के उत्तरदाता भी वेही हुआ करते हैं; इसी माफिक शासन की हानि लाभ के उत्तरदाता आचार्य श्री हैं। इसी लक्ष बिन्दु को आगे रख आचार्यश्रीने अनेक संकटों का सामना करते हुए भी देश विदेश में अर्थात् विकट भूमिमें विहार कर जैन धर्म का झंडा फरकाया 'अहिंसा परमो धर्मः' का प्रचार किया, दुर्व्यसन सेवित जनता का उद्धार कर उन को जैन धर्म की दिक्षा दी चतुर्विध श्री संघ की सुन्दर व्यवस्था कर उनको सुयोग्य रास्ते पर चलाया, और स्वपरात्मा का कल्याण कर अपने कर्तव्य का अच्छी तरह पालन किया, कृतकार्य के लिए वे केवल मनोरथ कर के ही नहीं बैठ जाते थे पर अपने पुरुषार्थ द्वारा कार्य कर बतलाते थे; जिसके प्रमाण ढूंढने की भी हमें जरूरत नहीं है आज उनके बनाए हुए महाजन संघ (जैन जातियों) हजारों जैन ग्रंथ और असंख्य जैन मंदिर और मूर्तियों उन आचार्य देवों की स्मृति करा रही है।

इतना ही नहीं पर उन महर्षियोंने भारत के चारों और

परिभ्रमण कर जनता में यज्ञादि अनेक कुरूढियों और व्यभिचार जैसे पाखण्ड मत को समूल नष्टकर भगवान महावीर का 'अहिंसा परमो धर्मः' तथा सद्ज्ञान और सदाचार का खूब जोर सोर से प्रचार कीया; उन की बदौलत ही देश में सर्वत्र आनंद मंगल और शान्ति का साम्राज्य छा गया था। कारण जैसे कूएमें पानी होता है वैसे ही कोठा खेली में आया करता है, उस जमाने में उन आचार्यों के हृदय में ही नहीं पर उनकी नस नस में शान्ति की लहरों कल्लोलें किया करती थी, और वही शान्ति जनता को प्रसादीरूप में दी जाती थी और उस प्रसादी के प्रभाव से ही जन समूह तन, मन और धन से समृद्धशाली बन धर्म की प्रभावना किया करता था।

उस समय समाजमें एक ही आचार्य नहीं थे, पर अनेक प्रान्तों में अनेक आचार्य विहार कर धर्म प्रचार किया करते थे, पर एक दूसरों के अवर्णवाद बोल उन के पैरों को उखाडने का धंधा तो वे जानते ही नहीं थे; प्रत्युत एक दूसरों के गुणों के अनुमोदन कर गृहस्थ लोगों की श्रद्धा को मजबूत बनाते थे और धर्म कार्य में प्रेम एक्यता वात्सल्यता रख अन्योन्य अनेक प्रकार से सहायता किया करते थे.

उस समय उन महापुरुषों के धर्मशाला उपाश्रय का झगड़ा या बंधन नहीं थे कि केवल उपाश्रयों के पाटों पर बैठ व्याख्यान देनेमें ही वे अपने आचार्य पद का गौरव समझें, परन्तु वे लोग प्रायः राज सभा और पब्लिक में अपने पवित्र धर्म की महत्वता

और तत्वज्ञान आचारज्ञान समझाने में अपना कर्तव्य समझते थे; इस कारण से राजा महाराजा जैन धर्म स्वीकार कर जैन धर्म की उन्नति किया करते थे, अगर शास्त्रार्थ का काम पड़ता तो वे वितण्डावाद नहीं करते थे पर राजा महाराजाओं को मध्यस्थ रख राज सभाओं में अपना सत्य प्रमाणिक और न्याययुक्त तत्व को इस कदर प्रतिपादित करते थे कि वादियों को सत्य के सामने शिर झुकाना ही पड़ता और जैन धर्म की विजयपर राजा महा-राजाओं की श्रद्धा विशेष मजबूत हो जाती थी इत्यादि हमारे पूर्वाचार्यों की इस प्रवृति से ही जैन धर्म की दिन व दिन उन्नति हुआ करती थी।

यह युक्ति स्वयं सिद्ध है कि पिता का संस्कार पुत्र में हुआ करता है अतःएव हमारे शासन स्थंभ आचार्य महाराज के उत्तम संस्कार उन की सन्तान अर्थात् मुनिगणमें हो जाना स्वाभाविक बात है उस समय के मुनिवर हमारे आचार्यों के भुजतुल्य सहा-यक थे और उन की सहायता बल से ही आपश्रीने अपने लक्ष-बिन्दु को पार किया था।

हमारे आचार्यदेव दिक्षा लेनेवाले महानुभावों को भगवती दिक्षा और कष्टमय मुनि जीवन पहिले से ही खूब समझाया करते थे. वैराग्य कसोटी पर उन भव्यों की खूब परिक्षा भी किया करते थे कि दिक्षा लेने के बाद न तो उनको नासभाग करना पड़ता था, और न गुप्त अत्याचार की भावना ही पैदा होती थी। योग्यायोग्य का विचार किए विगर केवल शिष्य संख्या बढाने की

लोभेच्छा से वे दिक्षा नहीं दिया करते थे, परन्तु स्वकल्यान के साथ जगदोद्धार कर जैन धर्म का झण्डा फरकाने की उत्तम भावना से ही वे योग्य पुरुषों को दिक्षा दे उन का कल्यान करते थे। तब ही तो उन मुनि पुङ्गवों के त्याग वैराग्य तप, संयम, निस्पृहता, और परोपकार परायणता की छाप केवल हिन्दुस्थान मे ही नहीं; पर सम्पूर्ण विश्व में पड़ती थी। संसारभर में जितना आदर और उच्च स्थान जैन साधुओं को मिलता था, उतना दूसरो को नहीं इस का कारण यही था कि जैन मुनियों की कष्टाचर्य और जगत्वातसल्यता विश्व को मुग्ध बना रही थी।

हमारे आचार्य देवोंने दुःख पीडीत कुव्यसन सेवित जनता का जैसे उपदेश द्वारा उद्धार किया वैसे ही अज्ञान पिडीतात्माओं के लिए अनेक ग्रन्थों की रचना कर उनका अज्ञान तिमिर नष्ट कर ज्ञानसूर्य का प्रकाश किया था, विश्व में ऐसा कोइ विषय नहीं रहा है कि जिसपर हमारे पूज्याचार्य महाराजने कलम न उठाई हो, जैसे आत्मज्ञान, अध्यात्मज्ञान, तत्वज्ञान अष्टांग, योगआसन समाधि, ध्यान मौन, ऐतिहासिक, व्याकरण, न्याय, तर्क, छन्द, काव्यकोष, अलंकार नीति (कायदा) उपदेश, ज्योतिष, वैद्यक, गणित, फलित, यंत्र मंत्रप्रयोग स्वप्नसुकन स्वरोदय रेखा, लक्षण व्यंजनादि अष्ट महानिमित स्त्रीपुरुषों की सर्व कला और कथा साहित्य तो आप श्रीमानोंने इतनी विशाल संख्या में रचा था कि जिसमें धर्माचार, गृहस्थाचार नीति वैराग्य उपदेश गूढार्थ समस्या वीरों की वीरता धीरों की धैर्यता क्षमा दया शील सन्तोष

और सत्यता का इतना तो पोषण किया है कि जिन के पठन पाठन से पापी अधर्मी भी सदाचारी बन अपना कल्यान कर सके।

आज अच्छे २ लिखे पढे यूरोपीयन लोगो की सम्मतियें-भी मिल रही है कि अपने जीवन को नीतिमय बनाने को जैन कथा साहित्य बड़ा ही उपयोगी है, जैनाचार्योंने धर्म शास्त्र रचने में और लिखने में अपनी जिन्दगी पूर्ण कर दी थी; वह इतने प्रमाण में संग्रह किया था कि वेदान्तियोंने जोर जुल्म से जैन शास्त्रों को नष्ट किये मुसलमानोंने हजारों लाखों शास्त्र अर्थात् कई भण्डार के भण्डार अग्नि में जला दिए। तथापि आज संसार भर में जितना जैन साहित्य आस्तित्व रुप में हैं, उतना शायद् ही दूसरे के पास हो आज जो जैन साहित्य प्रकाश में आया है उससे कई गुना अभी तक भण्डारों में पड़ा है वर्तमान जैन समाज को यह एक पद्धति पड गई है कि संसार जागृत हो अपने कार्य क्षेत्र में प्रवृत मान हो जाता है, तब जैनों की निद्रा दूर होती है इसी कारण से अन्य लोगों की अपेक्षा जैन साहित्य बहुत कम प्रकाश में आया है, जो भण्डारों में पड़ा सड रहा है उसको भी प्रकाश में लाने की बहुत आवश्यकता है।

जैनाचार्योंने जैन तीर्थ मन्दिर मूर्तियों की स्थापन भी कम नहीं करवाइ थी अर्थात् कोई प्रान्त ऐसा नहीं छोडा कि जहां अपना विहार न हुआ हो, जहां नए जैन न बनाए हो जहां जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा न कराई हो, कारण जैसे शास्त्र आलंबन भूत है वैसे मंदिर मूर्ति भी आलम्बनभूत है सम्यक्त्व निर्मल का मुख्य कारण

मूर्ती है इनसे श्रद्धा मजबूत रहती है। धर्म गौरव बना रहता है सेवापूजा से आत्मकल्यान होता है जहां मुनियों का विहार देरी से होता हो तो भी उन मन्दिर मूर्ती के जरिए ही वह अपने धर्म में स्थिर रह सके हैं इतना ही नहीं पर उन मन्दिर मूर्तियों के आधार पर आज इतिहास भी पुकार पुकार कर कह रहा है कि एक समय भारत के कोने २ में जैनधर्म प्रचलित था इतना ही नहीं पर आस्ट्रीया और अमेरिका में भी खोद काम करते समय कतिपय जगह; जैन मूर्तियों निकलती है। इस से उन लोगों का अनुमान है कि एक समय वहां भी जैनधर्म आस्तित्व रूप में था, यह हमारे आचार्यों के उपदेश और विहारक्षेत्र की विशालता का परिचय है उन आचार्यों की दीर्घदृष्टी और कुशलता का ही फल है कि आज शत्रुंजय, गिरनार, आबु, तारंगा, और शिखरजी जैसे पहाड सेकडो जिनालयों से शोभित है। आज जैन जनता की संख्या कम हो गई है पर जैनधर्म के स्थंभरूप तीर्थ मन्दिरों को देखते हुए जैनधर्म का गौरव संसारभरमें कम नहीं पर सब से चढबढ कर के है, यह हमारे पूर्वाचार्यों की कृपा का ही फल है।

जैनाचार्य अपने उपाश्रय के पाटे पर बेठकर केवल श्रावकों को ही जैनधर्म नहीं सुनाया करते थे, परन्तु वे राजा महाराजाओं की सभा और पब्लिक में अपने धर्म की सुंदर महत्वता निडरता से समझाने में प्रयत्नशील रहते थे, उस जमाने में जहांपर जिन विधर्मियों का विशेष जोर था वे सत्य धर्म प्रदर्शित आचार्यों पर अनेक आक्षेप आक्रमण और संकट करने में भी कभी नहीं रखते

थे पर क्षमाशील आचार्य उन विधर्मियों के साथ टकर खाते हुए अपने पैरों पर खड़े रहते थे, और उन विधर्मियों के साथ ऐसा बर्ताव करते थे कि उनके किए हुए दुष्कृत्यों का आखिर उनको पश्चाताप करना पड़ता था शास्त्रार्थ करने को भी हमारे आचार्य हरवख्त तैयार रहते थे।

पर वे शुष्कवाद या वितण्डावाद नहीं किया करते थे प्रत्युत बडे २ राज्य न्यायालय और अच्छे अच्छे विद्वानों के मध्यस्थत्व-मे शास्त्रार्थ किया करते थे तत्वज्ञान समझाने में हमारे आचार्यों की विद्वता कम नहीं थी, अर्थात् अनेकान्त पक्ष और स्याद्वादरूपी अभेद्य शस्त्र के सामने उन विधर्मियों को शिर झुकाना ही पड़ता था, इस लिए ही तो हमारे आचार्य सिंहशिसु, व्याघ्रशिसु, वादि वैताल, वादिगंजन केसरी, वादि चक्रचूडामणी, आदि २ इल्कावों से विभूषित थे। केवल आचार्य ही नहीं पर हमारे मुनि पुङ्गव भी जैन तत्वज्ञान का प्रतिपादन करने में या शास्त्रार्थ की कसोटी पर खूब ही कसे हुए थे, कारण उस जमाने में जिस जिस विकट प्रदेशमें विहार करते थे वहां उनको पग २ पर शास्त्रार्थ करना पड़ता था, इसी कारण से उन महापुरुषोंने दिग्विजय कर वाम मार्गियों जैसे व्यभिचार मत के किल्ले को तोडकर जैन धर्म का झण्डा फरकाया था, उनकी स्मृति स्वरूप आज पर्यन्त जैन जातियों श्रद्धापूर्वक जैन धर्म पालन कर रही है।

मध्यकालिन समय हमारे आचार्यों के साधारण क्रिया भेद, मतभेद, और विचारभेद से कई कई गच्छों का प्रादुर्भाव हुआ,

तथापि शासनोन्नति रूप लक्ष बिन्दु सब का एक ही था। उन्होंने अपने पुरुषार्थ से देश विदेशमें परिभ्रमण कर जैन धर्म की बहुत उन्नति की, अपने अमृतमय उपदेश द्वारा जैन जनता का रक्षण पोषण और वृद्धि की थी, जैन ग्रंथ और मन्दिरों का निर्माण करना तो उनके जीवन का खास ध्येय था, इसी से ही आज जैन ग्रंथ और जैन मंदिरों के शिलालेख विशेष उसी समय के मिलते हैं।

क्रमशः काल कि कुटिलता का प्रभावसें हमारे आचार्य और संघ में कुछ २ शिथलताने प्रवेश किया दृष्टिगोचर होता है, तब भी हम दावे के साथ कह सक्ते हैं कि भारत में तो क्या पर पृथ्वीपट्ट पर ऐसा भी कोई साधु समाज न होगा कि हमारे जैन साधुओं की बराबरी में सामना कर सके, कारण आज हमारे जैन मुनिराज हजारों कोस पैदल घूमते हैं, शिर के बाल हाथों से उखेडते हैं, अपने पास किंचित भी द्रव्य नहीं रखते हैं, क्रय विक्रय नहीं करते हैं क्षुधा बस मर जाते हैं, पर हाथ से रोटी नहीं बनाते हैं इतना ही नहीं पर विना जल प्राण चले जाते हो, पर वे कूए तलाव आदि का कच्चा पानी नहीं पीते हैं ब्रह्मचर्यव्रत तो इतना दृढ रखते हैं कि वे छमास की बाला को भी नहीं छूते हैं। किसी आत्मा को तकलीफ पहूंचाना, असत्य बोलना और तृण मात्र भी अदत्त लेना तो वे महापाप समझते हैं संसार के रगड़े झगड़ों से तो वे हजार कोस दूर रहना अपना कर्तव्य समझते हैं। ऐसे पवित्र मुनियों का आज जैन संसारमें अभाव नहीं है तथापि वे अल्प संख्या में ही नजर आते हैं।

जब विशेष साधु समुदाय एसा है कि वह आज हमारे शास्त्र और आचार्य प्रदर्शित पथसे कुच्छ पृथक ही आ रहा है; उन के विषय में जो कुछ लिखना है उस से अपने लेख के महत्व को झखा बनाना है, कारण वे पढकर के कह देंगे कि इस पुस्तक में क्या धरा है यह तो साधुओं की निन्दासे भरी पडी है, पढना तो क्यापर हाथ में लेने के काबिल भी नहीं है इत्यादि । तथापि सत्य लिखने में लेखनी रूक नहीं सक्ती है ।

वर्तमान हमारे गुरुदेवों का विहारक्षेत्र

जिन पूर्व महर्षियोंने अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भारत के चारों ओर विहारकर जैन धर्म का प्रचार कर बार बार उपदेश द्वारा उन का रक्षण पोषण किया, उनके सेवा पूजा निमित्त सेंकडों मंदिरों की प्रतिष्ठा करवाई, आज हमारे विद्यापीठादि पंच प्रस्थान जगद्गुरु भट्टारक, शासनसम्राट्, सूरि चक्रचूडामणि, शासनोद्धारक, आगमोद्धारक, और व्याख्यान वाचस्पती आदि २ उपाधियों भूषित सूरिश्वरजीने अपना विहारक्षेत्र कितना संकुचित बना रक्खा है कि आप श्रीमानों के चरण कमलोंसे एकाद प्रान्त के सिवाय भूमि पवित्र तक भी नहीं हुई है कि जहाँ आप के पूर्वजोंने हजारों लाखों जैन बनाए थे, वे आज मुनिविहार और सदुपदेशक के अभाव धर्म से पतित होकर विधर्मी बन

गए हैं और जिनालय–शिवालय के रूप में परिणीत हो गए हैं। क्या यह कम सोचनिय विषय है ? समझमें नहीं आता है कि आज इसाई, मुसलमान, और आर्य समाजिष्ट लोगोंने देशभरमें शुद्धि संगठन की धूम मचा रक्खी है, जैन समाज को खूब हड़प रहे हैं फिर भी हमारे आचार्यदेव कानों में तेल डाले हुए एक प्रान्तमें क्यों विराजमान हो रहते हैं। नए जैन बनाना तो दूर रहा पर वर्तमान जैन है उनका रक्षण करना भी उनसे नहीं बनता है, कहा है कि " अतिवृष्टि दुकाल और अनावृष्टि दुष्काल " यह युक्ति हमारी समाज के लिए ठीक चरितार्थ होती है, गुर्जर प्रान्त में तो हमारी साधु समाज का अतिवृष्टि दुष्काल है कि जहां आवश्यक्ता नहीं है, वहां तो दो २ सो चार २ सो साधु साध्वियों एक ही प्रान्त में रहकर आपस में द्वेष ईर्षा क्लेश कदाग्रह बढाकर के आपस में तथा गृहस्थ लोगों का द्रव्य खर्चा और उन की संगठन सक्ती का सत्यानास कर भिन्न २ वाडाबंधी कर अपने जीवन को क्लेशमय बना रहे हैं। तब दूसरी तरफ पूर्व बंगाल महाराष्ट्रीय दक्षिण मालवा मेवाड़ और मारवाड़ादि प्रदेशों में अनावृष्टी दुष्काल हो रहा है कि वहां मुनियों के विहार के अभाव जैन लोग अजैन बनते जा रहे हैं, जिन मंदिरों की आशातना हो रही है, यह साधुविहार का दुष्काल है कदापि कोई मुनि यात्रा निमित्त पूर्वोक्त क्षेत्रों में जाते हैं एकाद चातुर्मास किया भी करते हैं पर उनका प्रभाव कितना उनसे सुधारा कितना फिर भी तो उनको भागकर गुजरात में आना पड़ता है. समझमें नहीं आता है कि

उन त्यागी पुरुषों को गुर्जर प्रान्त से इतना क्यों प्रतिबंध है कि अनेकवार अपमान होता है फिर भी वहां जाकर के घुसते हैं। अगर खानपान पौद्गलिक सुखों की ही भावना हो तो इस समय लोग दिशावरी होनेसे बहुत कुछ सुधारा हो गया इतनेपर थोड़ा बहुत कष्ट भी पड़ जाय तो उसको सहन करना चाहिए नहीं तो फिर साधु ही किस बात के।

जिन साधुओं की पढाई के लिए समाजने लाखों रूपये खर्चे किए, उसका फल क्या हुआ अतःएव आचार्य महाराज और विद्वान मुनि महाराजों को हमारी नम्र विनति है कि आप एक प्रान्त का मोह छोड़ देशोदेश में उग्र विहार करे परन्तु ऐसे न हो कि आप की आधी व्याधि उपाधि और नोकर चाकरों के खर्चे से लोग अधर्म को प्राप्त हो जाय, इस लिए आप को समग्रज्ञ होने की भी बहुत जरूरत है आप के आडम्बर की निष्वत् आज ज्ञान वैराग्य सदाचार और क्रियाकांड की रूचीवाले लोग बहुत हैं।

हमारे गुरूदेवों के आपस का धर्मस्नेह—

पूर्व जमाने में हमारे चौरासी और इन से भी अधिक गच्छों के आचार्य और मुनिवर्ग भूमण्डल पर विहार करते थे, उनके क्रियाभेद होते हुए भी आपस में धर्मस्नेह रखते थे एक दूसरे के गुणों की अनुमोदना करते हुए आपस में सहायता कर

धर्मोन्नति किया करते थे, पर आज तो वायुमण्डल बिल्कुल बदल गया है एक ही गच्छ, एक ही क्रिया, एक ही श्रद्धा, एक ही वेश होनेपर भी आपस में न भोजन व्यवहार, न वन्दना व्यवहार, न एक स्थान में उतरने का व्यवहार, बिचारे गृहस्थ तो चौरासी न्याति के लोग भी एक स्थान ठहर कर के आपस में भोजन कर लेते हैं, तब हमारे निराभिमानी त्यागी महापुरुषों में इतना ही व्यवहार नहीं है बल्कि एक दूसरे का पैर उखेड़ने में ही अपना महत्व समझ रक्खा है। जिन के आपस के लेख और चर्चा की पुस्तकें देखी जाय तो अन्य लोगों की तो क्यापर जैनों की भी श्रद्धा उठ जाती है कि वे लोग आपस में इतना द्वेष रखते है तो हमारा क्या कल्याण कर सकेंगे।

हमारे गुरुदेवों की व्याख्यान प्रणाली—

जमाना बदल गया जनता बदल गई पर हमारे आचार्यों की व्याख्यान शैली अभी तक वह की वह ही बनी है जो कि किसी जमाने में भद्रिक जनता को सुनाई जाती थी और वह जी महाराज ! कह कर स्वर में स्वर मिलाया करती थी, पर आज तो दुनिया का रंग बदल गया है वह तत्वज्ञान का फिराक में फिर रही है भगवान महावीर के सिद्धान्त में अत्यन्त उच्च कोटी का तत्वज्ञान भरा पड़ा है इतना ही नहीं पर उन सर्वज्ञ परमात्माने

अपने सिद्धान्त की रचना खास वैज्ञानिक ढंग पर की थी आज उसी विज्ञान की आशा अभिलाषा सारा संसार कर रहा है पर उन को सुनावे कौन ? समझावे कौन ? इतना पुरुषार्थ करे कौन ? इतना अवकाश हैं किस को ? अगर किसी सूरिजी को नामांकित सुन कोई जिज्ञासु तत्वज्ञान के विषय में प्रश्न करे उन के उत्तर में जहां तक हमारे सूरिजी के वचनों को जीसाहिब, जीसाहिब, करते रहें वहां तक तो ठीक है अगर बिच में तर्क कर ली तो उस की कम बख्ती समझो उस के लिए नास्ती अधर्मी पापी और अनंत संसारी के इल्काब मिल जाते हैं। कहावत है कि " कमजोर को गुस्सा ज्यादा "

पूज्य गुरुदेवों ! अब आप अपनी पुरानी रूढी को बदलाओं अपने शिष्यों को चारित्र और और उपन्यासों के बदले वैज्ञानिक ज्ञान (तत्वज्ञान) का अभ्यास कराओ, कारण वर्तमान इस के ग्राहक बहुत है इस के प्रचार से ही आपके धर्म का महत्व दुनिया समझ सकेगी, जिन जैनेतर समाजोंने जैन तत्वज्ञान का अध्ययन किया है, वे आज प्रसन्नचित्त से कह रहे हैं कि जैन सिद्धान्तों में जैसा आत्मा, कर्म, परमाणु, आदि षट्द्रव्य और नवतत्व का स्याद्वाद रौच और वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन किया है, इतना ही नहीं पर सुक्ष्म से सुक्ष्म पदार्थ को जिस बारिकी से समझाया है। वैसे अन्य किसी शास्त्रों में उस की गंध भी नहीं पाई जाती है, अगर किसीने थोडा बहुत कहा भी हो तो उन का यश जैन सिद्धान्तो को ही है कि जिस की बदोलत अन्य लोगों को वह प्रसादी मिली है

इत्यादि । फिर समझ में नहीं आता है कि हमारे शासन नायक सूरिश्वर और मुनिवर्ग अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ गप्पों सप्पों में क्यों बिताते हैं, हम को तो आज भी पूर्ण विश्वास है कि हमारे जैन विद्वान अपना ' फिलासोफी ' (तत्वज्ञान) जनता को समझाने के लिए कम्मर कस मैदान में खडे हो जाय अर्थात् देशविदेश में परिभ्रमण करे तो पूर्वाचार्यों की भान्ति जैन धर्म को विश्वव्यापि बना सके हैं, कारण कि अव्वल तो हमारे गुरुदेवों का त्याग वैराग्य निस्पृहता और परोपकार परायणता जनता को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है अर्थात् उन का असर बहुत जल्दी पडता है, दूसरा हमारा तत्वज्ञान इतना उच्च दर्जे का है कि उस के सामने संसार को शिर झूकाना ही पडता है । क्या हमारे गुरूदेव हमारे मनोर्थ और आशा को सफल बनावेंगे ?

हमारे गुरुदेवों की साहित्य सेवा—

हमारे पूर्वाचार्योंने अपनी तमाम उमर जैन साहित्य सेवा में पूर्ण करदी थी वे एक क्षणभर भी व्यर्थ नहीं गमाते थे ग्रंथ रचना और उन को अपने हाथों से लिखना उन के जीवन का ध्येय था, आज हमारी समाज में प्राय: न तो कोई नया ग्रंथ रचनेवाला है, और न कोई हाथों से लिखनेवाले हैं, इतना ही नहीं पर जो पूर्वाचार्य रचित सैकडो जैन ग्रंथ भंडार में पडे सड रहे हैं उन को प्रकाशित करानेवाले ही बहुत कम है। अन्य लोग अपने धर्मशास्त्रों को

अन्योन्य प्रचलीत सरल भाषा में प्रकाशित कर चूके हैं. और सरल भाषा होने से उन का प्रचार भी काफी हो रहा है जब हमारे आगमोद्धारकोंने पुराणी भाषा को वैसी की वैसी लिखारों के पास प्रेस कोपी करवा कर के उन आगमों को मुद्रित करवा जैन लायब्रेरियों और मुनियों के भंडारों में सुरक्षित बना दिए पर उन से पब्लिक जनताने कितना लाभ उठाया, जैन साहित्य का कितना प्रचार हुआ साहित्य शंसोधक यूरोपिअन लोगोंने उस को हाथ में लिया या नहीं लिया इस की पर्वाह किस को है ? आज तो अपने खुद के जीवन चारित्र लिखाने की मारोमार लग रही है, या पुराणे चर्चात्मक साहित्य जो क्लेश वृद्धिकारक होता है, उस को प्रकाशित करवा कर समाज में अशान्ति फैलाइ जा रही है । या कोइ एक ने पंच प्रतिक्रमण की किताब छपाई तब दूसरेने उस में पांच सात स्तवन स्वाध्याय न्यूनाधिक कर अपने नाम की निशानी ठोक देते हैं यदि कुछ भी न हो तो पांच स्तवन किसी पुस्तक से और पांच किसी अन्य किताब से लेकर अपने नाम से किताब छपा कर के आप साहित्योद्धारक बन जाते हैं पूज्य गुरुदेवों ! आप से एक प्रान्त न छूटे तो भी आप अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ न खोवे पर जैन तत्वज्ञान अनेक देशों की अन्योन्य भाषाओं में मुद्रित करवा कर जनता के सन्मुख रखें कि आप का उत्तम ज्ञान विश्वव्यापि बन जावे । यद्यपि साहित्यरसीक मुनिप्रवरों के प्रयत्न से साहित्य का कुछ प्रचार हुआ है तथापि आज इस कार्य की अत्यावश्यक्ता है और यह कार्य हमारे गुरुदेवों पर ही निर्भर है ।

हमारे गुरुदेवों का शास्त्रार्थ—

हमारे पूर्व महर्षियोंने बडी बडी राज सभाओं में शास्त्रार्थ कर के जैन धर्म का विजयी डंका बजाया था और उस सत्यता का प्रभाव राजा महाराजाओ और पब्लिक पर भी अच्छा पडता था यह सब उस संवाद का ही फल था। वितण्डावाद उन महापुरुषों से हजार कोस दूर रहता था आज हमारे शास्त्रोद्धारकों की अध्यक्षता में सैकडों लोग जैन धर्म पर असत्याक्षेप कर रहे हैं कोई तो मांस की आदि करनेवाले जैनों को बतलाते हैं, तो कोई जगत्पूज्य भगवान महावीर प्रभु पर व्याभिचार के दोष लगा रहे हैं कोई कलिकाल सर्वज्ञ भगवान हेमचन्द्रसूरि पर अनुचित आक्षेप कर रहे हैं कोई जैनों को म्हलेछ और नास्तिक के नाम से पुकार रहे हैं, इत्यादि उन के लिए तो हमारे सूरीश्वरजीने क्षमा व्रत धारण कर लिया है जब आपस का काम पडता है तब अखबारों के कालम के कालम काले कर देते है या उछृंखल किताबें छपवा कर समाज में आग की चिनगारियों लगा देते हैं आपस में नोटीसो और शास्त्रार्थ की चेलेंजें दी जाती है आज मुठ्ठीभर जैन कोम के अन्दर जितना द्वेष है उतना शायद् ही किसी दूसरी कौम में होगा ? क्या हमारे गुरुदेव परस्पर के वितण्डावाद को दूर रक्ख अन्य लोगों के किए हुए मिथ्याक्षेपों का उत्तर देने कों या शास्त्रार्थ करने को कटिबद्ध तैयार होंगे ?

हमारे गुरुदेवों का संग्रहकोश-

पूर्व जमाने में हमारे साधु महात्मा इतने तो निस्पृही थे कि वे प्राय: जीर्ण वस्त्र पात्र वगेरह से अपनी जीवन यात्रा पूर्ण कर लेते थे, और पुस्तकों विगेरह लिखते थे वे भी तमाम श्रीसंघ के अधिकार में सुप्रत कर देते थे, पर वे स्वयं ममत्व भाव नहीं रखते थे तब ही तो उन का प्रभाव संसार भर में पड़ता था और उन को पक्षी की ओपमा इस लिए दी जाती थी कि पक्षी स्थानान्तर गमन समये अपनी पांखों लेकर उड जाते हैं वैसे ही मुनिवर्ग भी अपने विहार समय भंडोपकारण सब साथ ले जाते थे। उन को किसी प्रकार का प्रतिबंध न होने से वे भारत के चारों ओर घूम कर धर्म प्रचार किया करते थे, आज उस निस्पृहीता का इतना तो रूपान्तर हो गया है कि विचारे साधारण लोग कभी एक चतुर्मास करवाते हैं तब उसके खर्चे से ही गृहस्थ लोगों के नाक में दम आजाता है कि दूसरीं वार चौमासे का नाम लेना ही भूल जाते हैं, सत्य लिखना कदाच दुनिया निन्दा के रूप में न समझ ले वास्ते यहाँपर विशेष उल्लेख करना मैं ठीक नहीं समझता हुँ पर इस पुद्गलीक प्रतिबंध से वे अन्य प्रान्त में विहार तक नहीं कर सक्ते हैं। आज कल अन्योन्य धर्मकार्यों की आवन्द का हिसाब इतना बढ गया है कि उस की व्यवस्था करने में भी हमारे अग्रेसर वर्ग को बड़ी २ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता

है, हमरे उपदेश दातापूज्य गुरुदेवों को स्वयं विचार करना चाहिए कि अगर अन्त समय जीव उस कोश संग्रह की और चला जाय गा तो आपनी क्या हालत होगी ? गुरुदेव ! आप को संचय बढाने की क्या आवश्यका है कारण आपश्रीमानों की सेवा में श्रीसंघ पग २ पर हाजिर है वह कहता है कि " साहिबजी ! अमने लाभ आपो, गुरुमहाराज अमने लाभ आपो, आप तिरायां तारियायां छो " जब आप को जिस वस्तु की जरूरत हो उस वस्तु का लाभ श्री संघ को दो कि उन का भी कल्याण हो अगर आप वस्तु लेके ममत्व भाव से संग्रह करोगे तो आप को भी नुकशान है और उस नुकशान में सहायता देनेवाले गृहस्थों को भी फायदा नहीं है वास्ते पैटी पटार को छोड कर अप्रतिबन्ध हो भूमिपर विहार कर हमारे जैसे संसारी जीवों का कल्याण कर उस लाभ के संग्रह पर ध्यान दिया करें ।

हमारे गुरुदेवों की दिक्षा पद्धति—

पूर्व जमानेमें दिक्षा लेनेवालों को पहिले भगवती दिक्षा का स्वरूप और कष्टमय मुनि जीवन अच्छी तरहसे समजाया जाताथा, बाद योगायोग्य और वैराग्य की कसोटी पर खूब परिक्षा कर उनके कुटुम्बीयों की रजाबंधी से ही दिक्षा दी जाती थी, और उन्ही मुनि पुङ्गवोंने जगदोद्धारक के साथ अपना कल्याण किया, पर आज तो

उस भगवती दिक्षा का रूप रंग कुछ और का और बदल गया है। जिस दिक्षा के चरणोंमें देव देवेन्द्र और नर नरेन्द्र अपना उन्नत शिर झुकाते थे, आज उसी दिक्षा के नामसे संसार क्षुब्ध उठा हैं, प्रसिद्ध पत्रोंमें कोलाहल मच रहा है। बात भी ठीक है कि यावज्जीवन का व्रत एक दो दिनमें या मास और वर्षमें ही समाप्त किया जाता हो उस दीक्षा पर कहां तक श्रद्धा रह सक्ती है? दिक्षा का साधारण लक्षण काम, क्रोध, लोभ, क्लेश और अहम्पद त्यागने का है. वह आज दिन व दिन बढ़ता नजर आता है; छानी-छीपी इधर उधर भगा कर के दिक्षा देना तो आज हमारे धर्मगुरुओं का साधारण नियम हो चूका है। ईसी कारणसे जनता की दिक्षा परसे श्रद्धा उठती जा रही है, कितनेक लोग अपने अभिष्ट की सिद्धि के लिए पुराणे जमाने के अपवाद को आगे रख कर माता पितादि कुटुम्बियों की बिगर रजा दिक्षा देने की हिमायती करते हैं; पर आज दुनिया सर्वथा अज्ञान नहीं है कि एक विशेष कारणसे अपवाद सेवन किया गया हो उसको सदैव के लिए बिना कारण काममें लिया जाय वह शास्त्र सम्मत कब माना जा सक्ता है? पुराणी बातों की अपेक्षा आज नजरसे देखी हुई बातों पर जनता अधिक विश्वास रखती है, अतःएव दिक्षा प्रकरणमें खास सुधारा होने की जरूरत है, अगार ऐसे ही अन्धाधून्धी बनी रहेगी तो वह दिन नजदीक है कि जैसे मठ मण्डियोंमें रहनेवाले साधुओं की किम्मत है, उनसे अधिक किम्मत नहीं होगी।

हमारें गुरुदेवों प्रति समाज की श्रद्धा—

पूर्व जमानेमें जैनाचार्य और मुनिमण्डल पर जैन समाज की यहां तक श्रद्धा थी कि उनके लिए प्यारे प्राणों को निछरावल कर देना कोई बात भी नहीं समझते थे, केवल जैन समाजैं ही नहीं पर सारा संसार उन महर्षियों को बडे ही सनमान की दृष्टीसे देखता था; इस का कारण उन का त्याग, वैराग्य और परोपकार ही था। आज हमारे गुरुदेवों पर सर्व जनिक वह श्रद्धा नहीं रही है पर उन की दृष्टीरागमें कमा हुआ है वह ही। जी हाँ जी हाँ किया करता है तब दूसरे जैन श्रावक प्रसिद्ध पेपरोंमें हमारे पूज्याचार्य देवो को मनमाने शब्दोंमें तिरस्कार करे और उन को स्वपर मतवाले पढ कर के हांसी उड़ावे. यह कितनी शर्म की बात और समाज की कहां तक श्रद्धा कही जाय, मैं तो यही अर्ज करतां हूं कि अभी भी हमारे गुरुदेव अपनी उत्तमता पर खूब गहरी दृष्टिसे विचार करें और अपनी प्रवृति में जो त्रुटियों हैं उनको सुधार कर जैसी पूर्व जमानेमें दुनिया की श्रद्धा थी; वह पुन: जमाने का प्रयत्न करें तो अच्छा है।

क्षमा की याचना।

वीरशासनमें आज भी त्यागी, वैरागी, नि:स्पृही, उग्रविहारी, परोपकारी, सदाचारी और साहित्यप्रचार करनेवाले आचार्य और मुनिगण कि कमी नहीं है और उन महाशयों के पूर्ण परिश्रमसे ही

वीरशासन धारावाही चल रहा है परन्तु आप श्रीमानों का संगठन न होनेसे आज समाजमे स्वच्छन्दचारियों की प्रबलता वडती जा रही है अगर निरकुंशता के कारण उन की संख्या वढती ही जायगा तो आज जो सच्चे शासनप्रेमि शासनोद्धारक समाज हितचिंतक आचार्य और मुनि पुङ्गव है उन की तरफ भी दुनियों का अभाव हो जायगा इस लेख को आगे रक्ख दो शब्द लिखा गया है उस का अर्थ कुच्छ अन्य रूपमे न कर बेठे इस लिये यह खुलासा करने की जरूरत पडी है कि मैंने जो कुच्छ मेरे दग्ध हृदयसे उद्गार निकाला है वह निंदा=शिक्षा—उपालंभ रूप से नहीं पर एक विनंती या अर्ज के रूप में उन्हीं महात्माओं के लिये कि वह स्वच्छन्दचारि हो समाज को लाभ के वदले हानि पहुँचा रहे है और तत्वदृष्टिसे देखा जाय तो वह अपनी आत्मा को भी नुकशान पहुँचा रहे है मैं एक साधारण गृहस्थ हुँ पूज्य मुनिवरों के विषय बोलने का मुझे तनक भी अधिकार नहीं है तथापि शासन की बुरी हालत सहन न होनेसे यह चेष्टा कि गई है और अपने विचार जनता के सन्मुख रखने की स्वतंत्रता प्राणिमात्र को है तदानुस्वार मेने भी यह प्रयत्न किया है इसपर भी किसी प्राणि को रंज पैदा हुआ हो तो मैं अन्तःकरणपूर्वक क्षमा की याचना करता हुँ और क्षमाशील महात्मा मुझे अवश्य क्षमाप्रधान करेंगे इस आशा से ही इस लेख को समाप्त करता हुँ ॐ शान्ति ।

समाज शुभचिंतक
" गुलकान्त "
अमरेलीकर